ऋग्वेद संहिता

भाषा-भाष्य

भाग ४

❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(चतुर्थ खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—

आर्य-साहित्य-मण्डल, लिमिटेड्, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २००० | सं० १९९१ वि० | मूल्य ४) रुपये

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय सूची

तृतीयेऽष्टके। पञ्चमे मण्डले

(सप्तचत्वारिंशत्सूक्तादारभ्य)

तृतीयोऽध्यायः (पृ० १–६५)

के बिजुली मेघादिवत् गुण। (७) जलप्रवाह, अश्व, नदी, वायु आदि दृष्टान्त से वैश्यों के कर्त्तव्य। (९) परिहारयोग्य स्थान। (१०) वीरों के पीछे अनुगमन। (११–१२) उन्नति के निमित्त उपदेश। (१४) निन्दाओं की परवाह न करके आगे बढ़ने की प्रार्थना। (१५–१६) तेजस्वी होने आदि की प्रार्थना। (पृ० २७–३४)

सू० [५४]—विद्वानों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में वृष्टि लाने वाले वायुओं, मेघों और बिजुलियों की भौतिकविद्या का वर्णन। उनके दृष्टान्तों से नाना प्रकार के उपदेश। (६) चोरी का निषेध। (७) कृषि व्यपारादि की आज्ञा। (११) वीरों की पोशाक और उनका तेजः स्वरूप। चमकते मेघोंवत् शत्रु पर वीरों के आक्रमण की आज्ञा। (१४) साम-उपाय का उपदेश। (पृ० ३४–४३)

सू० [५५]—मरुतों, वीरों का वर्णन उनके कर्त्तव्य। (पृ० ४३–४८)

सू० [५६]—मरुतों, वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। (१) वीरों का स्वर्णपदकों से सजना। (२) उनको उत्साहित करना। (३) मेघमालावत् प्रजा, सेना और सूर्य वा ऋक्ष के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य। (४) वीरों का वर्णन। (५) प्रमुख नायक। (६) योग्य पुरुषों की नियुक्ति। (७) उनके कर्त्तव्य और योग्य आदर। (पृ० ४८–५३)

सू० [५७]—वीरों विद्वानों, के कर्त्तव्य। मरुतों का वर्णन। (१०) श्रेष्ठ रथों का उपभोग। (२) उत्तम वीरों को उपदेश। 'पृश्नि मातरों' का रहस्य। (३) मेघमालाओं और वायुओं के दृष्टान्त से उनका वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ५३–५८)

सू० [५८]—वीरों, विद्वानों का वर्णन, उनके कर्त्तव्य। (२) उत्तम नायक। (३) जलदाही, वृष्टिप्राप्त वायुगणवत् उनका वर्णन। (४) रक्षक होने योग्य पुरुषों के गुण। (५) अरों के दृष्टान्त से उनको उपदेश।

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ८५–१७९)

(६) निष्पाप होकर ऐश्वर्य धारण की प्रार्थना। (७) सर्वपाल सविता प्रभु का वरण (८) सर्वोपास्य सर्वसाक्षी प्रभु (९) सर्वगुरु प्रभु। (पृ० १४६–१४८)

सू० [८३]—पर्जन्य मेघवत् राष्ट्रपालक का वर्णन। (२) शत्रु पराजयकारी का मेघवत् वर्णन। उसका शत्रु वध का भयंकर कार्य। (३) सैन्यप्रबन्धक, एवं सारथिवत् विचेता का मेघवत् रूप। (४) बरसते मेघ के साथ युद्ध का विशिष्ट वर्णन। और उसके सत्फल। (५) सर्वपोषक राजा और मेघ। (६) धारावान् मेघ और सेनाध्यक्ष। (७) वर्षते मेघवत् राष्ट्र पोषक राजा के कर्त्तव्य। उत्तम न्याय व्यवस्था का आदर्श। (८) मेघवत् कोश वृद्धि और सद् व्यय का उपदेश (९) मेघवत् उदार सर्वप्रिय राजा। (१०) मेघवत् परविजयी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १४९–१५६)

सू० [८४]—पृथिवी के तुल्य माता का वर्णन। (२) उसका पति के प्रति कर्त्तव्य। (३) उसका भूमिवत् राजशक्ति के तुल्य वर्णन। (पृ० १५६–१५७)

सू० [८५]—वरुण, सर्वश्रेष्ठ प्रभु। (२) राजा के राष्ट्रोपयोगी कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (३) प्रजा का कष्टवारक सम्राट्, वरुण, (४) राजा के भूमि सेचन के कर्त्तव्य। उसके वीरोचित कार्य। (५) मेघव्रत का पालन। सर्वप्राणपति, महान् असुर, निर्माता, माता प्रभु। (६) सर्व देवमय प्रभु। (७) पापमोचन की प्रार्थना (पृ० १५७–१६२)

सू० [८६]—इन्द्र, अग्नि। विद्युत् अग्निवत् नायक, अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (३) उनका स्वरूप राजा और विद्वान्। (५) दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। (पृ० १६३–१६५)

सू० [८७]—मरुद् गण। मनुष्यों को कर्त्तव्यों का उपदेश।

इति पञ्चमं मण्डलम्

अथ षष्ठं मण्डलम्

वत् ज्ञानवान् प्रभु । (४) विद्वान् राजा का परशु, आज्य, नियारिया और अग्निवत् कर्त्तव्य । (५) उसको असंग होकर धनुर्धर वा श्येन पक्षी-वत् कर्त्तव्यपालक होने का उपदेश । (६) उत्तम उपदेष्टा, सन्मार्गदर्शक के कर्त्तव्य । (७) सूर्यवत् सैन्यपति के पालन का राजा का कर्त्तव्य । (पृ० १८४–१८९)

सू० [४]—अग्नि । नायक होने योग्य गुण । (३) परमेश्वर सर्व-स्तुत्य, सब तेजों का धारक, पावन, सर्व बन्धन शिथिल करता है । (४) राजावत् परमेश्वर का शासन । (५) प्रमुख नायक । (६) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । (७) उसका वरण । (८) परमात्मा से निर्विघ्न मार्ग से ले जाने की प्रार्थना । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य । (पृ०१८९–१९३)

सू० [५]—उत्तम राजा का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । (पृ० १९३–१९६)

सू० [६]—जिज्ञासु का ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानप्रद गुरु के समीप पहुंचना । (२) वीर नायक का कर्त्तव्य । (३) दिग्विजयी वीरों का विजय । उनको अग्नि से उपमा । (४) उत्तम शासकों का करसंग्रह और उच्च पद । (५) शासन और शत्रु नाश । (६) सूर्य के प्रकाश प्रसार-वत् राजा का राज्यप्रसार । (पृ० १९७–२००)

सू० [७]—वैश्वानर । तेजस्वी व अग्नि, सूर्यवत् नायक का स्था-पन । उसके कर्त्तव्य । (६) पक्षान्तर में सर्वहितैषी प्रभु का वर्णन । प्रभु, सर्वकर्त्ता, सर्वप्रकाशक है । (पृ० २००–२०४)

सू० [८]—वैश्वानर । आचार्य और व्रतपाल ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) आचार्य का स्त्री पुरुषों को दो चर्मखण्डों के तुल्य संयोजन । (४) जलों और मेघों से यन्त्रों से बिजुली के तुल्य प्रजाओं में से तेजस्वी राजा का उपसंग्रहण । (५) परशु से वृक्षवत् दुष्टों के नाश का उपदेश । (६)उसके अन्य कर्त्तव्य । तीनों सभाओं के सभापति से रक्षा की प्रार्थना । (पृ० २०४–२०८)

सू० [९]—वैश्वानर। रात्रि-दिनवत् राजा प्रजा वा वर वधू के कर्त्तव्य। वैश्वानर राजा के गृह में बालकवत् अनुरंजक होने की स्थिति। (२) पिता से बढ़कर पुत्रवत् विद्वान् की स्थिति। यज्ञपक्ष में ब्रह्मवाद के पक्षों का स्पष्टीकरण। (४) जीव का वर्णन। जीव नश्वर देहों में अमर ज्योति। पक्षान्तर में नश्वर लोकों में ईश्वर तत्व। (५) देह में मन की स्थिति। (६) इन्द्रिय नमन आदि की चेतनवत् स्थिति। (७) इन्द्रियों का आश्रय आत्मा (पृ० २०८–२१३)

सू० [१०]—विद्वान् नायक का साक्षिवत् स्थापन। प्रभु की साक्षिवत् स्थिति। (२) तेजस्वी के मातृवत् कर्त्तव्य। (३) गोपाल वत् प्रजाबल। (४) तमोनिवारक सूर्यवत् गुरु का कार्य। (५) राजा के अन्यान्य कर्त्तव्य। (पृ० २१३–२१७)

सू० [११]—प्रमुख नायक के कर्त्तव्य। (२) देह की गृहस्थ से तुलना। (३) स्वयंवरण का प्रचार। (४) अग्नि तुल्य वर का रूप। (५) गृहस्थ यज्ञ। (पृ० २१७–२२२)

सू० [१२]—अग्नि के दृष्टान्त से राजा और विद्वान् गृहपति का वर्णन। (२) उसको यज्ञ का उपदेश। (३) घोड़ों पर चाबुक के समान राजा वा नायक की स्थिति। उसे अद्रोही, चुस्त होने का उपदेश। (४) नायक के अग्नि, अश्व, पिता के समान कर्त्तव्य। उसे वनस्पति भोजी 'द्रुन्न' होने का उपदेश। (५) द्रवत् विद्युत् का वर्णन, उसके सदृश प्रजानुरंजक राजा के कर्त्तव्य। (६) राजा प्रजा को निन्दनीय जनों से बचावे। (पृ० २२२–२२६)

सू० [१३]—(१) वृक्ष से शाखावत् सूर्य से वृष्टियों के समान राजा से राज-सभासदाओं का विकास। (२) अग्नि से प्रकाश और जाठराग्नि से प्राणों के तुल्य राजा से न्याय की उत्पत्ति। (३) सूर्य से जल, मेघ, अन्नवत् राजा से राज्यों की वृद्धि। (४) उसकी तीक्ष्ण तेज-

स्विता और स्वामित्व। (५) राजा के बल ऐश्वर्यादि धारण करने के प्रयोजन, दुष्टों का निग्रह, और प्रजाहित। (६) राजा, और प्रभु से धन, पुत्र ऐश्वर्यादि की प्रार्थना। (पृ० २२६–२३०)

सू० [१४]—अग्निवत् गुरु के अधीन विद्याभ्यास से ज्ञान की वृद्धि। (२) विद्वान् अग्नि का स्वरूप। वह यथार्थ ज्ञान प्रकाश करने से 'अग्नि' है। (३) धन, सम्पदा के लिये स्पर्धा करने वाले क्षत्रिय और वैश्य दोनों का स्वामी विद्वान् ब्राह्मण है। (४) क्षत्राग्नि तेजस्वी नायक का सर्वोत्तम दान शत्रुभयकारी बल है। (५) ज्ञानबल से निन्दकों पर विजय लाभ (६) प्रभु से शुभ ज्ञान, उत्तम भूमि, ऐश्वर्य की याचना, पापों और शत्रुओं को पार करने की याचना। (पृ० २३०–२३२)

सू० [१५]—वेद के भोजन से ज्ञान की वृद्धि। प्रातः जागने का रहस्य। जीवन के प्रथम भाग-ब्रह्मचर्य में पालन का उपदेश। (२) वनस्पति रूप आचार्याग्नि के कर्त्तव्य। (३) विद्वान् गुरुवत् राज्याश्रमी राजा के कर्त्तव्य। वीतहव्य का रहस्य। (४) विद्वान् की सेवा और पूजा। (५) स्तुत्य प्रभु का रूप। (६) अग्नि-परिचार्यवत् प्रभु-परिचर्या का वर्णन। (७) उपासनाओं द्वारा यज्ञाग्निहोत्र-उपासना और गुरु-उपासना। (८) अमृत, विश्पति विभु की उपासना। (९) तिमंजिले भवन के समानत्रिविध तापवारक प्रभु। (१०) ज्ञानी प्रभु की गुरुवद् उपासना। (११) गुरु के कर्त्तव्य। (१२) राजा के गुरुवत् और गुरु के राजावत् कर्त्तव्य। (१३) 'जातवेदा' का लक्षण। 'अग्नि' का लक्षण, उसके होता, गृहपति आदि अन्वर्थ नाम। (१४) परमेश्वर, राजा का यज्ञकर्त्ता और अग्नि के तुल्य वर्णन। (१५) विद्वान् और राजा के कर्त्तव्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव। (१६) विद्वान् और सेनापति के कर्त्तव्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव। (१७) संघर्ष द्वारा मथ कर उत्पादित विद्युत् या अग्नि के तुल्य परस्पर विवाद-

संघर्ष द्वारा विद्वान् नायक की उत्पत्ति। (१८) उसका लक्ष्य राज्य यज्ञ का धारण और उत्तम कर्माचरण। (२०) सर्वहितार्थ यज्ञाग्निवत् विद्वान् नायक का आधान। जिससे वह तीक्ष्ण तेज से शासन करे। (पृ० २३२–२४४)

सू० [१६]—ज्ञानमय जगदीश्वर की स्तुति। विद्वान् की जनता में स्थिति। (२) विद्वान् के कर्त्तव्य। वेदोपदेष्टा प्रभु। (३) सन्मार्ग-दर्शी प्रभु, ज्ञानी। (४) उसकी सगुण निर्गुण, उपासना के प्रकार। (५) पात्रप्रद विवेकी प्रभु। (६) दूतवत् प्रभु। (७) स्तुत्य प्रभु। अनुकरणीय प्रभु। (९) मनु, वह्नि, अग्नि, सर्वाश्रय ज्ञानी प्रभु। (१०) ज्ञान की पुकार। राजसभा में राजा को प्रधान पद की प्राप्ति। (११) ज्ञानाग्नि का यज्ञाग्निवत् प्रज्वालन। (१२) प्रकाशवत् ज्ञानवितरण। (१३) मेघस्थ अग्निवत् शिरोमणि विद्वान् की स्थिति। उसकी उत्पत्ति और कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आत्माग्नि का मथन। (१४) अथवा दध्यङ् ऋषिके अग्नि मथन का रहस्योद्भेद। (१४) पाथ्य वृषा, मेघवत् प्राण का वर्णन। दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (१६) उपदेष्टा की चन्द्रवत् वृद्धि। (१७) उत्तम बल प्राप्ति का उपदेश। (१८) राजकार्यों पर राजा की आंख रहने की आवश्यकता। वा समर्थ राजा का लक्षण। (१९) सत्पति का लक्षण। दिवोदास का रहस्य। (२०) अनबूझ अग्नि राजा। (२१) राजा को राज्य विस्तार का उपदेश। (२२) अग्रणी के गुण स्तवन, उपदेश। (२३) विद्युत्वत् विद्वान् अध्यक्ष, उसकी दीर्घायु। (२४) राजा का कर्त्तव्य गृहस्थों का बसाना। (२४) राजा विद्वान् और प्रभु का सम्यग् दर्शन सर्वलोक-हितार्थ है। (२६) उसका कर्त्तव्य पापों से प्रजा की रक्षा। (२६) आत्मसमर्पक की ब्रह्मप्राप्ति। (२७) प्रभु, स्वामी के सच्चे सैनिक। (२८) प्रजाभक्षकों का नाश, राजा का कर्त्तव्य। (२९) दुष्टों का उत्पीडन (३०) पापों और पापियों से प्रजा का पालन। (३१) दुष्टों का मूलोच्छेदन। (३२) हमारे विरोधी दुष्ट

पुरुष को वचन द्वारा दण्डित करना या वाक्छेदन करने का दण्ड। (३३) अन्न-बलधारियों के हाथ से ऐश्वर्य की याचना। (३२) जल सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (३५) परमेश्वर। माता के गर्भ में बालकवत् राज्य गर्भ में राजा की स्थिति। और सभाभवन के मुख्यासन पर पिता के पिता (पितामह) पदकी प्राप्ति। (३६) धन, ज्ञानप्रद जातवेदा का स्वरूप। (३७) सम्यग् दृष्टि वाले ज्ञानी के पास से ज्ञानोपार्जन। (३८) धूप में तप्त की छायावत् प्रभु शरण प्राप्ति। (३९) बलवान् राजा का शत्रुपुर भेदन। (४०) प्रजा का राजा के प्रति मातृतुल्य स्नेह। (४१) योग्य की योग्य पद आदर प्राप्ति। (४२) उसका योग्य पद पर स्थापन। (४३) उत्तमों की उत्तम कार्यों में नियुक्ति। (४४) राष्ट्र पालनार्थ राजा का सैन्य धारण। (४५) उसकी सर्वोच्च स्थिति और चमकने का उपदेश। (४६) सर्वोच्च की आदर पूजा करने का प्रकार। (४७) राजा के अधीन जनों के गुण। (४८) अग्रासन योग्य जन के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति, दुष्ट नाश। (पृ० २४४–२६१) इति पञ्चमोऽध्यायः॥

अथ षष्ठोऽध्यायः (पृ० २६२–३२८)

सू० [१७]—शत्रु दमन के साथ राष्ट्र में कृषि की वृद्धि का उपदेश। (२) राजा के सद्गुण। (३) उसके कर्त्तव्य। (४) उसका अभिषेक। (५) उषावत् सूर्य के तुल्य राजा प्रजा का अभ्युदय। (६) प्रजा की वृद्धि के नाना द्वार खोलने का उपदेश। (७) बृहत् सैन्य धारण और प्रजा के शासन का उपदेश। (८) गुरुवत् राजा का वरण। (९) राजा के दो भय, उनसे विनीत प्रजा। (१०) राजा के बल के ५ गुण, भयकारी सर्वनाश में समर्थ तीक्ष्ण, सुखद, सर्वाश्रय योग्य (११) सूर्यवत् राजा के दो कार्य १. अन्नवत् शत्रुपाक, २. सरोवरपूरक मेघवत् राष्ट्र के ज्ञानी बली, धनी तीनों प्रजावर्गों का समृद्धि योग। (१२) मेघस्थ जलवत् बल का प्रयोग और प्रजाजन का सन्मार्ग पर ले चलना। (१३)

ऐसे राजा का वरण। (१४) उसका कर्त्तव्य। (१५) उत्तम प्रार्थना। (पृ० २६१—२६९)

सू० [१८]—स्तुत्य स्वामी, प्रभु। (२-३) एक ईश्वर की स्तुति। उसका वेदोपदेश। (४) स्वामी का महान् भीतिप्रद शासनबल। उसका कार्य शत्रु का नाश। (६) राजा के अनेक उत्तम कर्त्तव्य। (७) सर्वोपरि राजा के गुण। (८) प्रजा के सुखार्थ प्रजा के भक्षकों का दमन। (९) महारथी होने का उपदेश। उसको कर्त्तव्य का उपदेश। (१०) बिजुलीवत् शत्रुओं का नाश। (११) दुष्टों को धनापहार का दण्ड। (१२) अद्वितीय बलशाली, प्रभु और राजा का वर्णन। (१३) राजा को उपदेश। शासन, दान, उन्नयन, शक्तिवर्धन। (१४—१५) प्रधान के स्तुत्य कार्य। (पृ० २६९—२७६)

सू० [१९]—शरीर में प्राणवत् राजा की स्थिति। वह सहायकों से बढ़े। (२) उसके कर्त्तव्य। (३) पशुपालवत् प्रजा का पालक। (४) सदाचारी प्रजा होने के उद्देश्य से राजा की स्थापना। (५) राजा के उत्तम गुण। (६—९) उसके कर्त्तव्य। प्रजा का शक्तिवर्धन (१०—१३) अभ्युदयादि। प्रजा की नाना कामनाएं। (पृ० २७६—२८२)

सू० [२०]—राजा के गुण। (२) विद्युत्वत् राजा का समवाय बना कर शत्रुहनन। (३) राजा के उत्तम गुण। (४) दशावरा परिषत्पति का बलशाली पद। उसका प्रभाव। (५) राजा महारथी। (६) राजा, सेनापति का कर्त्तव्य, नमुचि के शिरोमथन का रहस्य। शुष्ण के वध का रहस्य। (७) 'पिप्रु' शत्रु का रूप। उस का दमन। अहार्य धन का दान। (८) राष्ट्रमाता का बालकवत् सुपुत्र राजा। शासनार्थ उत्तम उपकरण, दशान्तरा, हस्ती यान, सैन्य बल, आदि का ग्रहण। (९) न्यायासन पर विराजे अधिकारी के कर्त्तव्य। (१०) उत्तम सैन्यशिक्षा। (११) राजा के पितातुल्य कर्त्तव्य।

सू० [२६]—प्रजा सेवकादिभक्त इन्द्र। उसका दुष्टदमन का कर्त्तव्य। (पृ० ३१५–३१६)

सू० [२७]—राज्यैश्वर्य की रक्षा और दुष्ट दमन के उपायों का उपदेश। (२) न्याय का उपदेश। (३) इन्द्र का अज्ञेय ऐश्वर्य। (४) उसका सर्वभयकारी बल। (५) शिष्य को शिक्षा, ताड़ना के समान राजा का शासन। 'हरियूपीया' का रहस्य। (६) राजा की ३००० सेना और सैन्यों के कर्त्तव्य। (७) राजा की शत्रु-उच्छेदक नीति। (८) राजसभा के २० सदस्यों का विधान। (पृ० ३१९–३२४)

सू० [२८]—गौओं के दृष्टान्त से कुलवधुओं का वर्णन। (२) राजा का प्रजाजन को खजाने के समान रक्षा करने का कर्त्तव्य। (३) अचोर्य धन। (४) ज्ञानी इन्द्र की अहिंस्य गौएं, वाणियें हैं। (५) इन्द्र से राजा, गृहपति, विद्वान् से भूमि, गौ वाणी दान करने की याचना। (६) गौओं और वाणियों के उत्तम गुणों की तुलना। (७) गौओं वाणियों के तुल्य व्यवहार और प्रकृति। (पृ० ३२४–३२८) इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः (पृ० ३२८–४१२)

सू० [२९]—महत्वाकांक्षियों को इन्द्र, गुरु, आदि की शरण जाने का उपदेश। (२) प्रधान पुरुष, इन्द्र की योग्यता। (३) उसकी सूर्यवत् स्थिति। (४) राजा के उत्तम गुण, 'सोम', "धाना", 'पक्ति' 'ब्रह्मकार' आदि का स्पष्टीकरण। (५) सर्वरक्षक महाप्रभु। (६) अनुपम बलशाली इन्द्र। (पृ० ३२८–३३१)

सू० [३०]—सूर्य पृथिवीवत् राजा भूमि का प्रकाश्य-प्रकाशक भाव। सूर्यवत् उसका महान् प्रभाव। (२) उसका महान् अविनाशी, दर्शनीय सामर्थ्य। (३) विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य। (४) सूर्यवत्

सू० [३७]—योग्य अधिकारी सहायकों की नियुक्ति। उनके गुण। रथ में लगे अश्वों से उनकी तुलना। (४) 'इन्द्र' पद के योग्य पुरुष का वर्णन। (५) उसका कर्त्तव्य। (पृ० ३५०–३५२)

सू० [३८]—उत्तम शासक का वर्णन, उसके कर्त्तव्य। (२) विद्वान्, ज्ञानोपदेष्टा का ज्ञानप्रसार। (३) गुरु का आदर (४) समृद्धि की वृद्धि का उपदेश। गुरुसेवावत् राजसेवा का वर्णन। (पृ० ३५२–३५५)

सू० [३९] ज्ञानप्राप्ति का उपदेश। (२) गुरु शिष्य के कर्त्तव्य। (३) चन्द्र सूर्यवत् उनके परस्पर व्यवहार। (पृ० ३५५–३५८)

सू० [४०]—प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य। राष्ट्र का अन्नवत् उपभोग। (२) राजा के सन्मार्ग पर चलाने का विद्वानों का कर्त्तव्य। उसके शिष्यवत् कर्त्तव्य। (५) यज्ञवत् राष्ट्र का पालन। (पृ० ३५८–३६१)

सू० [४१]—इन्द्र, स्वामी को उसके कर्त्तव्यों का उपदेश। (पृ० ३६१–३६४)

सू० [४२]—प्रजाजन के कर्त्तव्य। राजा प्रजा के परस्पर के सम्बन्ध। (पृ० ३६४–३६६)

सू० [४३]—शत्रु नाशपूर्वक राष्ट्रैश्वर्य का पालन और उपभोग। राजा का अभिषेक। (४) पुत्रवत् प्रजा। (पृ० ३६६–३६७)

सू० [४४]—अभिषेक योग्य सोम स्वधापति। उसके कर्त्तव्य। (४) इन्द्र पद के योग्य पुरुष के लक्षण और आवश्यक गुण। उसके कर्त्तव्य। (८) उसके प्रति विद्वानों के कर्त्तव्य। (९) बुरी आदतों को त्यागकर प्रजा की आयुवृद्धि का उपदेश। (१०) सर्वोपरि बन्धु प्रभु। (११) प्रजा की न्यायोचित मांगें। (१२) राजा के कर्त्तव्य। (१४) सूर्य मेघवत् राजा का शत्रु नाश और प्रजापालन का कार्य। (१५) राजा की

सू० [५७]—इन्द्र, कृषक जन पृथिवीपति पूषा। व्यापारी वर्ग और कृषक वर्ग इन्द्र और पूषा। (३—४) इन्द्र राजवर्ग, प्रजा पूषा। (६) दोनों की भिन्न व्यवस्था। (पृ० ४६६—४७१)

सू० [५८]—रात्रि-दिनवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) गृह-पति पूषा। (पृ० ४६८—४६८)

सू० [५९]—सूर्य अग्निवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) उसका विद्युत् अग्निवत् वर्णन। (६) उत्तम स्त्री। पक्षान्तर में विद्युत् का वर्णन। तेजस्वी स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ४७१—४७६)

सू० [६०]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। उनका उत्तम आदर। पक्षान्तर में अग्नि-विद्युत्-विज्ञान। (पृ० ४७६—४८३)

सू० [६१]—सरस्वती नदी से यन्त्र संचालक वेग और बल प्राप्ति के समान प्रभु और वेदवाणी से ऐश्वर्य, ज्ञान और शक्ति का लाभ। (२) नदीवत् वाणी का वर्णन। (५) सरस्वती विदुषी का वर्णन उत्तम विद्या का वर्णन। (पृ० ४८३—४८९) इत्यष्टमोऽध्यायः॥

इति चतुर्थोऽष्टकः

पञ्चमोऽष्टकः

सू० [६२]—सूर्य उषावत् विवेचक स्त्री पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (४) वायु विद्युत्, उनके कर्त्तव्य। (६) विद्युत् पवन। विज्ञान। वायुयान-निर्माण। पक्षान्तर में स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य का वर्णन। (८) तेजस्वी प्रजा जनों के कर्त्तव्य। (पृ० ४९०—४९७)

सू० [६३]—स्त्री पुरुषों के सत् कर्त्तव्य। (५) उषावत् कन्या का वर्णन। वर वधू के कर्त्तव्य। (पृ० ४९७—५०२)

सू० [६४]—उषा के दृष्टान्त से वरवर्णिनी वधू और विदुषी स्त्री के कर्त्तव्य। (पृ० ५०३—५०७)

सू० [६५]—उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (५) कन्या के प्रति विद्वानों के उपदेश और वर प्राप्ति। (पृ० ५०७—५११)

सू० [६६]—देह का वर्णन। (२) विद्वानों मरुतों के कर्त्तव्य। (३) उत्तम सन्तानोत्पादन का उपदेश। (६) बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य रक्षा आदि। (७) वायुओं द्वारा विना अश्वादि के रथ के समान जीवन का निष्पाप मार्ग। (८) वीरों से रक्षित नायक का अनुपम बल। (९) वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य। अग्निवत् नायक और वीरों का वायुवत् वर्णन। सेनानायक का आदर सत्कार। (पृ० ५११—५१७)

सू० [६७]—मित्र वरुण। स्नेही दुःखवारक प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) मित्र-वरुण वरवधू के कर्त्तव्य। उनको गृहस्थ जीवन सम्बन्धी अनेक उपदेश। (पृ० ५१७—५२३)

सू० [६८]—इन्द्र वरुण, युगल प्रमुख पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) इन्द्र वरुण की व्याख्या। (१०) इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुषों का वर्णन। (पृ० ५२३—५२८)

सू० [६९]—इन्द्र विष्णु। सूर्य विद्युत्वत् राजा प्रजा वर्गों के परस्पर कर्त्तव्य। (२) सूर्य विद्युत्वत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (३) सभापति सेनापति के कर्त्तव्य। (४) ऐश्वर्य और जनसंघशक्ति अर्थात् कोश और दण्डाध्यक्षों को उपदेश। (५) राजा विद्वान् दोनों के पराक्रम और (७) ऐश्वर्य की वृद्धि और उत्पत्ति का उपदेश। उक्त सबको अन्न ऐश्वर्य से पेट भरने का उपदेश। (८) अपरिमित ज्ञान, बल ऐश्वर्य प्रकट करने की प्रेरणा। (पृ० ५२८—५३२)

सू० [७०]—द्यावा पृथिवी, भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू वा स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। वे स्नेही, आश्रय योग्य, विशाल हृदय, मधुर अन्न वचन के दाता, बलवान् हों। (२) वे सूर्य भूमि वा जल-अन्न सम्पन्न, शुद्धाचार, दानी उत्तम सन्तति के माता पिता

हों। (३) दोनों में आदर्श पुरुष का वर्णन। (४) दोनों का आदर्श पारस्परिक कर्त्तव्य। (पृ० ५३२–५३६)

सू० [७१]—सविता। सूर्यवत् उत्तम निपुण राजा के कर्त्तव्य। (३) वह प्रजा के प्राणों की रक्षा करे। स्वयं सत्यवान् हो। (४) अपराध को न सहे। (५) सुप्रसन्न रहे, (६) प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करे (पृ० ५३६–५३९)

सू० [७२]—इन्द्र सोम। सूर्य चन्द्रवत् स्त्री पुरुषों, गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य, वे प्रभु को जानें। अज्ञान को दूर करें, निन्दय व्यवहारों का नाश करें। (२) युवा-युवति को बसावें। माता भूमि का आदर करें, पक्षान्तर में आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य, (३) आचार्य और विद्युत्-पवन परस्पर सहायकों के कर्त्तव्य। (४) परिपक्व वीर्य से सन्तान उत्पन्न करें। (५) धनादि उपार्जन करें। (पृ० ५३९–५४२)

सू० [७३]—गृहपति परमेश्वर पिता और राष्ट्रपालक राजा। (२) वीर राजा का वर्णन। (३) बड़े राष्ट्र के स्वामी के कर्त्तव्य। (पृ० ५४२-५४४)

सू० [७४]—सोम रुद्र। चन्द्र और वैद्य वा औषधि और वैद्यवत् शत्रु-रोगनाशक राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। जल और अग्नि के तुल्य वैद्यों को आरोग्यरक्षार्थ औषध संग्रह का उपदेश। (पृ० ५४४–५४५)

सू० [७५]—संग्राम सूक्त। युद्धोपकरण, कवच, धनुष, धनुष की डोरी, धनुष कोटि, तरकस, सारथि, रासें, अश्व, रथ रक्षक, वाण, कशा हाथ का रक्षक चर्म आदि २ पदार्थों के वर्णन तथा उनके महत्व। (२) धनुष के बल से संग्राम विजय का उपदेश। (३) प्रिय स्त्रीवत् धनुष डोरी का वर्णन। संग्राम पार करने की सहायक डोरी (४) माता पिता के समान धनुष कोटियों और पार्श्ववर्त्ती सेनाओं का वर्णन। (५) बहु-

पुत्र पितावत् तरकस का वर्णन। संग्राम विजय में उसके साथ पीठ पीछे लगे वीर की तुलना। (६) रासों का महत्व, अध्यात्म में आत्मा रथी का वर्णन। (७) शत्रुविजयी वीरों का वर्णन। (८) युद्ध रथ। (९) सेनाध्यक्ष पितरों का वर्णन। (१०) विद्वान् ब्राह्मण पितरों का वर्णन। वाणों का वर्णन। पक्षान्तर में भूमि और भूमिपालों का महत्व पूर्ण वर्णन। (१२) वाणवत् सरल पुरुष का वर्णन। (१३) अश्व चालक कशा का वर्णन। (१४) सूर्यवत् हस्तत्राण और वीर पुरुष का वर्णन। (१५) विष से बुझे बाण तथा सुन्दर स्त्री का वर्णन। (१६) छोड़े हुए बाणवत् सेना का वर्णन। (१७) विद्यार्थियों के तुल्य बाणों का वर्णन। (१८) वीर का कवच धारग। (पृ० ५४५–५५५)

इति षष्ठं मण्डलम्

अथ सप्तमं मण्डलम्

सू० [१]—मथन द्वारा प्रकट होने वाले अग्निवत् परस्पर विचार विवाद द्वारा दूरदर्शी प्रधान नायक का निर्णय। (२) ऐसे दूरदर्शी पुरुष को चुनने के प्रयोजनों का कर्त्तव्य। (३) नायक के गुण। (४) विद्वान् तेजस्वियों के कर्त्तव्य। (५) यन्त्ररथवत् सर्वाग्रणी। (६) वरवत् प्रधान नायक का वर्णन। (७) उसके कर्त्तव्य, वह परुषभाषी को दण्ड दे। (८) सेना, दण्ड को तीक्ष्ण करे। (९) पिताओंवत् शासक जन एवं सेना पुरुष। (९) उनके कर्त्तव्य। (११) प्रधान नायक का वरण। (१२) उसके कर्त्तव्य। (१५) उत्तम रक्षक अग्नि, नायक। (६) उसकी यज्ञाग्नि से तुलना। (१७) उससे अग्निहोत्रवत् व्यवहार। (१९–२७) प्रजा के आवश्यक निवेदन। राजा के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य। (पृ० ५५७–५६८)

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२]—यज्ञाग्निवत् शासक नायक का वर्णन। उसके कर्त्तव्य।। (२) उत्तम विद्वानों का सत्कार। (३) उत्तम कार्य के लिये सच्चे, कुशल, स्तुत्य पुरुष का वरण। (४) यज्ञवत् सदाचार शिक्षण। (५) विद्वानों के वीरों के तुल्य कर्त्तव्य। (६) दिन रात्रिवत् युवा युवति जन के कर्त्तव्य। (७) उनके कर्त्तव्य। (८) विदुषी देवियों के कर्त्तव्य। (९) प्रजा काम गृहस्थी को उपदेश। (१०) सूर्य वनस्पतिवत् राजा के कर्त्तव्य। पाचकवत् नायक के कर्त्तव्य। शमिता अग्नि का स्वरूप। (११) अग्निवत् सेना नायक का वर्णन। उसकी सुपुत्रवती माता से तुलना। (पृ० ५६८–५७४)

सू० [३]—सूर्य अग्नि विद्युत्वत् तेजस्वी दूतवत् प्रमुख पुरुष के कर्त्तव्य। (२) प्रयाणशील राजा की अग्नि और सैन्य की प्रबल बात से तुलना। अश्व अग्नि राजा का समान वर्णन। अध्यात्म में—आत्मा अश्व। (३) अग्नि की लपटों के तुल्य राजा के अन्यवीरों का वर्णन। (४) जठराग्निवत् राजा का राष्ट्र शासन का कर्त्तव्य। (५) अग्निवत् अश्ववत् सेनानायक का वर्णन। विद्वानों को नायक के प्रति कर्त्तव्य। (६) तेजस्वी, विद्वान् और सेनापति का वर्णन।. (७) अग्निवत् नायक की परिचर्या। (८) नायक की रक्षा का कार्य। (९) शस्त्रधारा के तुल्य राजा की शक्ति। (१०) प्रजा के विनय। (पृ० ५७४–५८०)

सू० [४]—अग्निवत् राजा शासक की परिचर्या और उसके कर्त्तव्य। (२) मता से उत्पन्न बालकवत् उसका स्वरूप। (३) सेना नायक के गुण। (४) अग्निवत् उसकी स्थापना। (५) उसके कर्त्तव्य। देवकृत योनिप्राप्ति का रहस्य। (६) ज्ञानी को मोक्ष प्राप्ति। अनालसी होने का उपदेश। (७) पराये धन और पुत्र का निषेध। (८) उस से सुख प्राप्त नहीं होता। (९) राजा से उत्तम आशंसा। (पृ०५८०–५८५)

सू० [१९]— तीक्ष्णशृंग वृषभ के समान इन्द्रपदस्थ उत्तम शासक का वर्णन। उसका दुष्टों के दमन करने का कार्य। (२) मुख्य पद के योग्य गुण। उसके प्रयोजन। शत्रु विनाश का उपदेश। राजा के अन्यान्य कर्त्तव्य। कुत्स, शुष्ण, कुयव, वीतहव्य, सुदास, पौरुकुत्सि, वृत्र, चुमुरि, धुनि, नमुचि, कौन हैं ? (५) इन्द्र का ९९ पुरी भेदन और नमुचिवध का रहस्य। (पृ० ६४१–६४६) इति द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सू० [२०]—उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य। उससे प्रजा की नाना प्रार्थनाएं। उसके महान् कर्त्तव्य। (५) सेना नायक के कर्त्तव्य। (७) बड़ों का छोटों को शिक्षा देने का उपदेश। उसी प्रकार राजा का पद॥ (८) करप्रद प्रजा की रक्षा का कर्त्तव्य। प्रजा के अधिकार। (पृ० ६४७–६५१)

सू० [२१]—भूमि से अन्न उत्पन्न करने का उपदेश करने का राजा का कर्त्तव्य। विद्वानों के कर्त्तव्य। सूर्य विद्युत् के तुल्य राजा का प्रजा को सन्मार्ग में चलाने के कर्त्तव्य। वह शत्रु और दुष्टों के कार्यों को गुप्त रूप से पता लगाकर दण्डित करे। दुष्ट का भी जन यज्ञादि में विघ्न न करें। राजा सबको पराजित करे। (७) सैन्यादि के कर्त्तव्य। (८) उत्तम रक्षक की पुकार। (९) रक्षक उत्तम सखा। प्रजा को अभय प्राप्त हो। (पृ० ६५१–६५६)

सू० [२२]—सूर्य मेघवत् शासकों के कर्त्तव्य। राजा का सोमपान, राष्ट्रपालन। (२) वृत्रहनन शत्रुनाश। (३) अन्नोत्पत्ति, ब्रह्मज्ञान, धन प्राप्ति। (४) मेघ के जलपानवत् ज्ञानार्जन। (५) राजा की वाणियों की अवहेलना न कर उसकी कीर्त्ति कहना। (६) स्तुत्य राजा। (७) राजा का अधिकार। (८) विद्वान् जन वेदार्थ का प्रकाश करें। (पृ० ६५६–६६०)

सू० [२३]—वसिष्ठ विद्वान्, और राजा का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (२) आज्ञापक सेनापति की आज्ञा का वर्णन। पापों के रक्षक राजा। (३) सेनापति के कर्त्तव्य। (४) आप्त विद्वान् प्रजाओं के कर्त्तव्य। (५) रक्षक का वर्णन। (६) उत्तम रक्षक का समादर। (पृ० ६६०–६६३)

सू० [२४]—रक्षक का मानपद। (२) उत्तम गृहपतिवत् राष्ट्रपति का वर्णन। (३) उसके कर्त्तव्य। पुत्रवत् प्रजापालन। (४) प्रजा की विपत्तियों को दूर करना। (५) अभिषेक का प्रयोजन। सूर्यवत् शासक पद। (६) उसका कर्त्तव्य प्रजा को समृद्ध करना। (पृ० ६६३–६६६)

सू० [२५]—देशरक्षार्थ सेनाओं का युद्ध, शस्त्रसञ्चालन और शस्त्र का उद्यम (२) शत्रुओं का रोगवत् नाश करने का उपदेश। (३) हिंसक दुष्ट का नाश और विजेता को प्रशंसा प्राप्त हो। (४) राजा का प्रजा को आश्रय। राजा का समवाय बनाना। सब शस्त्रादि बल शासन की वृद्धि के लिये हों। (पृ० ६६६–६६९)

सू० [२६]—'असुत सोम इन्द्र को हर्ष नहीं देता', उसकी व्याख्या सोम और इन्द्र के परस्पर सम्बन्धों का रहस्य स्पष्टीकरण। सोम, प्रजाजन, ऐश्वर्य, ओषधि रस आदि, इन्द्र राजा, आत्मा, गुरु आदि। अभिषिक्त शास्ता के कर्त्तव्य। (४) इन्द्र का सर्वोपरि पद। उसके न्यायशासन कर्त्तव्य। कृषिवृद्ध्यर्थ मेघवत् प्रजावृद्ध्यर्थ राजा की स्तुति। (पृ० ६६९–६७२)

सू० [२७]—राजा की आवश्यकता। प्रभु का स्मरण और प्रार्थना। (२) वह हमारे लिये धन और ज्ञान के द्वार खोले। (३) राजा के अधिकार। (४) राजा का धन, बल दोनों पर नियन्त्रण ही प्रजा को सुख दे सकता है। (५) प्रजा का सेवक राजा। (पृ० ६७२–६७४)

सू० [२८]—उत्तम विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य। वे प्रजा की बात सुनें। (२) ज्ञान धन का रक्षक राजा। उसका घोर वज्र और वह स्वयं असह्य हो। (३) शासकों का शासन करे, कर न देने वालों को दण्ड दे। बड़े धन बल का स्वामी हो। (४) न्याय का उत्तम दाता हो। (५) वही उत्तम रक्षक 'इन्द्र' पद योग्य है। (पृ० ६७५—६७७)

सू० [२९]—उत्तम ऐश्वर्य का दाता राजा। (२) चतुर्वेदज्ञ शासक पद के योग्य है। वही सुख दे सकता है। (३) विद्या का अलंकार, विद्वान् से विनय। (४) गुरुस्वीकरण। (५) वही गुरु 'इन्द्र' पद योग्य है। (पृ० ६७७—६७९)

सू० [३०]—'इन्द्र' ऐश्वर्य का स्वामी और बलशाली है। (२) सेनापति होने योग्य पुरुष। उसको तदुचित आदेश। (पृ० ६७९—६८१)

सू० [३१]—वीर्यपालक ब्रह्मचारी, ब्रह्मज्ञान पिपासु मुमुक्षु, ऐश्वर्यपालक राजा सब 'सोमपावन्' हैं उनका विवरण, उनका आदर, उनके अधिकार और कर्त्तव्य। (४) वसु, इन्द्र से विनय। (५) वह दुष्ट के निमित्त प्रजा को पीड़ित न करे। (७) प्रजा के कवचवत् राजा। (८) सूर्याधीन आकाश पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों को सम्बद्ध रखने वाला राजा। 'स्वधावरी रोदसी' की व्याख्या। (८) राजा सदा स्तुत्य हो। (६) सबका आदरणीय हो। (१०) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्य। (११) विद्वानों का कर्त्तव्य। वे मर्यादा न तोड़ें। (१२) सेनाओं और वाणियों के कर्त्तव्य। (पृ० ६८१—६८६)

सू० [३२]—राजा के कर्त्तव्य। वह विषयविलास में रत न होकर प्रजा के सुखों में सुखी रहे। (२) विद्वानों का मधु मक्खी के के समान मधुव्रत। (३) रथवत् प्रभु में उनकी मनःकामना। (३) धनार्थी का पुत्रवत् पिता तुल्य प्रभु का स्मरण। (४) राष्ट्र धारणार्थ शासक को राजा नियुक्त करे। (५) वह राजा की प्रजा के कष्टों को सुने।

(६) राजा के गम्भीर शासनों के पालक की वृद्धि । (७) राजा के विविध धन का भोग प्रजा को प्राप्त हो । (८) इन्द्रार्थ सोमसवन अर्थात् राष्ट्रपति पद पर वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक । उसका समारम्भ । (९) वीर्यवान् पुरुषों को उपदेश । वे परस्पर का नाश न करके महान् ऐश्वर्य के लिये यत्नशील हों । (१०) प्रभुरक्षित का अपार बल । (१२) बड़ा अधिकारी वह जो अपने बल को प्रभु के निमित्त व्यय करे । (१३) उत्तम मन्त्र, रक्षा का उपदेश प्रभुभक्त को ही धर्मबन्धन तराते हैं । (१४) प्रभुभक्त का अपार बल । (१५) प्रभु राजा का वैभव । (१६) युद्धों में भी सहायक प्रभु ही है । (१७) धन का स्वामी होकर मनुष्य क्या करे ? विद्वानों का पालन । (१९) पूज्यों को धन दे । सर्वोपरि पालक प्रभु । (२०) राष्ट्रतारक राजा, संसारतारक प्रभु । (२१) दुष्ट को न धन और न शक्ति मिले । वे दोनों भक्त को मिलें ! (२२) ईश्वर के प्रति वात्सल्य प्रेम । (२३) अनुपम, अपूर्व सर्वातिशायी प्रभु । (२५) शत्रुओं को दूर करने की प्रार्थना । (२६) पालक गुरु ज्ञानप्रकाश की याचना (२७) पापमोचन की प्रार्थना । (पृ० ६८६—६९६)

सू० [३३]—मार्गदर्शी विद्वानों से सादर प्रार्थना । (२) उनका सादर वरण, उनसे उत्तम २ प्रार्थनाएं । उनके कर्त्तव्य । (३) उनका संप्रेरक दण्डवत् कर्त्तव्य । (७) प्रकाश मार्ग से जाने वाली प्रजाओं का श्रेय । उत्तम विद्वान् मार्गदर्शी हों । (८) वे ही सद्-गृहस्थ हों । (१०) जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य । विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप । (११) मैत्रावरुण, वसिष्ठ और उर्वशी का रहस्य । उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, मित्र वरुण, प्राण अपान । (१२) माता आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना । (१३) लड़का लड़की दोनों का गुरुगृहवास और व्रत-स्नान । (१४) उत्तम आचार्य वसिष्ठ । उसका शिक्षण । (पृ० ६९७—७०५)

सू० [३४]—(१) विदुषी स्त्री। (२) आप्त स्त्रियों के कर्त्तव्य। (३) आप्त प्रजाजनों का कृषि आदि कार्य। (४) नायक का कर्त्तव्य। सन्मार्ग पर बढ़ने का उपदेश। (६) ध्वजावत् वीर का स्थापन। स्त्रियों को ज्ञानवान् उत्तम पुत्रधारण का उपदेश। (७) पृथिवीवत् स्त्री के कर्त्तव्य। आचार्य का अहिंसाव्रती होकर शिष्यों का आह्वान। (१०) सूर्यवत् शासक का कर्म। (११) जलवत् राजा का कर्त्तव्य। (१२) विद्वान् जनों के रक्षण आदि कर्त्तव्य। (१४) नायक कैसा हो। (१५) मित्र होने योग्य मेघ सूर्यवत् पुरुष। (१६) उनकी स्तुति। बुध्न्य अहि, मेघवत् सर्वाधार पुरुष। (१९) क्षत्रतापन। (२०) तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य। (२१) धनवानों के कर्त्तव्य। (२४) सूर्य भूमिवत् सैन्य, और सेनापति आदि के कर्त्तव्य। (२५) अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० ७०६–७१३)

सू० [३५]—शान्तिसूक्त, समस्त भौतिक तत्वों से शान्ति प्राप्त करने की प्रार्थना। (पृ० ७१३–७२०)

चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ७२०–८९०)

सू० [३६]—गुरुगृह में ज्ञानोपार्जन। (२) मित्रवरुण, प्राण उदान, माता पितावत् सभा-सेनाध्यक्ष और प्रभु और जीव। (३) श्रेष्ठ पुरुष का कर्त्तव्य उत्तम उपदेष्टा और न्यायी शासक का वरण। उसको अधिकार। (६) सप्तमी वाणी का वर्णन। (७) विद्वानों का सत्संग (८) विद्वानों की प्रतिष्ठा। प्रभु की स्तुति। (पृ० ७२०–७२४)

सू० [३७]—तेजस्वी पुरुष क्या करें। (३) विद्वान् न्यायकर्त्ता का कर्त्तव्य। (४) विद्वान् का अतिथ्य। (५) उससे नाना प्रश्न। (७) चतुराश्रमी का दीर्घजीवन। अस्व-वेश राजा और परिव्राजक। (८) ऐश्वर्यादि की याचना। (पृ० ७२४–७२८)

सू० [३८]—उत्तम वसु, सेव्य, और स्तुत्य प्रभु। परमेश्वर से

सू० [४८]—ज्ञानी शिल्पी पुरुषों के कर्त्तव्य। यान, रथ, युद्ध-शस्त्र यन्त्र आदि निर्माण। (पृ० ७५६–७५७)

सू० [४९]—मेघ, वृष्टिविद्या। आपः द्वारा सैनापत्य अभिषेक। (२) नाना जलधारावत् प्रजाओं के नाना विभाग। (२) द्विव्य खनित्रिम और पावक तीन प्रकार की प्रजाएं। (३) सत्यानृत विवेकी वरुण का आश्रय प्रजाएं। अभिषेक कारिणी प्रजाओं के कर्त्तव्य। (पृ० ७५७–७६०)

सू० [५०]—मित्रावरुण, माता पितावत् विद्वान् रक्षक जन। विष-चिकित्सा। नाना विषों को गुप्त प्रकृति और उनका प्रतिकार। (पृ० ७६०–७६३)

सू० [५१]—अदिति ईश्वर के उपासकों के ज्ञान का सत्संग उनके कर्त्तव्य। (पृ० ७६४–७६५)

सू० [५२]—ब्रह्मचर्यनिष्ठ विद्वानों के कर्त्तव्य। उनका ज्ञान प्रसार और रक्षा का कार्य। (पृ० ७६६–७६६)

सू० [५३] भूमि सूर्यवत् विद्वान् माता पिताओं का कर्त्तव्य। (पृ० ७६६–७६८)

सू० [५४]—वास्तोष्पति, राष्ट्रपति, गृहपति, परमेश्वर। उसके कर्त्तव्य। उसका तारकवत् वर्णन, उससे प्रार्थना। (पृ०७६८–७६९)

सू० [५५]—गृहपति, राष्ट्रपति, देहपति, वास्तोष्पति। सारमेय विद्वान् पहरेदार का वर्णन। (३) नगररक्षक सैन्य जन (पोलिस) के कर्त्तव्य। (४) सैन्य का शत्रु के प्रति कर्त्तव्य। (५) उनके शासन में राष्ट्र प्रजा को सुख (६) उत्तम गृहवत् देहनिर्माण। सबके सुख पूर्वक रहने सोने का प्रबन्ध। (पृ० ७६९–७७२)

सू० [५६] रुद्र सेनापति के वीरजन। आचार्य के जितेन्द्रिय शिष्यों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (२) जीवों के जन्म मरणादि का विज्ञान।

(६) योग्य भूमियों स्त्रियों को सदुपदेश। सेनानायक के उत्तम गुण और योग्यता। (९) वीरों विद्वानों के वायुओं के तुल्य कर्त्तव्य। (पृ० ७७३–७८३)

सू० [५७–५८]—विद्वानों और वीरों के मेघ लाने वाले वायुगण के तुल्य कर्त्तव्य, (२) अध्यक्षों के कर्त्तव्य, उनको उत्तम २ उपदेश। (पृ० ७८३–७८६)

सू० [५९]—विद्वानों वीरों के कर्त्तव्य। (६) मधुवत् करसंग्रह, भिक्षासंग्रह का उपदेश। न्यायोपार्जित धन ग्रहण का उपदेश। (७) रसोंवत् वीरों तथा परिव्राजकों का वर्णन। (८) दुष्टों का दमन। (९) सान्तपन अग्नि, विद्वान् ब्राह्मण का वर्णन। (१०) गृहस्थ सज्जनों का वर्णन। (१२) युक्ति की प्रार्थना। त्र्यम्बक् का रहस्य। (पृ० ७८९–७९४)

सू० [६०]—सूर्य, न्याय शास्ता के प्रति प्रार्थना। उसके महत्व-पूर्ण कर्त्तव्य, सर्व श्रेष्ठ वरुण, मित्रादि का वर्णन। उनके अधीन रथ शासकों के लक्षण। स्त्रियों का आदर। उनके अनादरकारी को दण्ड। शासकों की समिति और सत्संग का वर्णन। मित्र वरुण, माता पितावत् सभा सेनाध्यक्षों से प्रार्थना। (पृ० ७९४–८००)

इति पञ्चमेऽष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥

शुद्धाशुद्ध-पत्रम्

पृष्ठं	पंक्तिः	अशुद्धं	शुद्धम्
७	८	प्रप्त	प्राप्त
३१	८	निरन्त	निरन्तर
९७	३	अग्नि यम	अग्नि जल
१०३	१५	वृषभासः	वृषभासः
१६५	१५	अद्यवत्	अन्नवत्
१८०	१८	वृक्ष के प्राप्त	वृक्ष के समान प्राप्त
२०६	१२	नश	नाश
२२४	१३	पुरुष की भी	पुरुष भी
२३२	८	सुदिात	सुदिनि
२३५	१६	चितयन्ता	चितयन्त्या
३०१	२३	निसंगत को	निःसंग होकर
३२२	२१	कवचघारी	कवचधारी
३७२	६	तत्वदर्शी	तत्वदर्शी
४८३	१४	हे (इयम्)	(इयम्)
४८३	१८	करता	करती
५३२	३	चल	बल
५३२	२४	दाताा	दाता
५३६	१०	(इत्	(उत्
५९४	४	चाबक	चाबुक
६३४	२५	'बज्र	'वज्र'
६८४	७	मरुस्वती	मरुत्वती

* ओ३म् *

ऋग्वेद-संहिता

अथ तृतीयेऽष्टके तृतीयोऽध्यायः ।

(पञ्चमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके)

[४७]

प्रतिरथ आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ७ त्रिष्टुप् ॥ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१॥

भा०—माता के कर्त्तव्य ! (मही माता) पूज्य माता (प्र-युञ्जती) उत्तम प्रयोग अर्थात् सन्तानों को उत्तम मार्ग में प्रेरित करती हुई (दिवः) कामना योग्य पति के लिये (दुहितुः) दूर में विवाह करने योग्य कन्या को (ब्रुवाणा) उपदेश करती हुई (दिवः) सूर्य से उत्पन्न उषा के समान और (बोधयन्ती) उसे अज्ञान निद्रा से जगाती, ज्ञानवान् बनाती हुई (एति) प्राप्त होती है । और वह (युवतिः) यौवन दशा को प्राप्त होकर (आ-विवासन्ती) अपने नाना गुणों का प्रकाश करती हुई (मनीषा) स्वयं अपनी बुद्धि से, (पितृभ्यः) अपने चाचा, मामा, श्वशुर आदि पालक

पुरुषों के (सदने) गृह में भी (आ जोहुवाना) आदरपूर्वक बुलाई जाकर (एति) प्राप्त हो। वहां भी वह अपना सदा मान बनाये रक्खे।

अ॒जि॒रास॒स्तद॑प॒ ईय॑माना आत॒स्थि॒वांसो॑ अ॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म्।
अ॒न॒न्तास॑ उ॒रवो॑ वि॒श्वतः॑ सीं॒ परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति॒ पन्थाः॑॥२॥

भा०—(अजिरासः) कभी न नाश होने वाले, वा वेगवान् (तद् अपः ईयमानाः) उस प्रभु परमेश्वर के उपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए और (अमृतस्य) अमृतमय मोक्षस्वरूप प्रभु के (नाभिम्) बांधने वाले प्रेम वा प्रभु पर (आ-तस्थिवांसः) स्थित (अनन्तासः) अनन्त, (उरवः) और बड़े २ (पन्थाः) मार्ग (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध में (विश्वतः परियन्ति) सब तरफ़ जारहे हैं। हे पुत्रि ! वा पुत्र ! तू उनको जान। अथवा—(तदपः ईयमानाः) उस गृहस्थाश्रम कर्म को प्राप्त होने वाले (अमृतस्य नाभिम् आ-तस्थिवासम्) प्रजा सन्तति के बांधने वाले आश्रय पर स्थित हों।

उ॒क्षा स॑मु॒द्रो अ॑रु॒षः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरा वि॑वेश।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑॥३॥

भा०—हे पुत्रि ! मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह (उक्षा) वीर्य सेचन एवं गृहस्थ धारण करने में समर्थ हो। वह (समुद्रः) समुद्र के समान गंभीर, समान भाव से स्त्री के सहयोग में रह कर स्वयं और उस को प्रमोद, रति आदि करने में समर्थ और (अरुषः) स्वयं तेजस्वी और स्त्री पर अनुग्रह बुद्धि वा रोष न करने हारा हो। वह (सुपर्णः) उत्तम पालन करने वाला होकर अपने (पूर्वस्य पितुः) पूर्वक पिता के (योनिम्) गृह को (आविवेश) प्रविष्ट होता है अर्थात् पुरुष अपने पिता के गृह का स्वामी हुआ करता है। (दिवः मध्ये निहितः पृश्निः) जिस प्रकार आकाश के बीच में स्थित सूर्य (अश्मा) व्यापक होकर (वि चक्रमे)

विविध कार्य करता और (रजसः अन्तौ पाति) समस्त संसार के अन्तों, छोरों का भी पालन करता है इसी प्रकार पुरुष भी (दिवः मध्ये) पृथिवी के बीच (दिवः मध्ये) व्यवहार में और (दिवः मध्ये) कामना योग्य अपनी स्त्री के हृदय में (निहितः) स्थिर होकर (पृश्निः) मेघवत् रस वर्षण, वीर्य निषेक करने में समर्थ और (अश्मा) शिला के समान दृढ़ एवं भोक्ता होकर, वा मेघवत् दानशील होकर (वि चक्रमे) विविध प्रकार से आगे क़दम बढ़ावे और (रजसः अन्तौ) रजोभाव की दोनों सीमाओं की (पाति) रक्षा करे। अर्थात् यौवन के आदि और अन्त वा गर्भ काल के आदि अन्त दोनों सीमाओं के बीच काल में अपने और अपने पत्नी के जीवन, बल-वीर्य की रक्षा करे। अथवा (रजसः अन्तौ) लोकों के दोनों अन्त अर्थात् दोनों मूल कारण रज और वीर्य वा परिमाम रूप पुत्र और पुत्री दोनों की समान भाव से रक्षा करे।

च॒त्वार॑ ईं बिभ्रति क्षेम॒यन्तो॒ दश॒ गर्भं॑ च॒रसे॑ धापयन्ते।
त्रि॒धात॑वः पर॒मा अ॒स्य॒ गावो॑ दि॒वश्च॑रन्ति॒ परि॑ स॒द्यो अन्ता॑न्॥४॥

भा०—जीवकी उत्पत्ति का रहस्य। जिस प्रकार (चत्वारः) पृथिवी, जल, वायु और अग्नि चारों तत्व (क्षेमयन्तः) सबका कुशल क्षेम करते हुए (ईं गर्भं) इस अन्तरिक्षगत मेघ को (बिभ्रति) पुष्ट करते और (दश) दशों दिशाएं (चरसे) उसको विचरण के लिये (धापयन्ते धारण करती हैं और (अस्य) इस सूर्य के (परमा) उत्कृष्ट (त्रि-धातवः) तीनों लोकों का धारण पोषण करने वाले (गावः) किरण (सद्यः) शीघ्र ही (दिवः अन्तान् परि चरन्ति) पृथ्वी वा आकाश के दूर २ की सीमाओं तक फैलते हैं उसी प्रकार (ईम् गर्भम्) इस गर्भ गत जीवको (क्षेमयन्तः) उसकी क्षेम, रक्षा, कुशल चाहते हुए, चारों वर्ण वा चारों आश्रम (बिभ्रति) पुष्ट करते हैं। और (चरसे) कर्म फल भोग के लिये (दश धापयन्ते) दशों प्राण उसको पुष्ट करते हैं (अस्य)

इस जीवात्मा की (परया) सर्वोत्कृष्ट (गावः) किरणवत् इन्द्रियें (त्रि-धातवः) उस आत्मा को गर्भ, जीवन और मरणोत्तर, तीनों कालों में धारण करती हैं। वे (सद्यः) सब दिनों (दिवः अन्तान्) प्रकाशमय मोक्ष या कामना योग्य भोगक्षेत्र की समस्त सीमाओं तक (परिचरन्ति) उस आत्मा की सेवा करती हैं, उसके साथ रहती और सुख दुःख का ज्ञान कराती हैं।

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३सबन्धू ॥ ५ ॥

भा०—शरीर की उत्पत्ति का रहस्य। हे (जनासः) मनुष्यो ! (इदं) यह (वपुः) बीजद्वारा वपन करने योग्य शरीर (निवचनम्) निश्चय से प्रवचन और श्रवण करने योग्य है। (यत्) जिसमें (आपः) जलमय रुधिर की नाड़ियां (नद्यः) इस पृथ्वी पर चलती नदियों के तुल्य (चरन्ति) गति कर रही हैं। (यत्) जो (द्वे) दो (ईम्) इस शरीर को (मातुः) माता के गर्भाशय में (बिभृतः) धारण करते हैं वे दोनों (अन्ये) भिन्न भिन्न प्रकृतियां हैं और वे दोनों (इह इह जाते) इस ओर, इस पुरुष वा स्त्री-शरीरों में उत्पन्न होते और वे दोनों (यम्या) एक दूसरे को बांधने वाले वा (यम्या) रात्रि दिनवत् और (स-बन्धू) एक दूसरे के साथ बंधने वाले होते हैं। मातृ-गर्भ में वीर्य कीट और डिम्बकोश दोनों मिलकर शरीर बनाते हैं।

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (मातरः) माताएं (पुत्राय) अपने पुत्र को पहनाने के लिये (वस्त्रा वयन्ति) वस्त्रों को एक २ तन्तु करके बुनती हैं। उसी प्रकार वे (अस्मै) इस पुत्र या सन्तान के लिये (धियः)

संकल्प विकल्प तथा (अपांसि) नाना प्रकार के उत्तम कर्म (वि तन्वते) किया करें। माताओं के उत्तम कर्म और संकल्प ही सन्तान की रक्षा, पालन पोषण करते और उनको जीवन काल में सद्गुणों से सुशोभित करते हैं। (वध्वः) उत्तम वधुएं (अस्मै) इस पुत्र के लाभ के लिये ही (वृषणः उप प्रक्षे) बलवान्, वीर्य सेचन में समर्थ पुरुषों के समीप आलिंगन करने के लिये (दिवः पथा) पुत्र कामना के आनन्दप्रद और हर्षोद्रेक के मार्ग से (मोदमानाः) अति प्रसन्नता अनुभव करती हुई (अच्छ यन्ति) उन्हें प्राप्त होती हैं। अथवा (दिवः वृषणः उपप्रक्षे पथा यन्ति) वीर्यवान् पुरुष के आलिंगन करने के लिये विवाहित स्त्रियें तेजस्वी पति के ही पीछे उसके मार्ग से जाती हैं। पुत्राभिलाषा सर्वत्र विद्यमान है, तब हे माताओ! उसको उत्तम बनाने के लिये तुम सदा उत्तम कर्म और उत्तम संकल्प किया करो।

तद॑स्तु मित्रावरुणा तद॑ग्ने शं योर॒स्मभ्य॑मि॒दम॑स्तु श॒स्तम्।
अ॒शी॒महि॑ गा॒धमु॒त प्र॑ति॒ष्ठां नमो॑ दि॒वे बृ॑ह॒ते साद॑नाय ॥७॥ १ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) एक दूसरे को स्नेह करने वालो! हे एक दूसरे को वरण करनेवाले परस्पर के मित्र वर वधू! माता पिता जनो! हे (अग्ने) विद्वन्! (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (इदम्) यह ऐसा उपदेश (शस्तम्) आप बराबर किया करो और (तत्) वह (शं योः अस्तु) शान्तिकारक और दुःखनाशक हो। (उत) और हम लोग (गाधम् अशीमहि) मनचाहा ऐश्वर्य पदार्थ भोग करें (उत) और (प्रतिष्ठाम् अशीमति) प्रतिष्ठा, वंश की स्थिरता और कीर्त्ति प्राप्त करें। (दिवे) ज्ञान और तेज प्राप्त करने के लिये (बृहते) बड़े भारी (सादने) उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये हम (नमः अशीमहि) विनय, बल, तेज प्राप्त करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

[४८]

प्रतिभानुरात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप् ।
२, ४, ५ निचृज्जगती ॥ पचर्चं सूक्तम् ॥

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी १

भा०—(वयं) हम लोग (कत् उ) कब (प्रियाय) प्रिय, (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये, (महे) बड़े (स्व-क्षत्राय) अपने बल और (स्व-यशसे) अपने यश से युक्त राज्य वा राजा की वृद्धि के लिये (मनामहे) स्वीकार करें, (यत् अभ्रे आ वृणाना मायिनी अपः आ वितनोति) जिस प्रकार विद्युत् शक्तिशालिनी होकर मेघ में व्यापक होकर जलों को उत्पन्न करती है, उसी प्रकार (मायिनी) बुद्धि से युक्त वा शत्रुनाशक शक्ति से युक्त राजसभा वा सम्पन्न सेना, (आ-मेन्यस्य) चारों ओर से माप लेने योग्य (रजसः) लोक समूह, या राष्ट्र के बीच में (अभ्रे) मेघ तुल्य उदार नायक के अधीन (आ वृणाना) सर्वत्र शासकों का वरण करती हुई (अपः) राज्य कार्य को (वि तनोति) विविध रूप से करे । अर्थात् बड़े राजा सम्राट् का अभ्युदय तभी चाहे जब कोई राजसभा समस्त राष्ट्र में अधीन शासकों का चुनाव करके राज्य कार्य करने को उद्यत हो ।

ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २ ॥

भा०—(देवयुः जनः) विद्वान्, व्यवहारज्ञ, और तेजस्वी विजयशील पुरुषों को कामना करने वाला, वा ऐसे पुरुषों का स्वामी जिन (पूर्वाभिः) समृद्ध एवं पूर्व विद्यमान प्रजाओं से (प्रतिरते) स्वयं बढ़ता है और (अपाचीः) दूर विद्यमान (अपराः) अन्य शत्रु-सेनाओं को

(अपो, अप एजते) दूर से दूर ही भगा देता है और जिनसे वह (वीर-वक्षणम्) वीर पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य या वीरों के धारण करने के (वयुनं) कर्म वा विज्ञान को (समान्या वृतया) समान रूप से मान करने योग्य, एवं वरण की गयी सहचरी जीवनसंगिनी स्त्री के तुल्य प्रजा के द्वारा चुनी गयी, समान रूप से सब के आदर से युक्त राजसभा द्वारा (विश्वं रजः) समस्त लोक समूह को (आतिरते) अपने अधीन कर उसकी वृद्धि करता है (ताः) उन शक्तिशालिनी प्रजाओं सेनाओं या समृद्धियों को (अत्नत) प्रप्त करो।

आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य की किरणें सैकड़ों, सहस्रों (अहा संवर्तयन्तः प्रचरन् वि वर्तयन्) होकर भी दिन को प्रकट करते और विविध रूपों को दर्शाते हैं उसी प्रकार (यस्य) जिस राष्ट्रपति के (स्वे दमे) अपने गृह तुल्य शत्रुदमनकारी शासन में (शतं वा प्र-चरन्) सैकड़ों पुरुष अच्छी प्रकार गमनागमन करते हैं, और (अहा) उत्तम, स्थिर कार्यों को (संवर्तयन्तः) अच्छी प्रकार करते हुए (वि वर्तयन् च) विविध प्रकार से आजीविकादि व्यवहार करते हैं वह राजा नायक (मायिनि) कुटिल मायावी पुरुष के निमित्त (अहन्येभिः अक्तुभिः) दिन और रात, दोनों कालों में पृथक् २ रूप से नियुक्त (ग्रावभिः) दृढ़ शक्तियों से अपने (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, शत्रु के वारण करने में समर्थ (वज्रम्) शस्त्र-बल को (आ जिघर्ति) प्रदीप्त रक्खे।

तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४॥

भा०—(अस्य वर्पसः) इस, नाना रूप के प्राणियों से युक्त, सुन्दर

राष्ट्र के (भुजे) भोग करने और पालन करने के लिये मैं (अस्य) इस राजा के (अनीकं) सैन्य बल को, (परशोः रीतिम् इव प्रति अख्यम्) परशु अर्थात् कुल्हाड़े के धार के समान ही देखता हूं । (यदि) क्योंकि वह (विशे) प्रजा के पालन करने के लिये उस सैन्य को (सचा) सदा अपने साथ (पितुमन्तं रत्नं क्षयम् इव) अन्न से समृद्ध सुन्दर गृह अन्नादि समृद्धि सम्पन्न रत्न सम्पदा के समान (दधाति) धारण करता है, और (भर-हूतये) संग्राम में शत्रु को ललकारने के लिये उस सैन्य को (पितुमन्तं) पालक जनों से युक्त (क्षयं) शत्रु का नाश करने वाले सैन्य को (रत्नं इव) रत्नादि आभूषण वत् (सचा) सदा अपने साथ समवाय बनाकर (दधाति) रखता और उसको पालता है । कुल्हाड़ी को भी मनुष्य अपने शत्रु के नाश, अपनी रक्षा और अन्न फलादि को प्राप्त करने का साधन बनाता है उसी प्रकार राजा की सेना है ।

स जि॒ह्वया॒ चतु॑रनीक ऋञ्जते॒ चारु॒ वसा॑नो॒ वरु॑णो॒ यत॑न्न॒रिम् ।
न तस्य॑ विद्म पुरुष॒त्वता॑ व॒यं यतो॒ भगः॑ सवि॒ता दाति॒ वार्य॑म् ५॥२॥

भा०—(सः वरुणः) वह प्रजा के दुःखों, को वारण करने में समर्थ और प्रजा द्वारा सर्वश्रेष्ठ वरण किया हुआ राजा (चारु वसानः) सुन्दर वस्त्र धारण करता हुआ, (अरिं यतन्) शत्रु को वश करता हुआ (जिह्वया) अपनी वाणी या आज्ञा के बल से ही (चतुरनीकः सन्) चतुर्मुख, एवं चारों प्रकार के सैन्यों से युक्त होकर (ऋञ्जते) कार्य साधन कर, राज्य संचालन करे । हम (तस्य) उसके (पुरुषत्वता न विद्म) पुरुषार्थ को नहीं जान सकते, (यतः) जिससे वह (भगः) सबसे अधिक सेवनीय, ऐश्वर्यवान् और (सविता) सबका प्रेरक और उत्पादक पिता के तुल्य होकर (वार्यम् दाति) समस्त ऐश्वर्य का दान करता और निवारण करने योग्य शत्रु का नाश भी करता है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[४९]

प्रतिप्रभ आत्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥

दे॒वं वो॑ अ॒द्य स॑वि॒तार॒मेषे॒ भगं॑ च॒ रत्नं॑ वि॒भज॑न्तमा॒योः ।
आ वां॑ नरा पुरुभुजा ववृत्यां दि॒वेदि॑वे चिदश्विना सखी॒यन् ॥१॥

भा०—(अद्य) आज हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के बीच (देवं) दानशील, तेजस्वी, (सवितारं) सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक, पितावत् पूज्य (भगं) ऐश्वर्य युक्त और (आयोः) मनुष्यमात्र को (रत्नं विभजन्तं) उत्तम बल, ऐश्वर्य न्यायानुसार बांटते हुए को (आ ईषे) आदर पूर्वक प्राप्त होऊं और मैं (सखीयन्) मित्र के समान आचरण करता हुआ (दिवे दिवे) दिनों दिन (अश्विना चित्) दिन वा रात्रि या सूर्य चन्द्र के तुल्य (पुरु-भुजा) बहुतों के पालन करने वाले (नरा) उत्तम नेता स्वरूप (वाम्) आप दोनों राजा रानी, पति पत्नी वा राजा सचिव दोनों को (आ ववृत्याम्) उत्तम व्यवहार में नियुक्त करूं ।

प्रति॑ प्रया॒णमसु॑रस्य वि॒द्वान्त्सू॒क्तैर्दे॒वं स॑वि॒तारं॑ दुवस्य ।
उप॑ ब्रुवीत॒ नम॑सा विजा॒नञ्ज्येष्ठं॑ च॒ रत्नं॑ वि॒भज॑न्तमा॒योः ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (असुरस्य) सबको जीवन देने वाले मेघ के (प्रयाणं प्रति) आगमन को प्रत्यक्ष रूप से (विद्वान्) जानता हुआ (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (सवितारं) जिस प्रकार उसके उत्पादक (देवं) तेजस्वी सूर्य की महिमा का वर्णन करता है उसी प्रकार (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले सैन्य बल के (प्रयाणं प्रति विद्वान्) प्रयाण को प्रत्यक्ष रूप से जान कर तू उसके (सवितारं) प्रेरक (देवं) विजिगीषु राजा वा सेनापति का (सूक्तैः) उत्तम आदर युक्त वचनों से (दुवस्व) सत्कार कर । (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम् नमसा विजा-

नन् उपब्रुवीत) जिस प्रकार मनुष्य मात्र को सर्वोत्तम सुख या तेज प्रदान करने वाले सूर्य से अन्न आदि पाकर मनुष्य सूर्य के गुण वर्णन करता है उसी प्रकार (आयोः ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तम्) मनुष्य के न्यायानुकूल उत्त-मोत्तम रत्न, धनादि का विभाग करते हुए राजा को भी मनुष्य (विजानन्) विशेष जान कर उसके प्रति (नमसा उप ब्रुवीत) आदरपूर्वक आवेद-नादि करे ।

अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः॥३॥

भा०—(पूषा) सबका पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान् ! (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्ता पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होकर, (अदत्रया वा-र्य्याणि) खाने योग्य अन्नों को और धनों को (दयते) दान करे, और रक्षा भी करे । वह (उस्रः) किरणों के तुल्य सहायकों को (वस्ते) अपने अधीन सुरक्षित रक्खे । (इन्द्रः) ऐश्वर्य पुरुष, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्य वाला, (वरुणः) उदानवत् उत्तम वरण योग्य और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, (दस्माः) ये सब दुःखों का नाश करने हारे होकर (भद्रा अहानि) सुखकारी दिनों को (जनयन्त) उत्पन्न करें ।

तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनुग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः॥४॥

भा०—(सविता) सूर्य (अनर्वा) अहिंसक रूप होकर (नः व-रूथं) हमारे गृह को प्राप्त हो, इसी प्रकार अहिंसक, तेजस्वी पुरुष हमारे राष्ट्र को प्राप्त हो, (सिन्धवः) नदियें, बहती जल-धाराएं (इषयन्तः) वेग से बहती हुई (तत् अनुग्मन्) उसके पीछे आवें । उसी प्रकार तेजस्वी सेनापति के पीछे २ वाणादि साधते हुए (सिन्धवः) सैन्य प्रवाह चलें । (यत्) जैसा कि (अध्वरस्य) अहिंसनीय, राष्ट्र या राज्य-कार्य का (होता)

धारक राजा (उपवोचे) आज्ञा करे उसी प्रकार हम प्रजा गण (वाज-रत्नाः) अन्न और उत्तम रत्नों के स्वामी, और (रायः पतयः) धन के मालिक (स्याम) हों।

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (सूक्तवाचः) उत्तम वाणी बोलने वाले, लोग (मित्रे वरुणे) स्नेही, श्रेष्ठ पुरुष के अधीन (वसुभ्यः) बसने वाले पुरुषों को (ईवत् नमः अदुः) ज्ञान और रक्षा सहित अन्न, वीर्य, और विनय की शिक्षा प्रदान करते हैं वे आप विद्वान् पुरुष ही (दिवः पृथिव्योः) सूर्य और पृथिवी के (वरीयः) उत्तम २ (अभ्वं) बड़े भारी धन, और तेज को (कृणुत) उत्पन्न करें और वह (अवैतु) हमें प्राप्त हो। और (अवसा) रक्षा, और ज्ञान से हम (मदेम) सदा अनन्दित हों। इति तृतीयो वर्गः ॥

[५०]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक्। २ निचृदुष्णिक्। ३ भुरिगुष्णिक्। ४, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! वीर पुरुषो! (विश्वः मर्त्तः) सब मनुष्य (नेतुः देवस्य) नायक, तेजस्वी विद्वान्, और विजिगीषु, दानशील, व्यवहारज्ञ राजा की (सख्यम्) मित्रता (वुरीत) चाहो। (विश्वः) सभी (राये) धन की (इषुध्यति) इच्छा करें, या धन की प्राप्ति के लिये बाण आदि धारण करें, (पुष्यसे) पुष्ट होने के लिये सभी लोग (द्युम्नं) धन को (वृणीत) प्राप्त करो। अथवा हे प्रजा जनो! आप लोग (द्युम्नं वृणीत) ऐश्वर्य

प्राप्त करो और उसका विभाग करो । हे राजन् (तेन त्वं पुष्यसे) उस धन से तू भी पुष्ट हो ।

ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) विजिगीषो! विद्वन् ! राजन् ! हे (नेतः) नायक ! (ते ते) वे तेरे ही अधीन हों (ये च) जो भी (इमान्) इन समस्त तेजों को (अनुशसे) तेरे अनुगामी होकर शासन करने के लिये नियुक्त हों । (हि) क्योंकि और (ते) वे लोग (राया) धन द्वारा तेरे साथ सम्बद्ध हों अर्थात् वेतनादि से बधें । और (ते हि) वे (आपृचे) परस्पर के सम्बन्धों से बंधे रहने के लिये भी समवाय बनावें । उसी प्रकार हम प्रजा वर्ग भी (सचथ्यैः) उन समवायों के उत्तम नेताओं से मिल कर (सचेमहि) दृढ़ समवाय बना कर रहें ।

अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अतः) इस कारण से वा इस राष्ट्र में हे राजन् ! (नः) हमारे (नॄन्) नेता पुरुषों को, हमारे (अतिथीन्) मान्य परिव्राजक, अतिथियों को, और (नः पत्नीः) हमारी स्त्रियों और सेनाओं को, (दशस्यत) उत्तम रीति से आदर सत्कार करो, और (आरे) अपने समीप स्थित (पथेष्ठां) सन्मार्ग में स्थित (विश्वं) सबका आदर सत्कार करो । और (यूयुविः) सब शत्रुओं को दूर करने हारा और सत्यासत्य का विवेकी पुरुष (द्विषः) शत्रुओं को (युयोतु) दूर करे ।

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र में, (द्रोण्यः पशुः) शीघ्रगामी जन्तुओं में

सर्वश्रेष्ठ पशु के समान वेग से आगे बढ़ने वाला, एवं (द्रोण्यः) राष्ट्र में उत्तम (पशुः) स्वयं व्यवहारों का द्रष्टा और अन्यों को उत्तम मार्ग दिखाने वाला (वह्निः) कार्य भार को उठाने में समर्थ नेता (अभि-हितः) अभिषिक्त होकर (दुद्रवत्) मार्ग पर चलता और राष्ट्र का संचालन करता है वहां वह स्वयं (नृमणाः) सब मनुष्यों के मन के अनुकूल और (वीर-पस्त्यः) वीर पुरुषों को अपने गृह वा प्रजाओं के तुल्य वा पुत्रों के तुल्य प्रजाओं का पालक हो, वह (धीरा इव) बुद्धिमती माता के समान (अर्णा सनिता) धनों और अन्नों का देने और वेतनादि रूप में न्यायपूर्वक विभाग करने वाला हो ।

एष तें देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तयं इषःस्तुतों मनामहे देवस्तुतों मनामहे ।५।४॥

भा०—हे (देव) दानशील पुरुष ! तेजस्विन् ! राजन् ! (ते) तेरा (एषः) यह (रथस्पतिः) रथों का स्वामी, सेना का स्वामी, महारथी नेता (शं) शान्ति कराने वाला और तेरा (रयिः) ऐश्वर्य का स्वामी भी (शं) शान्ति सुख देने वाला हो और शान्तिपूर्वक (राये) और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हो, (स्वस्तये) वह सब राष्ट्र के सुख समृद्धि और कल्याण के लिये हों । हम लोग (इषः-स्तुतः) सेनाओं, आज्ञाओं और उत्तम इच्छाओं द्वारा प्रशंसित और (देव-स्तुतः) विद्वानों में स्तुति योग्य तेरे से (मनामहे) यही प्रार्थना करते हैं ऐसा हीचाहते हैं । अथवा हे राजन् (हे इषस्तुतः देवस्तुतः मनामहे) तेरे सेनाओं के शिक्षकों और सैनिकों के शिक्षकों का भी हम आदर करते हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[५१]

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ गायत्री । २, ३, ४ निचृद्गायत्री । ५, ८, ९, १० निचृदुष्णिक् । ६ उष्णिक् । ७ विराडुष्णिक् । ११ निचृत्त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् । १३ पंक्तिः । १४, १५ अनुष्टुप् ।

अग्ने॑ सुतस्य॑ पीतये॒ विश्वै॒रूमे॑भि॒रा ग॑हि ।
दे॒वेभि॑र्ह॒व्यदा॑तये ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक अग्निवत् तेजस्विन् ! राजन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (ऊमैः) रक्षा-साधनों और रक्षकों सहित (सुतस्य पीतये) उत्तम ओषधि के रसके समान राष्ट्र से प्राप्त ऐश्वर्य, एवं शासित राज्यपद के उपयोग के लिये और उत्पन्न किये निज पुत्रवत् प्रजावर्ग के पालन करने के लिये और (हव्य-दातये) देने योग्य अन्न, धन, अधिकार आदि देने के लिये (देवेभिः) उत्तम विद्वानों, व्यवहार-कुशल पुरुषों सहित (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

ऋत॑धीतय॒ आ ग॑त॒ सत्य॑धर्माणो अध्व॒रम् ।
अ॒ग्नेः पि॑बत जि॒ह्वया॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (सत्यधर्माणः) सत्य न्याय को अपना धर्म जानकर उसको धारण करने और पालन करने वाले धर्मात्मा जनो ! आप लोग (ऋत-धीतये) ऐश्वर्य के धारण, सत्य ज्ञान और न्याय के पालन के लिये (अध्वरम्) हिंसा और विनाश से रहित, प्रजा पालन के कार्य में (आ गत) आओ और योग दो । और (अग्नेः जिह्वया) अग्रणी, तेजस्वी नायक की वाणी से (पिबत) राष्ट्र का उपयोग वा पालन करो ।

विप्रे॑भिर्विप्र सन्त्य प्रात॒र्याव॑भि॒रा ग॑हि ।
दे॒वेभि॒: सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (विप्र) विविध विद्याओं और ऐश्वर्यों से स्वयं पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने हारे ! हे (सन्त्य) विवेक, प्रीतिपूर्वक विभाग, दान और वर्तमान व्यवहार में कुशल ! तू (सोम-पीतये) ऐश्वर्य को पालन और उपभोग के लिये (प्रातः-यावभिः विप्रेभिः) प्रातः सबसे

पूर्व उद्देश्य पर पहुंचने वाले, धनादि पूरक, उत्तम मतिमान् पुरुषों सहित (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

अयं सोमश्चमूसुतोऽमत्रे परि षिच्यते।
प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त वृद्धि और (वायवे) वायु के तुल्य शत्रु को उखाड़ने में समर्थ पद के लिये (प्रियः) प्रिय, उत्सुक, (अयं सोमः) यह अभिषेक योग्य पुरुष (चमू-सुतः) सेनाओं पर अभिषिक्त और सेनाओं का पुत्रवत् पालक है। उसका (अमत्रे) दुःख-दायी कष्ट से त्राण करने वाले रक्षक पद पर (परि सिच्यते) अभिषेक किया जाना उचित है।

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवान्! ज्ञान और बलकी कामना करने हारे विद्वन्! बलवन्! तू (वीतये) प्रजा की रक्षा, अपनी कान्ति और तृप्ति के लिये और (हव्य-दातये) दान योग्य उत्तम पदार्थ देने के लिये भी (आ याहि) आ, (प्रयः अभि पिब) उत्तम जल, और अन्न, दुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थ पान कर और (सुतस्य अन्धसः) उत्तम रीति से बनाये अन्न का उपभोग कर। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः।
ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वायो) बलवन्! विद्वन्! आप और (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् पुरुष! आप दोनों (सुतानां) उत्तम रीति से बने पदार्थों और अधीन अभिषिक्त पदाधिकारियों वा सामन्तों का (पीतिम्) पान, उपभोग और पालन (अर्हथः) करने योग्य हैं। आप दोनों (अरेपसौ) निष्पाप होकर

(प्रयः अभि) उत्तम अन्न प्राप्त कर (तान् जुषेथां) उन उत्तम ऐश्वर्य युक्त पदार्थों का भी सेवन करो ।

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥

भा०—(सुताः) उत्पन्न हुए पुत्रवत् पालित और अभिषेक द्वारा सत्कृत, (दध्याशिरः) पद को धारण करने के विशेष सामर्थ्य, बल पराक्रम से युक्त, (सोमासः) सौम्य शासक जन (इन्द्राय वायवे) ऐश्वर्य वान्, बलवान् नायक के (प्रयः अभि) अति प्रिय कार्य को लक्ष्य करके (निम्नं सिन्धवः न) बहते जल जैसे नीचे को जाते हैं वैसे ही वेग से (यन्ति) जावें, (२) सोम और शिष्य पुत्र गण, इन्द्र, पिता और वायु गुरु दोनों के प्रिय कार्य के निमित्त दौड़ कर जावें और करें (३) दधि आदि खाद्य पदार्थों से युक्त सुसंस्कृत अन्न आदि पदार्थ ऐश्वर्यवान् और विद्वान् पुरुषों के प्रिय तृप्ति वेग से करें ।

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ८ ॥
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ ९ ॥
सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युत्वत् व्यापक और तीव्र सामर्थ्य वाले शब्द और प्रकाश के समान ज्ञान-तेज का प्रकाश करने वाले विद्वन् ! राजन् ! तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों से (सजूः) समानभाव से प्रीति युक्त होकर और (अश्विभ्याम्) अश्वों वा अपने इन्द्रिय गणों

के स्वामी, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों से (सजूः) समान प्रीतियुक्त होकर, (आ याहि) आ, और (अत्रिवत्) त्रिविध दोषों और त्रिविध पापों वा तापों से रहित पुरुष के समान होकर (सुते) पुत्रतुल्य प्रजागण वा शिष्यगण के निमित्त (रण) ज्ञान का उपदेश कर। [२] (मित्रा-वरुणाभ्यां सजूः) स्नेहवान मित्र और उत्तम पुरुषों के साथ (सोमेन) ऐश्वर्य युक्त (विष्णुना) व्यापक सामर्थ्यवान् नायक से मिलकर हे विद्वन् तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रिवत् सुते रण) यहां ही विद्यमान प्र-त्यक्ष गुरु के तुल्य हमें उपदेश कर। [३] (आदित्यैः वसुभिः सजूः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों और २५ वर्ष तक गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले विद्वानों के साथ और (इन्द्रेण वायुना) ऐश्वर्यवान्, पुरुषों के साथ प्रीति युक्त होकर (आयाहि) हमें प्राप्त हो (अत्रि वत्-सुते रण) उत्तम ऐश्वर्य भोक्ता के तुल्य प्रभुवत् हम को ऐश्वर्य के निमित्त उपदेश कर।

स्वस्ति नो मिमीताम॒श्विना॒ भगः॑ स्व॒स्ति दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वणः॑।
स्व॒स्ति पू॒षा असु॑रो दधातु नः स्व॒स्ति द्यावा॑पृथि॒वी सु॑चे॒तुना॑ ११

भा०—(अश्विना) अध्यापक, उपदेशक, स्त्री और पुरुष, दिन और रात, सूर्य और चन्द्र और प्राण और अपान वे दो दो, (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमें सुख दें, हमारा कल्याण करें। (भगः स्वस्ति) ऐश्वर्य, और उसका स्वामी, और सेवन करने योग्य वायु हमें सुख दे। (देवी अदितिः) सूर्य, सूर्य-वत् तेजस्वी पुरुष और अखण्ड शासक राजा (अनर्वणः) अप्रतिम होकर (स्वस्ति) हमारा कल्याण करें। (पूषा असुरः) पुष्टिकारक प्राण, जीवन देने वाला अन्न और मेघ (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे। (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और पृथिवी, पिता और माता दोनों (सचेतुना) उत्तम प्रकाश चेतना और ज्ञान से हमारा (स्वस्ति) कल्याण करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः १२

भा०—हम लोग (स्वस्तये) सुख प्राप्त करने और सौभाग्य, कल्याण की वृद्धि के लिये (वायुम्) वायु के समान बलवान् वीर पुरुष ज्ञान के अभिलाषुक, (सोमं) अभिषेक योग्य राजा, शिष्य और ज्ञानवान् पुरुष के (उप ब्रवामहै) समीप जाकर अपना प्रार्थनावचन, प्रवचन और स्तुति-वचन कहें। (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त विश्व का पालक है वह भी हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे। हम सर्वप्रेरक और सर्वोत्पादक सर्वैश्वर्यवान् उसकी स्तुति करते हैं। (सर्वगणं) सब गणों के स्वामी बृहस्पति (स्वस्तये) बड़े भारी राष्ट्र और वेदवाणी के पालक विद्वान् की हम कल्याण के लिये स्तुति करें। (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी तथा १२ मास भी (नः) हमारे (स्वस्तये भवन्तु) कल्याण के लिये हों।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३ ॥

भा०—(विश्वेदेवाः) समस्त तेजस्वी पदार्थ, सूर्य के किरण, विद्वान् गण और हमारे इन्द्रिय गण (अद्य) वर्त्तमान में (नः स्वस्तये भवन्तु) हमारे कल्याण के लिये हमें प्राप्त हों। (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हित-कारी, सब का नेता, (वसुः) सब में बसने वाला वा सबको बसाने वाला (अग्निः) अग्नि, ज्ञानी, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष और परमात्मा (नः स्वस्तये) हमारे सुख-कल्याण के लिये हो। (ऋभवः) सत्य तेज से प्रकाशमान, एवं शिल्पी जन (देवाः) व्यवहारकुशल, नाना कामनाओं से युक्त पुरुष (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये हों। (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, ज्ञान का उपदेश करने वाला (स्वस्ति) सुखपूर्वक (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥

भा०—हे (पथ्ये रेवति) जीवन-मार्ग में सुखकारिणी ! हे धनैश्वर्य-वत्ति ! तू (मित्रावरुणौ) प्राण अपान के तुल्य (स्वस्ति) सुख कल्याण (कृधि) कर । (इन्द्रः च अग्निः च) विद्युत् और अग्निवत् ऐश्वर्यवान् ज्ञान-वान् पुरुष दोनों (स्वस्ति) कल्याण करें । हे (अदिते) अखण्डित चरित्र आदि से युक्त तू (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कर ।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (पन्थाम्) उत्तम मार्ग पर (स्वस्ति) सुखपूर्वक (अनु-चरेम) एक दूसरे के पीछे चलें । और (सूर्या-चन्द्रमसौ-इव) हम स्त्री पुरुष सूर्य और चन्द्र के समान अन्यों को सुख देने के लिये उत्तम आचरण का अनुष्ठान करें । (पुनः) वार २ हम लोग (ददता) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले और (अघ्नता) व्यर्थ ताड़न, हिंसा और कठोर दण्ड न देने वाले (जानता) ज्ञानवान् पुरुष से (संगमेमहि) मिला करें, उसका सत्संग किया करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[५२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५, १५ विराड-नुष्टुप् । २, ७, १० निचृदनुष्टुप् । ६ पंक्तिः । ३, ९, ११ विराडुष्णिक् । ८, १२, १३ अनुष्टुप् । १४ बृहती । १६ निचृद्बृहती । १७ बृहती ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥

भा०—हे (श्यावाश्व) श्यामकर्ण, शिखा से सज्जित अश्वों के स्वा-मिन् ! (यं) जो (अद्रोघम्) द्रोह से रहित, (अनु-स्वधम्) अपनी २

धारण शक्ति या अन्न, वेतनादि के अनुसार रहकर (यज्ञियाः) यज्ञ, परस्पर मिलकर रहने और कर वेतनादि के दान के योग्य होकर (अवः) अन्न, ज्ञान और ख्याति लाभ कर। (मदन्ति) प्रसन्न होते और सन्तोष लाभ करते हैं। उन (ऋक्वभिः मरुद्भिः) सत्कार करने वाले और सत्कार करने योग्य वायुवत् बलवान् और व्यवहारकुशल पुरुषों से (धृष्णुया) दृढ़ता पूर्वक (प्र अर्च) खूब तेजस्वी बन।

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥

भा०—(ते हि) और वे (धृष्णुया) दृढ़, शत्रुओं का धर्षण करने वाले वीर पुरुष (स्थिरस्य) स्थायी (शवसः) बल के (सखायः) मित्र होकर (सन्ति) रहते हैं। (ते) वे (यामन्) प्रयाण काल में ही (धृषद्विनः) शत्रु का धर्षण करने वाले, बल उत्साह से युक्त होकर (शश्वतः) बहुत से प्रजा गण को (तना) अपने विस्तृत बल और धन से (आ पान्ति) सब प्रकार से रक्षा करते हैं।

ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे वीर पुरुष (स्पन्द्रासः) कुछ शनैः २ आगे बढ़ने हारे (उक्षणः) सेचन समर्थ मेघों और सूर्य की किरणों के समान (शर्वरीः) रात्रिवत् अपने पक्ष का नाश करने वाली शत्रु सेनाओं को (अति स्कन्दन्ति) अति क्रमण कर जाते हैं, वा (उक्षाणः न शर्वरीः अतिस्कन्दन्ति) जिस प्रकार सांड गौओं को प्राप्त कर उनमें वीर्य आहित करता है, उसी प्रकार शनैः २ गतिशील वायुगण रात्रि-काल में जल प्रच्युत करते या अन्तरिक्ष को जलयुक्त करते हैं। (अध) और हम (मरुताम्) उन वीर पुरुषों की (दिवि) व्यवहार, तेज और विजयेच्छा में (महः क्षमा च) बड़े सामर्थ्य और सहनशीलता को (मन्महे) स्वीकार करें।

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजागण ! (ये) जो (विश्वे) समस्त जन (रिषः) हिंसा से (मानुषा युगा पान्ति) मनुष्यों के जोड़ों अर्थात् समस्त स्त्री पुरुषों की रक्षा करते हैं (वः) उन आप लोगों के बीच (मरुत्सु) वायुवत् तीव्रगामी, शत्रुओं को मारने वाले एवं विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर ही (वः) आप लोगों के (धृष्णुया) शत्रु को पराजय करने वाला, और दृढ (स्तोमं) बल, वीर्य, ज्ञान और (बलं च) परस्पर संगति और मैत्रीभाव को (दधीमहि) धारण करें ।

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) नायक पुरुष (अर्हन्तः) योग्य पदों के योग्य, (सु-दानवः) उत्तम दानशील और शत्रुओं को सुखपूर्वक खण्डित करने वाले, (असामि-शवसः) बहुत पूर्ण बलशाली हैं उन (यज्ञिये-भ्यः) यज्ञ, परस्पर दान, सत्संग के योग्य (मरुद्भ्यः) उत्तम विद्वानों और वीर पुरुषों के (दिवः) परस्पर के ज्ञान-प्रकाश, तथा व्यवहार के (यज्ञं) देन लेन प्रार्थना, और सत्संग को (प्र अर्च) अच्छी प्रकार चला, प्राप्त कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ रुक्मैरायुधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ६

भा०—(एनान् मरुतः अनु जज्झतीरिव विद्युतः) जिस प्रकार तीव्र वेग वाले वायु गण के पीछे २ शब्द करने वाली, और गर्जना वाली जल-धाराएं और बिजुलियां उत्पन्न होती हैं (एनान् मरुतः अनु) इन वेग-वान् सैनिकों के पीछे २ (विद्युतः) विशेष दीप्तियुक्त और (जज्झतीः)

गर्जना करने वाली तोपें और शक्तिमान् विद्युदस्त्र चलें। (ऋष्वाः नरः) बड़े २ नायक गण (रुक्मैः) कान्तियुक्त अस्त्रों और (युधा) युद्ध या शत्रु पर प्रहार करने वाले बल से युक्त, (ऋष्टीः) अपनी २ सेनाओं को (आ-असृक्षत) आगे २ ले चलें। इस प्रकार विजिगीषु राजा (भानुः) सूर्य-वत् तेजस्वी होकर (दिवः) किरणों के तुल्य कामना योग्य विजयों को (त्मना अर्त्त) अपने सामर्थ्य से ही प्राप्त करे।

ये वा॑वृधन्त॒ पार्थि॑वा॒ य उ॒राव॒न्तरि॑क्ष॒ आ।
वृ॒जने॑ वा न॒दीनां॑ स॒धस्थे॑ वा म॒हो दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—(ये) जो (पार्थिवा) पृथिवी के हितकारी वायुगण के तुल्य बलवान् (पार्थिवाः) राजा गण पृथिवी पर प्रसिद्ध होकर (ये उरौ-अन्तरिक्षे) और जो विशाल अन्तरिक्षवत् राष्ट्र के भीतर (आ ववृधन्त) सब प्रकार से वृद्धि प्राप्त करते हैं वे ही (नदीनां वृजने) समृद्ध प्रजाओं के कार्य व्यवहार में और (महः दिवः सधस्थे) बड़े तेजस्वी सूर्य के पर-मोच्च पद के तुल्य सर्वोच्च पद पर भी (ववृधन्त) वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

शर्धो॑ मारु॑तमुच्छं॑स स॒त्यश॑वस॒मृभ्व॑सम्।
उ॒त स्म॒ ते शु॒भे न॒रः प्र स्प॒न्द्रा यु॑जत॒ त्मना॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (सत्य-शवसम्) सत्य ज्ञान और बल से युक्त (ऋभ्वसम्) सत्य से या बड़े तेज से प्रकाशित और सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त (मारुतं शर्धः) वायु के तुल्य उत्तम वीर पुरुषों के बल को (उत् शंस) उत्तम रीति से बतला, उसके लाभ और गुणों का वर्णन कर। (ते) वे (नरः) नायक पुरुष (शुभे) राष्ट्र की शोभा के लिये (स्पन्द्राः) शनैः २ आगे बढ़ने हारे होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (प्र युजत स्म) उत्तम २ कार्य एवं प्रयोग करते हैं। अध्यात्म में—विद्वान् लोग कल्याण के लिये शनैः २ आगे २ बढ़ते हुए अपने आप से (प्र यु-जत) उत्तम समाधि योग करें।

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

भा०—(उत स्म) और (ते) वे वीर पुरुष (परुष्ण्याम्) पालक साधनों से युक्त, तेजस्विनी, अति गहन राष्ट्र रक्षा या राजनीति में (ऊर्णाः) अच्छी प्रकार कवचों से अच्छादित होकर या युद्ध की विषम गति में (शुन्ध्युवः) शुद्ध आचारवान् होकर (वसत) रहें । (उत) और (रथानां पव्या) रथों की चक्र-धारा के तुल्य महारथियों की वज्र शक्ति से वे (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (अद्रिं भिन्दन्ति) मेघ को सूर्य या विद्युत् के तुल्य पर्वतवत् अचल शत्रु को भी भेद दें ।

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—(विस्तारः) विविध प्रकार से विस्तृत देश तथा उसमें रहने वाले प्रजा वर्ग (मह्यं) मुझे (एतेभिः नामभिः) इन २ नामों या रूपों से (यज्ञम् ओहते) यज्ञ, अर्थात् सुप्रबन्ध को धारण करें । वे (आ-पथयः) सब ओर जाने वाले मार्गों से युक्त, (वि-पथयः) विशेष मार्ग वाले (अन्तः-पथाः) भीतर, भूगर्भ के बीच २ में से जाने योग्य मार्ग वाले और (अनु-पथाः) बड़े २ मार्गों में आ मिलने वाले गौण मार्गों के भी स्वामी हों । इति नवमो वर्गः ॥

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

भा०—(अध) और (नियुतः नरः) नाना पदों पर नियुक्त वा लक्षों की संख्या में नायक गण (नि ओहते) नियत पद को धारण करते हैं । वे (अध) भी (पारावताः) दूर २ देशों तक जाकर भी (चित्रा) अद्भुत (दर्श्या) दर्शनीय, (रूपाणि) रूपों वा पदार्थों को (ओहते) धारण करते हैं । और स्वयं भी देश से देशान्तरों में व्यापारी होकर नाना पदार्थ लेजाते हैं ।

छुन्दुस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥

भा०—(ये) जो मेरे राष्ट्र में जिस प्रकार (कुभन्यवः) जल के इच्छुक जन (उत्सम् आ नृतुः) कूप को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (छन्दस्तु-भः) वेद मन्त्रों का उपदेश करने वाले (कीरिणः) स्तुतिकर्त्ता जन भी (उत्सम् आ) उत्तम पद के भोक्ता राजा वा प्रभु को प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त करें । (ते) वे (चित्) कोई भी हों तो भी वे (तायवः न) चोरों के समान न होकर (दृशि त्विषे च) यथार्थ दर्शन करने और तेज की वृद्धि के लिये वे (ऊमाः) उत्तम रक्षक हों । इसी प्रकार वीर पुरुष भी (छन्दः-स्तुभः) युद्ध को नाना गति से शत्रु दल को मारने वाले, (कीरिणः) उखाड़ने वाले, (कुभन्यवः) धनार्थी हों वे कूपवत् गंभीर नाम को प्राप्त कर प्रसन्न हों ।

ये ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (ऋष्वाः) महान् उदार हृदय, (ऋष्टि-विद्युतः) शस्त्रों से विशेष रूप से चमकने वाले, शस्त्रों में विद्युत् का प्रयोग करने वाले या विद्युत् के विशेष ज्ञानी (कवयः) क्रान्तदर्शी, (वेधसः) नाना पदार्थों को शिल्पद्वारा निर्माण करने में कुशल, विद्वान् और बुद्धिमान् होते हैं हे (ऋषे) वेदार्थ को जानने के उत्सुक शिष्य एवं साक्षात् ज्ञाता पुरुष ! (तं मारुतं गणं) उन, वायुस्वभाव, बलशाली, अप्रमादी, और ज्ञानी जनों को (गिरा) उत्तम वेद वाणी, और न्याययुक्त वचन से (नमस्य) आदर कर और (रमय) आनन्दित कर ।

अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥

भा०—(योषणा मित्रं न) जिस प्रकार स्त्री अपने स्नेह करने वाले प्रिय पति के अभिमुख होती है उसी प्रकार हे (ऋषे) विद्वन् ! तू (दाना) आदर सत्कार पूर्वक अन्न वस्त्र आदि नाना दान देने योग्य पदार्थों सहित (मारुतं गणं) उत्तम विद्वान् वा वीर जनों के समूह को भी (अच्छ) आदर से प्राप्त कर । हे (धृष्णवः) बल बुद्धि से प्रतिस्पर्धी का धर्षण करने हारे (वा) और (दिवः) विजय के उत्सुक एवं धनादि की कामना करने वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (धीभिः) उत्तम स्तुतियों, ज्ञानों और कर्मों द्वारा (स्तुताः) प्रशंसित, उपदिष्ट वा शिक्षित होकर (ओजसा) बल पराक्रम द्वारा (दाना इषण्यत) दान दिये गये धनों को प्राप्त किया करो । अध्यात्म में—हे विद्वन् ! तू (मारुतं गणं) प्राण गण को मित्रवत् अन्नादि दोनों से पुष्ट कर । हे प्राणगण ! बलवान् होकर तुम बुद्धि, कर्म से प्रयुक्त होकर ग्राह्य विषय ग्रहण करो ।

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥

भा०—(वक्षणा न) नदी जिस प्रकार (दाना सचते) जलों को प्राप्त करती है और (वक्षणा न दाना) विवाह करने योग्य वधू जिस प्रकार नाना धनों को वा (देवान्) काम्य पुरुषों, वरों को अभिमुख प्राप्त करती है उसी प्रकार (एषां) इन वीर और राष्ट्र में बसे प्रजाजनों के बीच (मन्वानः) मननशील पुरुष ही (देवान्) श्रेष्ठ, वीर, व्यवहारप्रिय पुरुषों को (अच्छा) अभिमुख होकर प्राप्त करे । (याम-श्रुतेभिः) प्रति प्रहर श्रवण करने वाले, वा यम नियमों के पालन करते हुए वेदादि का गुरुमुख से श्रवण कर चुकने वाले, (अञ्जिभिः) अपने गुणों का प्रकाश करने वाले, तेजस्वी (सूरिभिः) विद्वानों सहित (दाना सचेत) नाना दान योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त करे और विद्वानों को प्रदान भी करे ।

प्र ये मे बन्धवेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥

भा०—(ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (मे) मुझे (बन्धवेषे) बन्धुवत् चाहते हुए (गां वोचन्त) वाणी का उपदेश करते हैं वे (पृश्निम्) पालन करने वाले विद्वान् आचार्य और भूमि को भी (मातरम् वोचन्त) माता बतलाते हैं (अध) और वे (शिक्वसः) शक्तिशाली पुरुष (इष्मिणम्) बलवान् और ज्ञानवान् (इन्द्रम्) शत्रुओं को रुलाने वाले राजा और ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु को ही (पितरं वोचन्त) 'पिता' नाम से कहते हैं । (२) (सूरयः) सूर्य की किरण वा शक्तियें जीवों के परम बन्धु 'इष्' वृष्टि और अन्न को उत्पन्न करने के लिये (गां) भूमि और (पृश्नि) सूर्य को (मातरं वोचन्त) सब की माता बतलाते हैं (अध) और (इष्मिणं) अन्न सम्पदा से सम्पन्न (रुद्रं) पशु पालक कृषक जन और वृष्टियुक्त मेघ को (शिक्वसः) शक्तिशाली पुरुष एवं प्रबल वायु भी (पितरं) सब प्रजाओं का पालक पिता (वोचन्त) बतलाते हैं ।

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे १७।१०

भा०—(मे) मेरे (सप्त सप्त) सात सात (शाकिनः) शक्तिशाली नायक गण (एकम्-एका) एक एक से मिलकर (शता) सैकड़ों ऐश्वर्य (मे ददुः) मुझे प्रदान करें । (यमुनायाम् अधि) नियन्त्रण करने वाली सेना वा राष्ट्र नीति पर अधिकार करके मैं (श्रुतम्) प्रसिद्ध, कीर्त्तिजनक (गव्यं राधः) श्रवण करने योग्य, वाणी द्वारा प्राप्त करने योग्य, वाङ्मय ज्ञान सम्पदा के तुल्य, (गव्यं राधः) भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य को (उत् मृजे) उत्तम रीति से शुद्धतापूर्वक प्राप्त करूं और (अश्व्यं राधः नि मृजे) अश्व अर्थात् राष्ट्रसम्बन्धी सैन्य बल को अच्छी प्रकार स्वच्छ, शत्रुहीन, निष्कण्टक करूं । इति दशमो वर्गः ॥

[५३]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिग्गायत्री । ८, १२ गायत्री । २ निचृद्बृहती । ९ स्वराड्बृहती । १४ बृहती । ३ अनुष्टुप् । ४, ५ उष्णिक् । १०, १५ विराडुष्णिक् । ११ निचृदुष्णिक् । ६, १६ पंक्तिः । ७, १३ निचृत्पंक्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

को वे॑द॒ जान॑मेषां॒ को वा॑ पु॒रा सु॒म्नेष्वा॑स म॒रुता॑म् ।
यद्यु॑यु॒ज्रे कि॑ला॒स्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—(कः) कौन (एषां मरुताम्) इन वायुओं, प्राणों और मनुष्यों के (जानम्) उत्पत्ति के रहस्य को (वेद) जानता है (वा) और (कः) कौन इनके (सुम्नेषु) समस्त सुखों के बीच भोक्ता रूप से (आस) स्थिर रूप से विद्यमान रहता है ? [उत्तर] (पुरा यत्) जो इन सबसे पूर्व, इन सबके बीच (किलास्यः) निश्चित रूप से प्रमुख होकर वा स्थिर वाणी वाला होकर इन को (युयुज्रे) कार्य में नियुक्त करता, वश कर समाहित करता, वा जो उनको (किलास्यः) अश्वों के समान देह में प्राणों को, राष्ट्र में अधीन भृत्यों को युद्ध में सैनिकों को वा यन्त्रों में वायुओं को प्रयोग करता है वही इनके (जानं वेद) उत्पत्ति के रहस्य को भी जानता है ।

ऐता॒न्रथे॑षु त॒स्थुषः॒ कः शु॑श्राव क॒था य॑युः ।
कस्मै॑ सस्रुः सु॒दासे॒ अन्वा॒पय॒ इळा॑भिर्वृ॒ष्टयः॑ स॒ह ॥ २ ॥

भा०—(रथेषु तस्थुषः) रथों पर विराजमान (एतान्) इन वीर विजिगीषु, वायुवत् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ पुरुषों को (कः शुश्राव) कौन अपनी आज्ञा सुनाता है ? और वे (कथा) किस प्रकार (ययुः) प्रयाण करें ? (कस्मै अनु सस्रुः) वे किसके अभ्युदय के लिये आगे बढ़े ? [उत्तर] वे (आपयः) बन्धु के तुल्य प्राप्त होकर (सुदासे) उत्तम

दानशील वृत्तिदाता स्वामी के लिये वा उत्तम भृत्यों के स्वामी के अधीन रहकर (इडाभिः सह) अन्नों सहित (वृष्टयः इव) जल वृष्टियों के तुल्य रथों पर विराजें, युद्ध में आगे बढ़ें और स्वामी के लिये शर-वर्षण, शत्रूच्छेदन करते हुए आगे बढ़ें। वृष्टिः व्रश्चतेश्छेदनकर्मणः॥

ते म॑ आहु॒र्य आ॑य॒युरुप॑ द्यु॒भिर्विभि॒र्मदे॑ ।
नरो॒ मर्या॑ अरे॒पस॑ इ॒मान्पश्य॒न्निति॑ ष्टुहि ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (नरः) उत्तम नायक, (मर्याः) मरणधर्मा, (अरेपसः) निष्पाप, निर्लेप, निष्काम, होकर (द्युभिः) तेजों और (विभिः) कान्तिमय, ज्ञानयुक्त रथों या अश्वों से (उप आययुः) हमारे समीप आवें (ते) वे (मे) मुझे (आहुः) उपदेश करें। (इमान् पश्यन्) उन उत्तम पुरुषों को देखकर हे मनुष्य ! तू (इति) इसी प्रकार से (स्तुहि) स्तुति वचन और प्रार्थना किया कर।

ये अ॒ञ्जिषु॒ ये वाशी॑षु॒ स्वभा॑नवः स्र॒क्षु रु॒क्मेषु॑ खा॒दिषु॑ ।
श्रा॒या रथे॑षु॒ धन्व॑सु ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो पुरुष (अञ्जिषु) अपने द्योतक विशेष चिह्नों, प्रकट पोशाकों वा उत्तम गुणों में (स्व-भानवः) स्वयं अपनी कान्ति से युक्त हैं (ये वाशीषु स्व-भानवः) जो अपनी वाणियों में और शस्त्र प्रयोगों में अपने बल और कौशल से चमकने वाले हैं और जो (स्रक्षु) मालाओं और मणियों और (रुक्मेषु) स्वर्ण के आभूषणों के बीच में भी और (खादिषु) उत्तम भोजनों के प्राप्त होने पर वा शास्त्रों में भी (स्व-भानवः) स्वयं अपने तेज से चमकने वाले तेजस्वी हैं, जो रूप, वस्त्र, शस्त्र, माला, स्वर्णाभरणादि बाह्य साधनों के होते हुए भी स्वतः तेजस्वी हैं और जो (रथेषु) रथों, महारथियों और (धन्वसु) धनुर्धारियों में भी (श्रायाः) सिंहनाद सुनाने वाले वा गुणों द्वारा प्रसिद्ध वा स्थिरता से

सबके आधारभूत हैं (ते मे आहुः) वे मुझे उत्तम उपदेश करें। वे हर्ष की वृद्धि के लिये उत्तम रथों, तेजों सहित मुझे प्राप्त हों।

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यतीः द्यावः अनु वृष्टीः इव) जिस प्रकार चलती हुई विजुलियों या व्यापारयुक्त सूर्य प्रकाशों के पश्चात् जल वृष्टियों को जीवगण अपने हर्ष-प्रमोद के लिये प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषो ! हे (जीर-दानवः) प्राणियों या प्रजाजनों को जीवन प्रदान करनेवाले उत्तम परोपकारी रक्षक पुरुषो ! मैं (युष्माकं रथान् अनु) आप लोगों के रथों को अपने अनुकूल (मुदे) सबके सुख के लिये (अनु दधे) धारण करूं।

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सु-दानवः) उत्तम रीति से जल देने में कुशल वायु गण (दिवः कोशम् अचुच्यवुः) अन्तरिक्ष से जल-गर्भित मेघ को बरसाते हैं, (पर्जन्यं वि सृजन्ति) मेघ को रचते हैं और (धन्वना वृष्टयः अनु यन्ति) जल सहित, अन्तरिक्ष मार्ग से जल वृष्टियां आती हैं उसी प्रकार (यं) जिस (कोशम्) सुवर्णादि के कोश को (सु-दानवः) उत्तम दानशील (नरः) पुरुष (दिवः) अपने व्यापार, युद्धादि विजय से (अचुच्यवुः) सब ओर से प्राप्त करते हैं और (पर्जन्यं) मेघवत् धनार्जन करने वाले पुरुष को (वि सृजन्ति) विविध प्रकार से उन्नत करते, (यं अनु) जिसके पीछे २ वर्षाओं के तुल्य शूरवीर होकर (धन्वना यन्ति) धनुष, शस्त्रास्त्र लेकर चलते हैं वह पुरुष उनका नायक होने योग्य है। वह ही उनके उद्भव को जानता है।

तृतृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥

भा०—(यथा क्षोदसा रजः ततृदानाः सिन्धवः रजः प्रसस्रुः) जिस प्रकार जल से करारों की मट्टी तोड़ते हुए जल प्रवाह बहते हैं और (यथा-धेनवः क्षोदसा रजः ततृदानाः प्रसस्रुः) जिस प्रकार गौवें भूमिमय प्रदेश में धूलि उड़ाती हुई आगे बढ़ती हैं और जिस प्रकार (विमोचने) खुला स्वच्छन्द छोड़ देने पर (अश्वा इव) छोड़े (अध्वनः) मार्गों में (स्य-न्नाः) वेगवान् होकर (रजः ततृदानाः) धूल उड़ाते हुए (प्रसस्रुः) आगे बढ़ते हैं और जिस प्रकार (एन्यः) नदियां (रजः ततृदानाः) धूल या मट्टी काटती हुईं (वि वर्त्तन्ते) विविध मार्गों से आती हैं उसी प्रकार वायुगण (क्षोदसा रजः ततृदानाः प्र सस्रुः) जल सहित अन्तरिक्ष चीरते हुए वेग से चलते और (विवर्त्तन्ते) विविध रूप से बहते हैं उसी प्रकार व्या-पारी और वीर जन भी (क्षोदसा) जल मार्ग से (रजः ततृदानाः) भूलोक को पार करते हुए (प्र सस्रुः) दूर देशों में जाते और (वि-वर्त्तन्ते) विविध वार्त्ता व्यापारादि करें और वीर पुरुष (क्षोदसा रजः ततृ-दानाः) वेग से शत्रु जन को काटते हुए आगे बढ़ें और (वि-मोचने) भाग छूटने पर (विवर्त्तन्ते) विविध मार्गों पर गमन करें । विविध व्यूहादि बनावे । विविध चालें चलें ।

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
माव स्थात परावतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) प्रजाजनो ! हे व्यापारी वर्ग के प्रजाजनो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग वायुवत् (दिवः) भूमि और (अन्तरिक्षात्) आकाश से (उत) और (अमात्) गृह और (परावतः) दूर २ के देश से भी (आ यात) आया जाया करो । (मा अवस्थात) किसी स्थान पर रुककर मत पड़े रहा करो ।

मा वो॑ र॒सानि॑तभा कु॒भा क्रुमु॒र्मा व॒: सिन्धु॒र्नि री॑रमत् ।
मा व॒: परि॑ष्ठात्स॒रयु॑: पुरी॒षिण्य॒स्मे इत्सु॒म्नम॑स्तु वः ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रजाजनो! व्यापारियो और वीर पुरुषो! (अनितभा) जिस भूमि या गहरी नदी आदि जलमयी खाई में सूर्य की कान्ति न जाती हो, (कुभा) वा कान्ति या दीप्ति बुरी, न्यून, अति कष्टदायी रूप से पड़े ऐसी (रसा) भूमि वा नदी (वः) आप लोगों को (मा नीरीरमत्) कभी निरन्तर विहार के योग्य न हो। इसी प्रकार (क्रुमुः सिन्धुः) ऊंची तरङ्गे फेंकने वाला महानद वा सागर भी (मा निरीरमत) निरन्त निवास के लिये न हो। (पुरीषिणी सरयुः) जल वाली नदी या नहर (वः परिस्थात्) आप लोगों के आगे बाधक रूप से न आये। (अस्मे इत् वः) हम और आप सब लोगों को सदा (सुम्नम् अस्तु) सुख प्राप्त हो।

तं व॒: शर्धं॒ रथा॑नां त्वे॒षं ग॒णं मारु॑तं॒ नव्य॑सीनम् ।
अनु॒ प्रय॑न्ति वृ॒ष्टय॑: ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रजाजनो! (वः) आप लोगों में से (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह और वायुवत् वेग से शत्रुओं का मूलोच्छेद करने वाले पुरुषों का और उनके (नव्यसीनां रथानां) नये से नये रथों का (गणं) गण और (वः शर्धं) आप लोगों के बड़े भारी बल या शरीरादि धारण करने वाले सैन्य बल के (अनु) पीछे (वृष्टयः अनु प्रयंति) वायु गण के साथ २ आने वाली जल वृष्टियों के समान (अनु प्रयन्ति) अच्छी प्रकार आया जाया करे।

शर्धं॑शर्धं व ए॒षां व्रातं॑व्रातं ग॒णङ्ग॑णं सुश॒स्तिभि॑: ।
अनु॑ क्रामेम धी॒तिभि॑: ॥ ११ ॥

भा०—(वः एषां) इन आप लोगों के (शर्धं शर्धं) बल २ को (व्रातं व्रातं) समूह २ को और (गणं गणं) गण गण को हम लोग (सु-शस्तिभिः) उत्तम २ नाम, प्रशंसा वचनों और शासनों और (धीतिभिः) उत्तम

उत्तम कर्मों से (अनु क्रमेम) अनुक्रमण करे, अर्थात् आपके बल के कार्यों व्रताचरणों, मिल कर किये कार्यों और गणना योग्य संघों का हम उत्तम ख्यातियों और कर्मों से अनुगमन और अनुकरण करें ।

कस्मा॑ अ॒द्य सु॒जा॑ताय रा॒तह॑व्याय॒ प्र य॑युः ।
ए॒ना यामे॑न म॒रुतः ॥ १२ ॥

भा०—(मरुतः) उत्तम मनुष्य (अद्य) आज (सुजाताय) उत्तम विद्या आदि गुणों से सुसम्पन्न (रातहव्याय) दातव्य गुरुदक्षिणा देने वाले दानशील (कस्मै) किस उत्तम पुरुष के दर्शन वा पूजा सत्कार के लिये (एना यामेन) इस मार्ग से, (प्र ययुः) जाते हैं [उत्तर] उस (कस्मै) सुखरूप (सु-जाताय) उत्तम, सर्व पूज्य रूप से प्रसिद्ध, सब ज्ञानादि के दाता परमेश्वर की उपासना के लिये (मरुतः) विद्वान् गण और अध्यात्म में प्राण गण (एना यामेन) इस पूर्वोपदिष्ट याम अर्थात् नियत, व्यवस्थित विधि से (प्र ययुः) आगे उन्नति मार्ग पर बढ़ें ।

येन॑ तो॒काय॒ तन॑याय धा॒न्यं॑ बीजं॒ वह॑ध्वे॒ अक्षि॑तम् ।
अ॒स्मभ्यं॒ तद्ध॑त्तन॒ यद्व॒ ईम॑हे॒ राधो॑ वि॒श्वायु॒ सौभ॑गम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (येन) जिस प्रकार से आप लोग (तोकाय) उत्तम पुत्र और (तनयाय) अगली संतति पौत्र आदि को प्राप्त करने के लिये (धान्यं) आधान योग्य, (अक्षितम्) अक्षय, अमोघ, (बीजं) बीज को (वहध्वे) धारण करते हो (तत्) उसको (अस्मभ्यम्) हम प्रजा जनों के कल्याण के लिये ही (धत्तन) धारण करो और हमें भी धारण कराओ । जिस (राधः) उत्तम ऐश्वर्य की हम (वः) आप लोगों से (ईमहे) याचना करते हैं वह (विश्वायु) समस्त जीवन पर्यन्त (सौभगम्) उत्तम सेवन करने योग्य, सुख कल्याणजनक हो । उसको आप धारण करो और कराओ ।

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हम लोग (निदः) निन्दा करने वाले पुरुषों को (अति इयाम) अतिक्रमण करें । उनकी निन्दाओं की परवाह न करके आगे उन्नति मार्ग पर बढ़ें । (स्वस्तिभिः) सुख-जनक कल्याणकारी उपायों से (अवद्यम्) निन्दनीय कार्य को (हित्वा) छोड़ कर (अरातीः) शत्रुओं को (तिरः अति इयाम) तिरस्कार कर उन से भी आगे बढ़ें, उन पर विजय प्राप्त करें । (आपः वृष्ट्वी) जलों को वर्षा कर (शं) शान्तिकारक, सुखजनक (योः) दुःख वारक (भेषजम्) औषध आदि को प्राप्त करें और (सह स्याम) सदा अपने लोगों के साथ सुख से बने रहें ।

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५ ॥

भा०—हे (समह) पूजा सत्कार योग्य जन ! और हे (नरः) नायक (मरुतः) वीर पुरुषो ! (यं त्रायध्वे) आप लोग जिस की रक्षा करते हो (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देवः) उत्तम विद्वान् और तेजस्वी तथा दानशील, व्यवहारकुशल (असति) हो जाता है । (ते) वैसे ही वे हम भी उत्तम विद्वान्, दानी, तेजस्वी आदि (स्याम) हो जावें ।

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥१३॥

भा०—हे विद्वान् शासक ! तू (स्तुवतः) उत्तम स्तुति करने और उपदेश करने वाले (भोजान्) प्रजा के पालक पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर, उनके प्रति अपने उत्तम वचन कह । वे प्रजाजन (अस्य यामनि) इसके उत्तम शासन में (यवसे गावः न) अन्नादि उपभोग वा

वृत्ति आजीविका के लिये गौओं के समान सुशील होकर (रणन्) आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं। (यतः) जिस कारण से (पूर्वान् इव सखीन्) पूर्वकाल के मित्रों के समान प्रेम से वर्त्ताव करने वालों को ही (अनु ह्वये) आदर से बुलाया जाता है ! उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् ! तू (कामिनः) उत्तम विद्या धन आदि की इच्छा करने वाले पुरुषों को भी (गृणीहि) अपने पास बुला और उनको सत् उपदेश किया कर।

[५४]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ३, ७, १२ जगती। २ विराड्जगती। ६ भुरिग्जगती। ११, १५ निचृज्जगती। ४, ८, १० भुरिक् त्रिष्टुप्। ५, ९, १३, १४ त्रिष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मारुताय) वायु के समान प्रबल, शत्रुनाशक पुरुषों के (स्व-भानवे) स्वयं देदीप्यमान (पर्वत-च्युते) मेघ वा पर्वत के समान प्रबल शत्रु को भी छिन्न भिन्न करने वा उखाड़ देने में समर्थ, (शर्धाय) बल को बढ़ाने और प्राप्त करने के लिये (इमां) इस (वाचं) वेद वाणी का (मारुताय) मनुष्यों के समूह को (अनज) उपदेश करो। (दिवः घर्म-स्तुभे) सूर्यवत् तेजस्वी, पुरुष के तेज को स्तुति या उपासना करने वाले (पृष्ठ-यज्वने) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को भी ज्ञान का दान करने वा पीठ पीछे भी गुरुजनों का आदर सत्कार करने वाले (द्युम्न-श्रवसे) यश, धन और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न पुरुष को (महि नृम्णम्) मनुष्यों से पुनः अभ्यास करने योग्य बड़े भारी ज्ञान और मनुष्यों के मनोभिलषित धन राशि का (अर्चत) आदर पूर्वक दान किया करो।

प्र वो॑ मरुतस्त॒विषा॑ उ॒दन्य॑वो वयो॒वृधो॑ अश्व॒युजः॒ परि॑ज्रयः ।
सं वि॒द्युता॒ दध॑ति॒ वाश॑ति त्रि॒तः स्वर॒न्त्यापो॒ऽवना॒ परि॑ज्रयः ॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों में से जो (उदन्यवः) वायुओं के तुल्य जलवत् उत्तम ज्ञान को ग्रहण करने के इच्छुक, (तविषाः) बलवान्, (वयोवृधः) ज्ञान, बल, आयु की वृद्धि करने वाले, (अश्व-युजः) प्रबल अश्वों को रथ में लगाने वाले एवं योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा में लगाने तथा इन्द्रिय गण को अपने वश में करने वाले, (परि-ज्रयः) सर्वत्र, सब ओर जाने में समर्थ, हों, और जो (विद्युता) विजुली से, (सं दधति) यन्त्रों का संधान करते, अथवा विशेष कान्ति वा ज्ञान दीप्ति से युक्त विद्वान् पुरुष के साथ (स दधति) प्रेम से मिलकर ज्ञान धारण करते हैं, जो (त्रितः) तीनों से (वाशति) ज्ञानोपदेश ग्रहण करते, मन्त्रों का पाठ करते, (स्वरन्ति) और स्वरसहित गान करते हैं वे (आपः) आप्त पुरुष (अवना) भूमि पर (परिज्रयः) जल-धाराओं के समान सर्वत्र गमन करें और शान्ति प्रदान करें । (२) वायुगण, बलशाली, सूर्य ताप से भूमिस्थ जल को ग्रहण करने वाले, अन्न को बढ़ाने वाले, विद्युत् से मिलने वाले होकर गर्जते हैं उनके साथ, जल वृष्टियां भूमि पर गिरती हैं ।

वि॒द्युन्म॑हसो॒ नरो॒ अश्म॑दिद्यवो॒ वात॑त्विषो म॒रुतः॑ पर्वत॒च्युतः॑ ।
अ॒ब्द॒या चि॒न्मुहु॒रा ह्रा॑दुनी॒वृतः॑ स्त॒नय॑दमा र॒भसा॒ उदो॑जसः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः विद्युन्म-हसः) वायु गण विजुली की कान्ति से चमकने वाले, (अश्म-दिद्यवः) मेघ को प्रकाशित करने वाले, (वात-त्विषः) प्रबल वायु से चमकने वाले (पर्वत-च्युतः) मेघों को डुलाने वाले होते हैं और वे (अब्दया मुहः ह्रादुनीवृतः) जल देने वाली मेघ माला से युक्त, गर्जती बिजली को उत्पन्न करने वाले और (स्तनयद्-अमाः) गर्जते मेघ के साथ रहते हैं उसी प्रकार (नरः) उत्तम नायक गण एवं

विद्वान् पुरुष भी (विद्युत्-महसः) विशेष द्युति कान्ति से चमकने वाले हों, वे (अश्म-दिद्यवः) व्यापक प्रभु वा आत्मा में चमकने वाले, और 'अश्म' अर्थात् शत्रुनाशक आयुधों से चमकने वाले, (वात-त्विषः) सूर्य की कान्ति को प्राप्त, (पर्वत-च्युतः) बड़े २ पर्वतवत् अचल शत्रु को भी रणच्युत करने वाले हों। वे (अब्दया) आप्त जनों की दानशील क्रिया से युक्त होकर (ह्रादुनीवृतः) आह्लादकारिणी वाणी से वर्त्तने वाले हों और वे (स्तनयद्-अमाः) अपने गृहों को उत्तम घोषों, वाद्यादि के शब्दों से गुंजाते हुए (रभसाः) वेग से आक्रमण करने वाले (उद्-ओजसः) उत्तम बल पराक्रमशाली होवें।

व्य१क्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ४

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुषो ! जिस प्रकार वायुगण (शिक्वसः धूतयः भवन्ति) शक्तिशाली और वृक्षादि सब पदार्थों को कंपाने वाले होते हैं वे सब रातें, सब दिनों (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष में (रजांसि) समस्त लोकों को वा धूलियों को और (अज्रान्) मेघों को (वि-अजथ) विविध प्रकार से उड़ाते हैं, उसी प्रकार आप लोग (अक्तून् अहानि वि अजथ) सब दिनों सब रातों और विविध रूप से जाते हो, और आप लोग (रुद्राः) दुष्टों को रुलानेहारे (शिक्वसः) शक्तिशाली, और (धूतयः) सब शत्रुओं को कंपाते हुए (अन्तरिक्षं) मध्य में विद्यमान देश को और (रजांसि वि) समस्त प्रजा जनों को और (अज्रान् वि अजथ) बड़े २ योद्धाओं को विविध उपायों से उखाड़ फेंक दिया करें। और (यथा नावः ईं)नौकाओं को वायु गण चलाते हैं उसी प्रकार आप विद्वान् लोग (दुर्गाणि वि अजथ) दुःख से गमन करने योग्य विषमताओं को दूर करो और (अह) तिस पर भी (न रिष्यथ) स्वयं नष्ट नहीं होवो।

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम्।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ।५।१४।

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् प्रजा जनो ! हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों का (तत्) वह अलौकिक (वीर्यं) बल पराक्रम (महित्वनम्) बड़ा भारी है। जिस प्रकार (सूर्यः न) सूर्य भी अपने (योजनम्) सब तक पहुंचने वाले (दीर्घं ततान) प्रकाश को दूर २ तक विस्तृत करता है और जिस प्रकार (एताः) वेग से जाने वाले अश्व (यामे) मार्ग में (योजनं) योजन भर दूरी निकल जाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (योजनम्) अपने २ प्रयोजन तथा उद्योग धन्धों के साथ अपना लगाव बनाते रहें, और (अगृभीत-शोचिषः) अग्नि की ज्वाला के समान असह्य तेज वाले होकर (यामे) राज्यादि के नियन्त्रण में अपना (योजनं) लगाव बनाये रक्खो। और (अनश्वदां गिरिम्) किरणों को बाहर न जाने देने वाले मेघ को जिस प्रकार सूर्य छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अनश्वदाम् गिरिम्) अश्व सैन्य को मार्ग न देने वाले पर्वत के समान अचलवत् दृढ़ शत्रु को आक्रमण करते हुए (नि अयातन) सर्वथा पीड़ित करो।

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ६

भा०—हे (मरुतः) वायु के तुल्य बलपूर्वक शत्रुओं के कंपा देने वाले कर्मनिष्ठ वीर एवं विद्वान् जनो ! (यत्) जिस प्रकार जब (शर्धः) सूर्य का तेज (अभ्राजि) खूब तपता है तब वायुगण का बल भी (अर्णसं मोषथ) जल को हर लेता है उसी प्रकार जब राजा या सेनापति का (शर्धः) शरादि शस्त्रों का धारक शत्रुहिंसक बल (अभ्राजि) शत्रु को परितप्त करता है और चमकता है तब वह आप लोगों का बल, सैन्य (अर्णसं मोषथ) धनैश्वर्य से युक्त शत्रु का अनायास हर लेता है। (कप-

ना इव वृक्षम्) जिस प्रकार कंपादेने वाले वायु के झोंके वृक्ष को गिरा देते हैं वा जिस प्रकार कृमिगण वृक्ष को भीतर २ खोखला कर देते हैं उसी प्रकार हे वीरो! आप (वेधसः) कार्यकर्त्ता मतिमान् लोग भी (कपनाः) शत्रु को कंपाते हुए (वृक्षं) काट गिराने योग्य शत्रु को (मोषथाः) उसका धनैश्वर्य सर्वस्व हर कर खोखला कर दो। और आप लोग परस्पर (सजोषसः) समान प्रीति से युक्त होकर (चक्षुः इव) मार्गदर्शक आंख के समान (सुगं यन्तम्) सुखप्रद मार्ग पर जाने वाले (अरमतिम्) अति ज्ञानवान् पुरुष को (अनु) अनुकूल रूप से (नेषथ) सत् मार्ग पर लेजाओ। अथवा—हे मनुष्यो! (यत् अर्णसं मोषथ) यदि तुम धन चुराओगे तो तुम्हारे लिये (वेधसः शर्धः अभ्राजि) दण्ड-विधान कर्त्ता राजा का बल दण्ड देने के लिये चमक उठे, वह तुम्हें दण्ड दे। (कपना इव वृक्षं) झोकों के समान वृक्षवत् तुम्हें ताड़ित करे, (चक्षुः इव अरमतिं सुगं यन्तम् अनु नेषथ) आंख के समान मार्गदर्शी सन्मार्ग पर जाने वाले विद्वान् पुरुष के अनुकूल होकर अपने को चलावो।

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति। नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! एवं विद्वान् जनो! (यं वा) जिस (ऋषिं) सर्वद्रष्टा, वेदार्थज्ञानी विद्वान् पुरुष वा (राजानम्) तेजस्वी, पुरुष को (सु-सूदथ) तुम लोग सुख वा आदरपूर्वक प्राप्त होते हो, जिसकी उपासना वा सत्संग करते हो, (सः) वह (न जीयते) कभी पराजित नहीं होता, (न हन्यते) कभी मारा नहीं जाता, (न स्रेधति) न नाश को प्राप्त होता है, (न व्यथते) न कभी पीड़ित होता है, (न रिष्यति) न हिंसा करता है। (अस्य रायः)

उसके धनादि ऐश्वर्य (न उप दस्यन्ति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होते ! और (न ऊतयः उप दस्यन्ति) न उसके रक्षा साधन ही कभी नष्ट होते हैं।

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा॥८

भा०—जिस प्रकार जब (इनासः अस्वरन्) सूर्य के किरण अतितापयुक्त होते हैं (कबन्धिनः मरुतः उत्सं पिन्वन्ति) जल से भरे वायुगण मेघ आदि जलाशय को जल से पूर्ण करते हैं और (पृथिवीं मध्वः अन्धसा वि उन्दन्ति) पृथिवी को मधुर जल और अन्न से गीला करते हैं। उसी प्रकार हे (मरुतः) प्रजा के मनुष्यो ! एवं वीर पुरुषो ! आप लोग (नियुत्वन्तः) अश्वों और अधीन नियुक्त पुरुषों तथा लक्षों सहायक पुरुषों के स्वामी होकर (ग्रामजितः) जन समूहों, ग्रामों, देशों को जीतने वाले होवें। (अर्यमणः) सूर्यवत् तेजस्वी एवं शत्रुओं को निन्यत्रण करने में समर्थ न्यायकारी (नरः) नायक और (कबन्धिनः) उत्तम हृष्टपुष्ट देह वाले होकर (यत् इनासः अस्वरन्) जब स्वामीगण अपना स्वर ऊंचा करें, आज्ञा प्रदान करें तब (उत्सं पिन्वन्ति) उत्तम पद के धारक नायक को पुष्ट करें, उसके साथ सहोद्योगी हों। और (पृथिवीं) भूमिको (मध्वः अन्धसः) अन्न जल के उत्तम अंश से (वि उन्दन्ति) ये सम्पन्न करें, उत्तम कृषि व्यापार आदि से ऐश्वर्य की वृद्धि करें।

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः॥९॥

भा०—(प्र-यद्भ्यः) प्रयत्नशील (मरुद्भ्यः) बलशाली वीर पुरुषों के लाभ के लिये (इयं पृथिवी) यह पृथिवी (प्र-वत्वती) उत्तम फलों से युक्त होती है, एवं उनके आगे झुकती है। उनके लिये ही (द्यौः प्रवत्वती) यह विशाल आकाश वा सूर्य भी उत्तम सुखदायक होकर झुकता है। (अन्तरिक्ष्याः पथ्याः) मध्य आकाश के मार्ग भी उनके लिये (प्रव-

त्वती) उत्तम फलदायक और उनके समक्ष निम्न हो जाते हैं उनके लिये (पर्वताः) पर्वत भी (प्रवत्वन्तः) अपने सिर झुका लेने वाले एवं (जीरदानवः) जीवनोपयोगी जल ओषधि अन्न आदि देने वाले हो जाते हैं।

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः। न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ १०।१५

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे प्रजा जनो ! हे व्यापारियो ! यत् जब आप लोग (स-भरसः) एक समान रूप से पालन पोषण करते हुए, समान होकर युद्धादि करते हुए, (स्वः नरः) सबके सुख, तेज वा पराक्रम के मार्ग में आगे जाने वाले, और (दिवः नरः) ज्ञान प्रकाश के नायक वा स्वयं धनादि की कामनाशील पुरुष होकर (सूर्ये-उदिते) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर (मदथ) खूब प्रसन्न होते हो उस समय भी (अह) निश्चय से (वः अश्वाः) आप लोगों के घोड़े (सिस्रतः) चलते २ भी (न श्रथयन्त) शिथिल न हों, और आप लोग (अस्य अध्वनः) इस बड़े भारी मार्ग के (पारम् अश्नुथ) पार पहुंच जाते हैं।

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः। अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ११

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (अंसेषु) कन्धों पर (ऋष्टयः) शत्रुहिंसक शस्त्रास्त्र सजें, (पत्सु) पैरों में (खादयः) भोक्ता जनों के समान नाना भोग्य पदार्थ प्राप्त हों, वा स्थिरता युक्त जूते आदि हों (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्माः) सुवर्ण के आभूषण हों। वे (रथे शुभः) रथों पर सुशोभित हों वे (अग्नि-भ्राजसः) अग्नि के समान कान्ति और प्रताप से युक्त होकर (गभस्त्योः) बाहुओं में (विद्युतः) विशेष चमक वाले शस्त्र अस्त्र धारण करें और (शीर्षसु) सिरों पर (वि-तताः) विविध

प्रकार से मढ़ी वा बुनी हुई (हिरण्ययीः) सुवर्ण वा लोह की बनी (शिप्राः) पगड़ियां हों।

तं नाक॒मर्यो॒ अगृ॑भीतशोचिषं॒ रुश॒त्पिप्प॑लं मरुतो॒ वि धू॑नुथ।
सम॑च्यन्त वृ॒जनाऽति॑त्विषन्त॒ यत्स्वर॑न्ति॒ घोषं॒ वित॑तमृ॒ताय॑वः॥१२

भा०—जिस प्रकार (मरुतः पिप्पलं वि धुन्वन्ति) वायु गण मेघ स्थ जल को कंपाते हैं, (अगृभीत-शोचिषं नाकं वि धुन्वन्ति) जिसके तेज को कोई पकड़ न सके ऐसे विद्युन्मय मेघ को भी वे कंपा देते हैं तब (वृजना सम् अच्यन्त) जल एकत्र हो जाते हैं और (वृजना अतित्विषन्त) आकाश के भाग खूब चमक उठते हैं, (ऋतायवः घोषं स्वरन्ति) जल युक्त मेघ गर्जन भी करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) प्रजा के वीर, व्यापारी एवं विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अर्यः) स्वामी, राजा के तुल्य ही (तं) उस (अगृभीत-शोचिषं) अग्निवत् असह्य तेज को धारण करने वाले (नाकम्) अति सुखमय, (रुशत्) चमचमाते, (पिप्पलं) ऐश्वर्यवान् शत्रु को भी (वि धूनुथ) विशेष रूप से कंपावे। (ऋतायवः) अन्न, ज्ञान और धन के इच्छुक लोग पद पद पर (सम् अच्यन्त) अच्छी प्रकार सत्संग किया करें, (वृजना) अपने गमनयोग्य मार्गों को (अतित्विषन्त) खूब प्रकाशित करें और स्वयं भी प्रकाशित हों। और (ऋतायवः) सत्य, ज्ञान, धन के इच्छुक पुरुष भी (यत् विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) जिसके उपदेश आज्ञावचन को प्राप्त करते हैं उसको प्रसन्न वा प्राप्त करो।

यु॒ष्माद॑त्तस्य मरुतो विचेतसो रा॒यः स्या॑म र॒थ्यो॒३॒॑ वय॑स्वतः।
न यो युच्छ॑ति ति॒ष्यो॒३॒॑ यथा॑ दि॒वो॒३॒॑ऽस्मे रार॑न्त मरुतः सह॒स्रिण॑म्॥ १३॥

भा०—हे (मरुतः) वायु वत् देश से देशान्तर को जाने वाले वैश्य प्रजा जनो ! हे (विचेतसः) विविध प्रकार के ज्ञान वाले पुरुषो ! हे

(रथ्यः) महारथियो ! रथ के स्वामी जनो ! हम लोग (युष्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये (वयस्वतः) अन्न, जीवन और बल से युक्त (रायः) धनैश्वर्य के स्वामी (स्याम) हों। हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् प्रजा जनो ! (अस्मे) हमारे बीच में (यः) जो पुरुष (तिष्यः यथा) सूर्य के समान (न युच्छति) कभी प्रमाद नहीं करता, उस (सहस्रियं) सहस्रों वीरों, धनों और सेनाओं के स्वामी पुरुष को तुम लोग सदा (दिवः) कामना करते हुए (ररन्त) अच्छी प्रकार प्रसन्न करते रहो।

यूयं र॒यिं म॑रुतः स्पा॒र्हवी॑रं यू॒यमृषि॑मवथ॒ साम॑विप्रम्।
यु॒यमर्व॑न्तं भर॒ताय॒ वाजं॑ यू॒यं ध॑त्थ॒ राजा॑नं श्रु॒ष्टिमन्त॑म् ॥ १४ ॥

भा०—हे (मरुतः) पुरुषार्थी, व्यवहारज्ञ एवं वीर पुरुषो ! आप लोग (स्पार्ह-वीरं) वीर पुरुषों से अभिलाषा करने योग्य (रयिम्) ऐश्वर्य को और (साम-विप्रम्) सामों को जानने वाले विद्वान् एवं 'साम' उपाय द्वारा राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने में समर्थ, (ऋषिम्) मन्त्रार्थ वेत्ता, द्रष्टा पुरुष को (अवथ) सुरक्षित रक्खो, उसको प्राप्त एवं सुप्रसन्न करो। और (भरताय) राष्ट्र के प्रजा जनों को भरण पोषण करने के लिये (अर्वन्तं) शत्रु का नाश करने वाले पुरुष एवं (वाजं) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्य को भी (यूयं धत्थ) आप लोग धारण करो। और (श्रुष्टिमन्तम्) शीघ्रता से कार्य सम्पादन करने वाले अन्न सम्पत्ति के स्वामी (राजानं) राजा, तेजस्वी पुरुष को भी (धत्थ) पुष्ट करो।

तद्वो॑ यामि॒ द्रवि॑णं सद्यऊतयो॒ येना॒ स्व१॒र्ण त॒तना॑म॒ नॄँर॒भि।
इ॒दं सु मे॑ मरुतो हर्यता॒ वचो॒ यस्य॒ तरे॑म॒ तर॑सा श॒तं हिमाः॑ ॥१५॥१६॥

भा०—हे (सद्य-ऊतयः) अति शीघ्र रक्षा, ज्ञान, गमन प्राप्ति करने में कुशल, (मरुतः) पुरुषार्थी लोगो ! मैं (वः) तुम्हारा (तत्) उस प्रकार का (द्रविणं) धनैश्वर्य (यामि) चाहता हूं (येन) जिससे हम सब लोग (नॄन् अभि) सब मनुष्यों के लिये (स्वः न) सूर्य के समान,

जल, वा प्रकाशवत् (ततनाम) फैला दें, जो सबके लिये उपयोगी सुखकारी हो। (यस्य तरसा) जिसके बल पर हम (शतं हिमाः) सौ वर्ष जीवन (तरेम) पार कर लें। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (मे) मेरे (इदं वचः) इस वचन को (सु हर्यत) अच्छी प्रकार इच्छापूर्वक ग्रहण करो। इति षोडशो वर्गः॥

[५५]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ मरुतो देवताः॥ छन्दः—१, ५ जगती। २, ४, ७, ८ निचृज्जगती। ६ विराड् जगती। ३ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६, १० निचृत् त्रिष्टुप्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

प्रयंज्यवो मरुतो भ्राजंदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवंक्षसः।
ईयंन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥१॥

भा०—(प्र-यज्यवः) उत्तम ज्ञान के प्रदान करने वाले, उत्तम सत्संग, मैत्री, सौहार्द, मान, सत्कार उत्तम पदार्थ की याचना के योग्य, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते अस्त्रों, से सुशोभित, एवं अति प्रकाशयुक्त मति वाले, (रुक्म-वक्षसः) सुवर्ण के आभूषणों को छाती पर धारण करनेवाले, एवं सबको रुचिकर कान्तिमान् तेज को धारने वाले, तेजस्वी, विद्वान् और वीर पुरुष (बृहत् वयः दधिरे) बड़ा भारी बल, ज्ञान और बड़ी आयु धारण करें। (सु-यमेभिः अश्वैः) उत्तम रीति से काबू किये अश्वों के समान, उत्तम नियमों के पालन द्वारा वश किये गये (आशुभिः अश्वैः) शीघ्रगामी, अप्रमादी इन्द्रियों और पुरुषों द्वारा तक भली प्रकार उद्देश्य को (इयन्ते) प्राप्त होते हैं। (शुभं याताम्) शुभ, धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वालों के (अनु) पीछे (रथाः) उत्तम रथ व आनन्द प्राप्ति के समस्त साधन भी (अवृत्सत) स्वयं प्राप्त हो जाते हैं।

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥२॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार से (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (विद) प्राप्त कर सको और जिस प्रकार से बड़े भारी ज्ञान को प्राप्त कर सको उस प्रकार से आप लोग (स्वयं) अपने आप, (तविषीं) बड़ी भारी सेना व शक्ति को (दधिध्वे) धारण करो। और आप लोग (महान्तः) बड़े भारी सामर्थ्यवान् होकर (उर्विया) खूब बहुत अधिक (विराजथ) सुशोभित होवो। (ओजसा) बल पराक्रम से आप लोग (अन्तरिक्षं) वायुओं के समान आकाश को वा राष्ट्र के समस्त भीतरी भाग को (वि ममिरे) विविध प्रकार से मापो और उसको वश करो, और (अन्तरिक्षं वि मिमरे) अन्तरिक्ष भाग को विमान द्वारा प्राप्त होओ, इस प्रकार (शुभं याताम्) शुभ, सन्मार्ग पर जाने वालों के (रथाः) रथ वा देहादि सत् साधन भी (अनु अवृत्सत) उत्तरोत्तर अनुकूल होकर रहें और वृद्धि को प्राप्त हों।

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥३॥

भा०—(साकं जाताः) एक साथ उत्पन्न वा प्रसिद्ध, (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान् एवं उत्तम भूमियों के स्वामी, (साकम् उक्षिताः) एक साथ ही अभिषेक को प्राप्त हुए, (नरः) सेना नायक जन (श्रिये चित्) लक्ष्मी की वृद्धि के लिये (प्रतरं) खूब सहोद्योग से अच्छी प्रकार (आ वबृधुः) सब ओर वृद्धि को प्राप्त हों। वे (सूर्यस्य इव रश्मयः) सूर्य किरणों के समान (विरोकिणः) विविध रुचि, कान्ति एवं विविध प्रवृत्तियों वाले (प्रतरं वावृधुः) खूब बढ़ें एवं उन्नति करें। (शुभं याताम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर जाने वालों के रथ और रमण योग्य आत्मा निरन्तर अनुकूल होकर रहते और वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

अध्यात्म में—प्राणगण के विषय में देखो अथर्ववेद (कां० ९।१४।१६) में आये 'साकंजों' का वर्णन ।

आ॒भू॒षेण्यं॑ वो मरुतो महि॒त्व॒नं दि॑दृ॒क्षेण्यं॒ सूर्य॑स्येव॒ चक्ष॑णम् ।
उ॒तो अ॒स्माँ अ॑मृत॒त्वे द॑धातन॒ शुभं॑ या॒ताम॒नु रथा॑ अवृत्सत ॥४॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (महित्वनं) महान् सामर्थ्य (आ-भूषेण्यम्) आप लोगों को सब प्रकार से आभूषण के तुल्य शोभाजनक, एवं सर्वत्र, सब ओर कार्य करने में सामर्थ्यप्रद हो। और (वः चक्षणं) आप लोगों का वचन और ज्ञान दर्शन भी (दिदृक्षेण्यम्) दर्शनीय और सत्य ज्ञान का दर्शाने वाला, (सूर्यस्य इव चक्षणं) सूर्य के प्रकाश के तुल्य सत्य हो । (उतो) और आप लोग प्राणों के समान प्रिय होकर (अस्मान्) हमें (अमृतत्वे) अमृत, नाशरहित, दीर्घायु युक्त परम जीवन एवं मोक्ष सुख में (दधातन) स्थापित करो । (शुभं याताम्) सन्मार्ग पर जाने वाले आप लोगों के (रथाः) रमणीय आत्मा, रथ के तुल्य रस रूप आनन्दमय आत्मा (अनु अवृत्सत) निरन्तर सुखपूर्वक रहें और उन्नति की ओर बढ़े ।

उदी॑रयथा मरुतः समुद्र॒तो यू॒यं वृ॒ष्टिं व॑र्षयथा पुरीषिणः ।
न वो॑ दस्रा उप॑ दस्यन्ति धे॒नवः॒ शुभं॑ या॒ताम॒नु रथा॑ अवृत्सत ५॥१७

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! जिस प्रकार (मरुतः पुरीषिणः समुद्रतः वृष्टिं उत् ईरयन्ति) वायुगण जल सम्पन्न होकर समुद्र से वृष्टि को उठा कर लाते और वर्षाते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (पुरीषिणः) स्वयं ऐश्वर्य सम्पन्न होकर (समुद्रतः) समुद्र से (वृष्टिम्) ऐश्वर्य की वृष्टि को (उत् ईरयथ) उठाकर लाओ । समुद्र से खूब व्यापार द्वारा रत्न मुक्ता आदि ऐश्वर्य प्राप्त करो और (वर्षयथ) प्रजाजनों पर बरसा दो, समान रूप से निष्पक्षपात होकर विभक्त करो । (वः) आप लोगों की (दस्राः) दुःखों के नाश करने वाली (धेनवः) गौएं वा वाणियें (न उपदस्यन्ति)

कभी नाश को प्राप्त न होवें। (शुभं यातम्) धर्मानुकूल सत्य पथ पर चलने वाले आप लोगों के रथ (अनु अवृत्सत) प्रति दिन आगे बढ़ें और वृद्धि प्राप्त करें वा आप लोग भी सन्मार्ग पर जाने वाले के पीछे चलें।

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥६॥

भा०—(यत्) जब आप लोग हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! (धूर्षु) रथों को धारण करने वाले धुरों में (अश्वान्) शीघ्रगामी अश्वों एवं (पृषतीः) शस्त्रवर्षणशील सेनाओं की (अयुग्ध्वम्) योजना करो और (हिरण्ययान् अत्कान्) सुवर्ण वा लोह आदि धातु के बने कवचों को (प्रति अमुग्ध्वम्) धारण करो और तुम (विश्वाः इत् स्पृधः) समस्त स्पर्धाशील शत्रुओं को (वि अस्यथ) विशेष रूप से उखाड़ डालो ! (शुभं यातम् रथाः अनु अवृत्सत) सन्मार्ग पर शोभा पूर्वक जाने वालों के रथ निरन्तर उन्नति की और बढ़ें।

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥७॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्र) जहां (अचिध्वं) पूजा सत्कार प्राप्त करो वा जहां तक जा सको, (तत्) उस स्थान तक (गच्छथ इत् उ) अवश्य जाओ ! (वः) आप लोगों को (पर्वताः न वरन्त) पहाड़ भी न रोक सकें और (न नद्यः वरन्त) न नदियें रोक सकें, ये आपके मार्ग में बाधक न हों। (उत) और आप लोग (द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि दोनों स्थानों पर (परि याथन) परिभ्रमण करो। (शुभं यातम्) उत्तम रीति से जाने वाले आप लोगों के (रथाः अनु अवृत्सत) रथ यान विमान आदि अनुकूल रूप से चला करें।

यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।८।

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में रहने हारे प्रजा जनो एवं गृहस्थ में जाने हारे विद्वानो ! हे आचार्य के अधीन बसने वाले विद्यार्थी जनो ! एवं प्रजाओं के राष्ट्र में बसने हारे वीर पुरुषो ! हे (मरुतः) बलवान् पुरुषो ! (यत् पूर्व्यम्) जो पूर्व के विद्वानों और पुरुषों से अभ्यस्त ज्ञान और संचित धन है, (यत् च नूतनं) जो नया, प्राप्त ज्ञान वा धन है और (यत्-उच्यते) जिसका उपदेश किया जाता है, (यत् शस्यते) जो अन्य विद्वानों द्वारा शास्त्र रूप में अनुशासन किया जाता है, हे (न वेदसः) न जानने और न प्राप्त करने हारे धनहीन और ज्ञानहीन पुरुषो ! आप लोग (त-स्य विश्वस्य) उस सब ज्ञान वा धन के स्वामी (भवथ) होवो । (शुभं याताम्) शुभ उद्देश्य को लक्ष्य करके जाने वाले पूर्व के सब पुरुषों के पीछे २ आप लोगों के (रथाः) रथवत् शरीर और आत्मा (अनु अवृत्सत) अनुगमन करें । वा, आप लोग सुप्रसन्न होकर रथों के तुल्य पूर्वों के बनाये मार्ग से चला करो ।

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ९

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (मृळत) सुखी करो । (मा वधिष्टन) हमारा बध मत करो, हमें पीड़ित मत करो । (अस्मभ्यं) हमारे लिये (बहुलं शर्म) बहुत सुख, गृह शरण आदि (वि यन्तन) विविध प्रकारों से दिया करो । (स्तोत्रस्य सख्यस्य) उत्तम प्रशंसनीय मैत्रीभाव को (अधि गातन) सर्वोपरि उपदेश किया करो । (शुभं याताम् अनु) शुभ मार्ग वा उद्देश्य पर जाने वालों के (अनु) पीछे २ (रथाः) उत्तम रथों के समान सन्मार्ग पर (अवृत्सत) सदा चलते रहा करो ।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन् न रिष्यति ॥

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् १०॥१८

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! (यूयम्) आप लोग (अस्मान् वस्यः अच्छ नयत) हमें उत्तम धन प्राप्त कराओ, वा उत्तम ऐश्वर्य तक हमें पहुंचाओ वा (वस्यः अस्मान्) हम उत्तम ब्रह्मचारियों वा राष्ट्र के उत्तम वसने वाले वा उत्तम धन सम्पन्न हम लोगों को (अच्छ नयतः) आदर पूर्वक उत्तम मार्ग में ले चलो । और (गृणानाः) उत्तम उपदेश करते हुए आप लोग हमें (अंहतिभ्यः) पापों से (निः नयत) बचा कर लेते चलो । (यजत्राः) दान देने और मान आदर सत्संग आदि करने योग्य पूज्य पुरुषो ! (नः) हमारे (हव्यदातिम्) आदर पूर्वक देने योग्य अन्न वस्त्र आदि के दान को प्रेम से (जुषध्वम्) सेवन किया करो । और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्यों के स्वामी बने रहें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५६]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृद्बृहती । ४ विराड्बृहती । ८, ९ बृहती । ३ विराट् पंक्तिः । ६, ७ निचृत्पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! प्रधान पुरुष जनो ! (दिवः चित् रोचनात्) कान्तिमान् सूर्य से अधिकृत (मरुतां गणम्) वायुओं के समान (रोचनात्) सबको रुचिकर और सबको प्रसन्न करने वाले, सर्व-

प्रिय, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (अधि) अधिकृत, उसके अधीन (शर्धन्तम्) बलवान्, सैन्यवत् शूरवीर, (अंजिभिः) अपने २ वर्गों को अभिव्यक्त करने वाले (रुक्मेभिः) रुचिकर स्वर्णमय, पदकों, पदसूचक चिह्नों, वा टाइटिलों से (पिष्टं) सुशोभित (मरुताम् गणम्) मनुष्यों, विद्वानों, सैनिक एवं वैश्य प्रजाजनों के गण तथा (विशः गणम्) प्रजा के समूह को (अद्य) आज, विशेष २ अवसर पर (अव ह्वये) विनयपूर्वक बुलाता हूं ।

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक पुरुष ! तू (हृदा) अन्तःकरण से (यथा चित् मन्यसे) जैसे भी उत्तम जाने (तत् इत्) वे ही (आशसः) उत्तम स्तुति योग्य, अधिकार पद पर रहकर शासन करने वाले वा (मे आशसः) मेरे अधीन रहकर शासन करने वाले, और मुझे चाहने वाले हैं वे (मे जग्मुः) मुझे प्राप्त हों । और हे नायक ! नेतः (ये) जो (ते नेदिष्ठं) तेरे अति समीप (हवनानि) देने योग्य कर आदि, और लेने योग्य वेतनादि (आ गमन्) प्राप्त कराते और लेते हैं (तान्) उन (भीम-सं-दृशः) भयंकर रूप से दीखने वाले, विशाल आकार के प्रचण्ड पुरुषों को भी (वर्ध) बढ़ा, प्रोत्साहित कर और पद की वृद्धि कर । राजा अपने अधीन, नायकों द्वारा उत्तम, शासकों और प्रचण्ड सैनिकों को रक्खे, उन्हें वेतन दे, उनसे करादि संग्रह करे और शासन करे ।

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥

भा०—(मीढुष्मती पराहता, मदन्ती) वर्षा करने वाले मेघ से युक्त मेघमाला जिस प्रकार वायु से प्रेरित होकर सबको हर्ष देती हुई आती है उसी प्रकार (मीढुष्मती) बाण वर्षा और ऐश्वर्यों की वर्षा करने में

समर्थ, योग्य, वलवान् प्रजापोषक स्वामी की भी (पृथिवी) पृथिवी वासिनी प्रजा (परा-हता) शत्रु सेना से ताड़ित होकर (मदन्ती) हर्ष-युक्त होती हुई (अस्मत्) हम शासक जनों को (आ एति) प्राप्त होती है। हे (मरुतः) प्रजाजनो, विद्वानो वा वीर पुरुषो ! (वः) आप लोग (अमः) सहायक, शरण योग्य, गृह के समान आश्रय दाता पुरुष (अमः) शत्रु से न मारे जाने वाला, शत्रु को पीड़ित करने में समर्थ, अप्रतिम, ऐश्वर्य वा बलशाली, (ऋक्षः न) सूर्यवत् तेजस्वी, सदा अर्चनीय, वेदाज्ञाओं का पालक, वा ऋक्ष अर्थात् रीछ के समान भयंकर, बलशाली, (शिमीवान्) कर्मण्य, (दुध्रः) शत्रु से अजेय, (गौः इव) महा वृषभ के समान (भीमयुः) भयप्रद होकर प्रयाण करने हारा। वा (गोः न भीमयुः) गमनशील अश्व के समान भी प्रचण्ड वेग से जाने हारा हो।

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो वीर पुरुष (गावः न) अश्वों या बैलों के समान (दुर्धुरः) कठिनता से वश आने वाले, प्रचण्ड होकर (ओजसा) पराक्रम से (वृथा) अनायास ही (नि रिणन्ति) शत्रुओं को नाश करते हैं। वे (यामभिः) अपने प्रयाणों, या चढ़ाइयों द्वारा (स्वर्यं अश्मानं) गर्जते मेघ के समान और (पर्वतं) पर्वत के समान अचल, उन्नत (गिरिम्) अपने राष्ट्र को निगलने वाले या गर्जते शत्रु को भी (प्र च्यावयन्ति) अस्थिर कर देते हैं। अथवा—(स्वर्यं चित् अश्मानं) शब्द-कारी, और संतापकारी 'अश्म', विद्युत् वा वज्र के समान ही (गिरिं पर्वतं) मेघ और पर्वतवत् गर्जते, एवं पालन करने वाले अपने राजा को भी (प्र च्यावयन्ति) उत्तम रीति से चलाते उत्तम पद को पहुंचाते हैं।

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! तू (एषाम्) इन (समुक्षितानाम्) अच्छी प्रकार से अभिषिक्त, (मरुतां) वायुवत् बलवान् पुरुषों के (स्तोमैः) उत्तम बलवीर्यों द्वारा (नूनम्) निश्चय से (उत् तिष्ठ) सब से उच्च पद पर विराज। मैं तुझको (गवां सर्गम् इव) गौओं के बीच में सृष्टि उत्पादक वृषभ के समान वा (गवां सर्गम्) समस्त वाणियों, आज्ञाओं का दाता, एवं समस्त भूमिवासी प्रजाओं के बीच, विधाता, शासक और (पुरुतमम्) सब प्रजाओं में श्रेष्ठ, (अपूर्व्यम्) अपूर्व, सर्वोत्कृष्ट पद के योग्य (ह्वये) कहता हूं। उत्तम पद के योग्य बतलाता हूं। (२) हे विद्वान् ! शिष्य ! तू सम्यक् स्नात, निष्णात विद्वानों के (स्तोमैः) उपदेशों से ऊंचा उठ। पूर्व के जनों से अप्राप्त सर्वश्रेष्ठ, वाणियों के उत्पन्न पुत्रवत् वा सूर्य की किरणों से उत्पन्न जलवत् जानकर तुझको (ह्वये) मैं गुरु उपदेश करूं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

युङ्ध्वं ह्यरु॑षी॒ रथे॑ यु॒ङ्ध्वं रथे॑षु रो॒हितः॑।
यु॒ङ्ध्वं हरी॑ अजि॒रा धु॒रि वोळ्ह॑वे॒ वहि॑ष्ठा धु॒रि वोळ्ह॑वे ॥६॥

भा०— हे विद्वान्, वीर, एवं शिल्पी जनो ! आप लोग (रथे) रथ में (अरुषीः) लाल वर्ण की घोड़ियों के समान (रथे) रमण करने योग्य गृहस्थ आदि उत्तम कार्यों में (अरुषीः) दीप्तियुक्त, तेजस्विनी, रोषरहित प्रजाओं को (युङ्ध्वम्) नियुक्त करो। (रथेषु रोहितः) रथों में लाल घोड़ों के तुल्य उत्तम २ कार्य में (रोहितः) तेजस्वी पुरुषों को (युङ्ध्वम्) नियुक्त करो। (वोढवे धुरि) वहन करने अर्थात् काम का भार या ज़िम्मेवारी अपने ऊपर उठाकर चलने वाले पुरुष के कार्य के धारण करने के मुख्य पद पर (धुरि हरी) रथ के धुरा में दो अश्वों के समान दो उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों को (युङ्ध्वम्) नियुक्त करो, उनमें एक मुख्य और एक सचिव हो। इसी प्रकार (वोढवे धुरि वहिष्ठा) वहन या कार्यसञ्चालन करने वाले के स्थान पर दोनों योग्य

पुरुष (वहिष्ठा) कार्य को आगे बढ़ाने और ले चलने में सबसे उत्तम होने चाहियें ।

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (अरुषः) तेजस्वी और रोष से रहित, अक्रोधी, (तुवि-स्वनिः) बहुत उच्च ध्वनि करने में समर्थ, (दर्शतः) दर्शनीय रूप और गुणों वाला (स्यः वाजी) वह ज्ञान और शक्ति तथा ऐश्वर्य का स्वामी राजा वा प्रधान, बलवान् अश्व के समान समर्थ पुरुष (इह धायि स्म) इस कार्य में स्थापित किया जाय । हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! हे वैश्य जनो ! (वः) जो आप लोगों के (यामेषु) आने जाने के मार्गों और प्रजा के नियन्त्रण के कार्यों में कोई नियुक्त पुरुष एवं रथ में जुता अश्वादि भी (चिरं मा करत्) विलम्ब न किया करे । (रथेषु) रथों में लगे अश्व के समान आप लोग (तं) उसको (रथेषु) रमण योग्य, एवं शीघ्रता से करने योग्य कार्यों में (प्र चोदत) अच्छी प्रकार प्रेरित करो ।

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (मारुतं) वायु के बल वा वेग से चलने वाले (श्रवस्युम् रथं) यशोजनक, वा श्रवण योग्य शब्द वा विशेष ध्वनि से युक्त (रथम्) रथ को (आ हुवामहे) उत्तरोत्तर उन्नत रूप में बनाना चाहें । (यस्मिन्) जिसमें (सुरणानि) उत्तम रमण, आनन्द-विनोद एवं उत्तम युद्ध क्रीड़ा आदि (बिभ्रती) करते हुए (रोदसी) दुष्ट को रुलाने वाले पालक सूर्य पृथिवीवत् राज प्रजा वर्ग सचा, एक साथ (मरुत्सु) मनुष्यों के बीच (तस्थौ) विराजें । अथवा । (मारुतं) मनुष्यों के हितकारी, (श्रवस्युम्) उत्तम उपदेश

योग्य वा कीर्त्ति जनक उत्तमोत्तम राष्ट्र रूप रथ पर चढ़कर उत्तम रूप से रमण करते हुए (सचा) सुख से प्रजावर्ग के साथ रहें ।

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ९।२०।४

भा०—हे प्रजाजनो ! हे वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (रथे शुभं) रथ में शोभा पाने वाले, (त्वेषम्) अति दीप्ति युक्त (पनस्युं) स्तुत्य, (शर्धम्) बल, सैन्य को मैं (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाता हूं । (यस्मिन्) जिसमें (सुजाता) उत्तम, कार्यों से प्रसिद्ध (मीढुषी) शत्रु पर शर आदि बरसाने वाली सेना (मरुत्सु मीढुषी) वायुओं पर आश्रित बरसती घटा के तुल्य (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती स्त्री के तुल्य (महीयते) मान आदर प्राप्त करती है । इति विंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाक ॥

[५७]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ५ जगती । २, ६ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ निचृत्-त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वाले, शत्रुओं को रोकने वाले, और (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान् एवं शत्रुहन्ता नायक को अपना स्वामी बनाकर, (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त, समान रूप से अधिकारों और ऐश्वर्यों का भोग करते हुए (हिरण्यरथा) सुवर्ण लोह आदि धातुओं के बने रथों पर स्थित होकर (सुविताय = सु-इताय) सुख से जाने वा उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (आ गन्तन) आया

जाया करो। (इमं) यह (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत्) हमसे और (दिवः) हमारी शुभ कामना (वः) आप लोगों को (प्रति हर्यते) निरन्तर ऐसे प्राप्त हो जैसे (उदन्यवे तृष्णजे) जल के इच्छुक, पियासे पुरुष के लिये (उत्साः) कूप की जलधाराएं वा (दिवः उत्साः) आकाश से जलधाराएं प्राप्त हों। अर्थात् हमारे शुभ संकल्पों के लिये आप सदा उत्सुक रहा करें।

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् २

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो, शिल्पि जनो और वीर पुरुषो ! आप लोग (वाशीमन्तः) उत्तम वाणियों, शिल्प साधनों से युक्त, (ऋष्टि-मन्तः) ज्ञान और युद्धोपयोगी शक्तियों से युक्त, (मनीषिणः) मन को यथेष्ट विषय में प्रेरने वाले, जितेन्द्रिय, मनस्वी, ज्ञान के इच्छुक, (सु-ध-न्वानः) उत्तम धनुर्धर, (इषु-मन्तः) वाणों से सम्पन्न, (नि-षङ्गिणः) तर्कस और खाण्डे वाले, (सु अश्वाः) उत्तम अश्वारोही, (सु-रथाः) उत्तम रथारोही, (सु-आयुधाः) उत्तम हथियारों से सजे, और (पृश्नि-मातरः) आदित्य के समान तेजस्वी वेद, गुरु वा राजा, अन्तरिक्ष के समान आश्रयदाता और भूमि के समान अन्नप्रद स्वामी को माता के समान मानने वाले होवो। आप लोग (शुभं) शुभ, शोभाजनक, उत्तम मार्ग को या युद्धकर्म को लक्ष्य करके (याथन) प्रयाण करो। पक्षान्तर में—वायुगण (पृश्नि-मातरः) सेचक मेघों के उत्पादक हैं। वे (शुभं याथन) सर्वत्र जल प्राप्त करावें।

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३॥

भा०—हे (पृश्निमातरः) पृथिवी माता वा तेजस्वी ज्ञानी वा वीर पुरुष को मातृसमान जान उसके पुत्र जनो ! वीर पुरुषो ! विद्वानो !

आप लोग (यद्) जब (उग्राः) ऊग्र, बलवान्, होकर (पृषतीः) चित्र विचित्र, जल वर्षाने वाली मेघघटाओं के समान अश्वों और सेनाओं को (शुभे) जल प्रदान के तुल्य उत्तम कर्म, शरवर्षण के निमित्त (अयुङ्ध्वम्) रथ, युद्धादि कार्यों में लगाते हो तब (द्याम्) कामना योग्य तेजस्वी नायक पुरुष को (धुनुथ) प्राप्त होते हो, (द्यां धुनुथ) पृथिवी को वा अन्तरिक्ष और विजिगीषु शत्रु को और (पर्वतान्) पर्वत वत् दृढ़, अचल शत्रु जनों को भी (धूनुथ) कंपा देते हो। हे (यामनः) यान करने हारो ! (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना) वायुओं से वनों के समान (वना) शत्रु के वनवत् सैन्य समूह (निजिहते) पराजित होकर कांपते, एवं रण छोड़ कर भागते हैं। आप लोग (पृथिवी) समस्त भूमण्डल को (कोपयथ) विक्षुब्ध करने में समर्थ होते रहे।

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमा इव सुसदृशः सुपेशसः।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ४

भा०—(वात-त्विषः) वायु वा प्राण के समान विद्युत् वा उत्तम तीक्ष्ण कान्ति को धारण करने वाले, (वर्ष-निर्णिजः) वर्षों तक शुद्ध आचरण से अपने को शुद्ध करने हारे जलों द्वारा पदाभिषिक्त (यमाः इवः) संयम के पालक तपस्वियों के समान, इन्द्रियों के नियन्ता (सु-सदृशः) उत्तम रीति से सबको एक समान देखने वाले, (सु-पेशसः) उत्तम रूपवान्, (पिशङ्गाश्वाः) पीले घोड़ों वाले, (अरुणाश्वाः) और लाल घोड़ों वाले, (प्र-त्वक्षसः) अच्छी प्रकार शत्रुओं का छेदन भेदन करने में समर्थ और (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (द्यौः इव) सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी वा नायक के तुल्य (उरवः) महान् पराक्रमी हों। और वे —

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ५।२१

भा०—पूर्वमन्त्र में कहे वीर पुरुष (पुरु-द्रप्साः) वायुओं के समान अपने में जलवत् बहुत प्रकार के बलों, वीर्यों को धारण करने वाले, (अ-ञ्जिमन्तः) नाना कामनाओं और अभिव्यञ्जक चिन्हों को धारण करने वाले (सु-दानवः) उत्तम जलवत् धनैश्वर्यों के दान करने और शत्रु खण्डन और प्रजाओं का पालन करने वाले, (त्वेष-सन्दृशः) कान्ति वा तेज से समान रूप से दर्शनीय, (अनवभ्र-राधसः) धनैश्वर्यों को नाश न होने देने वाले, सदा सम्पन्न, (जनुषा) जन्म से ही (स्वभावतः सुजातासः) माता और गुरु जनों से जन्म, और विद्या जन्म प्राप्त कर उत्पन्न वा प्रसिद्ध हुए, (रुक्म-वक्षसः) छाती पर सुवर्ण के आभूषण धारण करते हुए, (दिवः-अर्काः) सूर्य के किरणों के तुल्य, तेजस्वी, पूज्य, होकर (अमृतं नाम) अमृत, अविनाशी मार्गों को (वि भेजिरे) धारण करें। (२) वायु गण (वर्ष-निर्णिजः) वर्षा द्वारा जगत् को धोने वाले वा वर्षाओं के दोष को दूर कर शुद्ध करने वाले, (पुरु-द्रप्साः) बहुत जलों वाले, (त्वेष-संदृशः) विद्युत् दीप्ति से ज्ञात होने वाले, (अमृतं) जल और प्राण जीवन को धारण करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ६

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान बलवान् शूरवीर पुरुषो! (वः अंसयोः अधि) आप लोगों के कंधों पर (ऋष्टयः) शत्रुनाशक हथियार हों और (वः बाह्वोः) आप लोगों की बाहुओं में (सहः) शत्रु को पराजय करने में समर्थ (ओजः बल) पराक्रम और बल (हितम्) विद्यमान हों। और (शीर्षसु) आप लोगों के शिरों पर (नृम्णा) मनुष्यों को अच्छा लगाने वाले मुकुट, पगड़ी आदि हों और (वः रथेषु) आप लोगों के रथों पर (आयुधानि) शस्त्र अस्त्र, हों, और (वः तनूषु अधि) आप लोगों के शरीरों पर (विश्वा श्रीः पिपिशे) समस्त प्रकार की लक्ष्मी, विराज कर सुशोभित करे।

गोम॑द॒श्वा॑व॒द्रथ॑व॒त्सु॒वीरं॑ च॒न्द्रव॒द्राधो॑ मरुतो ददा नः ।
प्रश॑स्ति नः कृणुत रुद्रियासो भ॒क्षीय वो॒ऽव॑सो॒ दैव्य॑स्य ॥७॥

भा०—हे (मरुतः) वीरो और विद्वानो ! आप लोग (गोमत्) गौओं (अश्वावत्) अश्वों और (रथवत्) रथों से सम्पन्न और (चन्द्र-वत्) सुवर्णादि से युक्त (सुवीरं) उत्तम पुत्रों और वीरों से सेवित, (राधः) ऐश्वर्य (नः दद) हमें प्राप्त कराओ । हे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले 'रुद्र' सेनापति के हितैषी जनो ! (नः प्रशस्ति कृणुत) आप लोग हमारा शासन उत्तम रीति से करो । हम लोग (वः) आप लोगों के (दैव्यस्य) देव, तेजस्वी राजा के द्वारा अनुशासित (अवसः) रक्षा आदि प्रबन्ध का (भक्षीय) अच्छी प्रकार भोग करें ।

ह॒ये नरो॒ मरु॑तो मृ॒ळता॑ न॒स्तुवी॑मघासो॒ अमृ॑ता॒ ऋत॑ज्ञाः ।
स॒त्य॑श्रुतः॒ कव॑यो॒ युवा॑नो॒ बृह॑द्गिरयो बृ॒हदु॒क्षमा॑णाः ॥८॥२२॥

भा०—(हये) हे (नरः) नायक, नेता पुरुषो ! हे (मरुतः) वायु-वत् बलवान् शत्रुओं को मारने और शरीर से युद्धादि जीवन संकटों में स्वयं भी मरने वाले ! वीरो ! विद्वानो ! आप लोग (तुवि-मघासः) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी, (अमृताः) दीर्घायु, (ऋतज्ञाः) सत्य ज्ञान को जानने वाले, (सत्यश्रुतः) सत्य ज्ञान को श्रवण करने वाले, (कवयः) दूरदर्शी, मेधावी, (युवानः) जवान, (बृहद्-गिरयः) बड़े उपदेष्टा और (बृहत्) बड़े भारी ज्ञान और ऐश्वर्य को (उक्षमाणाः) वहन करने वाले होकर (नः मृडत) हमें सुखी बनाओ । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५८]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ ८ निचृत्-त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

तमु॒ नू॒नं तवि॑षीमन्तमेषां स्तु॒षे ग॒णं मारु॑तं॒ नव्य॑सीनाम्।
य आ॒श्व॑श्वा॒ अम॑व॒द्वह॑न्त उ॒तेशि॑रे अ॒मृत॑स्य स्व॒राजः॑ ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसीनां) नयी, नयी, सदा नवीन, प्रजाओं में विद्यमान (एषां) इन मनुष्यों के (तविषीमन्तं) बल से युक्त (मारुतं गणं) शत्रुओं को मारने वाले प्रबल गण के विषय में—(स्तुषे) मैं उपदेश करता हूं (ये) जो (आशु-अश्वाः) तीव्र वेगवान् अश्वों अश्वारोहियों के स्वामी हों ओर जो (स्व-राजः) स्वयं तेज से देदीप्यमान होकर (अमवत्) बलवीर्य के तुल्य (अमृतस्य) दीर्घ आयु को (वहन्त) धारण करते हुए (ईशिरे) ऐश्वर्य प्राप्त करते और शासन करते हैं।

त्वे॒षं ग॒णं त॒वसं॒ खादि॑हस्तं॒ धुनि॑व्रतं मा॒यिनं॒ दाति॑वारम्।
म॒यो॒भुवो॒ ये अमि॑ता महि॒त्वा वन्द॑स्व विप्र तुवि॒राध॑सो॒ नॄन् ॥२॥

भा०—हे (विप्र) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे राजन् विद्वन्! मेधाविन्! तू (त्वेषं) दीप्तिमान्, (तवसं) बलवान्, (खादि-हस्तं) हाथों में कटक आदि आभूषण तथा, वज्र, तलवार आदि लिये, सशस्त्र, (धुनि-व्रतं) शत्रु को कंपाने का कार्य करने वाले, अथवा जल-प्रवाह के समान एक समान रूप से जाने वाले, (मायिनम्) उत्तम बुद्धियों से सम्पन्न, (दातिवारम्) दान, को प्रेम और श्रद्धा से स्वीकार करने वाले, (गणं) गण्य, मान्य पुरुषों को (वन्दस्व) अभिवादन कर और उनके गुणों की प्रशंसा किया कर। और (ये) जो लोग राष्ट्र में (मयो-भुवः) सुख शान्ति उत्पन्न करने हारे (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (अमिताः) अनन्त पराक्रम और ज्ञान से सम्पन्न हों उनको और जो (तुवि-राधसः नॄन्) बहुत अराधना करने वाले या बहुत ऐश्वर्य वाले नायक पुरुष हों उनको भी (वन्दस्व) आदर पूर्वक नमस्कार कर। वेद ने मानवों में आदरणीय सभी गुणों को दर्शाने वाले नाना विशेषण

दर्शाएं हैं, उन नाना गुणों से युक्त नाना प्रकार के पुरुषों का मान आदर करना चाहिये ।

आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (ये) जो (विश्वे मरुतः) सब मनुष्य वायु गण के समान (वृष्टिं) वर्षा के तुल्य ऐश्वर्य, धन, सम्पदा का वर्षण (जुनन्ति) करते हैं वे (उद-वाहसः) जलों को नाना स्थानों पर पहुंचाने वाले जल-विद्यावित्, जल, नहर कूप आदि के शिल्पीजन (वः) तुम लोगों को (आ यन्तु) प्राप्त हों। हे (मरुतः) विज्ञानवान् पुरुषो ! (यः अयं) यह जो (सम्-इद्धः) खूब तेजस्वी (अग्निः) अग्नि के तुल्य, अग्रणी, ज्ञानप्रकाशक और प्रताप से युक्त वीर और विद्वान् पुरुष हैं वे आप (कवयः) विद्वान् बुद्धिमान् (युवानाः) युवा पुरुषो ! (एतं जुषध्वम्) उसका नित्य सेवन किया करो ।

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥

भा०—हे (यजत्राः) यज्ञशील, पुरुषो ! परस्पर संगत स्त्री पुरुषो ! मैत्री और संघ बनाकर रहने वाले प्रजाजनो ! (यूयम्) आप लोग, (इर्यं) शत्रुओं को कंपाने और भृत्यों व अधीनों को सन्मार्ग में चलाने वाले (विभ्वतष्टं) मेधावी ज्ञानवान् पुरुषों द्वारा उपदेश, ताड़ना, शिक्षा विषयादि द्वारा तैयार किये वा उनके बीच तीव्र प्रजायुक्त, पुरुष को (जनाय) प्रजाजन के हित के लिये (राजानम्) तेजस्वी (जनयथाः) बनाओ। ऐसे को अपना रक्षक बनाओ। हे (मरुतः) मनुष्यो ! (बाहु-जूतः) बाहुबलशाली, (मुष्टि-हा) मुक्कों से ही शत्रु को मार देने वाला, वा राष्ट्र में से मुष्टि अर्थात् चोरी आदि का नाश कर देने वाला, वा

(मुष्टिहा) मुट्ठी के समान संघ बना कर रहने वाले पांचों प्रजाओं द्वारा शत्रु को दण्डित करने वाला पुरुष (युष्मत् एति) तुम लोगों के बीच में से ही आता, प्रकट होता है और (सद्-अश्वः) उत्तम अश्वों का स्वामी, और जितेन्द्रिय (सु-वीरः) उत्तम वीर्यवान्, वीर सैन्य पुरुष भी (युष्मत्-एति) तुम में से ही उत्पन्न होता है।

अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः॥५॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः अचरमा) वायु गण अनन्त, (अकवाः) अकुत्सित विमल जल वाले, (पृश्नेः पुत्राः) सूर्य के पुत्र और पृथिवी के पुरुषों के पालक (स्वया मत्या) अपनी शक्ति से (संमिमिक्षुः) खूब वर्षा करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) हे वीर मनुष्यो ! आप लोग (अराः इव) चक्र में लगे आरों या दण्डों के समान (अचरमाः) एक दूसरे के ऐसे पीछे रहो कि कोई अन्तिम, अरक्षित प्रतीत न हो अर्थात् चक्रव्यूह बना कर रहो। और आप लोग (महोभिः) तेजों और महान् सामर्थ्यों से (अहा इव) दिनों के समान प्रकाशित होकर (अकवाः) परस्पर कभी कुत्सित वचन न कहते हुए, अनल्प सामर्थ्यवान् होकर (प्र प्र जायन्ते) बराबर एक दूसरे के पीछे आते जाया करो ऐसे आप लोग (पृश्नेः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा और अन्नदात्री भूमि और मेघवत् निष्पक्षपात गुरु और सेक्ता पिता के (पुत्राः) पुत्र होकर (उपमासः) सभी एक दूसरे के तुल्य एवं अन्यों के आगे उपमा या उत्तम दृष्टान्त होने योग्य, सर्वानुकरणीय, (रभिष्ठाः) अति अधिक बल से कार्य प्रारम्भ करने वाले, वेगवान्, बलवान् होकर (स्वया मत्या) अपनी बुद्धि और शक्ति से (सं मिमिक्षुः) परस्पर मिल कर शत्रु पर शरवर्षण, गृहस्थ में निषेक, एवं राष्ट्र में राज्याभिषेक, और प्रजावर्ग में क्षेत्रादि सेक और परस्पर की वृद्धि किया करो।

यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्त्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६॥

भा०—(मरुतः पृषतीभिः) वायु गण जिस प्रकार जल सेचन करने वाली मेघ-घटाओं से और (वीडु-पविभिः) बलवान् वज्राघातों से प्रहार करते हैं, तब (आपः क्षोदन्ते) जल बून्द २ में फट २ कर आते हैं और (वनानि रिणते) वृक्ष-वनों को आघात करते हैं और (उस्त्रियः वृषभः) किरणों का स्वामी वर्षणशील (द्यौः) सूर्य और (उस्त्रियः) पृथिवी का हितैषी मेघ रूप से गर्जता है । उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जब आप लोग (पृषतीभिः) शत्रु पर शरवर्षण करने वाली सैन्य घटाओं और मद सेचन करने वाली गज घटाओं तथा (अश्वैः) वेगवान् अश्वों से और (वीडु-पविभिः) दृढ़ चक्र धार वाले (रथेभिः) रथों से (प्रायासिष्ट) प्रयाण करते और तुम्हारा नेता भी उक्त साधनों सहित प्रयाण करता है, तब (आपः) आप्त, प्रजा गण (क्षोदन्ते) धनैश्वर्यादि से बरसते हैं, और (वनानि रिणते) सैन्य जन और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और (उस्त्रियः) भूमि का हितैषी, वा किरणों से तेजस्वी, (द्यौः) सूर्य के समान प्रकाशमान वीर पुरुष (अव क्रन्दतु) गर्जना करे ।

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्या युयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

भा०—(एषां यामन् पृथिवी प्रथिष्ट) वायुओं के चलने पर जिस प्रकार पृथिवी भी अति विस्तृत क्षेत्र है उसी प्रकार (एषां यामन्) इन वीर पुरुषों के शासन और प्रयाण करने के काल में (पृथिवी) यह भूमि (प्रथिष्ट) अति विस्तृत और प्रसिद्ध हो । (भर्त्ता यथा स्वं शवः गर्भं दधाति) स्त्री का पति जिस प्रकार अपने वीर्य को गर्भ रूप से धारण कराता है उस प्रकार वायु गण भी (स्वं शवः) अपने जल रूप (गर्भं)

गृहीत अंश को अन्तरिक्ष में धारण कराते हैं उसी प्रकार वीर पुरुष भी (भर्त्ता इव) अपने पालक राजा के समान ही (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य (स्वम् इत् शवः) अपने धन और बल को (धुः) धारण करें जिस प्रकर (धुर्याः) धारक वायु गण (वातान् युयुज्रे) वायु के झकोरों का लगाते हैं उसी प्रकार (धुर्याः) सैन्यों और राष्ट्र के धारण करने में समर्थ, कुशल पुरुष (वातान् अश्वान्) वायुवत् तीव्रगामी अश्वों को (युयुज्रे) रथ में जोड़े। और (रुद्रियासः) दुष्टों को रुलाने वाले वे वीरजन (वर्ष) वर्षा के तुल्य ही प्रस्वेद को (स्वेदं चक्रिरे) उत्पन्न करें अर्थात् श्रमपूर्वक धनोपार्जन और विजय करें।

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥२३॥

भा०—हे (मरुतः नरः) वायुवत् बलवान्, प्राणवत् प्रिय, नायक पुरुषो ! आप लोग (तुवि-मघासः) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी (अमृताः) दीर्घायु और (ऋत-ज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले होकर (नः मृडत) हमें सदा सुखी करो। आप लोग (सत्य-श्रुतः) सत्य ज्ञान का श्रवण करने वाले, (कवयः) क्रान्तदर्शी, (युवानः) सदा जवान, शक्तिमान्, (बृहद्-गिरयः) गुणों में बड़े, पर्वत वा मेघ के तुल्य सुखों की धारा बहाने वाले और (उक्षमाणाः) वायुओं के तुल्य क्षेत्रों में जल वीर्यादि सेचन करते हुए (बृहत्) बहुत सा धन धान्य, प्रजा, ऐश्वर्य भी प्राप्त करो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५६]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ४ विराड्जगती। २, ३, ६ निचृज्जगती। ५ जगती। ७ स्वराट् त्रिष्टुप्। ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥

भा०—हे राजन् ! जो वीर पुरुष एवं प्रजा के लोग (सुविताय) उत्तम मार्ग में सुखपूर्वक जाने के लिये, सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिये और (दावने दिवे) दानशील तेजस्वी पुरुष राजा के लिये और (पृथिव्यै) और पृथिवी वा उसके वासी जनों और अज्ञानी आश्रित जनों के (भरे) भरण पोषण वा संग्रामादि के लिये (ऋतम् प्र अक्रन्) जल, अन्न उत्पन्न करते और सत्य न्याय की व्यवस्था वा प्रयाण करते हैं, हे राजन् ! तू (स्पट्) सर्वद्रष्टा, सर्वाध्यक्ष होकर भी उनका (प्र अर्च) अच्छी प्रकार आदर-सत्कार किया कर । इसी प्रकार जो वीर, प्रजा जन (अश्वान् उक्षन्ते) अश्वों को सेचते या अश्व सैन्यों को संचालित करते हैं, उनका भरण पोषण, वर्धन आदि का भार अपने ऊपर लेते हैं, और जो (रजः) समस्त लोक को (तरुषन्त) व्यापते, दुनियां भर में जाते आते रहते हैं, और जो (अर्णवैः) जल भरे समुद्रों वा नदियों द्वारा (अनु) निरन्तर (स्वं भानुं) अपने तेज वा देदीप्यमान धनैश्वर्य को (श्रथयन्ते) सञ्चित करते हैं उन व्यपारी और यान-कुशल लोगों का भी तू (प्र अर्च) अच्छी प्रकार आदर कर । ये वायुगण (दिवे पृथिव्यै ऋतम् अक्रन्) आकाश से जल और पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करते हैं (अश्वान्) मेघों वा सूर्य किरणों को धारते, उन द्वारा वृष्टि कराते, (रजः) अन्तरिक्षों में वेग से जाते, जलों सहित (भानुं) सूर्य प्रकाश को शिथिल, सह्य कर देते हैं ।

अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन वायुवत् बलवान् पुरुषों के (भियसा) भय से (भूमिः) भूमि (नौः न) नाव के समान (एजति) कांपती है । और (अमात् यती) घर से निकलती हुई (व्यथिः) दुःखों से पीड़ित हुई स्त्री के तुल्य यह (पूर्ण) जल से पूर्ण, या सर्वपालक अन्तरिक्ष परराष्ट्र

भूमि भी (क्षरति) अश्रुवत् जल वर्षण करती है। (ये) जो विद्वान् और वीर पुरुष (दूरे-दृशः) दूरवीक्षणादि यन्त्रों से दूर देशों तक देखने में समर्थ एवं बुद्धिपूर्वक दूर भविष्य को भी देख लेने वाले हैं वे (एमभिः) ज्ञानों से, मार्गों से, और अपने गमन, आचरणादि से (चितयन्त) अन्यों को सेचत करें और (नरः) वे नायक जन (अन्तः महे विदथे) भीतरी, बड़े भारी ज्ञान और यज्ञ संग्रामादि में भी (येतिरे) यत्नशील हों।

गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।
अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३॥

भा०—हे (नरः) उत्तम नायको ! हे विद्वान् पुरुषो ! (गवाम्-इव शृङ्गम् उत्तमम्) जिस प्रकार गौवों का सींग सब से ऊंचा तथा (श्रियसे) उसके शरीर की शोभा के लिये भी होता है उसी प्रकार आप लोगों का (उत्तमम्) सबसे उत्तम (शृङ्गम्) शत्रु को मारने वाला शस्त्रास्त्र बल भी (श्रियसे) प्रजा को आश्रय देने और शोभा, लक्ष्मी की वृद्धि के लिये हो। (रजसः विसर्जने सूर्यम् चक्षुः) प्रकाश और जल के देने के लिये जिस प्रकार सूर्य ही सर्वप्रकाशक है, उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुषो! (रजसः विसर्जने) राजस भावों के त्याग और अन्य लोगों के विविध मार्गों में चलाने के लिये आप लोगों का (चक्षुः) सत्य तत्वदर्शी दर्शन ही सूर्यवत् प्रकाशक हो। और आप लोग (अत्याः इव) वेगवान् अश्वों के समान (सुभ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, उत्तम क्षेत्र से उत्पन्न, उत्तम भूमियों के स्वामी और (चारवः) उत्तम मार्ग में चलने वाले (स्थन) होवो। और आप लोग (श्रियसे) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (मर्याः इव) सामान्य मनुष्यों के समान होवो, (चेतथ) सदा सावधान रहो, पदाधिकार के मद में अपव्ययी और उपेक्षाकारी मत होवो।

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४॥

भा०—हे वीरो विद्वान् पुरुषो ! (महतां वः) आप बड़े सामर्थ्यवान् लोगों के (महान्ति) बड़े २ विज्ञान आदि सामर्थ्यों को (कः) कौन (उत् अश्नवत्) पा सकता है। आप लोगों के (काव्या) विद्वानों द्वारा कहे कार्यों, विद्वान् बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा बनाये शस्त्रों का भी पार (कः) कौन पा सकता है, (पौंस्या) और आप लोगों के पौरुष, पराक्रमों को भी (कः ह) कौन मुक़ाबला कर सकता है। (यूयं ह) आप लोग (भूमिं) भूमि को (किरणं न) सूर्य के प्रकाशक किरण के समान (प्र रेजथ) उत्पन्न और विचलित कर सकते हो। (यत्) आप लोग (सुविताय) ऐश्वर्यवान् दाता, स्वामी की वृद्धि के लिये (प्र भरध्वे) उत्तम रीति से प्रजा का भरण पोषण तथा शत्रु पर प्रहार करते हो। वे भरण पोषण द्वारा प्रजा को उन्नत और प्रहारों द्वारा शत्रु को विचलित करते हैं।

अश्वा॑ इ॒वेद॑रु॒षास॒: सब॑न्धव॒: शूरा॑ इव प्र॒युध॒: प्रोत यु॑युधुः।
मर्या॑ इव सु॒वृधो॑ वावृधु॒र्नर॒: सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒: प्र मि॑नन्ति वृ॒ष्टिभि॑: ॥५॥

भा०—वे वीर और विद्वान् पुरुष (अश्वाः इव) वेगवान् घोड़ों वा घुड़सवारों के समान (अरुषासः) लाल वर्णों की पोषाकों वाले, वा तेजस्वी अथवा रोषरहित, (स-बन्धवः) समान रूप से परस्पर बन्धुवत् वा एक ही नायक के अधीन एक साथ समान रूप से बंधे हुए, वे (शूराः इव) शूरवीर योद्धाओं के समान (प्र-युधः) अच्छी प्रकार प्रहार करने में समर्थ होकर (युयुधुः) युद्ध करें। वे (नरः) नायक पुरुष (मर्याः इव) मनुष्यों के समान (सु-वृधः) प्रजाओं की वृद्धि करते हुए स्वयं भी (ववृधुः) बढ़ें। (वृष्टिभिः) वर्षाओं से जिस प्रकार वायुगण (सूर्यस्य चक्षुः प्रमिनन्ति) सूर्यादि के प्रकाशक तेज को नष्ट करती हैं उसी प्रकार वे भी (वृष्टिभिः) शस्त्रास्त्र वर्षाओं द्वारा संग्राम में (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी शत्रु जन के (चक्षुः) आंखों को (प्र मिनन्ति) अच्छी प्रकार नाश करें।

ते अ॒ज्ये॒ष्ठा अक॑निष्ठास उ॒द्भिदो॑ऽमध्य॒मासो॒ मह॑सा॒ वि वा॑वृधुः ।
सु॒जा॒तासो॑ ज॒नुषा॒ पृश्नि॑मातरो दि॒वो मर्या॒ आ नो॒ अच्छा॑ जिगातन ६

भा०—(ते) वे (अज्येष्ठाः) ज्येष्ठ, अपने से बड़े पुरुष से पृथक् (अकनिष्ठासः) बहुत छोटे व्यक्तियों से पृथक् और (अमध्यमासः) मध्यम, समान व्यक्तियों से पृथक्, निर्मम (उद्भिदः) पृथ्वी को फोड़ कर उत्पन्न होने वाले वृक्षों के समान सदा ऊंचे लक्ष्य को भेदने वाले, अथवा उत्तम फल उत्पन्न करने वाले, उत्तम मनुष्य (महसा) महान् सामर्थ्य से (वि व-वृधुः) विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त करें । वे (सु-जातासः) उत्तम ऐश्वर्य आदि गुणों में प्रसिद्ध (जनुषा) जन्म से, स्वभावतः (पृश्नि-मातरः) सूर्य से उत्पन्न किरणों के समान सर्वपोषक, भूमि-माता के पुत्र एवं ज्ञान, पोषक आचार्य के पुत्र तुल्य वीर जन (दिवः) नाना कामनाओं को करने वाले (मर्याः) मनुष्य (नः) हमें (अच्छ जिगातन) उत्तम रीति से प्राप्त हों ।

वयो॒ न ये श्रेणीः॑ प॒प्तुरोज॒सान्ता॑न्दि॒वो बृ॑ह॒तः सानु॑न॒स्परि॑ ।
अश्वा॑स एषामु॒भये॒ यथा॑ वि॒दुः प्र पर्व॑तस्य नभ॒नूँर॑चुच्यवुः ॥७॥

भा०—जो वायुवत् बलवान् वीर सैनिक गण (वयः) पक्षियों वा सूर्य की किरणों के समान (श्रेणीः) श्रेणियां या पंक्तियें बनाकर (पप्तुः) प्रयाण करते और (ओजसा) बल पराक्रम से (बृहतः दिवः) बड़े २ व्यवहारों वा बड़ी कामनाओं को और (सानुनः परि) अन्न शिखर-वत् भोगने योग्य उत्तम पद के ऊपर भी प्राप्त होते हैं । जिस प्रकार वायु गण (पर्वतस्य नभनून् अचूच्यवुः) मेघ की गर्जती जल-धारों और वज्रों को चलाते वा गिराते हैं उसी प्रकार (एषाम्) इनके (उभये) दोनों प्रकार के (अश्वासः) अश्वारोही जन (यथा विदुः) जैसा भी जानते और ऐश्वर्यादि प्राप्त करते हैं तदनुसार, (पर्वतस्य) अपने परिपालक राजा वा सेनापति के (नभनून्) आज्ञा के वचनों को (प्र अचुच्युवुः) अच्छी प्रकार

पालन करते हैं। पूर्वार्ध में कहे इनके अश्वों को दो प्रकार जानें एक जो पंक्ति-बद्ध होकर चलें दूसरे जो मुख्य पद पर स्थित हों वा स्वयं व्यवहार व्यापार एवं नाना कार्यों में नियुक्त होकर पृथक् २ जावें। नभन्वः इति नदी नाम।

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥२४॥

भा०—(द्यौः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (नः वीतये) ज्ञान से प्रकाशित करने और पालन के लिये (मिमातु) हमें प्राप्त हो, हमें उन्नत बनावे। और (अदितिः) पृथिवी जिस प्रकार (वीतये) खाने के लिये अन्न को पैदा करती है उसी प्रकार अखण्ड शासक राजा वा माता और पिता (नः वीतये) हमारे तेज और भोजनादि के लिये उपाय करे। (उषसः) प्रभात बेलाओं के समान कान्तिमती, प्रिय स्त्रियें (दानु-चित्राः) नाना देने योग्य आभूषणों से चित्र विचित्र, मनोहर होकर (सं यतन्ताम्) पुरुषों के साथ उद्योग किया करें। अथवा—(उषसः) शत्रु दग्ध करने वाली तेजस्विनी सेनाएं (दानु-चित्राः) छेदन भेदन करने वाले हथियारों से अद्भुत आश्चर्यकारिणी होकर (सं यतन्ताम्) मिल कर विजय का उद्योग किया करें। हे (ऋषे) द्रष्टः ! सर्वाध्यक्ष ! (एते) ये (गृणानाः मरुतः) स्तुति योग्य एवं अन्यों का उपदेश करने वाले वीर और विद्वान् पुरुष, (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले सेनापति तथा सर्वोपदेष्टा आचार्य के (दिव्यं कोशम्) दिव्य खड्ग तथा दिव्य ज्ञानमय कोश को (अचुच्युवुः) आगे बढ़ कर प्रयोग में लावें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[६०]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ मरुतो मरुतो वाग्निश्च देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। २ भुरिक् त्रिष्टुप्। विराट् त्रिष्टुप्। ७, ८ जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१॥

भा०—मैं प्रजाजन (सु-अवसं) उत्तम रक्षा करने वाले (अग्निम्) ऐसे अग्रणी पुरुष को (नमोभिः) आदर सत्कारों से (ईडे) अपने ऊपर अधिकारी बनाना चाहता हूं जो (प्र-सत्तः) उत्कृष्ट पद पर विराज कर (नः) हमारे (कृतं) किये कामों को (वि चयत्) विवेक पूर्वक जाने, अच्छे बुरे का अच्छी प्रकार विवेक करे। और (वाजयद्भिः रथैः) संग्राम करने वाले रथों से जिस प्रकार (मरुतां स्तोमम् भरे) शत्रु को मारने वाले वीर पुरुषों का गण संग्राम में अच्छी प्रकार समृद्ध होता है, उसी प्रकार मैं प्रजाजन (भरे) अपने पालन पोषण के निमित्त (वाजयद्भिः रथैः) अन्न ऐश्वर्यादि के लिये गमन करने वाले रथों, यानों से (प्र-दक्षिणित्) खूब पृथिवी भर के देशों का चक्कर लगाता हुआ (मरुतां स्तोमम्) राष्ट्रवासी मनुष्यों के समूह को (प्र ऋध्याम्) अच्छी प्रकार समृद्ध करूं। अथवा—(वाजयद्भिः रथैः इव प्र भरे) संग्रामकारी यानों से जिस प्रकार शत्रुओं पर प्रहार करूं उसी प्रकार धनैश्वर्यादि से लदी गाड़ियों से मैं खूब (प्र भरे) अपनों को पुष्ट करूं वा खूब समृद्धि अपने देश में लाऊं। और (प्र-दक्षिणित्) आदर पूर्वक प्रदक्षिणा करता हुआ (मरुतां स्तोमम् ऋध्याम्) विद्वानों के उपदेश स्तुत्य गुणों को अच्छी प्रकार बढ़ाऊं, अधिक सफल और उच्च करूं।

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् २

भा०—(ये) जो (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने और सबको उपदेश करने वाले वीरजन, विद्वान् जन (सुखेषु रथेषु) सुखजनक रथों में और (श्रुतासु पृषतीषु) चित्र विचित्र अश्वों और हृदय, अन्तःकरण में

ज्ञान का रस वर्षाने वाली, श्रवण योग्य विद्याओं में (आतस्थुः) विराजते हैं उन (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (वना चित्) सूर्य की किरणों के समान तीक्ष्ण, (उग्राः) वेग से चलने वाले वायु के समान शत्रुगण भी (नि जिहते) नीचे हो जाते हैं, विनीत हो जाते हैं। (पृथिवी चित् रेजते) पृथिवी के समान उसमें निवासिनी प्रजा भी कांपती है, उसका आतङ्क और आदर मानती है, (पर्वतः चित् रेजते) पर्वत या मेघ के तुल्य ऊंचा राजा घोर योद्धा शत्रु भी कांपता, विचलित हो जाता है।

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥ ३ ॥

भा०—हे वीर, विद्वान् पुरुषो! (वः स्वने) आपका गर्जन और उपदेश होने पर (पर्वतः चित्) मेघ वा पर्वत के तुल्य (वृद्धः) बल शक्ति में बढ़ा हुआ शत्रु भी (महि बिभाय) बहुत अधिक भयभीत होता है। (दिवः चित् सानु) आकाश के उच्च भाग के समान (दिवः सानु) तेजस्वी, और धनार्थी पुरुष का भी शिखर, शिर आदि कांप जाता है, वह भी अस्थिरबुद्धि हो जाता है। हे (मरुतः) वीरो! विद्वान् पुरुषो! (यत्) जब आप लोग (ऋष्टि-मन्तः) शस्त्रों और उत्तम ज्ञानों से सम्पन्न होकर (क्रीडथ) विहार, विनोद करते हो तब जिस प्रकार वायु वेगों से जलधाराएं मेघ से एक साथ नीचे आ उतरती हैं उसी प्रकार आप लोग भी (आपः) जल धाराओं के समान, आप्त, (सध्यञ्चः) एक साथ गमन करते हुए (धवध्वे) शत्रुगण को कंपाओ और आगे बढ़ो।

वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (वरा इव रैवतासः) जिस प्रकार विवाह योग्य वर लोग धन सम्पन्न, होकर (तन्वः) शरीरों को (हिरण्यैः)

सुवर्ण के आभूषणों से और (स्वधाभिः) अन्नों से (पिपिश्रे) अपने को सजाते और अंग २ को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (रैवतासः) धन-धान्य और पशु सम्पत्ति से सम्पन्न होकर (हिरण्यैः स्वधाभिः) हित और रमणीय गुणों, सुवर्णादि आभूषणों और अपने देह की धारक शक्ति और अन्नों से (तन्वः पिपिश्रे) अपने शरीर के प्रत्येक अंग को सुन्दर और दृढ़ करो। और आप लोग (श्रेयांसः) अति श्रेष्ठ और (तवसः) बलशाली होकर (रथेषु) रथों पर आरूढ़ होकर और (तनूषु) अपने देहों में सुशोभित रहकर (श्रिये) धन समृद्धि और शोभा की वृद्धि के लिये (महांसि सत्रा) बड़े २ युद्ध और बड़े २ यज्ञ, अधिवेशन आदि (चक्रिरे) करें।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥

भा०—(एते) ये मनुष्य, समस्त विद्वान् और वीरगण, (अज्येष्ठासः) परस्पर न एक दूसरे से बड़े और (अकनिष्ठासः) न एक दूसरे से छोटे, एक समान, मान-आदर, पदाधिकार से युक्त होकर (भ्रातरः) भाइयों के समान एक दूसरे को पुष्ट करते हुए (सौभगाय) सौभाग्य, अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ववृधुः) खूब बढ़ें। (एषां) इनका (पिता) पालन करने वाला (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला, उनको दूर करने में समर्थ, एवं उत्तम उपदेष्टा, और (युवा) सदा बलशाली, (सु-अपाः) उत्तम सुखजनक कर्मों का करने वाला वा (स्व-पाः) अपने बन्धुवत् वा परिजनों की वा ऐश्वर्य की रक्षा करने हारा है। (मरुद्भ्यः) इन वायुवत् बलवान् और कर्मण्य प्रजावर्गों के लिये (पृश्निः) सूर्य, आकाश और पृथिवी, (सु-दुधा) गौ के समान सुख पदार्थ देने वाली, और जलवर्षी और अन्नदात्री हों और (सुदिना) सूर्य उत्तम दिन प्रकट करने हारा हो। इसी प्रकार 'वायु' अर्थात् ज्ञान की कामना

करने वाले शिष्यगण 'मरुत्' हैं वे समान रूप से भ्रातृवत् रहें, उनका पिता आचार्य और विद्वान् वेदवित्, उत्तम ज्ञान-रस देने हारा हो।

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान्, वीर, ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग जो (यत् उत्तमे यत् मध्यमे यत् वा अवमे) जो, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट (दिवि) व्यवहार वा काम्य कर्मों में, या पदों या स्थानों पर (स्थ) रहते हो वहां भी आप लोग (सु-भगासः) उत्तम ऐश्वर्यवान् होकर रहो। (हे रुद्राः उत वा हे अग्ने) हे दुष्टों को रुलाने वालो ! और हे अग्नि के समान तेजस्विन् नायक ! हम लोग (यत् यजाम) जो कुछ दें वा आप लोगों का आदर सत्कार करें आप लोग (अस्य हविषः) इस देने योग्य अन्न आदि को (नु) सदा (नः वित्तात्) हमारा आदर पूर्वक स्वीकर करें।

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ७

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! आप (विश्व-वेदसः) सब प्रकार के धनों के स्वामी (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष आप (दिवः) ज्ञान प्रकाश तेज की कामना करते हुए (उत्तरात्) अपने से उत्कृष्ट (दिवः) ज्ञानयुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (स्नुभिः) अन्य उत्तम इच्छावान् पुरुषों सहित वा ज्ञान के उपदेशों द्वारा (यत् अधि वहध्वे) जो अधिकार वा ज्ञान प्राप्त करते हो, (ते) वे आप लोग (मन्दसानाः) आनन्द प्रसन्न (धुनयः) बाह्य और भीतरी शत्रुओं को कंपाते, दूर करते हुए (रिषादसः) हिंसक प्राणियों का नाश करते हुए (यजमानाय) ज्ञान आदि का दान, उत्तम गुणों की याचना और सत्संग आदि करने

वाले तथा (सुन्वते) अन्न ऐश्वर्यादि देने वाले पुरुष की वृद्धि के लिये (वासं) उत्तम ऐश्वर्य (धत्त) प्रदान करो।

अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ८।२५

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे (वैश्वानर) समस्त नरों के हितैषिन्! सबके नायक! हे विद्वान् आचार्य! तू (शुभयद्भिः) शोभायुक्त, शुभ मार्ग से जाने वाले, (ऋक्वभिः) वेदज्ञ, (गणश्रिभिः) गण की शोभा धारण करने वाले पुरुषों से (मन्दसानः) आनन्दित, होता हुआ (सोमं पिब) ऐश्वर्य का उपभोग कर और (पावकेभिः) अन्यों को पवित्र करने वाले, अग्नि के समान कण्टकशोधन करने हारे (विश्वमिन्वेभिः) समस्त विश्व को प्रसन्न करने वाले, वीर विद्वान् (आयुभिः) पुरुषों सहित तू (प्रदिवा केतुना) अति तेजस्वी ध्वजा वा उत्तम व्यवहार युक्त अति पुरातन सर्वज्ञापक, ज्ञानमय वेद से (सजूः) समान रूप से सुशोभित होकर तू (सोमं पिब) सौम्य शिष्यगण एवं राजगण का पालन कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[६१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः॥ १—४, ११—१६ मरुतः। ५—८ शशीयसी तरन्तमहिषी। ९ पुरुमीळ्हो वैददश्विः। १० तरन्तो वैददश्विः। १७—१९ रथवीतिर्दाल्भ्यो देवताः॥ छन्दः—१—४, ६—८, १०—१९ गायत्री। ५ अनुष्टुप्। ९ सतोबृहती॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम्॥

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय।
परमस्याः परावतः॥ १॥

भा०—मनुष्यों को परस्पर किस प्रकार कुशल प्रश्न आदि व्यवहार करना चाहिये इसका उपदेश करते हैं। हे (नरः) विद्वान् पुरुषो! आप

लोग (के स्थ) कौन हैं। (ये) जो (श्रेष्ठतमाः) अति श्रेष्ठ हैं वे (एकः एकः) आप एक एक करके (परमस्याः) परम, सर्वोत्तम बहुत ही (परावतः) दूर की सीमा से (आयय) आया करते हैं। दूर २ के देश से आने वाले एक २ व्यक्ति का भी आदरपूर्वक आतिथ्य करना चाहिये। उनका नाम पूछते रहना चाहिये।

क्व१ वोऽश्वाः क्वा३भीशवः कथं शेक कथा यय।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥ २ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (वः) आप लोगों के (अश्वाः क्व) अश्व कहां हैं? (अभीशवः क्व) बाग डोरें कहां है। (कथं शेक) किस प्रकार आप शीघ्र गमन करने में समर्थ होते हैं। (कथा यय) किस प्रकार से गमन करते हो? (पृष्ठे सदः) पीठ पर किस प्रकार बैठने का साज है! (नसोर्यमः) नासिकाओं में नाथ के समान पशु आदि को नियन्त्रण करने वाला सारथी कहां है! अध्यात्म में—(१) ये मरुत गण लोग जीव हैं, श्रेयो मार्ग में स्थित होने से श्रेष्ठतम हैं, अकेला जीव संसार में जन्मता है, परम धाम से आता है सही पर वह जीव क्या है? (२) उनके 'अश्व' प्राणादि अभीशु। वासनादि कहां रहते हैं किस प्रकार वे शरीर धारण में समर्थ होते हैं किस प्रकार वे गति करते हैं? इन प्राणगण की पृष्ठ देश में किस प्रकार से स्थिति है नासिका छिद्रों में किस प्रकार उनका नियन्त्रण है? अर्थात् जीवों और प्राणों का इस देह में जीवन, प्राण-ग्रहण आदि का क्या रहस्य है?

जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः।
पुत्रकृथे न जनयः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अश्वों के (जघने चोदः) जघन अर्थात् चूतड़ भाग पर कशा का प्रहार होता है उसी प्रकार (एषां) इन मनुष्यों और वीर पुरुषों के (जघने) निरन्तर गमन कार्य और हनन कार्य में भी

(चोदः) प्रेरक पुरुष नियुक्त हो । वे लोग इस अवसर पर (सक्थानि वि यमुः) अपने घुटने से टखने तक की टांगों को विशेष प्रकार से बांध लिया करें । और जिस प्रकार (पुत्र-कृथे न) पुत्र उत्पन्न करने के लिये (जनयः) स्त्री वा पुरुष लोग (वि यमुः) विशेष रूप से नियमपूर्वक प्रतिज्ञाबद्ध होकर परस्पर विवाहित हो जाते हैं उसी प्रकार ये मनुष्य भी (पुत्र-कृथे) पुत्रादि के लिये, (सक्थानि वि यमुः) प्राप्त करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये विशेष २ नियमों से बद्ध हों ।

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः ।
अग्नितपो यथासथ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वीरासः) वीर पुरुषो ! हे (मर्यासः) शत्रुओं को मारने वाले सैनिक जनो ! जिस प्रकार (भद्र-जानयः) सुखकारी स्त्री को प्राप्त करने वाले पुरुष दूर २ देश तक जाते और दूर देश में विवाह करते हैं उसी प्रकार आप लोग (भद्र-जानयः) सुखकारी पदार्थों को जानने और पैदा करने हारे होकर (परा एतन) दूर देशों तक जाया करो और जिस प्रकार विवाहेच्छुक जन (अग्नि-तपः) यथा पूर्ववयस में अग्नि अर्थात् आचार्य के अधीन ब्रह्मचर्यादि तप करके रहते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (अग्नि-तपः) अग्रणी पुरुष के आधीन प्रतापी एवं अग्नि वा शत्रु को तपाने वाले (असथ) हुआ करो ।

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय यो दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(या) जो स्त्री (श्यावाश्व-स्तुताय) श्यामकर्ण या लाल, काले, तैलिये रंग के अश्वों द्वारा प्रशंसित अथवा जितेन्द्रिय होने से प्रशंसित (वीराय) वीर्यवान् पुरुष को (दोः) अपनी भुजा (उप बर्बृहत्) सिरहाने के समान देती है वह स्त्री वीर पुरुष से विवाह करके (अश्व्यं) अश्वों (गव्यं) गौओं से युक्त (पशुम्) नाना पशु सम्पदा

को और (शतावयम्) सैकड़ों भेड़ों के धन को भी (सनत्) निरन्तर भोग करती है । इति षड्विंशो वर्गः ॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी ।
अदेवत्रादराधसः ॥ ६ ॥

भा०—(त्वा) वह स्त्री जो (वस्यसी) उत्तम धन सम्पन्न है वह (पुंसः शशीयसी भवति) पुरुष को समस्त संकटों से पार करनेहारी, प्रशंसनीय है । वह (अदेवत्रात्) जो मनुष्य देव अर्थात् अपने भीतर उत्तम उज्वल गुणों और विद्वान् पुरुषों की रक्षा नहीं करता, और (अराधसः) आराधना नहीं करता वा धन से हीन है उससे पृथक् रहे ।

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् ।
देवत्रा कृणुते मनः ॥ ७ ॥

भा०—(या) जो स्त्री ! (जसुरिं) पीड़ा देने वाले, (तृष्यन्तं) तृष्णातुर और (कामिनं) कामी पुरुष को (वि वि) विपरीत भाव से (जानाति) जान लेती है वह अपने (मनः) मन को (देवत्रा कृणुते) देव, दानशील, विद्वान् तेजस्वी पुरुषों में लगा देती है । और वह पीडक, तृष्णातुर, लोभी, विषयासक्त कामी पुरुष को न वर कर उत्तम पुरुषों में अपना पति वरण करे ।

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः ।
स वैरदेय इत्समः ॥ ८ ॥

भा०—(उत घ) और जो (पुमान्) पुरुष (नेमः) गृहस्थ में स्त्री का अर्धाङ्ग है वह पुरुष (अस्तुतः) अप्रशस्त, गुणहीन है और वह जो (पणिः) प्रशंसनीय विद्यादि गुणों से युक्त है वे दोनों भी (वैरदेये) परस्पर वैर अर्थात् कलह पालने के कार्य में, अथवा (वैर-देये) वीर्य द्वारा पुत्र के दान करने के कार्य में स्त्री पुरुषों में (समः इत्) दोनों समान हैं (इति ब्रुवे) मैं ऐसा कहता वा जानता हूं । कलह उत्पन्न होजाने पर

मूर्ख पण्डित दोनों समान रूप से अप्रिय हो जाते हैं, इसी प्रकार पुत्र प्राप्ति के लिये भी मूर्ख और विद्वान् गुणहीन और गुणाढ्य प्रेम भाव बने रहने पर पुत्र लाभ के कार्य में समान ही स्त्री का आधा अंग बने रहते हैं।

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम्।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९ ॥

भा०—(युवतिः) जवान स्त्री (ममन्दुषी) इष्ट, प्रसन्न चित्त होकर (रोहिता) लोहित, वर्ण के उत्तम वैवाहिक वस्त्र धारण करती हुई, अनुरागवती होकर (पुरुमीढाय) बहुत से पुत्रों का निषेक करने में समर्थ, बहुत वीर्यवान् (श्यावाय) स्वयं भी रक्तवर्ण, अश्व के समान दृढ़, हृष्ट पुष्ट उज्ज्वल वर्ण (विप्राय) विद्वान् (दीर्घयशसे) महा यशस्वी (मे) मेरे लिये (वर्त्तनिम्) अपने मार्ग वा व्यवहार को (अरपत्) आलाप द्वारा कहे तब दोनों स्त्री पुरुष (रोहित) रक्त वर्ण के, परस्परानुरक्त होकर (वि येमतुः) विशेष रूप से दाम्पत्य सम्बन्ध में बंध जाते हैं।

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथाददत्।
तरन्त इव मंहना ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (मंहना) बड़े भारी नाव द्वारा (तरन्तः-इव) समुद्र के पार उतार देने वाले नाविक के समान अपने महान् सामर्थ्य या दानशीलता से संसार के सागर से पार उतारने हारा होकर (वैददश्विः) अश्वों इन्द्रियों को अपने वश करता है वह जितेन्द्रिय पुरुष ही (मे) मुझे (धेनूनां शतं) मानो सैकड़ों दुधार गौवें तथा उत्तम २ वाणियां देता है।

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु।
अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (अत्र) इस लोक में (श्रवांसि) श्रवण करने योग्य ज्ञानों, अन्नों और कीर्तियों को (दधिरे) श्रवण करते हैं और (म-

दिरं) हर्षजनक (मधु) अन्न और ज्ञान का (पिबन्तः) पान करते हैं वे (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वों से रथ के समान अपने (आशुभिः) वेग से जाने वाले दृढ़ अंगों द्वारा (इँ) इस गृहस्थ रूप रथ को भी (वहन्ते) धारण करते हैं ।

येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा ।
दिवि रुक्म इवोपरि ॥ १२ ॥

भा०—(दिवि उपरि रुक्मः इव) आकाश में उपर जिस प्रकार अति रुचिकर तेजस्वी सूर्य प्रकाशमान होता है और उसकी (श्रिया रोदसी) कान्ति से आकाश और पृथिवी दोनों प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार (येषां श्रिया) जिनकी लक्ष्मी और कान्ति से (रोदसी) ये समस्त स्त्री और पुरुष (अधि) अधिक शोभा पाते हैं और जो वे ही (रथेषु) रथों में और रमण योग्य गृहस्थ कार्यों में भी (वि भ्राजन्ते) विशेष रूप से चमकते हैं ।

युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः ।
शुभंयावाप्रतिष्कुत ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु गण (त्वेष-रथः) दीप्तिमान् सूर्य के द्वारा वेग से जाने हारा होता है तथा वह (अप्रतिष्कुतः) किसी से भी उसकी शक्ति बाधित नहीं होती और वह (शुभं-यावा) जल वृष्टि प्राप्त कराता है उसी प्रकार (युवा मारुतः गणः) युवावस्था में मनुष्य होते हैं । (सः) वह भी (त्वेष-रथः) अति चमकीले रथ में चढ़कर (अनेद्यः) अनिन्दनीय, भव्य वेश, उत्तम आचारवान् सज्जन हों । एवं (शुभं-यावा) शोभा युक्त होकर शुभ धर्मयुक्त मार्ग पर चलें। एवं (अप्रति-स्कुतः) अन्यों से स्पर्द्धा में अपराजित, सुदृढ़ हों । (२) प्राणों का गण (त्वेष-रथः) तेजोमय आत्मा में गति करता है । जल के आश्रय गति करता है ।

को वे॑द नू॒नमे॑षां यत्रा॒ मद॑न्ति॒ धूत॑यः ।
ऋ॒तजा॑ता अ॒रे॒पस॑: ॥ १४ ॥

भा०—वायु गण के समान जो (धूतयः) वृक्षों के तुल्य हरे भरे हृष्ट पुष्ट, शत्रुओं को कंपाने वाले (ऋत-जाताः) सत्य न्याय, व्यवहार, ऐश्वर्य और सत्य ज्ञान के लिये प्रसिद्ध और (अरेपसः) निष्पाप पुरुष (यत्र) जिस विशेष कार्य में प्रसन्न रहते हैं उसको (नूनम्) निश्चय पूर्वक (किः वेद) कौन जान सकता है (२) अध्यात्म में शरीर को संचालित करने से 'धूतयः' और अन्न जल से उत्पन्न वा प्रादुर्भूत होने से 'ऋतजात' हैं उनके रमण के आधार स्थान को विरला ही जाना करता है ।

यू॒यं मर्तं॑ विपन्यवः प्रणे॒तार॑ इ॒त्था धि॒या ।
श्रोता॑रो॒ याम॑हूतिषु ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वि-पन्यवः) विशेष मेधावी और विविध स्तुत्य व्यवहारवान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (मर्तम्) मनुष्य को (प्र-णेतारः) उत्तम मार्गों में चलाने हारे (याम-हूतिषु) आप लोगों पर नियन्त्रण करने वाले सेनापति की आज्ञाओं को (श्रोतारः) सुनने हारे हैं, वे आप लोग (इत्था धिया) इसी प्रकार की उत्तम बुद्धि से विचार कर ठीक २ कार्य सम्पादन करें । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ते नो॒ वसू॑नि॒ काम्या॑ पुरुश्च॒न्द्रा रि॑शादसः ।
आ य॑ज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

भा०—हे (यज्ञियासः) दानशील, यज्ञ कर्म करने हारे, सत्संग योग्य (रिशादसः) हिंसकों के नाशक, (पुरु-चन्द्राः) बहुत सी धन सम्पदाओं के स्वामियो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमारे लिये (काम्या वसूनि) नाना कामना करने योग्य ऐश्वर्यों को (आ ववृत्तन) पुनः २ प्राप्त करो और उनको व्यवहार में लाओ ।

एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह ।
गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥

भा०—हे (ऊर्म्ये) रात्रि के समान सुखदायिनी, उत्तम ऊंचे से शब्द बोलनेहारी ! हे (देवि) तेजस्विनि ! विद्युत् ! (रथीः इव) रथी जिस प्रकार (स्तोमं वहति गिरश्च परा वहति) नाना धान्य आदि पदार्थों को और दूसरों के वचनों या संदेशों को भी देशान्तर तक ले जाता है उसी प्रकार तू भी (दार्भ्याय) 'दर्भ' अर्थात् शत्रुओं को विदारण करने में कुशल वा शत्रु हिंसकों में श्रेष्ठ नायक के लिये (मे एतं स्तोमं) मेरे इस स्तुति-वचन और (गिरः) उत्तम वाणियों को (परा वह) दूर तक प्राप्त करा । यान, रथ, गाड़ी आदि जैसे सामान ढोने तथा चिट्ठी पत्री ले जाने के अर्थात् 'मेल' सर्विस्' के भी काम आते हैं। उसी प्रकार विद्युत् के यन्त्र भी लम्बे व्याख्यानों को एक देश से दूर २ देश तक पहुंचाते हैं ।

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।
न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥

भा०—(सुत-सोमे) जिसने ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान प्राप्त किया और (रथवीतौ) रथ के द्वारा आदरपूर्वक गृहों पर प्राप्त हों ऐसे आदरणीय पुरुष के प्रति ऐसी प्रार्थना करें कि हे विद्वन् ! (मे इति वोचतात्) मुझ श्रोताजन को ऐसा सत्योपदेश कीजिये कि (मे कामः) मेरी श्रवण करने की अभिलाषा (न अप वेति) कभी दूर नहीं हो ।

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु ।
पर्वतेष्वपश्रितः ॥ १९ ॥ २९ ॥

भा०—(एषः) यह (रथवीतिः) रथों से प्राप्त होने वाला (मघवा) उत्तम धनधान्य सम्पन्न पुरुष (गोमतीः अनु) उत्तम भूमियों और वाणियों से युक्त दाराओं को प्राप्त कर (अनुक्षेति) धर्मानुकूल होकर रहे और (पर्वतेषु) पर्वतों वा मेघों के तुल्य उत्तम उत्तम, ऊंचे और

आकाश व्यापी भवनों और यानों में (अप-श्रितः) स्थित एवं दूर देशों तक जाने हारा हो । एकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६२]

श्रुतिविदात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः--१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् । ७, ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतम्) सत्यस्वरूप सूर्य का मण्डल (ऋतेन अपहितं) तेज से आच्छादित है, (यत्र) जिस सूर्य के आश्रित रह कर नाना ग्रह उपग्रह आदि (सूर्यस्य) सूर्य के ही (दश शता अश्वान् विमुचन्ति) हजारों किरणों को विविध रूप से धारण करते और प्रतिक्षिप्त करते हैं और जिस सूर्य के आश्रय ही वे (सह तस्थुः) एक साथ मिलकर स्थित हैं (तत्) वह (एक) एक (देवानां) तेजो युक्त, (वपुषां श्रेष्ठं) पिण्डों में सर्वश्रेष्ठ, (ध्रुवं) स्थिर, निश्चल सूर्य है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! राजा प्रजावर्गो ! (वां) आप दोनों वर्गों का (ध्रुवं) स्थिर (ऋतम्) सत्य व्यवहार भी (ऋतेन) सत्य वेद, ज्ञान से (अपिहितम्) आच्छादित तन्मय हो । (यत्र) जिस प्रधान नायक के आश्रय पर (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के (दश शता अश्वान् वि मुचन्ति) हजारों घुड़सवार दौड़ रहे हैं और (सह तस्थुः) सब एक साथ विद्यमान रहते हैं (तत् एकं) उस एक को (वपुषां देवानां) देहधारी मनुष्यों के बीच (श्रेष्ठं) सर्व श्रेष्ठ रूप से (अपश्यम्) देखता हूं । वही (ऋतम् ध्रुवं) सत्य परमैश्वर्य, न्यायरूप है ।

तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त्त ॥२॥

भा०—जिस प्रकार दिन और रात्रि, मित्र और वरुण इन दोनों का (तत् महित्वम्) यही महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) सूर्य (अहभिः तस्थुषीः दुदुह्रे) तेजों द्वारा समस्त स्थानों, शरीरों को रस प्रदान करता है दिन रात्रि दोनों (विश्वाः स्वसरस्य धेनाः पिन्वथ) सूर्य की सब रश्मियों को प्राप्त करते हैं उन दोनों का (एकः पविः अनु आ ववर्त्त) एक ही प्रकार का क्रम प्रतिदिन चक्र-धारा के समान पुनः २ आता है। उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) मित्र एक दूसरे के स्नेही, रक्षक और हे 'वरुण' एक दूसरे को वरण करने हारे स्त्री पुरुषो ! शिष्य अध्यापको ! राजा-प्रजा वर्गो ! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (सु-महित्वम्) यही सर्वश्रेष्ठ महान् सामर्थ्य है कि (ईर्मा) बाहुवत् बलवान् पुरुष ही (तस्थुषीः) स्थिर प्रजाओं को (अहभिः) अविनाशी बलों से (दुदुह्रे) ऐश्वर्य पूर्ण करने में समर्थ होता है। और आप दोनों (स्वसरस्य) अपने ही सामर्थ्य से आगे बढ़ने वाले नायक को (विश्वाः धेनाः पिन्वथः) समस्त वाणियों को प्रेमपूर्वक प्राप्त करें, और (वाम्) तुम दोनों का (एकः पविः) एकही पवित्र मार्ग, एक ही वाणी, एक ही बल (अनु आववर्त) प्रति दिन रहे, कभी भेदभाव न हो।

अधा॑रयतं पृथि॒वीमु॒त द्यां मित्र॑राजाना वरुणा॒ महो॑भिः ।
व॒र्धय॑त॒मोष॑धीः॒ पिन्व॑तं॒ गा अव॑ वृ॒ष्टिं सृ॑जतं जीरदानू ॥ ३ ॥

भा०—(मित्र-राजाना) मित्र बने हुए राजाओं वा राजा रानी के समान विराजने वालो ! एवं (वरुणा) परस्पर एक दूसरे को वरण करने वालो ! (पृथिवीम् उत द्यां) भूमि और सूर्य को जिस प्रकार अग्नि और जल धारण करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (पृथिवीम्) प्रजोत्पादक भूमि स्त्री (उत द्याम्) और कामनायुक्त व्यवहारज्ञ, तेजस्वी पुरुष दोनों को (महोभिः) बड़े उत्तम शुभ विचारों से (अधारयतम्) धारण करो अर्थात् तुम दोनों स्त्रीपुरुष परस्पर अपने को बीज को वपनार्थ भूमि और तेजस्वी,

बीजप्रद जानकर धारण करें। आप दोनों (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों तथा 'ओष' अर्थात् दाहकारी अग्नि को धारण करने वाले तेजस्वी, वीर पुरुषों और विद्वानों को (वर्धयतम्) बढ़ावें, (गाः पिन्वतम्) भूमियों को सेचें, वाणियों को प्रयोग करें, गौओं को पुष्ट करें, और दोनों (जीर-दानू) जगत् को जीवन देने हारे होकर (वृष्टिं अव सृजतम्) मेघ वा सूर्य के तुल्य सुखों की वर्षा किया करें।

आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक्।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों को (सु-युजः) उत्तम रीति से जुते हुए (अश्वासः) घोड़े, उनके समान (सु-युजः अश्वासः) उत्तम रीति से नियुक्त विद्या आदि शुभ गुणों में व्याप्त जन (वां) आप दोनों को (आ वहन्तु) आदर पूर्वक सर्वत्र ले जावें। और (यत-रश्मयः) वे कसी लगामों वाले अश्व वा अश्वों के लगामों को वश करने वाले सारथि लोग और उनके समान अपने अधीनस्थों तथा शक्तियों को संयम करने वाले पुरुष भी (अर्वाक् उप यन्तु) आप दोनों के समीप प्राप्त हों। (वां) आप दोनों को (घृतस्य) घी के बने शोधक उबटन के समान तेज का (निर्णिग्) शुद्ध रूप (वाम् अनु वर्तते) आप दोनों को प्राप्त हो। और (प्र-दिवि) उत्तम ज्ञानप्रकाश के निमित्त (सिन्धवः) ज्ञान के समुद्र जन (वाम् उप क्षरन्ति) मेघों के समान आप लोगों के प्रति ज्ञान जलों से वर्षा करें, आपको सेचें।

अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५॥३०॥

भा०—हे (मित्र वरुण) एक दूसरे के स्नेही और परस्पर वरण करने हारे, हे जगत् को मरण से बचाने वाले एवं श्रेष्ठ पुरुषो ! आप

दोनों (श्रुताम् अनु) श्रवण की गई ज्ञानपद्धति के अनुरूप ही (अमतिम् वर्धत्) अपने उत्तम सौम्य रूप को बढ़ाते हुए, (यजुषा बर्हिः इव) यजुर्वेद से यज्ञ के समान (यजुषा) परस्पर की संगति, और दान, आदर सत्कार, संघबल से (बर्हिः इव) बसे लोकों के समान ही (उर्वी रक्षमाणा) विशाल पृथिवी की रक्षा करते हुए (नमस्वन्ता) एक दूसरे का आदर करने वाले वा अन्नों के स्वामी और (धृत-दक्षा) बलवान् होकर (गर्ते अधि) रथ में और सभा के न्यायासन पर (इडासु अन्तः) वाणियों और अपने अधीन भूमियों के बीच (आसाथे) विराजा करो । इति त्रिंशो वर्गः ॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥

भा०—हे (वरुणा) दोनों श्रेष्ठ जनो ! दुःखों को वारण करने वाले ! सभा के स्वामियो, राजा अमात्यो ! स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अक्र-वि-हस्ता) अहिंसक एवं अकृपण, दयालु दानशील हाथ वाले होकर (सुकृते) उत्तम पुण्यकार्य की वृद्धि के लिये (परस्पा) एक दूसरे की रक्षा करते हुए भी (इडासु) भूमियों, वाणियों और आदर सत्कार की क्रियाओं के (अन्तः) बीच (यं त्रासाथे) जिसकी रक्षा करते वा जिसको भय दिलाते हो, हे (राजाना) तेजस्वी राजपद पर विराजने वालो ! उस शत्रु तथा (क्षत्रम्) बलशाली सैन्य को (अहृणीयमाना) क्रोधरहित होकर (सह द्वौ) दोनों साथ मिल कर (सहस्र-स्थूणं) सहस्रों वा दृढ़ स्तम्भों से युक्त विशाल भवन के समान महान् राष्ट्र को भी (बिभृथः) निरन्तर परिपुष्ट करो ।

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७॥

भा०—(अस्य) इस राष्ट्र वा क्षात्रबल का स्वरूप (हिरण्य-

निर्णिग्) सुवर्ण के समान कान्तिमान् एवं राष्ट्र के लिये हितकारी और सुन्दर रमणीय हो । (अस्य) इस क्षात्रबल का (अयः) प्राप्त करने और चलाने वाला प्रधान पुरुष ही (स्थूणा) मुख्यकीलक वा प्रधान स्तम्भ के समान है । (अश्वाजनी इव) घोड़े को हांकने वाली चाबुक के समान वह प्रधान नायक ही (दिवि) विजय के निमित्त (अश्वा-जनी) अश्वों से बने सैन्य और राष्ट्र की संञ्चालन करने वाली सेना के तुल्य (विभ्राजते) विविध रूपों में चमकता है । स्तम्भ को जिस प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) कल्याणकारी क्षेत्र में अथवा (तिल्विले) स्नेहयुक्त चिकनी मिट्टी वाले भूमि में (निमिता) बनी शाला सुखप्रद होती है उसी प्रकार (भद्रे क्षेत्रे) सुखप्रद क्षेत्र और स्नेहयुक्त वाणी से युक्त व्यवहार के आश्रय पर (निमिता) वश की हुई सेना भी हो । इस प्रकार हम लोग (अधिगर्त्यस्य-मध्वः) घर में रक्खे अन्न के समान अश्व रक्षादि सैन्य से प्राप्त बल और ऐश्वर्य का (सनेम) भोग करें ।

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥ ८ ॥

भा०—हे (वरुण हे मित्र) शरीर में प्राण उदान के समान, राष्ट्र में शत्रु का वारण करने और प्रजा के प्रति स्नेह करनेवाले आप दोनों राजा अमात्य ! (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय होजाने पर और (उषसः) उषा के (व्युष्टौ) अच्छी प्रकार निकल जाने पर जिस प्रकार स्त्री पुरुष (अयः-स्थूणा) सुवर्ण या लोह के बने कील या स्तम्भ से युक्त (हिरण्य-रूपम्) हित और रमणीय एवं स्वर्णमय (गर्त्तम्) गृह के तुल्य रथ पर (आ-रोहथः) चढ़ते और (दितिम् अदितिम् च चक्षाथे) अदिति माता, पिता, पुत्र आदि और 'दिति' देने और रक्षा करने योग्य भृत्यादि सब को देखते हैं । उसी प्रकार आप दोनों भी (सूर्यस्य उदिता) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय होने पर और (उषसः व्युष्टौ) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ सर्व

वशकारिणी सेनाबल के प्रकट होने पर तुम दोनों सभा, सेना के अध्यक्ष जनो ! (हिरण्य-रूपं) सुवर्णादि से रूपवान् ऐश्वर्य युक्त (अयः-स्थूणं) सुवर्ण धन के प्रबल स्तम्भ पर आश्रित तथा हितकारी, रमणीय, लोहखण्डादि पर अवलम्बित कान्तिमय, (गर्त्तम्) सभास्थल तथा युद्ध रथ पर (आरोहथः) आरोहण करो और वहां न्यायकारी सभापति तथा सेना नायक के पद पर विराजो और (अतः) तदनन्तर (अदितिम्) अखण्ड-नीय सत्य तथा (दितिम्) दिति अर्थात् खण्डनीय असत्य पक्ष को तथा (अदितिं) अखण्डनीय प्रबल मित्र वा शत्रु और (दितिम्) खण्डनीय वा पालनीय शत्रु वा मित्र को (चक्षाथे) देखो, उनका विवेकपूर्वक निर्णय करो।

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम।९।३१।३॥

भा—हे (गोपा) राष्ट्र की रक्षा करने हारे, (मित्रा वरुणा) स्नेह युक्त, प्रजाजन को मरने से बचाने वाले, एवं श्रेष्ठ, शत्रुवारक सभापति सेनापति एवं राजा अमात्य जनो ! (यत्) जो बहुत बड़ा, (अच्छिद्रं) छिद्र, मर्मादि से रहित, (शर्म) शरणदायक दुर्ग आदि सुखप्रद स्थान हो (अतिविधे न) जिसे अतिक्रमण करके शत्रु प्रजा को पीड़ित और और ताड़ित न कर सके, हे (सुदानू) उत्तम दानशील, तथा शत्रुनाशक जनो ! (तेन) वैसे गृह दुर्ग आदि उपाय से (नः अविष्टम्) हमारी रक्षा करो। हम लोग (जिगीवांसः) विजय करते हुए (सिषासन्तः) ऐश्वर्यों का परस्पर विभाग करते हुए (स्याम) सुख से रहें। इति एकत्रिंशो वर्गः। इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः॥

[६३]

अर्चनाना आत्रेय ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, २, ४, ७ निचृज्जगती। ३, ५, ६ जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१॥

भा०—(ऋतस्य) सत्य व्यवहार, सत्य ज्ञान, ऐश्वर्य और तेज के (गोपौ) रक्षक, (सत्य-धर्माणा) सत्य धर्म का पालन करने वाले (परमे व्योमनि) सर्वोत्कृष्ट रक्षक, आकाशवत् व्यापक, परमेश्वर पर आश्रित वा सर्वोच्च पद पर स्थित होकर (रथम् अधि तिथष्ठः) रमण करने योग्य रथवत् राष्ट्र का शासन करने के लिये उसके अध्यक्ष पद पर विराजें और उसका संचालन रथी सारथिवत् करें । हे (मित्रावरुणा) शरीर में प्राण उदान वत् एवं गृह में पतिपत्नीवत् एक दूसरे के स्नेह और एक दूसरे को स्व-स्वामिभाव से वरण करने वाले होकर वे (युवं) आप दोनों (अत्र) इस राष्ट्र में (सम् अवथः) जिस प्रजा जन की रक्षा करते हो (तस्मै) उसको (दिवः) आकाश या अन्तरिक्ष से (मधुमत् वृष्टिः) जलमय वृष्टि के समान (दिवः) तेजस्वी क्षात्रवर्ग और ज्ञानमय ब्राह्मण वर्ग और कामना योग्य व्यवहारवित् वैश्य वर्ग से (मधुमत् वृष्टिः) ज्ञान, बल और अन्नमय वर्षा (पिन्वते) प्रजाजन की पुष्टि और वृद्धि करे ।

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः २

भा०—हे (मित्रा वरुणा) वायु सूर्य के समान राजन् ! अमात्य ! परस्पर मिलकर प्रजा को मृत्यु से बचाने और दुष्टों का वारण करने वाले आप दोनों (अस्य भुवनस्य) इस जगत् को (सम्राजौ) अच्छी प्रकार प्रकाशित करने वाले (विदथे) ज्ञान, व्यवहार और धनैश्वर्य लाभ में (स्वर्दृशा) उत्तम सुख, उत्तम प्रकाश को देखने वाले होकर (राजथः) विराजते हो । हम लोग (वां) आप दोनों से (वृष्टिम्) उत्तम वृष्टि और (राधः) धन ऐश्वर्य और (अमृतत्वं च) अमृतत्व, दीर्घ जीवन, रक्षा,

की (ईमहे) याचना करते हैं, आप दोनों के (तन्यवः) विस्तृत शक्तिमान् लोग (द्यावा वृथिवी वि चरन्ति) किरणों के समान आकाश और पृथिवी में विचरते हैं।

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) प्रजाओं के स्नेही और उनके द्वारा वरण करने योग्य पुरुषो ! आप वायु सूर्य दोनों के समान (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, (उग्रा) बलवान्, (वृषभा) जलों के समान प्रजा पर काम्य सुखों की वर्षा करने वाले, (दिवः पृथिव्याः दिवस्पती) आकाशवत् विस्तृत पृथिवी के भी पालक (वि-चर्षणी) प्रजा के विविध व्यवहारों से देखने वाले, विविध प्रजाओं के स्वामी, होकर (चित्रेभिः) नाना, अद्भुत (अभ्रैः) मेघों के तुल्य आप्त प्रजाओं की रक्षा करने वाले नायकों सहित (उप तिष्ठथः) विराजते हो। और (रवं द्यां) गर्जन, आज्ञा वचन और विजुली के प्रकाश के समान तेज प्रकट करते हो, और (असुरस्य मायया) मेघ के तुल्य बलवान् क्षात्र सैन्य की शक्ति और बुद्धि से (वर्षयथः) नाना सुखों की प्रजा पर वृष्टि करते हो।

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्। तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्यद्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) देह में प्राण और उदानवत् राष्ट्र में राजा और सचिव ! प्रजा के स्नेही और श्रेष्ठ पदपर वरण करने योग्य ! जिस प्रकार (दिवि सूर्यः ज्योतिः) आकाश में सूर्य और विद्युत् (चित्रम् आयुधम्) चित्रमय धनुषाकार होता है और (अभ्रेण वृष्ट्या तं गूहथः) मेघ और वृष्टि द्वारा उसको आच्छादित करते हैं और (मधुमन्तः

द्रप्साः ईरते) जलमय रस बहते हैं उसी प्रकार हे (मित्रा वरुणा) राजा और अमात्य, सभा सेनापतियो ! (वां) आप दोनों की (दिवि) विद्वानों की राजपरिषत् और संग्राम में विजय कार्य, वा राज-प्रजा व्यवहार में (माया श्रिता) बुद्धि संलग्न तथा स्थिर रहे । आप लोगों का (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप तथा (चित्रम्) आश्चर्य करने वाला (आयुधम्) शस्त्रबल (दिवि चरति) पृथिवी पर विचरे । (तम्) उस प्रताप को आप लोग (अभ्रेण वृष्ट्या) मेघवत् प्रजा के पोषक स्वरूप तथा प्रजा पर नाना सुखों के वर्षण द्वारा (गूहथः) संवृत रक्खो । हे (पर्जन्य) प्रजाओं को ऐश्वर्य देने हारे ! मेघवत् उदार जन ! राजन् ! तेरे (मधुमन्तः) अन्नादि समृद्धि से सम्पन्न (द्रप्साः) अन्यों को मोह में डाल देने वाले आप्त जन जल स्रोतों के समान (दिवि ईरते) पृथिवी पर सर्वत्र विचरें ।

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा विचरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सूर्य पवन के समान मित्र, सबको प्रिय, जीवनदाता और सर्वश्रेष्ठ, दुःखवारक पुरुषो ! (मरुतः) विद्वान् लोग (शुभे) कल्याण के लिये (सुखं) सुखप्रद (रथं) रथ को (शूरः न) शूरवीर के समान (युञ्जते) जोड़ते और (गविष्टिषु) किरणों के प्राप्त होने पर जिस प्रकार (चित्रा रजांसि) विविध नाना अद्भुत लोक और (तन्यवः) नाना विद्युतें (वि चरन्ति) विविध दिशा में चलती हैं उसी प्रकार राष्ट्र में (गविष्टिषु) भूमियों को प्राप्त करने के लिये शूरवीर (चित्रा रजांसि) विविध और अद्भुत शूरवीर लोग और (तन्यवः) गर्जनशील विद्युत् अस्त्र (वि चरन्ति) चलते हैं । हे (सम्राजा) सेना व सभा के स्वामी जनो ! (नः दिवः) हम ऐश्वर्यादि की कामना करने वालों को (पयसा) मेघ के समस्त पोषणकारी जल अन्नादि से (उक्षतम्) सींचो, पुष्ट करो ।

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और एक दूसरे को वरण करने हारे गुरु शिष्यजनो! (पर्जन्यः यथा त्विषीमतीं इरावती चित्रां वाचं वदति) मेघ जिस प्रकार विद्युत् और जल से युक्त अद्भुत गर्जना करता है उसी प्रकार लोकोपकारार्थ (पर्जन्यः) पिता के समान उत्पादक, ज्ञान से तृप्त करने वाला आचार्य, (चित्राम्) आश्चर्यजनक, ज्ञान देने वाली (त्विषीमतीम्) उत्तम विद्या प्रकाश से युक्त, (इरावतीम्) जलवत् स्नेहयुक्त (वाचं वदति) वाणी का उपदेश करे। हे (मरुतः) वायुओं के समान आलस्य रहित शिष्यजनो! आप लोग (मायया) बुद्धि से (अभ्रा) मेघों के समान ज्ञानजल से पूर्ण होकर (सु वसत) सुख पूर्वक रहो। (अरुणाम्) अरुण, तेजस्विनी, (अरेपसम्) अपराध पापादि से रहित, (द्याम्) कामना, ज्ञान प्रकाश को (वर्षयतम्) आप दोनों एक दूसरे के प्रति सेचन करो, उसकी वृद्धि करो। 'पर्जन्यः'—पर्जन्यस्तृपेराद्यन्तविपर्ययस्य, तर्पयिता जन्यः। परो जेता वा जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम्। इति यास्कः॥ निरु० अ० १०। १। १०॥ इसी प्रकार राष्ट्र में—सभा सेनापति 'मित्रावरुण' है। उनमें (पर्जन्यः = परोजेता) 'पर्जन्य' उत्कृष्ट विजेता नायक है। वह अद्भुत ओजस्विनी वाणी बोले, (मरुतः) सैन्यगण मेघों के समान शरवर्षी होकर रणाकाश को घेरें और (द्यां) कान्तियुक्त निष्काम विजय करें।

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम्॥७॥१

भा०—हे (विपश्चिता मित्रा वरुणा) विद्वान् सर्वस्नेही एवं सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश, सेनापति जनो! आप दोनों (असुरस्य मायया) प्राणों के देने वाले मेघ वा सूर्य के समान जीवनप्रद बलवान् पुरुष की कार्य-

कर्त्री शक्ति और ज्ञानवती बुद्धि से और (धर्मणा) धारण करने में समर्थ बल से (व्रता) समस्त उत्तम कर्मों, सत्य भाषण आदि नियमों को (रक्षेथे) पालन किया करो। (ऋतेन) सत्य ज्ञान और धनैश्वर्य और तेज से (विश्वं भुवनं) समस्त लोक को प्रदीप्त करो। (दिवि सूर्यम्) आकाश में (सूर्यम्) सूर्य के समान, (दिवि) इस भूमि में भी तेजस्वी (चित्र्यं) अद्भुत शक्तियों से युक्त (रथं) विमान, रथ आदि गमनागमन के साधन को (आ धत्थः) धारण करो। (२) हे गुरु शिष्यो! एवं विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (दिवि) ज्ञानप्रकाश के निमित्त (चित्र्यं रथं सूर्यम्) ज्ञानप्रद रमणीय, आनन्दप्रद तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करो॥ इति प्रथमो वर्गः ॥

[६४]

अर्चनाना ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ विराडनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् । ३, ५ भुरिगुष्णिक् । ४ उष्णिक् । ७ निचृत् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

वरु॑णं वो रि॒शाद॑समृ॒चा मि॒त्रं ह॑वामहे ।
परि॑ व्र॒जेव॑ बा॒ह्वोर्ज॑ग॒न्वांसा॒ स्व॑र्णरम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के बीच में (वरुणं) शत्रुओं के वारक, सबमें से वरण करने योग्य, (मित्रं) सर्वस्नेही, प्रजा को नाश होने से बचाने वाले और (व्रजा-इव) ज्ञानपूर्वक विचरण करने वाले विद्वान् संन्यासी के समान (बाह्वोः) बाहुओं के बल से (परि-जगन्वांसा) सर्वत्र गमन करने वाले सभा व सेना के अध्यक्षो ! तथा (स्वःनरम्) प्रतापयुक्त सैन्यबल के नायक, सुखप्रद नेता को भी (ऋचा हवामहे) उत्तम स्तुति तथा आदरपूर्वक बुलावें, स्वीकार करें ।

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्नेही एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण एवं क्षात्र वर्गों ! पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मै) इस (अर्चते) स्तुति करने हारे प्रजाजन को (बाहवा) अपने शत्रु-बाधक बाहुबल और अज्ञान-बाधक (सुचेतुना) उत्तम ज्ञान से (जार्यं) स्तुति करने योग्य, दुःखों को जीर्ण करने वाला (शेवं) सुख (प्र यन्तम्) प्रदान करो । और मैं विद्वान् प्रजाजन (वां) आप दोनों के (जार्यं) स्तुत्य कार्य की (विश्वासु आसु) समस्त भूमियों में (जोगुवे) प्रशंसा करूं वा उपदेश करूं ।

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (प्रियस्य) सर्व प्रिय (अहिंसानस्य) अहिंसक (मित्रस्य) सर्वस्नेही पुरुष के (शर्मणि) शरण में सज्जन (यत् गतिम्) जिस उत्तम ज्ञान वा सद्गति का (सश्चिरे) लाभ करते हैं, (नूनम्) निश्चय से मैं भी उस (गतिं) ज्ञान और सद्गति को (अश्याम्) प्राप्त करूं । और मैं भी (मित्रस्य पथा) उसी स्नेहवान्, परम मित्र के सन्मार्ग से (यायाम्) गमन करूं ।

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) मित्र वरुण ! हे सर्वस्नेही ! हे सर्व श्रेष्ठ जनो ! (मघोनां) धन सम्पन्न, धनदानी और (स्तोतॄणां च) ज्ञान सम्पन्न उपदेष्टा लोगों के (क्षये) गृह में (यत् ह स्पूर्धसे) जो स्पर्धा करने योग्य उत्तम धन और ज्ञान (उपमं) सर्वोपमायोग्य हो, उसे मैं

(युवाभ्याम्) आप दोनों की सहायता से, (धेयाम्) प्रदान और पुष्ट करूं और स्वयं भी धारण करूं।

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहवान् पुरुष ! हे (वरुणः च) श्रेष्ठ जन ! आप दोनों, (सधस्थे) समान निवास स्थान में रहकर (मघोनां) उत्तम ऐश्वर्यवान् और (सखीनां) मित्र रूप हम लोगों को (वृधसे) बढ़ाने के लिये (नः) हमारे (स्वे क्षये) अपने गृह में आकर (सुदीतिभिः) उत्तम दीप्तियुक्त सम्पत्तियों तथा उत्तम दानशील क्रियाओं सहित हमें (आ) प्राप्त होवो।

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त ! हे (वरुण) दुःखों के वारण करने हारे ! (युवं) आप दोनों (नः) हमारे (क्षत्रं) बल और (बृहत्) महान् राष्ट्र को (बिभृथः) धारण और परिपुष्ट करते हो ! और (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि (स्वस्तये) कल्याण के लिये और (वाजसातये) धनैश्वर्य, जल और संग्रामकारी बल को प्राप्त करने के लिये (उरु कृतम्) बहुत प्रयत्न करो। अथवा—(नः उरुकृतं बिभृथः) हमारे बड़े भारी किये यत्न को भी धारण वा पुष्ट करो।

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ७।२

भा०—हे (मित्रा वरुणौ) स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (रुशद्-गवि) प्रदीप्त किरणों से युक्त (देव-क्षत्रे) प्रकाश के धनी सूर्य के आश्रय से जिस प्रकार उषा प्रकट होती है उसी प्रकार (रुशद्-गवि) दीप्तियुक्त अरुण अश्वों, पक्वान्न की कान्ति से युक्त भूमियों के स्वामी एवं

(देवक्षत्रे) योद्धागण के बल से सम्पन्न सेनापति के अधीन सेना के (उच्छंत्यां) प्रकट हो जाने पर, हे (नरा) उत्तम सभा वा सेना के नायक पुरुषो ! तुम दोनों भी (अर्चनानसं) श्रेष्ठ नासिका से युक्त सुमुख उत्तम प्राणवान् बलवान्, (सुतं सोमं) अभिषिक्त ज्ञापक पुरुष को (बिभ्रतौ) परिपुष्ट करते हुए (हस्तिभिः न) हस्तवान् कार्यकुशल पुरुषों के तुल्य (पड्भिः) शीघ्र जाने वाले पदातियों वा रथों से (धावतं) वेग से आगे बढ़ो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६५]

रातहव्य आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ स्वराडुष्णिक् । भुरिगुष्णिक् । ६ विराट् पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥ १ ॥

भा०—(यः चिकेत) जो ज्ञानवान् है, (सः) वह (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म करनेहारा भी हो । (सः) वह (नः) हम (देवत्रा) विद्या के अभिलाषी जनों को (ब्रवीतु) उपदेश करे । अथवा वह (देवत्रा) विद्याभिलाषी जनों का रक्षक गुरु उपदेश करे । (यस्य) जिसका (मित्रः) स्नेहवान् शिष्य हो वह (वरुणः) वरण करने योग्य (वा) भी हमें (गिरः वनते) उत्तम ज्ञान वाणियें प्रदान करे ।

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों भी (श्रेष्ठ-वर्चसा) उत्तम तेज और अध्ययन व्रतादि से सम्पन्न (राजाना) राजाओं के समान तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) दीर्घकाल तक गुरूपदेश श्रवण करने और करानेहारे अति विद्वान् हों, (ता) वे दोनों (सत्-पती) सज्जनों, सद्गुणों और

सत्पदार्थों के पालन करने वाले, (ऋता-वृधा) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले और (जने-जने) प्रत्येक जन समूह में (ऋतावाना) सत्योपदेश को प्रदान करने और सत्य ज्ञान, सत्य व्रत को धारण करने वाले हों।

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा।
स्वश्वासः सुचेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥ ३ ॥

भा०—(स्वश्वासः दावने वाजान् अभि) जिस प्रकार उत्तम अश्वारोही गण आजीविका देने वाले स्वामी के लिये संग्रामों को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार (सु-चेतुना) उत्तम ज्ञानसहित (स्वश्वासः) उत्तम इन्द्रियों वाले, जितेन्द्रिय, लोग (दावने) ज्ञान प्रदान करने वाले गुरुजन के यशोवृद्धि के लिये (वाजान् अभि) ज्ञानों को उद्देश्य करके आगे बढ़ें। जिस प्रकार राष्ट्रवासी जन सैन्य और नायक दोनों (अवसे उपब्रूते) रक्षा की प्रार्थना करता है उसी प्रकार (इयानः) प्राप्त होने वाला नव शिष्य मैं (ता वाम्) उन दोनों (पूर्वा) पूर्व विद्यमान आप मान्य जनों को (अवसे) ज्ञान देने और रक्षा के निमित्त (सचा) एक साथ, (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूं।

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् मित्र वही है जो (अंहोः चित् क्षयाय) पाप से पृथक् रहने के लिये अथवा (अहोः चित् क्षयाय) पाप और पापाचारी के नाश करने के लिये (गातुं) वाणी का (उरु) खूब (वनते) प्रदान करता है। राष्ट्र में वही मित्र है जो परस्पर हत्या कलह आदि पाप से रहित होकर निवास करने के लिये (गातुं वनते) पृथिवी का न्याय पूर्वक विभाग कर देता है। (मित्रस्य) सबसे स्नेह करने वाले (प्रतूर्वतः) अति शीघ्र कार्य करने में कुशल और (विधतः) विशेष विधान अर्थात्

धर्म मर्यादा स्थिर करने वाले पुरुष की (हि) निश्चय से (सु-मतिः अस्ति) सदा शुभ मति हो। अथवा शीघ्रकारी (विधतः) परिचर्या करने वाले स्नेही शिष्य की उत्तम बुद्धि होती है।

वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥ ५ ॥

भा०—(वयम्) हम सब लोग (मित्रस्य) स्नेहवान् एवं अज्ञान रूप मृत्यु के गढ़े से बचाने वाले गुरु के (सप्रथस्तमे) अति विस्तार युक्त (अवसि) ज्ञान और रक्षा में (सत्रा) सदा सत्य व्रत के पालक (अनेहसः) अहिंसक, पापरहित (वरुण-शेषसः) श्रेष्ठ दुःखवारक पुरुष के पुत्र के समान, एवं श्रेष्ठ पुत्रों वाले (त्वा ऊतयः) तुझ द्वारा रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने हारे होकर (स्याम) रहें।

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा) स्नेह करने वाले उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! वा अध्यापक उपदेशक जनो ! आप लोग (युवं) दोनों (इमं जनं) इस शिष्यजन को (यतथः) यत्नपूर्वक प्रेरणा करो। और (सं नयथः च) अच्छी प्रकार उत्तम मार्ग में ले जाओ ! (अस्माकं) हमारे बीच में (मघोनः) दान योग्य उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (ऋषीणां गो-पीथेन) वेदार्थ विज्ञ, विद्वान् पुरुषों की वाणियों के पान करने के कार्य से (मा परि ख्यतम्) कभी वञ्चित न करो। ज्ञान देने के निमित्त उनका तिरस्कार न करो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[६६]

रातहव्य आत्रेय ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५, ६ विराडनुष्टुप्। २ निचृदनुष्टुप्। ३, ४ स्वराडनुष्टुप् ॥ षड़चं सूक्तम् ॥

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥

भा०—हे (चिकितान) ज्ञानयुक्त विद्वान् पुरुष ! हे (मर्त्त) मनुष्य ! तू (सु-क्रतू) कर्म करने वाले, उत्तम प्रज्ञायुक्त (रिशादसा) दुष्टों के नाश करने वाले, (देवौ) दो ज्ञान प्रकाशक पुरुषों को (वरुणाय) श्रेष्ठ, (ऋत-पेशसे) सत्य ज्ञान के धनी (प्रयसे) प्रयत्नवान् (महे) बड़े पुरुष के उपकार के लिये (आ दधीत) आदरपूर्वक स्थापित कर। एक ज्ञान दान करे, एक आचार सुधारे। एक सन्मार्ग में प्रेम से प्रवृत्त करे, एक ताड़ना से दुष्ट मार्ग से वारण करे।

ता हि क्षत्रमविंह्रुतं सम्यगसुर्य१माशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥

भा०—(ता हि) वे दोनों ही (अविह्रुतं) कुटिलता से रहित (असुर्यं) प्राणवान् जन्तुओं के हितकारक (क्षत्रम्) बल को (सम्यक्) अच्छी प्रकार (आशाते) वश करने में समर्थ होते हैं (अध) और उन द्वारा ही (व्रता इव) कर्त्तव्य कर्म के समान (दर्शतम्) दर्शनीय आदर्श (मानुषं) मनुष्यों का (स्वः न) परम सुखकारी राष्ट्र (धायि) धारण किया जाता है। वे मनुष्यों के हितकारी सुखजनक राज्य को भी अपना कर्त्तव्य समझकर पालन करते हैं।

ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥

भा०—(एषाम् रथानाम्) इन उत्तम, वेगवान् रथों के (ऊर्वीं गव्यूतिम्) बड़े मार्ग को (एषे) चलने के लिये (ता वाम्) उन आप दोनों को ही अग्नि जलवत् मुख्य प्रवर्त्तक (मनामहे) स्वीकार करते हैं और (रात-हव्यस्य) अन्न आदि भोज्य पदार्थ देने वाले स्वामी

की (सुस्तुतिं दधृक्) उत्तम स्तुति, को भी धारण करने वाले आप दोनों को ही (स्तोमैः मनामहे) उत्तम स्तुत्य वचनों द्वारा स्वीकर करते हैं। अग्नि, यम दोनों तत्व जिस प्रकार रथों के दीर्घ मार्ग चलने में कारण होते हैं राष्ट्र में प्रजाओं के भी दीर्घ काल तक निभने में मुख्य दो बल न्याय, और शासन-विभाग कारण हैं। वे प्रधान राजा की उत्तम कीर्त्ति को धारते हैं। देह में प्राण, अपान दीर्घ जीवन के कारण हैं वे आत्मा के स्तुत्य शक्ति के धारक हैं। इन जीवों के लिये बड़ी (गव्यूति) ज्ञान वाणियों की प्राप्ति में गुरु-शिष्यपरम्परा ही मुख्य कारण है। वे दोनों ज्ञानप्रद प्रभु परमेश्वर के उत्तम स्तुति रूप, उपदिष्ट वेद को धारण करने वाले हों।

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

भा०—(अध हि) और (पूत-दक्षसा) पवित्र बल को धारण करने वाले (युवं) आप दोनों (दक्षस्य) बल के (पूर्भिः) पूर्ण करने वाले शिष्यों सहित (अद्भुता) अद्भुत (काव्या) विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषों के द्वारा ज्ञान करने योग्य ज्ञानों का (जनानां) मनुष्यों के हितार्थ (केतुना) ज्ञापक शास्त्र द्वारा (नि चेकेथे) निरन्तर ज्ञान करो, उसका बराबर अभ्यास किया करो।

तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम्।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पृथिवी) पृथिवी के समान ज्ञान को विस्तार करने हारी विदुषी स्त्री (श्रवः) पृथिवी पर अन्न के समान जीवन देने वाला (ऋषीणाम्) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों का (तत्) वह (ऋतं) सत्यमय (बृहत्) बड़ा भारी (श्रवः) श्रवण करने योग्य ज्ञान है जिसको मेघों के समान विद्वान् जन (यामभिः) आठों प्रहर (पृथु) बड़े विस्तृत रूप में (अति) खूब (क्षरन्ति) बरसाते हैं। हे (ज्रयसानौ) ज्ञानमार्ग

से जाने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों उसको अन्नवत् (अरं) खूब प्राप्त करो और उपभोग लो ।

आ यद्वामीयचक्षसा मित्रं वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मित्रा) परस्पर स्नेहवान् स्त्री पुरुषो ! हे (ईय-चक्षसा) ज्ञान करने योग्य दर्शन वा कथन करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (वाम्) आप लोगों के बन्धुजन हैं वे और (वयं च) हम भी (सूरयः) समस्त विद्वान् जन मिलकर (व्यचिष्ठे) अति विस्तृत (बाहुपाय्ये) बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य (स्वराज्ये) स्वराज्य के निमित्त (आ यतेमहि) सब प्रकार से यत्नवान् होते रहें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६७]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५ विराडनुष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥ १ ॥

भा०—हे (देवा) दानशील, तेजस्वी, हे (आदित्या) भूमि के पुत्रवत् हितकारी, हे (वरुण मित्र अर्यमन्) दुष्टों के वारक, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले, स्नेहयुक्त ! शत्रुओं और प्रजाजनों का नियन्त्रण करने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (बृहत्) बड़े भारी (क्षत्रं) बल सैन्य को (यजतं) प्राप्त करो । और (वर्षिष्ठं) उत्तम ऐश्वर्यदायक, शत्रु पर अस्त्र वर्षी तथा राज्य का उत्तम प्रबन्ध करने में समर्थ (क्षत्रं) बल सम्पत्ति को (आशाथे) प्राप्त करो ।

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ, शत्रुवारक, प्रजा से मुख्य पद पर चरण करने योग्य, हे स्नेहयुक्त जनो ! आप दोनों (यत्) जब (हिरण्ययं) हितकारी और रमणीय तथा सुवर्णादि के बने, तेजोयुक्त गृह, पदासन तथा कारण को (आ सदथः) सब प्रकार से विराजते और वश करते हो तब आप (चर्षणीनां धर्त्तारा) प्रकाशक किरणों को धारण करने वाले सूर्य, विद्युत् के समान (चर्षणीनां धर्त्तारा) समस्त विद्वान् मनुष्यों को धारण करने वाले और (रिशादसा) दुष्टों को नाश करने में समर्थ होकर (चर्षणीनां सुम्नं यन्तम्) मनुष्यों को सुख प्रदान करो।

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य उत्तम धनों, ज्ञानों वेतनादि का विभाग करने वाला सर्वश्रेष्ठ राजा, (मित्रः) सर्व स्नेही, और (अर्यमा) न्यायाधीश, (विश्वे) समस्त (विश्व-वेदसः) समस्त धनों, ज्ञानों को जानने वाले विद्वान् पुरुष (व्रता) कर्त्तव्यों, कर्मों को (पदा इव) अवश्य रखने योग्य पदों, कदमों या ज्ञान साधनों वा अर्थबोधक पदों के समान (सश्चिरे) करते हैं। वे (मर्त्यं) मनुष्यमात्र को (रिषः) हिंसक, दुष्ट पुरुष से वा नाश होने से (पान्ति) बचाते हैं।

ते हि सत्या ऋतस्पृशः ऋतावानो जनेजने।
सुनीथासः सुदानवोऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥

भा०—(ते हि) और वे निश्चय से (सत्याः) सत्याचरणशील, (ऋत-स्पृशः) तेजस्वी, (ऋतावानः) ऐश्वर्यवान् (सु-नीथाः) उत्तम वेद वाणी के बोलने हारे, (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (जने जने) (अंहोः चित्) पाप से भी मुक्त होकर (उरु-चक्रयः) बहुत बड़े २ कार्य करने वाले हों।

को नु वाँ मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्र) स्नेहयुक्त प्रजा को मरण से बचानेहारे ! हे (वरुण) दुखनाशक, वरणीय जनो ! (वाम्) तुम दोनों को (तनूनां) देह धारियों में से (कः) कौन जन (अस्तुतः) अप्रशंसित, अनुपदिष्ट, मूर्ख पुरुष (एषते) प्राप्त हो सकता है । जो (मतिः) मननशील पुरुष (अत्रिभ्यः) तीनों प्रकार के दोषों और दुःखों से रहित विद्वानों से (एषते) ज्ञान प्राप्त करता है वही (मतिः) मतिमान् होकर (वाम् एषते) तुम दोनों के पद को प्राप्त करता है । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६८]

यजत आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ४ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।
महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने (मित्राय) स्नेही और (वरुणाय) दुःखों के वारण करने वाले, (महि क्षत्रौ) बड़े बलशाली, (विपा) विविध प्रकारों से पालन करने वाले, (बृहत् ऋतं) बड़े भारी सत्यमय न्याय और ऐश्वर्य को देने वाले या उनकी रक्षा करने वाले दोनों को (गिरा) वाणी द्वारा (प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो।

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (घृत-योनी) जल और स्निग्ध पदार्थ से उत्पन्न होने वाले वैद्युत और भौम अग्नि दोनों (सम्राजा) अच्छी प्रकार चम-

कते हैं और (देवेषु प्रशस्ता) प्रकाशमान् पदार्थों में उत्तम हों उसी प्रकार (या) जो दोनों (घृत-योनी) तेज या दीप्ति के आश्रय पर रहने वाले (सम्राजा) अच्छी प्रकार चमकने वाले, अति तेजस्वी (मित्रः वरुणः च) स्नेही, सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ सभा व सेना के (उभा) दोनों अध्यक्ष हैं वे (देवा) दानशील दोनों पुरुष (देवेषु) उपस्थित विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के दोनों वर्गों में (प्रशस्ता) उत्तम प्रशंसनीय हों।

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों सभा व सेना के अध्यक्ष जनो ! (नः) हमारे (महः) बड़े भारी (पार्थिवस्य) पृथिवी और (दिव्यस्य) न्याय व्यवहार, वार्त्ता आदि व्यापारों से प्राप्त (रायः) धन के ऊपर (शक्तम्) शक्तिमान् बनो । (वां) आप दोनों का (देवेषु) दानशील, व्यवहारकुशल और तेजस्वी पुरुषों में (महि क्षत्रं) बड़ा भारी बल विद्यमान है ।

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते ।
अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥

भा०—आप दोनों (अद्रुहा) परस्पर कभी द्रोह न करते हुए (देवा) तेजस्वी, दानशील, एक दूसरे की सत्कामना करते हुए (ऋतम् ऋतेन सपन्ता) ऐश्वर्य को सत्य व्यवहार और न्याय से प्राप्त करते हुए (इषिरम् दक्षम्) इच्छानुकूल सबको शासन करने वाले, सर्व प्रेरक बल और ज्ञान को (आशाते) प्राप्त करो और (वर्धेते) बढ़ो, वृद्धि को प्राप्त होओ ।

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।
बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत् (वृष्टि-द्यावा) जल वृष्टि और दीप्ति से युक्त और (रीत्यापा) जल प्रवाह कराने वाले होकर (दानु-

मत्याः इषः पती) भूमि के पालक होकर (बृहन्तं गर्त्तम् आशाते) बड़े भारी सूर्य वा मेघ को व्यापते हैं उसी प्रकार 'मित्र' और वरुण न्यायाधीश और सेनापति, दोनों (वृष्टि-द्यावा) जल वृष्टि के समान तेजस्वी (रीत्यापा) ज्ञान और गति तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करने वाले, होकर (दानु-मत्याः) देने योग्य नाना ऐश्वर्यों की स्वामिनी, राज्यशक्ति वा पृथिवी के (इषः पती) अन्नादि के स्वामी तथा शासक, बल के पालन करने वाले होकर (बृहन्तं गर्त्तम्) बड़े भारी सभापति के पद तथा महान् रथ को (आशाते) प्राप्त करते हैं। 'गर्तः' सभास्थाणुः, रथश्च। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६९]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

त्री रो॑च॒ना व॑रुण॒ त्रीँरु॒त द्यून्त्रीणि॑ मित्र धारयथो॒ रजां॑सि ।
वा॒वृ॒धा॒नाव॒मतिं॑ क्ष॒त्रिय॒स्यानु॑ व्र॒तं रक्ष॑माणावजु॒र्यम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) दुष्टों के वारण करने वाले ! हे (मित्र) प्राणवत् प्रिय, सर्वस्नेही न्यायकारिन् ! आप दोनों (त्री रोचना) अग्नि, सूर्य और विद्युत् तीनों दीप्तिमान् पदार्थों के तुल्य सर्वप्रकाशक तीनों वेदों के ज्ञानों को (उत्) और (त्रीन्) तीन (द्यून्) प्रकाशों के समान तीनों प्रकारों के व्यवहारों को और (त्रीणि रजांसि) तीनों वर्णों के लोगों को (धारयथः) धारण करते हो। आप दोनों (क्षत्रियस्य) बलवान् क्षत्रिय के (अमतिम्) रूप को (वावृधानौ) बढ़ाते हुए और (अजुर्यम्) कभी नाश न होने वाले, स्थिर (व्रतं) कार्य व्रत की (अनु रक्षमाणौ) सबके अनुकूल, उत्तरोत्तर, प्रतिदिन रक्षा करते हुए सबों को धारण करते हो।

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (इरावतीः धेनवः) दूध वाली गौवें (मधुमद् दुह्रे) मधुर रसयुक्त दूध देती हैं और जिस प्रकार (इरावतीः सिन्धवः मधुमत् दुह्रे) जल से पूर्ण नदियें अन्न से युक्त जल-राशि वा जल से युक्त अन्न प्रदान करती हैं उसी प्रकार हे (मित्र वरुण) सर्वप्रिय न्यायाधीश, सभापते ! हे दुष्टों के वारक, सेनापते ! (वाम्) आप दोनों की (धेनवः) वाणियां (इरावतीः) रस से युक्त और अपने अधीन पुरुषों को प्रेरणा करने वाली होकर (मधुमत्) ज्ञान और बल से युक्त ऐश्वर्यों को उत्पन्न करें और (वां सिन्धवः) आप लोगों की प्रेरणा शक्ति वाली, वेग से जाने वाली और प्रजागण को उत्तम प्रबन्ध में बांधने वाली आज्ञाएं और सेनाएं (मधुमत् दुह्रे) मधुर फल एवं बलयुक्त राष्ट्र को प्रदान करती हैं । जिस प्रकार (तिसृणाम् धिषणानाम्) सूर्य, आकाश और पृथिवी तीन लोकों के बीच में (त्रयः वृषभासः रेतो-धाः द्युमन्तः वि तस्थुः) तीन बलवान् वर्षणशील, जल, वीर्य को धारण करने वाले तेजस्वी सूर्य विद्युत् और अग्नि वा अग्नि, वायु और जल तीनों विशेष रूप से विराजते हैं उसी प्रकार (तिसृणां) तीन (धिषणानाम्) अध्यक्ष होकर आज्ञा प्रदान करने वाली राष्ट्रधारक, तीन सभाओं के ऊपर (त्रयः) तीन (वृषभाः) बलवान्, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, धर्मानुकूल शासन से चमकने वाले (रेतोधाः) बल वीर्य को धारण करने वाले, (द्युमन्तः) तेजस्वी, व्यवहार कुशल, इच्छाशक्ति से युक्त, प्रधान पुरुष (वि तस्थुः) विशेष रूप से स्थित हों ।

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥

भा०—मैं (प्रातः) प्रभात काल में और जीवन के प्रभात काल अर्थात्

प्रथम चतुर्थांश जीवनकाल २५ वर्ष की आयु तक (देवीम् अदितिम्) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश देने वाली, और भूमि के समान अन्न और ज्ञान देने वाली माता और आचार्य एवं सावित्री वेदवाणी को (जोहवीमि) निश्चयपूर्वक स्वीकार करूं, आदरपूर्वक उसको ग्रहण करूं उसी प्रकार उसको मैं (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदयकाल में, (मध्यन्दिने) मध्याह्न-काल में भी आदरपूर्वक प्राप्त करूं। अर्थात् यौवन में भी उसकी उपेक्षा वा निरादर न कर अभ्यास करता रहूं। इसी प्रकार राज्य के उदयकाल में अन्नदात्री भूमि का मैं प्रजाजन आदर करूं, सूर्यवत् तेजस्वी राजा के उदय और उसके मध्याह्नवत् तपने पर भी भूमि अर्थात् उसमें बसी प्रजा को ही आदर पूर्वक देखूं। मैं (राये) दान देने योग्य ज्ञान एवं धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये (मित्रा वरुणा) स्नेही और वरण करने योग्य आचार्य, उपदेष्टा और प्रजा के स्नेही, न्यायाधीश और दुष्टवारक, सेनापति दोनों को माता पिता के सदृश जान कर (सर्वताता) सबके हितार्थ, तथा (तोकाय तनयाय शंयोः) पुत्र पौत्र के तुल्य पालनीय, सैन्यगण और सामान्य प्रजा गण के सुख-कल्याण और दुःख निवारण के लिये हम उनको (ईडे) चाहें, उनकी स्तुति करें और स्वीकार करें।

या धर्तारा रजसो रोचनास्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ४।७

भा०—हे (मित्रा वरुणा) स्नेहवान् एवं वरण करने योग्य श्रेष्ठ-जनो! (याः) जो आप दोनों (रोचनस्य) तेजस्वी, सूर्यवत् ज्ञान प्रकाश से युक्त, सर्वप्रिय एवं (पार्थिवस्य) पृथिवी पर रहने वाले समस्त (रजसः) लोकों को (धर्त्तारा) धारण करने वाले, (दिव्या) ज्ञान प्रकाश में और विजिगीषा, व्यवहार आदि में प्रौढ़, (आदित्या) ज्ञान और कर आदि लेने और देने में तथा भूमि और सरस्वती के वश करने में चतुर हो उन (वां) आप दोनों के (अमृता) कभी नाश न होने वाले

(ध्रुवाणि व्रतानि) स्थिर व्रतों, कर्मों को (देवाः) ज्ञानाभिलाषी शिष्य और ऐश्वर्याभिलाषी प्रजाजन (न आमिनन्त) कभी खण्डित नहीं करते। इति सप्तमो वर्गः ॥

[७०]

उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥

भा०—हे (मित्र वरुण) स्नेहवान् ! हे श्रेष्ठ पुरुषो ! (नूनं) निश्चय ही (वां अवः) आप दोनों का ज्ञान और रमण सामर्थ्य, प्रेम और बल, (पुरु-उरुणा अस्ति चित् हि) बहुत प्रकार का महान् और उत्तम है। मैं (वां) आप दोनों के (सु-मतिम्) शुभ मति, उत्तम ज्ञान को (वंसि) प्राप्त करूं।

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे।
वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

भा०—(ते वयम्) वे हम लोग (अद्रुह्वाणा) कभी द्रोह न करने वाले, (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, और दुःख से बचाने वाले वा रोते हुए आदमियों द्वारा शरण रूप में प्राप्त करने योग्य (ता वां) उन आप दोनों के (इषम्) शासन को हम अपने (धायसे) पोषण और रक्षा के लिये अन्नवत् (अश्याम) उपभोग करें।

पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा।
तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने और पीड़ितों को शरण देने वाले मित्र और वरुण ! सभा सेना के अध्यक्षो ! आप दोनों (नः) हम प्रजाओं को (पायुभिः) नाना रक्षा साधनों से (उत) तथा (सुत्रात्रा)

उत्तम पालक दण्ड विधान से (पातं) पालन करो और (त्रायेथाम्) संकटों से बचाओ। हम स्वयं (तनूभिः) अपने शरीरों से तथा पुत्र पौत्रों तथा विस्तृत सैन्यादि से (दस्यून् तुर्याम्) दुष्ट, हिंसक पुरुषों का नाश करें।

मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः।
मा शेषसा मा तनसा ॥ ४ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अद्भुत-क्रतू) आश्चर्यजनक बुद्धि और कर्म से सम्पन्न स्नेही और वरणीय उत्तम पुरुषो ! हम (कस्य) किसी का भी (यक्षं) दान दिया धन आदि (तनूभिः) अपने शरीरों से (मा भुजेम) कभी भोग न करें और (शेषसा मा) अपने पुत्र से प्राप्त धन का भी भोग न करें, (मा तनसा) पौत्र का दिया धन भी हम भोग न करें। इसी प्रकार हम अपत्य और पौत्रादि द्वारा भी अन्य किसी का दिया धन न भोगें अर्थात् हमारे पुत्र पौत्रादि भी किसी अन्य के दिये धन का भोग न करें। वे भी स्वबाहूपार्जित धन पर ही जीवन व्यतीत करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[७१]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ गायत्री छन्दः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा।
उपेमं चारुमध्वरम् ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) शत्रुओं के वारण और प्रजाओं को प्रेम करने हारो ! आप दोनों (रिशादसा) दुष्टों का नाश करने वाले, और (बर्हणा) प्रजाओं की ऐश्वर्य, रक्षा, पालन आदि से वृद्धि करने वाले हो, आप दोनों (नः) हमारे (इमं) इस (चारुम्) उत्तम (अध्वरम्) हिंसारहित, प्रजा के पालक, यज्ञ, राष्ट्र को (आ उप गन्तम्) सदा आदर पूर्वक प्राप्त होवो।

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) वरुण अर्थात् श्रेष्ठ पदार्थों, ज्ञानों और गुणों के प्रदान करने वाले हे स्नेहवान्, मृत्यु आदि से बचाने वाले, (प्र-चेतसा) प्रकृष्ट ज्ञान से सम्पन्न पुरुषो ! हे (ईशाना) सामर्थ्यवान् जनो ! आप लोग (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र के (हि) निश्चय से (राजथः) राजा के तुल्य विराजते हो । आप दोनों (धियः) हज़ारों समस्त कर्मों और ज्ञानों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ, पुष्ट करो ।

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वरुण मित्र) श्रेष्ठ और स्नेहवान् जनो ! स्त्री पुरुषो ! आप लोग (दाशुषः) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य के देने वाले (अस्य-सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्यमय राष्ट्र के पालन और उपभोग के लिये (नः) हमारे (सुतम्) बनाये इस यज्ञ, वा राष्ट्र वा अभिषिक्त नृपति आदि को (उप आ गतम्) प्राप्त होवो । इति नवमो वर्गः ॥

[७२]

बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ उष्णिक् छन्दः ॥ तृचं सूक्तम् ॥

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

भा०—(वयं) हम लोग (मित्रे वरुणे) स्नेहयुक्त, और श्रेष्ठ पुरुष के अधीन रहकर (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (अत्रिवत्) तीनों दुःखों से रहित यहां की ही प्रजा के समान (जुहुमः) यज्ञ आदि कार्यों में त्याग वा कर प्रदान करें तथा उत्तम ऐश्वर्य का भोग करें । हे स्नेहयुक्त एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (सोम-पीतये) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और

राजा के पुत्रवत् पालन करने के लिये (बर्हिषु) आसन और वृद्धिशील प्रजा के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) स्थिर होकर विराजो।

व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना ।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥

भा०—हे स्नेहयुक्त, प्रेम और आदर से एक दूसरे को योग्य कार्य के लिये वरण करने वाले और वरण करने योग्य ! एवं श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (धर्मणा व्रतेन) धर्मानुकूल व्रताचरण से (ध्रुव-क्षेमा) स्थिर रक्षण और कल्याण युक्त तथा (यातयत्-जना) मनुष्यों को सन्मार्ग पर यत्नशील बनाते हुए (सोम-पीतये) अन्न जल आदि ऐश्वर्य के भोग एवं पालन के लिये (बर्हिषि) आसन एवं वृद्धिशील राष्ट्र-प्रजाजन के ऊपर अध्यक्ष रूप से (नि सदतम्) नियमपूर्वक विराजो।

मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—(मित्रः च) स्नेहवान्, प्रिय एवं (वरुणः च) वरण करने योग्य उक्त दोनों प्रकार के वर्ग (इष्टये) अभीष्ट कल्याण एवं सुख प्राप्ति के लिये (नः) हमारे (यज्ञम्) श्रेष्ठ कर्म यज्ञ, संगति, याचना प्रार्थना आदि को (जुषेताम्) प्रेम पूर्वक सेवन वा स्वीकार करें। और (सोम-पीतये) अन्न, ओषधिरस आदि के सेवन के लिये (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (नि सदतां) विराजो। इसी प्रकार (सोमपीतये बर्हिः नि सदताम्) ऐश्वर्यादि उपभोग वा प्रजापालन के लिये वृद्धिशील प्रजाजन पर अध्यक्षवत् विराजो। इति दशमो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[७३]

पौर आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७ निचृदनुष्टुप् । ३, ६, ८, ९ अनुष्टुप् । १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यद्द्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारिथी के समान एक ही गृहस्थ रथपर विराजने वाले वा आशु अर्थात् शीघ्र गमन करनेवाले साधनों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (परावति स्थः) कभी दूसरे देश में रहो, (यत् अर्वावति स्थः) और जो कभी निकट देश में भी रहते हो (यत् वा) वा (पुरुभुजा) बहुत से जनों के पालक एवं बहुत ऐश्वर्यों के भोक्ता होकर (पुरुस्थः) बहुत से प्रदेशों में रहे हो (यत् अन्तरिक्षः स्थ) और जो कभी आप दो अन्तरिक्ष में विमानादि द्वारा विचरे हों वे २ आप लोग दूर निकट, एवं नाना देशों और अन्तरिक्षादि में विचरने वाले स्त्री पुरुषो ! आप सब लोग (अद्य आयातम्) आज हमें प्राप्त होवो ।

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

भा०—(त्या) वे आप दोनों (पुरुभूतमा) बहुत से प्रजाजनों में उत्तम सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्य पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले, बहुतों के उत्तम आश्रय रूप और (पुरू दंसासि) नाना कर्मों को (बिभ्रता) धारण करने वाले (वरस्या) अति श्रेष्ठ, परस्पर को वरण करने वाले आप दोनों को मैं (इह) इस अवसर में (यामि) प्राप्त होता हूं और (अध्रिगू) भूमि पर, अधिकारवान् , एवं मार्ग गगन में दूर २ देशों तक जाने वाले (तुविः-तमा) अति बलवान् , प्रचुर धन के स्वामी आप दोनों को मैं (हुवे) आदर पूर्वक बुलाता हूं ।

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (ईर्मा) संसार मार्ग पर जानेवाले युगल स्त्री पुरुष

(रथस्य चक्रम्) रथ के चक्र के तुल्य (वपुषे वपुः) एक शरीर के सहारे के लिये (अन्यत् वपुः) उससे भिन्न दूसरे शरीर को जानकर परस्पर को (येमथुः) नियन्त्रित करते, नियम में बांधते और विवाह बन्धन में बांधते हो। उसी प्रकार (अन्यः) अन्य भिन्न २ प्रकार के (नाहुषा-युगा) परस्पर बन्धन में बंधने वाले मनुष्यों के जोड़ों को (परिदीयथः) चलाते और (मह्ना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रजांसि) समस्त लोकों को (परि दीयथः) बसाते और संचालित कर रहे हो। अर्थात् सर्वत्र जीव संसार में रथ चक्रवत् एक स्त्री शरीर दूसरे पुरुष शरीर का संगी होकर नर मादा संसार चला रहे हैं।

तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनुष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो (यत्) जो काम (वाम्) आप दोनों के (अनु स्तवे) अनुकूल रूप से स्तुति करने योग्य है, जिसका मैं आप को उपदेश करता हूं (तत् विश्वा) वे समस्त काम आप दोनों (एना) इस विधि से (कृतम्) करो। और दोनों (अरेपसा) पापरहित होकर (नानाजातौ) भिन्न २ वंश में उत्पन्न होकर वा भिन्न २ स्त्री पुरुष पृथक् पृथक् अपने २ गुणों में प्रसिद्ध होकर भी (अस्मे) हमारे वृद्धि के लिये (बन्धुम्) बन्धन को (सम् आ ईयथुः) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो।

आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जब (वा) आप वर वधू दोनों में से (सूर्या) उषा के समान कान्तिमती, सूर्यवत् तेजस्विनी, उत्तम ऐश्वर्यवती, सन्तान उत्पादन करने में समर्थ स्त्री सदा (रघु-स्यदं) वेग से जाने वाले (रथम्) रथवत् रमण करने योग्य गृहस्थ आश्रम को (अतिष्ठत्) धारण करती है, तब ही वर वधू ! (वाम् परि) आप दोनों के ऊपर (अरुषाः) दीप्ति

युक्त (घृणाः) जल सेचन करने वाले (आतपः) खूब तपने वाले सूर्य किरण जिस प्रकार (आवरन्त) आवरण करते या पड़ते हैं उसी प्रकार गृहस्थ में आप दोनों के ऊपर (अरुषाः) रोष रहित, सौम्य (घृणाः) ज्ञान, स्नेह का प्रवाह बहाने वाले, दया स्नेह के सेचन एवं उस द्वारा पोषण करने वाले, (आतपः) सब प्रकार से तपस्वी, जन (आ वरन्त) तुम को आवृत करें, तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हें प्राप्त हों। इत्येकादशो वर्गः ॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥

भा०—हे (नरा) दोनों स्त्री पुरुषो ! हे (मासत्या) असत्य आचरण न करने वालो ! (यत्) जो (वाम्) आप दोनों के (घर्मं) सेचने योग्य वा तेजोयुक्त (अरेपसं) पापरहित कर्म को (आस्ना) मुख द्वारा (भुरण्यति) उपदेश करता है, वह (अत्रिः) तीनों तापों और तीनों दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (सुम्नेन चेतसा) उत्तम मननशील, शुभ चित्त से ही (युवोः चिकेतति) आप दोनों को ज्ञान का उपदेश करे ।

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) शीघ्र चलने वाले अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुषो ! (यत् अत्रिः) जो भोक्ता, एवं इस लोक में विद्यमान पुरुष (दंसोभिः) नाना कार्यों से (आ ववर्त्तति) आजीविका सम्पादन करता है वह (उग्रः) बलवान् पुरुष (वां) आप दोनों में से (ककुहः) श्रेष्ठ, (सन्तनिः) वंश का विस्तार करने वाला और (यामेषु) समस्त मार्गों पर (ययिः) जाने में स्वतन्त्र (शृण्वे) सुना जाय, प्रसिद्ध हो। या जो (अत्रिः) विद्वान् आप दोनों को कर्मों के उपदेशों से युक्त करता है वह महान् उग्र, आचार्य (यामेषु ययिः) नियमादि पालन कार्यों ले जाने वाला हो ।

मध्वं ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मधूयुवा) मधुर पदार्थों को परस्पर मिलाने वाले, जल, तेज और अन्न, के मिश्रण और विश्लेषण करने वाले हे (रुद्रा) दुष्ट पुरुषों को रुलाने वाले उत्तम स्त्री पुरुषो ! (यत्) जब (रुद्रा) गर्जन पूर्वक द्रवण होने वाली (पिप्युषी) अन्नादि को बढ़ाने वाली जल-वृष्टि (मध्वः सिषक्ति) अन्नों को सींचती हैं, इधर आप दोनों (समुद्रा) अन्तरिक्षों और समुद्रों को भी (अति पर्षथः) पार कर लिया करो, और (पक्वा पृक्षः) पके सुमधुर अन्न (वाम् भरन्त) तुम दोनों को पालन पोषण करें । देश में जल वृष्टि से अन्न बढ़े, स्त्री पुरुष समुद्रों पार व्यापार करें । उत्तम खेती पकें, लोग उन अन्नों से पुष्ट होवें ।

सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों को उत्तम स्वामियों के समान रथी सारथिवत् इन्द्रियों को दमन करने हारे उत्तम स्त्री पुरुषो ! (सत्यम् इत् वा) निश्चय से आप दोनों को लोग जो (मयः-भुवा आहुः) सुख उत्पन्न करने वाले (आहुः) बतलाते हैं सो (सत्यम् इत् वां उ) निश्चय से ठीक ही है । (ता) वे आप दोनों (यामन्) संयम और परस्पर के विवाह आदि बन्धन पूर्वक एक दूसरे को कर्त्तव्य में बांधने के निमित्त याम-हूतमा) संयमशील पुरुषों को आदरपूर्वक गुरु रूप से स्वीकार करने वालों से श्रेष्ठ होकर विवाह करो और (यामनि) उस संयम युक्त विवाह बन्धन में दोनों (आ मृडयत्-तमा) एक दूसरे को प्राप्त होकर अति अधिक सुखी करने वाले बनो ।

इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(या) जिन (ब्रह्माणि) धनों, ज्ञानों और उत्तम अन्नों को हम (रथान् इव) रथों और नाना रम्य पदार्थों के समान (तक्षाम) उत्पन्न करते और बनाते हैं वे (अश्विभ्यां) जितेन्द्रिय रथी सारथिवत् राजा रानी, गृहपति पत्नी आदि स्त्री पुरुषों को (वर्धना) बढ़ाने वाले होकर (शन्तमा) अत्यन्त शान्तिदायक (सन्तु) हों। हम आप दोनों का (बृहत् नमः) बड़ा उत्तम आदरसूचक नमस्कार का वचन (अवोचाम) कहा करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[७४]

आत्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, १० विराडनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ४, ५, ६, ९ निचृदनुष्टुप् । ७ विराडुष्णिक् । ८ निचृदुष्णिक् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (देवौ) दानशील, सत्य वचन को प्रकाशित करने वाले, एक दूसरे की कामना करने वाले होकर (कू-स्थः) भूमि पर विराजते हो। आप दोनों (दिवः) उत्तम व्यवहार, ज्ञान प्रकाश और उत्तम कामना के (मनावसू) मन और ज्ञान को वसु अर्थात् धन रूप से रखने और (दिवः मनावसू) तेजोमय प्रभु के ज्ञान के धनी होवो। हे (वृषण्वसू) हे वृषन् ! हे वसु ! हे वीर्यसेचक पुरुष, एवं पुरुष को अपने आश्रय बसाने वाली स्त्री ! तुम दोनों (तत्) उस ज्ञानोपदेश का सदा (श्रवथः) श्रवण किया करो जिसको (अत्रिः) त्रिविध दुःखों से पारंगत और गृहस्थ वा तीन वर्णों से भिन्न चतुर्थाश्रमी विद्वान् (वाम्) आप दोनों को (आ विवासति) आदर पूर्वक उपदेश करे।

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

भा०—परस्पर प्रश्न करने की रीति। हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो (त्या कुह आयतथः) वे आप दोनों किस स्थान में यत्नवान् होकर रहते हो। (कुह) किस गुरु-आश्रम में (नु) भला आप दोनों (दिवि) ज्ञान प्राप्ति के निमित्त (श्रुतौ) विद्योपदेश श्रवण किये हो? हे (देवा) परस्पर की कामना से युक्त एवं दोनों विद्वान् तेजस्वी पुरुषो! आप अब (कस्मिन् जने) किस जन समूह में (आ यतथः) विद्या प्रचार आदि का यत्न करते हो। (वां) आप दोनों की (नदीनाम्) समृद्ध वाणियों और सम्पत्तियों का (कः) कौन (सचा) सहयोगी है?

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम्।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों (कं याथः) किसको लक्ष्यकर जाते हो। (कं ह गच्छथः) किसके पास जाते हो। (कम् अच्छ) किसके प्रति (रथम् युञ्जाथे) जाने के लिये उत्तम यान जोड़ते हो। वा किस (रथम्) उद्देश्य वा लक्ष्य को रखकर योगाभ्यास किया करते हो। (कस्य) किस रमणीय के (ब्रह्माणि) वेद-वचनों, धनों और अन्नों का (रण्यथः) प्रसन्नता पूर्वक उपभोग करते हो। (वयम्) हम लोग (वाम्) आप दोनों को (इष्टये) यज्ञ एवं स्व-अभिलाषा के लिये (उष्मसि) चाहते हैं। "कं। ह। जग्मथः।" इति पदपाठगतः पाठः।

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

भा०—हे (पौर) पुर के निवासी वा हे मनुष्य की सन्तान स्त्री पुरुष जनो! आप लोग (पौराय) पुर के निवासी जनों के हित के लिये (उद-प्रुतं) जल से अभिषिक्त, (पौरम्) 'पुर' अर्थात् नगर निवासी

जनों के हितैषी, (ईम्) इस (सिंहम् इव) सिंह के समान तेजस्वी पुरुष को (गृभीत-तातये) हाथ में लिये राष्ट्र के कल्याण के लिये और (द्रुहः) शत्रु से द्रोह अर्थात् संग्राम, लड़ाई-झगड़े के (पदे) कार्य पर वा मुख्य नायक पद पर (जिन्वथः) अभिषिक्त करो, स्थापित करो।

प्र च्यवा॑नाज्जुजु॒रुषो॑ व॒व्रिमत्क॒ं न मु॑ञ्चथः ।
युवा यदी॑ कृ॒थः पुन॒रा काम॑मृण्वे व॒ध्वः॑ ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे उत्तम पुरुषो ! वा सेना, सभा के अध्यक्ष जनो ! आप लोग (जुजुरुषः) जरावस्था को प्राप्त (च्यवानात्) निरन्तर क्षीण होते जाने वाले पुरुष से (वव्रिम्) वरण करने योग्य पद वा अधिकार को (अत्कं न) रूप या कवच के समान (प्र मुञ्चथः) परित्याग करा दो। और (पुनः) फिर उस स्थान पर (युवा) जवान पुरुष जिस प्रकार (वध्वः कामम्) वधू के कामना योग्य रूप को (ऋण्वे) प्राप्त करता है उसी प्रकार (यदि युवा) जवान बलवान् , पुरुष (वध्वः) 'वधू' अर्थात् कार्य भार वहन करने की शक्ति के (कामं) कान्तियुक्त पद को (ऋण्वे) प्राप्त करे, तो उसी को आप दोनों (पुनः वव्रिम् कृथः) पुनः उस वरण करने योग्य नायकत्व पद पर ही नियुक्त करें। जैसे बूढ़े असमर्थ आदमी से सेना में कवच ले लिया जाता है और जो कवच को उठा सके उस पुरुष को पुनः दे दिया जाता है इसी प्रकार वरणयोग्य नायक पद भी बूढ़े से ले लिया करो और (युवा यदि वध्वः कामं ऋण्वे) जवान यदि कार्य-भार को वहन करने की इच्छा करे तो उसको (कृथः) उस पद पर नियत करो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अस्ति॒ हि वा॑मि॒ह स्तो॒ता स्मसि॑ वां स॒न्दृशि॑ श्रि॒ये ।
नू श्रु॒तं म॒ आ ग॑त॒मवो॑भिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥

भा०—हे सभा वा सेना के अध्यक्ष जनो (वाम्) आप दोनों को (स्तोता) उत्तम उपदेश करने और आज्ञा करने वाला भी (इह) इस

राष्ट्र में (अस्ति हि) हो । और हम (वां) आप दोनों के (श्रिये) लक्ष्मी, शोभा वा सम्पत्ति की वृद्धि या आश्रय प्राप्ति के लिये, आप के (संदृशि) उत्तम दर्शन या अध्यक्षता वा निष्पक्षपात शासन में (स्मसि) रहें । आप दोनों (मे नु श्रुतम्) हमारे वचन सुनिये । हे (वाजिनी-वसू) संग्रामकारिणी सेना और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त वा ज्ञानवान् पुरुषों से युक्त राजसभा के बीच स्वयं विराजने वा उसको बसाने वा उसको धनवत् पालने वाले अध्यक्ष जनो ! आप लोग (अवोभिः) उत्तम रक्षा साधनों सहित (आ गतम्) हमारे समीप आइये ।

को वा॑म॒द्य पु॑रू॒णामा व॑व्ने॒ मर्त्या॑नाम् ।
को विप्रो॑ विप्रवाहसा॒ को य॒ज्ञैर्वा॑जिनीवसू ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्र-वाहसा) विविध ऐश्वर्यों और विद्याओं से अपने को पूर्ण करने वाले शिष्यों को धारण करने वाले ! एवं (वाजिनी-वसू) ऐश्वर्य, संग्राम, बल और ज्ञान से युक्त सेना और वाणी को बसाने, उनको द्रव्यवत् पालने वाले सेनापति राजा और आचार्य जनो ! (अद्य) आज (पुरूणाम् मर्त्यानाम्) मरणशील वा शत्रुओं को मारने वाले मनुष्यों में से (कः वाम् वन्वे) कौन आप दोनों की सेवा करता है, (कः विप्रः) कौन विद्वान् और कौन पुरुष (यज्ञैः) आदर सत्कारों, दानों प्रार्थना वचनों और सत्संग आदि से (वां वन्वे) तुम दोनों से वर्त्ताव, प्रार्थनादि करता है, इसका सदा विचार रक्खो ।

आ वां॒ रथो॒ रथा॑नां॒ येष्ठो॑ यात्वश्विना ।
पु॒रू चि॑दस्म॒युस्ति॒र आ॑ङ्गू॒षो मर्त्ये॒ष्वा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्याओं में पारंगत, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! अश्वादि सैन्यों के स्वामि जनो ! (रथानां येष्ठः) अन्य रथों में चलने में सबसे उत्तम (वां रथः) आप दोनों का रथ (आ यातु) आवे । (मर्त्येषु) मनुष्यों में (पुरु चित् तिरः) बहुत से ऐश्वर्यों को प्राप्त करने

वाला आप दोनों का (अस्मयुः) हमें प्राप्त होने वाला (आङ्गूषः) उत्तम उपदेश भी (आ यातु) हमें प्राप्त हो।

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९ ॥

भा०—(मधु-युवा) मधुर जल, अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने योग्य वा जल, अन्नवत् परस्पर मिलने वाले आदरणीय स्त्री पुरुषो ! (अस्माकं) हमारी (चर्कृतिः) सत्कार क्रिया (वाम् शम् उ सु अस्तु) आप दोनों को शान्तिदायक हो। आप (विचेतसा) विशेष ज्ञानयुक्त होकर (श्येना इव) बाजों के समान (विभिः) आकाशगामी रथों से (अर्वाचीना) हमारे सन्मुख (दीयतम्) आवो और जावो।

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! अश्वों वा विद्वानों के स्वामियो ! रथी सारथिवत् राष्ट्र के अध्यक्ष सभा-सेनाध्यक्षो ! आप दोनों (यत् कर्हि चित्) जहां कहीं भी होवो। (इमं) इस (हवम्) ग्रहण करने योग्य और देने योग्य वेद के सत्य ज्ञानमय वचन को (शुश्रूयातम्) सुनते और सुनाते रहो। (वां) आप दोनों को (वस्वीः) अध्यापक उपदेशक के अधीन बसने वाली शिष्य मण्डलियों के समान राष्ट्र में बसने वाली प्रजाएं (भुजः) आप दोनों के पालन करने वाली वा राष्ट्र का भोग करने वाली होकर (सु पृञ्चन्ति) आप दोनों से भली प्रकार सम्बद्ध होती हैं। वे (वां) आप दोनों के साथ (उ सु) उत्तम रीति से (पृचः) सदा सम्पर्क बनाये रक्खें और आप को सुख देती रहें। इसी प्रकार गुरु शिष्य सदा इस ज्ञान को सुनते सुनाते रहें, शिष्य जन वा प्रजाएं उनको पालन करें और प्रेम से उनका सत्संग करती रहें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७५]

अवस्युरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ पंक्तिः । २, ४, ६, ७, ८ निचृत्पंक्तिः । ५ स्वराट्पंक्तिः । ९ विराट्पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रति॑ प्रि॒यत॑मं॒ रथं॒ वृष॑णं वसु॒वाह॑नम् ।
स्तो॒ता वा॑मश्विना॒वृषि॒: स्तोमे॑न॒ प्रति॑ भूषति॒ माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं हव॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं वेगवान् अश्वादि साधनों के स्वामी विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (ऋषिः = ऋं गतिं सिनाति यः) गति अर्थात् क्रिया और ज्ञानशक्ति को उत्तम रीति से बांधने में समर्थ विद्वान् पुरुष, (वृषणं) खूब बलवान् , सुखप्रद और अच्छी प्रकार सुप्रबन्ध से युक्त (वसु-वाहनम्) धन को लाने लेजाने में समर्थ वा अपने में बैठने वालों को उठाकर दूर लेजाने में समर्थ (प्रियतमं रथं) अति प्रिय रथ एवं रमण करने योग्य रसरूप वा देने योग्य ज्ञान वचन को (स्तोमेन) उसके सम्बन्ध में उपदेश करने योग्य ज्ञानरहस्य के साथ ही (वाम् प्रति भूषति) आप दोनों को प्रत्यक्ष रूप में देता और आपको अलंकृत करता और कहता है हे (माध्वी) मधुर वचन बोलने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा ग्रहण करने योग्य अध्ययनादि वचन श्रवण करो ।

अ॒त्याया॑तमश्विना ति॒रो विश्वा॑ अ॒हं सना॑ ।
दस्रा॒ हिर॑ण्यवर्तनी॒ सुषु॑म्ना॒ सिन्धु॑वाहसा॒ माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं हव॑म् २

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! एवं अश्वादि वेगयुक्त साधनों से सम्पन्न जनो ! (अहं) मैं (सना) सनातन से प्राप्त (विश्वा) समस्त (तिरः) सर्वतः श्रेष्ठ विद्यमान ज्ञान को प्राप्त करता हूं । आप दोनों (दस्रा) दुःखों के नाश करने में समर्थ (हिरण्य-वर्तनी) हित और रमणीय मार्ग पर चलते हुए, (सु-सुम्ना) उत्तम सुख से युक्त

(सिन्धु-वाहसा) प्रवाह से बहने वाली नदी के द्वारा अपनी नौका को लेजाने वाले केवट के समान सिन्धुवत् प्रवाह से ज्ञान देने वाले गुरु को प्राप्त हो कर (माध्वी) मधुर ज्ञान को मधुकरों के समान सेवन करते हुए (मम) मेरे (हवम्) ग्रहण योग्य और दातव्य ज्ञानोपदेश का (श्रुतम्) श्रवण करो।

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों, इन्द्रियों और आशुगामी साधनों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (रत्नानि) रमणीय सुन्दर गुणों और रत्नों को (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (नः आ गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो । (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, पीड़ा को दूर करने वाले (हिरण्य-वर्त्तनी) हित रमणीय मार्ग से जाने वाले, (वाजिनी-वसू) ज्ञानयुक्त वाणी के निमित्त गुरु के अधीन व्रतपूर्वक बसने वाले आप दोनों (जुषाणा) प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (माध्वी) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर (मम हवं) मेरे ज्ञानोपदेश को (श्रुतम्) श्रवण करो ।

सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ४

भा०—हे (वृषण्वसू) मेघवत् ज्ञान वर्षण करने वाले आचार्य के अधीन व्रत पालनार्थ अन्तेवासी होकर रहने वाले स्त्री पुरुषो ! (सु-स्तुभः) उत्तम उपदेष्टा की (वाणीची) वाणी (वां रथे) आप दोनों के रमणीय आत्मा में (आ-हिता) अच्छी प्रकार धारण की जावे । (उत) और (ककुहः) महान् (मृगः) आत्मा, आचरणादि का शोधन करने वाला गुरु (वापुषः) शरीर देने वाले पिता के समान (वां) आप दोनों का (पृक्षः) सम्पर्क जोड़ने वाले अन्नवत् ज्ञान का (कृणोति) उपदेश करता है । हे आप दोनों (माध्वी) मधु, अन्नवत् ज्ञान संग्रही होकर (मम हवं श्रुतम्) मेरा वचनोपदेश श्रवण करो ।

बोधिन्मनसा र॒थ्येषिरा हवनश्रुता । विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—(रथ्या अश्विनौ इषिरा विभिः च्यवानम् यातः) जिस प्रकार महारथी सारथि दोनों अश्वों को प्रेरणा करते हुए वेग से जाने वाले अश्वों द्वारा आते, शत्रु के प्रति प्रयाण करते हैं उसी प्रकार उत्साह से युक्त जितेन्द्रिय हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (बोधिन्मनसा) ज्ञानयुक्त चित्त वाले और (हवन-श्रुता) ग्राह्य गुरूपदेश को श्रवण करने वाले, (रथ्या) उत्तम देह और आत्मा से युक्त, (इषिरा) प्रबल, उत्तम इच्छावान् , होकर (च्यवानम्) ज्ञानवृद्ध (अद्वयाविनम्) द्वन्द्व भाव अर्थात् बाहर कुछ और भीतर कुछ इस प्रकार के भावों से रहित, निष्कपट, निष्पक्षपात व्यवहार करने वाले गुरु को (विभिः) अपने कान्ति और गति से युक्त अवयवों सहित (नि याथः) नम्रतापूर्वक प्राप्त होवो । (माध्वी) मधु-संग्रही भ्रमरों के समान ज्ञान को संग्रह करते हुए (मम हवं श्रुतम्) मेरा ग्राह्य उपदेश श्रवण करो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ वां नरा मनो युजोऽश्वासः प्रुषित-प्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ६

भा०—हे (नरा) स्त्री पुरुषो ! (अश्वासः प्रुषित-प्सवः वयः सुम्नेभिः वां वहन्ति) जिस प्रकार अन्नादि खाने वाले, नाना रूप एवं इन्धन, तैल, जल, कोयला आदि को दग्ध करने वाले, वेगवान् अश्व, रथ यन्त्रादि वेगवान् होकर सुखों सहित तुम दोनों को दूर देश तक पहुंचा देते हैं उसी प्रकार (मनः-युजः) मन रूप रासों से जुते (अश्वासः) ये इन्द्रिय, प्राण गण (वयः) स्वयं कान्ति वा दीप्ति से युक्त होकर (वां) आप दोनों को (वीतये) सुख भोगने के निमित्त (सुम्नेभिः) सुखों सहित (वहन्तु) धारण करें अथवा, (वां वयः पीतये सुम्नेभिः वहन्तु) आप दोनों के जीवन को सुखों सहित उपभोग करने के लिये धारण करें । (माध्वी)

अन्न, मधु आदिवत् ज्ञान संग्रही आप दोनों (मम हवं श्रुतम्) मेरा उपदेश श्रवण करो ।

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

भा०—(अश्विनौ) हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इह) इस लोक में (आ गच्छतम्) आदर पूर्वक आइये । हे (नासत्या) परस्पर कभी असत्याचरण न करने वाले ! आप दोनों (मा वि वेनतम्) कभी विरुद्ध कामना न करो । आप दोनों (अर्यमा) स्वामी होकर (तिरः चित् वर्त्तिः) प्राप्त आजीविका के कार्य मार्ग को वा गृह को (अदाभ्या) अहिंसित अपीड़ित होकर (परि यातम्) जाओ । (मम हवम्) मेरे उपदेश को (माध्वी श्रुतम्) मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर श्रवण करो ।

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

भा०—हे (शुभस्पती अश्विना) कल्याणकारी व्यवहार के पालन करने वाले जितेन्द्रिय, उत्तम अश्व रथ के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस परस्पर संगति द्वारा करने योग्य यज्ञ में (अदाभ्या) कभी पीड़ित न होकर (युवं) तुम दोनों (जरितारं) उत्तम उपदेष्टा (अवस्युं) ज्ञान और रक्षा करने वाले (गृणन्तं) उपदेश करते हुए विद्वान् के (उप) समीप (भूषथः) प्राप्त होवो । (माध्वी मम श्रुतं हवम्) मधुवत् अन्न और ज्ञान के संग्रही होकर मेरे वचन श्रवण करो ।

अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ९।१६

भा०—गृहस्थ-रथ । (उषा रुषत् पशुः अभूत्) जिस प्रकार उषा चमकते जगत् को रूप दिखाने वाले किरणों से युक्त होती है और (अग्निः

अधायि) विद्वानों द्वारा अग्नि आधान किया जाता है उसी प्रकार जब (उषा) कान्तिमती, कामना करने वाली स्त्री, (रुषत्-पशुः) दीप्ति युक्त तेजस्वी, उत्तम पशुसम्पदा से युक्त, अथवा उत्तम अंगों वाली होती है और (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक पुरुष (रुषत् पशुः) तेजस्वी अंगों वाला हो तब वह (ऋत्वियः) ऋतु काल में गमन करता हुआ (अधायि) गर्भ रूप से स्थित हो। हे (वृषण्वसू) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष एवं उसके अधीन रहने वाली स्त्री (वां) तुम दोनों का (रथः) सुखपूर्वक रमण अर्थात् उपभोग करने योग्य गृहस्थ रूप रथ (अमर्त्यः) कभी न नाश होने योग्य रूप से (अयोजि) रथवत् ही जुड़े, हे (दस्रौ) दर्शनीय, हे कर्म करने वाले, हे परस्पर दुःख नाशक आप दोनों (माध्वी मम हवं श्रुतम्) उत्तम अन्न, मधुवत् ज्ञान के संग्रही होकर मेरे उपदेश श्रवण करो। इति षोडशो वर्गः॥

(७६)

अत्रिर्ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः। ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

आ भा॑त्य॒ग्निरु॒षसा॒मनी॑कमु॒द्विप्रा॑णां दे॒वया॒ वाचो॑ अस्थुः।
अ॒र्वाञ्चा॑ नू॒नं र॑थ्ये॒ह या॑तं पीपि॒वांस॑मश्विना घ॒र्मम॒च्छ॥ १॥

भा०—(अग्निः उषसाम् अनीकम्) जब सूर्य उषाओं के मुखवत् प्रकाशित होता है और (विप्राणाम्) विद्वान् पुरुषों की (देवयाः) ईश्वर को लक्ष्य कर निकलने वाली (वाचः) वाणियां (उत् अस्थुः) उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी सारथिवत् एक गृहस्थ रथ पर स्थित स्त्री पुरुषो! (उषासम्) शत्रुओं के दल को दग्ध करने वाली, राष्ट्र को वश करने वाली सेनाओं के (अनीकम्) समूह को प्राप्त कर उनका प्रमुख (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (आ भाति)

सूर्यवत् सब तरफ़ प्रकाशित होता है। उस समय (विप्राणां) विद्वानों की (देवयाः वाचः) तेजस्वी, दानशील विजिगीषु को लक्ष्य करके निक-कलने वाली वाणियां (उद् अस्थुः) उत्पन्न होती हैं। अतः हे स्त्री पुरुषो! (नूनं) निश्चय से (रथ्या) रथ पर स्थित महारथियों के समान आप दोनों (अर्वाञ्चा) अश्व के बल से जाने वाले होकर (इह) इसी राष्ट्र में (पीपिवांसम्) अच्छी प्रकार बढ़ने वाले, अन्यों को बढ़ाने वाले (घर्मम्) तेजस्वी, सुखों को सेचन करने में समर्थ, मेघ वा सूर्यवत् निष्पक्ष, दान-शील विद्वान् पुरुष वा गृह्य यज्ञ, प्रभु वा राजा को (अच्छ यातम्) भली प्रकार प्राप्त होवो।

न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा॥ २॥

भा० - (अश्विना) नाना उत्तम पदार्थों के भोक्ता जनो! इन्द्रियों के स्वामियो! रथि सारिथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषो! आप दोनों (संस्कृतं) उत्तम रीति से किये कार्य को (नः प्र-मिमीतः) नहीं विनाश करते। वा, आप दोनों उत्तम संस्कार युक्त पुत्रादि को (न प्रमिमीतः) क्यों नहीं उत्पन्न करते? (नूनम्) निश्चय से आप लोग (इह) इस लोक में (अन्ति) एक दूसरे के अति समीप (गमिष्ठा) प्राप्त होकर (उपस्तुता) प्रशंसित होते हो। (दिवा) दिन के समय (अभि-पित्वे) प्राप्त होने पर (अवसा) उत्तम रक्षा, ज्ञान और प्रीति के साथ (आ-गमिष्ठा) एक दूसरे के पास जाने वाले होवो और (दाशुषे) दानशील विद्वान् के उपकार के लिये (अवर्तिं प्रति) अन्न आजीविका और मार्गादि से रहित बेचारे पुरुष के प्रति (शम्भविष्ठा) कल्याण करने में समर्थ होवो।

उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान॥ ३॥

भा०—(उत) और हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, रथी सारथिवत्

गृहस्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (संगवे) गौवों के दोहन काल में एकत्र आजाने वा किरणों के प्राप्त होने के सायं समय में और (अह्नः प्रातः) दिन के प्रातः समय में वा (मध्यन्दिने) दिन के मध्य काल, दोपहर में वा (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के ऊपर आजाने पर अर्थात् (दिवा-नक्तम्) दिन और रात्रि सब समय (शं-तमेन) अत्यन्त शान्तिदायक (अवसा) ज्ञान, प्रेम और रक्षासाधन सहित (आ यातम्) आया जाया करो । (इदानीम्) अभी भी (पीतिः) पान, अन्नादि का उपभोग वा रक्षासाधन (न ततान) नहीं हुआ है । अर्थात् सदा ही उत्तम रक्षा साधन से युक्त रहो, कभी भी रक्षा का भरोसा करके बेपरवाह मत होवो ।

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्व रथादि के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों (हि) निश्चय से (प्र-दिवि) उत्तम ज्ञान और प्रकाश में (स्थानम्) स्थित होवो । (प्रदिवि स्थानम्) उत्तम भूमि में रहने का स्थान और उसमें ही (ओकः) तुम्हारा रहना हो, (इमे गृहाः) ये गृहस्थाश्रम को धारण करने वाले पुरुष स्त्रियें भी उत्तम ज्ञान, प्रकाश वाले भूभाग में रहें । (इदं दुरोणम्) और यह गृह (प्रदिवि) उत्तम, ऊंची भूमि और उत्तम प्रकाश में ही दुर्गवत् हो । आप दोनों (बृहतः दिवः) बड़े भारी आकाश से (इषम्) वृष्टि को और (बृहतः दिवः इषम्) बड़े तेजस्वी सूर्य से प्रेरक बल, जीवन का और (बृहतः पर्वतात्) बड़े भारी मेघ से (इषम्) वृष्टि को और (अद्भ्यः इषम् ऊर्जं) अन्तरिक्ष और जलों से अन्न और बल पुष्टि को (वहन्त) प्राप्त करते और कराते हुए (नः आयातम्) हमें प्राप्त होवो ।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥१७॥

भा०—हम लोग (अश्विनोः) विद्याओं को जानने वाले, जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के (नूतनेन) सदा नवीन, रमणीय (मयोभुवा) सुखप्रद (अवसा) ज्ञान और रक्षा से वा प्रेम से और (सु-प्र-णीती) उत्तम, प्रेम व्यवहार और उत्कृष्ट नीति से (सं गमेम) संगति लाभ करें । वे दोनों (नः) हमें (रयिम्) ऐश्वर्य (आ वहतम्) प्राप्त करावें, (उत वीरान्-आ वहतम्) और वीर पुत्रों को प्राप्त करें, और (विश्वानि) सब प्रकार के (अमृता) उत्तम जलों, अन्नों और अविनाशी दीर्घायु जीवनों और न नष्ट होने वाले (सौभगानि) उत्तम ऐश्वर्यों को (आ वहतम्) प्राप्त करें, करावें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

(७७)

अत्रिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! विद्वान् पुरुषो ! जो सभा-सेना के अध्यक्ष जन (अररुषः) अदानशील वा अति क्रोधी और (गृध्रात्) लोभी पुरुष से राष्ट्र की (पिबातः) रक्षा करते हैं वे उन (प्रातर्यावाणा) प्रातः काल, कार्य के प्रारम्भ में ही उपस्थित होने वाले (प्रथमा) सर्व प्रथम प्रधान पुरुषों को (यजध्वम्) आदर भाव से प्राप्त होवो । (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी वा जितेन्द्रिय दोनों (प्रातः यज्ञं दधाते) प्रातः काल में नित्यकर्म रूप यज्ञ के समान ही (प्रातः यज्ञं) सब से पूर्व प्रजा-पालन वा सुप्रबन्ध रूप यज्ञ के (हि) ही (दधाते) धारण करते और पालते हैं। यज्ञशील स्त्री पुरुषों के तुल्य ही उन दोनों की भी (पूर्वभाजः) पूर्व पुरुषाओं से उपार्जित ज्ञान को प्राप्त करने वाले (कवयः) विद्वान् पुरुष (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं और उनको उत्तम २ उपदेश करते

हैं। उसी प्रकार जो स्त्री पुरुष (अरुरुषः गृध्रात्) अति क्रोधी और लोभी पुरुष से पृथक् रहकर (पुरा) जीवन के पूर्व काल में (पिबातः) ज्ञान का पान और व्रत का पालन करते हैं उन (प्रातर्यावाणः) जीवन की प्रभात वेला में गुरु के समीप जाने वाले स्त्री पुरुषों का सत्संग और आदर करो। वे दोनों प्रातः यज्ञ करते हैं पूर्व ज्ञान वेद के विद्वान् उनकी प्रशंसा करते हैं।

प्रातर्यजध्वम॒श्विना॑ हिनोत॒ न सा॒यम॑स्ति देव॒या अजु॑ष्टम्।
उ॒तान्यो अ॒स्मद्य॑जते॒ वि चाव॒ः पूर्व॑ः पूर्वो॒ यज॑मानो॒ वनी॑यान् ॥२॥

भा०—हे प्रजा जनो! (अश्विना) अश्वादि के नायकों और उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषों का (प्रातः) दिन के पूर्व काल में (सायम्) और सायं समय में भी (यजध्वम्) सत्संग किया करो। और उनको (हिनोतं) प्रसन्न, तृप्त करो, बढ़ाया करो (देवयाः) विद्वान् पुरुषों के आदर करने योग्य पदार्थ (अजुष्टम् न अस्ति) प्रीति से सेवन करने के अयोग्य (न) नहीं होता प्रत्युत देव जन आदर से दिये को सदा ही प्रेम से स्वीकार करते हैं। (उत) और जो (अस्मत्) हम से (अन्यः) दूसरा कोई भी (यजते) उत्तन ज्ञान दान करता है और (वि अवः च) विशेष रूप से हमें प्रेम पूर्वक अन्नादि देता या तृप्त करता है वह भी (पूर्वः पूर्वः) हम से पूर्व पूर्व अर्थात् वयस् और विद्या में वृद्ध पुरुष भी (यजमानः) दान सत्संग यज्ञादि करने वाला (वनीयान्) अति उत्तम रीति से सेवा करने योग्य होता है, वह भी आदर करने योग्य है।

हिर॑ण्यत्व॒ङ् मधु॑वर्णो घृ॒तस्नु॒ः पृक्षो॒ वह॒न्ना रथो॑ वर्तते वाम्।
मनो॑जवा अश्विना॒ वात॑रंहा॒ येना॑ति॒याथो॒ दु॑रि॒तानि॒ विश्वा॑ ॥३॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो! (हिरण्य-त्वङ्) सुवर्ण या लोह के आवरण से युक्त, दृढ़ (मधुवर्णः) मधु के समान चिकने, सुन्दर रंग वाले (घृतस्नुः) तेल आदि स्निग्ध पदार्थ से शुद्ध, नित्य

स्वच्छ, (पृक्षः बृहत्) अन्न आदि पदार्थों को लेजाने वाला, बड़ा (रथः) रथ (वाम् वर्त्तते) आप दोनों के प्रयोग में आवे। उसमें (मनोजवाः) मन के संकल्पमात्र से वेग से जाने वाले, स्वल्प प्रयास से ही अति शीघ्र चलने वाले (वातरंहाः) वायु के वेग से युक्त अश्व, यन्त्रादि हों। (येन) जिस रथ से आप दोनों (विश्वा) समस्त (दुरितानि) दुर्गम स्थानों और कष्टों को (अति याथः) पार करने में समर्थ होवो।

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष, (नासत्याभ्याम्) कभी असत्य व्यवहार न रखने वाले स्त्री पुरुषों के लिये (भूयिष्ठं) बहुत अधिक और (चनिष्ठं) उत्तमोत्तम अन्न (विवेष) प्रदान करता है और (वि-भागे) विविध प्रकार से विभक्त करने के निमित्त (पित्वः) अन्न का (ररते) दान करता है (सः) वह (शमीभिः) अपने शान्तिजनक कर्मों से (अस्य) इस राष्ट्र के (तोकम्) पुत्र के समान प्रजाजन को ही (पीपरत्) पालन करता है, और (अनूर्ध्व-भासः) ऊपर को उठने वाली दीप्तियों से रहित, अग्नि आदि से रहित, अथवा अतेजस्वी, अल्पदीप्ति अग्निवत् स्वल्प शक्ति वाले दीन जन वा राष्ट्र के (सदम्) प्राप्त दुःख वा नाशकारी कष्ट को (इत्) ही (तुतुर्यात्) नाश किया करे।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥१८॥

भा०—व्याख्या देखो इसी मण्डल के सूक्त ७६ का ५ वां मन्त्र।

इत्यष्टादशो वर्गः ॥

(७८)

सप्तवध्रिरात्रेय ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते। ७, ९ गर्भस्राविणी उपनिषत् ॥ छन्दः—१, २, ३ उष्णिक्। ४ निचृत्-त्रिष्टुप्। ५, ६ अनुष्टुप्। ७, ८, ९ निचृद्-नुष्टुप् ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इह) इस गृहस्थाश्रम में रथीवत् होकर (आगच्छतम्) आया करो । हे (नासत्या) कभी असत्याचरण और अधर्म युक्त कार्य न करते हुए, सदा सत्यपूर्वक परस्पर के व्यवहारों को करते हुए (मा वि वेनतम्) एक दूसरे के विपरीत कभी इच्छा मत किया करो । प्रत्युत (सुतान् उप) अपने उत्पन्न पुत्रों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के लिये (हंसौ इव) हंस हंसिनी युगल के समान (आ पततम्) आया करो ।

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथि वा दो अश्वारोहियों के समान एक साथ मार्ग चलने वाले वर वधू, स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार (यवसम्) घास, यव आदि धान्य को लक्ष्य करके (हरिणौ इव गौरौ इव) दो हरिण और दो गौर मृग जाते हैं और जिस प्रकार जलों की ओर (हंसौ इव) दो हंस जाते हैं उसी प्रकार (सुतान् उप आ पततम्) पुत्रों, ऐश्वर्यों एवं ओषधिरसों को लक्ष्य कर आप दोनों भी जाया आया करो ।

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे (वाजिनीवसू) ज्ञान-ऐश्वर्य बल आदि से युक्त कर्म करने में निष्ठ आप दोनों (इष्टये) देवपूजन, दान, सत्संग मैत्रीभाव की वृद्धि के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, परस्पर सौहार्द, सत्संग आदि का (जुषेथाम्) सेवन प्रेमपूर्वक किया करो । (सुतान् उप हंसौ इव आ पततम्) पुत्रों और

उत्पन्न आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के किये दो हंसों के समान सहयोगी होकर (हंसौ) एक साथ मार्ग पर गमन करते हुए जाया करो।

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥१९॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो (अत्रिः) तीनों प्रकार के दुःखों वा दोषों से रहित, वा (अत्रिः) इसी राष्ट्र या आश्रम का वासी जन वा शिष्य (नाधमाना इव योषा) याचना, आशा वा कामना करती हुई, स्त्री के समान अति विनीत, और तन्मय होकर (ऋबीसम् अवरोहन्) तेजो रहित, सरल रूप से झुककर विनम्र होकर(वाम् अजोहवीत्) आप दोनों को बुलावे। तब आप दोनों (श्येनस्य चित्) वाज के से (जवसा) वेग से (नूतनेन) नूतन (शं-तमेन) अति शान्तिदायक रूप से (आ गच्छतम्) प्राप्त होइये। (ऋबीसम्) अपगतभासम् अपहृतमासम्, अन्तर्हितभासं, गतभासं वा ॥ निरु० ६ । ६ । ७ ॥ स्त्री पुरुषों के पक्ष में—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों में से जो (अत्रिः) भोक्ता पुरुष है वह (ऋबीसं) दीपक से प्रकाशित गृह को प्राप्त हो और (योषा) स्त्री भी (नाधमाना इव) ऐश्वर्य या पुत्रादि की कामना करती हुई (अजोहवीत्) पति को स्वीकार करे। वे दोनों (श्येनस्य चित् जवसा) शान्तियुक्त नये प्रेम से गृह में आकर मिलें। एकोनविंशो वर्गः ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन करने योग्य जलों, शिष्यों के स्वामी, मेघ वा सूर्यवत् ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे महावृक्षवत् आश्रित याचक, सेवक जनको पालन करने वाले ! (सूष्यन्त्याः इव) प्रसव करने वाली स्त्री का (योनिः) योनि जिस प्रकार प्रसव-काल में विवृत होकर सुरूप बालक को जन्म देता है हे आचार्य ! आप भी इसी प्रकार (वि जिहीष्व) विवृत होवो।

और शिष्य रूप पुत्र को आप विद्या-गर्भ में रखकर गुरुगृह से जन्म देते हो। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् आचार्य उपदेशक जनो! (मे) मुझे (हवं) उत्तम देने योग्य ज्ञानोपदेश (श्रुतं) श्रवण कराओ और (सप्त-वध्रिम्) सातों ज्ञान मार्गों में बंधे हुए अर्थात् आंख, नाक, मुख, कान, इन सातों द्वारों को वश करनेवाले मुझको (वि मुञ्चतम्) बन्धन से मुक्त करो। वा उपनयन द्वारा स्वीकार करें। जो विद्यार्थी उक्त सातों इन्द्रियों पर वश करे, अथवा वह आंख, नाक, कान, त्वचा वाणी और मन इन सातों इन्द्रियों पर वश करके उनको 'वध्रि' अर्थात् उद्वेगरहित करके विद्याभ्यास करे, वह 'सप्त-वध्रि' कहाता है। जिस प्रकार वधिया बैल निर्मद शान्त, सरल होकर विनय से रहता है उसी प्रकार शिष्य भी इन सातों इन्द्रियों को दमन करके विनीत, शान्त सरल होकर रहे। गर्भ में आने वाले जीव के सातों प्राण निर्बल, प्रसुप्त रूप से होते हैं ऐसे बीज रूप जीव को स्त्री-पुरुष धारण करें।

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः॥ ६॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या में व्याप्त चित्त वालो! अथवा विद्या में व्याप्त होने वाले शिष्य जनों के स्वामी पालक, अध्यापक, आचार्य जनो! (भीताय) संसार के संकटों से भयभीत हुए, (नाधमानाय) शरण की याचना करते हुए, (सप्त-वध्रये) सातों उच्छृंखल इन्द्रियों को बधिया बैल के समान शान्त, सरल, विनीत रखने वाले, (ऋषये) ज्ञानको जानने के लिये उत्सुक विद्यार्थी के उपकार के लिये (युवं) आप दोनों (मायाभिः) बुद्धियों तथा उपदेशमय, शब्दमय वाणियों से (वृक्षम्) उच्छेद करने योग्य अज्ञान को (सम् च) अच्छी प्रकार से और (वि च) विविध प्रकार से (अचथः) दूर करो। अथवा (वृक्षं) वृक्षवत् स्थिर भूमि पर बैठे हुए मुझको (सम् अचथः) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और (वि अचथः) विशेष रूप से

ग्रहण करो। (२) जन्मान्तराकांक्षी जीव को उत्पन्न करने के लिये स्त्री पुरुष दोनों नाना स्नेहयुक्त क्रियाओं से गृहस्थ आश्रम को प्रेमपूर्वक लता जैसे वृक्ष को प्राप्त हो वैसे परस्पर मिलें। इस सूक्त के १, २, ३ मन्त्रों में पुत्रों को लक्ष्य कर वर वधू दोनों को मिल कर ज्ञान का उपदेश है आचार्य के प्रसवकारिणी माता के समान बालक शिष्य को उत्पन्न करने का वर्णन पूर्व मन्त्र में कहा है अब बालक की उत्पत्ति को शिष्य की उत्पत्ति से दर्शाते हैं।

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः॥ ७॥

भा०—७-९ गर्भस्राविणी उपनिषत्। (यथा) जिस प्रकार से (वातः) वायु (सर्वतः) सब ओर से (पुष्करिणीं) पोखरिणी वा कमलिनी को (समिङ्गयति) अच्छी प्रकार कंपाता है उसी प्रकार शरीर का अपान वायु गर्भस्थ बालक को (पुष्करिणीं) पुष्ट करने वाली जल भरी थैली को कम्पित करता है। (एव) इसी प्रकार से (गर्भः) गर्भगत बालक (एजतु) कांपे, शनैः २ स्पन्दन करे। और इसी प्रकार (दशमास्यः) वह दश मास में पूर्ण होकर (निः एतु) बाहर निकल आवे। आचार्य 'वात' है, पोषक वाणी पुष्करिणी माता है, गृहीत शिष्य गर्भ है। दश मास तक पुष्ट बालकवत् दशों प्राणों में पूर्ण, सर्वाङ्ग बालक 'दशमास्य' है।

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा॥ ८॥

भा०—(यथा वातः) जिस प्रकार वायु (एजति) वेग से चलता है, (यथा वनं) और जैसे 'वन' स्वयं वायु के झोकों से कांपता है वा जिस प्रकार (समुद्रः एजति) समुद्र कांपता है। (एव) उसी प्रकार हे (दशमास्य) दश मास में परिपक्व होने वाले गर्भ! तू (जरायुणा सह)

जेर के साथ (अव इहि) नीचे आजा। गर्भ में अपान का बल, जल तथा बालक होते हैं उनके तीन उपमान हैं समुद्र, वन और वात।

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥ २० ॥

भा०—(कुमारः) बालक (मातरि अधि) माता के भीतर अधिकार पूर्वक अर्थात् माता के शरीर पर अपना विशेष प्रभाव रखता हुआ (दश-मासान् शशयानः) दस मास तक सुखपूर्वक प्रसुप्त रूप से रहता हुआ (जीवः) जीवित रूप में (अक्षतः) किसी प्रकार की चोट, आघात, अंग-भंग को प्राप्त न होकर (जीवः) जीव (जीवन्त्याः अधि) जीती हुई माता से (निर आ एतु) बाहर आ जावे। इति विंशो वर्गः ॥

[७९]

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ स्वराड्ब्राह्मी गायत्री। २, ३, ७ भुरिग्बृहती। १० स्वराड् बृहती। ४, ५, ८ पंक्तिः। ६, ९ निचृत्-पंक्तिः ॥

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती, पति और पुत्रों की प्रेम से कामना करने हारी! विदुषी स्त्री! (अद्य) आज, सदा तू (दिवित्मती) दीप्तियुक्त, ज्ञान, उत्तम व्यवहार और कान्ति, उत्तम पदार्थों की कामना से युक्त होकर (नः) हमें (महे राये) बड़े भारी ऐश्वर्य और प्राप्त करने योग्य उद्देश्य के लिये (बोधयः) जगाया कर। हे (अश्व-सूनृते) भोक्ता पति वा हृदय में व्यापक पुरुष के प्रति उत्तम वाणी

बोलने हारी, वा 'अश्व' अर्थात् भोजन करने वालों को 'सूनृत' अर्थात् अन्न देने वाली ! वा 'अश्व' व्याप्त, हृदयंगम, महत्वयुक्त वाणी, अन्न आदि की स्वामिनि ! हे (सुजाते) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध ! माता पिता के उत्तम गुणों से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु सन्तान रूप से उत्तम सन्ततियों को उत्पन्न करने हारी ! तू (सत्य-श्रवसि) सत्य अर्थात् सात्विक अन्न, सत्यश्रवण योग्य ज्ञान और सत्य कीर्त्ति के निमित्त (यथाचित्) जैसे भी हो उस रीति से (नः अबोधयः) हमें सचेत किया कर। यह कान्त संमित उपदेश करने का वर्णन है। वाणी पक्ष में—(अश्वसूनृते) विद्या के मार्ग में वेग से जाने वाले विद्वान् की वाणी ! तू (नः) हमारे (सुजाते) उत्तम रीति से ब्राह्म आदि संस्कार में उत्पन्न पुत्र रूप (वाय्ये) शिष्य रूप से सन्ततिवत् उत्पन्न सत्य प्रतिज्ञ बालक में जैसे हो तू मातृवत् ज्ञान प्रदान कर।

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न, उसकी पुत्रीवत् उषा के तुल्य एवं (दिवः दुहितः) कामनावान् पति की कामनाओं को पूर्ण करने वाली वा दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! वा दूर देशों में सेवादि द्वारा पति का हित करने हारी ! (या) जो तू (शौचद्रथे) कान्ति युक्त रथ वाले सूर्य व तेजस्वी एवं शुद्ध आत्मा वाले, शुद्ध कान्तियुक्त, रमणीय, (सुनीथे) उत्तम वाणी युक्त, और उत्तम न्यायाचरण करने वाले पुरुष के अधीन (वि औच्छः) अपने गुणों को विविध प्रकार से प्रकट कर। हे (सहीयसि) अति सहनशीले ! हे (सत्यश्रवसि) सात्विक अन्न और सात्विक सत्य ज्ञान और यश से युक्त ! हे (वाय्ये) तन्तु रूप से सन्तान उत्पन्न करने हारी ! हे (सु-जाते) उत्तम गुणों सहित उत्पन्न ! हे (अश्व-सूनृते) अश्ववत् बलवान् गृहस्थ रथ के सञ्चालक पति

के प्रति उत्तम वाणी और अन्न प्रस्तुत करने वाली ! हे (सुनीथे) उत्तम वाणी और नीति व्यवहार तथा उत्तम मार्ग पर चलने हारी ! हे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त रमणीय सुन्दर रूप से युक्त, उत्तम रथ पर चढ़ने हारी वधू ! तू अपने अनुकूल (सुनीथे) उत्तम वाणी, व्यवहार और मार्ग पर चलने हारे (शौचद्रथे) कान्तियुक्त देह वाले, तेजस्वी, उत्तम रथ पर स्थित, उत्तम रमणीय भव्य व्यवहारवान् (सहीयसि) अति सहनशील बलवान् दृढ़, (सत्य-श्रवसि) सत्यप्रतिज्ञ, सत्य ज्ञानवान् , कीर्तिमान् (वाय्ये) सन्तान के उत्पादन करने में समर्थ (सुजाते) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध, अपने माता पिता के उत्तम पुत्र, (अश्वसूनृते) विद्याओं में पारंगत, विद्वानों तथा अश्ववत् भोक्ता राजा, के समान उत्तम वाणी बोलने हारे पुरुष के अधीन रहकर और उसी के निमित्त (वि उच्छ) विविध प्रकार से अपने गुणों और कामनाओं को प्रकट कर ।

इस मन्त्र में 'सुनीथे शौचद्रथे, सहीयसि, सत्यश्रवसि, वाय्ये, अश्वसूनृते' ये सब विशेषण पद विभक्ति श्लेष द्वारा दीपकालंकार से सम्बोधन रूप से स्त्री के प्रति तथा और आश्रय निमित्त रूप से पति के प्रति लगते हैं। इस प्रकार योग्य स्त्री को तदनुरूप पति प्राप्त करने का उपदेश करते हैं। यही रीति समस्त सूक्त में समझनी चाहिये ।

सा नो अ॒द्याभ॒रद्व॑सु॒र्व्यु॑च्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सही॑यसि स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सु॒जा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥३॥

भा०—हे (दुहितः) कन्ये ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् तेजस्वी पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा सूर्यवत् उत्तम विद्वान् की कन्ये ! तू (भरद्-वसुः) धन सम्पदा को अपने गृह में लाने हारी वा पितृगृह से लेजाने हारी और (भरद्-वसुः) बसाने वाले पति आदि का मातृवत् भरण पोषण करने हारी होकर (नः) हमारे आगे (सा) वह तू (वि उच्छ) उषावत् अपने गुणों का प्रकाश कर (यः) जो (सहीयसि)

सत्यश्रवसि, वाय्ये, सुजाते, अश्वसूनृते वि औच्छः) हे सहनशील, हे सत्यप्रतिज्ञे, हे उत्तम सन्तानोत्पादक ! हे सुपुत्रि ! हे शुभवाणि ! तू बलवान् सत्य प्रतिज्ञ, उत्तम सन्ततिजनक, शुभगुणवान् और विद्वान् पुरुष के अधीन रहकर (वि औच्छः) विशेष रूप से गुणों को प्रकट कर। अर्थात् उत्तम कन्या को अपने गुणों की परीक्षा देना आवश्यक है।

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ४

भा०—हे (विभावरि) विशेष कान्ति से युक्त ! उषावत् सुन्दरि ! हे (सुजाते) उत्तम कन्ये ! हे (अश्वसूनृते) उत्तम महत्वयुक्त वाणी बोलने हारी ! अन्नवत दृढ़ बलवान् पुरुष के प्रति सुख से गमन करने हारी (ये) जो (वह्नयः) अग्निवत् तेजस्वी, गृहस्थ-भार को वहन करने में समर्थ विवाहेच्छुक पुरुष (स्तोमैः) उत्तम प्रशंसनीय वचनों से (त्वा-अभि) तुझे लक्ष्य करके (गृणन्ति) बात करते हैं हे (मघोनि) उत्तम धनों की स्वामिनि ! वे भी तुझे प्राप्त कर (मघैः) ऐश्वर्यों से (सु-श्रियः) उत्तम शोभा और लक्ष्मीयुक्त और (दामन्वन्तः) दानशील तथा (सुरातयः) उत्तम मित्र, पुत्र और अभिलषित पदार्थ द्रव्य आदि शुभ दान की इच्छा से युक्त हों। 'रातिः' मित्रमिति कपर्दी। पुत्र इत्येके अभिलषितार्थं इति सायणः।

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ।५।२१।

भा०—हे (सुजाते) सुपुत्रि ! हे (अश्व-सूनृते) विद्वान् के तुल्य उत्तम वाणी बोलने हारी विदुषी ! (यत् चित् हि) जो भी (ते गणाः) तेरे सेवक जन (वष्टयः) नाना धनों की अभिलाषा करने वाले हैं (इमे) वे भी (अह्रयं राधः) लज्जा वा संकोच से रहित होकर प्राप्त करने योग्य उत्तम धन (ददतः) देने वाले पुरुषों को (मघत्तये) उत्तम धन देने के

लिये ही (परि च्छदयन्ति चित्) उनको आच्छादित करें, उनकी सेवा करें उनकी राह में खड़े रहें। और उनकी (परि दधुः) सब प्रकार से सेवा करें, और रक्षा वा पोषण करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से युक्त उत्तम पुत्रि ! हे (अश्वसूनृते) बलवान् वा विद्वान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी बोलने हारी ! हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! कमनीये ! हे (मघोनि) उत्तम ऐश्वर्य, सौम्य से युक्त सौभाग्यवति ! (ये) जो (मघवानः) स्वयं धनसम्पन्न होकर (नः) हमें (अह्रया) बिना लज्जा वा संकोच के प्राप्त करने योग्य (राधांसि) ज्ञान आदि धनों को (अरासत) दान करते हैं (एषु) उन (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में रहकर तू (वीरवत्) उत्तम पुत्रादि से युक्त (यशः) कीर्त्ति, अन्न, धन आदि को (आधाः) सब प्रकार से धारण कर और उनमें (यशः) श्रद्धा से अन्न आदि प्रदान कर ।

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते॥७॥

भा०—हे (सुजाते) शुभ गुणों से प्रसिद्ध ! हे (अश्वसूनृते) विद्वानों के प्रति शुभ ज्ञानयुक्त वाणी बोलने और उनसे ग्रहण करने तथा उनको उत्तम अन्न देने हारी उत्तम विदुषि ! (ये सूरयः) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (अश्व्या) अश्वों से युक्त और (गव्याः) गौओं से युक्त या अश्वों गौओं के हितकारी (राधांसि) धनों को (भजन्त) सेवन करते उनको अपने व्यवहार में लाते हैं हे (मघोनि) सौभाग्य लक्ष्मीवाली ! (उषः) हे कान्तियुक्त ! तू (तेभ्यः) उनको (बृहत्) बड़ा (द्युम्नं) धन और (यशः आ वह) यश प्राप्त करा ॥

उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ८

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणों से युक्त उत्तम पुत्रों की माता ! हे (अश्व-सूनृते) उत्तम पुरुषों के प्रति उनके तुल्य उत्तम वचन बोलने हारी ! हे (दिवः दुहितः) कामनावान् प्रिय पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी वा (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी ज्ञानी पिता वा आचार्य की पुत्रि ! तू (सूर्यस्य) सूर्य की (शुक्रैः) शुद्ध (शोचद्भिः) कान्ति-वाली, प्रकाशयुक्त (अर्चिभिः) कान्तियों और (रश्मिभिः) किरणों के साथ २ (शुक्रैः शोचद्भिः अर्चिभिः) शुद्ध कान्ति युक्त अग्नि ज्वालाओं से और पवित्र करने वाले सत्कारोचित जलों से (नः) हमारी (गोमतीः इषः) उत्तम दुग्ध आदि से युक्त अन्न और शुभ वाणी से युक्त उत्तम कामनाओं, सत् अभिलाषाओं को (आ वह) प्राप्त कर और करा ।

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ९

भा०—हे (सुजाते) उत्तम गुणवती पुत्रि ! हे (अश्व-सूनृते) उत्तम विद्वानों को उत्तम वाणी से सत्कार करने हारी ! हे (दिवः दुहितः) अन्नादि की कामना वाले याचकादि के मनोरथों को पूर्ण करने वाली ! वा गृहस्थ व्यवहार के लिये दूर देश में विवाहित होकर हितकारिणी ! तू (वि उच्छ) अपने विविध गुणों को प्रकट कर और (अपः) गृह के आवश्यक कार्यों को (चिरं मा तनुथाः) देर लगाकर मत किया कर । (स्तेनं रिपुं) चौर शत्रु को (यथा) जिस प्रकार (सूरः तपाति) सूर्य-वत् तेजस्वी पुरुष सन्ताप, पीड़ा देता है उसी प्रकार (त्वा इत्) तुझे भी (सूरः) तेजस्वी पुरुष (अर्चिषा) क्रोध आदि से (न तपाति) न पीड़ित करे ।

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि । या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (वि-भावरि) विशेष कान्ति से प्रकाशित होने वाली ! हे (सु-जाते) शुभ गुणों से युक्त हे शुभ सन्तान वाली ! हे (अश्व-सूनृते) विद्वान् बलवान् पुरुषों के प्रति उत्तम वाणी और अन्न देनेहारी ! हे (उषः) प्रभात वेला के समान कान्तिमति ! हे कमनीये ! पापों को दग्ध कर देने हारी ! तू क्या (एतावद् वा इत् दातुम् अर्हसि) इतना ही केवल देने योग्य है । (वा) अथवा (भूयः दातुम् अर्हसि) तू अधिक भी देने में समर्थ है । इस बात का सदा विचार रख । (या) जो तू (उच्छन्ती) अपने दानशीलता आदि सद्गुणों का प्रकाश करती हुई (स्तोतृभ्यः) विद्वान् उपदेष्टाओं के लिये (न प्र-मीयसे) कभी मृत्यु, वा विषाद को प्राप्त न हो । अर्थात् शक्ति से अधिक दे देने पर स्वयं पीड़ित न हुआ करे, प्रत्युत अपनी शक्ति को देखकर ही विद्वानों को दान आदि दिया करे जिससे वह आगे भी यथाशक्ति देती रह सके । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

(८०)

सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् ॥ २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (विप्रासः द्युत-द्यामानं अरुणप्सुं स्वः आवहन्तीं देवीम् उषसं मतिभिः जरन्ते) विद्वान् पुरुष आकाश को चमकाने वाली, रंग लिये, प्रकाश को लाने वाली, तेजो युक्त उषा, प्रभात वेला को प्राप्त कर (प्रति) प्रतिदिन स्तुतियों से भगवान् की स्तुति करते हैं उसी

प्रकार (द्युत-द्यामानम्) कामनावान्, व्यवहारवित् तेजस्वी पति को अथवा इस पृथिवी को अपने गुणों से चमका देने वाली, (ऋतेन) सत्य ज्ञान, तेज और धनैश्वर्य से (बृहतीम्) बड़ी, सबको बढ़ाने वाली, (ऋताव-रीम्) अन्न धनादि से सम्पन्न, (अरुणप्सुम्) लाल, तेजोयुक्त रूपवती (वि-भातीम्) विशेष गुणों से सबके मन को अच्छी लगने हारी, (देवीम्) विदुषी, दानशील, (स्वः आहवन्तीम्) ग्राह्य सुखों को प्राप्त कराने वाली, (उषसं) कान्तियुक्त, कमनीय, एवं पति आदि सम्बन्धियों को हृदय से चाहने वाली, स्त्री के प्रति (विप्रासः) विद्वान् लोग सदा ही (मतिभिः) स्तुतियों से (जरन्ते) प्रत्येक बात में उसकी प्रशंसा करते हैं।

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥

भा०—(एषा उषा) यह प्रभात वेला जिस प्रकार (दर्शता) देखने योग्य होकर (जनं बोधयन्ती) जन्तु मात्र को जगाती हुई (पथः सुगान् कृण्वती) मार्गों को सुगम, सुखदायक करती हुई (अग्रे) आगे २ बढ़ती चली जाती है। उसी प्रकार (एषा) यह (उषा) कान्तिमती, कमनीय गुणों वाली, पति की कामना करने वाली उत्तम स्त्री भी (दर्शता) दर्श-नीय रूप, गुणों से युक्त होकर (जनं बोधयन्ती) समस्त मनुष्यों को सन्मार्ग और धर्म कर्मों का बोध कराती हुई मनुष्य या वृत पति के (पथः) जीवन के भावी मार्गों को (सुगान्) सुख पूर्वक गमन करने योग्य (कृण्वती) बनाती हुई (अग्रे याति) आगे आगे चलती है। विवाह के अवसर पर स्त्री परिक्रमा में जो आगे २ जाती है वह भी पति के संकट मार्गों को मानो सुगम कर देने के लिये स्वयं उन पर प्रथम चलने का अभिनय करती है। और जिस प्रकार उषा (बृहद्रथा) बड़े भारी रम-णीय प्रकाश से युक्त, (बृहती) स्वयं बड़ी विस्तृत, (विश्व-मिन्वा) विश्व भर में व्याप्त होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (ज्योतिर्-

च्छति) सबको प्रकाश देती है उसी प्रकार वह स्त्री भी (बृहद्-रथा) बड़े रथ पर चढ़कर पतिलोक को जाने वाली, वा (बृहद्-रथा) बड़े रमणीय, सुन्दर रूप और कर्म करने वाली, (बृहती) कुल को बढ़ाने वाली, होकर (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में, मध्याह्न के पूर्व ही (ज्योतिः यच्छति) उत्तम अन्न प्रदान करे ।

एषा गोभिरुरुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुवितायं देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥

भा०—जिस प्रकार उषा (अरुणेभिः गोभिः) लाल किरणों से (युजाना) संयोग करती हुई (रयिम् अप्रायु चक्रे) प्रकाश को स्थायी कर देती है और (सुविताय) सुख से जाने के लिये (पथः रदन्ती) मार्गों को चमकाती हुई (विश्ववारा विभाति) सबसे वरण योग्य होकर चमकती है उसी प्रकार (एषा देवी) यह विदुषी स्त्री भी (अरुणेभिः गोभिः) अपनी अनुराग युक्त वाणियों से (युजाना) सब बातों का समाधान करती हुई, (रयिम्) गृह के ऐश्वर्य को (अप्रायु) कभी नष्ट न होने देने वाला (चक्रे) बनावे । वह (सुविताय) सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये (पथः) स्वयं उत्तम २ मार्गों को (रदन्ती) बनाती हुई (पुरु-स्तुता) बहुतों से प्रशंसित होकर (विश्व-वारा) सबसे वरण करने योग्य, सर्वप्रिय, सब संकटों का वारण करने और सबको अन्नादि विभाग करने वाली होकर (वि भाति) विविध प्रकार से सबको अच्छी लगे ।

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार (वि एनी भवति) विशेष रूप से श्वेत प्रकाश वाली, होती है, और वह (द्वि-बर्हा) रात्रि दिन दोनों से बढ़ने वाली, (पुरस्तात् तन्वं आविः कृण्वानः) आगे अपने विस्तृत प्रकाश को

प्रकट करती हुई (ऋतस्य पन्थाम् अनु एति) तेज या सूर्य के मार्ग का प्रति दिन अनुगमन करती है और (न दिशः मिनाति) मानो दिशाओं को मापती सी है अथवा दिशाओं का भी नाश नहीं करती। उसी प्रकार (एषा) यह विदुषी स्त्री, भी (वि-एनी) विशेष रूप से हरिणी के समान उत्तम चक्षु वाली, अति वेगवती एवं गुणों में शुभ्र, (भवति) हो। वह (द्वि-बर्हाः) दोनों कुलों को बढ़ाने वाली हो। वह (पुरस्तात्) पति के आगे (तन्वम्) अपने देह को (आविः-कृण्वाना) प्रकट करती हुई, पति के आगे २ चलती हुई, (ऋतस्य) सत्याचरण एवं वेद के उपदिष्ट सत्य के (पन्थाम्) मार्ग का (अनु एति) अनुगमन करे। वह (साधु) भली प्रकार (दिशः प्र जानती इव) दिशाओं, कर्त्तव्यों को भली प्रकार जानती हुई (ऋतस्य पन्थाम् न मिनाति) कर्म के मार्ग का नाश नहीं करे।

एषा शुभ्रा न तन्वो॑ विदानोर्ध्वेव॑ स्नाती दृशये॑ नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाध॑माना तमां॑स्युषा दिवो दु॑हिता ज्योतिषागा॑त् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार प्रभात वेला (शुभ्रा) कान्ति में शुभ्र वर्ण की (नः दृशये ऊर्ध्वा अस्थात्) हमें दिखाने के लिये ऊंचे विराजती है, और (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् तेज को दोहने और दूर तक फैलाने वाली (तमांसि अप बाधमाना) अन्धकारों को दूर करती हुई (ज्योतिषा आगात्) ज्योतिर्मय सूर्य के साथ आती है उसी प्रकार (एषा) यह (दिवः दुहिता) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ पिता की पुत्री एवं पति, भाई, पिता आदि की उत्तम कामनाओं और अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली, (दुहिता) दूर देश में विवाहने योग्य, (उषा) कान्तिमती, कमनीय कन्या, (शुभ्रा) सुशोभित रूपवाली होकर (तन्वः विदाना) अपने अंगों को भली प्रकार साधती हुई (स्नाती) विशेष संस्कारार्थ स्नान कर शुद्ध होती हुई (नः दृशये) हमारी दृष्टि को प्रसन्न करने के

लिये (ऊर्ध्वा इव अस्थात्) उत्तम पद पर सदा स्थित आदर योग्य सी बनी रहे। वह (द्वेषः) द्वेष के भावों तथा (तमांसि) दुःखकर शोकादि को भी (अप बाधमाना) दूर करती हुई दीपक के समान अन्धकारों को हटाती हुई (ज्योतिषा) विद्या और गुणों के प्रकाश सहित (आ अगात्) आवे।

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः। व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥२३॥

भा०—(दिवः दुहिता) प्रकाशों से जगत् को पूर्ण करने वाली, सूर्य की पुत्री के तुल्य उषा, (प्रतीची) अभिमुख आती हुई, (भद्रा) सुखप्रद, (अप्सः निरणीते) रूप को प्रकट करती है (वार्याणि वि ऊर्ण्वती) उत्तम प्रकाशों को धारे हुए, (पूर्वथा) पूर्व दिशा में (पुनः) वार २ (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है। उसी प्रकार (एषा) यह (दुहिता) कन्या वा पति आदि के प्रति प्रेम कामनाओं को प्रकट करने वाली, जीवन में दूर तक भी हिताचरण करने वाली, दूर देश में विवाहित कन्या, (नॄन् प्रति योषा इव) मनुष्यों के प्रति युवती स्त्री के समान ही (अप्सः) अपने उत्तम रूप को (नि रिणीते) प्रकट करे। वह (दाशुषे) अन्न वस्त्र, हृदयादि देने वाले पति के दिये (वार्याणि) उत्तम पहनने योग्य वस्त्रों को (वि ऊर्ण्वती) विशेष रूप से धारण करती हुई, अथवा उसके लिये (वार्याणि) वरण करने योग्य गुणों, वचनों को प्रकाशित करती हुई (युवतिः) नव युवति (पूर्वथा) प्रथम (पुनः ज्योतिः अकः) वार २ अग्नि को प्रदीप्त करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[८१]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१, ५ जगती । २ विराड् जगती । ४ निचृज्जगती । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥१॥

भा०—परमात्मा का वर्णन। (विप्राः) विद्वान् लोग उससे (बृहतः) सबसे बड़े (विपश्चितः) स्तुत्य, ज्ञानवान्, अनन्त विद्या के सागर (विप्रस्य) विशेष रूप से जगत् में पूर्ण, परमेश्वर के बीच अपने (मनः युञ्जते) मन को योग द्वारा लगाते हैं। और वे (धियः) अपने बुद्धियों, कर्मों को भी उसीसे (युञ्जते) जोड़ते हैं। वह (एकः इत्) अकेला ही (वयुनवित्) समस्त ज्ञानों और लोकों को जानने और धारण करने वाला, (होत्राः विदधे) समस्त वाणियों को धारण करता और वेद वाणियों का प्रकाश करता, तथा (होत्राः) जगत् को धारण करने वाली समस्त शक्तियों को विशेष रूप से धारण करता है, (देवस्य) उस सर्वप्रकाशक (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर की (मही) बड़ी भारी (परि-स्तुतिः) स्तुति, महिमा है।

अथवा—['होत्राः' इति 'विप्राः' इत्यस्य विशेषणम्।] ज्ञानादि के देने और लेने वाले विद्वान् भी मन ज्ञान और कर्मों का सम्बन्ध उसी प्रभु से करते हैं। वे उसी के निमित्त संकल्प विकल्प, तर्क करते, ज्ञान प्राप्त करते, यज्ञ दानादि करते हैं। अथवा—[होत्रा, इति वाङ्नाम।] वे विद्वान् उस प्रभु के ही वर्णन में ही (होत्राः युञ्जते) अपनी वाणियों का प्रयोग करते हैं। अथवा—[विप्राः विपश्चितः बृहतः विप्रस्य मनः युञ्जते, धियः युञ्जते होत्राश्च युञ्जते। एक इत् वयुनवित् मनो विदधे, धियो विदधे, होत्राः विदधे] विद्वान् लोग उस महान् ज्ञानवान् प्रभु के ज्ञानमय मन के साथ अपना मन उसकी धारणावती बुद्धियों के साथ अपनी बुद्धियों और उसके अनुकरणीय महान् कर्मों के साथ अपने कर्मों का योग करें, समाधान करें, दोनों को परस्पर एक दूसरे के अनुकूल करें। वही समस्त ज्ञानों, बुद्धियों और वाणियों और कर्मों का विधान करता है। उस सर्वोत्पादक की ही बड़ी भारी (परि-स्तुतिः) महिमा वा उपदेश है।

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑ मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद्भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्यो॒ऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥२॥

भा०—(कविः) सबसे अधिक बुद्धि वाला, परमज्ञानवान् परमेश्वर (विश्वा रूपाणि) समस्त रूपवान् पदार्थों को (प्रतिमुञ्चते) प्रतिक्षण धारण करता है। वह ही, (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये अर्थात् समस्त जीवों के हित के लिये (भद्रं) सुखजनक, कल्याणमय जगत् को (प्र प्रसावीत्) उत्पन्न करता है। वह ही (सविता) समस्त जगत् का उत्पादक पिता, (नाकम् वि अख्यत्) दुःख से रहित सुख को प्रकट करता है, वह (वरेण्यः) सबसे श्रेष्ठ, वरने योग्य, उत्तम मार्ग में ले जाने हारा (उषसः प्र-याणम् अनु) उषाकाल के गमन के पश्चात् उगने वाले सूर्य के समान और (उषसः प्रयाणम् अनु) शत्रु को दग्ध करने वाली सेना के प्रयाण करने के बाद सिंहासन पर विराजने वाले सम्राट् के समान (उषसः प्रयाणम् अनु) सब पापों को भस्म कर देने वाली विशेष प्रज्ञा के उत्तम रीति से प्राप्त होने के अनन्तर (अनु विराजति) उत्तरोत्तर हृदय में प्रकाशित होता है।

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य इद्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ महि॒मान॒मोज॑सा।
यः पार्थि॑वानि विम॒मे स एत॑शो॒ रजां॑सि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ३

भा०—(यस्य) जिस (देवस्य) सर्वप्रकाशक, तेजस्वी, सब सुखों के देने वाले परमेश्वर के (प्र-याणम्) उत्तम प्राप्तव्य, और सबको संचालन करने वाले (महिमानम्) महान् पराक्रम का (अन्ये देवाः) और समस्त विद्वान् एवं नाना दिव्य पदार्थ एवं कामना करने वाले मनुष्य (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (अनु ययुः) अनु गमन करते हैं (यः) जो (एतशः) शुभ्र शुक्ल वर्ण वाला, प्रकाशस्वरूप, सर्वव्यापक (देवः) सर्वप्रकाशक, (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (पार्थिवानि) पृथिवी के समस्त पदार्थों और (रजांसि) अन्तरिक्ष और

आकाश के समस्त लोकों को भी (वि-ममे) जानता और बनाता है। (सः एतशः) वही सर्वव्यापक, तेजोमय सबके उपासना करने योग्य है। जिस सेनापति वा मुख्य नायक राजा के पयान के अनन्तर अन्य विजिगीषु सैनिक वा सामन्त चलते हैं जो समस्त पार्थिव ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है वह सामर्थ्य से ही देव, सूर्यवत् तेजस्वी (एतशः) महारथी वा शुक्र वर्णवान् शुभ्रकर्मा सर्वगुण विभूषित है।

उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥

भा०—(उत) और हे (सवितः) जगत् के उत्पन्न करने हारे प्रभो ! तू (त्रीणि रोचना) तीनों प्रकाशमान् सूर्य, विद्युत, अग्नि इनमें (यासि) व्याप्त है, तू (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के साथ भी (सम् उच्यसि) विद्यमान है। (उत) और तू ही सूर्यवत् (रात्री) महा प्रलय रात्रि को (उभयतः परीयसे) दोनों ओर से व्यापता है, उसके आदि में भी तू और अन्त में भी तू, जगत् का उत्पादक और संहारक भी तू ही है। (उत) और तू ही हे (देव) सर्वप्रकाशक ! सर्वदातः ! (धर्मभिः) जगत् को धारण करने वाले बलों से, कानूनों और नियमों से राजा के तुल्य (मित्रः भवसि) सबका स्नेही, सबको मृत्यु से बचाने हारा है।

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः। उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ५।२४

भा०—हे (देव) देव ! सर्व सुखों के देने हारे ! तेजोमय ! सर्व प्रकाशक ! (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही (प्र-सवस्य) इस संसार को उत्पन्न करने के लिये (ईशिषे) पूर्ण समर्थ है। (उत) और (त्वम् एकः इत् यामभिः पूषा भवसि) तू अकेला ही, सब नियमों द्वारा सब का पोषक हो रहा है। (उत) और (इदं) इस समस्त (भुवनं)

लोक को (विराजसि) प्रकाशित करता है और विविध रूप से उस पर राजा के तुल्य शासन भी करता है। हे (सवितः) सबके उत्पादक प्रभो ! (श्याव-अश्वः) ज्ञानवान् आत्मा वाला अथवा प्रदीप्त किरणों वाला सूर्य भी (ते) तेरे (स्तोमम् आनशे) स्तुति योग्य सामर्थ्य को प्राप्त करता है। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८२]

श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ६ निचृद्गायत्री । ३, ५, ६, ७ गायत्री । ८ विराड्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

तत्स॑वि॒तुर्वृ॑णीमहे व॒यं दे॒वस्य॒ भोज॑नम् ।
श्रेष्ठं॑ सर्व॒धात॑मं तु॒रं भग॑स्य धीमहि ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम (सवितः) सबके उत्पादक (देवस्य) सर्व-प्रकाशक, सर्वप्रद, सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, परमेश्वर के (तत्) उस सर्वोत्तम (भोजनम्) पालन और भोग्य ऐश्वर्य को (वृणीमहे) प्राप्त करें और (भगस्य) सकल ऐश्वर्य युक्त, सर्व सेवनीय उस प्रभु के (श्रेष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (सर्वधातमम्) सबसे अधिक उत्तम, सबके धारक पोषक (तुरं) अविद्यादि दोषनाशक बल को (धीमहि) धारण करें।

अस्य॒ हि स्वय॑शस्तरं सवि॒तुः कच्च॒न प्रि॒यम् ।
न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ २ ॥

भा०—(अस्य सवितुः) इस सर्वैश्वर्यवान्, सर्वजनक प्रभु के (स्वयशः-तरम्) अपने ही सर्वोत्कृष्ट यश और वीर्य वाले (प्रियम्) अतिप्रिय (स्वराज्यं) राज्य के समान अपने तेज को (कत् चन) कोई भी, कभी भी (न मिनन्ति) नहीं नाश कर सकते हैं।

स हि रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ।
तं भा॒गं चि॒त्रमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—जो (सविता) सर्वोत्पादक (भगः सन्) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु है वह (दाशुषे) दानशील दाता पुरुष के हितार्थ (रत्नानि) नाना रमण करने योग्य ऐश्वर्यों को (सुवाति) प्रदान करता है (तं) उस (भागं) सेवा करने योग्य, भजनीय एवं भग अर्थात् ऐश्वर्यों के स्वामी (चित्रम्) अद्भुत आश्चर्यकारी को लक्ष्य करके हम (ईमहे) याचना करते हैं।

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (देव) ज्योतिर्मय! (नः) हमें (सौभगम्) उत्तम समृद्धि, (प्रजावत्) प्रजा के समान (सावीः) प्रदान कर, हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! (नः) हमारे (दुःस्वप्न्यं) बुरे स्वप्न आने के कारण को (परा सुव) दूर कर।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक प्रभो ! हे (देव) सर्व सुखों के दातः ! परमेश्वर ! (विश्वानि दुरितानि) सब दुःखों को (परा सुव) दूर करो और (यद् भद्रं) जो कल्याणकारक सुखजनक हो (तत् नः आ सुव) वह हमें प्रदान करो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे ।
विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग (देवस्य सवितुः) दानशील, सर्वप्रकाशक, तेजस्वी (सवितुः) सूर्यवत् सर्वोत्पादक प्रभु के (सवे) परमैश्वर्यरूप शासन में रहकर (अदितये) माता, पिता, पुत्र, बन्धु आदि सम्बन्धी जन तथा भूमि आदि के हितार्थ (अनागसः) अपराध एवं पापाचरण से रहित होकर (विश्वा वामानि) सब प्राप्त करने, विभाग करने और दान करने योग्य ऐश्वर्यों को (धीमहि) धारण करें।

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे ।
सत्यसवं सवितारम् ॥ ७ ॥

भा०—हम लोग (विश्वदेवं) विश्व के प्रकाशक, सबके दाता और सर्वोपास्य, समस्त शुभ गुणों के धारक, सर्वकाम्य, सर्वविजयी, सर्वव्यवहारकुशल, (सत्पतिं) समस्त सज्जनों और सत्पदार्थों के पालक (सत्यसवं) सत्यैश्वर्य युक्त, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, पिता परमेश्वर की (आ वृणीमहे) सब प्रकार से भक्ति करें ।

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् ।
स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता उभे अहनी अप्रयुच्छन् पुरः एति) सूर्य दिन रात्रि दोनों के पूर्व प्रमादरहित होकर आता है उसी प्रकार (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर (देवः) सर्वप्रकाशक, सर्वसुखदाता (सु-आधीः) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से जगत् को प्रकृति में, मातृगर्भ में पिता के समान अव्यय बीज का आधान करने वाला प्रभु (इमे) इन (अहनी) कभी नाश न होने वाले जीव और प्रकृति (उभे) दोनों अनादि पदार्थों के (पुरः) पूर्व ही (अप्रयुच्छन्) संतत प्रमाद-रहित सर्व साक्षी होकर (एति) व्याप्त रहता है । वही परमेश्वर सबको उपासना करने योग्य है ।

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (इमा) इन (विश्वा) समस्त (जातानि) उत्पन्न हुए स्थावर और जंगम जीवों को (श्लोकेन) विद्वान् उपदेष्टा के समान वेद वाणी द्वारा (आ श्रावयति) सर्वत्र ज्ञानोपदेश करता है और (प्र सुवाति) उत्तम रीति से आचार्यवत् उनको उत्तम जन्म देता है वही (सविता) 'सविता' उत्पादक पिता कहाने योग्य है । इति षड्विंशो वर्गः॥

(८३)

अत्रिर्ऋषिः । पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती । ५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १० भुरिक् पंक्तिः । ९ निचृदनुष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से (तवसं) बलवान् (पर्जन्यं) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ, और मेघ के तुल्य प्रजाओं को समृद्धि सुखों से तृप्त और जनों का हित करनेवाले पुरुष के (स्तुहि) गुणों का वर्णन किया कर और (अच्छ वद) उसका उपदेश कर जो वस्तुतः मेघ के समान समस्त संसार को (नमसा) अन्न से और शासन दण्ड से (विवास) विविध प्रकार से बसाता है, जो (वृषभः) बड़े बैल के समान बलवान्, वर्षणशील मेघ के तुल्य (कनिक्रदत्) गर्जता और (जीरदानुः) जलवत् जीवनसाधन प्रदान करता हुआ (ओषधीषु) वृक्षों और लताओं के समान शत्रुसंतापक बल को धारण करने वाली सेनाओं में (रेतः) जलवत् बल (दधाति) धारण कराता है । और (गर्भम् दधाति) उनके ही बल पर गृहीत राष्ट्र का पालन करता है । मेघ भी वनस्पतियों पर जल बरसाता और उनमें फल प्रसवार्थ गर्भ धारण करता है, एवं पृथिवी पर नाना ओषधियों के उत्पादनार्थ गर्भ धारण कराता है ।

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः २

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः स्तनयन् दुष्कृतः हन्ति) मेघ गर्जता हुआ दुःखदायी, अकाल, दुर्भिक्ष आदि को नाश करता है जो (भुवनं

हन्ति) जल को आघात कर बरसाता है । ((वृष्ण्यवतः ईषते) बरसाने वाले मेघ खण्डों को प्रेरता है उसी प्रकार (यत्) जो (पर्जन्यः) शत्रुओं को पराजय करने और प्रजाओं को सुख समृद्धि से तृप्त करने वाला, मेघ तुल्य उदार राजा वा विद्वान् पुरुष, (स्तनयन्) गर्जता हुआ, उपदेश करता हुआ (दुः-कृतः) दुष्टाचरण करने वाले, प्रजाओं को दुःख देने वाले दुष्ट पुरुषों और बुरे कर्मों का भी (हन्ति) नाश करता है वह (वृक्षान्) काट कर उखाड़ देने योग्य, वा भूमि पर कब्जा करनेवाले उच्छेद्य शत्रुओं को (वि हन्ति) विविध उपायों से नाश करे, (उत) और (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और भावों का (वि हन्ति) विघात करे। और उनको भी नाश करे जिनके (महावधात्) बड़े नाशकारी हत्या-काण्ड से (विश्वं भुवनं बिभाय) समस्त संसार डरता है, अथवा जिसके (महावधात्) बड़ा हिंसाकारी घोर शस्त्रास्त्र बल से जगत् भय खाता है, (उत) और वह (अनागाः) दोष अपराध आदि से रहित होकर (वृष्ण्य-वतः) शस्त्रवर्षी, बलवान् शत्रुओं को भी (ईषते) नाश करता और प्रकम्पित करता है

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्यः नभः वर्ष्यं कुरुते) मेघ अन्तरिक्ष को वृष्टि करने वाला बना देता है, (वर्ष्यान् दूतान् आविः कृणुते) वर्षा के दूत सदृश शीतल वायुओं को प्रकट करता है, (सिंहस्य स्तनथा उत् ईरते) सिंहवत् गर्जनाएं होती हैं उसी प्रकार (यत्) जब (पर्जन्यः) शत्रु पराजयकारी, प्रजा को समृद्ध करने वाला राजा (वर्ष्यम्) वृष अर्थात् बलवान् शस्त्रवर्षी वीर भटों से बने सैन्य को (नभः) सुप्रबद्ध (कृणुते) करता है और (रथी इव) जिस प्रकार कोचवान् (कशया) हण्टर से (अश्वान् अभिक्षिपति) घोड़ों को हांकता है, और मेघ जिस प्रकार

(कशया अश्वान् अभिक्षिपन्) दीप्ति युक्त विद्युल्लता से मेघ एवं वेग युक्त वायुओं को ताड़ता है उसी प्रकार (रथी) वह महारथी, (कशया) अपनी वाणी से ही (अश्वान्) वेग से जाने वाले अपने अश्व सैन्यों को (अभिक्षिपन्) सब ओर शीघ्र भेजता हुआ और (वर्ष्यान्) वर्षों में वृद्ध (दूतान्) शत्रुसंतापक एवं उत्तम कुशल अनुभवी पुरुषों को अपना दूत (आविः कृणुते) बनाता है। उसी समय (सिंहस्य) सिंह के समान पराक्रमशाली वीर जनों के (स्तनथाः) गर्जन शब्द (दूरात्) दूर से (उत् ईरते) उठते, सुनाई देते हैं।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

भा०—(यत्) जब (पर्जन्यः) समस्त विश्व को जल और अन्न से तृप्त और समस्त जन्तुओं का हित करने वाला मेघ (रेतसा पृथिवीं अवति) जल से भूमि को खूब तृप्त कर देता है, उस समय, (वाताः प्र वान्ति) वायुगण खूब बहते हैं, (विद्युतः पतयन्ति) बिजुलियें गिरती हैं, (ओषधीः उत् जिहते) ओषधि-वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं। (स्वः पिन्वते) अन्तरिक्ष से जल झरता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त संसार के लिये (इरा जायते) जल और अन्न उत्पन्न होता है। इसी प्रकार (पर्जन्यः) शत्रुविजयी राजा जब (रेतसा) अपने बल वीर्य, पराक्रम से तथा जल की नहरों से (पृथिवीम् अवति) राष्ट्र भूमि की रक्षा करता और सींचता है, तब (वाताः प्र वान्ति) वायु के समान बलवान् सेनापतिगण वेग से जाते हैं, (विद्युतः) विशेष दीप्ति युक्त अस्त्रादि (पतयन्ति) चलते हैं, और (वाताः प्र वान्ति) वायु वेग से जाने वाले रथ, व्योमयान आदि एवं व्यापारी जन वेग से जाते आते हैं और (विद्युतः) विशेष दीप्तियुक्त समृद्धियें (पतयन्ति) राष्ट्र ऐश्वर्य को बढ़ाती हैं, (विद्युतः पतयन्ति) विशेष द्युतियुक्त स्त्रियें पति की कामना करती हैं, विवाहित

हो गृहस्थ बसाती हैं। (ओषधीः उत् जिहते) तेज धारण करने वाली सेनाएं ओषधिवत् ही उठ खड़ी होती हैं। और प्रजाएं उन्नति के मार्ग पर गमन करती हैं। (स्वः पिन्वते) राष्ट्र समस्त सुखों को उत्पन्न करता है, और आकाश जल यथासमय वर्षाता है (विश्वस्मै भुवनाय) समस्त प्रजाजन के लिये (इरा जायते) अन्न भी पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होता है।

यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒ यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति।
यस्य॑ व्र॒त ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः॒ स नः॑ पर्जन्य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ ५।२७

भा०—जिस प्रकार मेघ के वृष्टि कर्म होने पर (पृथिवी नंनमीति) पृथिवी के रजोरेणु नीचे आ जाते हैं और (शफ़वत् जर्भुरीति) खुरों वाले गौ आदि पशु पुष्ट होते हैं और (विश्वरूपाः ओषधीः) सब प्रकार की ओषधि वनस्पतिएं पुष्ट होती हैं और (महि शर्म यच्छति) मेघ प्रजाओं को भारी सुख देता है उसी प्रकार हे (पर्जन्य) शत्रु-विजय-कारिन्! हे प्रजाओं के पोषक! (यस्य) जिस तेरे (व्रते) प्रजापालन रूप कर्म के अधीन (पृथिवी) समस्त भूमण्डल (नन्नमीति) विनय से झुकता है, और (यस्य व्रते) जिसके व्रत अर्थात् प्रजापालन करने पर (शफ़वत्) खुरों वाले पशुगण भी (जर्भुरीति) खूब पालित पोषित होते हैं। (यस्य व्रते) जिसके प्रजापालन करने पर (विश्वरूपा ओषधीः) सब रूपवती, तेज वा वीर्य को धारण करने वाली स्त्रियें भी (जर्भुरीति) उचित रीति से पालित पोषित होती हैं। (सः) वह तू हे राजन्! (नः) हम प्रजाजनों को (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छ) प्रदान कर। इति सप्तविंशो वर्गः॥

दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒ प्र पि॑न्वत॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ धाराः॑।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुनेह्य॒पो नि॑षि॒ञ्चन्नसु॑रः पि॒ता नः॑॥ ६॥

भा० — जिस प्रकार (मरुतः दिवः वृष्टिं रान्ति) वायुगण अन्तरिक्ष

से वृष्टि में प्रदान करते हैं और (वृष्णः धारा प्र पिन्वत) बरसने वाले मेघ की जल धाराओं को बरसाते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे लिये (दिवः) व्यापार, व्यवहार से (वृष्टिं) ऐश्वर्य की समृद्धि, पुष्टि, (ररीध्वम्) प्रदान किया करो। और (वृष्णः) राष्ट्र का प्रबन्ध करने में कुशल (अश्वस्य) अश्ववत् हृष्ट पुष्ट और राष्ट्र के भोक्ता राजा के (धाराः) आज्ञा वाणियों को और अश्व सैन्य की 'धारा' नाम विशेष चालों को (प्र पिन्वत) खूब परिपुष्ट करो (स्तनयित्नुना असुरः निषिञ्चन् अर्वाङ् एति) जिस प्रकार मेघ वर्षता हुआ गर्जनशील विद्युत् के साथ आता है उसी प्रकार (नः पिता) हमारा पितावत् पालन करने वाला राजा (अपः) राज्यकर्म को और आप्त प्रजाजनों को (नि सिञ्चन्) सर्व प्रकार से पुष्ट करता हुआ (स्तनयित्नुना) उपदेश करने वाले विद्वान् वा गर्जनशील योद्धाजन वा अश्व समूह के साथ (अर्वाङ् एति) हमें प्राप्त हो।

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सुकर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः॥ ७॥

भा०—मेघ (यथा क्रन्दति गर्भम् आधत्ते, उदन्वता रथेन परिदयति, विषितं न्यञ्चं दृतिं सुकर्षति, उद्वतः निपादाः समा भवन्ति तथा) जिस प्रकार गर्जता है, विद्युत् चमकाता है, जलमय रम्य रूप से आकाश में व्यापता है, नीचे आ उतरते हुए विदीर्ण मशक समान अपने 'दृति' अर्थात् जल पूर्ण भाग को अच्छी प्रकार बन्धन रहित सा करके खोल देता है और ऊंचे और निम्न खड्डों वाले सब प्रदेश जलमय होकर एक समान हो जाते हैं, उसी प्रकार हे राजन्! प्रजापालक पुरुष! तू (अभि क्रन्द) स्वयं सब ओर गर्जना कर, अपनी घोषणाएं दे (स्तनय) घोर नाद कर, अथवा स्तन के समान मेघ जिस प्रकार संतति-पालनार्थ दूध से भरता वा पुष्ट हो जाता है उसी प्रकार मेघ भी प्रजापोषणार्थ जल

से भर कर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हे राजन् तू भी प्रजापालनार्थ (स्तनय) स्तनवत् उत्तम परिपोषक अन्न आदि देने में समर्थ, समृद्ध, पुष्ट होजा। तू (गर्भम् आधाः) गृहीत राष्ट्र का पालन पोषण कर, राष्ट्र को अपने गर्भ अर्थात् वश में सुरक्षित रख। (उदन्वता रथेन परिदीयाः) बलशाली रथ सैन्य से राष्ट्र की सब ओर से रक्षा कर वा उस प्रकार के सैन्यसहित राष्ट्र में बस और राष्ट्र को बसा वा शत्रु का नाश कर। (न्यञ्चं) नीचे विनय से झुकने वाले (वि-षितं) बन्धनादि से मुक्त वा विशेष रूप के नियम-प्रबन्धादि से प्रबद्ध, (दृतिं) शत्रु बल को विदारण करने में समर्थ सैन्य बल को (सुकर्ष) अच्छी प्रकार सञ्चालित कर और विनीत, बन्धन युक्त, (दृतिं) भयप्रद शत्रु बल को (सुकर्ष) खूब निर्बल कर जिससे (उदन्वतः) उत्कृष्ट बल वाले और (नि-पादाः) निम्न स्थान पर स्थित सभी प्रजाजन भी (समाः भवन्तु) न्याय दृष्टि से समान हो जांय। उत्तम पदस्थ निम्नों को न सता सकें। 'सुकर्ष'—'स कर्षन् महतीं सेना ॥ रघु०॥यश्च सेनां विकर्षति ॥ महाभा० इत्यादि प्रयोगेषु कृषधातोः सैन्यस्य नायकवत् सञ्चालनार्थे प्रयोगेऽतिप्राचीनः।

**म॒हान्तं॒ कोश॒मुद॑चा॒ नि षि॑ञ्च॒ स्यन्द॑न्तां कु॒ल्या विषि॑ताः पु॒रस्ता॑त्।
घृ॒तेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी व्यु॑न्धि सुप्रपा॒णं भ॑वत्व॒घ्न्याभ्यः॑ ॥ ८ ॥**

भा०—जिस प्रकार मेघ (महान्तं कोशम् उत् अञ्चति) बड़ी भारी जल राशि को अपने भीतर उठाता है, (वि सिञ्चति) उसे बरसाता है, (स्यन्दन्ति कुल्याः विषिताः) बहुतसी धारा निर्बन्ध होकर छूट बहती हैं और मेघ, आकाश और भूमि दोनों को (घृतेन व्युनत्ति) जल से आर्द्र कर देता है (अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणं भवति) गौ आदि पशुओं के पीने के लिये बहुत जल हो जाता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी (महान्तं कोशम्) बड़े भारी कोश, ख़जाने को (उद् अच) उन्नत कर, और बहुत बलवान् (कोशं) खड्ग अर्थात् शस्त्र बल तथा धन को उत्पन्न कर, (नि सिञ्च) उस कोश

को शस्त्र को प्रजागण और शत्रु पर बरसादे, जिससे (पुरस्तात्) आगे (वि-सिताः) कटी (कुल्याः) राष्ट्र में जल की और रण में रक्त की नहरें (स्यन्दन्ताम्) बह जावें और (द्यावा पृथिवी) सूर्य भूमिवत् राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (घृतेन) स्नेह से (वि-उन्धि) आर्द्र कर, वे दोनों प्रेम से एक दूसरे पर कृपालु और अनुरक्त रहें । (अघ्न्याभ्यः) गौओं के समान अहिंसनीय प्रजाओं के लिये (सुप्रपाणं) उत्तम, सुखजनक पालन की व्यवस्था (भवतु) हो ।

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पर्जन्य) शत्रुओं के विजेता और प्रजाओं को समृद्धि से तृप्त करने हारे ! (यत्) जब तू मेघ के समान (कनिक्रदत्) गर्जता और (स्तनयन्) विद्युत् के समान कट कटाता अथवा (स्तनयत्) स्तन के समान मधुर सुखों की वृष्टि करता हुआ (दुष्कृतः हन्ति) दुष्टाचारियों का नाश करता है तब (इदं विश्वं) यह विश्व (यत् किं च) जो कुछ भी (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी पर स्थावर जंगम सृष्टि है वह (प्रति मोदते) तुझे देख प्रसन्न होती है ।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उं ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्यो विदो मनीषाम् १०।२८॥

भा०—जिस प्रकार (वर्षम् अवर्षीः) मेघ बरसता है (धन्वानि वर्षम् अकः) मरुस्थलों और अन्तरिक्ष प्रदेशों को अतिक्रमण करता हुआ भी वृष्टि को धारण करता है, (ओषधीः भोजनाय अजीजनः) ओषधियों को सब जन्तुओं के भोजन के निमित्त उत्पन्न करता है (प्रजाभ्यः मनीषां विदः) प्रजाओं से प्रशंसा प्राप्त करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अति एतवा उ) अपने शत्रुगण को अतिक्रमण करने और उनसे बढ़

जाने के लिये (धन्वानि) धनुषों को (गृभाय) ग्रहण कर और (वर्षम् अकः) शर वृष्टि कर । (अवर्षीः) प्रजाओं पर सुखों की वृष्टि कर और (भोजनाय) प्रजाओं के भोग और भोजन के निमित्त (ओषधीः) अन्न शाक आदि वनस्पतियां (अजीजनः) राष्ट्र में उत्पन्न कर और (भोजनाय) स्वयं राष्ट्र को भोगने और पालन करने के लिये (ओषधीः जनय) शत्रुदाहक पराक्रम को धारण करने वाली सेनाओं को भी प्रकट कर । (उत् कम्) और (प्रजाभ्यः) प्रजाओं की भी (मनीषाम्) उत्तम सम्मति को (विदः) प्राप्त कर लिया कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[८४]

अत्रिर्ऋषिः । पृथिवी देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप् । ३ विराडनुष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (पर्वतानां मह्ना) पर्वतों और मेघों के महान् सामर्थ्य से (खिद्रं बिभर्त्ति, भूमिं च जिनोषि) दीन प्रजा को पालती और भूमि को जल धाराओं और नदियों से सींचती है उसी प्रकार हे (पृथिवि) पृथिवी के समान विशाल हृदय वाली ! हे (प्रवत्वति) उत्तम गुणों वाली ! हे (महिनि) पूज्ये ! दानशीले महान् सामर्थ्य वाली ! तू भी (पर्वतानां मह्ना) मेघ या पर्वतों के तुल्य उदार और पालन सामर्थ्यों से युक्त पुरुषों का पालन कर, और अपनी (भूमिं) अन्न-सस्योत्पादक भूमि और सन्तत्युत्पादक अंग को भी (प्र जिनोषि) उत्तम रीति से सींच और उत्तम प्रजा उत्पन्न कर ।

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

भा०—हे (विचारिणि) विचार करने वाली स्त्रि ! वा राजसभे ! (स्तोमासः) उत्तम विद्वान् पुरुष (अक्तुभिः) सब दिन (त्वा प्रति स्तोभन्ति) तेरी स्तुति, प्रशंसा करें। (या) जो तू पृथिवी के समान हे (अर्जुनि) उषा के तुल्य कमनीये ! शुद्धाचरण वाली ! एवं प्रकाशवत् अर्थ सञ्च करने हारी ! तू (हेषन्तं वाजं न) हिनहिनाते अश्व के समान गर्जते (पेरुं) मेघ को पृथिवी के समान, पालक पुरुष, अर्धांग सुप्रसन्न और पूरक पति को (अस्यसि) सन्मार्ग में प्रेरित करती, ऊपर उठाती है। उसके अभ्युदय, और यश का कारण होती है।

दृळहा चिद्या वनस्पतींन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः॥ ३॥ २९॥

भा०—जिस प्रकार पृथिवी (दृढा चित्) दृढ़ होकर (क्ष्मया) सामर्थ्य से (ओजसा) और बल से (वनस्पतीन् दर्धर्त्ति) बड़े २ वृक्षों को धारे रहती है उसी प्रकार हे स्त्री वा राजशक्ति (या) जो तू (दृढा) दृढ़ रहकर (वनस्पतीन्) ऐश्वर्यों के पालक महावृक्षवत् आश्रय दाता पुरुषों को (ओजसा) पराक्रम, तेज से और (क्ष्मया) क्षमाशीलता से वा भूमि के बल से (दर्धर्षि) धारण कर रही है और (यत्) जो (ते) तेरे (अभ्रस्य) मेघवत् सुखप्रद धन की (विद्युतः) विशेष कान्ति वाली (वृष्टयः) सुखों की वृष्टियें (दिवः) आकाश से मेघ की बिजुली युक्त वर्षाओं के समान तेरी कामना और सद्व्यवहार से (वर्षन्ति) बरसती हैं इससे तू अतिपूज्य है। इति एकोनविंशो वर्गः॥

[८५]

अत्रिर्ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः—१, २ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ स्वराट् पंक्तिः। ७ ब्राह्म्युष्णिक्॥ अष्टर्चं सूक्तम्॥

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो सेनापति (सूर्याय) सूर्य के समान तेजस्वी राष्ट्रपति पद की प्राप्ति के लिये (शमिता इव) विघ्न शमन करने वाले के समान (वि जघान) विघ्नों का नाश करता है और (चर्म) बिछाने योग्य मृग छाला के समान (पृथिवीम्) पृथिवी को (शमिता इव) शमसाधक योगाभ्यासी के समान ही (उपस्तिरे) विस्तृत कर अपना आश्रय बनाता है उसपर विजय करता है । उस (सम्राजे) सम्राट् (वरुणाय) दुष्टों और उपद्रवों के निवारण करने में समर्थ श्रेष्ठ जनों के रक्षक गुरु द्वारा श्रवण करने योग्य शास्त्रों में निष्णात एवं जगत् प्रसिद्ध पुरुष के लिये (बृहत् अर्च) बहुत बड़ा सत्कार कर और (गभीरं) गम्भीर अर्थ वाला, (प्रियं) प्रिय, मनोहर (ब्रह्म) ज्ञान वर्धक, सर्वोत्तम ज्ञान का उसे उपदेश कर । (२) परमेश्वर पक्ष में—हे विद्वन्! तू सबके सम्राट्, दुःखवारक, सर्वप्रसिद्ध, सूर्यवत् स्वयं प्रकाश उस प्रभुकी उपासना कर, प्रिय वेद का अभ्यास कर । प्रभुसर्वत्र व्यापक है और भूमि को बिछौने के समान बिछाये है ।

वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ २ ॥

भा०—वह (वरुणः) उत्तम पद के लिये वरण करने योग्य राजा (वनेषु) सूर्यवत् भोग्य पदार्थों वा वन उपवनों में (अन्तरिक्षं) जल को (वि ततान) विविध उपायों से प्रसारित करे । (अर्वत्सु वाजम्) अश्वों में वेग और अश्व सैन्यों के आधार पर संग्राम की (अदधात्) तैयारी या योजना करे । (उस्रियासु पयः) गोओं में पुष्टि कारक दूध, भूमियों में जल और अन्न को (अदधात्) पुष्ट करे और जो (हृत्सु) हृदयों में

(क्रतुं) ज्ञान को (अदधात्) स्थापित करे, (अप्सु अग्निम्) जलों में अग्निवत् प्रजाओं में ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष को नेता को (अदधात्) नियत करे। वह (दिवि सूर्यम् अदधात्) आकाश में सूर्य के समान इस पृथिवी में तेजस्वी पुरुष को और ज्ञान रक्षा में सर्वप्रकाशक विद्वान् को प्रधान पद पर स्थापित करे, और (अद्रौ सोमम् अदधात्) मेघ में जल और पर्वत पर ओषधिवत् शस्त्र बल पर ऐश्वर्य को पुष्ट वा धारण करे। (२) परमेश्वर ने सूक्ष्म जलों में या वृक्षों के ऊपर भी आकाश ताना है, अश्वों में वेग, गौओं में दूध, भूमियों में जल, अन्न, हृदय में कर्म और ज्ञान सामर्थ्य, समुद्रों में बड़वानल, वा रसों में विद्युत्, आकाश में सूर्य, मेघों में जल, पर्वतों पर सोम आदि ओषधि वर्ग बनाया है। वही 'वरुण' सर्वोपास्य है।

नीचीनबारं वरुणः कबन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणः) प्रजा के कष्टों का वारण करने वाला सम्राट् राजा (कबन्धं) जल को (नीचीनवारं) नीचे के स्थानों में नाना धाराओं में विभक्त होकर बहने वाला करे। अर्थात् पर्वत आदि उच्च स्थलों में स्थित जल को नीचे के प्रदेशों में नहरों या नलों द्वारा बहाकर सेचन आदि का प्रबन्ध करे। वह (रोदसी) आकाश और भूमि, शासक और शास्य वर्ग दोनों के बीच (अन्तरिक्षम्) अन्तःकरण में बसने वाला, जलवत् पारस्परिक स्नेह उत्पन्न करे। (तेन) उससे (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त 'भुवन', भूगोल का राजा (वृष्टिः भूम यवं न) जो के बड़े और बहुत से यव के खेतों को वृष्टि के समान सुखदायक होकर (भूम) बहुत से प्रजाजनों को (वि-उनत्ति) विविध उपायों से स्नेहार्द्र करे। (२) परमेश्वर मेघ जलआदि बनाता विश्व का राजा होकर सबके हृदयों को दयार्द्र करता करुणा जलों से सेंचता है।

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥

भा०—(यदा) जिस समय (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, प्रजा के उपद्रवों और कष्टों का वारक राजा (दुग्धं) गौ से दूध के समान पृथिवी से अन्न (वृष्टि) प्राप्त करना चाहे (आत्-इत्) तब वह (पृथिवीम्) अति विस्तृत भूमि को (उत) और (द्याम्) आकाश को (अभ्रेण) मेघ से (उनत्ति) जलों द्वारा गीला करे। अर्थात् यज्ञ और वर्षा के उपायों से आकाश में मेघों को उत्पन्न करे और नहरों मेघों से भूमि सेचने का प्रबन्ध करे। हे (वीराः) वीर पुरुषो ! आप लोग (तविषीयन्तः) सेनाएं बनाते हुए (पर्वतासः) पर्वतों के समान अचल और मेघों के समान शर वर्षी होकर (वसत) रहो और दुष्टों को (श्रथयन्त) शिथिल करते रहो। जिससे प्रजा सुख से रहे। इसी प्रकार जब राजा प्रजा से ऐश्वर्य दोहना चाहे, तो वह शत्रु की भूमि को रक्त से और स्व प्रजा को स्नेह से और (द्यां) तेजस्वी शासक वर्ग को भी स्नेहार्द्र करे। वीर युद्ध में अचल एवं शर वर्षी हो प्रजा के आश्रय हों। (२) वरुण, परमेश्वर भूमि के वृष्टि और आकाश को जल से गीला करता है, जब चाहता है अन्नादि से पूर्ण करता है। मेघ और वायु बलयुक्त और विद्युत् युक्त होकर आकाश को आच्छादित करते हैं।

इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५॥३०॥

भा०—मैं (असुरस्य) मेघ के व्रत को पालन करने वाले (श्रुतस्य) जगत् प्रसिद्ध, वेदों के विद्वान्, बहुश्रुत (वरुणस्य) प्रजा के दुखों को वरण करने वाले, सर्वश्रेष्ठ पुरुष की (इमाम् महीं मायां) इस बड़ी, आदरणीय बुद्धि का (सु-प्रवोचम्) उत्तम रीति से सब लोगों को उपदेश करूं। (यः) जो राजा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (तस्थितवान्)

स्थित वायु के समान स्वयं बलवान् और निर्बल, वा वादी प्रतिवादियों के बीच न्यायासन पर विराज कर (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी रूप, प्रभाव या न्याय-प्रकाश से (मानेन इव पृथिवी) मापने के दण्ड से जैसे भूमि को मापा जाता है उसी प्रकार जो (मानेन) सर्वमान्य न्याय-दण्ड से (पृथिवीं ममे) भूमि का शासन करता है। (२) परमेश्वर सर्वप्राणप्रद होने से 'असुर' है, उसकी बड़ी भारी यह 'मान' अर्थात् निर्माण शक्ति है जो अन्तरिक्ष में सूर्य के साथ पृथिवी को भी मानदण्ड से मापने के समान (मानेन) निर्माण कौशल से स्वयं मापता, व्यापता और बनाता भी है। अर्थात् वही माता और वही पिता है।

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥

भा०—(कवि-तमस्य) समस्त क्रान्तदर्शी विद्वानों के बीच में सर्व-श्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, सर्वविजयी, तेजस्वी राजा और प्रभु की (इमाम् उ नु महीं मायाम्) इस बड़ी भारी बुद्धि और निर्माण-चातुरी को (नकिः आ दधर्ष) कोई भी तिरस्कार नहीं कर सकता, (यत्) कि (एनीः अवनयः) जिस प्रकार सदा बहती हुई नदियें भी (आ सिञ्चन्तीः) सब ओर से जल सेंचती हुई भी (समुद्रं उद्ना न पृणन्ति) समुद्र को जल से नहीं भर पातीं उसी प्रकार (एनीः) सब ओर से प्राप्त, (अवनयः) ये भूमिवासिनी प्रजाएं या भूमियें भी (एकं समुद्रं) एक समुद्र के समान अथाह बलशाली राजा को (आ सिञ्चन्तीः) सब प्रकार से सेंचती हुई, अभिषेक करती हुई भी (न पृणन्ति) ऐश्वर्य से पूर्ण नहीं कर पातीं।

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥

भा०—हे (वरुण) सम्राट्, राजन्! सर्वश्रेष्ठ प्रभो! हम

(अर्यम्यं) शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को बंधन में बाधने वाले, पोलीस वा न्यायकारी, न्यायाधीश, (मित्र्यं) सर्वस्नेही ब्राह्मणगण, (सखायं वा) समान नाम पद वाले मित्रवर्ग, (सदम्) साथ बैठने वाले (भ्रातरं वा) भाई के प्रति (वा) अथवा (वेशं) सबके प्रवेश योग्य या सभास्थान वा गृह वा राष्ट्र में अन्य देशों से आने जाने वाले वैश्य वर्ग या निकटवर्त्ती पड़ोसी और (अरणं वा) जो अपने से रण नहीं करते, उनके प्रति (यत् सीम् आगः चकृम) जो कभी अपराध करें हे राजन् ! तू (तत्) उसको और उसी समय (नित्यं शिश्रथः) सदा शिथिल करता रह, उस अपराध पर नियन्त्रण करके हमें अपराध न करने दिया कर । (२) परमेश्वर भी हमें उन सब पापों से बचावे ।

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ८।३१

भा०—(दीवि न कितवासः) द्यूत कार्य में जूआ खोर लोग जिस प्रकार योंही निराधार छल कपट से एक दूसरे पर दोष आरोप करते हैं उसी प्रकार जो (कितवासः) तेरा क्या है ? इस प्रकार डरा धमका कर अन्यों का माल झपट लेने वाले छली लोग भी (यत् रिरिपुः) जो हम पर चोरी आदि का मिथ्या दोषारोप करें (यद् वा घ सत्यम्) और जो सचमुच हमारा कसूर हो, (उत) और (यत् न विद्म) जिस अपराध को हम नहीं जानते और कर बैठते हैं (ता सर्वा) उन सब अपराधों को हे (देव) दण्ड देने हारे ! हे (वरुण) दुष्टवारक ! तू (शिथिरा इव) ढीला सा (वि ष्य) करके हमसे छुड़ा दे । राष्ट्र के पाप की प्रवृत्तियों को सदा दबाते रहने से वे ढीली पड़कर प्रजा में से आप से आप, डाल से फल के समान या बंधी रस्सी के समान छूट जाय (अध) और (ते) तेरे हम (प्रियासः स्याम) प्रिय हों । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[८६]

अत्रिर्ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ४, ५ स्वराडुष्णिक् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ६ विराट् पूर्वानुष्टुप् ॥

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे अग्नि, अग्रणी नायक ! और हे इन्द्र, ज्ञान को साक्षात् दिखाने, अज्ञान को भेदने वा दूर भगा देने वाले ! हे अग्ने, पाप को दग्ध करने वाले ! आप दोनों (वाजेषु) संग्रामों में विद्युत् और अग्नि वा सेनापति और नायक के तुल्य ज्ञानों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के अवसरों में (यम् मर्त्यम् अवथ) जिस मनुष्य को रक्षा करते और तृप्त करते हो और अन्नों पर जिसको पालते हो (सः) वह (दृढ़ा चित्) बड़े २ दृढ़ शत्रु सैन्यों को वीर पुरुष के समान, दृढ़, जटिल अवसरों को (प्र भेदति) ऐसे भेदकर पार हो जाता है, जैसे (त्रितः) तीनों वेद विद्याओं में पारंगत पुरुष (द्युम्नाः वाणीः प्र भेदति) यशोजनक, उत्तम ज्ञानप्रकाशक व वेदवाणियों के मर्मों को भेदकर, भली प्रकार जानकर, इस अज्ञान-सागर से पार उतर जाता है ।

या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(या) जो (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (पृतनासु) सेनाओं के बीच सेनापति और नायक के समान (पृतनासु दुस्तरा) मनुष्यों के बीच में रहते हुए, मान-आदर, शक्ति और ज्ञान में लांघे नहीं जा सकते, (या) और जो दोनों (श्रवाय्या) प्रशंसनीय हैं (या च) और जो दोनों (पञ्च) पांचों प्रकार की (चर्षणीः अभि) ज्ञानेन्द्रियों के ऊपर मन और आत्मा के तुल्य प्रजाओं के ऊपर राजा और सचिववत्

हैं (ता इन्द्राग्नी) उन दोनों ऐश्वर्य युक्त और अग्निवत् तेजस्वी समस्त पुरुषों को हम (हवामहे) आदरपूर्वक स्वीकार करते हैं।

तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥

भा०—इन्द्र-अग्नि का स्वरूप दर्शाते हैं। (तयोः) उन दोनों का (शवः) बल और ज्ञान (अमवत्) गृह के समान शरण देने वाला और उन दोनों (मघोनोः) दानयोग्य धन और ज्ञान के स्वामियों की (तिग्मा दिद्युत्) तीक्ष्ण शस्त्र और ज्ञान वाणी होती है, (गभस्त्योः) बाहुओं के समान राष्ट्र वा अधीन शिष्य को ग्रहण करने हारे राजा आचार्य दोनों का (शवः) शक्ति, वाणी रूप बल (द्रुणा) रथ तथा वेग से (गवां वृत्रघ्ने) वाणियों और भूमियों के बाधक शत्रु और अज्ञान के नाश करनेवाले (प्रति आ ईषते) बाधक कारणों का नाश करता है। विद्वान् का ज्ञान और बलवान् राजा का बल दोनों राष्ट्र की दो बाहुओं के समान है वह दोनों का बल क्रम से शत्रु और अज्ञान का नाश करता है। एक द्रुतगामी ज्ञान से दूसरा द्रुतगामी रथ या काष्ठ के बने रथ या धनुष से।

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुविदारक राजन्! और हे अग्ने! ज्ञान से विद्याओं का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुष! हम लोग (वाम्) आप दोनों के (रथानाम्) रथों और रमणीय, ज्ञान रसों के (एषे) प्राप्त करने के लिये-आप दोनों को (हवामहे) हम बुलाते हैं। आप दोनों (तुरस्य) शत्रुनाशक, अज्ञानविघातक सैन्य और ज्ञान के (पती) पालक हैं। और (विद्वांसा) ब्रह्मवेत्ता और राष्ट्र लाभ करने वाले, (गिर्वणस्तमा) उत्तम वाणियों का सेवन करने वाले हो।

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥

भा०—आप (अनु द्यून्) सब दिनों (वृधन्तौ) बढ़ते हुए (देवौ) दानशील तथा तेजस्वी, (अदभा) अहिंसनीय हैं, (अर्हन्ता) स्वयं पूज्य और अन्यों का सत्कार करने वाले, (ता) उन आप दोनों (देवौ) ज्ञान और धनादि सुख के दाताओं को (मर्ताय) मनुष्यों के हित के लिये मैं (अंशा इव) एक ही पदार्थ के दो पूरक भागों के समान (पुरः दधे) अपने समक्ष रखता हूं।

एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ६।३२

भा०—(इन्द्राग्निभ्याम् एव) उन दोनों ऐश्वर्यवान् शत्रुविदारक इन्द्र और अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक क्षत्र और ब्रह्म दोनों से (एव) ही (अद्रिभिः पूतं घृतं न) मेघों से प्राप्त जल तथा (अद्रिभिः पूतं घृतं न) प्रस्तर खण्डों से कुटे छने द्रवित हुए ओषधि रस के समान (हव्यं) खाने योग्य (शूष्यं) बलकारक अन्नवत् ज्ञान और बल प्राप्त होते हैं। (ता) वे दोनों (गृणत्सु सूरिषु) उपदेश करने वाले विद्वानों में (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी श्रवण करने योग्य ज्ञान और यश और अन्न (बृहत् रयिम्) बड़ा भारी धन (दिधृतम्) धारण करें और वे (गृणत्सु इषं दिधृतम्) उपदेष्टा जनों के निमित्त (इषं) प्रबल इच्छा प्रेरणा या शासन बल, अन्न और सैन्य को भी (दिधृतम्) धारण करें। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[८७]

एवयामरुदात्रेय ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ अति जगती। २, ८ स्वराड् जगती। ३, ६, ७ भुरिग् जगती। ४ निचृज्जगती। ५, ९ विराड् जगती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो॑ म॒हे म॒तयो॑ यन्तु॒ विष्ण॑वे म॒रुत्व॑ते गिरि॒जा ए॑व॒याम॑रुत् ।
प्र शर्धा॑य॒ प्रय॑ज्यवे सु॒खाद॑ये त॒वसे॑ भ॒न्दद॑िष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से ॥ १ ॥

भा०—जो (गिरिजाः) वाणी में प्रसिद्ध और (एवया-मरुत्) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों पर जाने और पहुंचाने वाला और वायु के समान बलवान् ज्ञानी पुरुष है उस (महे) महान् (मरुत्वते) मनुष्यों के स्वामी, (विष्णवे) विविध विद्याओं के प्रवाह बहाने वाले, व्यापक सामर्थ्यवान् प्रभु पुरुष के आदर के लिये, उसको प्राप्त करने के लिये (वः) आप लोगों की (मतयः) बुद्धियां (प्र यन्तु) सदा आगे बढ़ें । हे विद्वान् पुरुषो ! (वः मतयः) आप लोगों में से जो मननशील ज्ञानी पुरुष हैं वे भी उक्त स्वामी के प्राप्त करने के लिये प्रयत्नवान् हो । और वे (शर्धाय) बल प्राप्त करने के लिये, (प्र-यज्यवे) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य (सु-खादये) उत्तम रीति से ऐश्वर्यों के भोक्ता, (तवसे) सर्वशक्तिमान् (भन्द-दिष्टये) कल्याणकारी दान, सत्संगादि से युक्त, (धुनि-व्रताय) दुष्टों को कंपा देने वाले कर्म करने में समर्थ है उसके आदरार्थ आप लोगों की बुद्धियां, वा आप में से बुद्धिमान् जन (प्र यन्तु) आगे बढ़ें । (२) परमेश्वर सब जीवों का स्वामी होने से 'मरुत्वान्' है । वेद में प्रसिद्ध होने से 'गिरि-जाः', ज्ञान मार्ग पर जाने वाले जीवों का स्वामी वा प्राणों का प्राण होने से 'एवयामरुत्' है । वह बलमय होने से 'शर्धः' सर्वैश्वर्य दाता होने से 'प्रयज्यु' सर्व जगत् का संहारक होने से 'सुखादि' सब जगत् को अपने कर्म से सञ्चालक होने से 'धुनिव्रत' है । उसकी (शवसे) ज्ञान बलादि प्राप्ति के लिये उपासना करो । उसकी स्तुति करो ।

प्र ये जा॒ता म॑हि॒ना ये च॒ नु स्व॒यं प्र वि॒द्मना॑ ब्रु॒वत॑ एव॒याम॑रुत् ।
क्रत्वा॒ तद्वो॑ मरु॒तो॒ नाधृ॒षे शवो॑ दा॒ना म॒ह्ना तदे॑षा॒मधृ॑ष्टासो॒ नाद्र॑यः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर वा विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो आप लोग (महिना विह्नना जातः) बड़े भारी ज्ञान सामर्थ्य से प्रसिद्ध हैं और (ये च नु स्वयं विह्नना क्रत्वा प्र ब्रुवते) जो स्वयं अपने ज्ञान बल से और कर्म द्वारा भी अन्यों को उत्तम उपदेश करते हैं (तत् वः) उन आप लोगों के (शवः) बल को (एवयामरुत्) मार्गों वा यान साधनों से जाने वाला मैं सामान्य मनुष्य कभी (न आधृषे) तिरस्कार न करूं। हे सामान्य जनो ! आप लोग भी (एषाम्) इन आपके (मह्ना दाना) बड़े भारी विद्यादि दान से (शवः) सदा ज्ञान प्राप्त करके (अधृष्टासः) कभी भी ढीठ, न रहकर विनीत (अद्रयः) मेघ के समान विनम्र होकर अन्यों को धन, ज्ञान आदि देने वाले होवो।

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥ ३ ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष, (बृहतः दिवः) बड़े तेजस्वी सूर्यवत् ज्ञान प्रकाशक गुरु से (शृण्विरे) ज्ञान श्रवण करते हैं और (एव-यामरुत्) शिष्य जनों को ज्ञान मार्ग से ले जाने हारे गुरु की (गिरा) वाणी से ही (सु-शुक्वानः) उत्तम रीति से शुद्ध कान्तियुक्त होकर (सु-भ्वः) उत्तम सामर्थ्यवान्, ज्ञान बीजों के लिये उत्तम भूमिवत् हैं और (येषां सधस्थे) जिनके साथ रहने में (इरी) उनका सञ्चालक गुरु भी (न ईष्टे) कभी इनको भय या त्रास उत्पन्न नहीं करता, वे आप लोग (अग्नयः न) अंग में विनयी, एवं अग्निवत् तेजस्वी, (स्व-विद्युतः) स्वयं विशेष दीप्तियुक्त और (धुनीनाम्) उत्तम वाणियों के, वा (स्पन्द्रासः अथवा स्यन्द्रासः प्र) प्रेरित करने वाले ज्ञान रस को बहाने वाले होवो॥

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्।

यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥ ४ ॥

भा०—सेनापति का वर्णन (सः उरुक्रमः) वह महान् पराक्रमी (एवयामरुत्) गमन साधन रथों से जाने वाले शत्रुमारक, बलवान् पुरुषों का सेनापति (समानस्मात् सदसः) समान, अनुरूप, अपने महागृह से (निश्चक्रमे) निष्क्रमण करता है। वह (शेवृधः) सुख बढ़ाने वाले (विष्पर्धसः) विशेष स्पर्धा से युक्त (विमहसः) विशेष महान् सामर्थ्य वाले पुरुषों को अश्वों के समान (त्मना) अपने बल से (यदा) जब (अधि अयुक्त) उनको अध्यक्ष रूप से नियुक्त करता है तब वह (स्नुभिः) उन अभिषिक्त (नृभिः) नायकों से (जिगाति) विजय प्राप्त करता है। (२) इसी प्रकार बालक निष्क्रमण काल में अपने अल्प प्राणों को वश करे।

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्। येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—वह (अमवान्) बलवान् (एवयामरुत्) पूर्वोक्त वेग से जाने वाले वीर सैनिकों का स्वामी (वृषा) मेघवत् शरवर्षी, वृषभवत् बलवान् प्रबन्धकर्त्ता, (त्वेषः) तेजस्वी, (ययिः) प्रयाणशील, (तविषः) बलवान् होकर (स्वनः) भारी शब्द के समान वा उपदेष्टा के समान हो (रेजयत्) वह आप लोगों को सञ्चालित करे। (येन) जिसके साथ आप लोग (स्व-रोचिषः) स्वयं कान्तिमान् (स्थाः-रश्मानः) स्थिर किरणों के समान वा स्थिर स्वायत्त वागडोर वाले, (हिरण्ययाः) स्वर्णवत् कान्ति युक्त, (सु-आयुधासः) अपने शस्त्रबल धारण करते हुए, (इष्मिणः) धनुष वाणवान् होकर (असहन्त) विजय कर्म करें। (ऋञ्जत) और अपना कार्य सम्पन्न करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ।

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ सन्दृशि स्थन ते नं उरुष्यता निदः
शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृद्ध-शवसः) अति अधिक बढ़े हुए बलशाली ! वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (महिमा) महान् सामर्थ्य (अपारः) अपार है । उसको कोई शत्रु लांघ नहीं सकता । (वः) आप लोगों के (त्वेषं) अति तीक्ष्ण तेज और (शवः) बल की (एवयामरुत्) रथादि से प्रयाण करने वाले मर्द वीरों का स्वामी सदा (अवतु) रक्षा करे और उसको पूर्ण, तृप्त, सुप्रसन्न करता रहे । आप लोग (अग्नयः न) अग्नियों तथा ज्ञानवान् पुरुषों के समान (शुशुक्वांसः) सदा तेजस्वी, कान्तिमान् होकर स्वामी के (प्रसितौ) उत्तम बन्धन और उत्तम नियन्त्रण तथा उसके (संदृशि) सम्यक् प्रकार के निरीक्षण से (स्थातारः) स्थिर रूप से नियत होकर (स्थन) रहा करो । और (ते) वे आप लोग (नः) हमें (निदः) निन्दा करने, निकृष्ट नीति से छेदन भेदन करने वाले, दुःखदायी शत्रु से (उरुष्यत) रक्षा किया करो ।

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥

भा०—(येषाम्) जिन (अद्भुत-एनसाम्) अपराधरहित, निष्पाप जनों के (महः शर्धांसि) बड़े शत्रु हिंसक बल, सैन्य आदि हैं और जिनके (अज्मेषु) संग्रामों के अवसरों पर (दीर्घं) अति दीर्घ, (पृथु) विस्तृत, (पार्थिवम्) पृथिवीमय, वा पृथिवी पर बना हुआ (सद्म) घर है (ते) वे (रुद्रासः) दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने हारे, सज्जनों को उत्तम उपदेश करने हारे वीर और विद्वान् जन (यथा) जिस प्रकार

(सुमखाः) उत्तम यज्ञशील (अग्नयः) अग्नियों के तुल्य (तुविद्युम्नाः) बहुत प्रकाशमान् होकर (एवयामरुत्) रथादि साधनों से जाने वाले वीर पुरुषों तथा ज्ञान मार्गों से जाने वाले विद्वान् पुरुषों की रक्षा करें उसी प्रकार वे भी हमारी रक्षा करें ।

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् । विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् तीव्र वेग से जाने वाले वीरो ! प्रजा-जनो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (अद्वेषः) द्वेषरहित होकर (नः गातुम्) हमारी वाणी को श्रवण करो । हमारी (गातुम् एतन) भूमि को प्राप्त करो । (एवयामरुत्) पूर्वोक्त प्रकार से रथगामी वीरों वाले (जरितुः) उपदेष्टा, आज्ञापक पुरुष के (हवं) आह्वान का (श्रोता) श्रवण करो । हे (समन्यवः) समान ज्ञान और उग्रता, मन्यु क्रोधवान् पुरुषो ! आप लोग (रथ्यः न) रथी योद्धाओं के समान (स-मन्यवः) क्रोध से प्रचण्ड होकर (विष्णोः) व्यापक शक्तिमान् राजा के (महः) बड़े २ (दंसना) कर्मों को करो और (सनुतः) सदा (द्वेषांसि अप युयोतन) द्वेष भावों, शत्रुओं को दूर करो ।

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् । ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥ ३४ ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—हे (यज्ञियाः) यज्ञ, दान आदि सत्कार और सत्संग करने योग्य विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (यज्ञं गन्त) यज्ञ, आदर, सत्कार, सत्संग एवं देवपूजन आदि कर्म के अवसर पर प्राप्त होवो । हे

(एवयामरुत) उत्तम रथों से जाने वाले पुरुषों के स्वामी के (सुशमि) उत्तम कर्म बतलाने वाले, (अरक्षः) विघ्नों से रहित (हवम्) आज्ञा वचन को (श्रोत) श्रवण करो। (यूयं) आप लोग (तस्य प्रचेतसः) उस उत्कृष्ट चित्त और ज्ञान से युक्त पुरुष के (व्योमनि) विविध रक्षाओं से सम्पन्न राज्य में (ज्येष्ठासः) बड़े भाइयों के समान और (पर्वतासः न) मेघ या पर्वत के तुल्य उदार और अचल, सहिष्णु होकर (दुर्धर्त्तवः) दुःखदायी कष्टों को भी सहारते हुए (स्यात) अचल होकर स्थिर रहो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः। इति षष्ठोऽध्यायः। इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति विद्यालंकार मीमांसातीर्थविरुदालंकृतेन श्री पं० जयदेवशर्मणा विरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं मण्डलम्

[१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पंक्तिः । २ स्वराट् पंक्तिः । ५ पंक्तिः । ३, ४, ६, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १० त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् ॥ इति त्रयोदशर्चं मनोतासूक्तम् ॥

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! वीर एवं विद्वन् ! हे अग्रणी ! प्रभो ! (त्वं हि) क्योंकि तू (प्रथमः) सबसे श्रेष्ठ, सबसे प्रथम, अति प्रसिद्ध, (मनोता) ज्ञान और अन्यों के मनों को अपने में बांध लेने वाला, मन के समान अति वेग से जाने में समर्थ है । इसलिये हे (दस्म) दुःखों और अज्ञान के नाशक ! (अस्याः धियः) इस ज्ञान और कर्म का तू (होता) अन्यों को उपदेश करने वाला (अभवः) हो । (त्वं) तू (सीम्) सब प्रकार से हे (वृषन्) बलवन् ! मेघवत् ज्ञान का दान करने हारे ! तू (सहः) सहनशील, बल को और उसको (विश्वस्मै) सब प्रकार के (सहसे) बल पराक्रम को करने और (सहध्यै) विघ्न, बाधा एवं शत्रुजन को पराजित करने के लिये अपने बल को (दुस्तरीतु) अजेय, दुःसाध्य (अकृणोः) बना ।

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२॥

भा०—(अध) और हे विद्वन् ! हे वीर नायक ! हे प्रभो ! तू (यजीयान्) सबसे उत्तम पूज्य, दानी, सत्संगी और (होता)

सबके भक्ति श्रद्धा प्रेम आदि से कहे वचनों, और दिये उपहारों को भी स्वीकार करने हारा होकर (इडः पदे) भूमि को प्राप्त करने के उत्तम पद पर, वाणी के बीच में (नि असीदः) विराजमान है । तू (ईड्यः) सबसे स्तुति करने योग्य होकर (इषयन्) सबको चाहता हुआ, सबको इष्ट प्रदान करता रह । (देवयन्तः नरः तं त्वा) उस तुझ सर्वप्रकाशक दान-शील की कामना करते हुए नायक लोग (चितयन्तः) तेरा ज्ञान लाभ करता हुआ (महो राये) बड़े भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (त्वा अनु ग्मन्) तेरा ही अनुगमन करते हैं ।

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३स्त्वे र॒यिं जा॑गृवांसो॒ अनु॑ ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (त्वे) तेरे अधीन, तुझ में ही रमते हुए, तेरे ही आश्रित (जागृवांसः) तेरे ही निमित्त सदा जागते हुए, सावधान जन (रयिं) दानशील तुझ को ही सर्वस्व जानकर तेरा ही (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं । वे (बहुभिः) बहुत से (वसव्यैः) शिष्यवत् अधीन बसने वाले प्रजावत् पुरुषों सहित (वृता इव यन्तं) सन्मार्ग पर सदा सत्-पथ से जाते हुए का (अनुग्मन्) अनुगमन करते हैं । वे (विश्वहा) सदा ही (रुशन्तः) चमकते हुए (अग्निम्) अग्नि के समान देदीप्यमान (दर्शतं) सबको ज्ञान प्रकाश दर्शाने वाले, स्वयं दर्शनीय (बृहन्तं) महान् (वपावन्तं) बीज पेर कर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति वाले एवं शत्रुवत् विघ्नों की छेदक भेदक शक्ति से सम्पन्न (दीदिवांसं) तेजस्वी पुरुष का अनुगमन करते हैं ।

प॒दं दे॒वस्य॒ नम॑सा॒ व्यन्तः॑ श्रव॒स्यव॒: श्रव॑ आप॒न्नमृ॑क्तम् ।
नामा॑नि चिद्दधिरे य॒ज्ञिया॑नि भ॒द्रायां॑ ते रणयन्त॒ सन्दृ॑ष्टौ ॥४॥

भा०—(देवस्य) समस्त सुखों के देने और समस्त ज्ञानों और

सूर्यादि लोकों को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर के (पदं) ज्ञान करने और (श्रवः) श्रवण करने योग्य स्वरूप को (नमसा) नमस्कार, विनय पूर्वक (व्यन्तः) प्राप्त करते हुए (श्रवस्यवः) श्रवण योग्य ज्ञान के अभिलाषी जन उस (अमृक्तम्) परम पवित्र स्वरूप को (आयन्) प्राप्त करते हैं। वे परमेश्वर के (यज्ञियानि नामानि) यज्ञ अर्थात् उपासना योग्य नाना नामों को (दधिरे) धरते, उसका नाना नामों से स्मरण करते हैं, वे (भद्रायां) सुख और कल्याण करने वाले (सं-दृष्टौ) सम्यक् दृष्टि में विराजते हुए (रणयन्त) अति आनन्द लाभ करते हैं। (२) देव दाता राजा वा स्वामी के पद वा चरण का आदर करते हुए (श्रवस्यवः) अन्न, आजीविका के इच्छुक लोग (अमृक्तं श्रवः) पवित्र अन्न को पाते हैं। वे उसके नाना आदरणीय पूज्य नाम धरते और सुखकारी प्रेममय संदृष्टि रखकर सुखी रहें। परस्पर भेद भाव दुर्दृष्टि न किया करें।

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम्।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ५।३५

भा०—(पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर हे राजन्! हे परमेश्वर! (क्षितयः) बसने वाले जीव और प्रजागण! (त्वा वर्धन्ति) तुझे ही बढ़ाते हैं। तेरे ही यश की वृद्धि करते हैं। (रायः त्वा) समस्त ऐश्वर्य भी तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा ही गौरव बतलाते हैं। (जनानां उभयासः) मनुष्यों में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों वर्ग भी तुझे ही बढ़ाते हैं, तेरा ही यशोगान करते हैं। तू ही (सदम् इत्) सदा ही वा आश्रय गृह के समान (मनुष्याणां त्राता) मनुष्यों का रक्षक और (तरणे) संसार-सागर को पार करने के निमित्त (चेत्यः) उत्तम दान देने हारा, (भूः) है। और तू ही (पिता माता) पिता माता के तुल्य पालक और उत्पादक है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान् विद्वान् नेता आचार्य और प्रभु, परमेश्वर (सपर्येण्यः) सदा पूजा, उपासना, सत्कार, सेवा करने योग्य है । वह (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (होता) ज्ञान और सुखों का देने वाला और (यजीयान्) दान, सत्संग, मैत्रीभाव आदि करने में सबसे श्रेष्ठ होकर (नि ससाद) विराजता है । वह (मन्द्रः) स्तुत्य और आनन्दप्रद है । हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! (तं) उस (दीदिवांसं) देदीप्यमान अग्निवत् स्वयं प्रकाश तेजस्वी (त्वां) आप को (दमे) घर में वा इन्द्रियों के दमन करने वा प्रजाशासन के निमित्त (ज्ञु-बाधः) घुटने मोड़कर (नमसा) विनयपूर्वक नमस्कार करते हुए (उप सदेम) समीप बैठें, तेरी उपासना करें ।

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वयंप्रकाश ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! नेतः ! (वयं) हम लोग (सुम्नायवः) आपना सुख चाहते हुए और (देवयन्तः) तुझे चाहते हुए (सुध्यः) उत्तम सद्बुद्धि वाले होकर (त्वा ईमहे) तुझे प्राप्त करते, तुझ से (दिवः ईमहे) अपनी २ कामनाएं याचना करते हैं । (त्वं) तू (बृहता रोचनेन) बड़े भारी प्रकाश से सूर्य के समान (दीद्यानः) चमकता हुआ (विशः) समस्त प्रजाओं की (दिवः) नाना प्रकाशों के समान उनकी समस्त कामनाओं को (अनयः) प्राप्त कराता है, हमें भी प्राप्त करा ।

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८ ॥

भा०—हम लोग (शश्वतीनां) सदा विद्यमान, स्थायी जीवों वा (विशां विश्पतिं) समस्त प्रजाओं के बीच में प्रजाओं के पालक प्रजापति और (चर्षणीनां) समस्त ज्ञानदर्शी, विद्वान् मनुष्यों के बीच (वृषभं) सुखों की वर्षा करने वाले, सर्व-श्रेष्ठ, मेघवत् उदार, बलवान् (नितोशनं) समस्त दुःखों और बाधक शत्रुओं के नाशने वाले (प्रेति-इषणिम्) प्राप्त पदार्थों के देने और चाहने वाले, अथवा (प्र-इति-इषणं) उत्तम पद को प्राप्त करने की सदा इच्छा करने और अन्यों को प्रेरणा करने वाले (इषयन्तं) और अन्यों को उद्देश्य तक पहुंचा देने वाले, वा अन्नवत् पुष्ट करने वाले, (पावकं) परम पावन, (राजन्तम्) राजा के समान तेजस्वी देदीप्यमान (रयीणां) नाना ऐश्वर्यों, बलों और भोग्य सुखों के (यजतं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् नायक विद्वान्, प्रभु को हम सदा (ईमहे) प्राप्त हों और उसी की प्रार्थना, उपासना करें ।

सो अ॑ग्न ईजे शशमे च॒ मर्तो॒ यस्त॒ आन॑ट् स॒मिधा॑ ह॒व्यदा॑तिम् ।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ नमो॑भि॒र्विश्वेत्स वा॒मा द॑धते॒ त्वोतः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् प्रभो ! (यः) जो पुरुष (ते) तेरी (समिधा) समिधा सहित अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार देदीप्यमान, तेरे गुणों को प्रकाशित करने वाली स्तुति से (हव्य-दातिम्) अन्नादि दान क्रिया के तुल्य उत्तम वचन प्रदान (आनट्) करता है (सः) वह (ईजे) यज्ञ करता है, तेरा सत्संग करता है (सः शशये) वह तेरी स्तुति प्रार्थना करता है वह शान्ति लाभ करता है । और (यः) जो (नमोभिः) नमस्कारों सहित तेरे निमित्त (आहुतिं परिवेद) सब प्रकार के दान देता वा (नमोभिः) विनय सत्कारों सहित (ते आहुतिं परि वेद) तेरे नाम की पुकार करता है (सः इत्) वह भी (त्वा-उतः) तेरे से सुरक्षित रहकर (विश्वा वामा) समस्त उत्तम ऐश्वर्य (दधते) धारण करता है ।

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम॥१०॥

भा०—(नमोभिः, समिधा हव्यैः) जिस प्रकार अग्नि को अन्नों, समिधाओं और हवन योग्य पदार्थों से अग्निहोत्र क्रिया की जाती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! हम लोग (अस्मै) इस (महे) महान्, गुणों से पूज्य (ते) तेरी (नमोभिः) उत्तम अन्नों, नमस्कारों और विनयपूर्वक सत्कारों से (समिधा) अच्छी प्रकार से चमकने वाली विद्या (उत) और (हव्यैः) उत्तम अन्नों, वचनों से (महि विधेम) बड़ा भारी सत्कार किया करें। और (वेदी) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली इस भूमि में हे (सहसः सूनो) शत्रुपराभवकारी सैन्यबल के सञ्चालक राजन् ! विद्वन् ! हम लोग (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) उत्तम उपदेशों द्वारा प्रेरित होकर (ते) तेरी प्रदान की (भद्रायां सुमतौ) कल्याणकारिणी शुभमति के अधीन रहकर सदा (आ यतेम) सर्वत्र प्रयत्न करते रहें।

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥

भा०—(यः) जो प्रभु (रोदसी) आकाशस्थ समस्त पिण्डों और इस पृथिवी को (भासा) अपने प्रकाश से (आ वि ततन्थ) सब ओर विविध प्रकारों से व्याप रहा है और उनको विविध २ प्रकार का बनाता है जो (श्रवोभिः) गुरुजनों द्वारा श्रवण करने योग्य ज्ञानमय वेदवचनों द्वारा (श्रवस्यः) श्रवण करने योग्य है, जो (बृहद्भिः वाजैः) बड़े ज्ञानों, बलों और ऐश्वर्यों से (तरुत्रः) संसार के संकटों से पार उतारने वाला है वह (स्थविरेभिः) ज्ञान और अनुभव में वृद्ध पुरुषों और (रेवद्भिः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों द्वारा हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! (अस्मे) हमारे

लिये (वि तरं) विशेष रूप से (वि भाहि) प्रकाशित हो । और (वितरं वि भाहि) हमें विशेष रूप से पार होने का उत्तम उपाय प्रकाशित कर। (२) राजा अपने विशेष तेज से राजा प्रजावर्ग दोनों को या सेनापति रूप दुष्टनाशक की सेनाओं को विशेष रूप से फैलाता है, कीर्त्ति से प्रसिद्ध शत्रुहिंसक, बहुत से अन्नों वा बलवान् बूढ़ों और लखपतियों से हमें चमकाता है वही अग्निवत् मुख्य पद पाने योग्य है ।

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

भा०—हे (वसो) जगत् को बसाने हारे प्रभो ! राष्ट्र, नगरादि के बसाने हारे राजन् ! (अस्मे तोकाय तनयाय) हमारे पुत्र पौत्र के लिये और (नृवत् सदम्) मनुष्यों, भृत्यों से युक्त घर, उत्तम नायकों से युक्त राजसभा को (धेहि) प्रदान कर और (अस्मे) हमें (भूरि पश्वः धेहि) बहुत से पशु प्रदान कर । और (अस्मे) हमें (पूर्वीः इषः) समृद्ध, अन्न, (बृहतीः इषः) बड़ी २ कामनाएं और बड़ी २ सेनाएं जो (आरे-अघाः) पापों और पापियों को दूर भगादें, प्राप्त हों (अस्मे) हमारे (भद्रा) सुखदायक, कल्याणजनक (सौश्रवसानि) उत्तम अन्न, ज्ञान और कीर्त्तियुक्त ऐश्वर्य (सन्तु) हों ।

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे १३।३६।४॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! प्रभो ! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (पुरूणि वसूनि) ऐश्वर्य बहुत प्रकार के हैं । इसी कारण (ते वसुता) तेरा राष्ट्र को बसा देने वाला सामर्थ्य और तेरा स्वामित्व भी (पुरुधा) बहुत से प्रजाजनों को धारण पोषण करने में समर्थ है । इसलिये मैं प्रजाजन (ते) तेरे ऐश्वर्यों का (अश्या-

-म्) भोग करूं। हे (पुरुवार) बहुत से वरणीय धनों के स्वामिन् ! बहुतों से वरण करने योग्य, बहुत से दुष्टों को वारण करने में समर्थ ! (त्वे हि) तुझ अकेले के अधीन ही (पुरूणि) बहुत से (वसूनि) ऐश्वर्य (सन्ति) हैं। (त्वे राजनि) तुझ राजा के अधीन रहकर हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (विधते) विविध उत्तम शिल्प रचने और विधान बनाने वा विधान की यथार्थ रचना और पालन करने, कराने वाले पुरुष के लिये ही (ते वसु) तेरा समस्त धन या बसा हुआ ऐश्वर्य हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

[२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९ भुरिगुष्णिक् । २ स्वराडुष्णिक् । ७ निचृदुष्णिक् । ८ उष्णिक् । ३, ४ अनुष्टुप् । ५, ६, १० निचृदनुष्टुप् । ११ भुरिगतिजगती ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ! जिस प्रकार (क्षैतवत्) पृथिवी (यशः पत्यते) अन्न ऐश्वर्य को खूब बढ़ाती है, उसी प्रकार तू भी (यशः पत्यसे) अन्न और यश का पतिवत् स्वामी हो, अथवा (क्षैतवत् यशः पत्यसे) भूमि में उत्पन्न अन्न और तद्वत् भूमि में प्राप्त यश कीर्त्ति से भी (पत्यसे) समृद्ध हो। तू (मित्रः न) स्नेही मित्र के समान और मरण से बचाने वाले जल वा सूर्य के समान (यशः पत्यसे) अन्न और तेज का स्वामी हो। हे (विचर्षणे) विशेष रूप से राष्ट्र को या ज्ञान को देखने हारे ! (त्वं) तू (श्रवः) अन्न और ज्ञान को (पुष्टिं न) शरीर पोषक अन्न वा पशु सम्पदा के समान ही (पुष्यसि) पुष्ट किया कर। (२) हे (विश्वचर्षणे वसो) सबके द्रष्टा

सब में बसे अन्तर्यामिन् ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (क्षैतवत् यशः) पार्थिव अन्न के समान ही (मित्रः न) मित्रवत् सूर्यवत् पालक है । तू हमारे ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ा ।

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! (चर्षणयः) समस्त मनुष्य (यज्ञेभिः) यज्ञों से, और (गीर्भिः) वाणियों से, (त्वां हि ईडते स्म) तेरी ही स्तुति करते और तुझे चाहते हैं । (अवृकः) चोरी कुटिलता आदि से रहित (वाजी) वेगवान्, बलवान्, ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् प्रजाजन (त्वां) तुझे (याति) प्राप्त होता है । तू (रजस्तूः) समस्त लोकों का प्रेरक और (विश्वचर्षणिः) समस्त विश्व का द्रष्टा है ।

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३ ॥

भा०—विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (दिवः नरः) नाना कामनाएं वा आशाएं करने वाले जन और ज्ञान प्रकाश, व्यवहार और विजिगीषा आदि के प्रमुख नायक, जन (सजोषः) समान प्रीति से युक्त होकर (यज्ञस्य केतुम्) परस्पर संगति और मान सत्कार के ज्ञापक (त्वा) तुझको ही यज्ञ के ध्वजा रूप अग्नि के तुल्य (इन्धते) बराबर प्रदीप्त करते हैं तुझे ही त्यागों से बढ़ाते हैं । (यत् ह) क्योंकि (स्यः मानुषः जनः) वह मननशील मनुष्यगण, (सुम्नायुः) सुख की कामना करता हुआ (अध्वरे) हिंसा आदि दोषों से रहित यज्ञ उपासनादि कर्म में, (जुह्वे) तेरे प्रति अपने को प्रदान करता और (त्वा जुह्वे) तुझे पुकारता, और स्वीकार करता है । स-जोषसः । त्वा । इति पदपाठः ॥

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४ ॥

भा०—(यः मर्तः) जो मनुष्य (सुदानवे) उत्तम दानशील (ते) तेरे निमित्त स्वयं (ऋधत्) समृद्ध हो और (धिया) बुद्धि, ज्ञान और कर्म से (ते शशमते) तेरी ही स्तुति करता और तेरे लिये ही स्वयं शान्ति धारण करता है। हे प्रभो ! स्वामिन् ! (सः) वह (ऊती) तेरी रक्षा, और तेरे दिये ज्ञान सामर्थ्य से (बृहतः) बड़ी २ (दिवः) कामनाओं को, (बृहतः दिवः) बड़े २ लोकों को और (बृहतः दिवः) बड़े २ सूर्यों को और (द्विषः) शत्रुओं को भी (अंहः न) पाप के समान (तरति) पार कर जाता है, उनसे कहीं आगे बढ़ जाता है।

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत्।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! हे अग्निवत् देह को चेतन करने हारे आत्मन् ! (समिधा) काष्ठ सहित (आहुतिं) आहुति अग्नि में दी जाती है और वह बढ़ता है उसी प्रकार (यः मर्त्यः) जो मरणधर्मा मनुष्य (ते) तेरे लिये (समिधा) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने वाले जल वायु के साथ २ (आहुतिम्) आदर श्रद्धा पूर्वक खाने योग्य अन्न, आदि और (आहुतिं) आदर पूर्वक वचन, स्तुति आदि (निशितं) खूब सूक्ष्म, और प्रभावजनक रूप से (नशत्) प्रदान कराता है। (सः) वह (वयावन्तं क्षयम्) शाखा वाले वृक्ष के प्राप्त कर चरणादि से युक्त इस देह को, (शतायुषम्) सौ वर्ष तक (पुष्यति) पुष्ट कर लेता है अर्थात् पूर्ण जीवन जी लेता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६ ॥

भा०—(धूमः दिवि) जिस प्रकार अग्नि का धूम और (त्वेषः) प्रकाश आकाश में फैलता है उसी प्रकार हे (पावक) अग्नि के समान

राष्ट्र को, देह को और चित्तों को पवित्र करने हारे राजन् ! आत्मन् ! परमात्मन् ! (ते) तेरा (शुक्रः) अति शुद्ध, कान्तिमय, (त्वेषः) तीक्ष्ण तेज, प्रताप और (धूमः) शत्रुओं, रोगों और पापों को कंपा देने वा दूर करने वाला सामर्थ्य (दिवि) भूमि राजसभा और मनो कामना में (ऋण्वति) व्यापता है और (त्वं) तू स्वयं (शुक्रः) कान्तिमान् (आततः) सर्वत्र व्यापक, (सूरः न) सूर्य के समान (द्युता) कान्ति से और (कृपा) कर्म सामर्थ्य से वा करुणा से (रोचसे हि) प्रकाशित होता और सबके चित्तों को अच्छा प्रतीत होता है ! सब तुझे तेरी कान्ति और कृपा के कारण चाहते हैं ।

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (अधा हि) तू निश्चय से (विक्षु) समस्त प्रजाओं में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य और (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सबको अतिक्रमण करके स्थित, सर्वोपरि और (नः प्रियः) हमारा प्यारा (असि) है । तू (पुरि इव जूर्यः) नगरी में रहने वाले वृद्ध, हितोपदेष्टा पुरुष के समान वा (रण्वः) रण-कुशल राजा के समान वा (सुनुः न) गृह में विद्यमान पुत्र के समान (रण्वः) रमणीय, सुखप्रद, (जूर्यः) हितोपदेष्टा, और (सूनुः) सबका प्रेरक और (त्रययाय्यः) तीनों लोकों में व्यापक है । वृद्ध पुरुष तीनों आश्रमों वा बाल्य, यौवन, वार्धक्य तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होने से 'त्रययाय्य' है । राजा मित्र, शत्रु, उदासीन वा आगे, पीछे और मध्य में आक्रमण करने वाले तीनों पर प्रयाण करने में समर्थ होने से 'त्रययाय्य' है । पुत्र माता आचार्य और यज्ञ वेदी तीनों में जन्म लाभ करने से 'त्रययाय्य' है, विद्वान् विद्या, तप, और कर्म वा तीनों वेदों में निष्ठ होने से 'त्रययाय्य' है ।

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (क्रत्वा द्रोणे अज्यसे) अग्नि संघर्षण की क्रियासे वा यज्ञ कर्म से वृक्ष के विकार रूप अरणी काष्ठ में वा कुण्डपात्र में प्रकट होता है उसीप्रकार हे विद्वन्! राजन्! आत्मन्! परमेश्वर! तू भी (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से (द्रोणे) जाने योग्य सन्मार्ग में राष्ट्र में और समस्त विश्व में (अज्यसे) प्रकाशित होता है । तू (वाजी न) वेगवान् अश्व के समान (कृत्व्यः) समस्त कर्मों का करने हारा है । तू (परिज्मा इव) सब तरफ जाने वाले वायु के समान (स्वधा) जीवन देने वाला, ऐश्वर्य का पोषक, धारक, तू (गयः) प्राणवत्, गृहवत्, (अत्यः न) वेगवान् अश्ववत् व्यापक, सर्वातिशायी और (शिशुः) बालक के समान शुद्ध पवित्र और प्रशस्ताचरणवान् एवं (ह्वार्यः) कुटिल पुरुषों का नाश करने वाला है । जीव स्वयं देह का धारक होने से 'स्वधा' है ।

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! विद्वन्! प्रभो! परमेश्वर! (यवसे पशुः न) घास के निमित्त पशु के समान बुभुक्षित सा होकर (अच्युता त्या चित्) कभी च्युत न होने वाले उन समस्त लोकों को भी वृक्षों को अग्निवत् प्रलयकाल में ग्रस लेता है । और जिस प्रकार (शिक्वसः) दीप्तियुक्त अग्नि के (धामा वना वृश्चन्ति) तेज ज्वालाएं वनों को भस्म कर देती हैं उसी प्रकार हे (अजर) अविनाशी! प्रभो! (शिक्वसः) प्रकाशमान, शक्तिशाली (ते) तेरे (यत् धामा) जो तेज, और धारण सामर्थ्य हैं वे (वना) भोगने योग्य समस्त लोकों का (वृश्चन्ति) विनाश कर देते हैं । (२) इसी प्रकार तेजस्वी राजा के धारक सैन्यादि बल शत्रु के सैन्यों को काट गिराते हैं ।

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तू (अध्वरीयताम् विशाम्) यज्ञ करने वाले प्रजाओं के (दमे) गृह में (होता) विद्वान् होता के समान दाता होकर (वेषि) प्रकाशित हो । (विश्पते) प्रजा के पालक ! तू उनको (समृधः कृणु) समृद्ध कर । और हे (अङ्गिरः) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (हव्यम्) अन्न आहुतिवत् ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और अन्न आदि पदार्थ और स्तुत्य वचन को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर ।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ११ ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेहवान् मित्रों का आदर करने वाले ! हे (देव) दानशील ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (देवान् नः) हम कामनायुक्त अर्थियों को (रोदस्योः) माता पिता के समान जनों का (सुमतिं) शुभ ज्ञान हमें (वोचः) उपदेश कर । तू (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि, उत्तम निवास स्थान को (स्वस्ति) सुखपूर्वक (वीहि) प्राप्त कर, प्रकाशित कर । तू (दिवः नॄन्) कामनायुक्त पुरुषों को प्राप्त कर । (द्विषः, अंहांसि) शत्रुओं को, और पापों को और (दुरिता) बुरे कर्मों को भी हम (तरेम) पार करें । (तव अवसा) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (ता) उनको (तरेम) तर जावें और (तरेम) सदा तर जाया करें । राजा सूर्यवत् तेजस्वी होने से वा मित्रों का आदर करने से 'मित्रमहाः' है । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (सः) वह (ऋतपाः) सत्य का पालक, धर्मात्मा (ऋते-जाः) सत्य ज्ञान में जन्म लाभ करने वाला, (देवयुः) शुभ गुणों और उत्तम विद्वानों की कामना करने वाला पुरुष (क्षेषत्) दीर्घ जीवन प्राप्त करता, इस लोक में रहता और (ते ज्योतिः नशते) तेरे परम ज्ञानमय प्रकाश को प्राप्त करता है। हे (देव) राजन् ! प्रभो ! (यं) जिस (मर्त्तम्) मनुष्य को (सजोषाः) प्रेम से युक्त (वरुणः) सब दुःखों का वारक, सर्वश्रेष्ठ (त्वं) तू (मित्रेण) स्नेहवान् मित्र सहित (त्यजसा) दान से (पासि) पालन करता और (अंहः) पाप नाशक करता है वही परम ज्योति लाभ करता है।

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ २ ॥

भा०—जो पुरुष (यज्ञेभिः) दान, देवपूजन और सत्संगों से (ईजे) यज्ञ करता है, (शमीभिः शशमे) उत्तम कर्मों से अपने को शान्त करता है वा उत्तम शान्तिजनक उपायों और स्तुतियों से अपने को शान्त करता या प्रभु की स्तुति करता है और जो (ऋधद्वाराय) सम्पन्न, समृद्ध करने वाले धनों और व्यवहारों से युक्त (अग्नये) ज्ञानवान् पुरुष के हित के लिये (ददाश) अग्नि में आहुति के तुल्य ही दान करता है (एव चन) इस प्रकार निश्चय से (तं) उसको (यशसाम् अजुष्टिः) यशों और अन्नों का अभाव (न नशते) प्राप्त नहीं होता, (तं मर्त्त) उस मनुष्य को (अंहः न नशते) पाप भी स्पर्श नहीं करता और उसको (प्रदृप्तिः न नशते) भारी दर्प, घमण्ड वा मोह भी नहीं होता। अथवा अन्नों की कमी, पाप वा दर्प आदि उसे नष्ट नहीं कर सकते।

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥३॥

भा०—(यस्य) जिसका (दृशतिः) दर्शन, सत्य ज्ञान वा दृष्टि (सूरः न) सूर्य के समान सत्य अर्थ को प्रकाशित करने वाली (अरेपाः) पापों से रहित (भीमा) असज्जनों को भय देने वाली है । और (यत्) (शुचतः) अग्नि के समान चमकते हुए जिसको (धीः) उत्तम बुद्धि और कर्म (आ एति) सब ओर से प्राप्त होता है, (अक्तोः) सब पदार्थों को स्पष्ट कर देने वाले और (शुरुधः न) अन्धकार के नाशक तेजस्वी सूर्य के समान ही उस (हेषस्वतः) गंभीर गर्जनावत् वाणी बोलने हारे (ते) तुझ उपदेष्टा का (कुत्रचित्) कहीं भी हो वहां ही (रण्वः) अति रमण योग्य (वनेजाः) काष्ठ में अग्निवत्, किरणों में सूर्यवत् ही उत्तम सेवने योग्य ऐश्वर्य वा शान्तिदायक वन में उत्पन्न (वसतिः) निवास होता है ।

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य) इस विद्वान् वा राजा का (एम) ज्ञान और मार्ग (तिग्मं चित्) सूर्य के प्रकाश के समान अतितीक्ष्ण हो और (वर्णः महि) रूप, आकार महान् विशाल और (भसत्) चमकने वाला, तेजस्वी हो, वह स्वयं (अश्वः न) वेगवान् अश्व के समान (आसा) मुख से (यमसानः) यम अर्थात् संयम का सेवन करनेवाला वाचंयम तथा मिताहारी, निर्लोभ हो, वह (परशुः न) फरसे के समान अज्ञान के नाश करने में (जिह्वां) अपनी तीक्ष्ण वाणी का धार के समान (वि-जेहमानः) विविध प्रकार से प्रयोग करता हुआ (द्रविः न) ताप से धातु गला कर शोधने वाले स्वर्णकार के समान (द्रावयति) समस्त मलों वा शत्रुओं को पिघला कर दूर कर देता है, वह ही अग्नि के समान (दारु) काष्ठवत् अपना छेदन

भेदन करने वालों के सैन्य वा भय मोहादि जनक वा हृदयविदारक शोकादि को भी (धक्षत्) भस्म कर देता है।

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतियो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(असिष्यन् अस्ता इव) जिस प्रकार वाण फेंकने वाला धनुर्धर वाण धनुष में लगाकर शत्रु के प्रति फेंकता है उसी प्रकार (सः इत्) वह विद्वान् भी (असिष्यन्) बन्धन में बंधता हुआ (प्रति धात्) उसको सामर्थ्य पूर्वक सहे और प्रतिकार करे। जिस प्रकार शिल्पी (अयसः धारां शिशीते) लोहे की धार को तेज़ करता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (धाराम्) वाणी को (शिशीत) तीक्ष्ण करे, वा वार २ अभ्यास से तीव्र, कुशलवचन बनावे। (यः) जो (अरतिः) आगे जाने वाला, वा कहीं एक स्थान पर भी आसक्त न होकर असंग हो, वह (चित्र-ध्रजतिः) अद्भुत वेगवान् गति वाला होकर (अक्तोः) रात्रि काल में (द्रुसद्वा वेः न) वृक्ष पर विराजने वाले पक्षी के समान (रघु-पत्म-जंहाः) लघु तुच्छ २ पदार्थ के प्रति गिरने के व्यसन को छोड़ देता है अथवा वह (अक्तोः वेः न) रात्रि के प्रकाशक सूर्य के तुल्य, तेजस्वी होकर (द्रुसद्वा) रथ से जाने वाले, रथवान् पुरुष के समान (रघु-पत्म-जंहाः) वेग से सुदूर मार्गों को जाने में समर्थ होता है। इति तृतीयो वर्गः॥

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (अरुषः) रोष रहित होकर भी (दिवानक्तं) रात दिन (ईम्) इस जगत् को सूर्यवत् सन्मार्ग पर चलाता, जो (अमर्त्यः) असाधारण मनुष्य होकर (नॄन्) मनुष्यों का शासन करता है, और जो (अरुषः) मर्म स्थानों पर वश करके, (दिवा) तेज, ज्ञान

प्रकाश से (नॄन्) मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाता है (सः) वह पुरुष ही (रेभः न) सूर्यवत् उत्तम ज्ञानों का उपदेष्टा, स्वयं पूज्य होकर भी अन्यों का सत्कार करने वाला होकर (उस्राः प्रति वस्ते) किरणों के तुल्य स्वयं ऊपर को निकलने वाली वाणियों को धारण करता है, और वह (स्मित्र-महाः) मित्रों, स्नेही जनों का आदर करने हारा (शोचिषा) अग्नि के समान दीप्ति युक्त वाणी से ही (रारपीति) उत्तम उपदेश किया करता है ।

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

भा०—(दिवः न) तेजस्वी सूर्य के समान (विधतः) विधान करते हुए, कर्म करते हुए या उपदेश करते हुए (यस्य) जिसके (नवी-नोत्) उत्तम उपदेश ध्वनित होता है, और जो स्वयं (वृषा) वर्षणशील मेघ के तुल्य (रुक्षः) कान्तिमान् वा उन्नत पद पर आरूढ़ होकर (ओ-षधीषु) वनस्पतियों के तुल्य प्रजाओं और सेनाओं पर (नूनोत्) आज्ञा वा शासन करता है । और (यः) जो (घृणा) दीप्ति और (ध्रजसा) वेग से युक्त होकर (पत्मना) उत्तम मार्ग से (यन्) जाता हुआ (वसुना) ऐश्वर्य से (सु-पत्नी) सुख से राष्ट्र का पालन करने वाले, (रोदसी) शत्रुओं को रुलाने वाले, सेनापति और सैन्य दोनों को उत्तम पुत्रादि के पालक पति पत्नी के समान ही (दम्) दमन करता वा दानशील होकर पुष्ट करता है ।

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥४॥

भा०—(यः) जो (विद्युत् न) विशेष कान्तियुक्त सूर्य या विजुली के समान (अर्कैः) अर्चना करने योग्य, मान सत्कार के पात्र, (युज्येभिः) कार्यों में नियुक्त करने योग्य, (धायोभिः) कार्यभारों को उत्तम

रीति से धारण करने वाले अधीनस्थ पुरुषों से किरणों के समान और (स्वेभिः) अपने (शुष्मैः) शत्रुशोषक बली और सैन्यों से (दविद्योत) निरन्तर चमका करता है, और (यः) जो (मरुताम्) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषों के (शर्धः) सैन्य वा बल को (ततक्ष) तैय्यार करता है वह (ऋभुः न) बहुत अधिक तेज से चमकने वाले, महान् सूर्य के समान (त्वेषः) तीक्ष्ण कान्ति से युक्त (रभसानः) वेगवान्, कार्यकुशल होकर (अद्यौत्) चमकता है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३, ४ निचृत् पंक्तिः । ८ पंक्तिः । अष्टर्चं सूक्तम् ।

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मनुषः) मननशील विद्वान् मनुष्य (यज्ञेभिः) यज्ञों से (देवताता) विद्वानों द्वारा करने योग्य यज्ञ के अवसर पर (यजाति) यज्ञ करता, यथायोग्य सत्कार, दान आदि करता है । हे (होतः) दान देने वाले ! हे (सहसः सूनो) शत्रु पराभवकारी सैन्य बल के सञ्चालक सेनापते बल के देने वाले ! हे (अग्ने) विद्वन् अग्र नायक ! हे प्रभो ! तू भी (एव) उसी प्रकार (अद्य) आज (देवान्) धनैश्वर्यादि कामना करने वाले (उशतः) तुझे चाहते हुए (समानान्) पदाधिकार में समान बलवीर्य वाले, वा मन सहित रहने वाले (नः) हम लोगों को (समना) संग्राम वा यज्ञादि के अवसर पर (यक्षि) उत्तम वेतन सुख ऐश्वर्यादि देता और संगत कर हमें सुप्रबद्ध करता है, तू ही हमारा नायक होने योग्य है ।

स नो॑ वि॒भावा॑ च॒क्षणि॒र्न वस्तो॑र॒ग्निर्व॒न्दारु॒ वेद्य॒श्चनो॑ धात् ।
वि॒श्वायु॒र्यो अ॒मृतो॒ मर्त्ये॑षूष॒र्भुद्भू॒दति॑थिर्जा॒तवे॑दाः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वायुः) सबको जीवन देने वाला, (अमृतः) अमरणधर्मा, मृत्युरहित, निर्भय, (मर्त्येषु) मरणशील, मनुष्यों जीवों के बीच में (अतिथिः) अतिथि के समान पूज्य, सर्वव्यापक (जात-वेदाः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का उत्पादक, समस्त उत्पन्न पदार्थों का ज्ञाता है (सः) वह (विभावा) विशेष कान्ति से युक्त (चक्षणिः) सबका द्रष्टा (अग्निः) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश (वेद्यः) बुद्धि वा ज्ञान से जानने योग्य वा शरणयोग्य प्रभु, स्वामी और विद्वान् (वस्तोः) वसने के निमित्त, सब दिन (नः) हमें (वन्दारु) उत्तम स्तुति करने योग्य (चनः) अन्न और ज्ञान (धात्) देवे ।

द्यावो॒ न यस्य॑ प॒नय॒न्त्यभ्वं॒ भासां॑सि वस्ते॒ सूर्यो॒ न शु॒क्रः ।
वि य इ॒नोत्य॒जरः॑ पाव॒कोऽश्न॑स्य चिच्छिश्नथत्पू॒र्व्याणि॑ ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य) जिस परमेश्वर के (अभ्वं) महान् सामर्थ्य को (द्यावः न) ये समस्त चमकने वाले सूर्य, नक्षत्र आदि गण, किरणों के समान (पनयन्ति) स्तुति करते हैं और जो (सूर्यः न) सूर्य के समान (शुक्रः) कान्तिमान् स्वयं तेजःस्वरूप होकर (भासांसि) समस्त ज्योतियों को (वस्ते) आच्छादित या वस्त्रों को पुरुष के समान धारण करता है । (यः) जो (अजरः) जरा मरणादि से रहित (पावकः) सबको पवित्र करने वाला, अग्निवत् तेजस्वी, परम पावन होकर (वि इनोति) विविध प्रकार से व्यापता है, वह ही अग्नि जिस प्रकार (अश्नस्य पूर्व्याणि शिश्नथत्) भोजन के दृढ़ रूपों को शिथिल कर देता है उसी प्रकार वह परमेश्वर (अश्नस्य) भोक्ता जीव के भोग्य कर्म फलादि के (पूर्व्याणि) पूर्व के किये कर्म बन्धनों को (शिश्नथत्) शिथिल कर देता है ।

वृन्द्रा हि सूनो अस्यंद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सूनो) समस्त जगत् उत्पादक और सञ्चालक ! तू (वन्द्रा) वन्दना करने योग्य और सब मनुष्यों को उपदेश करने हारा (असि) है। तू ही (अद्मसद्वा) समस्त भोगने योग्य कर्म फलों पर अधिष्टातृ रूप से भोजनों में अग्नि के तुल्य स्वादप्रद होकर विराजता है। तू ही (अग्निः) सर्वप्रकाशक होकर (जनुषा) जन्म द्वारा (अज्म) प्राप्त करने योग्य (अन्नं) अन्नवत् भोग्य फल को (चक्रे) जीवों के लिये बनाता है। (सः) वह (त्वं) तू (ऊर्जसनः) अन्नों बलों का देने हारा होकर (नः) हमें सब प्रकार के (ऊर्जं) अन्न (धाः) प्रदान कर। और तू (राजा इव) राजा के समान (जेः) विजय कर, (अवृके अन्तः) भेड़िये के समान चोर, क्रूर पुरुषों से रहित निर्विघ्न राष्ट्र में बसने वाले राजा के समान ही तू (अवृके अन्तः) चोरी, कुटिलतादि से रहित अन्तःकरण में (क्षेषि) निवास किया कर।

नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥५॥५॥

भा०—(यः) जो राजा (वारणम्) शत्रुओं को दूर भगा देने में समर्थ सैन्य बल को (नितिक्ति) खूब तीक्ष्ण बनाये रखता है। और (अन्नम्) भोग्य ऐश्वर्य का अन्न के समान (अत्ति) भोग करता है या जो (नितिक्ति) खूब तीव्र, बलदायक (वारणं) उत्तम रोगनाशक अन्न खाता है जो (राष्ट्री) राष्ट्र का स्वामी (वायुः न) वायु के समान बलवान् होकर (अक्तून्) सब दिनों वा रात्रियों का सूर्य के समान समस्त तेजस्वी पुरुषों को (अति एति) अतिक्रमण कर जाता है। हे नायक, प्रभो ! (यः) जो तू वेगवान् अश्व के समान वक्र या विनम्र होकर (परिह्रुत्) सर्वत्र वक्र गति से गमन करता है उस (आदिशाम्)

चौदिशों (पततः ते) प्रयाण करते हुए तेरे (अरातीः) शत्रुओं को हम (तुर्याम) विनाश करें। या तेरे चारों दिशाओं में स्थित शत्रुओं का नाश करें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ६

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! जिस प्रकार (सूर्यः भानुमद्भिः अर्कैः) सूर्य प्रकाशयुक्त होकर (भासा रोदसी वि ततन्थ) दीप्ति से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है और (पत्मन् अक्तः दीयन् शोचिषा तमांसि परि नयत्) आकाश मार्ग से गमन करता हुआ प्रकाश से अन्धकारों को दूर करता है उसी प्रकार राजा भी (भानुमद्भिः अर्कैः) सूर्य प्रकाश से पके अन्नों और तेजस्वी, पूज्य पुरुषों सहित (भासा) अपने तेज से शास्य और शासक दोनों वर्गों को (आ ततन्थ वि ततन्थ) व्याप ले और विशेष रूप से विस्तृत करे और (औशिजः न) कान्तिमान् सूर्य के समान ही कामनावान् प्रजावर्ग का हितकारी होकर (पत्मन् दीयन्) सन्मार्ग से गमन करता हुआ (चित्रः) अद्भुत विस्मयकारी और (अक्तः) तेजस्वी होकर (शोचिषा) विद्या के प्रकाश से (तमांसि) अज्ञान, शोक, दारिद्र आदि अन्धकारों को (परि नयत्) प्रजावर्ग से दूर करे।

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे प्रभो! तेजस्विन्! (अर्कशोकैः) अर्चना करने योग्य, सूर्यवत् प्रकाशों से (मन्दतमम्) अति आनन्दजनक, अति प्रशंसनीय, (त्वां हि) तुझको ही हम (ववृमहे) वरण करते हैं। तू (नः) हमारे वचनों का (महि श्रोषि) खूब श्रवण कर।

(इन्द्रं न) विद्युत् के समान (शवसा) बल से सम्पन्न (देवता) तेजस्वी, वा मेघवत् दानशील और (शवसा वायुम्) बल से वायुवत् शत्रु और दुःखों को उखाड़ फेंकने वाले वा (शवसा वायुम्) ज्ञान व अन्न से वायुवत् जीवन देने हारे प्राणप्रिय (त्वां) तुझको (नृतमाः) श्रेष्ठ पुरुष (राधसा) धनैश्वर्य और आराधना द्वारा (पृणन्ति) पूर्ण करते और प्रसन्न करते हैं।

नू नो॑ अग्नेऽवृके॑भिः स्व॒स्ति वेषि॑ रा॒यः प॒थिभि॒ः पर्ष्यंहः॑ ।
ता सू॒रिभ्यो॑ गृण॒ते रा॑सि सु॒म्नं मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीरा॑ः ॥८॥६॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन् ! तेजस्वी राजन् ! पापदाहक प्रभो ! तू (नू) शीघ्र ही (नः) हमें (अवृकेभिः पथिभिः) चोरों से रहित मार्गों से (रायः) धनैश्वर्यों तक (स्वस्ति) कुशलतापूर्वक (वेषि) पहुंचा। और (अंहः पर्षि) पाप से पार कर। तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों और (गृणते) उपदेष्टा गुरुजन वा स्तुति करने वाले को (ता सुम्नं) नाना प्रकार के सुख (रासि) प्रदान करता है। उन्हें प्राप्त करके हम भी (सुवीराः) उत्तम वीरों और पुत्रों से सम्पन्न होकर (शत-हिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न हों। इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ त्रिष्टुप् । २, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

हु॒वे वः॑ सू॒नुं सह॑सो यु॒वान॒मद्रो॑घवाचं म॒तिभि॒र्यवि॑ष्ठम् ।
य इन्व॑ति॒ द्रवि॑णानि॒ प्रचे॑ता वि॒श्ववा॑राणि पु॒रुवारो॑ अ॒ध्रुक् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (यः) जो (प्रचेताः) उत्तम चित्त और ज्ञान वाला, (पुरु-वारः) बहुत से प्रजाजनों वा सदस्यों से वरण करने

योग्य, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करने हारा होकर (विश्व-वाराणि) समस्त लोकों से स्वीकार करने योग्य (द्रविणानि) ऐश्वर्यों और ज्ञानों को (इन्वति) प्रदान करता है ऐसे (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित, प्रेम युक्त हितकारी वाणी बोलने हारे (मतिभिः यविष्ठम्) उत्तम प्रज्ञाओं से युक्त और बुद्धिमान्, बलवान् पुरुष को (वः) आप लोगों के लिये, वा आप लोगों में से ही (सहसः सूनुम्) बल के सञ्चालक और उत्पादक (हुवे) होने की प्रार्थना करता हूं ।

त्वे वसू॑नि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरि॑रे य॒ज्ञिया॑सः ।
क्षामे॑व॒ विश्वा॒ भुव॑नानि॒ यस्मि॒न्त्सं सौभ॑गानि दधि॒रे पा॑व॒के ॥२॥

भा०—(क्षामा इव) जिस प्रकार भूमि उत्तम राजा के अधीन रहकर (विश्वा भुवनानि सौभगानि धत्ते) समस्त लोकों और समस्त ऐश्वर्यों को धारण करती है उसी प्रकार (यस्मिन्) जिसके अधीन रह कर (यज्ञियासः) परस्पर सत्संग, मेल जोल से रहने वाले प्रजाजन (विश्वा भुवनानि) समस्त उत्पन्न प्राणियों और (सौभगानि) सुख-जनक ऐश्वर्यों को (दधिरे) धारण करते हैं हे (होतः) दाता राजन् ! हे (पुर्वणीक) बहुत सैन्यों के स्वामिन् ! वे सब लोग (दोषा वस्तोः) दिन और रात्रि (वसूनि) समस्त ऐश्वर्यों को (त्वे) तुझे ही (एरिरे) दे देते हैं ।

त्वं वि॒क्षु प्र॒दिवः॑ सीद आ॒सु क्रत्वा॑ र॒थीर॑भवो॒ वार्या॑णाम् ।
अत॑ इनोषि विध॒ते चि॑कित्वो॒ व्या॑नु॒षग्जा॑तवेदो॒ वसू॑नि ॥ ३ ॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (आसु विक्षु) इन प्रजाओं के बीच में (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से (प्रदिवः) उत्तम २ कामनाओं को (सीद) प्राप्त कर, उत्तम २ ज्ञानवान् पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजमान हो । और (वार्याणाम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनों का (रथीः) प्राप्त करने

वाला और (वार्याणाम्) पदाधिकारों के निमित्त चुनने योग्य उत्तम नायकों के बीच में तू ही (रथीः अभवः) महारथी के समान उत्तम सेनापति हो। हे (चिकित्वः) विद्वन् ! तू (विधते) सेवा करने वाले भृत्यजन को (वसूनि) नाना ऐश्वर्य, (आनुषक्) निरन्तर (वि इनोषि) विविध रूपों से दिया कर। (अतः) इसी कारण तू राजा बन।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (यः) जो (सनुत्यः) निश्चित रूप से छुप कर (नः अभिदासत्) हमारा नाश करे, और (अन्तरः) भीतर आकर (वनुष्यात्) मारे, (तम्) उसको (अजरेभिः) बलवान् (तव स्वेभिः) तू अपने ही निजू पुरुषों और (अजरेभिः) वृद्धावस्था से रहित (वृषभिः) प्रबन्धक, बलवान् पुरुषों द्वारा (तपसा) अपने सन्तापक सामर्थ्य और तप से (तप) तपा, सन्तप्त कर और शुद्ध कर। हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य ! मित्रों के पूजक ! बड़े मित्रों वाले ! तू (तपसा) तपःसामर्थ्य से स्वयं भी (तपस्वान्) तपस्वी होकर (तप) तपस्या कर।

यस्ते यज्ञेन समिधाय उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के प्रेरक और उत्पादक स्वामिन् ! (यः) जो पुरुष (यज्ञेन) यज्ञ, दान, सत्संग आदि से और (उक्थैः अर्केभिः) वेदमन्त्रों, उत्तम वचनों और स्तुत्य पदों से (सम्-इधाय) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए (ते) तेरी वृद्धि के लिये (ददाशत्) अग्नि में आहुति के समान अपना अंश, कर आदि प्रदान करता है, हे (अमृत) अमरणधर्मा, बलवान् राजन् ! (सः) वह (प्रचेताः) उत्तम ज्ञानवान्

पुरुष (राया) धन से (द्युम्नेन) यश और (शवसा) बल और ज्ञान से (वि-भाति) विशेष रूप से चमकता है ।

स तत्कृ॑धीषि॒तस्तूय॑मग्ने॒ स्पृधो॑ बाधस्व॒ सह॑सा॒ सह॑स्वान् ।
यच्छ॒स्यसे॒ द्युभि॑र॒क्तो वचो॑भि॒स्तज्जु॑षस्व जरि॒तुर्घोषि॒ मन्म॑ ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तेजस्विन् नायक ! तू (तूयम्) शीघ्र ही (सहसा) शत्रु पराजयकारी सामर्थ्य से (सहस्वान्) बलवान् होकर (स्पृधः) संग्राम की स्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को बलपूर्वक (बाधस्व) पीड़ित कर और (इषितः) सेना आदि से सम्पन्न होकर (सः) वह तू (तत्) वह कार्य (कृधि) कर (यत्) जिससे तू (द्युभिः अक्तः) प्रकाश युक्त किरणों से चमकने वाले सूर्य के समान (द्युभिः अक्तः) तेजस्वी पुरुषों से स्नेहवान् होकर (वचोभिः शस्यसे) उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसा प्राप्त कर सके । तू (जरितुः) उत्तम उपदेष्टा, ज्ञानवृद्ध पुरुष के (मन्म) मनन करने योग्य (घोषि) वेद वाणी के अनुकूल उपदेश को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक सेवन किया कर ।

अश्या॒म तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अश्या॑म र॒यिं र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।
अश्या॒म वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जरा॒जरं॑ ते ॥७॥७॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हम लोग (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहते हुए (तं कामम्) उस २ कामना योग्य उत्तम पदार्थ का (अश्याम) भोग करें । हे (रयिवः) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हम (सु-वीरम्) उत्तम वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिम् अश्याम) ऐश्वर्य का भोग करें । हम (वाजयन्तः) बल और धन की कामना करते हुए (ते वाजम्) तेरे अन्न और बल का (अश्याम) भोग करें और (ते अजराजरं) तेरे अविनाशी (द्युम्नम्) ऐश्वर्य का (अश्याम) भोग करें । इति सप्तमो वर्गः ॥

[६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १ ॥

भा०—(नव्यसा) अति नवीन, अति स्तुत्य (यज्ञेन) परस्पर के सम्बन्ध, या दान प्रतिदान द्वारा (गातुम्) सन्मार्ग और उत्तम भूमि और (अवः) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करना (इच्छन्) चाहता हुआ जन (सहसः सूनुम्) बल के सम्पादक, वा सञ्चालक (वृश्चद्-वनम्) वनों को काट डालने में समर्थ परशु या अग्नि के समान तीक्ष्ण अज्ञान वा शत्रु के नाशक (कृष्ण-यामम्) आकर्षण करने वाले, यम नियम-व्यवस्था-से सम्पन्न (रुशन्तं) अति तेजस्वी, (होतारं) ऐश्वर्य वा ज्ञान के दाता, (दिव्यं) कामना करने योग्य, पुरुष के पास (वीती) इच्छापूर्वक (अच्छ जिगाति) जावे ।

स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २ ॥

भा०—(पावकः अग्निः पृथूनि भर्वन् अनुयाति) जिस प्रकार अग्नि बहुत बड़े २ काष्ठों को जलाता हुआ उनकी ही ओर जाता है उसी प्रकार (यः) जो (पावकः) अग्नि के समान तेजस्वी, सबको पवित्र करने वाला, (पुरुतमः) बहुतों में श्रेष्ठ सबको पालन पोषण और तृप्त करने हारा, (भर्वन्) शत्रुओं को दग्ध करता और प्रजाओं को पालन करता हुआ (अग्निः) अग्रणी पुरुष (पृथूनि पुरूणि) बड़े २ और बहुत से सैन्यों के (अनुयाति) पीछे २ चलता है । (सः) वह (श्वितानः)

विद्युत् के समान अति श्वेत वर्ण, (तन्यतुः) गर्जनाशील, (रोचनस्थाः) सर्वप्रिय पद पर विराजने वाला, (अजरेभिः) जरारहित, जवान, (नानदद्भिः) मेघवत् अति समृद्ध और गर्जनाशील अधीन नायकों के साथ मिलकर स्वयं (यविष्ठः) अति बलवान् होकर (पृथूनि पुरूणि भर्वन् अनुयाति) बड़े २ बहुत शत्रु सैन्यों को भस्म करता हुआ अनुगमन करता है।

वि ते॒ विष्व॒ग्वात॑जूतासो अग्ने॒ भामा॑सः शुचे॒ शुच॑यश्चरन्ति ।
तु॒वि॒म्र॒क्षासो॑ दि॒व्या नव॑ग्वा॒ वना॑ वनन्ति धृष॒ता रु॒जन्तः॑ ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् अन्यों को प्रकाशित करने वाले विद्वन् ! शत्रुओं को भस्म करने हारे नायक ! (वात-जूतासः शुचयः भामासः) अग्नि के वायु से प्रेरित, कान्तियुक्त ज्वालासमूह जिस प्रकार सब ओर निकलते हैं उसी प्रकार (ते) तेरे (शुचयः) शुद्ध, ईमानदार, (भामासः) क्रोध या उग्रता से युक्त, (वात-जूतासः) वायुवत् प्रचण्ड वेग से प्रेरित वीर लोग (शुचे) तेज या शुद्ध व्यवहार प्राप्त करने के लिये (विश्वक्) सब ओर (विचरन्ति) विचरते हैं। और वे (तुवि-म्रक्षासः) बहुतों से मेल करते हुए, (दिव्याः) तेजस्वी, (नवग्वाः) नयी से नयी, भूमि और चाल चलते हुए, (धृषता) शत्रु पराजयकारी बल से (वना रुजन्त) शत्रु सैन्य के दलों को, फरसे से वनों के समान छिन्न भिन्न करते हुए (वना वनन्ति) नाना ऐश्वर्यों का उपभोग करते हैं।

ये ते॑ शु॒क्रासः॒ शुच॑यः शुचिष्मः॒ क्षां वप॑न्ति॒ विषि॑तासो॒ अश्वाः॑ ।
अध॑ भ्र॒मस्त॑ उर्वि॒या वि भा॑ति या॒तय॑माना॒ो अधि॒ सानु॒ पृश्नेः॑ ॥४॥

भा०—हे नायक ! हे (शुचिष्मः) शुद्ध कान्तियुक्त तेजस्विन् ! वा शुद्ध व्यवहार वाले ! (ये) जो (ते) तेरे (विषितासः) विशेष रूप से

बन्धन या प्रबन्ध में बंधे हुए (अश्वाः) अश्वों के समान आशुगामी अश्व सैन्य वा घुड़सवार शासक और भूमि के भोक्ता ज़मीदार लोग (क्षां वपन्ति) भूमि का छेदन भेदन करते, उस पर खेतियों को बोते वा काटते हैं या प्रजा से धन उगाहते हैं वे (शुक्रासः) शीघ्र कार्य करने हारे, शुद्ध और (शुचयः) स्वेच्छाचार वाले, सदाचारी और ईमानदार हों। (अध) और (ते उर्विया भ्रमः) विशाल भ्रमणशील या भरण पोषणकारी बल सामर्थ्य (पृश्नेः सानु अधि) भूमि के उच्च भाग, ऐश्वर्ययुक्त भाग पर पर्वत, शिखर पर मेघवत् विराजकर (यातयमानः) दुष्टों को दण्ड देता हुआ (विभाति) विशेष कान्ति से चमके।

अध॑ जि॒ह्वा पा॑पतीति॒ प्र वृष्णो॑ गोषु॒युधो॒ नाशनिः॑ सृजा॒नाः।
शूर॑स्येव॒ प्रसि॑तिः क्षा॒तिर॒ग्नेर्दु॒र्वर्तु॑र्भी॒मो द॑यते॒ वना॑नि ॥ ५ ॥

भा०—(सृजाना अशनिः) उत्पन्न होती हुई विद्युत् की जिह्वा (वृष्णः) बरसते और (गो-सु-युधः) भूमि पर प्रहार करते मेघ से निकलती जीभ के समान (पापतीति) वेग से जाती है उसी प्रकार (गो-सु-युधः) भूमि के निमित्त युद्ध करने हारे (वृष्णः) बलवान् पुरुष की (जिह्वा) वाणी भी (पापतीति) बराबर आगे जाती है। वह (शूरस्य) शूरवीर पुरुष की (प्र-सितिः) प्रबन्धक शक्ति और (क्षातिः) शत्रु को नाश करने वाली शक्ति, दोनों ही (दुर्वर्तुः) वारण नहीं की जा सकतीं। (भीमः) इस प्रकार वह भयानक, राजा (वनानि दयते) ऐश्वर्यों वा भोग्य राष्ट्रों या स्वसैन्य दलों को पालता और (वनानि दयते) शत्रु सैन्य समूहों को नष्ट करता है। 'प्रसिति' अर्थात् प्रबन्धक शक्ति से पालता और 'क्षाति' अर्थात् विनाशक शक्ति से नाश करता है। इसी प्रकार (गो-सु-युधः) वाणी से युद्ध करने वाले तार्किक विद्वान् की वाणी विद्युत् के समान (सृजाना) नयी रचना करती हुई चलती है, वह उत्तम बन्धनयुक्त, सुग्रथित, दोषरहित हो।

आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (भानुना) तेज से (पार्थिवानि ज्रयांसि आ ततन्थ) पृथिवी पर के पदार्थों को सब दूर प्रकाशित करता है उसी प्रकार उत्तम विद्वान् नायक पुरुष भी (महः) बड़े भारी (तोदस्य) शत्रु को व्यापने वाले सैन्य के (धृषता) पराजयकारी सैन्य के (भानुना) तेज से (पार्थिवान्) पृथिवी के (ज्रयांसि) प्राप्तव्य राष्ट्रों, ऐश्वर्यों को (आततन्थ) सब ओर फैलावे । (सः) वह तू (सहोभिः) अपने प्रबल सैन्यों से (भया) भय देने वाले कारणों को (अप बाधस्व) दूर करे, स्वयं (वनुष्यन्) राष्ट्र का सेवन वा उपभोग करता हुआ (वनुषः) हिंसाकारी (स्पृधः) संग्रामकारी शत्रुओं को (नि जूर्व) अच्छी प्रकार नष्ट करें ।

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥८॥

भा०—हे (चित्र) आश्चर्य कर्म करने हारे ! विद्वन् राजन् ! (सः) वह तू हे (चित्र-क्षत्र) आश्चर्यकारी वीर्य बल और राज्य के स्वामिन् ! तू (अस्मे) हमें (चित्रम्) अद्भुत (चित्र-तमम्) सबसे अधिक संग्रह करने योग्य (वयो-धाम्) जीवन के पालन करने वाले, बलप्रद, अन्न-प्रद, (चन्द्रं) आह्लादकारी (पुरु-वीरं) बहुत से वीरों और पुत्रों से युक्त (रयिं) ऐश्वर्य और (बृहन्तं) बड़े भारी (चन्द्रं) आह्लादकारी सुवर्णादि को भी (चन्द्राभिः) आह्लादकारिणी, सुखजनक वाणियों सहित (गृणते युवस्व) उपदेष्टा पुरुष को प्रदान कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ स्वराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्पांक्तिः । ४ स्वराट् पांक्तिः । ५ पांक्तिः । ६ जगती ॥

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) प्रकाश या आकाश के (मूर्धानं) मूर्धा वा शिरवत् मुख्य केन्द्र, सूर्य के समान सर्वोपरि विराजमान, (पृथिव्या अरतिम्) पृथिवी के स्वामी, (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, (ऋते जातम्) सत्यज्ञान, व्यवहार, न्यायशासन और ऐश्वर्यादि में प्रसिद्ध पुरुष को (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी अग्र नेता रूप से (आ जनयन्त) बनावें। और वे (कविं) क्रान्तदर्शी विद्वान्, मेधावी, (सम्राजम्) अच्छी प्रकार तेज से चमकने वाले, सम्राट् (जनानां) मनुष्यों के बीच में (अतिथिम्) सबसे अधिक आदर योग्य पुरुष को (आसन्) मुखवत् मुख्य पद पर वा अपना प्रमुख (पात्रम्) पालक रक्षक (आ जनयन्त) बनाया करें। (२) परमेश्वर सूर्यादि प्रकाशमान, पृथिवी आदि अप्रकाशमान लोकों का प्रमुख स्वामी है, वह कवि, सम्राट् सर्वव्यापक परम पूज्य है। उसी को देव, विद्वान् जन अपना पालक करके जानते जनाते हैं।

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् लोग (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी (यज्ञानां नाभिं) सब प्रकार के लेन देन और परस्पर के मेल जोल आदि के नाभिवत् मुख्य केन्द्र, (रयीणां सदनम्) सब ऐश्वर्यों के आश्रय, (महाम्) बड़े २ लोगों से (आहावम्) स्पर्धा करने वाले, वा बड़ों २ को आदर से बुलाने में समर्थ या सबको अन्नादि देने हारे गृहवत् आश्रय पुरुष को प्राप्त कर उसके समक्ष (अभि सं नवन्त) आदर से झुकते हैं। (अध्वराणां रथ्यम्) यज्ञों वा संग्रामों के बीच महारथी और (यज्ञस्य) यज्ञ, दान, संगति आदि के (केतुम्) ज्ञापक, ध्वजा के

तुल्य सर्वसाक्षी, पुरुष को ही (देवाः) विद्वान् लोग (आ जनयन्त) सर्वत्र प्रसिद्ध करें ।

त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्स्पृहयाय्याणि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक, परंतप ! हे ज्ञानयुक्त विद्वन् ! हे (राजन्) राजन् ! (त्वत्) तुझ से ही (विप्रः) विप्र, विद्वान् पुरुष (वाजी) बलवान् और अन्नैश्वर्यवान् (जायते) होता है । (त्वत्) तुझ से ही अधिकार प्राप्त करके (वीरासः) वीर पुरुष (अभिमातिषाहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने हारे उत्पन्न होते हैं । हे (वैश्वानर) समस्त नायकों के नायक ! (त्वं) तू ही (अस्मासु) हममें (स्पृहयाय्याणि) चाहने योग्य नाना (वसूनि) ऐश्वर्य (धेहि) धारण करा, हमें प्रदान कर ।

त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः) दानशील सम्बन्धीजन जिस प्रकार (जायमानं शिशुं न) उत्पन्न होते हुए नवबालक को (अभि सं नवन्ते) लक्ष्यकर आशीर्वादादि के निमित्त उसके प्रति प्रेम से झुकते हैं उसी प्रकार हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के नायक ! हे (अमृत) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले ! (यत्) जब तू (पित्रोः) पालक माता पिताओं, एवं पिता वा गुरुजन दोनों के बीच और दोनों के अधीन उत्तम रूप, गुणों और विद्यादि से (अदीदेः) प्रकाशित हो (देवाः) देव, विद्वान् लोग तुझ (जायमानं) उदय होते हुए, (शिशुं त्वां) प्रशंसनीय तुझको (अभि सं नवन्ते) आदरपूर्वक झुकते हैं । वे (तव क्रतुभिः) तेरे कर्मों और ज्ञानों से ही (अमृतत्वम् आयन्) अमृत, अविनाशी सत्ता को प्राप्त हों ।

वैश्वा॑नर॒ तव॒ तानि॑ व्र॒तानि॑ म॒हान्य॑ग्ने॒ नकि॒रा द॑धर्ष ।
यज्जाय॑मानः पि॒त्रोरु॒पस्थेऽवि॑न्दः के॒तुं व॒युने॒ष्वह्ना॑म् ॥ ५ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों में विद्यादि उत्तम गुणों से नायक होने योग्य ! (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जो तू (पित्रोः) माता पिता विद्या और आचार्य उनके समीप (जायमानः) जन्म ग्रहण करता हुआ, अरणियों में अग्नि के समान (अह्नाम्) सब दिनों के करने योग्य (वयुनेषु) कर्मों और ज्ञानों में (केतुम् अविन्दः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त करता है (तव) तेरे (महानि व्रतानि) बड़े २ कार्यों और व्रताचरणों को (नकिः आदधर्ष) कोई भी नाश नहीं कर सके ।

वै॒श्वा॒न॒रस्य॒ विमि॑तानि॒ चक्ष॑सा॒ सानू॑नि दि॒वो अ॒मृत॑स्य के॒तुना॑ । तस्येदु॒ विश्वा॒ भुव॒नाधि॑ मू॒र्धनि॑ व॒या इ॑व रुरुहुः स॒प्त वि॒स्रुहः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(वैश्वानरस्य दिवः केतुना या सानूनि विमितानि) सब मनुष्यों के हितकारी सूर्य के प्रकाश से जिस प्रकार उच्च २ स्थल विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार (वैश्वानरस्य) समस्त जीवों के हितकारी प्रभु के (दिवः) तेजःस्वरूप, कामना योग्य (अमृतस्य) मोक्ष रूप अमृत के स्वरूप (चक्षसा) सर्वप्रकाशक (केतुना) ज्ञान से (सानूनि) समस्त भोग्य ऐश्वर्य युक्त पदार्थ (वि-मितानि) विशेष रूप से बने हैं । (तस्य इत् मूर्धनि) उसके ही शिर पर, उसके ही आश्रय (विश्वा भुवना) समस्त लोक (वयाः इव) उसकी शाखाओं के समान (अधि रुरुहुः) स्थित हैं । और उसी के शिर पर उसी के आश्रय (सप्त विस्रुहः) सात प्रवाहों के समान सात विकृतियां या सातों प्रकार के विसरणशील जीव सर्ग वा सात प्रकृति विकार (अधि रुरुहुः) स्थित हैं । (२) अध्यात्म में—अमृत, अविनाशी जीव के दर्शन सामर्थ्य से समस्त इन्द्रियें बनी हैं और उसी के शिर में शाखावत् सात प्राण हैं । विद्वान्

पक्ष में (सप्त विस्रुहः) सात छन्दोमय वाणियें उसके मस्तिष्क में रहती हैं ।

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७॥९

भा०—(यः) जो (वैश्वानरः) समस्त प्राणियों और पदार्थों में व्यापक, सबका सञ्चालक परमेश्वर (सु-क्रतुः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (रजांसि) समस्त लोकों को (वि अमिमीत) विविध प्रकार से बनाता है और जो (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (दिवः रोचना वि अमिमीत) आकाश के या प्रकाश से युक्त चमकने वाले सूर्यादि लोकों को किरणोंवत् विविध रूप से बनाता है (यः) जो (विश्वा भुवनानि परि पप्रथे) समस्त उत्पन्न हुए लोकों को सब ओर फैलाये है, वह (अदब्धः) कभी नाश न होने वाला (गोपाः) समस्त भूमियों, गतिशील सूर्यों और जन्तुओं का पालक और (अमृतस्य) अमृत, जीव प्रकृति आदि तत्वों का (रक्षिता) रक्षक है । इति नवमो वर्गः ॥

[८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती । ६ विराड् जगती । २, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोम इव पवते चारुरग्नये ॥१॥

भा०—(पृक्षस्य) स्नेहवान्, विद्यादान आदि सम्बन्धों से सम्पर्क करने वाले, (वृष्णः) मेघ के समान ज्ञानोपदेश को देनेवाले, बलवान् , (अरुषस्य) तेजस्वी, रोष वा हिंसा से रहित (जात-वेदसः) उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, समस्त धनों के स्वामी पुरुष के (विदथा) ज्ञानों और

प्राप्ति साधनों और (सहः) सहनशीलता और बल की (नु) भी अवश्य हम (प्र वोचम्) स्तुति करें, और उत्तम गुणों वाले पुरुष को बल वृद्धि और ज्ञानों का उपदेश करें। (वैश्वानराय अग्नये) सबके नायक अग्रणी पुरुष की (नव्यसी मतिः) अति स्तुत्य बुद्धि और वाणी (शुचिः) अति पवित्र शुद्ध रूप से (चारुः) अति सुन्दर होकर (सोम इव पवते) ओषधि रस के तुल्य दुःखनाशक होकर प्रकट होती है।

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

भा०—(सः) वह (अग्निः) ज्ञानवान्, विद्वान्, विनीत शिष्य (परमे) सबसे उत्कृष्ट (व्योमनि) विशेष रूप से रक्षा करने वाले, आकाशवत् विशाल, ज्ञानवान् गुरु के अधीन आकाश में सूर्य के तुल्य (जायमानः) जन्म लेता हुआ (व्रत-पाः) व्रतों का पालक होकर (व्रतानि) नाना व्रतों का (अरक्षत) पालन करे। वह (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान्, उत्तम कर्मकुशल पुरुष (वैश्वानरः) सबका हितैषी सब शिष्यगण को सन्मार्ग पर ले जाने वाला आचार्य होकर (अन्तरिक्षम्) रसवत् भीतर विद्यमान ज्ञान को (वि अमिमीत) विशेष रूप से ज्ञान करे। और (महिना) बड़े सामर्थ्य से (नाकम्) सुख को (अस्पृशत्) प्राप्त करे और अन्यों को प्राप्त करावे।

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (रोदसी वि-अस्तभ्नात्) आकाश और पृथिवी दोनों को थामता है, (ज्योतिषा तमः अन्तर्वावत् अकृणोत्) प्रकाश से अन्धकार को लुप्त कर देता है, (चर्मणी इव धिषणे वि अवर्त्तयत्) दो चमड़ों के समान सबके धारक अन्तरिक्ष, पृथिवी दोनों को

विशेष व्यापारवान् करता है (विश्वम् वृष्ण्यम् अधत्त) वर्षण योग्य जल को धारण करता है उसी प्रकार (वैश्वानरः) समस्त शिष्यगण को सन्मार्ग पर ले जानेहारा गुरु वा विद्वान् पुरुष (मित्रः) सबको स्नेह करने वाला होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् नर नारी दोनों को (वि अस्तभ्नात्) विशेष नियमों में स्थिर करे । वह (अद्भुतः) आश्चर्यकारक, (ज्योतिषा) ज्ञान ज्योति से (तमः) शोक, अज्ञान रूप अन्धकार को (अन्तः-वावत्) लुप्त (अकृणोत्) करे । वह (धिषणे) व्रतों और आश्रमों के धारण करने वाले स्त्री पुरुषों को (चर्मणी इव) सूत्रों से दो चर्मों के समान मिला, एवं ग्रथित कर (वि-अवर्त्तयत्) विशेष कार्यों में प्रवृत्त करे । वह (वैश्वानरः) सबका नायक, होकर (विश्वम् वृष्ण्यम्) सब बलों को (अधत्त) धारण करे, करावे । (२) वह परमेश्वर सूर्य पृथिवी आदि को धारण करता, अन्धकार को सूर्य प्रकाश से नश करता । आकाश भूमि को घुमाता, सब बलों और विश्व को धारता है ।

अ॒पामु॒पस्थे॑ महि॒षा अ॑गृभ्णत॒ विशो॒ राजा॑न॒मुप॑ तस्थुर्ऋ॒ग्मिय॑म्। आ दू॒तो अ॒ग्निम॑भरद्वि॒वस्व॑तो वैश्वान॒रं मा॑त॒रिश्वा॑ परा॒वतः॑ ॥४॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् लोग (अपाम् उपस्थे अग्निम् अगृभ्णत) जलों और मेघों में से भी विद्युत् और अग्नि को ग्रहण करते हैं और (मातरिश्वा दूतः परावतः विवस्वतः अग्निम् वैश्वानरम् अभरत्) ज्ञान वा अग्नि विद्या का वेत्ता पुरुष दूर स्थित सूर्य से भी वैश्वानर अग्नि को यन्त्र द्वारा संग्रह कर लेता है उसी प्रकार (अपाम् उपस्थे) आप्त जनों के बीच में (विशः) वैश्यजन वा प्रजाएं (महिषाः) बड़े भारी ऐश्वर्य को देती हुई (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (राजानम्) तेजस्वी राजा को (उप तस्थुः) प्राप्त हों, उसके समीप आवें । (मातरिश्वा) भूमि पर वेग से जाने में समर्थ (दूतः) शत्रुओं को सन्ताप देने वाला विद्वान् पुरुष (परावतः) दूर देश के भी (विवस्वतः) विविध वसु अर्थात्

ऐश्वर्यों और प्रजाओं से समृद्ध देश से (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी नायक (वैश्वानरं) सबके नायक, पुरुष को (आ अभरत्) प्राप्त करे ।

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू (युगे युगे) प्रति वर्ष, (गृणद्भ्यः) उपदेश देने वाले विद्वानों को (विदथ्यं) युद्ध, यज्ञ आदि से उत्पन्न होने वाले (रयिं) ऐश्वर्य और (यशसं) अन्न और यश एवं (नव्यसीं) अति स्तुत्य, नयी से नयी, शुभ वाणी, और सत्कार क्रिया को (धेहि) दिया और किया कर । हे (राजन्) राजन् ! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंक देने हारे ! जैसे (पव्या इव वनिनं) वज्र या कुठार से वन के वृक्ष को काट डाला जाता है और जैसे (तेजसा वनिनं न) तेज से जल युक्त मेघ को छिन्न भिन्न किया जाता है उसी प्रकार (पव्या) चक्र की धारा वा तलवार से और (तेजसा) तीक्ष्ण तेज से (अघ-शसं) पाप की बात कहने वाले वा पाप हत्यादि करने वाले चोर डाकू वा (वनिनं) बन में छुपे हिंसक पुरुष को (नीचा निवृश्च) नीचे गिराकर काट डाल ।

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे अग्रणी नायक ! तू (अस्माकम्) हमारे बीच में जो (मघवत्सु) धन ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न पुरुष हैं उनमें (अनामि) कभी न झुकने वाले, अखूट (क्षत्रम्) धनैश्वर्य और (अजरम्) अविनाशी, जरावस्था से, रहित, सदा जवान, शत्रु को उखाड़, फेंकने वाला (सुवीर्यम्) उत्तम बल-वीर्य (धारय) धारण करा । हे (अग्ने) तेजस्विन् (वैश्वानर) सबके नायक ! (वयं) हम

(तव ऊतिभिः) तेरी रक्षा साधन, सेनाओं और तेरे उपस्थित किये साधनों से (शतिनं सहस्रिणं वाजम्) सैकड़ों और सहस्रों से युक्त ऐश्वर्य को (जयेम) विजय करलें ।

अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ७।१०।

भा०—हे (त्रि-सधस्थ) तीनों सभा स्थानों के स्वामिन् ! तू (इष्टे) तेरे अपने अभिलषित कार्य में लगे (अस्माकम्) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों की (अदब्धेभिः गोपाभिः) न नाश होने वाले, दृढ़ रक्षकों द्वारा सदा (पाहि) रक्षा किया करे । (नः) हमारे (ददुषां) करादि देने वाले प्रजाजनों के (शर्धः) बल की (रक्ष) रक्षा कर । हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के नायक ! तू (स्तवानः) प्रशंसित होकर (प्र तारीः च) सबको दुःखों से भली प्रकार पार कर । इति दशमो वर्गः ॥

[९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ४ पंक्तिः । ७ भुरिग्जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१॥

भा०—(कृष्णं च अहः) काला दिन अर्थात् रात्रि, और (अर्जुनं च अहः) श्वेत, प्रकाशित दिन दोनों (वेद्याभिः) स्वयं जानने योग्य नाना घटनाओं सहित (रजसी) सबका मनोरञ्जन करते हुए (वि वर्त्तेते) बार २ आते हैं और (वैश्वानरः अग्निः) सबका नायक सञ्चालक

सूर्य (राजानम्) राजा के समान देदीप्यमान होकर (ज्योतिषा तमांसि अव अतिरत्) तेज से अन्धकारों को दूर करता है उसी प्रकार (रजसी) एक दूसरों के मनों को अनुरञ्जन करने वाले राजा, प्रजा वा स्त्री पुरुष लोग (वेद्याभिः) जानने योग्य कर्मों या 'वेदि', यज्ञवेदि पर प्रतिज्ञा रूप से करने योग्य क्रियाओं द्वारा दिन रात्रि के समान विविध व्यवहार करें और (वैश्वानरः) सबका नायक राष्ट्र में राजा, एवं गृहस्थ में बालक, गृह में आहवनीय अग्नि, गृहपति और हृदय में परमेश्वर तेज से समस्त शोक अज्ञानादि अन्धकारों को दूर करे ।

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥ २ ॥

भा०—(अहं) मैं (न तन्तुं वि जानामि) न तन्तु वा तनना ही जानता हूं और (न ओतुम्) न बुनना अथवा न बरनी हो जानता हूं और (न) न उसको जानता हूं (यं) जिसको (समरे) समर में गमन करने योग्य परम लक्ष्य के निमित्त (अतमानाः) जाते हुए (वयन्ति) बुनते हैं । इस विषय में (कस्य स्वित् पुत्रः परः) किसी का अति ज्ञानी पुत्र (अवरेण पित्रा) उरे के, अल्प ज्ञानी पिता के द्वारा, (परः) और उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर इस रहस्य के विषय में (वक्त्वानि वदाति) उपदेश करने योग्य वचनों का उपदेश कर सकता है । कोई ही ऐसा विलक्षण पुत्र उत्पन्न होता है जो अपने पिता वा गुरु से शिक्षा पाकर अपने पिता वा गुरु से भी अधिक ज्ञानवान् होकर ब्रह्मतत्व आदि वातों को यथार्थ रूप से बतला सके । नहीं तो हम जीवों में इतना अज्ञान है कि हम अरनी-बरनी और वस्त्रादि कुछ भी नहीं जानने वाले अनाड़ी के समान साधन, उपासना और साध्य कुछ भी नहीं जानते । और पैदा हो जाते हैं । याज्ञिकों के मत से—यज्ञ रूप वस्त्र है गायत्री आदि छन्द 'तन्तु' हैं, अध्वर्यु के कर्म 'ओतु' हैं, देवयजन स्थान 'समर' है,

उनमें उन सबका उपदेष्टा कोई ही होता है। ब्रह्मवादियों के मत से—यह जगत् प्रपञ्च रूप और दुर्विज्ञेय है, इसमें आकाशादि सूक्ष्म पञ्चभूत तन्तु हैं और स्थूल पञ्चभूत 'ओतु' हैं, संसारी जीव इस संसार 'समर' में निरन्तर जाते हुए क्या करते हैं यह पता नहीं लगता। इस रहस्य को कोई ही ज्ञानी बता सकता है। वैश्वानर प्रभु का रहस्य वही जाने।

स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३॥

भा०—(सः इत्) वह ही (तन्तुं) तन्तु को जानता है और (सः ओतुं विजानाति) वही 'ओतु' अर्थात् बरनी को भी जानता है, (सः) वह ही (ऋतुथा) समय २ पर और प्रति ज्ञानयोग्य काल में (वक्त्वानि) उपदेश करने योग्य वचनों का भी (ददाति) उपदेश करता है। (यः गोपाः) जो सबका रक्षक, (परः) सबसे उत्कृष्ट होकर (अन्येन) दूसरे के द्वारा (अमृतस्य पश्यन्) अविनाशी आत्मा का साक्षात् करता हुआ, उसको देखता हुआ भी (अवः चरन्) इस लोक में व्यापता हुआ (ईं चिकेतत्) इस रहस्य को जान लेता है। अर्थात् जो विद्वान् अपने से 'अन्य' गुरु द्वारा (अवः) इसके अधीन रहता हुआ ज्ञान का साक्षात् करले, वही उस अमृत अविनाशी तत्व का ज्ञान करता है, वह साधन, साध्य आदि भी जानता है। वही समय २ पर उपदेश भी करता है।

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥ ४ ॥

भा०—जीव का वर्णन—हे विद्वान् पुरुषो ! (अयं हि) यह ही (प्रथमः होता) सबसे उत्तम समस्त सुखों का ग्रहण करने और देने वाला है (इमं पश्यत) इसको साक्षात् किया करो। (मर्त्येषु) मर जाने वाले

देहों में (इदं अमृतं ज्योतिः) यह कभी नाश न होने वाली 'ज्योति' है। अर्थात् यह चेतन ज्योति कभी नाश को प्राप्त नहीं होती। (अयं) यह (सः) वह (अमर्त्यः) कभी न मरने वाला, (तन्वा वर्धमानः) शरीर से बढ़ता हुआ (ध्रुवः) सदा स्थिर, नित्य होकर भी (आ नि-सत्तः) शरीर या गर्भ में स्थिर होकर (जज्ञे) जन्म लेता है। ईश्वर पक्ष में—वह सब का स्वामी, इन मरणधर्मा जीवों में ज्योति है। जो सर्वश्रेष्ठ 'होता' सब सुखों का दाता है वह ध्रुव, कूटस्थ, अमृत, (तन्वा) अति विस्तृत ब्रह्माण्ड से भी कहीं बढ़ा हुआ है, (आ नि-सत्तः) सर्वत्र व्यापक रूप से विद्यमान है। (स जज्ञे) वही समस्त संसार को पैदा करता है।

ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५॥

भा०—इस देह में (दृशये) दर्शन करने के लिये (ध्रुवं) स्थिर नित्य (ज्योतिः) ज्योति, सुख दुःखादि का प्रकाश करने वाला, स्वयं प्रकाश आत्मा (नि-हितं) स्थित है। जो (कम्) स्वयं सुखमय कर्त्तारूप है। और (पतयत्सु) गति करने वाले वा अपने २ स्थान पर अपनी वृत्तियों के स्वामी के समान वर्त्तने वाले अध्यक्षों के तुल्य इन प्राणों वा विषयों की ओर दौड़ते हुए इन्द्रियों के बीच में या उनके ऊपर घोड़ों पर सारथि के समान, (अन्तः) देह के ही भीतर (जविष्ठं) अति वेग से युक्त (मनः) ज्ञान करने का साधन 'मन' भी स्थित है (विश्वे-देवाः) सब विषयों की कामना करने वाले इन्द्रियगण वा प्राण, (सम-नसः) मन के सहित मिलकर (सकेताः) ज्ञानयुक्त से होकर (एकम् क्रतुम् अभि) एक ही कर्त्ता आत्मा की ओर (वि यन्ति) विशेष रूप से जाते हैं। वे स्वयं मन सहित होकर चेतनवत् देख, सुनकर भी उसी एक कर्त्ता आत्मा को प्राप्त होते हैं, उसी को अपना ज्ञान भी देते हैं। सब इन्द्रिय पृथक् २ होकर भी एक ही भोक्ता आत्मा को बतलाती हैं। "अस्ति

आत्मा दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ॥" न्यायसूत्र । ३ । २ । १ ॥ ये देव प्राणगण ही नर हैं उनका स्वामी जीवत्मा ही 'वैश्वानर' है ।

वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।
वि मे मनश्चरति दूर आधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये६

भा०—(मे कर्णा वि पतयतः) मेरे दोनों कान विविध दिशाओं को जाते हैं, और (चक्षुः वि पतयति) आंख भी विविध प्रकार से जाती वा ये विविध प्रकार से स्वामिवत् स्वतन्त्र से होकर कार्य करते हैं, कान स्वयं सुनते और आखें स्वयं देख लेती हैं। और (यत्) जो (ज्योतिः) सबका प्रकाशक और दीपक वा सूर्यवत् स्वयं प्रकाश स्वरूप (इदं) यह प्रत्यक्ष, अनुभववेद्य (हृदये आ-हितम्) हृदय में रक्खा है, यह भी इस शरीर में (वि पतयति) विशेष रूप से स्वामी होकर शासन करता है । और (मे मनः) मेरा मनन करने वाला मन भी (दूरे आधीः) दूर २ देश के पदार्थों का भी निरन्तर ध्यान करता हुआ (वि चरति) विविध प्रकार से विचार करता है, तो फिर इस रहस्य के विषय में मैं (किं स्विद् वक्ष्यामि) वाणी द्वारा क्या और क्योंकर कहूं, (किम् उ नु मनिष्ये) मैं क्या और क्योंकर मनन कर सकूं ।

विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥ ७ ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! स्वप्रकाश, एवं अग्रणी ! (भियानाः) भय से व्याकुल (विश्वे देवाः) समस्त विषयाभिलाषी इन्द्रियगण (तमसि) अन्धकार में (तस्थिवांसम्) स्थित दीपक के समान चमकने वाले (त्वाम्) तुझको (अनमस्यन्) नमस्कार करते हैं, तेरी ही ओर झुकते हैं, तेरी शरण में आते हैं। अर्थात् जैसे अन्धकार के समय सब लोग भयभीत होकर वनादि में अग्नि या दीपक

की शरण लेते हैं, अज्ञान दशा में गुरु की शरण लेते और प्रजाजन दस्यु आदि से भयभीत होकर प्रतापी पुरुष की शरण लेते, उसके आगे झुकते हैं उसी प्रकार ये इन्द्रियगण मानों मृत्यु या शक्तिरहितता से भय करके पुनः अपनी चेतना लेने के लिये आत्मा के ही शरण जाते हैं। (वैश्वानरः) समस्त प्राणों में स्थित, सब का सञ्चालक, सब मनुष्यों से विद्यमान वह आत्मा ही (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा करने के लिये हमें (अवतु) प्राप्त हो। वह (अमर्त्यः) अविनाशी आत्मा, ही (नः ऊतये नः अवतु) हमारी रक्षा के निमित्त हमें सदा प्राप्त है। (२) इसी प्रकार पापों से भयभीत विद्वान् जन सर्व प्रभु परमात्मा को प्राप्त करें। वह अपनी रक्षा शक्ति से हमारी रक्षा करे। इत्येकादशो वर्गः ॥

[१०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ४ आर्षी पांक्तः। २, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्। ७ प्राजापत्या बृहती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम्।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (यज्ञे प्रयति) प्रयत्न साध्य सत्संग, देवपूजा, और दान आदि सत्कर्म करने के अवसर में और (अध्वरे) हिंसादि से रहित प्रजापालन आदि कर्म में (वः) अपने और अपने में से (मन्द्रं) स्तुति योग्य, (दिव्यं) ज्ञान में कुशल, तेजस्वी, (अग्निम्) स्वयं प्रकाश, ज्ञानवान्, और अग्रणी पुरुष को (वः पुरः) अपने आगे साक्षी रूप से (दधिध्वम्) स्थापित करो। उपासना काल में प्रभु को सर्वसाक्षी उपास्य जानो, यज्ञादि कर्म में विद्वान् को पुरोहित बनाओ और प्रजा-शासनादि कार्य में प्रतापी नायक को आगे प्रधान पद पर

स्थापित करो। (सः हि) वह निश्चय से (वि-भावा) विशेष कान्ति-युक्त, विशेष रूप से सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला (जात-वेदाः) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाला और ऐश्वर्यों का स्वामी है। वह (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (नः) हमारे (पुरः) समक्ष साक्षी होकर (सु-अध्वरा) उत्तम, अहिंसनीय, प्रजापालनादि सत्कार्यों का (करति) सम्पादन करे।

तमु॑ द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने॑ अ॒ग्निभि॒र्मनु॑ष इ॒धानः।
स्तोम॒ं यम॑स्मै म॒मते॑व शू॒षं घृ॒तं न शुचि॑ म॒तयः॑ पवन्ते ॥ २ ॥

भा०—हे (द्युमः) कान्तिमन्! हे सूर्यवत् तेजस्विन् हे 'द्यु' अर्थात् पृथिवी और उत्तम कामना सद्-व्यवहार आदि के स्वामिन्! हे (पुर्वणीक) बहुत सी सेनाओं के स्वामिन्! हे (पुरु-अनीक) बहुत सेमुखों वाले, बहुत से वक्ता विद्वानों वा सैन्यों के स्वामिन्! हे (होतः) अधीनों कोअन्न वेतनादि देने वाले! दातः! हे (अग्ने) अग्रणी, स्वयंप्रकाश! शत्रु को दग्ध करने वाले प्रतापिन्! तू (अग्निभिः) अग्निवत् तेजस्वी, अपने अंगों में नमने वाले, विनयशील भृत्यों, ज्ञानवान् विद्वानों द्वारा (इधानः) स्वयं अवयवों, वा प्रकाशों से अग्नि के समान, चमकता हुआ, (तम् उ स्तोमं) उस स्तुति-वचन को सुन वा स्तुत्य पद उत्तम सैन्य बल को ग्रहण कर (यम्) जिस (शूषं) सुखकारी वचन को या शत्रुशोषक शुद्ध, पवित्र, धार्मिक बल को, (मतयः) बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार (पवन्ते) स्वच्छ रूप से प्रकट करते हैं जिस प्रकार (ममता इव शूषं शुचि घृतं न) माता, या बुद्धिमती स्त्री, बलकारी, शुद्ध तेजस्कर दुग्ध, घृत, जलादि को स्वच्छ करती, प्रदान करती है।

पी॒पाय॒ स श्रव॑सा॒ मर्त्ये॑षु॒ यो अ॒ग्नये॑ द॒दाश॒ विप्र॑ उ॒क्थैः।
चि॒त्राभि॒स्तमू॒तिभि॑श्चि॒त्रशो॑चिर्व्र॒जस्य॑ सा॒ता गोम॑तो दधाति ॥३॥

भा०—(यः विप्रः) जो विद्वान् पुरुष (अग्नये) अग्रणी और विद्वान् पुरुष को (उक्थैः) उत्तम आदर योग्य वचनों से अग्नि में आहुति के समान (ददाश) देने योग्य पदार्थ ज्ञानादि प्रदान करता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच में (पीपाय) वृद्धि को प्राप्त होता है। (चित्र-शोचिः) अद्भुत कान्ति वाला, तेजस्वी पुरुष (तम्) उस दानशील विद्वान् को (चित्राभिः ऊतिभिः) अद्भुत २ रक्षा साधनों से (पीपाय) बढ़ाता है और (गो-पतेः व्रजस्य) गौओं वाले अर्थात् गो समूह के (साता) सेवनीय ऐश्वर्य के ऊपर (दधाति) उसको पुष्ट करता है, उसका उसे स्वामी बना देता है। प्रजाजन राजा को करादि देता है वह उसको अन्न सम्पदा से बढ़ाता है। उस प्रजाजन को वह तेजस्वी पुरुष उत्तम रक्षा-साधनों से बढ़ाता और गवादि पशु समृद्धि के बल पर या वाणी, शासनाज्ञा से युक्त गमनयोग्य न्याय मार्ग के (सातौ) ठीक प्रकार से प्रदान करने पर पालता पोषता है। (२) जो शिष्य गुरु को उत्तम वचनों सहित अपने को आचार्य के अधीन सौंप देता है वह (श्रवसा) श्रवणीय ज्ञान से स्वयं बढ़ता है वह उसे नाना विद्याओं से बढ़ाता और वेद वाणियों वाले प्राप्य वेदमय साहित्य के अनुशासन में धारण करता है।

आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥४॥

भा०—अग्नि वा सूर्य (दूरे-दृशा भासा उर्वी आ पप्रौ) दूर से दीखने वाली कान्ति से आकाश पृथिवी को पूर्ण कर देता है (अध ऊर्म्यायाः बहु चित् तमः शोचिषा तिरः ददृशे) और जिस प्रकार वह रात्रि के बहुत बहुत से अन्धकार को अपनी कान्ति से दूर कर देता है उसी प्रकार (कृष्ण-अध्वा) संसार-मार्ग पर सुख से जाने हारा, कृतकृत्य (यः) जो पुरुष (जायमानः) उदित होते सूर्य के समान प्रकट होकर अपने (दूरे-दृशा भासा) दूरदर्शी ज्ञान प्रकाश से, (उर्वी) अपने माता पिता और

बड़े स्त्री पुरुषों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है, वह (पावकः) सबको पवित्र करने हारा, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (ऊर्म्यायाः) उत्तम ज्ञान सम्पादन करने में लग्न जनता के (बहु चित् तमः) बहुत से अज्ञान अन्धकार को (शोचिषा) ज्ञान दीप्ति से (तिरः ददृशे) दूर करके यथार्थ पदार्थ का दर्शन कराता है ।

नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५॥

भा०—(ये) जो लोग (राधसा) धनैश्वर्य, ईश्वराराधन और कार्य साधन से और (श्रवसा) यश और ज्ञान से और (सु-वीर्येभिः च) उत्तम वीर्यवान् पुरुषों, बलयुक्त कार्यों और सामर्थ्यों से भी (जनान्) साधारण जनों से (अभि सन्ति) बढ़ जाते हैं, हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! एवं हे तेजस्विन् ! तू उन (मघवद्भ्यः) दान करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्यों के स्वामियों से (च) भी (चित्रं रयिम्) आश्चर्यजनक ऐश्वर्य (पुरु-वाजाभिः उती) बहुत अन्न और बलवाली भूमियों, सेना और रक्षाकारी उपायों से (नः) हमें (धेहि) प्रदान कर और हमें पालन पोषण कर । अर्थात् राजा को चाहिये कि धनवानों के धनों से भूमियों और सेनाओं को पुष्ट करे और उन द्वारा सामान्य प्रजाओं का पालन और पोषण करने की व्यवस्था करे ।

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (हविष्मान् उशन् आसानः जुहुते, अग्निः यज्ञं चनः दधाति) अन्न चरु का स्वामी सुख कामना युक्त होकर अग्नि में हवि होमता और वह अग्नि यज्ञ और अन्नादि हवि को स्वीकार करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक तेजस्विन् ! (हविष्मान्) अन्नादि देने योग्य कर आदि से युक्त प्रजाजन (आसानः) सुखपूर्वक राष्ट्र में

रहता हुआ, और (उशन्) तुझे चाहता हुआ और तुझ से शुभ आशाएं चाहता हुआ (यं ते जुहुते) जिस पदार्थ को तेरी वृद्धि के लिये देता है तू (इमं यज्ञं) इस दिये दान, और पूजा सत्कार को और (चनः) अन्नादि पदार्थ को (उशन् धाः) कामनावान् होकर ही धारण कर। तू (भरद्-वाजेषु) ऐश्वर्यों, अन्नों और बलों, सैन्यों को धारण करने वाले प्रबल पुरुषों के आश्रय ही (सु-वृक्तिम्) राष्ट्र में उत्तम मार्ग और शत्रु सेना का सुख से वर्जन करने वाली शक्ति सेना को भी (दधिषे) धारण पालन कर। (गध्यस्य) सभी के चाहने योग्य ऐश्वर्य की (सातौ) संग्राम के बल पर प्राप्त करने वा प्रजाजनों में यथोचित रीति से विभाग कर देने के लिये (अवीः) रक्षा कर।

वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१७॥१२॥

भा०—हे राजन्! हे स्वामिन्! तू (द्वेषांसि) द्वेष के भावों को तथा द्वेष करने वाले शत्रुजनों को (वि इनुहि) दूर कर (इडां) हमारी अभिलाषा करने योग्य, भूमि और उत्तम वाणी को (वर्धय) बढ़ा और हम सब (सुवीराः) उत्तर वीर और उत्तम पुत्रादि से युक्त होकर (शत-हिमाः) सौ २ हेमन्तों, सौ सौ बरसों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न होकर रहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

[११]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ६ विराट्त्रिष्टुप्। २ निचृत्पंक्तिः। षड्चं सूक्तम् ॥

यज॑स्व होतरिषि॒तो यजी॑या॒नग्ने॒ बाधो॑ म॒रुतां॒ न प्रयु॑क्ति।
आ नो॑ मि॒त्रावरु॑णा॒ नास॑त्या॒ द्यावा॑ हो॒त्राय॑ पृथि॒वी व॑वृत्याः ॥१॥

भा०—हे (होतः) देने हारे! तू (यजीयन्) सबसे बड़ा देने हारा, और तू ही (इषितः) हमारे इच्छाओं का विषय, प्रिय है।

(इषितः सन्) हम लोगों से प्रेरित एवं प्रार्थित होकर हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! तू (मरुताम्) मनुष्यों के (बाधः) बुरे मार्ग से रोकने और (प्रयुक्ति) उत्तम कर्म में लगाने वाला ज्ञान-बल और कर्म-बल (यजस्व) प्रदान कर और वह बल हमें दे और (नः होत्राय) हमें देने और हमें अपने अधीन लेने के निमित्त ही (मित्रावरुणा) स्नेहवान्, प्रजा को मृत्यु से बचाने वाले श्रेष्ठ और दुष्टों का वारण करने वाले पुरुषों को और (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, एवं नासिका स्थान अर्थात् अग्रपद पर विराजने योग्य, (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि के तुल्य सबको ज्ञान का प्रकाश और आश्रय तथा, जीवन अन्न देने वाले स्त्री पुरुषों को (आववृत्याः) सब प्रकार के कार्यों में आदर पूर्वक नियुक्त कर और पुनः उनको अपने कार्य में लगा ।

त्वं होता॑ मन्द्रत॑मो नो अ॒ध्रुग॒न्तर्दे॒वो वि॒दथा॒ मर्त्ये॑षु ।
पा॒वकया॑ जु॒ह्वा॒३॒॑ वह्नि॑रा॒साग्ने॒ यज॑स्व त॒न्वं१॒॑ तव॒ स्वाम् ॥२॥

भा०—इस देह की गृहस्थ से तुलना । जिस प्रकार (देवः) बलप्रद आत्मा अग्निवत् (मर्त्येषु अन्तः अध्रुक्) मरणशील देहों के बीच में देहों का द्रोह या नाश न करता हुआ, (मन्द्रतमः) आनन्द जनक एवं स्फूर्ति जनक (वह्निः) शरीर को वहन करने में समर्थ होकर (पावकया जुह्वा) पवित्रकारक, शरीरशोधक अन्न ग्रहण करने वाली शक्ति से (स्वां तन्वं यजते) अपने शरीर में यज्ञ करता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! (त्वं) तू (होता) अन्नादि का दाता, (मन्द्र-तमः) अति स्तुत्य, एवं अपने अधीनों को हर्षित करता और स्वयं अति प्रसन्न रहता हुआ, (अध्रुक्) किसी से द्रोह न करता हुआ, (देवः) दानशील, तेजस्वी, सत्य ज्ञान का प्रकाशक होकर (मर्त्येषु विदथा अन्तः) मनुष्यों के बीच में, यज्ञ में (वह्निः) गृहस्थ के भार को वहन करने में समर्थ होकर, (पावकया जुह्वा) अति पवित्र

करने वाली, आहुति अर्थात् वीर्याधान करने योग्य, वा प्रेमोपहारादि देने की पात्ररूप पत्नी के साथ तू (तव स्वां तन्वं यजस्व) अपने देह को संगत कर, अपना देह उससे मिलाकर पति पत्नी भाव से एक देह होकर रह, और (आसा) मुख अर्थात् वाणी द्वारा भी (यजस्व) उसको अपने साथ मिला। प्रेम प्रतिज्ञादि वचनों द्वारा मिला। (२) इसी प्रकार 'अग्निवत्' तेजस्वी नायक राजा, अद्रोही दाता सदा प्रसन्न प्रकृति हो, (पावकया जुह्वा) दोष शोधक, देने योग्य, वाणी और मुख से अपने अपने देह के समान राष्ट्र रूप देह को प्राप्त कर।

धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३॥

भा०—स्वयं वरण का प्रकार। (यद् ह) जब (विप्रः) विविध विद्याओं और ऐश्वर्यों में पूर्ण, बुद्धिमान् (रेभः) विद्वान् उत्तम वचनों को कहने वाला पुरुष (इष्टौ) यज्ञ में, वा सत्संग के निमित्त (मधु) मधु के समान मधुर, मनोहर ((छन्दः) अपनी स्वतन्त्र इच्छा को (वदति) कहता है और (अंगिरसां मध्ये वेपिष्ठः) अंगारों के बीच में कम्पनशील अग्नि के समान विद्वानों के बीच में (वेपिष्ठः) सबसे उत्तम वेद मन्त्र, उपदेशादि का उच्चारण करता है, हे विवाह करने हारे पुरुष ! (यजध्यै) संगति लाभ करने के निमित्त (देवान्) कन्या के दान करने वालों, उसके पिता, भाई, माता आदि के तथा अन्य विद्वान् पुरुषों के प्रति अपना (जन्म गृणते) जन्म काल तथा गोत्र, वंश आदि का उच्चारण करते हुए (त्वे) तुझे (धिषणा) गृहस्थ धारण करने में समर्थ, और स्वयं पोषण योग्य (धन्या) धनैश्वर्य देने की योग्य पात्री, सौभाग्यवती स्त्री (चित् हि) भी (प्र वष्टि) अच्छी प्रकार कामना करे। (२) इसी प्रकार तेजस्वी पुरुषों से (वेपिष्ठः) शत्रुओं को कंपा देने वाला, आज्ञापक, मधुर

इच्छा को प्रकट करे, वीरों के प्रति अपना स्वरूप बतलावे तब पालने योग्य धन समृद्ध प्रजा उसको अपना पति, स्वामी बनाना चाहती है।

अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४॥

भा०—अग्नि तुल्य वर का स्वरूप—जिस प्रकार अग्नि (वि-भावा) विशेष कान्ति से युक्त होता है, उसको (पञ्च-जनाः रात-हव्या अञ्जन्ति) पांचों जन, काष्ठ आदि उसमें देकर प्रकाशित करते हैं उसी (यं) जिस वरणीय (सु-प्रयसम्) उत्तम प्रयत्नशील उद्योगी को (पञ्च जनाः) पांचों प्रकार के जन (रात-हव्याः) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य पदार्थों को देकर (आयुं न) अभ्यागत अतिथि वा अपने प्रिय जीवन प्राण के तुल्य (नमसा) आदर पूर्वक नमस्कार और अन्नादि सत्कार द्वारा (अञ्जन्ति) सुशोभित करते, और चाहते हैं, वह (अपाकः) अन्यों को सन्तापकारी न होता हुआ (सु अदिद्युतत्) अग्नि के तुल्य अच्छी प्रकार प्रकाशित हो। हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (वि-भावा) विशेष कान्तियुक्त होकर (ऊरूची) बहुत आदरयुक्त (रोदसी) अपनी रुचि से तेरे समीप आने वाली पत्नी के साथ (यजस्व) संगति लाभ कर। लोक रीति से वर के लाल कपड़े उसकी अग्नि की तुल्यता को बतलाते हैं। अग्नि, 'काम' और वीर्य वा तेज का प्रतिनिधि है। (२) इसी प्रकार जिसको पांचों जन आदर करें वह तेजस्वी प्रजा को सन्ताप न देता हुआ चमके, (रोदसी) विस्तृत राज प्रजावर्गों को प्राप्त करे। 'रोदसी'—रुद्रस्य पत्नी, 'रुद्रः', रुचा कान्त्या द्रवति आगच्छति।

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५॥

भा०—गृहस्थ यज्ञ का वर्णन। गृहाश्रम की यज्ञ से तुलना। जिस

प्रकार (नमसा बर्हिः वृञ्जे) कुशादि अन्न के साथ यज्ञ में भी काटकर वेदी पर लाया और बिछाया जाता है, और (सु-वृक्तिः घृतवती स्रुक् अयामि) उत्तम रीति से त्यागने योग्य घीसे भरी स्रुक्, बहती धार वा स्रुक् नाम पात्र अग्नि में थामा जाता है तब (यज्ञः अश्रायि) यज्ञ वेदि में स्थिर होता है, उसी प्रकार (यत्) जिस समय (अग्नौ) अग्निवत् तेजस्वी, विनय-शील, अग्रनायक पुरुष के निमित्त (नमसा) उत्तम अन्न और विनय नमस्कारादि सत्कार द्वारा (बर्हिः) उसको आदर बढ़ाने वाला, आसन (वृञ्जे ह) दिया जाता है, तब (सु-वृक्तिः) उत्तम गति वाली उत्तम रीति से पति का वरण करने वाली, या सुखपूर्वक पिता द्वारा वरके हाथों में देने योग्य (घृतवती) घृत के समान स्नेह से युक्त वा देहपर घृत का अभ्यंग किये, वा तेजस्विनी, अर्घ्य, पाद्य, जलादि से युक्त, सुन्दर सजी वधू (अयामि) विवाह द्वारा बंधती है, विवाही जाती है। वह (सद्म) अपने आश्रय रूप पति वा पति के गृह को भी (अभ्यक्षि) प्राप्त होती है, और उसी समय (यज्ञः) पत्नी के साथ संगति लाभ करने वाला, उसको धन वीर्यादि का दाता पुरुष भी (पृथि-व्याः सदने स्वामी इव) पृथिवी के गृह में स्वामी के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के तुल्य स्त्री को (सदने) प्राप्त कराने वाले गृहाश्रम में (सूर्य-चक्षुः न) सूर्य के प्रकाश से युक्त चक्षु के समान (अश्रायि) स्थित होता है। वधू पति को अपना गृह समझ उस पर आश्रय करे और पुरुष उसको योग्य भूमि जान उसी को अपना गृह जाने, उसमें आश्रय ले, दोनों एक दूसरे के लिये प्रकाश और चक्षु के समान उपकार्य उपकारक, प्रकाश्य प्रकाशक और द्रष्टा और दर्शक हों।

द॒श॒स्या नः॑ पुर्वणीक होतर्दे॒वेभि॑रग्ने अ॒ग्निभि॑रिधा॒नः ।
रा॒यः सू॑नो सहसो वाव॒साना अति॑ स्रसेम वृ॒जनं॒ नांहः॑ ॥६॥१३॥

भा०—हे (पुर्वणीक) बहुत सी कान्तियों या शोभाओं से युक्त

मुख वाले ! सुमुख ! हे (होतः) वधू को अन्न, धन, वस्त्रादि देने, और कन्या को स्वयं स्वीकार करने हारे ! हे (अग्ने) अग्नि के समान कान्तिमान्! तू (अग्निभिः) अग्नि के समान उज्ज्वल (देवेभिः) किरणों से सूर्य के समान उत्तम गुणों से (इधानः) प्रकाशित होता हुआ (नः) हमें (रायः) दान देने योग्य ऐश्वर्य (दशस्य) प्रदान कर । हे (सहसः-सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! एवं बल के उत्पादक ! (वावसानाः) अपने को अच्छी प्रकार कवच, वस्त्रादि से आच्छादित करते, वा बचाते हुए सुरक्षित रूप से हम (वृजनं न) वर्जन करने योग्य शत्रु वा गन्तव्य मार्ग के समान ही (अंहः) पाप को भी (अति स्रसेम) पार कर जावें । उसी प्रकार अग्रणी नायक तेजस्वी, विजयेच्छु पुरुषों सहित देदीप्त होकर हम प्रजाजनों को ऐश्वर्य दे, हम कवचादि से अच्छादित होकर पापवत् शत्रु को पार करें । बहुत से सैन्यों का स्वामी 'पुर्वणीक' है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[१२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत्-त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान॥१॥

भा०—अग्नि के दृष्टान्त से राजा और गृहपति विद्वान् का वर्णन । जिस प्रकार (यजध्यै बर्हिषः मध्ये बलस्य सूनुः राड् अग्निः दुरोणे सूर्यः न ततान) यज्ञ के निमित्त बिछे कुशामय आस्तरणों के बीच में बल द्वारा उत्पन्न चमकने वाला अग्नि गृह में सूर्य के समान अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक, एवं विद्वान् (रोदसी यजध्यै) स्त्री पुरुषों और राजा प्रजा वर्गों को परस्पर संगत करने के लिये स्वयं (होता) दानशील होकर (तोदस्य) शत्रुजनों को और पीड़ादायी

(बर्हिषः मध्ये) वृद्धिशील बिछे, कुशामय आस्तरणादि के बीच में (दुरोणे) अन्य प्रतिस्पर्धियों से न प्राप्त न होने योग्य उत्तम आसन वा पद पर या दुर्ग में स्थित होकर (सः) वह (राट्) तेजस्वी सम्राट् (सहसः सूनुः) शत्रु पर भयकारी सैन्य का सञ्चालक और (ऋतावा) सत्य न्याय का पालक होकर (दूरात्) दूर से ही (सूर्यः न) सूर्य के समान (शोचिषा ततान) अपनी कान्ति से अपने राज्य को फैलावे।

आ यस्मि॒न्त्वे स्वपा॑के यजत्र॒ यक्ष॑द्राजन्त्स॒र्वता॑तेव॒ नु द्यौः ।
त्रि॒ष॒धस्थ॑स्तत॒रुषो॒ न जंहो॑ ह॒व्या म॒घानि॒ मानु॑षा॒ यज॑ध्यै ॥२॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील, हे पूज्य ! सत्संग योग्य विद्वन् ! हे (राजन्) राजन् ! (सर्वताता) सर्वहितकारी (द्यौः) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष और सुखदात्री भूमि (अपाके) अपरिपक्व बुद्धि बल वाले (त्वे यस्मिन्) जिस तुझे (हव्या मघानि) उत्तम २ ग्रहण योग्य नाना (मानुषा) मनुष्यों के उपकारक ऐश्वर्य (आ दक्षन्) प्रदान करती है और तुझे बलवान् बनाती है वह तू (त्रि-सधस्थः) तीन सभाओं में स्थित होकर (तत-रुषः) सबको संकटों से तारने वाले सूर्य के समान (जंहः) सर्वत्र वेग से जाता हुआ (मानुषा मघानि हव्या यजध्यै यक्षत्) मनुष्यों के हितकर ऐश्वर्यों और नाना खाद्य अन्नों को देने के लिये यज्ञ किया कर।

तेजि॑ष्ठा य॒स्या॑र॒तिर्व॑ने॒ राट् तो॒दो अध्व॒न्नवृ॑धसा॒नो अ॑द्यौत् ।
अ॒द्रो॒घो न द्र॑वि॒ता चे॑तति॒ त्मन्नम॑र्त्योऽव॒र्त्र ओष॑धीषु ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि का (अरतिः तेजिष्ठा) बन या जंगल में लगना ही अति तीक्ष्ण है और जैसे अग्नि (अध्वन् न तोदः) हण्टर के समान मार्ग में बढ़ता है उसी प्रकार (यस्य) जिसका (अरतिः) आगमन ही (तेजिष्ठा) अति तेज वा प्रभाव से युक्त और जो (राट्) स्वयं तेजस्वी

सम्राट् होकर (तोदः) पशुओं पर चाबुक के समान (अध्वन्) मार्ग में (वृधसानः) चलने वाले प्रजाजनों को आगे बढ़ाने वाला, उनको उन्नति पथ पर लेजाने हारा होकर (अद्यौत्) चमकता है, वह (अद्रोघः) प्रजा का द्रोह न करने हारा होकर (त्मन्) अपने आप में ही स्वतः (द्रविता न) वेग से जाते रथ के समान वेगवान् होकर (ओषधीषु) ओषधियों में अग्निवत् प्रजाओं में (अवत्रः) किसी से निवारण न किया जाकर (चेतति) सबको चेताता है ।

सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्र्वन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥ ४ ॥

भा०—(एतरि दमे न) आने वा प्रवेश करने योग्य गृह में जिस प्रकार (अग्निः स्तवे) सबसे प्रथम अग्नि रख यज्ञ किया जाता है वा (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर से मङ्गल प्रार्थना की जाती है उसी प्रकार (जात-वेदाः) ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्रणी पुरुष की भी (अस्माकेभिः) हमारे (शूषैः) बल और सुखकारी वचनों से (स्तवे) स्तुति योग्य (दमे) दमन या शासन कार्य में प्रशंसनीय हो । (द्रुवन्नः क्रत्वा यज्ञैः जारयायि) काष्ठों को अन्न के समान खाने वाला अग्नि जिस प्रकार उत्तम यज्ञ और यज्ञांगों से स्तुति किया जाता है, और (अर्वा न क्रत्वा) और जिस प्रकार वेगवती क्रिया के कारण अश्व प्रशंसनीय होता है, और जिस प्रकार (पिता इव) पिता के समान उत्तम सन्तान का उत्पादक नर उत्तम सन्तानों के कारण प्रशंसनीय होता है उसी प्रकार राजा वा गृहपति (द्रु-अन्नः) वनस्पतियों के फल पत्रादि और अन्न का भोग करता हुआ (क्रत्वा) क्रियाशीलता और बुद्धि के द्वारा (उस्रः वन्वन्) भूमियों, दाराओं और वाणियों का सेवन करता हुआ (पिता इव) पालक पिता के समान ही (यज्ञैः) उत्तम सत्संगों, दानों और सत्कारों आदि से (जारयायि) स्तुति किया जाता है ।

अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट्॥५॥

भा०—यह अग्नि या विद्युत् (यत् भासः तक्षत्) जिन दीप्तियों को पैदा करता है और जो यह (पृथ्वीम् अनुयाति) विद्युत् भूमि की ओर वेग से चला जाता है लोग (अस्य भासः पनयन्ति) इसकी दीप्तियों की प्रशंसा करते हैं और जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् (स्यन्द्रः) जलवत् (विषितः) बन्धनयुक्त होकर बहने वाला, गतिशील, (धवीयान्) शरीर को स्पर्श करते ही कंपा देने वाला, (तायुः न ऋणः) चोर के समान चुप चाप निकल भागने वाला, (धन्वा अति राट्) अन्तरिक्ष में खूब चमकता है। उसी प्रकार यह राजा (यत् भासः वृथा तक्षत्) जब तेज अनायास उत्पन्न कर लेता है और तो भी (पृथ्वीम् अनुयाति) पृथ्वी अर्थात् देशवासिनी प्रजा का ही अनुगमन करता है, (अध) तब लोग (अस्य) इसके (भासः) तेजों कान्तियों या चमकते गुणों की (पनयन्ति) प्रशंसा किया करते हैं। (यः) जो राजा (स्यन्द्रः) वेग से रथादि से जाने में कुशल, (वि-सितः) स्वतः बन्धन से मुक्त या विशेष राज नियमों से बद्ध, (धवीयान्) शत्रुओं को कंपा देने वाला वा प्रजा या पृथ्वी रूप पत्नी का सबसे उत्तम पति होकर भी (तायुः न) चोर के समान अलक्षित भाव से पृथ्वी का भोग वा प्रजा का वर्धन करने वाला होकर (धन्वा) धनुष के बल से (अति राट्) सब से अधिक तेजस्वी राजा होकर चमकता है।

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥१४॥

भा०—हे (अर्वन्) शत्रुओं के नाश करने हारे! हे अश्व के समान नियुक्त होकर राष्ट्र-रथ के सञ्चालक! महारथिन्! धुरन्धर! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! परंतप! (अग्निभिः) आगे जाने वाले नाना नायकों, किरणों वा ज्वालाओं से सूर्य वा अग्नि के समान

(इधानः) खूब देदीप्यमान होकर, (त्वं) तू (निदायाः) निन्दित प्रजा वा निन्दा से (नः) हम लोगों को (वेषि)दूर रख । (नः रायः वेषि) हमारे उत्तम ऐश्वर्यों, धनों की कामना कर, वा उनकी निन्दित जनता वा निन्दित क्रिया से नष्ट होने से (वेषि) रक्षा कर । तू (दुच्छुनाः) दुःख-दायी कुत्ते के समान काटने वाली, वा सुख की नाशक परसेनाओं, वा बुरी जनताओं को (वि यासि) विशेष रूप से चढ़ाई कर, विविध प्रकार से नाश कर, जिससे हम (सुवीराः) उत्तम वीरों और सन्तानों सहित (शतहिमाः मदेम) सौ २ वर्ष की आयु वाले होकर आनन्द से जीवन व्यतीत करें । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २ स्वराट्-पंक्तिः । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्र्चं सूक्तम् ॥

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत् से (विश्वा सौभगानि) समस्त सुखजनक ऐश्वर्य (वनिनः न वयाः) वृक्ष से शाखाओं के तुल्य उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार हे (सुभग) उत्तम, ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (विश्वा सौभगानि) समस्त सौभाग्य (वनिनः वयाः न) वृक्ष से शाखाओं के समान (वियन्ति) विविध प्रकार से निकलते हैं । अथवा—(वयाः न) पक्षी जिस प्रकार (वनिनः) समस्त सुखों को वृक्ष से (वियन्ति) प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (वनिनः त्वत्) ऐश्वर्यवान् तुझ से ही (वयाः) तेरे शाखा के समान राष्ट्र के सब भाग (विश्वा सौभगानि) समस्त सौभाग्य सुख (वि यन्ति) विशेष रूप से वा विविध प्रकार से प्राप्त करते हैं । जिस प्रकार (श्रुष्टिः रयिः वृत्रतूर्ये

दिवः वृष्टिः अपां रीतिः अग्नेः वनिनः च) अन्न, देह, मेघ, विद्युत्, वृष्टि और जलों की धारा आदि सब ही तेजस्वी सूर्य और विद्युत् से ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार हे राजन्! (श्रुष्टिः) अन्न समृद्धि, (रायः) ऐश्वर्य, सम्पदा, (वृत्रतूर्ये) शत्रु के नाश करने के निमित्त (वाजः) बल, सैन्य आदि (वृष्टिः) शस्त्र-वर्षण और प्रजा पर समस्त सुखों की वृष्टि और (अपां रीतिः) आप्त पुरुषों का आगमन, प्रजाओं का सन्मार्ग में चलना और राष्ट्र में जल धाराओं, नहरों का बहना, आदि सब (दिवः त्वत्) सर्व कामना योग्य, सूर्यवत् तेजस्वी तुझ से ही उत्पन्न होता है।

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (रत्नम् इषे) सुन्दर प्रकाश को दूर तक फेंकता, वा देता है, (परिज्मा इव दस्मवर्चाः क्षयति) वायु या प्राण के समान क्षीण तेज होकर वा अन्न को देह में क्षय करता हुआ जाठराग्नि रूप से निवास करता है। (ऋतस्य मित्रः) और जल को मित्रवत् स्नेह से चाहता है, (भूरेः क्षत्ता) बहुत से सुख का दाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन्! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (भगः) स्वयं ऐश्वर्य-वान् सेवने योग्य होकर (नः) हमारे लिये (रत्नम्) रमणीय ऐश्वर्य को (आ इषे हि) सब ओर से देता, चाहता वा प्राप्त करता है। तू (दस्मवर्चाः) शत्रुओं के नाशकारी तेज से युक्त होकर (परि-ज्मा इव) सर्वत्रगामी वायुवत् (परि-ज्मा) भूमि पर शासक होकर (क्षयसि) शत्रु का नाश करता और प्रजा को बसाता है। और तू (मित्रः न) मरण या नाश होने से बचाने वाला सूर्यवत् (बृहतः ऋतस्य) बड़े भारी न्याय, सत्य ज्ञान रूप प्रकाश का (क्षत्ता असि) देने वाला हो। और हे विद्वन्! तेजस्विन्! दातः! तू (भूरेः वामस्य) बहुत से सुन्दर संभोग्य ऐश्वर्य का भी (क्षत्ता असि) देने वाला हो।

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य रूप अग्नि (सत्पतिः) जलों का स्वामी होकर (शवसा वाजम् वि भर्त्ति) जल से अन्न का पोषण करता है, (ऋत-जाताः) वह अन्नों को उत्पन्न करके (अपां नप्त्रा) जलों को आकाश से न गिरने देने वाले जलवाहक मेघ द्वारा ही बढ़ाता है उसी प्रकार हे (अग्ने) हे (प्रचेतः) प्रकृष्ट, उत्तम ज्ञानवन्! हे विद्वन्! हे उत्तम धन के संग्रहीता राजन्! तू (ऋत-जातः) ज्ञान और ऐश्वर्य में प्रसिद्ध होकर (राया) ऐश्वर्य से और (अपां नप्त्रा) आप्तजनों, प्रजाओं के सुप्रबन्ध करने वाले, वा उनको सन्मार्ग से न गिरने देने वाले विद्वानों तथा जल-धाराओं को बांधने वाले शिल्पीजन से (सजोषाः) प्रेमपूर्वक मिलकर (यं हिनोषि) तू जिसको बढ़ा देता है वह हे सूर्य वा अग्निवत् तेजस्विन्! तू (सत्पतिः) सज्जनों का पालक, होकर (शवसा) बल से (वृत्रम् हन्ति) विघ्नकारी और बढ़ते हुए शत्रु को नाश कर। और (विप्रः) विद्वान् मेधावी जिस प्रकार (पणेः वाजम् शवसा वि भर्त्ति) स्तुत्य, पाठशील शिष्य के ज्ञान को अपने ज्ञान से बढ़ाता है उसी प्रकार तू भी (विप्रः) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारा (पणेः) व्यवहारशील वैश्य जन के (वाजम्) ऐश्वर्य को (वि भर्त्ति) विविध प्रकारों से पूर्ण करता, समृद्ध करता है।

यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक! (यः) जो (ते) तेरी (गीर्भिः) वाणियों से (उक्थैः) उत्तम वचनों से, (यज्ञैः) उत्तम सत्संगों और सत्कारों से (वेद्या) वेदिवत् पृथिवी से (निशितिम्) अग्नि के समान तेरी तीक्ष्णता को

(आनट्) प्राप्त करता वा तुझे कराता है (वः) वह हे (देव) दातः, हे तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! (सः) वह (विश्वं वारम् प्रति धत्ते) समस्त वरण योग्य धन को धारण करता, और (विश्वंवारं प्रति-धत्ते) सब निवारणीय शत्रु सैन्य का मुक़ाबला करता और (वारं प्रति-धत्ते) शत्रु वारक सैन्य बल को प्रतिक्षण धारण करता है। और वह (वसव्यैः) ऐश्वर्यों से (पत्यते) बलधारी स्वामी हो जाता है।

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५ ॥

भा०—(यत्) जो तू (शवसा) अपने बल से (वृकाय) भेड़िये वा चोर के समान (जसुरये) प्रजा के नाशकारी (अरये) शत्रु को पकड़ने और नाश करने के लिये (भूरि) बहुत भारी (पश्वः वयः) अश्व आदि पशु वा द्रष्टा, अध्यक्ष का बल (कृणोषि) सम्पादन करता है। वह तू हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) शत्रुपराजयकारी, बलवान् वीर पुरुष के पुत्र ! हे बलवान् क्षत्रबल सैन्य के सञ्चालक ! तू (नृभ्यः) उत्तम नेता पुरुषों और प्रजाजनों के हितार्थ (ता) वे वे नाना (सौश्रवसा) उत्तम २ अन्न, कीर्त्ति आदि से युक्त (सुवीरा) उत्तम पुत्र, वीर भृत्यादि से सम्पन्न ऐश्वर्य (पुष्यसे) राष्ट्र को परिपुष्ट करने के लिये (धाः) धारण कर।

वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः॥६॥१५

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे (सहसः सूनो) सैन्य बल के सञ्चालक ! तू (विहायाः) महान् होकर (नः) हमारा (वद्मा) उपदेष्टा हो। और (नः) हमें (वाजि) अन्न, बल, ऐश्वर्यादि सम्पन्न धन तथा (तोकं) वंश को बढ़ाने और दुःख के नाश करने वाले

पुत्र तथा (तनयम्) पौत्र सन्तान (दाः) दे। अथवा—[वाजिनः इत्येकं पदम्] हममें से अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त बलवान् जन को पुत्र पौत्रादि दे। वा हमें (वाजिनः) ज्ञानी और बलवान् नाना पुरुष तथा पुत्र सन्तान प्रदान कर। मैं (विश्वाभिः गीर्भिः) समस्त उत्तम वाणियों से (पूर्त्तिम् अभि अश्याम्) पूर्णता को प्राप्त करूं। हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द लाभ करें। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[१४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ भुरिगुष्णिक् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् । ६ भुरिगतिजगती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्ना यो मर्त्यो॒ दुवो॒ धियं॑ जु॒जोष॑ धी॒तिभिः॑ ।
भस॒न्नु ष प्र पू॒र्व्य इषं॑ वुरी॒ताव॑से ॥ १ ॥

भा०—(यः मर्त्यः) जो मनुष्य (धीतिभिः) उत्तम कर्मों से और अपने कर्म करने के अंगों से और धाराओं वा अध्ययनों से (अग्नौ) ज्ञानी मार्ग नेता पुरुष के अधीन रहकर (दुवः) उपासना या सेवा करता और (धियं जुजोष) उत्तम कर्म का आचरण और उत्तम ज्ञान का अभ्यास करता है (सः नु) वह शीघ्र ही (पूर्व्यः) पूर्व विद्यमान अपने से बड़े ज्ञानी गुरुजनों का हितैषी और उनकी विद्या से सुभूषित होकर (प्र भसत्) खूब चमक जाता है। और वह (अवसे) अपने जीवन रक्षा करने के लिये (इषं) उत्तम अन्न और बल भी (वुरीत) प्राप्त करता है।

अ॒ग्निरिद्धि प्रचे॑ता अ॒ग्निर्वे॒धस्त॑म॒ ऋषिः॑ ।
अ॒ग्निं होता॑रमीळते य॒ज्ञेषु॒ मनु॑षो॒ विशः॑ ॥ २ ॥

भा०—विद्वान् अग्नि का स्वरूप ! (अग्निः इत् हि) वह अग्नि ही है जो (प्र-चेताः) उत्तम ज्ञान से युक्त और अन्यों को उत्तम ज्ञान से

ज्ञानवान् करता तथा स्वयं उदार हृदय वाला है। (अग्निः) वह 'अग्नि' कहाने योग्य है जो (ऋषिः) सत्य यथार्थ ज्ञान का दर्शन करने हारा और (वेधस्तमः) सबसे अधिक बुद्धिमान् एवं कर्म करने और विधान, निर्माण करने में कुशल है।

नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे तेजस्विन्! (नाना) बहुत से (आयवः) लोग (व्रतैः) अपने उत्तम कर्मों से (अव्रतम्) कर्महीन, व्रतादि रहित (दस्युम्) प्रजानाशक पुरुष को (सीक्षन्तः) पराजित करते और (तूर्वन्तः) उसका नाश करते हुए (अर्यः रायः अवसे) शत्रु के धन की प्राप्ति, और स्वामी के धन की रक्षा करने के लिये (स्पर्धन्ते) स्पर्धा करते हैं। अथवा (रायः अवसे स्पर्धन्ते त्वं तेषामर्यः) जो धन के प्राप्ति करने के लिये स्पर्धा करते हैं तू उनका स्वामी हो।

अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम्।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥ ४ ॥

भा०—तेजस्वी नायक क्या प्रस्तुत करता है ? (अग्निः) अग्नि, विद्युत् आग्नेय अस्त्रादि द्वारा सुसज्जित नायक हमें (अप्साम्) समस्त प्रजाओं के तथा उत्तम कर्मों को (वीरं) विशेष रूप से उत्साहित करने और स्वयं करने वाला, वीर (ऋतीषहं) शत्रुओं के पराजय करने वाला, ऐसा (सत्पतिम्) सज्जनों का पालक पुरुष (ददाति) देता है (यस्य शवसा) जिसके बल से (शत्रवः त्रसन्ति) शत्रु लोग भय खाते रहते हैं और (सञ्चक्षि) अच्छी प्रकार देखते रहने पर उसके समक्ष (भिया) भय से कांपते रहते हैं।

अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५ ॥

भा०—(अग्निः हि) अग्रणी नायक या ज्ञानवान् पुरुष ही (देवः) तेजस्वी होकर (विद्मना) ज्ञान के बल से (निदः) निन्दकों का (सहावा) पराजय करता हुआ (मर्त्तम्) मनुष्यमात्र की (उरुष्यति) रक्षा करता है। वह स्वयं (अवृतः) विना किसी के वरण किये हुए या विना कुछ चेष्टा किये भी (यस्य) जिसके (रयिः) ऐश्वर्य और बल (वाजेषु अवृतः) संग्राम करने के अवसरों पर छुपा नहीं रहता।

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः। वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥ ६ ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २। मन्त्र ११ ॥ हे (मित्रमहः अग्ने) मित्रों के पूजने योग्य ! हे मित्रों द्वारा आदृत ! हे बड़े २ मित्रों वाले, स्नेहवान् पुरुषों के तुल्य महान्, हे (देव) दानशील ! ज्ञानवान् नायक ! तू (नः देवम् अच्छ रोदस्योः सुमतिं वोचः) हम उत्तम वा तुझे चाहने वाले, हमें और सूर्य पृथिवी के तुल्य परस्पर उपकारबद्ध गृहस्थ स्त्री पुरुषों वा राजा प्रजावर्गों के योग्य शुभ ज्ञान उपदेश कर। (स्वस्ति) कल्याणकारी (सुक्षितिं) उत्तम निवास वा उत्तम भूमि को (वीहि) प्राप्त कर, उसे चाह और प्रकाशित वा उपभोग कर (दिवः नृन्) कामना करने वाले पुरुषों को चाह। (द्विषः अंहांसि, दुरिता तरेम) हम शत्रुओं को, पापों को, और दुष्टाचरणों को लांघ जाएं, (ता) उन नाना पदार्थों से पार हो जावें, (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा और कामना से हम (तरेम) तर जावें। इति षोडशो वर्गः ॥

[१५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृज्जगती। ३ निचृदतिजगती। ७ जगती। ८ विराड्जगती। ४, १४

भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, १०, ११, १६, १९ त्रिष्टुप् । १३ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृदतिशक्करी । १२ पंक्तिः । १५ ब्राह्मी बृहती । १७ विराडनुष्टुप् । १८ स्वराडनुष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

इ॒मम् षु वो॒ अति॑थिमुष॒र्बुधं॒ विश्वा॑सां वि॒शां पति॑मृञ्जसे गि॒रा ।
वेतीद्दि॒वो ज॒नुषा॒ कच्चि॒दा शुचि॒र्ज्योक् चि॑दत्ति॒ गर्भो॒ यदच्यु॑तम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (वः) अपने लोगों में से जो (दिवः) ज्ञान प्रकाश के कारण (जनुषा) स्वभाव से (शुचिः) शुद्ध पवित्र है जो (स्वयं गर्भः) विद्यादि ग्रहण करने में समर्थ होकर (अच्युतम्) अविनाशी, स्थिर नित्य वेद ज्ञान को (आ अत्ति) सब प्रकार से भोगता है, और (वेति इत्) स्वयं विद्या से चमकता है (इमम्) उस (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य, (उषः-बुधम्) प्रातःकाल स्वयं जागने वाले, यज्ञाग्निवत् वा सूर्यवत् तेजस्वी, अन्यों को प्रभात, वा जीवन के प्रभात वेला बाल्य और कौमार दशा में ज्ञान द्वारा प्रबुद्ध करता है उस (विश्वासां विशाम्) आश्रम में प्रविष्ट समस्त शिष्यों को (पतिम्) प्रजावत् पालन करने वाले गुरु की (गिरा ऋञ्जसे) विनीत वाणी से सेवा किया कर । अध्यात्म में 'अच्युत', 'वीतहव्य' जीव है । उसको अपने में ले लेने हारा तेजोमय अग्नि 'प्रभु' है । उसकी वाणी से स्तुति कर ।

मि॒त्रं न यं सुधि॑तं॒ भृग॑वो द॒धुर्वन॒स्पता॒वीड्य॑मू॒र्ध्वशो॑चिषम् ।
स त्वं सुप्री॑तो वी॒तह॑व्ये अद्भुत॒ प्रश॑स्तिभिर्महयसे दि॒वेदि॑वे ॥ २ ॥

भा०—(ऊर्ध्व-शोचिषम्) अग्नि के समान ऊपर उठती कान्ति वाले (ईड्यम्) पूज्य, वाणी उपदेश के योग्य, विद्या के इच्छुक पुरुष को (वनस्पतौ) सूर्यवत् विद्यायाचक, विद्यार्थी जनों के पालक आचार्य के अधीन रहते हुए नाना (भृगवः) वेद वाणियों को धारण करने वाले (यम्) जिसको (सुधितं दधुः) उत्तम रूप से सुरक्षित रखते हैं (सः

त्वं) वह आप हे (अद्भुत) महाशय ! (वीतहव्ये) दान करने और आदर से ग्रहण करने योग्य ज्ञान के देने वाले गुरु के अधीन ही (सुप्रीतः) अति प्रसन्न होकर (प्रशस्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं और उपदेश वचनों से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (महयसे) पूजा आदर वचनों को प्राप्त हो । ऐश्वर्यों का पालक पद 'वनस्पति' उस पर पूज्य तेजस्वी पुरुष भी (भृगवः) गो रक्षक और वाणी के धारण करने वाले विद्वान् और भूमि के धारक सामन्तजन जिसकी पुष्टि रक्षा करते हैं वह तू, महान् ! सुप्रसन्न होकर उत्तम शासनों से दिनों दिन आदर को प्राप्त कर ।

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥ ३ ॥

भा०—(सहसः सूनो) बलवान्, सहनशील तपस्वी पुरुष के पुत्रवत् (सः त्वं) वह तू (दक्षस्य) बल, तेज और कर्म सामर्थ्य को (वृधः) बढ़ाने हारा और (अन्तरस्य) भीतर के (परस्य तरुषः) हिंसाकारी काम आदि अन्तः शत्रु का भी (अर्यः) अभ्यन्तर स्वामी (भूः) हो । तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (वीत-हव्याय) अपने देय भाग के स्वतः देने वाले प्रजाजन के हितार्थ (सप्रथः) अति विस्तृत (छर्दिः यच्छ) गृह, शरण प्रदान कर । इसी प्रकार (भरद्वाजाय) वाज, ज्ञान, ऐश्वर्य के धरने और ला २ कर संग्रह करने वाले पुरुष को भी (सप्रथः छर्दिः यच्छ) अति विस्तृत शरण प्रदान कर । राजा भी निष्कपट, अचौर, शत्रुदाहक बल का बढ़ाने वाला, हिंसक शत्रु का नाशक स्वामी हो, वह (सहसः) बल का सञ्चालक 'वीतहव्य' करप्रद प्रजाजन और (भरद्वाजाय) संग्राम, बल, अन्न के पालक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सबको शरण दे ।

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वानो ! (वः) आप लोगों के बीच में (द्युतानं) सदा चमकने वाले (अतिथिं) सर्वत्र व्यापक और अतिथिवत् पूज्य (स्वः-नरम्) सुखमय मार्ग में ले जाने हारे, (मनुषः होतारं) मनुष्य को सब कुछ देने हारे (सु-अध्वरम्) उत्तम, यज्ञ के पालक, स्वयं कभी नाश न होने वाले (द्युक्ष-वचसं) कान्तिवत् उज्ज्वल वाणी को कहने वाले (विप्रं) विविध ज्ञानों से पूर्ण विद्वान् के तुल्य (सु-वृक्तिभिः) उत्तम २ प्रशंसाओं द्वारा (हव्य-वाहम्) हव्य, अन्नादि पदार्थों के धारक, अग्निवत् तेजस्वी, (अरतिं) अतिज्ञानी, (देवं) प्रकाशस्वरूप गुरु की और प्रभु की (ऋञ्जसे) सेवा किया कर। उत्तम यज्ञमय होने से परमेश्वर 'स्वध्वर', प्रकाशस्वरूप होने से 'द्युतान', आनन्दप्रद, ज्ञानप्रद होने से 'स्वर्नर', अन्नादि देने से 'हव्यवाह्' है उसको हे जीव तू भक्ति स्तुति से सेवा कर।

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ५।१७

भा०—(यः) जो (पावकया) अन्यों को पवित्र कर देने वाली अग्नि के तुल्य, तीव्र सन्तापजनक (चितयन्ता) ज्ञान देने वाली, (कृपा) कृपा, सामर्थ्य या शक्ति से (भानुना उषसः न) कान्ति से उषाकालों के समान, वा (उषसः भानुना) प्रभात वेला के समान (क्षामन्) भूमि पर (आ रुरुचे) सर्वत्र सबको अच्छा लगता और प्रकाशित होता है, और (यः) जो (घृणे रणे) खूब चमकते रण में (यामन्) प्रयाण काल या मार्ग में (तूर्वन्) शत्रुओं का नाश करता हुआ (एतशस्य) अश्व के स्वामी, महारथी (नू) के समान और (ततृषाणः न) प्यासे के समान (अजरः) जरा रहित बलवान् होकर (आ रुरुचे) सब प्रकार से चमकता है। उस स्वामी प्रभु की तू स्तुति किया कर। परमेश्वर परम पावनी ज्ञानमयी कृपा से सर्वत्र चमकता है वह अजर, अमर है तो भी

जल के प्यासे सूर्य के तुल्य वा रण में वीरवत् पापों का नाश करता है। उसकी स्तुति कर। इति सप्तदशो वर्गः॥

अग्निम॑ग्निं वः स॒मिधा॑ दुवस्यत प्रि॒यंप्रि॑यं वो अति॑थिं गृणीषणि॑।
उप॑ वो गी॒र्भिर॒मृतं॑ विवासत दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि वार्यं॑
दे॒वो दे॒वेषु॒ वन॑ते॒ हि नो॒ दुवः॑॥ ६॥

भा०—हे विद्वान् भक्त जनो! (वः) आप लोग अपने में (अग्निम् अग्निम्) अग्नि के समान स्वप्रकाश, अति तेजस्वी प्रभु को अग्नि को समिधा से जैसे, वैसे (दुवस्यत) उपासना करो (वः) अपने (गृणीषणि) स्तुति के कार्य में एकमात्र लक्ष्यभूत (अतिथिम्) सर्वव्यापक, पूज्य (प्रियं-प्रियम्) अति प्रिय उस प्रभु की ही सेवा करो। (वः) आप लोग अपने में (अमृतम्) अमृत, अविनाशी रूप से विद्यमान आत्मा को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (उप विवासत) उपासना किया करो। (देवः) सर्वदाता, तेजोमय परमेश्वर (देवेषु) अपने कामनावान् भक्तों में ही (वार्यं वनते) उत्तम ऐश्वर्य देता और (नः दुवः वनते हि) वही निश्चय से हमारी सेवा, परिचर्या और स्तुति आदि भी स्वीकार करता है।

समि॑द्धम॒ग्निं स॒मिधा॑ गि॒रा गृ॑णे॒ शुचिं॑ पाव॒कं पुरो॑ अध्व॒रे ध्रुवम्।
विप्रं॒ होता॑रं पुरु॒वार॑म॒द्रुहं॑ क॒विं सु॒म्नैरी॑महे जा॒तवे॑दसम्॥ ७॥

भा०—(अध्वरे यथा समिधा समिद्धं अग्निं पुरः गृणे) यज्ञ में जिस प्रकार समिधा से चमकते हुए अग्नि को पुरः स्थापित करके परमेश्वर की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (समिधा) अच्छी प्रकार प्रकाशित (गिरा) वाणी से (समिद्धम्) अच्छी प्रकार प्रकाशित (अग्निम्) ज्ञानवान् (ध्रुवं) स्थिर, (पावकं) दोषों को दूर करके पवित्र करने वाले, (शुचिं) शुद्धचित्त प्रभु वा विद्वान् को (अध्वरे) हिंसा आदि से रहित, ज्ञानमय यज्ञ में (पुरः) समक्ष रख उसकी (गृणे) स्तुति

करूं। और (जात-वेदसम्) ज्ञानों के स्वामी, (विप्रम्) विविध विद्याओं से हमें पूर्ण करने वाले (पुरु-वारम्) बहुतों से वरण करने और बहुतों के बहुत से कष्टों का निवारण करने वाले, (अद्रुहं) द्रोहरहित, (होतारं) ज्ञानैश्वर्य के दाता (कविं) क्रान्तदर्शी, विद्वान् प्रभु को (सुम्नैः) शुभ, उत्तम मनन योग्य वचनों और मन्त्रों से हम (ईमहे) प्रार्थना किया करें।

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे॥८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! प्रभो! (दूतं) दुःखों को दूर करने वाले, शत्रु को संताप देने वाले, (अमृतम्) अविनाशी, (हव्यवाहं) ग्रहण करने योग्य, उत्तम स्तुतिवचन, अन्नादि के स्वीकार करने वाले, (पायुम्) पवित्रकारक (ईड्यम्) स्तुति योग्य (जागृविम्) सदा जागृत, चैतन्य (विभुं) विशेष सामर्थ्य से युक्त, व्यापक (विश्पतिम्) प्रजाओं के पालक (त्वां) तुझ प्रभु को (देवासः च मर्त्तासः च) विद्वान् जन और साधारण मनुष्य भी (युगे-युगे) प्रतिदिन, प्रतिवर्ष, प्रति युग, (दधिरे) धारण करते, और ध्यान में धरते तथा (नमसा) नमस्कार पूर्वक (नि षेदिरे) उपासना करते रहते हैं और आगे भी नमस्कार द्वारा उपासना करते रहा करें।

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ९

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! सर्व प्रकाशक! प्रभो परमेश्वर! तू (उभयान् अनु) विद्वान् और अविद्वान् दोनों प्रकार के मनुष्यों को हितकारी, उनके (व्रता अनु) कर्मों के अनुसार (विभूषन्) व्यवस्था करता हुआ (देवानां) दिव्य समस्त पदार्थों और विद्वानों के बीच में सबसे उपासित, होकर (रजसी) आकाश और भूमि

दोनों लोकों में (सम् ईयसे) व्याप्त हो रहा है। (यत्) जिस (ते धीतिम्) तेरा ध्यान और (सुमतिम्) शुभ मति, शुभ ज्ञान को (आ वृणीमहे) हम आदरपूर्वक वरण करते हैं। हे प्रभो ! (अध) और तू (नः) हमारे लिये (त्रि-वरूथः) तीन मंजिलों वाले घर के समान (त्रि-वरूथः) मन, वाणी, काय तीनों से वरण करने योग्य, वा तीनों प्रकार के दुःखों का वारण करने वाला होकर (नः शिवः भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो।

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् १०।१८

भा०—(तम्) उस (सुप्रतीकं) सुख रूप में प्रतीत होने वाले (सुदृसं) उत्तम द्रष्टा, (स्वञ्चम्) सुख प्राप्त होने और पूजन करने योग्य, (विदुस्तरं) बहुत अधिक विद्वान्, ज्ञानी प्रभु को हम (अविद्वांसः) अविद्वान् जन (सपेम) प्राप्त हों, (सः विद्वान्) वह ज्ञानवान्, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी प्रभु (विश्वा वयुनानि) समस्त ज्ञानों को प्रदान करता है। वह ही (अमृतेषु) अमर अविनाशी हम जीवों के निमित्त (हव्यम्) सदा ग्रहण करने योग्य पवित्र ज्ञान का (प्र वोचत्) उत्तम रीति से उपदेश करता है। (२) हम (सुप्रतीकं) उत्तम मुख वाले सौम्य मुख, शुभ नेत्र वाले, सुपूज्य विद्वान् के पास (सपेम) एक होकर बैठें, वह हमें सब ज्ञानों का उपदेश करे। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया॥११॥

भा०—हे प्रभो ! विद्वन् ! हे अग्ने) ज्ञानवन् हे तेजस्विन् ! (यः) जो (ते कवये) तुझ क्रान्तदर्शी, परम ज्ञानवान् पुरुष के (धीतिं) धारण करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करता है हे (शूर) शूरवीर, पापों के नाशक ! (तं पासि) तू उसका पालन करता है, (उत) और (तं) उसको

ही (पिपर्षि) पालन पोषण करता है, और हे प्रभो ! विद्वन् ! जो पुरुष तेरे निमित्त (यज्ञस्य निशितिं वा) पूजा का आदर सत्कार की तीव्रता और (उद्-इतिं वा) उद्गमन, उत्तम मार्ग की ओर बढ़ना और पूज्य के प्रति अभ्युत्थान अर्थात् आदर पूर्वक खड़े होने आदि सत्कार को भी (आनट्) करता है, तू (तम् इत्) उसको ही (शवसा उत राया) बल और धन दोनों से ही (पृणक्षि) पालन करता है ।

त्वम॑ग्ने वनुष्य॒तो नि पा॑हि॒ त्वमु॑ नः सहसावन्नव॒द्यात् ।
सं त्वा॑ ध्वस्म॒न्वद॒भ्ये॑तु॒ पाथः॒ सं र॒यिः स्पृ॑ह॒याय्यः॑ सह॒स्री॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्नि के समान दुष्टों को दग्ध करने हारे ! प्रभो विद्वन् ! राजन् ! (त्वम्) तू (वनुष्यतः) याचना, प्रार्थना करते हुए (नः) हमें (अवद्यात्) निन्दा योग्य पापाचरण के मार्ग से जाने से (नि पाहि) सब प्रकार से रक्षा कर । हे (सहसावन्) बल-शालिन् ! (त्वम् उ) तू ही (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से रक्षा कर । (ध्वस्मन्वत् पाथः) पापों और दुष्टों का ध्वंस करने वाला (पाथः) मार्ग और पालन सामर्थ्य (त्वा अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो । और (त्वां) तुझे (स्पृहयाय्यः) सबसे चाहने योग्य, (सहस्री) सहस्रों सुखों को देने वाला, सब प्रकार का (रयिः) ऐश्वर्य भी (सम् अभ्येतु) प्राप्त हो । और तेरे द्वारा वही पालन का सुख और ऐश्वर्य हमें भी प्राप्त हो ।

अ॒ग्निर्होता॑ गृ॒हप॑तिः॒ स राजा॒ विश्वा॑ वेद॒ जनि॑मा जा॒तवे॑दाः ।
दे॒वाना॑मु॒त यो मर्त्या॑नां॒ यजि॑ष्ठः॒ स प्र य॑जतामृ॒तावा॑ ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (देवानाम्) प्रकाश करने वाले सूर्य आदि लोकों और ज्ञानैश्वर्य के देने वाले विद्वानों, ऐश्वर्यवानों और कामना वाले (मर्त्यानां) मरणशील मनुष्यों और अन्य प्राणधारियों को (विश्वा) समस्त

(जनिमा) उत्पत्ति के रहस्यों को (वेद) जानता है (सः) वही (जात-वेदाः) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने हारा होने से ही 'जात-वेदाः' है। (सः) वह (यजताम् यजिष्ठाः) दानशीलों में सबसे बड़ा दानशील, (ऋत-वा) ज्ञान, सत्य न्याय, तेज और धनैश्वर्य का स्वामी परमेश्वर (अग्निः) सबका अग्रणी, सबसे पूर्व विद्यमान होने से अग्निवत् स्वप्रकाशक है और अन्यों को प्रकाशित करने से 'अग्नि' है। (सः होता) वही स्वयं सबका दाता और सबको अपने में आहुति करने वाला होने से 'होता' है और वही (गृहपतिः) गृह स्वामी के समान विश्व का पालक होने से 'गृहपति' है (सः राजा) और वही राष्ट्र में राजा के समान समस्त ब्रह्माण्ड का राजा है। 'अग्नि' देवता वाले मन्त्रों में प्रायः सर्वत्र अग्नि, विद्युत् तत्व के वर्णन के साथ २ गृहपति, राष्ट्रपति नायक राजा और कुलपति आचार्य विद्वान् और परमेश्वर का समान वाक्यरचना से ही वर्णन किया गया है। जिनका स्पष्टीकरण स्थान २ पर किया गया है।

अग्ने॒ यद॒द्य वि॒शो अ॑ध्वरस्य होतः॒ पाव॑कशोचे॒ वेष्ट्वं हि यज्वा॑।
ऋ॒ता य॑जासि महि॒ना वि यद्भूर्ह॒व्या व॑ह यविष्ठ॒ या ते॑ अ॒द्य ॥१४॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान स्वयंप्रकाश! एवं अन्यों को प्रकाशित करने हारे! हे (पावक-शोचे) पवित्र करने वाले तेजःप्रकाश से युक्त! हे (होतः) यज्ञ के होता के समान अपने ऐश्वर्य, बल, ज्ञान आदि के दान करने हारे! (यज्वा) उत्तम दानशील और संगति, परस्पर मेल करने हारा होकर (अध्वरस्य विशः) यज्ञवत् न नाश करने योग्य प्रजाजन को (त्वं हि वेः) तू सदा हृदय से चाहा कर और उसकी रक्षा किया कर। (यत्) जब या जो तू (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (वि भूः) विशेष शक्तिशाली होता है तब तू (ऋता) ऐश्वर्यों को (यजासि) स्वयं प्राप्त करता और औरों को भी देने में समर्थ होता है। और तभी हे (यविष्ठ) अति जवान! बलवन् (या ते हव्या)

जो तेरे भोग करने योग्य नाना अन्नादि पदार्थ हैं उनको भी तू (अद्य) आज के समान सदा ही (आ वह) प्राप्त कर और अन्यों को प्राप्त करा। इस मन्त्र में परमेश्वर और राजा का यज्ञकर्त्ता, होता और अग्नि के समान वर्णन है।

अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै। अवा नो मघवन्वाजसाताव‌ग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम॥ १५॥ १९॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! यज्ञकर्त्ता पुरुष जिस प्रकार (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) उत्तम तृप्तिकारक अन्नों को सब प्रकार से सावधानी से देखता और विद्वान् जिस प्रकार (सुधितानि प्रयांसि अभि ख्यः) सुख से धारण करने योग्य ज्ञानों का उपदेश करता है उसी प्रकार तू भी हे प्रभो! राजन्! (सुधितानि) सुख से, उत्तम प्रकार से धारण करने योग्य (प्रयांसि) उत्तम २ प्रयत्नों और प्रयाससाध्य कार्यों और प्रयासशील सैन्यों को (अभि ख्यः) सब प्रकार से स्वयं देखा कर। और जैसे प्रजाजन (रोदसी इव यजध्यै त्वा दधीत) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य स्त्री पुरुषों को परस्पर सुसंगत करने के लिये अग्नि का साक्षी रूप से आधान करते हैं उसी प्रकार शासक शास्य और राजप्रजावर्ग दोनों को परस्पर सुसंगत करने के लिये (त्वा दधीत) तुझ राजा, प्रभु को साक्षी रूप से (नि दधीत) मध्यस्थवत् स्थापित करें। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (वाजसातौ) ज्ञान, बल, और धन के लाभ काल में, और उनको प्राप्त करने के निमित्त एवं संग्राम के अवसर में भी (अव) रक्षा कर। हम हे (अग्ने) ज्ञानवन्! सब दुःखों के नाशक (तव अवसा) तेरे ज्ञान, रक्षा-सामर्थ्यादि से हम (विश्वानि दुरिता) सब प्रकार के दुष्टाचरण और दुःखदायी कर्मों से (तरेम)

पार हों और (ता तरेम) उन अनेक विघ्नों को पार करें और (तरेम) अवश्य ही पार करें।

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम्।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६ ॥

भा०—हे (सु-अनीक) उत्तम मुख वाले, सुन्दर ! सौम्य, सुभूषित मुख वाले ! सुमधुरभाषिन् ! विद्वन् ! हे उत्तम बल, सैन्य के स्वामिन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विनयशील ! तू (प्रथमः) सबसे प्रथम, श्रेष्ठ है। तू (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वानों, वीरों और मनुष्यों के साथ (ऊर्णावन्तं योनिम्) ऊन के बने आसन, वस्त्रादि सम्पन्न, तथा प्रजा को उत्तम रीति से आच्छादन, रक्षा करने वाले को (कुलायिनं) गृहोपयोगी, नाना द्रव्यों से समृद्ध, सर्वाश्रयप्रद, (घृतवन्तं) घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से पूर्ण गृह वा राष्ट्र को (सीद) प्राप्त कर उस पर शासन कर। और (यजमानाय) कर आदि देने वाले प्रजाजन के (यज्ञं) संगतियुक्त राजसभा आदि के कार्य को, यजमान के यज्ञ को अग्नि वा अध्वर्यु के समान (साधु नय) भली प्रकार चला।

इममुत्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः।
यमंङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार (वेधसः अथर्ववद् अग्निं मन्थन्ति) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष 'अथर्व' वेद में लिखे प्रमाणे वा अहिंसक, ईश्वरोपासक विद्वान् के समान (अग्निं मन्थन्ति) आग या विद्युत् को मथकर, रगड़कर पैदा करते हैं और (श्याव्याभ्यः आ नयन्) रात्रि के अन्धकारों को दूर करने के लिये प्रकाशक चिह्नों के समान सब पदार्थ को दिखाने वाले दीपक रूप अग्नि को लाते हैं उसी प्रकार (इमम् उ त्यम्) उस (अथर्व-वत्) अथर्ववेद में जैसा प्रधान पुरुष को चुनाव करने का प्रकार बतलाया है उसी प्रकार वा अहिंसक, सर्वपालक, प्रजापति के तुल्य (अग्नि)

अग्रणी, प्रधान पुरुष को (मन्थन्ति) समस्त प्रजावर्ग में से दही में से मक्खन के समान, खूब गुण दोष विवेचन और वादानुवाद के बाद मथ कर सारवत् प्राप्त करते हैं और (यम्) जिस (अमूरं) मोहरहित, निष्पक्षपात, अहिंसक और सदोत्साही को (अंकूयन्तं) चिह्न वा अपने द्योतक आदर्श ध्वजा के तुल्य श्रेष्ठ पुरुष को (श्याव्याभ्यः) अज्ञान युक्त प्रजाओं, सम्पन्न समृद्ध सेनाओं के हितार्थ (आनयन्) प्राप्त करें और उसे उत्तम पद प्राप्त करावें। (२) अध्यात्म में तपस्वीजन इस देह को अरणि करके ध्यान योग के अभ्यास से आत्मा रूप अग्नि को, दधि से घृतवत् प्राप्त करते हैं। वह अज्ञान की घोर रात्रियों में प्रकाश करता है।

जनि॑ष्वा दे॒ववी॑तये स॒र्वता॑ता स्व॒स्तये॑ ।
आ दे॒वान् व॑क्ष्य॒मृताँ॑ ऋता॒वृधो॑ य॒ज्ञं दे॒वेषु॑ पिस्पृशः ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक! विद्वन्! प्रभो! तू (स्वस्तये) कल्याण करने के लिये (सर्वताता) सबके हितार्थ सर्वत्र और (देव-वीतये) उत्तम गुणों का प्रकाश करने और उत्तम पदार्थों को प्राप्त करने के लिये (जनिष्व) उत्पन्न वा प्रकट हो। तू (ऋत-वृधः) सत्यज्ञान, न्यायव्यवहार और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (अमृतान्) दीर्घायु (देवान्) मनुष्यों को (आ वक्षि) सब स्थानों से प्राप्त कर और धारण कर। (देवेषु) उन विद्वानों, वीरों और धनार्थी व्यवहारकुशल पुरुषों के आश्रय पर (यज्ञं पिस्पृशः) राज्यपालन रूप यज्ञ को धारण कर, दान आदि उत्तम कार्य कर। दातव्य पदार्थ को स्पर्श करना यह मुहावरा दान देने अर्थ में प्रयुक्त होता है जैसे—'स्पर्शयता घटोघ्नी' रघु०।

व॒यमु॑ त्वा गृहपते जनाना॒मग्ने॒ अक॑र्म स॒मिधा॑ बृ॒हन्त॑म् ।
अ॒स्थू॒रि नो॒ गार्ह॑पत्यानि सन्तु ति॒ग्मेन॑ न॒स्तेज॑सा सं शि॑शाधि ॥ १९ ॥ २० ॥ १ ॥

भा०—(समिधा बृहन्तम्) जिस प्रकार लोग अग्नि को समिधा द्वारा

बढ़ाते हैं उसी प्रकार हे (गृहपते) गृह के उपासक ! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्, नायक ! अंग या देह के नेता आत्मा के तुल्य ! (वयम् उ) हम अवश्य (त्वा) तुझको (जनानाम्) सब मनुष्यों के हितार्थ (सम्-इधा) सम्यक्, समर्थ तेज और ज्ञान से (बृहन्तम् अकर्म्म) बृद्धिशील, महान् बनावें। जिससे (नः) हमारे (गार्हपत्यानि) गृहपति के समस्त कार्य, (अस्थूरि) निर्विघ्न (सन्तु) हों। और तू (तिग्मेन तेजसा) तीक्ष्ण प्रकाश से अग्निवत् ही तीक्ष्ण प्रभाव से (नः) हमें (सं शिशाधि) सन्मार्ग में अच्छी प्रकार शासन कर ॥ इति विंशो वर्गः। इति षष्ठे मण्डले प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१६]

४८ भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ७ आर्ची उष्णिक्। २, ३, ४, ५, ८, ६, ११, १३, १४, १५, १७, १८, २१, २४, २५, २८, ३२, ४० निचृद्गायत्री। १०, १६, २०, २२, २३, २६, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३६, ४१ गायत्री। २६, ३० विराड्-गायत्री। १२, १६, ३३, ४२, ४४ साम्नीत्रिष्टुप्। ४३, ४५ निचृत्-त्रिष्टुप्। २७ आर्चीपंक्तिः। ४६ भुरिक् पंक्तिः। ४७, ४८ निचृदनुष्टुप् ॥

अष्टाचत्वारिंशदृचं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने य॒ज्ञानां॒ होता॒ विश्वे॑षां हि॒तः।
दे॒वेभि॒र्मानु॑षे॒ जने॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानमय जगदीश्वर ! विद्वन् ! (विश्वेषां) समस्त (यज्ञानां) दान देने योग्य पदार्थों का (होता) देने वाला, समस्त पूजनीय पदार्थों में सबसे बड़ा दानी होकर (विश्वेषां हितः) सब का हितकारी, सबके बीच में प्रधान रूप से स्थित है, तू (देवेभिः) विद्वानों द्वारा (मानुषे जने) मननशील मनुष्य मात्र में प्रतिष्ठित है। तू सबका पूज्य है।

स नो॑ म॒न्द्राभि॑रध्व॒रे जि॒ह्वाभि॑र्यजा म॒हः ।
आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (सः) वह तू (मन्द्राभिः) स्तुति योग्य, आह्लादजनक (जिह्वाभिः) वाणियों से (अध्वरे) अविनाशी यज्ञ में (महः यज) बड़ों का सदा सत्कार कर और (देवान्) विद्वान् पुरुषों के प्रति (आ वक्षि) आदरपूर्वक वचन बोल और (आ यक्षि च) आदर से दान दे । (२) हे प्रभो ! आह्लादकारिणी वेदवाणियों से बड़े दिव्य गुणों का हमें उपदेश कर और हमें अपने से सदा संगत कर ।

वेत्था॒ हि वे॑धो॒ अध्व॑नः प॒थश्च॑ दे॒वाञ्ज॑सा ।
अग्ने॑ य॒ज्ञेषु॑ सुक्रतो ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! ज्ञानमय, प्रकाशस्वरूप ! हे (वेधः) विधातः ! विधानकर्त्तः ! हे मेधाविन् ! हे (देव) दानशील ! हे (सुक्रतो) शुभ कर्म करने और उत्तम प्रज्ञा वाले सुमते ! तू (अञ्जसा) अपने प्रकाशक तेज से (अध्वनः) बड़े मार्गों और (पथः) पगदण्डियों या उपमार्गों को भी (वेत्थ हि) निश्चय से जानता है । हमें भी सन्मार्ग से लेजा ।

त्वामी॑ळे॒ अध॑ द्वि॒ता भ॑र॒तो वा॒जिभि॑ः शु॒नम् ।
ई॒जे य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिय॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! (भरतः) मनुष्यमात्र (शुनम्) सुखप्रद, सर्वव्यापक (त्वाम्) तुझको (द्विता) अर्थात् सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारों से ही (वाजिभिः) ज्ञानयुक्त उपायों से (ईडे) उपासना करे । और (यज्ञेषु) यज्ञों में (यज्ञियम्) पूज्य तुझ को (ईजे) प्राप्त होता है ।

त्वमि॒मा वार्या॑ पु॒रु दिवो॑दासाय सु॒न्व॒ते ।
भ॒रद्वा॑जाय दा॒शुषे॑ ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्युद् के समान चमकने हारे स्वामिन् ! (त्वम्) तू (इमा वार्या) इन नाना उत्तम २ धनों को (पुरु) बहुत सी मात्रा में (सुन्वते) ऐश्वर्य प्राप्त करने में यत्नवान् (दिवः दासाय) सूर्यवत् तेजस्वी, आचार्य के सेवक के समान (भरद्वाजाय) अन्न बल आदि के धारण करने वाले (दाशुषे) समर्पक भक्त जन को देता है । इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् ।
शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अमर्त्य) अविनाशी ! तू (विप्रस्य) विद्वान् पुरुष के (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति को (शृण्वन्) श्रवण करता हुआ (दूतः) दूत के समान व शत्रुसंतापक होकर (दैव्यं) दिव्य पदार्थों के जानने वाले (जनं) मनुष्य को (आ वह) आदर से प्राप्त हो, उसे धारण कर।

त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये ।
यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (देव-वीतये) शुभ गुणों को प्राप्त करने के लिये (यज्ञेषु) यज्ञों, सत्संगों में (स्वाध्यः) उत्तम रीति से ध्यान और आधान करने वाले (मर्त्तासः) मनुष्य (त्वां देवं ईडते) तुझ देव, दाता की स्तुति करते हैं ।

तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः ।
विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (सु-दानवः) उत्तम ज्ञान धन आदि दान देने वा लेने हारे और (विश्वे) समस्त (कामिनः) उत्तम कामनावान् पुरुष (तव संदृशम्) तेरे सम्यक् तत्वदर्शन, यथार्थ ज्ञान (उत) और (क्रतुम्) कर्म को भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करते हैं । तू उनको (प्र यक्षि) ज्ञान और कर्म का उपदेश प्रदान करता है ।

त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! प्रभो ! (त्वं) तू (होता) सब सुखों का देने हारा, (मनुः) ज्ञानवान्, मननशील, मान करने योग्य, (वह्निः) कार्य-भार को अपने कन्धों पर लेने हारा है । तू (विदुस्तरः) सबसे अधिक विद्वान् होने से (आसा) मुख से उपदेश द्वारा या मुखवत् मुख्यस्थान प्राप्त करके (दिवः विशः) सुख की कामना करने वाली प्रजाओं को (यक्षि) संगत कर और ज्ञानोपदेश और व्यवस्था प्रदान कर ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! अग्निवत् तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! तू (गृणानः) उपदेश देता हुआ (वीतये) हम प्रजाजनों, शिष्यों वा उपासकों को रक्षा करने, ज्ञान से प्रकाशित करने और (हव्यदातये) देने योग्य ज्ञानैश्वर्य आदि प्रदान करने के लिये (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (होता) दानशील तू (बर्हिषि) वृद्धि, मान आदर युक्त आसन, प्रजाजन वा राज्य सभा में (नि सत्सि) नियत होकर विराज । परमेश्वर (बर्हिषि) प्रत्येक यज्ञ वा वृद्धिशील प्रत्येक चेतन २ में विराजता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अंगिरः) अंगारों में विद्यमान अग्नि के समान अति तेजस्विन् ! (समिद्भिः घृतेन) काष्ठों से और घृत से अग्नि के तुल्य ही हम (तं त्वा) उस तुझको (समिद्भिः) अच्छी प्रकार प्रकाश युक्त वचनों और (घृतेन) आदरार्थ दिये जाने योग्य जल, अन्न, स्नेह आदि से (वर्धया-

मसि) बढ़ावें । हे (यविष्ठ्य) अति युवन्, सदा बलशालिन् ! तू (बृहत्) महान् होकर (समिद्भिः घृतेन) उत्तम प्रकाशों और तेजोमय ज्ञान से (शोच) खूब प्रकाशित हो ।

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।
बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञान देने हारे विद्वन्! हे (अग्ने) अन्धकार में अग्नि के समान ज्ञान के प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारे ! (सः) वह तू (नः) हमें (पृथु) बहुत बड़ा विस्तृत (श्रवाय्यं) श्रवण करने योग्य और (बृहत्) बड़ा भारी (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य, बल के देने वाला, ज्ञान और तप (अच्छ विवाससि) अच्छी प्रकार प्राप्त कराओ ।

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ १३ ॥

भा०—जिस प्रकार (अथर्वा) वायु (विश्वस्य मूर्ध्नः) समस्त संसार के मूर्धा अर्थात् शिरोभाग, ऊपर या सब से ऊपर विद्यमान (पुष्करात्) सबको पुष्ट करने वाले, अन्तरिक्ष, मेघ से (अग्निम् निर् अमन्थत) विद्युत् रूप अग्नि को मथकर विद्युत् को प्रकट करता है उसी प्रकार (वाघतः) विद्वान् लोग भी हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! (त्वाम्) तुझको (विश्वस्य मूर्ध्नः) समस्त संसार के शिरो रूप से विद्यमान (पुष्करात्) सबके पोषणकारक सूर्य या मेघ से (त्वाम् निर् अमन्थत) सार रूप से तुझको मथ कर प्राप्त करें । और विद्वान् लोग (अथर्वा) अहिंसक, प्रजापालक विद्वान् हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! सर्वोपरि विद्यमान, सर्वपोषक कृषक प्रजाजन में से ही (त्वाम् निर् अमन्थत) तुझ नायक को सारवान् जानकर वाद विवाद के अनन्तर प्राप्त करें । (२) अहिंसा महाव्रत का पालक 'अथर्वा' योगीजन इस देह के शिरो-

भाग कपाल में से अरणियों से आग के समान, आत्मा रूप अग्नि को ध्यान निर्मथन द्वारा प्राप्त करें ।

स्वदेहमरणिं कृत्वा आत्मानञ्चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासात् पश्येद्देवं निगूढवत् ॥ श्वेता० ॥

तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषि॑ः पु॒त्र ई॑धे अथ॑र्वणः ।
वृ॒त्र॒हणं॑ पुरन्द॒रम् ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे आत्मन् ! (अथर्वणः) प्रजा का नाश न होने देने वाले सर्वपालक पुरुष का (पुत्रः) प्रतिनिधि पुरुष जो बहुतसों की रक्षा करने में समर्थ है और (दध्यङ्) राष्ट्र को धारण करने में समर्थ और (ऋषिः) यथार्थ धर्माधर्म, सत्यासत्य का विवेचक हो, वह (तम् त्वाम्) उस तुझ (वृत्रहणं) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुओं के नाशक और (पुरं-दरम्) शत्रुपुरों के तोड़ने हारे को (ईधे) और भी प्रकाशित करे, तुझे अधिक शक्तिशाली बनावे । (२) अथर्वा आचार्य का (दध्यङ् ऋषिः) ज्ञानधारक एवं ध्यानाभ्यासी शिष्य तुझे साक्षात् करे । आत्मा या परमात्मा अज्ञानान्धकार का नाशक होने से वृत्रहा और ज्ञान बल से देहबन्धनाश करने से पुरन्दर है । (३) अथर्वा वायु का पुत्र मेघ विद्युत् को चमकाता है ।

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृ॒षा समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम् ।
ध॒न॒ञ्ज॒यं रणे॑रणे ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पाथ्यः वृषाः समीधे) जल युक्त, बरसता मेघ विद्युत् को चमकाता है । उसी प्रकार हे नायक ! (पाथ्यः) धर्म पथ पर आरूढ़ (वृषा) बलवान्, प्रबन्धकुशल पुरुष (रणे रणे) प्रत्येक रण में, (धनं-जयम्) धनों, ऐश्वर्यों का विजय करने वाले, (दस्युहन्तमम्) प्रजानाशक डाकुओं के नाश करने हारे (तम् त्वाम् उ) उस

तुझ को (समीधे) अच्छी प्रकार प्रकाशित, तेजस्वी बनावे । अध्यात्म में 'पाथ्यः वृषा' प्राण । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! तू (आ इहि उ) आ, (ते) तुझे मैं (इत्था) इस २ प्रकार की सत्य वेदवाणियों और (इतराः गिरः) अन्यान्य लौकिक वाणियों का भी (ब्रवाणि) उपदेश करूं । तू (एभिः) इन (इन्दुभिः) ओषधियों से देह के समान और चन्द्रकलाओं से पूर्णचन्द्र के समान ऐश्वर्यों से (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त हो ।

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे नायक ! (ते मनः) तेरा मन (यत्र क्व च) जहां कहीं भी चाहे वहां ही तू (उत्तरम्) उत्कृष्ट (दक्षं दधसे) बल धारण कर । और (तत्र) वहां (सदः कृणवसे) अपना आश्रय, राजभवन, सभाभवन आदि बना । (२) योगी जिस किसी विषय में चाहे मन को लगावे, वहां ज्ञान वा बल प्राप्त करे और उसमें स्थिति प्राप्त करे ।

नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो ।
अथा दुवो वनवसे ॥ १८ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने और राष्ट्र को बसाने हारे ! प्रजाजन एवं राजन् ! (ते) तेरे लिये (नेमानां) अन्नों और तेरे आगे झुकने वाले, स्वल्प बल वाले प्रजाजनों को (पूर्त्तम्) पूर्ण करने वाला बल (नहि अक्षि-पत् भुवत्) आंख से परे जाने वाला न हो । वह सदा तेरे निरीक्षण में ही रहे । (अथ) और तू (दुवः वनवसे) सब प्रकार की सेवाओं

और शत्रुतापकारी सेनाओं को भी प्राप्त कर। 'अक्षिपत्' इति दया० सम्मतः पदपाठः। (ते नेमानां पूर्त्तम् ते नहि अक्षिपत्) अन्नादि भोग्य पदार्थों वा तुच्छ पुरुषों का पूर्ण करना वा पालन करने का भार तुझे न उखाड़ फेंके प्रत्युत वह (ते भुवत्) तुझे शक्तिशाली बनावे।

अग्निर॑गामि भार॑तो वृत्र॒हा पु॑रु॒चेत॑नः।
दिवो॑दासस्य॒ सत्प॑तिः ॥ १९ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) भौतिक, देह में जाठर रूप से, लोक में सौर तेज रूप से (भारतः) सबका भरण पोषण करता है, (वृत्रहा) जीवन के विघ्नकारी कारणों और अन्धकारों का नाशक है (दिवः दासस्य सत्पतिः) प्रकाश देने वाले पदार्थों का पालक होता है उसी प्रकार (भारतः) 'भरत' अर्थात् मनुष्यों का हितकारी, उनका पोषक, हितैषी, (वृत्रहा) शत्रुओं को नाश करने वाला, (पुरु-चेतनः) बहुतों को चेताने, और ज्ञान देने वाला, (अग्निः) अग्रणी नायक और तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (आ अगामि) प्राप्त हो। वह (दिवः दासस्य) ज्ञान प्रकाश, वा कामना योग्य पदार्थ के देने वाले गुरु और सेवकादि जनों का (सत्पतिः) उत्तम पालक हो। (२) आत्मा, देह का पोषक, प्रति मनुष्य स्थित होने से भारत, पुरु इन्द्रियों को चेतन करने वाला, कामपूरक देह का उत्तम स्वामी है।

स हि विश्वाति॒ पार्थि॑वा र॒यिं दाश॑न्महित्व॒ना।
व॒न्वन्नवा॑तो॒ अस्तृ॑तः ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (विश्वानि पार्थिवा) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्यों को (अति) अतिक्रमण करने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (दाशत्) दे। और (अवातः) कभी शत्रुरूप प्रतिकूल वायु से भी न झुककर (अस्तृतः) कभी मारा न जाकर सुख से उस ऐश्वर्य को स्वयं भी (वन्वन्) भोग करता रहे।

(२) भौतिक अग्नि सूर्य ही सब रत्न सुवर्णादि को उत्पन्न करता, कभी न बुझता, न नाश होता है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता ।
बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१ ॥

भा०—(प्रत्नवत्) पुरातन, पहले के प्रतापी नायकों के समान, हे (अग्ने) विद्वन् ! नायक ! राजन् ! (सः) वह तू (नवीयसे) नये से नये, अति श्रेष्ठ, (द्युम्नेन) धन और यश से (भानुना) प्रकाश वा तेज से सूर्य के समान (संयता) अच्छी प्रकार प्रबन्ध करने वाले सैन्य बल से (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (ततन्थ) विस्तृत कर ।

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! जो (वः) आप लोगों में से (वेधसे) विद्वान् पुरुष के लिये (स्तोमं गाय) उपदेश देता, और (यज्ञं अर्च च) दान योग्य पदार्थ आदर से देता है, उसी (अग्नये) अग्रणी नायक, विद्वान् और (वः) आप लोगों में से (वेधसे) कार्यों के विधान करने में कुशल, बुद्धिमान् पुरुष के आदरार्थ आप लोग भी (स्तोमं यज्ञं अर्च च गाय च) स्तुति युक्त वचन कहो और दान, मान से पूजा सत्कार आदि करो ।

स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः ।
दूतश्च हव्यवाहनः ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो (होता) उचित पदार्थ का लेने और देने और आदरपूर्वक अन्यों को बुलाने, सत्कार करने हारा, (कवि-क्रतुः) पुरुष केसे कर्म और बुद्धि को धारने वाला, (दूतः) दूत और (हव्य-वाहनः) विद्युत्-वत् हव्य, अन्नों, वक्तव्य वचनों को धारने वाला है, वह विद्वान् पुरुष ही (मानुषा युगा) मनुष्यों के जोड़े, स्त्री पुरुषों के ऊपर अध्यक्ष होकर

(सीदत) विराजे । (२) इसी प्रकार जो विद्वान् (दूतः) तपस्वी, (हव्य-वाहनः) ज्ञान और अन्न का भोक्ता है, वह बहुत मानुष वर्षों तक जीता है ।

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् ।
वसो यक्षीह रोदसी ॥ २४ ॥

भा०—हे (वसो) सबके बसाने हारे ! तू (शुचि-व्रता राजाना) शुद्ध आचरण वाले, राजा के तुल्य कान्तिमान्, तेजस्वी (रोदसी) सूर्य पृथ्वी के समान पति पत्नी, वर वधू जनों को और (आदित्यान्) सूर्य की किरणों वा बारह मासों के समान सबको सुख देने वाले (आदित्यान् = अदितेः पुत्रान्) भूमि के पालक जनों और (मारुतं जनम्) वायुवत् बलवान्, शत्रुमारक वीरों के समूह तथा सामान्य मनुष्यों को भी (इह) इस अपने राष्ट्र में (यक्षि) एकत्र बसा ।

वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय ।
ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य वा अग्नि का (संदृष्टिः) अच्छी प्रकार देखना वा प्रकाशित होना मनुष्यमात्र को बसाता है, (इषयते) अन्न देता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे तेजस्वी पुरुष ! हे प्रकाशस्वरूप ! हे (ऊर्जः नपात्) अन्न और बल को न गिरने देने हारे, उस के धारक ! (अमृतस्य) अविनाशी, हे दीर्घायु ! (ते) तेरा (सम्-दृष्टिः) सम्यक् दर्शन ही (वस्वी) सबको बसाने वाला होकर (मर्त्याय इषयते) मनुष्यमात्र को अन्नवत् पुष्ट करता और प्रेरित करता है । (२) अविनाशी प्रभु का सम्यग् दर्शन मनुष्यमात्र को अन्नवत् पालता, संसार भर को सञ्चालित कर रहा है । यदि ह्यहं न वर्त्तेय जातुकर्मण्यतन्द्रितः । उत्सीदे युरिमे लोकाः ॥ गीता० ॥ इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २६ ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! जो पुरुष (अद्य) आज, तेरे प्रति (क्रत्वा) ज्ञान और कर्म से अपने को (दाः) प्रदान कर देता, तुझ पर अपने को न्योछावर कर देता है, वह (त्वा वन्वन्) तेरा भजन और सेवन करता हुआ (श्रेष्ठः) सबसे श्रेष्ठ, विद्यावान्, और (सुरेक्णः) उत्तम धनवान् (अस्तु) हो और वही (मर्तः) मनुष्य (सुवृक्तिम् त्वाम् आनशे) सुखपूर्वक दुःखों के छुड़ाने वाले तुझ को प्राप्त करता है वा (सुवृक्तिम् आनशे) उत्तम मार्ग को पाता है ।

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! स्वप्रकाश ! (अरातीः अर्यः इव) न दान देनेवाले कृपणों को जिस प्रकार धनस्वामी अपने वैभव से लांघ जाता है उसी प्रकार जो (अरातीः अर्यः) करादि न देने वाले शत्रुओं को (तरन्तः) पार करते हुए और (वन्वन्तः) उनका नाश करते हुए, (त्वा उताः) तुझ से सुरक्षित रहते हैं (ते ते) वे तेरे अधीन जन (इषयन्तः) अन्न की कामना करते हुए या तेरी सेना बने हुए (विश्वम् आयुः) पूर्ण जीवन प्राप्त करते हैं ।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्य१त्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २८ ॥

भा०—(अग्निः) सूर्य वा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (तिग्मेन शोचिषा) अपने तीक्ष्ण तेज से, (विश्वम् अत्रिणं) समस्त प्रजाभक्षक दुष्ट जन को (नि यासत्) नाश करे । वह (अग्निः) तेजस्वी नायक (रयिम्) ऐश्वर्य (वनते) प्राप्त करता है ।

सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे ।
जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २९ ॥

भा०—हे (जातवेदः) धनस्वामिन् ! हे ज्ञानवन् ! हे (विचर्षणे) विविध मनुष्यों के स्वामिन् ! हे विशेष रूप से तत्वज्ञान के देखने हारे ! तू (सु-वीरं) उत्तम पुत्रों, वीरों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य को (आ भर) प्राप्त कर और हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करने में समर्थ ! तू (रक्षांसि) दुष्ट, विघ्नकारी पुरुषों को (जहि) नाश कर, उनको दण्ड दे।

त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे (ब्रह्मणः कवे) वेद के उपदेश देने हारे विद्वन् ! या हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! (त्वं) तू (नः) हमें और (नः ब्रह्मणः) हमारे विद्वान् ब्राह्मणों को (अंहसः पाहि) पाप से बचा और (अघायतः) हम पर अत्याचार करने वाले से भी (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कर । इति षड्विंशो वर्गः ॥

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति ।
तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्निवत् दुष्ट पुरुष को दग्ध कर देने हारे ! (या) जो (दुरेवः) दुष्ट आचरण करने वाला, दुःखदायक, कर्म करने वाला, (मर्त्तः) मनुष्य (नः वधाय) हमारे नाश करने के लिये (अ दाशति) सब प्रकार से यत्न करता और हमें पकड़ता या अपनाता है, (तस्मात् अंहसः) उस पापी पुरुष से (नः पाहि) हमें बचा।

त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् ।
मर्तो यो नो जिघांसति ॥ ३२ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! हे शत्रुओं को खण्डित करने और

विजय करने हारे राजन् ! (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता हो (त्वं) तू (दुष्कृतम्) उस दुष्टाचरण करने वाले पापी पुरुष को (जिह्वया) वाणी या आज्ञा द्वारा (परि बाधस्व) विनाश कर ।

भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य ।
अग्ने वरेण्यं वसु ॥ ३३ ॥

भा०—हे (सहन्त्य) बलवन्, शत्रुओं को पराजित करने हारे ! (अग्ने) हे तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! तू (भरद्वाजाय) अन्न और बल के धारण करने वाले प्रजाजन को (सप्रथः शर्म) विस्तृत शरण (यच्छ) दे और (वरेण्यं वसु) श्रेष्ठ धन, और बसने योग्य भूमि आदि प्रदान कर ।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ३४ ॥

भा०—जल जिस प्रकार (वृत्राणि जंघनत्) बढ़ते मेघों को प्राप्त करता है और जिस प्रकार (अग्निः) सूर्य या विद्युत् (वृत्राणि जंघनत्) मेघों पर प्रहार करता है, उसी प्रकार हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन् ! शीघ्र कार्य करने हारे ! तेजस्विन् ! कर्मकुशल ! तू (समिद्धः) खूब प्रदीप्त, तेजस्वी और (आहुतः) आहुति प्राप्त अग्नि के तुल्य प्रजाजनों द्वारा संवर्धित, पुष्ट और आदर सत्कार पाकर तथा (आहुतः = आहूतः) शत्रुओं द्वारा ललकारा जाकर (विपन्यया) विशेष व्यवहार कुशल, वार्त्ता, वाणी से (द्रविणस्युः) धन की कामना करता हुआ (वृत्राणि जंघनत्) धनों को प्राप्त करे और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का नाश करे ।

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।
सीदन्नृतस्य योनिमा ॥ ३५ ॥ २७ ॥

भा०—(मातुः योनिम् सीदन् गर्भे स्थितः) माता के गर्भाशय में

पहुंचकर वहां ही स्थित गर्भस्थ बालक जिस प्रकार पुष्टि पाता है उसी प्रकार हे राजन्! तू (मातुः गर्भे) माता पृथ्वी के 'गर्भ' अर्थात् बीच में या स्वगृहीत राष्ट्र में (ऋतस्य योनिम् सीदन्) सत्य-न्याय के घर, सभा-भवन में अध्यक्ष पद पर बैठता हुआ (अक्षरे) अविनाशी स्थिर पद पर (दिद्युतानः) आकाश में सूर्यवत् चमकता हुआ (पितुः पिता) पिता का भी पिता होकर विराज । (२) यह अग्नि जीव अक्षय मातृतुल्य ज्ञानवान् जगन्निर्माता परमेश्वर के परम पद में विराजता हुआ मोक्ष सुख भोगे ।

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।
अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥ ३६ ॥

भा०—हे (जातवेदः) उत्पन्न पदार्थों के लाभ करने वाले, वा धन-सम्पन्न ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के देखने हारे ! स्वामिन् ! (यत्) जो (दिवि) पृथिवी पर वा प्रकाश में (दीदयत्) चमकता है या जिससे मनुष्य पृथिवी में, वा ज्ञान, और कान्ति में चमके, ऐसा (प्रजा-वत्) प्रजा, पुत्र शिष्यादि से युक्त (ब्रह्म) वेद ज्ञान, अन्न और धन (आ भर) प्राप्त कर और अन्यों को भी प्राप्त करा ।

उप त्वा रण्वसंन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत ।
अग्ने ससृज्महे गिरः ॥ ३७ ॥

भा०—हे (सहस्कृत) सहनशीलता, या विजयकारी बल से सम्पन्न ! (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! हम लोग (प्रयस्वन्तः) उत्तम यत्नशील होकर (रण्वसन्दृशं त्वा उप) उत्तम, सम्यक् दर्शन वाले तेरे समीप रहकर (गिरः) वाणियों का (ससृज्महे) ज्ञान लाभ करें वा हे परमेश्वर ! हम यत्नशील होकर तुझ अतिरमणीय रूप को लक्ष्य कर स्तुति करें ।

उप छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यऽसन्दृशः ॥ ३८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! (हिरण्य-सन्दृशः) हित और रमणीय वा तेजोयुक्त सम्यक् दर्शन अर्थात् ज्ञान से सम्पन्न वा सुवर्णादि धनों से अच्छे रूपवान्, सुसज्जित दीखने वाले (ते) तुझ (घृणेः) कान्तियुक्त, सूर्यवत् तेजस्वी और कृपालु (शर्म) शरण में (वयम्) हम सन्तप्त जन (छायाम् इव) छाया के समान ही (उप-अगन्म) प्राप्त करें और शान्ति सुख लाभ करें।

य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥ ३९ ॥

भा०—(तिग्मशृंगं वंसगः न) जिस प्रकार तीखे सींगों वाला सांढ (पुरः रुजति) आगे के पदार्थों को तोड़ता है वा जिस प्रकार तीखी किरणों वाला सूर्य मेघादि के आवरण को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (यः) जो (उग्रः इव) प्रबल वायु के समान शर अर्थात् वाणों से मारने योग्य दुष्ट पुरुषों का नाशक होकर (पुरः रुरोजिथ) शत्रु के पुरों को तोड़ता है। वह तू (वंसगः) सेवनीय ऐश्वर्य को प्राप्त हो।

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।
विशामग्निं स्वध्वरं ॥ ४० ॥ २८ ॥

भा०—(खादिनं) खाने में संलग्न (जातं शिशुं न) उत्पन्न बालक को जिस प्रकार (हस्ते बिभ्रति) हाथों में लेते हैं उसी प्रकार (यं) जिस (स्वध्वरं) उत्तम हिंसारहित, प्रजापालनादि कर्म करने वाले (विशाम्) प्रजाओं के बीच में (यं) जिस (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी नायक को प्रजा जन (हस्ते) शत्रु को नाश करने और दुष्टों को हनन या दण्ड करने वाले बल के ऊपर (खादिनं) वज्रधर, आयुधसम्पन्न और (शिशुं जातं) उत्तम प्रशंसनीय आचार वाले, प्रसिद्ध पुरुष को (बिभ्रति) परिपुष्ट करते हैं वही उत्तम राजा है। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

प्र दे॒वं दे॒ववी॑तये॒ भर॑ता वसु॒वित्त॑मम् ।
आ स्वे योनौ॒ नि षी॑दतु ॥ ४१ ॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो ! आप लोग (देव-वीतये) विद्वानों की रक्षा, शुभ गुणों की प्राप्ति, और विजयाभिलाषी और व्यवहारवान, नाना कामनावान् प्रजाओं के रक्षण के लिये (देवं) ज्ञान वा धन के देनेहारे तेजस्वी (वसु-वित्तमम्) प्रजाओं को और ऐश्वर्यों को भली प्रकार लाभ करने वाले पुरुष को (प्र भरत) अच्छी प्रकार पुष्ट करो और वह (स्वे योनौ) अपने उचित स्थान पर (आ निषीदतु) आदरपूर्वक विराजे ।

आ जा॒तं जा॒तवे॑दसि प्रि॒यं शि॑शी॒तासि॑थिम् ।
स्यो॒न आ गृ॒हप॑तिम् ॥ ४२ ॥

भा०—(जात-वेदसि) नाना विद्याओं में प्रसिद्ध गुरु के अधीन (आ-जातम्) सब प्रकार से विद्या से सम्पन्न (प्रियं) प्रिय (अतिथिम्) अतिथि के समान पूज्य (गृहपतिम्) गृह के पालक के समान विद्वान् वा राजा को (स्योने) सुखकारी, पद वा आसन पर (आ) आदरपूर्वक स्थापित करो ।

अग्ने॑ यु॒क्ष्वा हि ये तवाश्वा॑सो देव सा॒धवः॑ ।
अरं॒ वह॑न्ति म॒न्यवे॑ ॥ ४३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी तेजस्वी नायक ! (ये हि) जो भी (तव) तेरे (अश्वासः) अश्वों के समान वेग से जाने वाले, (साधवः) कार्य साधन में चतुर पुरुष (मन्यवे) तेरे मन्यु अर्थात् शत्रु के प्रति संग्रामादि वा तेरे (अभिमत) उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये (अरं वहन्ति) खूब कार्य-भार उठाते हैं उन को तू (युक्ष्व) उचित स्थान पर नियुक्त कर ।

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू (नः अच्छ याहि) हमें भली प्रकार से प्राप्त हो। (वीतये) हमारे उपभोग और रक्षा करने के लिये (प्र यासि) उत्तम अन्नों और उत्तम यत्नवान् कर्मों व सैन्यों को (आ वह) धारण कर और (देवान्) विद्वान्, विजयाभिलाषी, वीर और तेजस्वी पुरुषों को (सोमपीतये) ऐश्वर्य के प्राप्त करने और पालन करने के लिये (आ वह) तू प्राप्त कर ।

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
शोचा वि भाह्यजर ॥ ४५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (भारत) प्रजा के पोषण करने हारे एवं मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (द्युमत्) कान्तियुक्त (अजस्रेण) अविनाशी, निरन्तर चमकने वाले तेज से (उत् दविद्युतत्) सूर्य के समान सब से ऊंचा रह-कर प्रकाशित हो । हे (अग्ने) तेजस्विन् नायक ! हे (अजर) जरादि दोषों से रहित युवा, बलवान् ! हे शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले ! तू (शोचा) कान्ति से (वि भाहि) विविध प्रकार से चमक और प्रजाओं को अच्छा लग । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (वीती) कामना से (देवं) उत्तम कामना युक्त, तेजोमय, सर्वसुखदाता, प्रभु की (दुवस्येत्) सेवा करता है, और जो पुरुष (हविष्मान्) अन्नादि उत्तम सामग्री से सम्पन्न होकर (अध्वरे अग्निम्) यज्ञ में विद्यमान अग्नि के तुल्य अहिंसायोग्य उत्तम कर्मों में ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष का (ईडीत) आदर सत्कार करता है वह (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के तुल्य माता पिताओं के भी

ऊपर विद्यमान (होतारं) ज्ञान दान करने वाले (सत्य-यजं) सज्जनों के उचित सत्य आचार, सत्य न्याय के देने वाले आचार्य और प्रभु को (उत्तानहस्तः) ऊपर हाथ उठाकर (नमसा) आदरपूर्वक झुक कर (आविवासेत्) उसकी सेवा करे, उसका मान पूजा करे। गुरु, राजा, न्यायपति, पिता और ईश्वर सबके लिये समान रूप से आदर करे।

आ ते॑ अग्न ऋ॒चा ह॒विर्हृ॒दा त॒ष्टं भ॑रामसि।
ते ते॑ भवन्तू॒क्षण॑ ऋष॒भासो॑ व॒शा उ॒त ॥ ४७ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानमय ! हे स्वप्रकाश ! (ते) तेरे लिये हम (ऋचा) उत्तम मन्त्र से, उत्तम आदर से युक्त वचन सहित, (हृदा) हृदय से (तष्टम्) सुसंस्कृत (हविः) ग्राह्य, अन्न (आ भरामसि) प्रस्तुत करें (ते) तेरे कार्य के लिये (ते) वे सब (उक्षणः) कार्य-भार उठाने वाले तथा वीर्यसेचन में समर्थ, बलवान् पशु और मनुष्य, (ऋषभासः) सत्य न्याय से कान्तिमान्, नरश्रेष्ठ पुरुष (उत वशाः) राष्ट्रों को वश करने वाले अधिकारी, (वशाः) तुझे चाहने वाली प्रजाएं (ते भवन्तु) तेरे अधीन हों।

अ॒ग्निं दे॒वासो॑ अग्रि॒यमि॒न्धते॑ वृत्र॒हन्त॑मम्।
येना॒ वसू॒न्याभृ॑ता तृ॒ळ्हा रक्षां॑सि वा॒जिना॑ ॥ ४८ ॥ ३० ॥ ५ ॥

भा०—(देवासः) विजयाभिलाषी वीर पुरुष (वृत्रहन्तमम्) बढ़ते, विघ्नकारी शत्रुओं के नाश करने में सब से बढ़ के (अग्रियम्) अग्रासन प्राप्त करने योग्य (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी, अग्रणी उस पुरुष को (इन्धते) अति प्रकाशित और प्रदीप्त करते हैं (येन वाजिना) जो संग्रामचतुर और ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न पुरुष (वसूनि आभृता) नाना धन लाता और (रक्षांसि तृळ्हा) दुष्टों को नाश कर चुकता है। इति त्रिंशो वर्गः। इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[१७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ११ त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ९, १०, १२, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । १३ स्वराट् पंक्तिः । १५ आर्च्युष्णिक् ॥

पिबा सोममभि यमुग्र तर्दं ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः १

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्र को हनन-साधन रूप से अपने वश में रखने हारे ! हे (धृष्णो) शत्रुओं का बलपूर्वक मान भङ्ग करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) शत्रुओं का उद्विग्न करने में समर्थ ! बलवन् ! (यः) जो तू (शवोभिः) अपने बलों से (वृत्रम्) मेघ को सूर्य के समान बढ़ते हुए शत्रु को और (विश्वा अमित्रिया) समस्त अमित्र भाव से रहने वाले जनों को (वि वधिषः) विविध प्रकारों से दण्डित करते हो वे आप (यम्) जिस (ऊर्वं) हिंसनीय शत्रु का (तर्दः) नाश करते और (गव्यं) भूमि के हितकारी कृषि आदि (महि) श्रेष्ठ कर्म का (गृणानः) उपदेश करते हुए आप उस (सोमम्) ऐश्वर्य का (पिब) उपभोग करो और पालन करो ।

स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान्वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् २

भा०—(यः) जो पुरुष (ऋजीषी) सरल स्वभाव, धर्म मार्ग पर अन्यों को प्रेरित करने वाला, (तरुत्रः) सब दुःखों से स्वयं पार, और अन्यों को नाशकों से बचाने वाला और वृक्षवत् अपने अधीनों को छाया-वत् आश्रय देने वाला है और (यः) जो (शिप्रवान्) उत्तम मुख, नासिका वाला, सुन्दर सौम्य मुख वा मुकुटधारी है (यः मतीनाम्

वृषभः) मननशील विद्वानों के बीच सर्वश्रेष्ठ (यः गोत्रभिद्) पर्वतों को विद्युत् के समान, भूमि के पालक राजाओं को भेदन करने में समर्थ और (यः) जो (हरिष्ठाः) अश्वों, अश्वसैन्यों और मनुष्यों पर अध्यक्ष रूप से स्थित है, (सः ईं पाहि) वह तू इस राष्ट्र को पालन कर । और (सः) वह तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (चित्रान्) अद्भुत २ (वाजान्) संग्राम-कारी बलवान् परसैन्यों को (अभि तृन्धि) युद्ध द्वारा विनाश कर ।

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं और अज्ञान के नाश करने हारे राजन् ! विद्वन् ! तू (प्रत्नथा) पुरातन, (ब्रह्म) वेदज्ञान और पूर्वजों के धनों को (पाहि) सुरक्षित कर । वह (त्वा मन्दतु) तुझे नित्य उपदेश दे, एवं प्रसन्न करे । तू उसका (श्रुधि) श्रवण कर । (उत) और (गीर्भिः) वेदवाणियों तथा उपदेष्टा विद्वान् जनों द्वारा (वावृधस्व) नित्य बढ़ा कर । तू (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्य के समान अपने तेजस्वी रूप को प्रकट कर । (इषः पीपिहि) अन्नों का पान कर अथवा (इषः) इष्ट जनों वा अधीन सेनाओं की (पीपिहि) वृद्धि कर । (शत्रून् जहि) शत्रुओं का नाश कर । (गाः अभि) जो अपनी भूमियों पर आक्रमण करें उनको (तृन्धि) काट गिरा । (२) विद्वान् जन ज्ञान-वाणियों से बढ़ें, तेजो-मय आत्मा का साक्षात् करें, इष्ट वासनाओं को बढ़ावें और बाधक वासना कामादि अन्तः-शत्रुओं का नाश करें, आनन्द रसदात्री चित्तभूमियों में स्थित कामादि को समूल काटें ।

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रु के नाश करने हारे ! (ते) वे (इमे) ये (मदाः) अति हर्षदायक और तेरी स्तुति करने वाले, तुझे

सन्तुष्ट करने वाले और स्वयं तुझ से वृत्ति पाकर तृप्त होने वाले, (पीताः) पालन किये गये, (मत्सरासः) हर्ष पूर्वक आगे बढ़ने वाले, (द्युमन्तम्) तेजस्वी (त्वा) तुझ (महाम्) महान् , (अनूनं) किसी से अन्यून, सबसे अधिक (तवसं) बलवान्, (विभूतिं) विशेष सामर्थ्य युक्त (प्रसाहम्) उत्तम बलशाली, शत्रु पराजय करने वाले (त्वा) तुझ को (उक्षयन्त) सींचें, तेरा अभिषेक करें, तुझे बढ़ावें। और तुझे (जहृषन्त) सदा प्रसन्न किया करें।

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽपं दृळहानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसः परि स्वात् ५।१

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जिस प्रकार उदय होकर अपने तेजस्वी रूप को और उषा को प्रकट करता, दृढ़ अन्धकारों को दूर करता, पृथिवियों पर बड़े मेघ को प्रेरित करता है वा विद्युत् को फेंकता है उसी प्रकार (मन्दसानः) स्वयं प्रसन्न एवं प्रजा की कामना करता हुआ, (येभिः) जिन उपायों से (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को और (उषसम्) उषा के समान कान्तियुक्त, वा कामनावान् प्रजा वा, शत्रु देहकारी सेना को (अवासयः) अपने राष्ट्र में बसावे, और (दृढ़ानि) दृढ़ शत्रु-सैन्यों को (अपदर्द्रत्) दूर करने में समर्थ होता है, उन ही उपायों से तू (महाम्) बड़े गुणों में महान्, (सन्तं) सज्जन (अद्रिम्) निर्भय, मेघवत् प्रजा पर कृपालु, न विदीर्ण होने वाले, दृढ़, (अच्युतम्) धर्म से और मार्ग से च्युत न होने वाले, ब्राह्मण वर्ग और क्षात्र, शस्त्र बल को (गाः परि) भूमियों पर, सब ओर (स्वात् सदसः परि) अपने राजभवन या राजधानी से दूर २ तक (नुत्थाः) भेजा कर। जिससे वह सर्वत्र ज्ञान का प्रसार और राष्ट्र की वृद्धि किया करें। इति प्रथमो वर्गः॥

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
औणोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळहोदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान्॥६॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (तव क्रत्वा) तेरी बुद्धि से और (तव दंसनाभिः) तेरे नाना कर्मों से, (आमासु) बुद्धि और बल में अपरिपक्व प्रजाओं के बीच तू अपने (पक्वं) परिपक्व बल और ज्ञान को (शच्या) अपनी शक्ति और वाणी द्वारा (नि दीधः) स्थापित कर । (उस्रियाभ्यः) किरणों के लिये वा गौओं के लिये जिस प्रकार द्वार खोले जाते हैं उसी प्रकार (उस्रियाभ्यः) उन्नतिशील प्रजाओं के हित के लिये (दुरः) नाना द्वार, तथा विघ्ननिवारक उपाय, (वि और्णोः) प्रकट कर, खोल, और तू (अंगिरस्वान्) प्राणों और तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (ऊर्वात्) हिंसाकारी शत्रु से अपनी (गाः) समस्त भूमियों को (वि असृजः) मुक्त कर, छुड़ा ॥

पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! आप (महि दंसः) बड़े भारी कर्म-कौशल से (उर्वीम् क्षां पप्राथ) बड़ी भारी भूमि को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करो और आप (ऋष्वः) महान् होकर (उर्वीं द्याम्) बड़ी भारी ज्ञानप्रकाश से युक्त राजसभा को वा शत्रु विजय करने वाली सेना को और (बृहत्) बड़े भारी राज्य को भी (उप स्तभायः) थाम । (ऋतस्य) सत्य न्याय के बल पर (यह्वीः) बड़ी, वा अपने पुत्रों के समान (मातरा) सबकी माता, पिता के तुल्य माननीय, (प्रत्ने) सनातन से विद्यमान, (देवपुत्रे) विद्वान्, बलवान् उत्तम पुरुषों को पुत्रवत् उत्पन्न करने वाली, (रोदसी) सूर्य और पृथ्वी के तुल्य परस्पर सम्बद्ध स्त्री पुरुषों तथा राज प्रजावर्ग दोनों को तू (अधारयः) धारण कर । (२) हे परमेश्वर तू महान् है । तू अपने बड़े सामर्थ्य से (ऊर्वीः द्यां क्षां पप्राथ) भूमि और आकाश को रचता और थामता है । (देवपुत्रे) तेजस्वी सूर्यादि के भी उत्पादक, सनातन से मातृ पितृवत् जगत् के उत्पादक आकाश भूमि को भी धारण करता है ।

अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! प्रभो (यद्) जब (अदेवाः) उत्तम प्रकाश आदि गुणों से रहित, तामसी पुरुष स्वभाव से (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (अभि औहिष्ट) प्राप्त होकर उनके बीच नाना तर्क वितर्क करे तब (स्वः साता) वे उत्तम उपदेश को प्राप्त करने के निमित्त (अत्र) इस लोक में (इन्द्रम्) अज्ञाननाशक विद्वान् गुरु को (वृणते) प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार जब (अदेवः) अराजक मनुष्यों का अहित पुरुष (देवान् अभि औहिष्ट) मनुष्यों पर आक्रमण करे तब वे (स्वर्षाता) सुख प्राप्त करने और संग्राम करने के लिये (इन्द्रम् वृणुते) शत्रुहन्ता सेनापति को वरण करें (अध) और उसी निमित्त (विश्वे देवाः) सब मनुष्य, (एकं) एक, अद्वितीय (तवसं) बलवान्, (त्वा) तुझको, (भराय) अपने पालन पोषण और संग्राम करने के लिये (पुरः दधिरे) तुझे आगे स्थापित करें।

अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद्द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥९॥

भा०—(यत्) जो (विश्वायुः) समस्त मनुष्यों का स्वामी (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (ओहसानम् अहिम् अभि) सम्मुख आते हुए शत्रु को (शयथे चित्) उसको सुला देने के लिये मानो, (नि जघान) विनाश कर सकता है, (अध) तब (द्यौः चित्) भूमि या आकाश के समान ही (सा) वह प्रजा, हे इन्द्र ! राजन् ! (ते) तेरे समक्ष (द्विता अनमत्) दोनों प्रकार से झुके। एक तो (वज्राद् भियसा) वज्र अर्थात् शस्त्र के भय से दूसरे (मन्योः भियसा) क्रोध के भय से।

अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(अध) और हे (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल, धर्म मार्ग पर अन्यों को चलाने वाले! और स्वयं भी धर्मानुकूल कामना करने हारे! (ते महः) तेरे महान् (उग्रं) भयंकर (सहस्र-भृष्टिं) हज़ारों को एक ही वार में भून देने वाले, (शताश्रिम्) सैकड़ों के ऊपर आश्रित या सैकड़ों को नाश करने वाले, (अरमणसं) शत्रुओं को अच्छा न लगने वाले (निकामं) यथेष्ट रूप से (वज्रं) शस्त्र बल को (त्वष्टा) उत्तम शिल्पी (ववृतत्) बनावे। (येन) जिससे तू (नवन्तम्) स्तुतिशील अति नम्र (अहिम्) शत्रु को, गर्जते मेघ को विद्युत् के समान (संपिणक्) अच्छी प्रकार दण्डित करे। इति द्वितीयो वर्गः॥

वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम्।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै॥११॥

भा०—(यं) जिसको (विश्वे मरुतः) सब वीर एवं प्रजा के पुरुष (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (वर्धान्) बढ़ाते हैं (पूषा) सबका पोषक सूर्य, पृथिवी, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तुभ्यम्) तेरे लिये (शतं) सौ, सैकड़ों, अनेक, (महिषान्) बड़े, और श्रेष्ठ भोग्य अन्न, फल पदार्थों के देने वाले, वृक्षों, और खेतों को (पचत्) परिपक्व करता है, और (विष्णुः) व्यापक (धावन्) निरन्तर वेग से चलने हारा वायु (त्रीणि सरांसि) तीनों जाने योग्य लोकों को (धावन्) दौड़ता या जाता या उनको पवित्र करता हुआ, (अस्मै) इस उचित राज्य के नायक (वृत्रहणम्) विघ्नकारी शत्रुओं के नाशक, (मदिरम्) हर्षजनक (अंशुम्) तेज को भी प्रदान करता है।

आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम्।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम्॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुनाशक राजन्! जिस प्रकार सूर्य (नदीनां) नदियों के (अपां) जलों के (ऊर्मिम्) ऊपर गये

अंश को (महिः क्षोदः) बड़े भारी अति क्षुद्र २ कणिका रूप में विद्यमान (वृतं) मेघ से आच्छादित और (परि स्थितम्) आकाश में सर्वत्र व्याप्त (असृजः) करता है, और वही (प्रवतः अनु) नीचे के देशों की ओर (तासां पन्थाम्) उन जलों का मार्ग कर देता है और (समुद्रम् प्रति अपसः नीचीः प्र अर्दयः) समुद्र के प्रति उनके वेगों को नीचे की ओर ही वेग से कर देता है वही जल बहकर फिर समुद्र में मिल जाते हैं उसी प्रकार (नदीनाम् अपाम्) समृद्धिशाली आप्त प्रजाओं के महि) बड़े भारी (वृतं) सुरक्षित और (ऊर्मिम्) उन्नत, और (परि स्थितम्) सब ओर विराजते (क्षोदः) बल को (असृजः) प्राप्त कर। और (प्रवतः अनु) उत्तम उद्देश्यों के प्रति हे (इन्द्र) राजन् ! (तासाम् पन्थाम् असृजः) उन प्रजाओं को मार्ग बना तथा (समुद्रम् प्रति) समुद्र के समान महान् अखिलाश्रय, परमेश्वर के प्रति उनके (अपसः प्रार्दशयः) कर्मों को प्रेरित कर।

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥

भा०—(एव) इस प्रकार (ता विश्वा) उन २ समस्त कर्मों को (चकृवांसम्) करते हुए, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य युक्त, (महान्) महान्, (उग्रम्) उग्र, बलवान्, (अजुर्यम्) बुढ़ापे से रहित, सदा युवा, (सहोदाम्) बलप्रद (सुवीरं) उत्तम वीर, (स्वायुधम्) उत्तम शस्त्रास्त्र से सम्पन्न, पुरुष को प्रजा (अवसे) रक्षा, पालन और ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (आववृत्यात्) सब प्रकार से प्राप्त करे और वह (नव्यम्) उत्तम से उत्तम (ब्रह्म) महान्, बल, धन और अन्नादि को प्राप्त करे।

स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सः) वह तू (द्युमतः) दीप्ति,

कान्ति आदि से युक्त (नः) हमें (वाजाय) बलैश्वर्य प्राप्त करने, (श्रवसे) अन्न, कीर्त्ति और ज्ञान प्राप्त करने और (इषे) इष्ट वाञ्छित सुख प्राप्त करने और (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (धेहि) धारण और पालन कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नृवतः सूरीन्) मनुष्यों के स्वामियों और विद्वानों को (भरद्वाजे) अन्नादि से भरण पोषण करने के काम में और (दिवि) राजसभा और न्यायव्यवहार के कार्य में (धेहि) नियुक्त कर। हे ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (पार्ये) संकटों से पार करने में समर्थ (एधि) हो।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥३॥

भा०—(अया) इस रीति से हम (देव-हितम्) मनुष्यों के हितकारी, एवं विद्वान् पुरुषों से दिये तथा वीर पुरुषों से प्राप्त (वाजं) ज्ञान और ऐश्वर्य, अन्न आदि पदार्थ को (सनेम) स्वयं सेवन करें और औरों को भी दान करें। इस प्रकार हम लोग (सु-वीराः) उत्तम पुत्र पौत्रादिवान् होकर, (शत-हिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द प्रसन्न होकर रहें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[१८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६, १४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ८, ११, १३ त्रिष्टुप्। ७, १० विराट् त्रिष्टुप्। १२ भुरिक् त्रिष्टुप्। ३, १५ भुरिक्पंक्तिः। ५ स्वराट्पंक्तिः। ६ ब्राह्म्युष्णिक्॥

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (यः) जो (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ, पराक्रमशाली हो और जो (आवातः) स्वयं न मारा

जाकर भी (पुरु-हूतः) बहुतों से स्तुति योग्य और पुकारा जाकर (व-न्वन्) शत्रुओं का नाश करता हो (तम् उ) उस की अवश्य तू (स्तुहि) स्तुति कर। तू उस ही (चर्षणीनां वृषभम्) मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ (अषाढं) पराजित न होने वाले, (उग्रं) बलवान् (सहमानम्) शत्रुओं को पराजय करने वाले पुरुष को (गीर्भिः) उत्तम २ वाणियों से (वर्ध) बढ़ा।

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा॥ २॥

भा०—(सः) वह (युध्मः) युद्ध करने में चतुर, (सत्वा) बलवान्, (खजकृत्) नाना संग्रामों को करने वाला, (समद्वा = सम्-अद्वा) उत्तम अन्न का भोक्ता, अथवा, सबके साथ आनन्द प्रसन्न रहने वाला, (तुवि-म्रक्षः) बहुत सी प्रजाओं को स्नेह करने हारा, निष्पक्षपात, (नदनुमान्) गर्जनाशील, उपदेष्टा, (ऋजीषी) सरल ऋजु व्यवहार मार्ग में प्रेरणा करने वाला, (बृहद्रेणुः) बहुत से हिंसक वीर पुरुषों का स्वामी, (मानुषीणाम् कृष्टीनाम्) मननशील प्रजाओं के बीच (एकः) अकेला, अद्वितीय (च्यवनः) उनका नेता, और (सहावा) बलवान् (अभवत्) हो।

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥३॥

भा०—(त्वं ह) तू निश्चय से, (त्यत्) वह है जो (एकः) अकेला, अद्वितीय ही (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुषों के हितार्थ (दस्यून् अद-मयः) दुष्ट प्रजानाशक पुरुषों का दमन करे और (कृष्टीः अवनोः) कृषि करने वाली अहिंसक प्रजाओं का सेवन कर। (तत् ते वीर्यं अस्ति-स्वित्) तेरा वह अद्वितीय बल है भी (न स्विद् अस्ति) या नहीं है

(तत्) इस बात को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू (ऋतुथा) अव-सर २ पर (वि वोचः) विविध प्रकार से बतलाया कर।

सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४ ॥

भा०—हे (सहिष्ठ) बहुत बलशालिन् ! (तुरतः तुरस्य) हिंसक दुष्ट पुरुष को मारने वाले वा शीघ्र अश्वादि बल को शीघ्रता से चलाने वाले (तुवि-जातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध, (ते) तेरा (सहः सत् हि) शत्रु पराभवकारी बल निश्चयं से विद्यमान ही रहता है। (इति मन्ये) मैं यह स्वीकार करता हूं। (अरध्रस्य) स्वयं शत्रुओं के वश न आने वाले, वा अहिंसक (रध्रतुरः) हिंसकों के नाश करने वाले (तवसः) बड़े बलवान् (उग्रस्य) भयंकर तेरा (तवीयः) अति अधिक (उग्रम्) बड़ा भयंकर बल (बभूव) हो।

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥४॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! (नः) हमारा (युष्मे) तुम्हारे साथ (प्रत्नं सख्यम्) सदातन से चला आया मैत्रीभाव (अस्तु) बना रहे। (इत्था) इस प्रकार (वदद्भिः) प्रतिज्ञापूर्वक सत्य वचन बोलते हुए (अंगिरोभिः) तेजस्वी पुरुषों की सहायता से तू (वलम्) नगर घेरने वाले (इषन्तं) सैन्य सञ्चालित करते हुए शत्रु को–मेघ को सूर्य के समान (हन्) नाश करे। (अस्य) नाश करने हारे ! उसके तू (पुरः वि ऋणोः) नगरों का नाश कर और (विश्वाः दुरः वि ऋणः) अपने समस्त शत्रुवारक सेनाओं को विविध दिशाओं में भेज, वा (अस्य विश्वाः पुरः वि ऋणोः) इसके दूर के समस्त द्वारों को तोड़ डाल। इति चतुर्थो वर्गः ॥

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६॥

भा०—(सः हि) वह निश्चय से (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों के द्वारा वा उत्तम स्तुतियों से (हव्यः अस्ति) प्रशंसनीय, आदर करने योग्य हो, वह (महति वृत्रतूर्ये) बड़े भारी दुष्ट नाशकारी संग्राम में (उग्रः) बलवान्, और (ईशानकृत् अस्ति) सामर्थ्यवान् पुरुषों को अधिकारी बनाने हारा हो। (सः) वह (तनये) पुत्रों में (तोकसाता) धनादि का न्यायपूर्वक विभाजक और (सः) वह (वज्री) दण्डधारी (समत्सु) संग्रामों और एक साथ हर्ष के अवसर उत्सवादि काल में (वितन्तसाय्यः अभवत्) विविध प्रकार के शत्रुओं का नाशकारी और राष्ट्र सम्पत्तिका विस्तार करने वाला हो।

स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥ ७ ॥

भा०— (सः) वह राजा स्वयं (मज्मना) बलसे और (अमर्त्येन नाम्ना) और अपने असाधारण शत्रु को नमाने वाले सामर्थ्य से (मानुषाणां जनिम) मनुष्यों के जनसमूह वा मानुष जन्म को (अति प्रसर्स्रे) लांघ जावे। (सः) वह (द्युम्नेन) यश से (स शवसा) वह बल से और (उत राया) धन से, और (सः वीर्येण) वह वीर्य से (नृतमः) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ और (सम्-ओकाः) सब से उत्तम पद, और स्थान को प्राप्त करे।

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ।८।

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशकारी राजा सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर (पिप्रुं) अपना धन भरने वाले, (शम्बरं) मेघवत् शान्तिकारक सुखों के आह्लादक, (शुष्णम्) प्रजा के रक्तशोषक (चुमुरिम्) प्रजा के सर्वस्व खा जाने वाले और (धुनिम् च) उसको भय से कंपाने वाले दुष्ट जनों को भी (वृणक्) नाश करता है, और जो (पुरां)

पूर्ण ऐश्वर्यों के (च्यौत्नाय) प्राप्त करने (शयथाय नू चित्) प्रजाओं के सूखपूर्वक सोने के लिये उक्त दुष्टों का नाश करता है, (यः न मुहे) जो कभी मोह में नहीं पड़ता, (न मिथू जनः भूत्) जो कभी असत्य-वादी पुरुष नहीं होता (सः) वह ही (सुमन्तु नाम भूत्) उत्तम मनन-शील नाम से प्रसिद्ध होता है।

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥ ९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! (उत्-अवता) उत्तम मार्ग पर चलने हारे, (त्वक्षसा) शत्रुओं का नाश करने वाले (पन्यसा) अतिस्तुत्य व्यवहार से तू (वृत्रहत्याय) अपने बढ़ते और विघ्नकारी शत्रुओं के नाश के लिये (रथम् तिष्ठ) रथ पर सवार हो। और (दक्षिणत्र हस्ते) दायें हाथ में (वज्रम् धिष्व) शस्त्र ग्रहण कर। हे (पुरुदत्र) नाना दान योग्य धनों के स्वामिन्! तू (मायाः अभि प्रमन्द) उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होकर हर्षित और तेजस्वी हो। मन्दतिर्ज्वलित-कर्मा पठितः ॥

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा।
गम्भीरयं ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥५॥

भा०—(अग्निः शुष्कं वनं न) आग जिस प्रकार सूखे वन को भस्म-सात् कर देती है, और जिस प्रकार (भीमा अशनिः न) भयंकर विजुली पड़कर वृक्षादि को जलाती है और प्रहार करती है उसी प्रकार हे (इन्द्र) इन्द्र (यः) जो तू (रुरोज) शत्रु बल को भङ्ग करता (अध्वनयत्) घोर नाद करता, और (दुरिता) दुष्ट आचारों को भी (दम्भयत् च) विनाश करता है, वह तू हे शत्रुहन्तः! (हेतिः) आघातकारी होकर स्वयं (गम्भीरया) अति बलवती, गम्भीर नाद करने वाली (ऋष्वया)

बड़ी भारी, शक्ति से युक्त होकर (रक्षः नि धक्षि) दुष्ट पुरुष को भस्म कर डाल । इति पञ्चमो वर्गः ॥

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक ! और बलवान् पिता के पुत्र ! वा बल पराक्रम के द्वारा स्वयं उत्पन्न ! हे (पुरुहूत) बहुतों में प्रशंसित ! (यस्य) जिस (योतोः) प्राप्त होने योग्य धन का (अदेवः) अदानशील पुरुष (ईशे) स्वामी बना हुआ है उस धन को तू (आ-याहि) अवश्य प्राप्त कर और हे (इन्द्र) दुष्टनाशक ! हे (तुवि-द्युम्न) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (तुवि-वाकेभिः) बहुत से वेगवान् अश्वादि साधनों से (पथिभिः) उत्तम मार्गों से और (राया) ऐश्वर्य के बल से (सहस्रं अर्वाक् आ याहि) हज़ारों प्रकार के धनों और ऐश्वर्यों को साक्षात् प्राप्त हो ।

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२॥

भा०—(तुवि-द्युम्नस्य) बहुत ऐश्वर्यवान्, (स्थविरस्य) स्थिर, दीर्घजीवी, (घृष्वेः) शत्रुओं का घर्षण करने, उनसे टक्कर लेकर उनको निर्बल कर देने वाले, (पुरु-मायस्य) बहुत बुद्धि वाले, चतुर, (सह्योः) सहनशील पुरुष का (महिमा) महान् सामर्थ्य (दिवः ररप्शे) इस महान् आकाश, तेजस्वी सूर्य से भी बढ़ जाता है, और (पृथिव्याः प्र ररप्शे) पृथिवी से भी अधिक होता है । (अस्य शत्रुः न अस्ति) उसका कोई शत्रु नहीं होता । (नः प्रति-मानम् अस्ति) न उसका कोई प्रति-द्वन्द्वी, उसके समान, उसका मुक़ाबला करने वाला ही होता है । और (न प्रति-ष्ठिः) न उसके मुक़ाबले पर खड़ा होने वाला होता है वा न उसका कोई आश्रय होता है, प्रत्युत वही सबका आश्रय होता है । (२) परमे-

श्वर तेजःस्वरूप, ऐश्वर्यवान् होने से 'तुविद्युम्न' है, सनातन कूटस्थ होने से 'स्थविर', कालक्रम से सब पदार्थों के घर्षण वा संहार करने से 'घृषिव' और जीवों को उपदेश करने, बनाने और बहुप्रज्ञ होने से 'पुरुमाय' और बलशाली होने से 'सह्य' है। उसकी महिमा आकाश, सूर्य, पृथ्वी आदि से कहीं महान् है। उसका न कोई शत्रु, न प्रतिमा, न माप, और न आश्रय है वही सबका आश्रय है।

प्र तत्ते॑ अ॒द्या कर॑णं कृ॒तं भू॒त्कुत्सं॒ यदा॒युम॑तिथि॒ग्वम॑स्मै।
पु॒रू स॒हस्रा॒ नि शि॑शा अ॒भि क्षामु॒त्तूर्व॑याणं धृष॒ता नि॑नेथ॥१३॥

भा०—हे राजन्! (यत्) जो तू (अस्मै) इस राष्ट्र के हित के लिये (पुरु) बहुत से (कुत्सं) शस्त्र समूह को (नि शिशाः) शासन कर और (पुरु आयुम् नि शिशाः) बहुत से मनुष्यों को अपने अधीन शासन कर और (पुरु अतिथिग्वम् नि शिशाः) बहुत से अतिथियों को प्राप्त होने वाले सत्कारयोग्य धन प्रदान कर (पुरू सहस्रा नि शिशाः) बहुत से हज़ारों धनों, बलों को भी शासन करता, और (धृषता) शत्रु को पराजय करने वाले बल से (तूर्व-याणं) शीघ्र यान वाले (क्षाम्) राष्ट्र निवासी प्रजाजन को (अभि उत निनेथ) ऊपर उठाता, उन्नति की ओर ले जाता, वा उत्तम पद प्रदान करता है (अद्य) आज भी (ते) तेरा (तत्) यह (करणं) करना वा (कृतम्) किया हुआ कर्म भी (प्र भूत्) उत्तम सामर्थ्य को बढ़ाने वाला है। (२) परमेश्वर का यह महान् प्रभुता का कार्य है कि वह इस जीव को ज्ञानवज्र, दीर्घ जीवन, और इन्द्रिय देता है। सहस्रों सुख देता है और उसे शीघ्रगामिनी भूमि, नरदेह देता, वा उसको उत्तम पद की ओर ले जाता है।

अनु॒ त्वाहि॑घ्ने॒ अध॑ देव दे॒वा मद॒न्विश्वे॑ क॒वित॑मं कवी॒नाम्।
करो॒ यत्र॒ वरि॑वो बाधि॒ताय॑ दि॒वे जना॑य त॒न्वे॑ गृणा॒नः॥ १४॥

भा०—हे (देव) राजन् ! दानशील ! तेजस्विन् ! (यत्र) जहां (बाधिताय) पीड़ित, दुःखित और (दिवे) कामना, युक्त, इच्छुक, (जनाय तन्वे) प्रजाजन के शरीर के सुख के लिये (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ तू ही (वरिवः) उत्तम धन तथा सेवा (करः) करने हारा है उस देश में (कवीनां कवितमम्) विद्वान् क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी पुरुषों में श्रेष्ठ विद्वान् (त्वा) तुझको ही (विश्वे देवाः) समस्त प्रजा के मनुष्य प्राप्त करके (अहि-घ्ने) शत्रु के नाश करने के लिये वा मेघनाशक सूर्यवत् तेजस्वी पद प्राप्त करने के लिये (अनु-मदत्) तेरे अनुकूल रहकर प्रसन्न होते हैं और (त्वा अनुमदन्) तेरी ही स्तुति करते हैं, तुझे ही प्रधान पद के लिये प्रस्तुत और समर्थन करते हैं। दुःखित जनों के सुखार्थ सेवा और धनार्पण करने हारे, त्यागी, देश-सेवक को ही प्रधान पद पर प्रस्तुत करना चाहिये।

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अन्नों के देने वाले ! (अमर्त्याः) न मरने वाले, दीर्घजीवी (देवाः) विद्वान् और दानशील प्रजाजन, (द्यावापृथिवी अनु) सूर्य और पृथिवी का अनुकरण करते हुए (ते तत्) तेरे उस (ओजः) पराक्रम को (अनु जिहत) प्राप्त करें। (यत् ते) और जो (ते) तेरा (अकृतं) न किया हुआ काम (अस्ति) है हे (कृत्नो) करने वाले पुरुष ! तू उसको भी (कृष्व) करले। और (यज्ञैः) परस्पर आदर सत्कार और सत्संगों द्वारा (नवीयः) अति स्तुत्य, उत्तमोत्तम (उक्थं जनयस्व) वचन, वेद ज्ञानमय उपदेश को प्रकट कर। इति षष्ठो वर्गः ॥

[१६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, १३ भुरिक्पंक्तिः। ६ पंक्तिः। २, ४, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, १०, ११, १२ विराट् त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (नृवत्) शरीर के नायक प्राणों और रश्मियों से युक्त है (चर्षणिप्राः) दर्शन कराने वाले आंखों को प्रकाश से पूर्ण करता है । (द्वि-बर्हाः) अन्तरिक्ष और वायु दोनों से बढ़ने हारा, (वीर्याय) बल की वृद्धि के लिये होता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष, (महान्) महान् हो । वह (नृवत्) नायक पुरुषों का स्वामी, और (चर्षणि-प्राः) प्रजाओं को सुख समृद्धि से पूर्ण करने वाला, (सहोभिः) बलवान् सैन्य वर्ग से (अमिनः) सहायक वर्ग का स्वामी, शत्रु का पीड़क और और प्रजा का अहिंसक (उत) और (द्वि-बर्हाः) सपक्ष विपक्ष, वा प्रजा वा शासक दोनों वर्गों से बढ़ने वाला, एवं दोनों पक्षों को बढ़ाने वाला, होकर (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति कृपा-युक्त होकर (वीर्याय) अपने बल बढ़ाने के लिये (ववृधे) खूब बढ़े । वह (कर्तृभिः) उत्तम कार्य करने वाले सहायकों सहित (सुकृतः) उत्तम कर्म करने हारा, (उरुः) महान् और (पृथुः) विशाल शक्ति-सम्पन्न (भूत्) हो ।

इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (सद्यः चित्) बहुत शीघ्र, वा सदा ही, (असामि) बहुत अधिक (ववृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (बृहन्तम्) महान् (अजरम्) अविनाशी, (युवानम्) तरुण, (अषाढेन शवसा) असह्य, बल से (शूशुवांसम्) फैलने बढ़ने बढ़ाने वाले, राष्ट्र को व्यापने वाले, पुरुष को प्रजाजन (धिषणा) कर्म और बुद्धि से (सातये धात्) राज्य भोग करने के लिये सर्वोपरि स्थापित करे । (२) उस परमैश्वर्यवान्, महान्, अजर, अविनाशी नित्य, तरुण, महान्

पराक्रम से व्यापक पूर्ण वृद्धियुक्त परमेश्वर को (धिषणा) बुद्धि (सातये धात्) भजन करने के लिये धारण करे।

पृथू क॒रस्ना॑ बहु॒ला गभ॑स्ती अस्म॒द्य१॑क्सं मि॑मीहि॒ श्रवां॑सि।
यू॒थेव॑ प॒श्वः प॑शु॒पा दमू॑ना अ॒स्माँ इ॑न्द्रा॒भ्या व॑वृत्स्वा॒जौ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन्! तू अपने (पृथू) अति विशाल (करस्ना) नाना कर्मों को करने वाले वा, आर्य जनों को शुद्ध, निर्दोष करने वाले (गभस्ती) ग्रहणशील, बाहुओं को (बहुला) बहुत धन प्राप्त करने वाला, बना और उनसे हमें (श्रवांसि) नाना प्रकार के अन्न, धन, यश और ज्ञानादि (सं मिमीहि) सम्मानपूर्वक प्रदान कर। (पशुपाः पश्वः यूथा इव) पशुओं का पालक पुरुष जिस प्रकार पशुओं के यूथों को (आवर्त्तते) अपने वश करता है उसी प्रकार (आजौ) संग्राम काल में तू (दमूनाः) दमनशील जितेन्द्रियचित्त होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ ववृत्स्व) आ और हमारी रक्षा कर।

तं व॒ इन्द्रं॑ च॒तिन॑मस्य शा॒कैरि॒ह नू॒नं वा॑ज॒यन्तो॑ हुवेम।
यथा॑ चि॒त्पूर्वे॑ जरि॒तार॑ आ॒सुरने॑द्या अनव॒द्या अरि॑ष्टाः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! प्रजाजनो! (नूनं) निश्चय से हम लोग (वः) आप लोगों में से (इन्द्रं) ऐश्वर्यशील, (चतिनम्) शत्रु के नाशक, पुरुष को (अस्य शाकैः) उसकी शक्तियों और सामर्थ्यों से (वाजयन्तः) संग्रामों और ऐश्वर्यों की कामना करते हुए (इह तं हुवेम) उस राष्ट्र में उसको प्राप्त करें। और (यथाचित्) जिस प्रकार (पूर्वे) पूर्व के (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा, (अनेद्याः) अनिन्दित आचरण (अनवद्याः) स्वच्छ पवित्र, (अरिष्टाः) अहिंसित जीवन होकर (आसुः) रहे हों वैसे ही हम भी उत्तम आचार चरित्र वाले होकर रहें।

धृ॒तव्र॑तो धन॒दाः सोम॑वृद्धः स हि वा॒मस्य॒ वसु॑नः पुरु॒क्षुः।
सं ज॑ग्मिरे प॒थ्या३॒॑ रायो॑ अस्मिन्त्समु॒द्रे न सिन्ध॑वो॒ याद॑मानाः॥५॥७

भा०—(सः) वह (हि) निश्चय से (धृत-व्रतः) व्रत, उत्तम कर्म करने के दृढ़ निश्चयों, प्रतिज्ञाओं को धारण करने वाला, (धन-दाः) धन देने वाला, (सोम-वृद्धः) ऐश्वर्य और अन्नादि से परिपुष्ट पुरुष (वाम-स्य वसुनः) सुन्दर, उपभोग योग्य ऐश्वर्य का स्वामी और (पुरुक्षुः) बहुत से अन्नों का स्वामी हो। (समुद्रे सिन्धवः न) समुद्र में नदियों के समान (अस्मिन्) उसमें (पथ्याः रायः) सन्मार्गों से आने वाले ऐश्वर्य (यादमानाः) निरन्तर आते हुए (सं जग्मिरे) एकत्र हो जावें। इति सप्तमो वर्गः ॥

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम्।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै॥६॥

भा०—हे (शूर) शत्रुओं को नाश करने में कुशल ! वीर पुरुष ! (अभि-भूते) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ ! तू (ओजिष्ठम्) सब जनों से श्रेष्ठ और (उग्रम्) अति उग्र (ओजः) पराक्रम और (शविष्ठं शवः) सब से अधिक उत्तम (नः आभर) हमें प्राप्त करा हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! आप (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (माद-यध्यै) आनन्द पूर्वक उपभोग करने के लिये, उनको सुखी और आनन्दित करने के लिये (विश्वा) समस्त (वृष्ण्या) बलवान् पुरुषों के उचित एवं बलजनक, (द्युम्ना) धन, मान, और यश, (अस्मभ्यं दाः) हमें प्रदान कर।

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम्।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) अतिहर्ष, उपदेश वा हर्षकारी, उपदेष्टा (पृतनाषाट्) मनुष्यों वा सेनाओं को विजय करने में समर्थ और (अमृध्रः) कभी नाश न होने योग्य है, (येन) जिसके द्वारा हम (त्वोताः) तुझ से सुरक्षित रहकर (जिगी-वांसः) विजयशील होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र पौत्र के प्राप्त होने,

और धन विभाग के कार्य में ठीक ज्ञान वा न्याय व्यवहार जान सके (तं) उस (शुशूवांसं) उत्तम गुणों से युक्त, सर्वोत्तम न्यायकर्त्ता पुरुष को (नः आभर) हमें प्राप्त करा।

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम्।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः (वृषणं) बलवान्, उत्तम प्रबन्ध करने में चतुर, (शुष्मम्) शत्रुओं को शोषण करने वाले, सुखप्रद, (धनस्पृतं) धन को पूर्ण करने वाले, (शूशुवांसम्) अति उत्तम, प्रचुर, (सु-दक्षम्) उत्तम व्यवहारकुशल, और बलवान् पुरुष (नः भर) हमें प्रदान कर। (येन) जिसके द्वारा (तव ऊतिभिः) तेरे रक्षा कार्यों से सुरक्षित रहकर हम (पृतनासु) संग्रामों में (जामीन् अजामीन्) क्या बन्धु रूप और क्या बन्धुओं से भिन्न (शत्रून्) समस्त शत्रुओं को (वंसाम) विनाश करें वा उनका (पृतनासु वंसाम) मनुष्यों के बीच न्यायपूर्वक विभाग करें।

आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात्।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (ते) तेरा (वृषभः) बलवान् (शुष्मः) शत्रुओं को शोषण करने में समर्थ, (वृषभः) धर्म से तेजस्वी, बलवान्, पुरुष (पश्चात्) पीछे से (उत्तरात्) बायें से वैसे ही (अधरात्) नीचे से, (पुरस्तात्) आगे से ((आ एतु) आवे। वह (विश्वतः) सब ओर से (आ एतु) आये, (अभि एतु) आगे बढ़े, (सम् एतु) ठीक प्रकार से चले। हे राजन् ! तू (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (अर्वाङ्) हमारे साथ हमें प्राप्त होने वाले (स्ववंत्) सुखयुक्त, तेजःसम्पन्न, उत्तम उपदेशपूर्ण (द्युम्नं) धन, यश, ज्ञानप्रकाश, (धेहि) धारण कर और करा।

नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते) तेरे (नृवत्) उत्तम नेता पुरुषों से युक्त, उत्तम भृत्यादि सम्पन्न (वामं) उत्तम धन और ज्ञान को हम लोग (नृ-तमाभिः) उत्तम पुरुषों से सेवन करने योग्य (ऊती) क्रियाओं, रीतियों और(श्रोमतेभिः) उत्तम पुरुषों से श्रवण करने योग्य वचनों से (वंसीमहि) हम प्राप्त करें । हे (राजन्) उत्तम गुणों से प्रकाशमान ! तू (उभयस्य वस्वः) दोनों प्रकार के धनों, अर्थात् राष्ट्र में बसने वाले प्रजा रूप धन और उपभोग योग्य ऐश्वर्य सुवर्णादि धन को भी (ईक्षे हि) निश्चय से देखता है। तू (महि) बड़ा (स्थूरं) स्थिर और (बृहन्तम्) महान् (रत्नं) रमण, सबको प्रसन्न करने योग्य, उत्तम नर रत्न को रत्नवत् (धाः) स्वयं धारण कर और राष्ट्र में स्थापित कर ।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११ ॥

भा०—हम लोग (अवसे) रक्षा कार्य के लिये, ज्ञान प्राप्त करने के लिये (मरुत्वन्तम्) वायु के गुणों से युक्त सूर्यवत् तेजस्वी एवं मनुष्यों, वीर पुरुषों के स्वामी, (वृषभं) मेघवत् सुखों के वर्षण करने वाले, बैल के समान राज्य शकट को उठाने में समर्थ, (वावृधानं) स्वयं बढ़ने वाले (अकवारिम्) शत्रु भी जिसकी निन्दा न करते हों, ऐसे (दिव्यम्) ज्ञान और तेज में प्रसिद्ध, (शासम्) शस्त्र बल के तुल्य शासक, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्ता, (विश्वसाहम्) सबको पराजित करने वाले, सब कष्टों को सहने वाले, (उग्रम्) बलवान् (सहोदाम्) बलप्रद, (तं) उस पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में उच्चपद पर (नूतनाय) सर्वस्तुत्य, सदा नये से नये, (अवसे) रक्षा कार्य और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (हुवेम) आदर पूर्वक प्राप्त करें ।

जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु॥१२॥

भा०—हे (वज्रिन्) शत्रुओं के वर्जन करने में समर्थ ! अस्त्र बल के स्वामिन्! एवं हे अज्ञान के वर्जन में समर्थ ज्ञान के पालक! मैं (येषु अस्मि) जिनके बीच में रहता हूं (एभ्यः नृभ्यः) उन उत्तम जनों के हित के लिये (मन्यमानं जनं) अभिमान करने हारे पुरुष को (रन्धय) वश कर और उसी प्रकार (महिचित्) बड़े भारी, पूजनीय (मन्यमानं) अन्यों से मान आदर पाने योग्य (जनं) उत्तम मनुष्य को (रंधयः) अच्छी प्रकार आदर सत्कारपूर्वक आराधना कर। (अध हि) और हम (पृथिव्याम्) इस भूमि पर (शूर-सातौ) शूरवीरों के एकत्र होने योग्य महासंग्राम में (तनये, गोषु, अप्सु) पुत्र, गौ आदि पशु और प्राणों के निमित्त हम (त्वा हवामहे) तुझे प्राप्त करें।

वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३॥८॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे और प्रशंसा किये गये! राजन्! (वयम्) हम (ते एभिः सख्येभिः) तेरे इन मित्रता के कार्यों से हम (शत्रोः शत्रोः) प्रत्येक प्रकार के शत्रु से (उत्तरे) ऊपर, उसको विजय करने में सफल (स्याम) हों, और हे (शूर) शूरवीर! हम (उभयानि वृत्राणि) दोनों प्रकार के 'वृत्र' अर्थात् विघ्नकारी पुरुषों और वरण करने योग्य धनों को (घ्नन्तः) विनाश और प्राप्त करते हुए (बृहता) बड़े भारी (राया) ऐश्वर्य से (त्वा-उताः) तेरे द्वारा रक्षा पाकर (मदेम) सुखमय जीवन व्यतीत करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ष्यनुष्टुप्। २, ३, ७, १२ पांक्तः। ४, ६ भुरिक् पांक्तिः। १३ स्वराट् पंक्तिः। १७ निचृत्पांक्तिः॥ ५, ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तदशर्चं सूक्तम् ॥

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यः) जो (रयिः) दानशील, सुखप्रद ऐश्वर्य वा ऐश्वर्यवान् पुरुष (शवसा) बल से (पृत्सु) संग्रामों में (अर्यः जनान्) शत्रु लोगों के (अभि तस्थौ) मुक़ाबले पर खड़ा हो सके (अर्यः) स्वामी, (द्यौः न) सूर्य के समान तेजस्वी और (भूम) पृथिवी के समान बलवान् हो। हे (सहसः सूनो) बलवान् सैन्य के सञ्चालक तू ऐसे (वृत्र-तुरम्) दुष्ट विघ्नकारी शत्रु जन के नाशक (सहस्र-भरम्) सहस्रों धनों के लाने वाले, सहस्रों पुरुषों के भरण पोषण करने में समर्थ (उर्वरासाम्) अन्नादि के उत्पादक, उर्वरा उत्तम भूमियों के भोक्ता (तं) उस ऐश्वर्यवान् पुरुष को (नः दद्धि) हमें दे।

दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥ २ ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (अपः वव्रिवांसं) जलों को अपने गुप्त रूप से रखने वाले (अहिं) मेघ को (विष्णुना सचानः) व्यापक वायु वा सूर्य से मिलकर (ऋजीषीन्) सरल रेखा में जाने वाला विद्युत् (हन्) व्यापता या आघात करता है। तब (देवेभिः दिवः असुर्यं विश्वम् धायि) कामनावान् मनुष्य आकाश के समस्त मेघस्थ जल को प्राप्त करते हैं, वा सूर्य के किरण ही आकाश में मेघस्थ जल को अपने में धारण करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! (यत्) जब (अपः वव्रिवांसम्) आप्त प्रजाजनों को घेर लेने वाले, (अहिम्) सन्मुख आये, सर्पवत् कुटिल, व अवध्य, बलवान्, (वृत्रम्) समृद्ध शत्रु को तू (विष्णुना) व्यापक, विस्तृत सैन्य बल से (सचानः) समवाय बनाकर (अहन्) मारता है, तब हे (ऋजीषन्) सरल मार्ग में

प्रजाओं को सञ्चालित करने हारे राजन्! तब (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (विश्वम् असुर्यम्) समस्त असुरों को नाश करने वाले बल को, और (असुर्यं) असुरों से प्राप्त ऐश्वर्य को (देवेभिः) मनुष्य, (सचा अनुधायि) सदा निरन्तर धारण और पोषण करते हैं।

तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दुर्त्नुमावत्॥ ३॥

भा०—(यः) जो (विश्वासाम् पुराम्) शत्रु के नगरियों के (दर्त्नुम्) तोड़ने फोड़ने में समर्थ अस्त्र बल को (आवत्) प्राप्त करले वह (तूर्वन्) समस्त शत्रु का नाश करता हुआ, (तवसः) स्वयं बलवान् (ओजीयान्) सब में अधिक पराक्रमी, (तवीयान्) सबसे अधिक बलशाली, (कृत-ब्रह्मा) बहुत धन, और अन्न सम्पदा को सम्पादन करके (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वृत्र-महाः) वृद्धों का आदर करने हारा हो। वह ही (सोम्यस्य) ऐश्वर्य से प्राप्त होने योग्य (मधुनः) मधुर सुखों का भोक्ता (राजा अभवत्) राजा हो।

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अत्र) इस राष्ट्र में (अर्क-सातौ) अर्चनीय, पूज्य पुरुषों के सेवा करने के निमित्त और (अर्क-सातौ) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष का आश्रय, तथा 'अर्क', अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति वा विभाग के लिये (दश-ओणये) दशों को अपने से न्यून करने हारे सर्वश्रेष्ठ, दशावरा परिषत् के स्वामी (कवये) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष के लिये (पणयः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, विद्वान् वा व्यवहार चतुर पुरुष (शतैः) सैकड़ों की संख्या में (अप-द्रन्) दूर २ तक जाया करें। (वधैः) वधकारी शस्त्रों से भी (शुष्णस्य) बलवान् (पित्वः) सबके

पालक (अशुषः) शत्रु द्वारा कभी शोषण, या कृश न किये जाने वाले, वा प्रजा का रक्त शोषण न करने हारे राजा की (मायाः) बुद्धियों वा शक्तियों के (किंचन) कुछ लवमात्र भी कोई (न अरिरेचीत्) कम नहीं कर सकता ।

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५॥९॥

भा०—(यत्) जो राजा (शुष्णः वज्रस्य) बलवान् शस्त्रबल के (पतने) बढ़जाने पर (द्रुहः) द्रोही शत्रु के (महः) बड़े भारी (विश्वायु) समस्त बल को (अप धायि) नीचे गिरा देता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति या राजा (सूर्यस्य सातौ) सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (सारथये) अपने सारथी, और (कुत्साय) शस्त्रों और शस्त्रबल की रक्षा और वृद्धि के लिये, (उरु सरथं) एकही रथ पर पर्याप्त उद्योग (कः) करे । इति नवमो वर्गः ॥

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥ ६ ॥

भा०—बलवान् राजा (दासस्य) प्रजा के नाशक दुष्ट, (नमुचेः) अपने बुरे स्वभाव को न छोड़ने वाले, अथवा दण्ड से न मुक्त करने योग्य, दुराग्रही, अवश्य दण्डनीय, शत्रु के (शिरः) शिर को (मथायन्) मथता, विनाश करता हुआ, (श्येनः) उत्तम गति या उत्तम आचरणवान् , वा वाज़ के समान वेग से आक्रमण करने वाला, सेनापति (अस्मै) इस राष्ट्र की वृद्धि के लिये (मदिरम् अंशुम्) तृप्तिकारक अन्न को (प्र) अच्छी प्रकार ग्रहण करे, और (साप्यं) अपने साथ सन्धिपूर्वक सम-वाय बनाकर रहने वाले, (ससन्तं) शान्त सोते के समान आगे लेटे, (नमीं) आगे झुकने वाले या (नमीं ससन्तं) नम्र होकर रहने वाले

शत्रु की भी (प्र अवत्) अच्छी प्रकार रक्षा करे। और उसको (राया-संपृणक्) धन से संयुक्त करे, और (इषा स्वस्ति संपृणक्) अच्छी प्रकार सुख से उसकी इच्छा या अभिलाषा, सेना आदि से संयुक्त करे, उसे धन, सैन्य आदि की सहायता भी करे।

वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शस्त्रबल के धारण करने हारे! तू (अहि-मायस्य) सर्प वा मेघ के समान माया करने वाले, (पिप्रोः) अपना पेट पूरने वाले शत्रु के (दृढाः पुरः) दृढ नगरियों को भी (शवसा) बलपूर्वक (न दर्दः) क्यों न तोड़े? हे (सुदामन्) उत्तम दानशील तू (ऋजिश्वने) सरल धार्मिक गुणों को बढ़ाने वाले अथवा 'ऋजु' सरल, धर्म मार्ग पर चलने वाले अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय, (दाशुषे) कर आदि देने वाले धार्मिक प्रजाजन को (अप्रमृष्यम् दात्रं तत् रेक्णः दाः) ऐसा धन दे जिसको कोई बलात् भी न छीन सके।

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥८॥

भा०—(मातुः द्योतनाय न इयध्यै उपसृजे) माता के प्रकाशित या प्रफुल्लित करने के लिये जिस प्रकार बालक उसके पास आने का यत्न करता है उसी प्रकार (सः) वह राजा (मातुः द्योतनाय) मातृ समान अपनी राष्ट्र भूमि को चमकाने के लिये और (इयध्यै) उसे प्राप्त करने लिये (वेतसुं) राज्य को अपने वश करने वाले शासन दण्ड, को (दश-मायम्) दशगुणा वृद्धि देने वाले, दशवरापरिषत् को, (दशओणिम्) दशों दिशाओं को वश करने में समर्थ सेनापति को (तूतुजिम्) शत्रुओं के नाशकारी (तुग्रम्) बल को अपने अधीन करने वाले सैन्य और

(इयध्यै) गमनागमन के लिये (इभं) और हस्ति को (शश्वत्) सदा (उप सृज) ग्रहण करे, अपना कार्य सम्पादन करे ।

स ई॑ स्पृधो॑ वनते॒ अप्र॑तीतो॒ बिभ्र॒द्वज्रं॑ वृत्र॒हणं॒ गभ॑स्तौ ।
तिष्ठ॒द्धरी॒ अध्य॑स्तेव॒ गर्ते॑ वचो॒युजा॑ वहत॒ इन्द्र॑मृ॒ष्वम् ॥ ९ ॥

भा०—(सः) वह राजा (गभस्तौ) हाथ में (वज्रं बिभ्रत्) शस्त्र वा राजदण्ड धारण किये, (अप्रतीतः) शत्रुओं से अज्ञात रहकर वा अन्यों से (अप्रति-इतः) मुक़ाबले पर भी न जीता जाकर (ईं स्पृधः वनते) इन अपने से स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को विनाश करे, वा परस्पर स्पर्धा करनेवाले वादिप्रतिवादियों के धन आदि का न्यायपूर्वक विभाग करे । (अस्ता इव गर्त्ते अधि हरी अतिष्ठत) जिस प्रकार शूरवीर धनुर्धर पुरुष रथ पर चढ़कर अपने दोनों अश्वों पर शासन करता है उसी प्रकार राजा (गर्त्ते अधि) न्यायासन पर विराज कर (हरी अधि तिष्ठत्) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के मनुष्यों पर शासन करें । उस समय (ऋष्वम् इन्द्रम्) उस महान्, पूज्य, इन्द्रासन पर विराजते राजा को (वचोयुजा) वाणियों से परस्पर पर अभियोग करने वाले दो वकील सत्य निर्णय पर पहुंचावें । इसी प्रकार वह राजा (गर्ते अधि हरी तिष्ठत्) रथ पर सवार होकर अश्वों पर वश करे, और वाणी द्वारा अन्यों को कार्य में लगाने में समर्थ वा राजा के आज्ञाकारी दो विद्वान् जन उस महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र वा राष्ट्रपति को (वहतः) धारण करें, उसका कार्य सम्पादन करें ।

स॒नेम॒ तेऽव॑सा॒ नव्य॑ इन्द्र॒ प्र पू॒रवः॑ स्तवन्त ए॒ना य॒ज्ञैः ।
स॒प्त यत्पुरः॒ शर्म॒ शार॑दी॒र्दर्द्धन्दासीः॑ पुरु॒कुत्सा॑य॒ शिक्ष॑न् ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुओं को मारने हारे ! (यत्) जो तू (सप्त) सात (शारदीः) हिंसक शत्रु की (पुरः) नगरियों को

(शर्म दर्त) अपने बल से विनाश करता है, और (पुरुकुत्साय) बहुत से शस्त्र समूहों को धारण करने वाले सेनापति की (दासीः) शत्रु नाशकारिणी सेनाओं को (शिक्षन्) उत्तम युद्ध शिक्षा देता और वेतनादि देता हुआ शत्रुओं को (हन्) दण्ड देता है, उस (ते) तेरे (अवसा) रक्षा सामर्थ्य से हम (नव्यः) सदा उत्तम से उत्तम सम्पदाओं को (सनेम) प्राप्त करें। और (पूरवः) मनुष्यगण (यज्ञैः) उत्तम आदर सत्कारों द्वारा (एना) इन नाना सम्पदाओं की (प्र स्तवन्त) खूब स्तुति, प्रशंसा, चर्चा किया करें।

त्वं वृ॒ध इ॑न्द्र पू॒र्व्यो भू॑र्वरिव॒स्यन्नु॒शने॑ का॒व्याय॑।
परा॒ नव॑वास्त्वमनु॒देयं॑ म॒हे पि॒त्रे द॑दाथ॒ स्वं नपा॑तम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (उशने काव्याय) कामना करने वाले विद्वान् या अति पूज्य (पित्रे) पिता के तुल्य ज्ञानदाता पुरुष के उपकारार्थ, (स्वं नपातम्) कभी नष्ट न होने वाला, अपना धन और (नववास्त्वं) उत्तम से उत्तम नवीन रहने का घर और पहरने का वस्त्र और (अनुदेयं) बाद में भी देने योग्य विदाई (परा ददाथ) दान दिया कर। इस प्रकार (वृधः वरिवस्यन्) अपने से बड़ों की सेवा करता हुआ, (त्वं) तू (पूर्व्यः भूः) अपने पूर्व विद्यमान विद्या और वयस में वृद्ध जनों का हितकारी और श्रेष्ठ पुरुष हो।

त्वं धुनि॑रिन्द्र॒ धुनि॑मतीर्ऋ॒णोर॒पः सी॒रा न स्रव॑न्तीः।
प्र यत्स॑मु॒द्रमति॑ शूर॒ पर्षि॑ पा॒रया॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॑ स्व॒स्ति ॥ १२ ॥

भा०— (धुनिः धुनिमतीः अपः ऋणोः सीराः न स्रवन्तीः) मेघों को कंपाने वाला वायु कम्पनकारी विद्युतों से युक्त मेघस्थ जलों को बहती धाराओं के समान बहाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते! (त्वं) तू (धुनिः) शत्रुओं को कंपाने हारा होकर (धुनिमतीः अपः),

स्तुतिशील आप्त प्रजाओं को (सीराः स्रवन्तीः न) बहती धाराओं के समान (ऋणोः) अपने अनुकूल चला । (यत्) जो हे वीर ! (शूर) शूर तू स्वयं (समुद्रं पर्षि) समुद्रवत् संकट को पार कर, (तुर्वशुं) शीघ्र वश आने वाले (यदुम्) यत्नवान् प्रजाजन को भी (स्वस्ति पारय) सुखपूर्वक पार कर ।

तव॑ ह॒ त्यदि॑न्द्र॒ विश्व॑मा॒जौ स॒स्तो धुनी॒ चुमु॑री॒ या ह॒ सिष्व॑प् ।
दी॒दय॒दित्तुभ्यं॒ सोमे॑भिः सु॒न्वन्द॒भीति॑रि॒ध्मभृ॑तिः प॒क्थ्य१॒॑र्कैः ॥१३॥१०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (तव ह त्यत् विश्वम्) यह सब तेरा ही सामर्थ्य है कि (आजौ) युद्ध काल में भी जो तेरी (धुनी चुमुरी) शत्रु को कंपा देने और राष्ट्र को भोग करने वाले सामर्थ्य हैं तू उन दोनों को (सस्तः) सुला देते अर्थात् उनको मन्द कर देते हो । और जो (दभीतिः) नाश करने हारा, होकर (इध्म-भृतिः) लकड़ी से अपना भरण पोषण करने वाला, अग्नि के समान तेज मात्र धारण करने वाला, (पक्थी) परिपाक करने वाला, तेजस्वी पुरुष (अर्कैः सोमेभिः) अन्नों और जलों से (तुभ्यं) तेरा (सुन्वन्) सत्कार करता हुआ (दीदयत्) प्रकाशित करे तू उसको सुखी कर । इति दशमो वर्गः ॥

[२१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ९, १०, १२ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, ११ त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ स्वराड्बृहती ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इ॒मा उ॑ त्वा पुरु॒तम॑स्य का॒रोर्हव्यं॑ वीर॒ हव्या॑ हवन्ते ।
धियो॑ रथे॒ष्ठाम॒जरं॒ नवी॑यो र॒यिर्विभू॑तिरीयते वच॒स्या ॥ १ ॥

भा०—हे (वीर) विविध उपायों से प्रजा को उपदेश देने हारे एवं सत्कर्मों में लगाने हारे ! विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (इमाः) ये

(हव्याः) उत्तम स्तुति करने वाली, प्रजाएं (पुरु-तमस्य) बहुतों में श्रेष्ठ, (कारोः) विद्वान्, कर्त्ता, विधाता पुरुष के (हव्यं) स्तुति योग्य कर्म की (हवन्ते) स्तुति किया करते हैं। (धियः) उत्तम बुद्धियां और (अजरं) अक्षय (नवीयः) अति उत्तम कर्म नये से नया ज्ञान, (रयिः) ऐश्वर्य, (वचस्या) वचनीय, (विभूतिः) विशेष सामर्थ्य से सब उत्तम वस्तुएं हे वीर! स्तुत्य (रथेष्ठां त्वा) रथ पर स्थित तुझको (ईयते) प्राप्त हों।

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

भा०—(यस्य) जिस (पुरु-मायस्य) नाना प्रकार के निर्माण सामर्थ्यों, नाना शक्तियों और बुद्धियों से सम्पन्न परमेश्वर का (महित्वम्) महान् सामर्थ्य (दिवम् अति रिरिचे) सूर्य से बढ़ कर है और जो (पृथिव्या अति रिरिचे) पृथिवी से भी बड़ा है। (यः विदानः) जो ज्ञानवान् है, (तम् उ) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (गिर्वाहसं) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य, (यज्ञ-वृद्धम्) उपासना और आदर सत्कारों, दानों आदि से परिपुष्ट, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (स्तुषे) स्तुति कर।

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (इत्) ही (अवयुनं) जिसमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता ऐसे घोर (तमः) अन्धकार को (सूर्येण) सूर्य के द्वारा (वयुन-वत् चकार) अभिव्यक्त, ज्ञान योग्य कर देता है। हे (स्वधावः) स्वयं धारण शक्ति के स्वामिन्! हे प्रभो! (मर्त्ताः) मरणधर्मा ये जीव (अमृतस्य ते) जरा मरण रहित, अविनाशी तेरे (धाम) तेजोमय जगत् के धारण करने वाले सामर्थ्य को (इयक्षन्तः) प्राप्त होना चाहते हुए (कदा) कभी भी (न मिनन्ति) हिंसा नहीं

करते। प्रत्युत प्रभु परमेश्वर को साक्षात् करने के लिये वे अहिंसा महाव्रत का पालन करते हैं।

यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

भा०—(यः) जो (ता) वे नाना जगत्-सर्जन आदि कर्म (चकार) करता है (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (कुह स्विद्) कहा हैं! वह (कम् जनं आ चरति) किस मनुष्य को प्राप्त होता है? (कासु विक्षु च चिरति) वह किन प्रजाओं में व्यापता है? हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा (कः यज्ञः) वह कौनसा उपासना का प्रकार है जो (मनसे शम्) चित्त को शान्ति दायक है? (कः अर्कः) कौनसा अर्चना करने का उपाय है जो (वराय) श्रेष्ठ पद प्राप्त करने के लिये है? हे प्रभो! (सः) वह (होता) सब का दाता (कतमः) कौन सबसे श्रेष्ठ है? उत्तर—(कतमः) वह परम सुखस्वरूप है। वही सब से श्रेष्ठ जगत् का विधाता व्यापक, सर्वपूज्य है।

इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५।११॥

भा०—हे परमेश्वर! हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये हुए! हे (पुरुकृत्) बहुत से लोकों को बनाने हारे! (ये) जो (पुराजाः) पूर्वकाल में उत्पन्न हुए, (प्रत्नासः) अति पुरातन, (मध्यमासः) मध्यकाल में उत्पन्न (उत) और (नूतनासः) नये विद्वान् (इदा हि) इस समय भी (वेविषतः ते) सर्वव्यापक तेरे (सखायः) मित्र ही हैं! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित! (उत) और तू (अवमस्य) अब के अर्थात् अन्तिम और आगे के सबको (बोधि) जानता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः ।
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् । प्रभो ! (अवरासः) बाद के उत्पन्न जीव गण, (तं) उस परम वेद्य को (पृच्छन्तः) आदरपूर्वक प्रश्न द्वारा जानने की इच्छा करते हुए, (ते) तेरे ही (प्रत्ना) सनातन से चले आये, (पराणि) उत्तम २ (श्रुत्या) श्रवणीय गुरु-उपदेशादि वा वेद द्वारा जानने योग्य कर्मों, स्वरूपों को (अनु) जानने और करने को लक्ष्य करके (येमुः) यम, नियम, दीक्षा बन्धनादि करते हैं। हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेश करने हारे, विविध लोकों के सञ्चालक ! (ब्रह्मवाहः) ज्ञानरूप धन को धारण करने वाले हम लोग (त्वा यात् एव विद्म) जितना ही तुझ को जानते हैं (तात् एव) उतना ही (महन्तं) बड़ा महान् पाकर तेरी (अर्चामसि) अर्चना करते हैं।

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष का (पाजः) बल (महि जज्ञानम्) बड़े भारी रूप में प्रकट होने वाले (त्वा अभि वि-तस्थे) तेरे प्रति विविध प्रकार से विरोध में खड़ा हो, तब तू (तत्) उसके (अभि) मुक़ाबले पर (तिष्ठ) खड़ा होजा। हे (धृष्णो !) शत्रुओं को पराजय करने हारे ! और तू (तव) अपने (प्रत्नेन) सदा-तन (युज्येन) सहायक (सख्या) मित्रवत् (वज्रेण) शस्त्रबल से (ता) उन सबको (अपनुदस्व) दूर कर। (२) अध्यात्म में इन्द्र जीव है। विघ्नकारी, सत्कार्यों में बाधक काम क्रोधादि 'रक्षस्' हैं। उनका बल वार २ बाधक होकर उपस्थित होता है। वह अपने सनातन सखा 'वज्र', अज्ञान दुःखादि के नाशक प्रभु परमेश्वर की सहायता से उसको दूर करे।

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितृणां शश्वद् बभूथ सुहव एष्टौ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (वीर) वीर ! विविध लोकों के चलाने हारे प्रभो ! वा शूरवीर राजन् ! हे (कारुधायः) विद्वान् स्तोता जनों तथा शिल्पकर्त्ता जनों के पालक पोषक प्रभो ! राजन् ! (सः) वह तू (ब्रह्मण्यतः) धनेच्छुक और परम ब्रह्म ज्ञान वा ब्रह्मपद की कामना करने वाले (नूतनस्य) नये (मुमुक्षु) पुरुष के (श्रुधि) वचन को श्रवण कर । (त्वं हि) तू (प्रदिवि) उत्तम कामना के निमित्त सदा (पितृणां) पालक पिताओं का भी (आपिः) परम बन्धु है । और तू ही (शश्वत्) सदा काल से (सु-हवः) सुखपूर्वक बुलाने और प्रार्थना करने योग्य होकर (इष्टौ आ बभूथ) यज्ञ, सत्संग में मान-आदरपूर्वक प्राप्त होता है ।

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वताँश्च ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे प्रभो ! हे राजन् ! तू (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (वरुणं) रात्रिको, श्रेष्ठ पुरुष और शत्रुवारक जन को, (मित्रम्) दिन को, और सर्व स्नेही ब्राह्मण को, (मरुतः) वायुओं को, विद्वानों को, वीर पुरुषों को और व्यापारी पुरुषों को, (अद्य) आज, सदा (प्र कृष्व) उत्तम बना । और (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (पूषणं) पृथ्वी को और पोषक वर्ग को, (विष्णुम्) व्यापक वायु वा विद्युत् को, और प्रजा में प्रभावशाली को, (अग्निम्) अग्नि तत्व को, अग्रणी, विद्वान् को, (पुरन्धिम्) देहपुर वासी पुरुष के धारक बुद्धि को, स्त्री को और राष्ट्र के धारक शक्तिमान् राजा को, (सवितारम्) सर्वोत्पादक पिता, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को, और (ओषधीः) ओषधियों को और शत्रु तापक तेज धरने वाली सेनाओं को, और (पर्वतान् च)

मेघों, पर्वतों को और पालन कर्त्ता, मेघवत् उदार तथा पर्वतवत् अचल पुरुषों को भी (प्र कृध्व) उत्तम रूप से सामर्थ्यवान् और सुखदायक बना।

इम उं त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति १०

भा०—हे (पुरुशाक) बहुत सी शक्तियों के स्वामिन् ! हे (प्रयज्यो) उत्तम दानशील, सत्संग योग्य, उत्तम पूजनीय प्रभो ! (इमे जरितारः) ये स्तुतिशील विद्वान् जन (अर्कैः) उत्तम अर्चना योग्य वेद मन्त्रों, स्तुतियों से (त्वा अभि अर्चन्ति) तेरी ही अर्चना करते हैं। (आ हुवतः) अपने आत्मा को तेरे प्रति आहुतिवत् अर्पण करने वाले और तुझे आदर पूर्वक बुलाने वालों को भी तू (आहुवानः) अपने प्रति बुलाता और अपने को उनके तईं देता हुआ उनका वचन (आ श्रुधि) आदरपूर्वक श्रवण कर। हे (अमृत) अमृतस्वरूप ! अविनाशिन् ! (त्वावान्) तेरे जैसा (त्वत् अन्यः न अस्ति) तेरे से भिन्न दूसरा नहीं है।

नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥ ११ ॥

भा०—(ये) जो (ऋत-सापः) सत्य वचन के आधार पर दृढ़ता से समवाय बनाने वाले, सत्य पर दृढ़ (अग्निजिह्वाः) अग्नि की ज्वाला के समान ज्ञान का प्रकाश करने वाली वाणी को बोलने वाले, (आसुः) हैं और (ये) जो (मनुं) मननशील (उपरं) सर्वोपरि विराजमान, मेघवत् उदारता से निष्पक्षपात होकर दान देने वाले को (दसाय) अज्ञान वा शत्रु का नाश करने के लिये (चक्रुः) नियुक्त करते हैं उन (यजत्रैः) दानशील, सत्संगी और पूजा के योग्य, (विश्वेभिः) समस्त पुरुषों के साथ या उन द्वारा हे (सहसः सूनो) बल-

वान् पुत्र, बल, सैन्य के सञ्चालक ! तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उप याहि) प्राप्त कर ।

स नो॑ बोधि पुरए॒ता सु॒गेषू॒त दु॒र्गेषु॑ पथि॒कृद्वि॒दानः॑ ।
ये अश्र॑मास उ॒रवो॒ वहि॑ष्ठास्तेभि॑र्न इन्द्रा॒भि व॑क्षि॒ वाज॑म् १२।१२

भा०—(सः) वह तू (विदानः) ज्ञानवान् (पथि-कृत्) मार्ग बनाने हारा, (सुगेषु) सुगम और (दुः-गेषु) विषम स्थानों में (उत) भी (पुरः-एता) आगे चलने वाला नायक होकर (नः बोधि) हमें उत्तम ज्ञान दे, सन्मार्ग का उपदेश दे । (ये) जो (अश्रमासः) कभी न थकने वाले, (उरवः) बड़े (वहिष्ठाः) उत्तम वहन करने वाले अश्व के समान सुदृढ़, धुरन्धर पुरुष हैं (तेभिः) उन द्वारा हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् ! तू (नः) हमें (अभि-वाजम्) ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम आदि कार्यों की ओर (वक्षि) ले चल । इति द्वादशो वर्गः ॥

[२२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक् पंक्तिः । ३ स्वराट् पंक्तिः । १० पंक्तिः । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ६, ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

य एक॒ इद्धव्य॑श्चर्षणी॒नामिन्द्रं॒ तं गी॒र्भिर॒भ्य॑र्च आ॒भिः ।
यः पत्य॑ते वृष॒भो वृष्ण्या॑वान्त्स॒त्यः सत्वा॑ पुरुमा॒यः सह॑स्वान् ॥१॥

भा०—(यः) जो (एक इत्) एक अद्वितीय ही (चर्षणीनाम् हव्यः) मनुष्यों के बीच में सबके पुकारने योग्य है (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् की (आभिः) इन (गीर्भिः) वेद वाणियों वा उत्तम वचनों से (अभि अर्चे) प्रतिक्षण साक्षात् अर्चना करूं । (यः) जो (वृषभः) सर्वश्रेष्ठ, समस्त सुखों का देने वाला, (वृष्ण्य-वान्) बलवान् पुरुषों के उचित बलों का स्वामी, है वह स्वयं भी (सत्यः) सत्य व्यवहार वाला,

न्यायशील, (सत्वा) बलवान्, (पुरु-मायः) बहुत सी प्रज्ञाओं वा वाणियों का ज्ञाता, और (सहस्वान्) बलवान् है ।

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥

भा०—(नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व के पालक, माता पिता और गुरुजन (नवग्वाः) नये से नये अति स्तुत्य, रम्य भूमियों, वाणियों और गतियों वाले, (सप्त) देह में सात प्राणों के समान, (विप्रासः) बुद्धिमान् पुरुष (अभि वाजयन्तः) एक साथ ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्त करते हुए (नक्षत्-दाभं) प्राप्त या राष्ट्र में और फैलते हुए शत्रु और सेना को नाश करने वाले, (ततुरिं) अति शीघ्र कार्य सम्पादन करने वाले, (पर्वते-ष्ठाम्) मेघ में विद्यमान, विद्युत् के समान तेजस्वी, धर्ममेघ दशा में विराजमान, (अद्रोघवाचम्) द्रोह रहित वाणी वाले (शविष्ठम्) अति बलवान् (तम्) उसको प्राप्त करें, उसके पास जाकर सत्संग लाभ करें।

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारे मनुष्यों के स्वामिन् ! (यः) जो (अस्कृधोयुः) कभी न खुटने वाला, (अजरः) अविनाशी, (स्वर्वान्) सुखप्रद ऐश्वर्य है वह तू (मादयध्यै) सुख प्राप्त करने के लिये (तम् आभर) उसे प्राप्त करा । (अस्य) उस (पुरु-वीरस्य) बहुत से पुत्र, भृत्य, वीर जनों से युक्त (नृवतः) उत्तम नायक वाले, (पुरु-क्षोः) बहुत अन्न सम्पदा से पूर्ण, (रायः) धन की हम (ईमहे) याचना करते हैं ।

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अज्ञाननाशक ! विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरे (यदि) जिस (सुम्नम्) सुख या उत्तम विचारणीय ज्ञान को (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा वा अध्येता जन (आनशुः) ज्ञान करते या पाते हैं (तत्) उसे (नः) हमें भी तू (वि वोचः) स्पष्ट रूप से उपदेश कर । हे (दुध्र) शत्रु से न हारने वाले ! हे (पुरु-हूत) बहुतों से अपनाये हुए ! हे (पुरु-वसो) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (असुर-घ्नः) दुष्ट असुरों के हनन करने वाले (ते) तेरा (भागः) कौन भाग और (किं वयः) क्या बल वा अधिकार है उसे तू पहचान ।

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्करी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥१३॥

भा०—(यस्य) जिस मनुष्य की (वेपी) सत्कर्म सहित व भक्ति भाव से कांपती हुई, (वक्करी) उत्तम वचन कहने वाली, (गीः) वाणी (वज्र-हस्तं) शस्त्र हाथ में लिये, (रथे-ष्ठाम्) रथ पर खड़े, (इन्द्रं) शत्रुहन्ता (तं) उस अलौकिक कर्त्ता, वीर पुरुष के विषय में (पृच्छन्ती) नाना प्रश्न पूछती हुई (गातुम् इषे) जाना चाहती है, वह (तुवि-ग्राभम्) बहुतों को वश करने वाले (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से लोकों के बनाने वाले, (रभः-दाम्) बल, शक्ति के दाता, (तुम्रम्) शत्रुओं को ग्लानि युक्त कर देने वाले संकटों के नाशक को (अच्छ नक्षते) भली प्रकर प्राप्त होता है, उसका साक्षात् करता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

भा०—हे (स्वतवः) स्वयं बलशालिन् ! 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य के बल से युक्त ! हे (स्वोजः) स्वयं अपने ओज, बल, पराक्रम वाले ! वा 'स्व' धन के बल पर या उसके लिये विशेष पराक्रम करने में समर्थ ! हे

(विरप्शिन्) गुणों में महान् ! परमेश्वर वा राजन् ! (त्वं) तू (अया ह मायया) इस अद्भुत निर्माणकर्त्री शक्ति, प्रकृति वा ज्ञानकर्त्री बुद्धि और (मनोजुवः) मन के समान वेग वाले (पर्वतेन) पोरु, पोरु, खण्ड २ में विद्यमान बल से तू (वव्रृधानं) अपने बढ़ते शत्रु, को विनाश कर। और (धृषता) शत्रु का मान भंग करने वाले, (अच्युता चित्) न डोलने वाले, (वीडिता) वीर्यवान् , बलवान् , (दृढ़ा) दृढ़ शत्रु नगरों वा सैन्यों को भी (रुजः) तोड़ डाल। वह प्रभु महान् परमेश्वर हमारे अभेद्य, दृढ़ वासनामय कुसंस्कार, मोहादि शत्रुओं का नाश करे।

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥

भा०—(तं) उस (शविष्ठं) अति बलशाली, (प्रत्नं) सनातन पुरुष को (नव्यस्या) नयी से नयी, अति रमणीय (धिया) वाणी और कर्म से (वः) आप लोगों के हित (परितंसयध्यै) सब प्रकार से सुशोभित करने के लिये, उसका उत्तम वर्णन करने के लिये (प्रत्नवत्) पूर्व के विद्वानों के समान ही यत्न करता हूं। (सः) वह (अनिमानः) अविज्ञेय, परिमाणरहित, महान्, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सु-वह्मा) सुखपूर्वक समस्त जगत् को वहन कर रहा है। वह (विश्वानि) समस्त (दुःगहानि) दुःख से प्राप्त करने योग्य संकटों से भी (नः वः अतिवक्षत्) हमें और आप सबको भी उत्तम सवारी के समान पार पहुंचा दे।

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥

भा०—हे (वृषन्) बलवान् ! उत्तम प्रबन्ध करने हारे प्रभो ! विद्वन् ! राजन् ! तू (पार्थिवानि) पृथिवी के और (दिव्यानि) आकाश

के और (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष के सब पदार्थों को (आ दीपयः) सब प्रकार से चमकाता है, तू (ब्रह्मद्विषे) परमेश्वर, वेदज्ञ और अन्नादि के द्वेषी, (द्रुह्वणे) और द्रोही (जनाय) वेदज्ञ मनुष्यों के लिये इन सब पदार्थों को (तप) संतप्त, दुःखदायी कर (तान्) उसको (शोचिषा) अपने तेजस से (विश्वतः शोचय) सब ओर से दग्ध कर। उस ब्रह्म से द्वेष करने वाले के लिये (क्षाम् अपः च शोचय) भूमि और जलों को भी प्रतप्त कर। प्रभु के द्वेषी पुरुष को ये सब भी पदार्थ सुखदायी न होकर कष्टदायी होते हैं।

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! तू (त्वेषसन्दृक्) कान्तियुक्त न्याय प्रकाश से सम्यक् दर्शन, यथार्थ विवेक करने वाला होकर (दिव्यस्य पार्थिवस्य राजा भुवः) दिव्य उत्तम पृथिवी के समस्त जनों और ऐश्वर्य का स्वामी हो। हे (अजुर्य) अविनाशिन् ! तू (दक्षिणे हस्ते) दायें हाथ में (वज्रं धिष्व) वज्र, बल या धैर्य को धारण कर। तू (विश्वाः) समस्त (मायाः) उत्तम विद्याओं बुद्धियों को (विदयसे) विविध प्रकार से दे और उनकी रक्षा कर। उसी प्रकार तू अपने शस्त्र बल से (मायाः वि दयसे) शत्रु की कपटयुक्त चालों को विविध प्रकार से नाश कर।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यया) जिस बुद्धि वा शक्ति से (दासानि) मनुष्यों के नाश करने वाले (वृत्रा) विघ्नकारी कुलों वा धनों को (आर्याणि) उत्तम श्रेष्ठ, सदाचार युक्त कुल, वा 'अर्य'

अर्थात् स्वामी के उपभोग योग्य (करः) बना देता है, और हे (वज्रिन्) शस्त्रास्त्र के स्वामिन्! हे बलशालिन्! और जिस बुद्धि वा शक्ति से तू (नाहुषाणि) मनुष्यों के कुलों वा धनों को (सु-तुका) उत्तम, सुखपूर्वक वृद्धिशील कर देता है, और (वृत्रा सु-तुकानि) विघ्नकारी जनों का सुखपूर्वक मारने योग्य करता है, तू (नः) हमारे लिये उस (संयतम् स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, अच्छी प्रकार प्रजा को नियमादि में बांधने वाली, और अच्छी प्रकार यत्न करने वाली कर। और (शत्रु-तूर्यम्) शत्रु के नाश करने के लिये (अमृध्राम्) न नाश होने वाली (बृहतीम्) बड़े भारी सेना को भी बना।

स नो॑ नि॒युद्भिः॑ पुरुहूत वेधो वि॒श्ववा॑राभि॒रा ग॑हि प्रयज्यो ।
न या अदे॑वो॒ वर॑ते॒ न दे॒व आभि॑र्याहि॒ तूय॒मा म॑द्र्य॒द्रिक् ११॥१४

भा०— हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंशित ! हे (वेधः) विधान, धारा वा राजनियमों के बनानेहारे! विद्वन्! हे (प्रयज्यो) उत्तम पूज्य! सत्संग योग्य उत्तम न्याय वा विद्या आदि के दातः! राजन्! (सः) वह तू (विश्व-वाराभिः) सबकी रक्षा करने वाली (नियुद्भिः) निरन्तर युद्ध करने वाली, ऐसी सेनाओं और अश्ववत् सदा नियुक्त रहने वाले भृत्यादि सहित तू (नः) हमें (आ गहि) प्राप्त हो! (या) जिनको (न अदेवः) न तो अदानशील (वरते) निवारण कर सके और (न देवः) न विजयेच्छुक शत्रु वा केवल चाहने वाला ही (वरते) प्राप्त कर सके, (आभिः) उनसे तू (मद्र्यद्रिक्) मेरे प्रति (तूयम्) शीघ्र ही (आ याहि) आ। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ६, १० त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। २, ४ स्वराट् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम पूजित ऐश्वर्य के स्वामिन्! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (यत् वा) जब भी तू (बाह्वोः) शत्रु को पीड़न करने वाली दो बाहुओं के समान दायें बायें की दो विशाल सेनाओं में (वज्रं) शत्रु को वर्जन करने वाले शस्त्र बल को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (युक्ताभ्यां हरिभ्याम्) जुते दो अश्वों से महारथी के समान (युक्ताभ्यां हरिभ्याम्) अधीन नियुक्त प्रजा के स्त्री पुरुषों सहित (यासि) प्रयाण करता है तब तू (स्तोमे) स्तुतियोग्य, (उक्थे) उत्तम प्रशंसनीय वचन के (शस्यमाने) कहे जाते हुए, (ब्रह्मणि) उत्तम, महान् ऐश्वर्य में तथा (सोमे) सर्वप्रेरक, राजपद पर (सुते) अभिषिक्त होने पर भी (निमिश्लः) तू उसमें निःसक्त होकर रह। वह सब ऐश्वर्य का ठाठ तुझे गर्वयुक्त और विलासी न बनावे।

यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२॥

भा०—(यद् वा) और जब तू (पार्ये दिवि) सबसे उत्कृष्ट, दूर तक फैलने वाले, तेज में (वृत्र-हत्ये) विघ्नकारियों के नाश करने और (शूर-सातौ) शूरवीर पुरुषों के लाभ कर लेने पर (सु-ष्विम्) उत्तम ऐश्वर्योत्पादक राष्ट्र को भी (अवसि) प्राप्त कर ले, (यद्वा) और जब (बिभ्युषः) भयभीत (दक्षस्य) व्यवहारकुशल प्रजा को (शर्धतः) नाश करने वाले (दस्यून्) शत्रु, दुष्ट पुरुषों को भी स्वयं (अबिभ्यत्) भय रहित होकर भी (अरन्धयः) वश कर सके तो भी हे राजन्! तू (निमिश्लः सन् राज्यं शाधि) निसंगत को राज्य का शासन, प्रजा का पालन शत्रु का नाश करता रहा कर।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित्॥३॥

भा०—(प्र-नेनीः) उत्तम उद्देश्य की ओर लेजाने हारा (उग्रः) बलवान् पुरुष (ऊती) रक्षा, उत्तम उपाय और सन्मार्ग से (सुतं) उत्पन्न अभिषेक द्वारा प्राप्त, (सोमं) राष्ट्र को और (जरितारं) उपदेष्टा विद्वान् (पाता) पालन करने हारा पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर राजा (अस्तु) बने। वह (सु-स्वये वीराय) उत्तम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले वीर पुरुषों के लिये (लोकं कर्त्ता) उत्तम स्थान बनावे (कीरये चित्) उत्तम विद्वान् (स्तुवते) उपदेष्टा पुरुष के लिये भी (वसु) उत्तम गृह, धन आदि का (दाता अस्तु) देने वाला हो।

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः॥ ४॥

भा०—वह राजा (हरिभ्यां) अश्वों से रथवान् पुरुष के समान (हरिभ्यां) राष्ट्र में विद्यमान उत्तम स्त्री पुरुषों द्वारा, व उनके हितार्थ अथवा उत्तम दो विद्वानों द्वारा (इयन्ति सवना) इतने, नाना शासनोचित कार्यों, ऐश्वर्यों को (गन्ता) प्राप्त होने वाला, (वज्रं बभ्रिः) शस्त्र बल को धारण करने वाला, (सोमं पपिः) अन्न और ऐश्वर्य का भोक्ता और पालक (गाः ददिः) उत्तम वाणियों और भूमियों का दान करने वाला हो। वह (सर्व-वीरं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त (नर्यं) नायक पुरुष के अधीन और राष्ट्र में बसे मनुष्यों का हितकारी (वीरं) वीर सैन्य वा पुत्र का (कर्त्ता) उत्पन्न करने वाला हो। वह (स्तोमवाहाः) स्तुति वचनों और स्तुत्य पदाधिकार को धारण करने हारा होकर (गृणतः हवं श्रोता) उपदेष्टा और निवेदक जन के उत्तम वचनों और पुकार का श्रवण करने वाला हो।

अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५।१५॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारी (प्र-दिवः) उत्तम २ कामनाओं को पूर्ण करने के लिये वा सनातन, अनादि काल से (अपः कः) नाना कर्म करता है वह (यत् ववान) जो भी चाहता है (तत् विविष्मः) हम वह २ प्राप्त करें । (वयं) हम (अस्मै इन्द्राय) इस ऐश्वर्यवान् के लिये (सुते सोमे) ऐश्वर्य, अन्न और उत्पन्न पुत्र आदि प्राप्त होने पर अवश्य (स्तुमसि) स्तुति करें । मनुष्य को चाहिये कि (इन्द्राय) उस परमेश्वर के (उक्था) स्तुतियां अवश्य (शंसत्) किया करे, (यथा) जिससे कि हमारा (ब्रह्म) बृहत् ज्ञान और धन, अन्न और जीव आत्मा आदि जो प्राप्त किया है वह (वर्धनम्) स्वयं वृद्धिशील, हमें बढ़ती देने हारा (असत्) हो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि राण्ड्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हि) निश्चय से (ब्रह्माणि) धनैश्वर्यों और अन्नों को मेघ के समान सदा (वर्धनानि) बढ़ने वाला (चकृषे) करता है, उनको निरन्तर बढ़ाता है । (तावत्) इसी कारण हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (मतिभिः) अपनी बुद्धियों द्वारा (ते) तेरे सामर्थ्यों को (विविष्मः) प्राप्त करें । हे (सु-तपाः) समस्त उत्पन्न होने वाले जीवों, तथा ऐश्वर्य अन्नादि के पुत्रवत् पालन तथा उपभोग करने हारे ! (सुते सोमे) अन्न ऐश्वर्य वा सौम्य पुत्रादि के उत्पन्न होने पर भी हम (शं-तमानि) अति शान्तदायक, (राण्ड्या) हर्षजनक (वक्षणानि) स्तुति वचन, (यज्ञैः) ईश्वरोपासना, विद्वत्सत्कार और अग्निहोत्र, दान आदि उत्तम कर्मों सहित क्रिया किया करें, सुख सौभाग्य-

ऐश्वर्य तथा सन्तान की वृद्धि मनुष्य परमेश्वर की स्तुति, दान, यज्ञ, विद्वत्सत्कार किया करे।

स नो॑ बोधि पु॒रो॒ळाशं॒ ररा॑णः पिबा॑ तु सोमं॒ गोऋ॑जीकमिन्द्र।
एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सीदो॒रुं कृ॑धि त्वाय॒त उ॑ लो॒कम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! धनाढ्य पुरुष! वह तू (रराणः) अति प्रसन्न होकर एवं (पुरोडासं रराणः) अन्न प्रदान करता हुआ, (गो-ऋजीकम्) गोरस, दूध आदि संस्कृत, तथा (गो-ऋजीकं) और इन्द्रियों को ऋजु, सरल, सौम्य स्वभाव बनाने वाले तथा (गो-ऋजीकं) वाणी, से संस्कृत, प्रशस्त और भूमि आदि से सुसम्पन्न (सोमम्) अन्न, ऐश्वर्य और पुत्रादि का (पिब) स्वयं पान तथा पालन कर। और तू (यजमानस्य) दान देने वाले, यज्ञशील पुरुष के योग्य (इदं बर्हिः) वृद्धि प्रतिष्ठाजनक इस उत्तम आसन पर (सीद) विराज। (त्वा-यतः) तुझे चाहने वाले प्रियजन के लिये (लोकं) स्थान को (उरुं कृधि) विशाल कर।

स म॑न्दस्वा॒ ह्यनु॒ जोष॑मुग्र॒ प्र त्वा॑ य॒ज्ञास॑ इ॒मे अ॑श्नुवन्तु।
प्रेमे हवा॑सः पुरुहू॒तम॒स्मे आ त्वि॒यं धीरव॑स इन्द्र यम्याः ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे विद्या और कर्म में कुशल द्रष्टः! (इमे यज्ञासः) ये यज्ञ, दान सत्संग, देवपूजा आदि सत्कर्म, (त्वा) तुझे (प्र अश्नुवन्तु) प्राप्त हों। (इमे हवासः) ये दान और आदान अर्थात् देने लेने योग्य ज्ञान, अन्न, धन, उत्तम वचन स्तुति आदि पदार्थ (त्वा पुरु-हूतम्) बहुत से स्तुति प्राप्त तुझको प्राप्त होवें। (इयं धीः) यह उत्तम बुद्धि और कर्मकुशलता तथा राष्ट्र के धारण पालन पोषण की शक्ति (अवसे) रक्षा, ज्ञान, प्रीति आदि के लिये (आ) प्राप्त हो। तू (यम्याः) उत्तम रीति से प्रबन्ध कर। (सः)

वह तू हे (उग्र) बलशालिन्! (अनु जोषम्) प्रेमपूर्वक (मन्दस्व) आनन्द, प्रसन्न रह ।

तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥९॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! सभा आदि स्थलों पर एक समान ख्याति वालो ! आप लोग (वः) अपने (सुतेषु) ऐश्वर्यों और उत्पादित अन्नों के आधार पर (सोमेभिः) अन्न आदि ऐश्वर्यवर्धक पदार्थों और उत्तम पुरुषों द्वारा (भोजम्) अन्नों द्वारा भोक्ता पुरुष के समान इस राष्ट्रभोक्ता और पालक (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता, और सम्यक् द्रष्टा पुरुष को (ईम्) जल से (सं पृणत) अच्छी प्रकार अभिषिक्त, और पूर्ण ऐश्वर्यवान् करो । (यथा) जिससे (तस्मै) उसको (नः भराय) हमारे पालन पोषण के लिये (कुवित्) बहुत साधन तथा अन्न धनादि सम्पदा (असति) हो । (सु-स्विम्) उत्तम रीति से अन्न, और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले राष्ट्र को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् राजा (अवसे) रक्षा करने के लिये (न मृधाति) उनका नाश नहीं करे ।

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता १०।१६।२

भा०—(इन्द्र एव इत्) वह शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान्, इस राष्ट्र को न्यायपूर्वक देखने वाला पुरुष ही (सुते सोमे) उत्पन्न हुए पुत्र के तुल्य इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में (क्षयत्) निवास करे । और (भरद्-वाजेषु) ऐश्वर्य, और अन्न, ज्ञान आदि को धारण करने वाले मनुष्यों के निमित्त (मघोनः) ऐश्वर्यवान् सम्पन्न लोगों को भी पालन करे । (यथा) जिससे (इन्द्रः) वह राजा (जरित्रे) विद्वान् जनों के हित के लिये (सूरिः) उत्तम शासक (उत) तथा (विश्व-वारस्य रायः दाता) सबको स्वीकार करने योग्य, उत्तम धनों का दाता (असत्) हो । इति षोडशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[२४]

भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पंक्तिः । ३, ५, ६ पंक्तिः । ४, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ ब्राह्मी बृहती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

वृषा मद इन्द्रे श्लोकं उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्यं उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और शत्रुहन्ता सैन्य बल पर (वृषा) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, मेघवत् उदार प्रबन्धक (मदः) अति प्रसन्न, (श्लोकः) पुण्य कीर्त्तिमान्, (सोमेषु) सौम्य स्वभाव के पुरुषों के बीच में (सचा) समवाय बनाकर रहने वाला (सु-तपाः) प्रजा को पुत्र के समान पालन करने और (सु-तपाः) उत्तम तपस्वी और शत्रुओं को खूब तपाने हारा, (ऋजीषी) ऋजु, धर्म-पूर्वक सरल मार्ग से प्रजा को ले जाने हारा (अर्चत्र्यः) अर्चना करने योग्य, पूज्य, (मघवा) धनसम्पन्न (द्युक्षः) तेजस्वी, (राजा) राजा (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यों के हित के लिये (गिराम्) उपदेष्टा विद्वानों के (उक्थैः) उत्तम वचनों से उपदेश प्राप्त कर वह (अक्षितोतिः) अक्षय, अनन्त रक्षा सामर्थ्य वाला हो ।

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् २

भा०—(ततुरिः) शत्रुओं को नाश करने वाला, (वीः) विविध बलों का स्वामी, तेजस्वी, रक्षक, वीर, (विचेताः) विविध ज्ञानों का जानने हारा, विशेष चित्त से युक्त, (नर्यः) नायकों और मनुष्यों में श्रेष्ठ, उनका हितैषी, (गृणतः) उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष के (हवं) ग्रहण करने योग्य उपदेश-वचन को तथा निवेदन करने वाले प्रजाजन की पुकार तथा

आह्वान को (श्रोता) सुनने हारा राजा (उरु-ऊतिः) बड़ी रक्षा सामर्थ्य वाला हो। वह (वसुः) राष्ट्र को बसाने वाला, (नराशंसः) सब मनुष्यों में उत्तम स्तुति योग्य (कारु-धायाः) शिल्पी तथा विद्वान् जनों का पालक पोषक, (वाजी) बलवान् पुरुष (स्तुतः) प्रशंसित और नायक पद पर प्रस्तुत होकर (विदथे) संग्रामादि के अवसर पर (वाजम् दाति) ऐश्वर्य और बल को देता है।

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३ ॥

भा०—(चक्रयोः अक्षः न) गाड़ी के पहियों में जिस प्रकार धुरा लगा रहता है वह उसके समस्त भार को सहता और चलता है उसी प्रकार हे (शूर) शूरवीर ! हे शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! प्रभो ! (ते) तेरा (बृहन्) बड़ा भारी (अक्षः) तेज और व्यापक बल, (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी के बीच में सूर्य के प्रकाश वा परमेश्वरी शक्ति के समान स्व और पर राष्ट्रों तथा शासक और शास्य वर्गों में (ते मह्ना) तेरे महान् सामर्थ्य से, (प्र रिरिचे) बहुत अधिक बड़ा है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (वयाः) ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियां और व्यापक सामर्थ्य और शाखा संस्थाएं, तेजस्वी पुरुष गण (वृक्षस्य वयाः नु) वृक्ष की शाखाओं के समान (वि रुरुहुः) विविध दिशाओं में विविध प्रकारों से उत्पन्न हों, बढ़ें और फलें फूलें। (२) राष्ट्र में राजा का शासन, निरीक्षण आदि चक्रों में अक्ष के समान लगकर उसे धारण करता है और सब शासक जन उसकी शाखावत् हैं।

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥

भा०—हे (पुरुशाक) नाना शक्तियों के स्वामिन् ! (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणीः) जिस प्रकार गौओं के चलने के मार्ग अच्छी प्रकार

चलने योग्य होते हैं और (गवाम् इव स्रुतयः सञ्चरणीः) जिस प्रकार गौओं के दूध की बहती धारें अच्छी प्रकार सुख से खाने योग्य होती हैं उसी प्रकार (ते शचीवतः) तुझ शक्तिशाली, वाणी प्रज्ञा तथा शक्ति वाली सेना के स्वामी के (शाकाः) शक्तिशाली पुरुष तथा शक्ति के कार्य भी (संचरणीः) उत्तम रीति से चलने वाले, सदाचारी, और सुखदायक हों। हे (सुदामन्) उत्तम नियमों में बांधने हारे ! (वत्सानां तन्तयः न) बछड़ों को बांधने की रस्सियां जिस प्रकार कुछ ढीली रहकर भी बछड़ों को कष्ट न पहुंचाती हुई उनके लाभ के लिये होती हैं उसी प्रकार (वत्सानां) राष्ट्र में बसी प्रजाओं के (तन्तयः) विस्तृत राजनियम तथा (शाकाः) तेरे शक्ति के कार्य भी (अदामानः) स्वतः बन्धनरहित होकर भी (दामन्वन्तः) उत्तम बन्धनों से बद्ध प्रजा को उत्तम रीति से बांधने में समर्थ हों।

अ॒न्यद॒द्य कर्व॑रम॒न्यदु॒ श्वोऽस॑च्च॒ सन्मुहु॑राच॒क्रिरिन्द्रः॑।
मि॒त्रो नो॒ अत्र॒ वरु॑णश्च पू॒षार्यो वश॑स्य प॒र्येतास्ति॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा ! (अद्य) आज (अन्यत् कर्वरम्) और ही काम (श्वः अन्यत् कर्वरम्) और कल दूसरा ही काम (सत् च असत्) व्यक्त और अव्यक्त, प्रकट और अप्रकट रूप से (आचक्रिः) नित्य करनेवाला हो। और वह (अर्यः) सबका स्वामी, (नः) हम प्रजाओं को (मित्रः) मृत्यु भय से रक्षा करने वाला, स्नेहवान्, और (वरुणः च) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों, कष्टों, विघ्नों का वारण करने में समर्थ और (पूषा) सबका पोषक होकर (वशस्य) हमारे कामना-योग्य फल का (पर्येता) प्राप्त कराने वाला (अस्ति) हो और राजा (वशस्य पर्येता अस्ति) वश में आये राष्ट्र को अच्छी प्रकार वश करने में समर्थ हो। (२) परमेश्वर भी व्यक्त, अव्यक्त भिन्न २ कर्म करता रहता है, वही मित्र, वरुण, पूषा है वही सब का स्वामी, सब जगत् में व्यापक है।

और वही काम्य सुखों का दाता है। (२) इन्द्र जीव (सत् च असत् च) अच्छे बुरे नाना कर्म करता है। परमेश्वर ही काम्य-फलों का दाता है।
इति सप्तदशो वर्गः ॥

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥

भा०—(पर्वतस्य पृष्ठात् आपः न) पहाड़ के पीठ से जिस प्रकार जलधाराएं काठ आदि किसी पदार्थ को भी नीचे ले आती हैं उसी प्रकार (आपः) आप्त प्रजाएं भी (त्वत्) तुझ उच्च पुरुष के पास से (उक्थेभिः यज्ञैः) उत्तम, प्रशंसनीय स्तुति-वचनों और यज्ञ-कर्मों तथा सत्संगों, दानों द्वारा, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अपने अभिलषित पदार्थ (अनयन्त) प्राप्त करते हैं। (अश्वाः आजिं न जग्मुः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व वा अश्वारोही गण उत्तम स्तुतियों से राजा वा सेनापति का बल बढ़ाते हुए संग्राम में जाते हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! हे (गिर्वाहः) वाणियों द्वारा प्राप्त करने योग्य, समस्त स्तुतियों को धारण करनेहारे ! (अश्वाः) विद्याओं में प्रवीण, बड़े मनुष्य भी (त्वाभिः) उस परम पूज्य तुझको (सुस्तुतिभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (वाजयन्तः) अपने ज्ञान का विषय बनाते हुए, तेरा ज्ञान लाभ करते हुए (आजिं जग्मुः) अपने गन्तव्य, परम लक्ष्य को प्राप्त होते हैं।

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥

भा०—(यं इन्द्रम्) जिस महान् शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् महान् आत्मा को (न शरदः) न वर्षगण, (न मासाः) न वर्ष के मास और (न द्यावः) न दिन ही (अव कर्शयन्ति) कृश कर सकते हैं, (अस्य) इस (वृद्धस्य) महान् की (तनूः) व्यापक शक्ति, (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से और (उक्थैः च) उत्तम वचनों द्वारा (शस्यमाना चित्) वर्णन की जाकर भी (वर्धताम्) अन्नों से देह के समान बराबर बढ़ती ही है।

उसी प्रकार जिस राजा को वर्ष, मास, दिन आदि वा हिंसक सेनाएं, ज्ञानवान् पुरुष और तेजस्वी लोग कृश न करें, न घटावें उसकी व्यापक राष्ट्ररूप तनु भी उत्तम (स्तोमैः) उपदेष्टा पुरुषों द्वारा (शस्यमाना) उपदेश की जाकर शिष्य की बुद्धि के समान बराबर बढ़े ।

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै॥८॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् स्वामी (दस्यु-जूताय) दुष्ट, प्रजा के नाशकारी पुरुषों से सेवित (वीडवे) बलवान् पुरुष के हित (न नमते) नहीं झुकता, (न स्थिराय) न स्थिर, दृढ़ पुरुष के आगे झुकता और (नशर्धते) बल प्रकट करने वाले के आगे ही झुकता है । वह (न स्तवान्) न ऐसे ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा ही करता है, इस (इन्द्र) वैभवशाली, महान् शत्रुहन्ता पुरुष के (अज्राः) शत्रुओं को उखाड़ के फेंकने वाले शस्त्रास्त्र बल भी (गिरयः चित्) मेघों के समान लगातार बरसने वाले तथा पर्वत के तुल्य अभेद्य, दृढ़ और (ऋश्वाः) महान् होते हैं । (अस्मै) इसके लिये (गम्भीरे चित्) गहरे से गहरे समुद्र में भी (गाधम् भवति) थाह होती है । (२) परमेश्वर की समस्त लोकों को संचालन करनेवाली महती शक्तियां 'अज्र' हैं, वह स्तुत्य होने से 'गिरि' हैं ।

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था उ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ।९।

भा०—हे (अमत्रिन्) बलशालिन् ! हे (सुतपावन्) प्रजा जन को पुत्र के समान पालन करने वाले ! वा ऐश्वर्य के रक्षक राजन् ! हे (सुतपावन्) उत्पन्न जगत् के रक्षक और पालन करने हारे प्रभो ! तू (गम्भीरेण) गंभीर, और (उरुणा) महान् विस्तीर्ण, सामर्थ्य से (नः इषः) हमारी कामनाओं को और (वाजान्) बलों, अन्नों, ज्ञानों को (प्र यन्धि) हमें खूब दे । वा (नः वाजान् प्र इषः) हमारे ऐश्वर्यों को तू चाह । (नः वाजान्

प्र यन्धि) हमारे बलों को नियम में रख । वा, (नः इषः प्रयन्धि) हमें अन्न, और इष्ट बुद्धि आदि प्रदान कर और (वाजान् प्र यन्धि) बहुत से ऐश्वर्य दे। वा (इषः प्रयन्धि, वाजान् प्रयन्धि) हमारी सेनाओं और बलवान् पुरुषों को उत्तम नियन्त्रण मे रख । और तू (नक्तोः) रात्रि के (वि-उष्टौ) प्रभात होने के काल में तथा (परितक्म्यायाम्) रात्रि काल में वा, अति कष्टमयी दशा में भी, (अरिषण्यन्) स्वयं प्रजाओं का पीड़न न करता हुआ, (ऊती) अपने रक्षा बल से (ऊर्ध्वः उ सु स्थाः) सब से ऊंचा होकर रह ।

सचस्व नायमवसे अभीकं इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अभीके) संग्राम में (अवसे) रक्षा करने के लिये (नायम्) नायक पुरुष को तथा सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाले न्याय को (सचस्व) प्राप्त कर । और (इतः) इस समीप आये (रिषः) हिंसक शत्रु से (पाहि) रक्षा कर । (च) और (एनम्) इस प्रजाजन की (अमा च अरण्ये च) घर में और जंगल में भी (रिषः) हिंसक, चोर, दस्यु वा व्याघ्रादि से (पाहि) रक्षा कर जिससे हम (सु-वीराः) उत्तम पुत्रादि सहित (शत-हिमाः मदेम) सौ वर्षों तक आनन्द, सुखमय जीवन लाभ करें । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[२५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पंक्तिः । ३ भुरिक् पंक्तिः । २, ७, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥ १ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) तेजस्विन् ! (या ते) जो तेरी (ऊतिः अवमा) रक्षा निकृष्ट,

अति तुच्छ, (परमा) जो रक्षा सर्वोत्कृष्ट, (या) जो रक्षा (मध्यमा) मध्यम कोटि की (अस्ति) है। (ताभिः) उन रक्षाओं से (वृत्र-हत्ये) विघ्नकारी, बढ़ते शत्रुजनों के घात करने योग्य संग्राम में (एभिः वाजैः महान्) इन ऐश्वर्यों और बलों से महान् होकर (ताभिः) उन रक्षा साधनों और सेनाओं से (नः सु अवीः उ) हमारी अवश्य और अच्छी प्रकार रक्षा किया कर।

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! तू (आभिः) इन (अमित्रस्य) शत्रु की (मिथतीः) हिंसा करती हुई (स्पृधः) सेनाओं को (मन्युम्) कोप कर के (व्यथय) पीड़ित कर। स्वयं (अरिषण्यन्) अपनी प्रजा का विनाश न करता हुआ (आभिः) इन सेनाओं द्वारा (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) विविध स्थानों पर विद्यमान (अभियुजः) आक्रमण करने वाले की (दासीः) प्रजा का नाश करने वाली सेनाओं को (अव तारीः) विनाश कर और (आर्याय) श्रेष्ठ पुरुष की (विश्वाः) समस्त (विषूचीः) विविध प्रकार की (दासीः विशः) भृत्य वा दास के समान सेवा करने वाली प्रजाओं को (अव तारीः) संकट से पार कर।

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! (ये) जो लोग (जामयः) बन्धुओं के समान स्नेही वा भार्याओं के समान आज्ञाकारी, (उत) और (ये) जो (अजामयः) सपत्नी वा सौतें या अबन्धु जनों के समान, निःस्नेह हैं और जो (अर्वाचीनासः) अब के, वा हमारे प्रति आने वाले, (वनुषः) अपने धन वेतन

आदि देनेवाले स्वामियों के प्रति (युयुत्रे) योग देते वा उनके विरोध में आक्रमण या षड्यन्त्र करते हैं (त्वम्) तू (एषां) इन के (विथुरा) पीड़ादायक (शवांसि) बलों को (जहि) विनाश कर और (वृष्ण्यानि) बलशाली सैन्यों को (कृणुहि) सम्पादन कर और (पराचा जहि) पराङ्मुख शत्रुओं को भी नाश कर ।

शूरो॑ वा॒ शूरं॑ वनते॒ शरी॑रैस्तनू॒रुचा॑ तरु॑षि॒ यत्कृ॒ण्वैते॑ ।
तो॒के वा॒ गोषु॒ तन॑ये॒ यद॒प्सु वि क्रन्द॑सी उ॒र्वरा॑सु॒ ब्रवै॑ते ॥ ४ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (तनू-रुचा) अपनी देह की कान्ति में चमकने वाले दो पुरुष (तरुषि) एक दूसरे को मारने के निमित्त (कृण्वैते) युद्ध करते और एक दूसरे को मारते हैं उसी प्रकार दो प्रबल राजा भी (तनू-रुचा) विस्तृत सेनाओं वा विस्तृत राष्ट्र सम्पदा से शोभावान् होकर (तरुषि) संग्राम-काल में (शरीरैः) बहुत से शरीरधारी सैन्यों सहित (कृण्वैते) उद्योग करें । तब (शूरः शूरं वा) एक शूरवीर पुरुष दूसरे शूरवीर को (वनते) मारता, है, एक दूसरे को सेवता भी है। इसी प्रकार (यत्) जब (तोके) पुत्र, (तनये) पौत्र, (वा गोषु) वा गौओं, और (अप्सु उर्वरासु) पुत्र वा अन्नादि को उत्पन्न करने वाली उपजाऊ प्राप्त स्त्रियों और भूमियों के निमित्त (क्रन्दमानौ) परस्पर आक्षेप करते हुए, (यत् वि ब्रवैते) परस्पर विवाद करते हैं तब भी तू ही उनके ऊपर न्यायकर्त्ता के समान विद्यमान रह ।

न॒हि त्वा॒ शूरो॒ न तु॒रो न धृ॒ष्णुर्न त्वा॑ यो॒धो मन्य॑मानो यु॒योध॑ ।
इन्द्र॒ नकि॑ष्ट्वा प्रत्य॑स्त्येषां॒ विश्वा॑ जा॒तान्य॒भ्य॑सि॒ तानि॑॥५॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! राजन् ! (त्वा) तेरे से अधिक (नहि शूरः) न कोई शूरवीर (न तुरः) न कोई हिंसक, (न धृष्णुः) न कोई शत्रुपराजयकारी, (न योधः) न कोई योद्धा, (मन्यमानः) अभिमानी होकर (युयोध) युद्ध कर सकता है, (एषाम्) इनमें से (त्वा

प्रति नकिः अस्ति) तेरे मुक़ाबले पर कोई भी नहीं है । तू ही (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न वा प्रसिद्ध (तानि) उन २ नाना सैन्यों के (अभि असि) मुक़ाबले पर समर्थ है । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते॥६॥

भा०—(यदि) जो दोनों (वृत्रे) विघ्न उपस्थित होने पर (वा) अथवा (नृवति क्षये वा) मनुष्यों से युक्त भृत्यादि सहित गृह के निमित्त (व्यचस्वन्ता) विविध वा एक दूसरे के विपरीत आते हुए, (वितन्तसैते) विशेष रूप से विवाद करते हैं या एक दूसरे से लड़ते हैं और (यदि) जब (वेधसः) विद्वान् लोग (समिथे) संग्राम में (हवन्ते) निर्णय करने के लिये बुलाते हैं तब जो (उभयोः) दोनों के बीच (नृम्णम् अयोः) धन का ठीक २ प्रकार विभाग कर देता है (सः पत्यते) वह दोनों का स्वामी होने योग्य होता है ।

अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७॥

भा०—(अध) और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यत्) जब (ते चर्षणयः) तेरे प्रजाजन (एजान् स्म) भय से कांपें तो उनका तू (त्राता भव) रक्षक हो, (उत) और तू (वरूता भव) उनके दुःखों को दूर करने हारा हो । (ये) जो (अस्माकासः) हमारे (नृतमासः) श्रेष्ठ नायक और (सूरयः) विद्वान् पुरुष (नः) हमारे (पुरः) नगरों को (दधिरे) धारण करते हैं या हमारे आगे ज्ञान और बल को धारण करते, साक्षी रूप से रहते हैं उनका भी तू (अर्यः) स्वामी, रक्षक (भव) हो ।

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८ ॥

भा०—हे (यजत्र) दानशील ! हे पूज्य ! संगतियोग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वृत्रहत्ये) बढ़ते, विघ्नकारी शत्रु को नाश करने के कार्य में (ते महे इन्द्रियाय) तेरे बड़े भारी ऐश्वर्य और बल की वृद्धि के लिये, (देवेभिः) विजय कामना करने और कर आदि देने वाले प्रजाजन और ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष (ते) तेरे निमित्त (विश्वम् अनु दायि) सभी कुछ देते हैं। और वे (नृषह्ये) संग्राम में वे (क्षत्रम् अनु दायि) बल प्रदान करते हैं। (ते सहः अनु दायि) तुझे शत्रु पराजयकारी शक्ति प्रदान करते हैं।

एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥८॥२०॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले! तू (एव) इस प्रकार (समत्सु) युद्ध के अवसरों पर (नः) हमारे (स्पृधः) प्रतिस्पर्धा करने वाले शत्रुओं को (सम् अज) अच्छी प्रकार उखाड़ फेंक, और (स्पृधः सम् अज) स्पृहा अर्थात् प्रेम करने वालों को मिला। (अदेवीः मिथतीः) ऐश्वर्य वा कर आदि न देने वाली, तथा परस्पर नाश करने वाली सेनाओं और प्रजाओं को (रारन्धि) वश कर। हम (ते अवसा) तेरे रक्षा सामर्थ्य से (नूनम्) निश्चयपूर्वक (गृणन्तः) तेरी स्तुति करते हुए (भरद्-वाजाः) ज्ञान और ऐश्वर्यका धारण करने वाले होकर (वस्तोः) राष्ट्र में बसने का सुख (विद्याम) प्राप्त करें। इति विंशो वर्गः॥

[२६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २, ४ भुरिक् पंक्तिः। ३ निचृत् पंक्तिः। ५ स्वराट् पंक्तिः। ६ विराट्त्रिष्टुप्। ७ त्रिष्टुप्। ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (महः वाजस्य सातौ) बड़े भारी अन्न, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करने, विभाग करने और प्रयोग करने के निमित्त, (ववृषाणः) तेरा बल बढ़ाते और अभिषेक करते हुए (त्वा) तुझे (ह्वयामसि) बुलाते हैं। (यत्) जब (विशः) प्रजाएं (शूर-सातौ) वीर पुरुषों के विभाग करने योग्य संग्राम के निमित्त संग्राम के उपरान्त या उनको नाना पारितोषिकादि रूप से विशेष द्रव्य विभाग करने के निमित्त (सम् अयन्त) एक स्थान पर एकत्र हों तब तू (पार्ये अहन्) सर्व-पालनीय, अन्तिम या नियत दिन पर (नः) हमें (उग्रं अवः) उत्तम, तेजयुक्त पालन, योग्य अन्न वेतन आदि, (दाः) प्रदान कर।

त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन्॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वाजिनेयः वाजी) ज्ञान से युक्त माता पिता वा आचार्य का पुत्र, शिक्षित विद्वान् पुरुष (महः वाजस्य सातौ) बड़े भारी ज्ञान को प्राप्त करने और विभाग करने के लिये गुरु को (हवते) स्वीकार करता है उसी प्रकार (वाजिनेयः) 'वाजिनी' अर्थात् बलवती सेना के योग्य (वाजी) बलवान् शूरवीर पुरुष भी (महः) उत्तम, देने योग्य, (गध्यस्य) सबको प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) ऐश्वर्य या अन्न, वेतनादि के (सातौ) प्राप्त करने के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वां हवते) तुझ स्वामी को अपनाता है। इसी प्रकार (गोषु) भूमि को विजय करने के निमित्त (युद्धयन्) युद्ध करता हुआ वीर पुरुष (मुष्टि-हा) मुट्ठी के समान पांचों का समवाय या संघ बना कर शत्रु को नाश करने में समर्थ वा (मुष्टि-हा) 'मुष्टि', चोरी आदि उपद्रवों का नाशक पुरुष भी (वृत्रेषु) बढ़ते शत्रु रूप विघ्नों के बीच वा नाना धनों को प्राप्त करने के लिये भी (त्वां सत्पतिं) तुझको ही सत्पालक

और (त्वां तरुत्रं) तुझको वृक्षवत् आश्रयदाता, रक्षक, वा संकटों से पार पहुंचाने वाला (चष्टे) देखता वा कहता है ।

त्वं क॒विं चो॑दयो॒ऽर्कसा॑तौ॒ त्वं कुत्सा॑य॒ शुष्णं॑ दा॒शुषे॑ वर्क् ।
त्वं शिरो॑ अम॒र्मणः॒ परा॑हन्नतिथि॒ग्वाय॒ शंस्यं॑ करि॒ष्यन् ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं अर्कसातौ) अन्न, और स्तुत्य, सूर्यवत् तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये (कविम्) दूरदर्शी विद्वान्, को (चोदयः) प्रेरित कर और (त्वं) तू (कुत्साय) राष्ट्र के शस्त्रास्त्र बल को धारण करने और (दाशुषे) कर आदि देने वाले प्रजाजन के पालन के लिये (शुष्णं) शत्रुशोषक बल को (वर्क्) नाना विभागों में विभक्त कर और (शुष्णं वर्क्) प्रजाशोषक दुष्ट जन वा दोषयुक्त व्यवस्था को नाश कर । और (अतिथिग्वाय) अतिथिवत् पूज्य पुरुषों की गौ, गव्य दूध, घी तथा वाणी आदि से सत्कार करने वाले पुरुष के लिये (शंस्यं करिष्यन्) प्रशंसनीय कार्य करना चाहता हुआ (त्वं) तू (अमर्मणः) मर्म स्थल से रहित, अति दृढ़ शत्रु के (शिरः) शिर के समान मुख्य अंग को ही (परा हन्) परास्त कर ।

त्वं रथं॒ प्र भ॑रो यो॒धमृ॒ष्वमावो॒ युध्य॑न्तं वृष॒भं दश॑द्युम् ।
त्वं तुग्रं॑ वे॒तस॑वे॒ सचा॑ह॒न्त्वं तुजिं॑ गृ॒णन्त॑मिन्द्र तूतोः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (योधं) युद्ध करने वाले (ऋष्वं) महान् (रथं) रथ तथा रथ सैन्य को (भरः) अच्छी प्रकार से प्राप्त और पालन कर । (युध्यन्तं) युद्ध करते हुए (दशद्युम्) दशों दिशाओं में चमकने वाले तेजस्वी, (वृषभं) शरवर्षी योद्धाजन को (आ अवः) आदरपूर्वक तृप्त, सन्तुष्ट कर । (वेतसवे) ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले राष्ट्र के लिये (सचा) साथ ही समवाय बनाकर (त्वं) तू (तुग्रं) बल वा सैन्य लेकर चढ़ाई करने वाले शत्रु को (अहन्) दण्डित कर । और (गृणन्तं तुजिम्) स्तुति वा उपदेश करते हुए दानशील विद्या के दाता विद्वान् उपदेष्टा को तू (तूतोः) बढ़ा ।

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणां कः प्र यच्छुता सहस्रां शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे (शूर) वीर पुरुष ! (कः) कर । (यत्) जो तू (शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों शत्रुसैन्यों को दलन करता है वह (त्वं) तू (बर्हणा) वृद्धिशील वा समृद्ध बल से (तत्) वह नाना वा (उक्थं) प्रशंसनीय (गिरेः दासं शम्बरं) मेघ के बीच विद्यमान शान्तिदायक जल को जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (अव हन्ति) नीचे गिराता है उसी प्रकार (गिरेः) पर्वत के बीच में (दासं) प्रजाजनों का नाश करने वाले (शम्बरं) शान्ति-नाशक शत्रुजन को तू (अव हन्) नीचे मार गिरा । अथवा (गिरेः दासं) मेघवत् निष्पक्षपात गुरु के सेवकवत् (शम्बरं) शान्तिकारक उत्तम शिष्यवत् प्रजाजन को (अव हन्) अवगत कर अर्थात् उसे यथार्थ ज्ञान दे वा उसको दण्डादि द्वारा दोषों से मुक्त कर । इत्येकविंशो वर्गः ॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (श्रद्धाभिः) सत्य धारणाओं और (सोमैः) सौम्य स्वभाव के पुरुषों या ऐश्वर्यों के साथ (मन्दसानः) प्रसन्न होता हुआ (दभीतये) शत्रु के नाश करने के लिये (चुमुरिम्) प्रजा को खाजाने वाले दुष्टगण को (सिष्वप्) सुला दे । और (पिठीनसे) 'पिठी' हिंसाकारिणी और शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों को क्लेश देने वाली, शक्ति को नाक के समान मुख्य रूप से धारण करने वाले शक्तिशाली, नायक पुरुष को (त्वं) तू (रजिं) सैन्य पंक्ति वा स्वयं उसकी 'नाक' वा अग्रणी होकर रहने वाले वा राज्यशक्ति को (दशस्यन्) देता हुआ, (षष्टिं सहस्रा) ६० हाज़र शत्रुओं को भी (शच्या) सम-वाय बल से युक्त सेना और स्थिर बुद्धि द्वारा (हन्) विनाश कर ।

अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अहंचन) मैं भी (तव) तेरे (तत्) उस (ज्यायः) महान्, (सुम्नम्) सुखप्रद (ओजः) पराक्रम का उन (सूरिभिः) विद्वानों के सहित (आनश्याम्) उपभोग करूं। हे (शविष्ठ) अत्यन्त शक्तिशालिन् ! हे (सधवीर) वीरों सहित (यत् नहुषा) जो लोग, (त्रिवरूथेन) शीत, उष्ण, वर्षा तीनों से बचाने वाले, गृह के स्वामी रूप अथवा त्रिविध दुःखों के वारक (त्वया) तुझ से (वीरा) वीर्यवान् होकर (स्तवन्ते) तेरा गुण गान करते हैं !

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥८।२२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (महिन) महान् ! पूज्य ! (वयम्) हम लोग (अस्याम्) इस (ते) तेरी (द्युम्न-हूतौ) धन के निमित्त आदरपूर्वक पुकार तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करने के निमित्त (ते-प्रेष्ठाः) तेरे अति प्रिय (सखायः स्याम) मित्र होकर रहें। (वृत्राणां) बढ़ते और विघ्न करने वाले शत्रुओं के (घने) हनन और (धनानाम् सनये) धनों को प्रजा में यथोचित विभाग के लिये (प्रातर्दनिः) शत्रुओं को अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न करने वाले सैन्य बल का स्वामी पुरुष हो, (श्रेष्ठः) सबसे उत्तम, प्रशंसनीय (क्षत्र-श्रीः अस्तु) बल वीर्य और क्षात्र शक्ति की उत्तम शोभा से युक्त वा बल का आश्रय हो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[२७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १—७ इन्द्रः। ८ अभ्यावर्तिनश्चायमानस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पांक्तिः। ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५, ७, ८ त्रिष्टुप्। ६ ब्राह्मी उष्णिक् ॥

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शक्तिशाली, शत्रु-हन्ता पुरुष (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य को प्राप्त कर उसके हर्ष वा उसको दमन कर लेने के निमित्त (किं चकार) क्या करे? (अस्यपीतौ) इसके उपभोग और पालन के निमित्त (किं चकार) क्या करे? (अस्य सख्ये) इसकी मित्रता की वृद्धि के लिये वह (किं चकार) क्या २ उपाय करे? (वा) और (ये) जो (अस्य) इसके (निषदि) राज्यासन पर विराजने पर (रणाः) आनन्द प्रसन्न होते हैं वे प्रजाजन (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये भी (किं विविद्रे) क्या २ लाभ करें और वे क्या २ कर्त्तव्य जानें? इसका उत्तर अगली ऋचा में है।

सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः॥२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (अस्य मदे) इस राज्यैश्वर्य के आनन्द पूर्वक लाभ करने और दमन, शासन करने में (सद् चकार) सत्य, न्यायपूर्वक उत्तम कार्य ही करे। (अस्य पीतौ) इसके उपभोग और पालन करने के निमित्त (सत् उ चकार) 'सत्' अर्थात् प्रमाद रहित होकर यथोचित् उत्तम प्रबन्ध करे। (अस्य सख्ये) उसका मैत्री-भाव बनाये रखने के लिये (सत् चकार) सदा सत्य, न्यायोचित शुभ २ कर्म किया करे। (ये वा अस्य निषदि) और जो इसके सिंहासन पर विराजने में (रणाः) आनन्द प्रसन्न होते हैं (ते) वे भी (पुरा) पहले और (नूतनासः) नये सभी (सत् सत् उ विविद्रे) उत्तम, उत्तम फल तथा शुभ पुरस्कार आदि लाभ करें।

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (ते महिमनः) तेरे महान् सामर्थ्य के विषय में हम (नहि नु सं विद्म) कुछ भी नहीं जानते हैं । और तेरे (मघवत्त्वस्य न सं विद्म) तेरे महान् ऐश्वर्य के विषय में भी कुछ नहीं जानते । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते नूतनस्य) तेरे नये से नये (राधसः राधसः) धन ऐश्वर्य और आराधना योग्य उत्तम गुण-राशि को भी (न सं विद्म) हम नहीं जानते । हे ऐश्वर्यवन् ! (ते इन्द्रियं) तेरा महान् ऐश्वर्यमय स्वरूप और बल भी (नकिः ददृशे) किसी को गोचर नहीं होता ।

एतत्त्यत्त॑ इन्द्रि॒यम॑चेति॒ येनाव॑धीर्व॒रशि॑खस्य॒ शेषः॑ ।
वज्र॑स्य॒ यत्ते॒ निह॑तस्य॒ शुष्मा॑त्स्व॒नाच्चि॑दिन्द्र पर॒मो द॒दार॑ ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (ते वर-शिखस्य एतत् त्यत्) उत्तम शिखा वाले तेरा वह प्रसिद्ध सर्वप्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) महान् ऐश्वर्य और बल (अचेति) जाना जाता है (येन) जिससे तू (अवधीः) शत्रुओं का नाश करता है । (यत्) और जो (ते) तेरे (नि-हतस्य) प्रहार किये गये (वज्रस्य) शस्त्र के (शुष्मात्) बल और (स्वनात्) शब्द से भी (परमः शेषः) बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा भी (ददार) भयभीत होता है ।

वधी॒दिन्द्रो॑ व॒रशि॑खस्य॒ शेषो॑ऽभ्याव॒र्तिने॑ चायमा॒नाय॒ शिक्ष॑न् ।
वृ॒चीव॑तो॒ यद्ध॑रियू॒पीया॑यां॒ हन्पूर्वे॒ अर्धे॑ भि॒यसाप॑रो॒ दर्त् ॥५॥२३॥

भा०—जब (हरि-यूपीयायाम्) वह मनुष्यों को गुणों से मुग्ध करने वाली विद्या के निमित्त (पूर्वे अर्धे) पूर्व के उत्तम काल में (अपरः) दूसरा भी (भियसा दर्त्) भय से भीत हो, इस प्रकार से वह (वृचीवतः) अज्ञाननाशक विद्या वाले शिष्यों को (हन्) ताड़ना करे । तब (वर-शिखस्य) उत्तम, शिखा

धारण करने वाले (वृचीवतः) अविद्या के छेदन करने वाली उत्तम इच्छा से युक्त विद्यार्थी का (शेषः) शासन करने द्वारा (इन्द्रः) उत्तम आचार्य (चायमानाय) सत्कार करने वाले (अभ्यावर्त्तिने) समीप रहने वाले अन्तेवासी शिष्य को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (वधीत्) दण्ड भी दे, उसकी यथोचित् ताड़ना भी करे। (२) इसी प्रकार (हरियू-पीयायाम्) मनुष्यों के स्वामी राजा की पालन करने वाली नीति में लगे (वृचीवतः) प्रजा के उच्छेद करने वाली शक्ति से युक्त दुष्ट पुरुषों को राजा (पूर्वे अर्धे) अपने समृद्ध शासन के पूर्व काल में ही (अपरः) उत्तम राजा (भियसा) भयजनक उपाय से (हन्) उनको ताड़ना करे और (दर्त्) भयभीत करे। (वर-शिखस्य अभ्यावर्त्तिने चायमानाय शिक्षन्) समीप प्राप्त अनुकूल अपने सत्कार करने वाले प्रजाजन के हितार्थ उनको (वर-शिखस्य शेष इव शिक्षन्) उत्तम शिखा या तुर्रे वाले प्रमुख नायक के पुत्रवत् सद्-व्यवहार की शिक्षा देता हुआ (इन्द्रः) राजा (वधीत्) दण्डित किया करे। अर्थात् राजा प्रजाजन को पुत्रवत् प्रेम करता हुआ भी हित से ही उनको दण्डित करे। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

त्रिंशच्छ॑तं व॒र्मिण॑ इन्द्र सा॒कं य॒व्याव॑त्यां पुरुहूत श्रव॒स्या ।
वृ॒चीव॑न्तः॒ शर॑वे॒ पत्य॑माना॒ः पात्रा॑ भिन्दा॒ना न्य॒र्थान्या॑यन् ॥६॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुत सी प्रजाओं से पुकारे वा प्रशंसा किये गये (इन्द्र) शत्रुहन्तः राजन् ! (यव्या-वत्यां) शत्रुओं को दूर करने में कुशल पुरुषों से बनी सेना के बीच में (साकं) एक साथ ही (त्रिंशत् शतं) तीन सहस्र ३००० (वर्मिणः) कवचधारी (वृचीवन्तः) शत्रूच्छेदक शस्त्र, वा तलवार को लिये हुए (शरवे) शत्रुओं को नाश करने के लिये (पत्यमानाः) जाते हुए वा (शरवे पत्यमानाः) शर, हिंसक शस्त्रादि पर पूर्ण वश करते हुए वीर पुरुष (श्रवस्या) यश, धन, ऐश्वर्यादि की कामना से (पात्रा भिन्दानाः) शत्रु के बचाव के साधनों

को भेदते हुए, (नि-अर्थानि) अपने निश्चित प्रयोजनों को (आयन्) प्राप्त करें।

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७ ॥

भा०—(यस्य) जिस राजा की (गावौ) 'गौ' वाणी और शस्त्रों को चलाने वाली सेना, वाक् शक्ति और शस्त्रशक्ति दोनों (अरुषा) रोषरहित और देदीप्यमान (सु-यवस्यू) उत्तम रीति से यवस्, चारे आदि चाहने वाली दो गौओं के समान (सु-यवस्यू) सुखदायक विवेक और शत्रूच्छेद चाहती हुईं (रेरिहाणा) उत्तम सुखास्वाद कराती हुई, (अन्तः उ) राष्ट्र के मध्य में (चरतः) विचरती हैं (सः) वह (दैव-वाताय) देव, सूर्यवत् तेजस्वी और प्रचण्ड वात के समान शत्रुओं को वृक्षवत् उखाड़ फेंकने वाले बलवान् राजा के राज्यपद को प्राप्त करने और (सृञ्जयाय) आगन्तुक शत्रुओं के विजय करने के लिये (वृचीवतः) उच्छेदक शक्ति वाले वीर सैनिकों को (शिक्षन्) युद्ध की शिक्षा वा अन्नवृत्ति देता हुआ (तुर्वशं परादात्) हिंसक शत्रु को पराजित करे।

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ८।२४

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! (सम्राट्) सर्वोपरि तेजस्वी पुरुष, (अभ्यावर्त्ती) शत्रु के प्रति सन्मुख आकर लड़ने वाला (चायमानः) पूजा सत्कार प्राप्त करता हुआ (द्वयान् रथिनः) दोनों प्रकार के रथ वाले, (वधूमतः) या रथ को अच्छी प्रकार उठाने में समर्थ (विंशतिं गाः) बीस बैलों, वा वेगवान् अश्वों के समान उत्तम कुशल धुरन्धर पुरुषों को (मघवा) ऐश्वर्यवान् राजा (मह्यं ददाति) मुझ प्रजा के हितार्थ प्रदान करे। (पार्थवान्) बड़े भारी राष्ट्र के स्वामी राजाओं की

(इयं दक्षिणा) यह बलवती सेना, या शक्ति (दूनाशा) कभी नाश को प्राप्त नहीं हो। बड़ा राजा प्रजा में शासन भार को उठाने के लिये २० प्रधान पुरुष नियत करे। यह बीस धुरन्धरों की राजसभा 'दक्षिणा' नाम की है। वह बड़ी प्रबल हो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[२८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १, ३—८ गावः। २, ८ गाव इन्द्रो वा देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृत्त्रिष्टुप्। २ स्वराट् त्रिष्टुप्। ५, ६ त्रिष्टुप्। ३, ४ जगती। ८ निचृदनुष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ गावो॑ अग्मन्नु॒त भ॒द्रम॑क्र॒न्त्सीद॑न्तु गो॒ष्ठे र॒णय॑न्त्व॒स्मे।
प्र॒जाव॑तीः पुरु॒रूपा॑ इ॒ह स्यु॒रिन्द्रा॑य पू॒र्वीरु॒षसो॒ दुहा॑नाः ॥ १ ॥

भा०—(गावः) गौएं तथा गृहस्थ में सुशील वधुएं (अस्मे आ अग्मन्) हमें अच्छी प्रकार से प्राप्त हों, (भद्रम् अक्रन्) वे हमारा कल्याण करें। (गोष्ठे) गोशाला में गौएं, (इह) और इसके समान वधूजन गृह में (सीदन्तु) विराजें और (अस्मे रणयन्तु) हमें आनन्द प्रसन्न करें और स्वयं भी आनन्द प्रसन्न होकर रहें। वे (प्रजावतीः) उत्तम सन्तान वाली, (पुरु-रूपाः) बहुत उत्तम रूप वाली (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त स्वामी के लिये (पूर्वीः) श्रेष्ठतम, (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान कान्ति वाली एवं पतियों को चाहने वाली (दुहा-नाः) कामना पूर्ण करने वाली (स्युः) हों। इसी प्रकार (गावः) वाणियां और भूमियां भी हमें प्राप्त हों, हमें सुख दें (गोष्ठे) भूमि पर स्थित राजा के अधीन हमें सुप्रसन्न करें, वे उत्तम प्रजायुक्त बहुत पदार्थों से सम्पन्न नाना सुखैश्वर्य देने वाली हों।

इन्द्रो॒ यज्व॑ने पृण॒ते च॑ शिक्ष॒त्युपेद्द॑दाति॒ न स्वं मु॑षायति।
भूयो॑भूयो र॒यिमिद॑स्य व॒र्धय॒न्नभि॑न्ने खि॒ल्ये नि द॑धाति देव॒युम् २

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (यज्वने) यज्ञशील, दान देने वाले और आदर सत्कार करने वाले (पृणते च) राष्ट्र के ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले प्रजाजन को (शिक्षति) शिष्य वा पुत्रवत् शिक्षा दे और (उप ददाति इत्) प्राप्त कर बहुत धन प्रदान भी करे । और वह (स्वं) प्रजा के अपने धन को (न मुषायति) चोरी से ग्रहण नहीं करता, प्रत्युत (भूयः भूयः) और भी अधिकाधिक (अस्य रयिम् वर्धयन् इत्) उसके धनैश्वर्य को बढ़ाता हुआ ही (देव-युम्) दाता, तेजस्वी राजा को चाहने वाले प्रजाजन को पिता वा गुरु के समान ही (अभिन्ने खिल्ये) अपने से अभिन्न अंश में अथवा शत्रु आदि से न टूटने योग्य भू प्रदेश दुर्गादि के बीच में (नि दधाति) उसको अपने उत्तम धन के समान सुरक्षित रखे ।

न ता नंशन्ति न दंभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दंधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजंते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ३

भा०—(याभिः) जिन से (गोपतिः) गौवों, वेदवाणियों, विद्याओं वा भूमियों से उनका पालक (देवान्) कामनाशील मनुष्यों को (यजते) सत्कार करता और उनको (ददाति च) ज्ञान वा धन रूप से प्रदान करता है (ताभिः) उनके (सह) साथ (इत्) ही वह (ज्योग् सचते) चिर काल तक भी रहता है, (ताः) वे भूमियां, वाणियां, विद्यायें, (न नशन्ति) कभी नष्ट नहीं होतीं । (तस्करः ता न दभाति) चोर भी उनको नहीं चुराता और (आसाम्) उनको (व्यथिः अमित्रः) कष्टदायी, शत्रु भी (न आदधर्षति) बलात्कार से नहीं छीन सकता ।

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ४

भा०—(ताः गावः) उन वेद-वाणियों को (अर्वा) हिंसक वा अश्व के समान केवल पशु, (रेणुक-काटः) धूल से भरे शुष्क कूए के समान

नीरस पुरुष भी (न अश्नुते) प्राप्त नहीं कर सकता, और जो (संस्कृतत्रम् न उप यन्ति) शुद्ध संस्कृत, ज्ञान की रक्षा करने वाले विद्वान् के समीप नहीं जाते वे भी (ताः अभि न) उनको प्राप्त नहीं करते, परन्तु जो (उरु-गायम्) महान् ज्ञान के उपदेश करने वाले, भय से रहित पुरुष को (उप यन्ति) प्राप्त करते हैं वे लोग (तस्य मर्तस्य यज्वनः) उस सत्संगयोग्य, ज्ञानदाता पुरुष की (ताः) उन वाणियों को (अनु) विनयपूर्वक प्राप्त करते हैं। (तस्य गावः विचरन्ति) उसकी वाणियां गौओं के समान सुख से विविध रूपों में विचरती, प्रकाशित होती हैं।

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ५

भा०—(प्रथमस्य) सर्वश्रेष्ठ (सोमस्य) ऐश्वर्य, अन्नादि का (भक्षः) सेवन करने वाला वा विद्वान् शिष्य की सेवा योग्य विद्वान् (मे गावः अच्छान्) मुझे गौओं और ज्ञानयुक्त विद्याओं को प्रदान करे। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (मे गावः) मुझे गौएं, ज्ञानवाणियें दे। (इन्द्रः मे गावः अच्छान्) शत्रुहन्ता राजा मुझे भूमियां प्रदान करे। हे (जनासः) लोगो ! सुनो। (याः इमाः गावः) ये जो गौएं, वेदवाणियां और भूमियां हैं (स इन्द्रः) वही परमैश्वर्य है। मैं (हृदा मनसा) हृदय और मन से उत्तम और उचित जानकर ऐसे ही (इन्द्रं चित्) ऐश्वर्य को ही (इच्छामि) प्राप्त करना चाहता हूं।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥

भा०—(कृशं चित् मेदयथ) जिस प्रकार दूध कृश पुरुष को मोटा कर देता है उसी प्रकार हे (गावः) वेदवाणियो ! (यूयं) तुम (कृशं) तपस्वी पुरुष को (मेदयथ) अन्यों के प्रति स्नेहयुक्त कर देते हो हे

भूमियो ! तुम (कृशं चित्) शत्रु के कर्शन करने में समर्थ राजा को (मेद-यथः) स्नेहवान् बनाती हो । और जिस प्रकार गौवें अपने दूध से (श्रीरं चित्) शोभारहित, कान्तिहीन, दुबले पतले को (सुप्रतीकं) सुन्दर मुख वाला कर देती हैं, उसी प्रकार हे वेदविद्याओ तुम सभी (अश्रीरं) शोभाहीन, कुरूप को भी (सु-प्रतीकम्) सौम्य मुख और उत्तम ज्ञान से युक्त कर देती हो । हे पृथिवियो ! तुम (अश्रीरं) श्रीरहित, राज्यलक्ष्मी से हीन राजा को (सु-प्रतीकं) सुख से शत्रु के प्रति जाने में समर्थ, बल-शाली बना देती हो । हे (भद्रवाचः) कल्याणवाणियो ! जिस प्रकार गौवें (गृहं भद्रं कृण्वन्ति) घर को सुखयुक्त बनाती हैं उसी प्रकार तुम भी (गृहं भद्रं कृणुथ) घर को और ग्रहण करने योग्य ज्ञान को सुख-दायक, सुगम बना देती हो । (वः) तुम्हारा (वयः) बल, ज्ञान आदि (सभासु) सभास्थलों में (बृहत् उच्यते) बहुत बड़ा कहा जाता है ।

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७॥

भा०—जिस प्रकार (रुद्रस्य हेतिः) रोक रखने वाले गवाले का दण्ड (प्रजावतीः) उत्तम बछड़ों वाली (सु-यवसं रिशन्तीः) उन जौ आदि खाने वाली, (शुद्धा अपः सु-प्र-पाणे पिबन्तीः) शुद्ध जलों को उत्तम घाट पर पीती हुई गौओं को (परि वृङ्क्ते) सब ओर से बचाये रखता है। उसी प्रकार (रुद्रस्य हेतिः) दुष्टों को रुलाने वाले राजा का शस्त्र बल (प्रजावतीः) प्रजाओं से युक्त (सु-यवसं रिशन्तीः) उत्तम अन्न का भोग करती हुई (शुद्धाः अपः) शुद्ध जलों का (सु-प्र-पाणे) उत्तम पालक के अधीन (पिबन्तीः) उपभोग करती हुईं भूमियों की (परि वृज्याः) हे राजन् ! तू अच्छी प्रकार रक्षा कर । हे गौवत् भूमियो ! (वः स्तेनः मा ईशत) चोर तुम पर शासन न करे (मा अघ-शंसः) पापी पुरुष तुम पर आधिपत्य न करे । उपदेष्टा पुरुष 'रुद्र' है । उसका दण्ड देना विद्याओं

की रक्षा करता है, विद्याएं भी उत्तम शिष्यों से प्रजावती हैं। वे (सुप्रपाणे) उत्तम ज्ञान, वीर्य, बल ब्रह्मचारी में उत्तम (अपः) कर्म का पालन कराती हैं, उन वाणियों पर कोई चौर स्वभाव का पापी पुरुष भी अधिकार न करे।

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ ॥ २५ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (रेतसि ऋषभस्य गोषु उपपर्चनम्) उत्तम वीर्य के निमित्त गौओं का सांड के साथ सम्पर्क होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) विद्यादातः ! विद्वन् ! (तव वीर्ये) तेरे ज्ञान सामर्थ्य के ऊपर (आसु) इन (गोषु) वेद वाणियों के निमित्त (इदम्) यह (उप-पर्चनम्) उत्तम सम्बन्ध (उप पृच्यताम्) जुड़े। इसी प्रकार बलवान् राजा के बाहु बल पर भूमियों पर राजा का प्रभुत्व स्थिर हो। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

[२९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप्। २ भुरिक्पंक्तिः ६ ब्राह्मी उष्णिक् ॥

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (महः यन्तः) बड़े २ पदों वा लक्ष्यों को

प्राप्त होते हुए और (सुमतये चकानाः) शुभ मति, ज्ञान की कामना करते हुए, (वः नरः) आप लोगों में से उत्तम नेता पुरुष (सख्याय) मित्रभाव के लिये (इन्द्रं सेपुः) ऐश्वर्यवान् राजा वा विद्वान् उपदेष्टा को प्राप्त करें। (वज्र-हस्तः) शस्त्रबल को अपने हाथ में रखने वाला राजा और पापों से वर्जन करने वाले दण्ड को अपने हाथों देने वाला, गुरु, (महः दाता अस्ति) बड़ा भारी दाता है। आप लोग उसी (महाम् रण्वम्) महान् रमणीय, सत्य और उत्तम उपदेष्टा का (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (यजध्वम्) आदर सत्कार और सत्संग करो।

आ यस्मि॒न्हस्ते॒ नर्या॑ मिमि॒क्षुरा रथे॑ हिर॒ण्यये॑ रथे॒ष्ठाः।
आ र॒श्मयो॒ गभ॑स्त्योः स्थू॒रयो॒राध्व॒न्नश्वा॑सो॒ वृष॑णो यु॒जानाः ॥२॥

भा०—(यस्मिन् हस्ते) जिस प्रबल हाथ के नीचे (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी नायक जन (आ मिमिक्षुः) सब ओर से एकत्र होते हैं और (यस्मिन् हिरण्यये रथे) जिस हितकारी, रमणीय, सबको अच्छा लगने वाले 'रथ' अर्थात् महारथी पुरुष के अधीन (रथे-ष्ठाः) रथ पर विराजने वाले अन्य महारथी (आ मिमिक्षुः) सम्बन्धित रहकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और जिन (स्थूरयोः) विशाल (गभस्त्योः) बाहुओं में (रश्मयः) रासें, बागडोर (आ मिमिक्षुः) मिलकर रहती हैं। और (अध्वन्) जिस मार्ग में (अश्वासः) प्रबल अश्वों के समान (वृषणः) बलवान् पुरुष भी (युजानाः) नियुक्त होकर (आ मिमिक्षुः) मिलकर राष्ट्र की वृद्धि करते हैं वही प्रधान पुरुष सबका (इन्द्रः) स्वामी वा राजा होने योग्य है।

श्रि॒ये ते॒ पादा॒ दुव॒ आ मि॑मिक्षुर्धृ॒ष्णुर्व॒ज्री शव॑सा॒ दक्षि॑णावान्।
वसा॑नो॒ अत्कं॑ सुर॒भिं दृ॒शे कं स्व१॒॑र्ण नृ॑तविषि॒रो ब॑भूथ ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! (ते पादौ) तेरे दोनों चरणों की, लोग (श्रिये) लक्ष्मी की वृद्धि और आश्रय प्राप्त करने के लिये (दुवः आ मिमिक्षुः) सेवा

करते हैं उसको आदरपूर्वक पखारते हैं। हे (नृतो) नायक ! तू (धृष्णुः) शत्रु को पराजित करने वाला, (वज्री) शस्त्रबल का स्वामी, (शवसा) शक्ति से (दक्षिणावान्) उत्तम बलवती सेना और दानशक्ति से सम्पन्न होकर और (सुरभिः) उत्तम रीति से कार्य करने में समर्थ कर देने वाले, सुदृढ़, (अक्तं) वस्त्र वा कवचों को (वसानः) पहने हुए, (दृशे) सब को सन्मार्ग दिखाने के लिये वा सबकी आँखों के लिये (स्वः न) सूर्य के समान प्रकाश देने हारा और (इषिरः) सन्मार्ग में चलने हारा (बभूथ) हो।

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिस प्रधान नायक की अधीनता में (सः) वह (सुतः) उत्पन्न हुआ पुत्रवत्, वा अभिषिक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान्, सौम्य, प्रजाजन (आमिश्लतमः) सब प्रकार मिला हुआ, तुल्य परस्पर प्रेम युक्त (भूत्) होजाता है, (यस्मिन् पक्तिः) जिसके अधीन गृह वा क्षेत्र में भोजन अन्न का उत्तम रीति से परिपाक (पच्यते) हो और (धानाः सन्ति) जिसके अधीन रहकर धान की खीलों के सदृश उज्ज्वल चरित्र वाली प्रजाएं ऐश्वर्य को धारण करने में समर्थ हों उस (इन्द्रं) ऐश्वर्य-वान्, शत्रुहन्ता राजा को (नरः) नायक (ब्रह्मकारा) धन, अन्न और वेद ज्ञान के करने में दक्ष पुरुष (स्तुवन्तः) स्तुति करते और (उक्था शंसन्तः) उत्तम स्तुत्य वचन कहते हुए (देव-वाततमा) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा प्रभु के अति समीप पहुँच जाते हैं। अध्यात्म में वही 'इन्द्र' आत्मा है जिसमें सोम, परमानन्दरस, 'पक्ति' तप, परिपाक और 'धाना' ध्यान धारणाएं हों जिसकी ब्रह्मज्ञानी स्तुति, उपदेश करते हुए उपास्य देव के अति समीपतम, तन्मय होजाते हैं।

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती॥५॥

भा—(अस्य) इस महान् प्रभु के (शवसः) बल और ज्ञान की (अन्तः) कोई सीमा (न धायि) नहीं कही जा सकती। वह (महित्वा) अपने महान सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि दोनों को (वि बाबधे तु) विविध प्रकार से बांधे ही रहता है। वह (सूरिः) सबका सञ्चालक, विद्वान् (तूतुजानः) सब विघ्न-बाधाओं को नाश करने वाला, सब प्रकार के सुख देने वाला होकर (सम्-ईजमानः) सबसे संगत होकर, सबको उत्तम दान करता हुआ (यूथा इव अप्सु) पशु समूहों को जलों पर गवाले के समान (अप्सु ताः ऊतीः आपृणाति) उन आकाश और पृथिवीस्थ समस्त लोकों को रक्षा अन्नादि से खूब तृप्त करता, उनको पूर्ण करता है।

एवेदिन्द्रः सुहवं ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥१॥

भा०—(एव इन्द्रः इत्) इसी प्रकार ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा, प्रभु भी (सुहवः) सुख से स्तुति, उपासना और आह्वान करने योग्य, (ऋष्वः) महान् (अस्तु) हो, वह (ऊती) रक्षादि साधनों से या (अनूती) उन साधनों के अभाव में भी (हिरि-शिप्रः) मनोहारी मुख नाक वाला वा सुन्दर मुकुट वाला और (सत्वा) उत्तम बलशाली हो। उस प्रकार (हि) निश्चय से वह (असमात्योजाः जातः) बल पराक्रम में अनुपम होकर (पुरू च वृत्रा) बहुत से विघ्नकारियों और (दस्यून्) दुष्ट, प्रजा-त्रासकारी लोगों को (नि हनति) सर्वथा नष्ट करे। इति प्रथमो वर्गः ॥

(३०)

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् ४ पंक्तिः। ५ ब्राह्मी उष्णिक् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे॥१॥

भा०—(इन्द्रः पृथिव्याः अर्धम् प्रति भवति) सूर्य पृथिवी के आधे के प्रति प्रकाश करता है, (पृथिवी दिवः अर्धम् प्रति) और पृथिवी प्रकाश के आधे ही अंश को ग्रहण करती है परन्तु तो भी (उभे) दोनों मिलकर (रोदसी) आकाश और पृथिवी मिलकर रहते हैं उन दोनों में से (इन्द्रः) सूर्य ही (प्र रिरिचे) अधिक शक्तिशाली है, (उभे रोदसी-प्रति) आकाश और पृथिवी दोनों को व्यापता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) तेजस्वी राजा (दिवः पृथिव्याः) आकाश और पृथिवीवत् विजयिनी सेना-वा राजविद्वत्-सभा और पृथिवीवासी प्रजा दोनों से (प्र रिरिचे) बहुत बड़ा है । (उभे रोदसी अस्य अर्धम् प्रति) रुद्र और रुद्रपत्नी, सेनापति और सेना, शासक वर्ग और शास्य प्रजाजन दोनों भी इसके आधे या समृद्ध ऐश्वर्य के बराबर हैं । वह (एकः) अकेला (अजुर्यः) कभी नाश को प्राप्त न होकर (वीर्याय) अपने बल वृद्धि के हित, (भूय इत् वावृधे) बहुत ही वृद्धि करे, और वह (वसूनि) नाना ऐश्वर्यों से बसे प्राणियों की (दयते) रक्षा करे ।

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २ ॥

भा०—(अध) और मैं (अस्य) उसके (असुर्यम्) बल को (बृहत्) बड़ा भारी (मन्ये) जानता हूं और (यानि) जिन (उर्विया) बड़े २ (सद्मानि) लोकों को यह (सुक्रतुः) उत्तम कर्त्ता पुरुष (विधात्) बनाता है, और (दाधार) धारण करता है उनको (नकिः) कोई भी नहीं (आ मिनाति) नष्ट कर सकता । इसी कारण वह (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (दिवे दिवे) दिनों दिन (दर्शतः भूत्) दर्श-नीय होता है ।

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) जिस प्रकार विद्युत् (नदीनाम् अपः अरदः) नदियों के जल को मेघ से छिन्न भिन्न करता है, और (यत्) जो (आभ्यः) इनके जाने के लिये (गातुम्) मार्ग या पृथिवी स्थल को (अरदः) विदीर्ण करता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू (नदीनाम्) समृद्धिशालिनी प्रजाओं के (अद्य चित्) नित्य ही, आज के समान, (तत् अपः अरदः) उन उन नाना कर्मों का विलेखन कर। (आभ्यः) उनके हितार्थ (गातुम्) सन्मार्ग, और भूमियों को (अरदः) खोद, सन्मार्ग बना; नदी जलों के लिये, नहरें और अन्नोत्पत्ति के लिये कृषि द्वारा भूमि का विलेखन कर। (पर्वताः) मेघ, के समान प्रजापालक जन (अद्म-सदः न) अन्नादि भोग्य पदार्थों के उपभोग के लिये बैठने वाले जनों के समान (अद्म-सदः) राजा के दिये अन्न, वृत्ति को प्राप्त कर (नि सेदुः) पदों पर विराजें, इस प्रकार हे (सु-क्रतो) शुभ, उत्तम कर्म करने हारे ! (त्वया) तेरे द्वारा (रजांसि) समस्त जन और लोक (दृढ़ानि) कर्त्तव्यपरायण, दृढ़, बलवान् हों।

सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(तत् सत्यम् इत्) यह बात सर्वथा सत्य है, कि (त्वा-वान् अन्यः न अस्ति) तेरे जैसा दूसरा और नहीं है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् ! तेरे जैसा (न देवः न मर्त्यः ज्यायान्) न देव और मर्त्य ही तुझ से बड़ा है। (परि-शयानम्) सब ओर फैले (अहिं) मेघ को जिस प्रकार विद्युत्, सूर्य (अहन्) छिन्न भिन्न करता है, और (अर्णः अव असृजः) जल को नीचे गिराता है और (अपः समुद्रम् अच्छ अवासृजः) जलों को समुद्र या अन्तरिक्ष की ओर बहा देता या मेघ रूप से उठादेता है उसी

प्रकार हे राजन् ! तू भी (परि-शयानम्) शान्त रूप से फैले (अहिं) आगे आये शत्रु को (अहन्) नाश करे । (अर्णः) धन को उत्पन्न करे और (अपः अच्छ समुद्रम्) आत प्रजाओं को समुद्र के समान गंभीर पुरुष के प्रति सौंप दे ।

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम् ॥५॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! जिस प्रकार सूर्य मेघ के जलों को सब ओर बर्षाता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू (अपः) अपनी आप्त प्रजाओं को (दुरः) शत्रुसंतापक सेनाओं को (विषूचीः वि) विविध दिशाओं में भेज, और (पर्वतस्य) मेघ वा पर्वत के तुल्य शर-वर्षी, और अचल शत्रु के (दृढम्) दृढ़ सैन्य को (वि अरुजः) विविध प्रकार से नष्ट भ्रष्ट कर । तू (सूर्यम्) सूर्य, (द्याम्) तेज और (उषासम्) प्रभात वेला के समान सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, कान्तिमती स्त्री वा कामनावान् प्रजा और 'उषा' अर्थात् शत्रु को भस्म करने वाली सेना को (जनयन्) प्रकट करता हुआ (जगतः चर्षणीनाम्) जगत् भर के मनुष्यों के बीच में (राजा अभवः) सर्वोत्कृष्ट तेजस्वी राजा होकर रह । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३१]

सुहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः--१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ३ पंक्तिः । ४ निचृदतिशक्वरी । ५ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥१॥

भा०—हे (रयिपते) ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (रयीणाम्) समस्त ऐश्वर्यों का (एकः) अकेला ही स्वामी (अभूः) है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-

वन् ! तू (हस्तयोः) अपने हाथों में (कृष्टीः) कृषिकारिणी समस्त प्रजाओं और शत्रुओं का कर्षण, विनाश करने वाली समस्त सेनाओं को भी (अधिथाः) धारण कर, उनका स्वामी बना रह । (चर्षणयः) ये मनुष्य (अप्सु) अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश (अप्सु) प्रजाजनों में (सूरे) सब के संचालक (तोके तनये च) पुत्र, पौत्र आदि के सम्बन्ध में (वि वाचः) विविध प्रकार के वचन, विविध बातें, वा स्तुतियां (वि अवोचन्त) विविध प्रकार से कहें, अथवा (चर्षणयः) न्याय, राज्यशासन के द्रष्टा विद्वान् पुरुष (वि-वाचः) विशेष वाणियों के ज्ञानी अमुक के पुत्र, अमुक के पौत्र, तेजस्वी पुरुष के सम्बन्ध में विविध प्रकार से विवाद करके निर्णय करें कि कौन सभापति वा राजा हो । अथवा विद्वान् जन पुत्र पौत्रादि में तथा (सूरे) नायक तेजस्वी पुरुष में (वि-वाचः अवोचन्त) विविध विद्याओं का उपदेश करें ।

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (त्वत् भिया) तुझ से भयभीत होकर, तेरे शासन में (विश्वा पार्थिवानि) समस्त पृथिवी के जन्तु (अच्युता) स्वयं नष्ट न होकर भी (रजांसि चित् च्यावयन्ते) अन्य लोकों को भी मार्ग पर जाने देते हैं, वे एक दूसरे का नाश नहीं करते । (ते अज्मन्) तेरे बड़े भारी बल के अधीन (द्यावा क्षामा) सूर्य और पृथिवी के तुल्य समस्त नर नारी, (पर्वतासः) पर्वतों या मेघों के तुल्य बड़े २ प्रजापालक जन और (वनानि) जंगल, वा सेव्य नाना ऐश्वर्य (विश्वं दृढं) सब पदार्थ स्थिर रहकर भी विद्युत् के समान (भयते) भय करता है, तेरा शासन स्वीकार करता है । विद्युत् के प्रहार से जैसे मेघ (पार्थिवानि रजांसि) पृथिवी से लिये जलों को नीचे गिरा देते हैं । सब उसके भय से कांपते हैं ।

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्युत् के समान तेजस्विन् ! शत्रुहन्तः ! हे (इन्द्र) भूमि के विदारक ! कृषक ! (त्वं) तू (कुत्सेन) वज्र या हथियार, हल के बल से (अशुषम् शुष्णम्) कभी न सूखने वाले, अपार जल के बल को प्राप्त करके (गविष्टौ) बैलों, तथा भूमि की इष्टि अर्थात् प्राप्ति और उसमें बीज वपन आदि करके (कु-यवं) कुत्सित जौं आदि धान्य उत्पन्न करने के दोष को (अभि यु-द्धय) दूर कर । और उत्तम अन्न प्राप्त कर । इसी प्रकार हे राजन् ! तू शस्त्र बल से अपार बल प्राप्त करके (गविष्टौ) भूमि को प्राप्त करने के लिये (कुयवं) कुत्सित अन्न खाने वाले अथवा कुत्सित उपायों से प्रजा का नाश करने वाले दुष्ट जन का (अभि युद्धय) बराबर मुक़ाबला किया कर । (अध) और (प्रपित्वे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होने पर (सूर्यस्य दश रपांसि) सूर्य के दसों हननकारी बलों को (मुषायः) प्राप्त कर और (चक्रम् अविवेः) राष्ट्र में चक्र का सञ्चालन कर अथवा (सूर्यस्य चक्रम्) सूर्य के चक्र या विम्ब या ग्रह चक्र के समान अपने राज चक्र को (मुषायः) उसके अनुकरण में चला वा (मुषायः = पुषायः) पुष्ट कर । (रपांसि अविवेः) हनन साधन सैन्यों को सञ्चालित कर तथा (रपांसि) पापकारी दुष्ट पुरुषों को (दश) नष्ट कर, वा (दश अविवेः) दशों दिशाओं से दूर कर ।

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे
भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४ ॥

भा०—हे (शचीवः) शक्तिशालिन् ! हे बुद्धिमन् ! हे (सु-तक्रे, सुत–क्रे) सुप्रसन्न ! हे उत्तम ऐश्वर्य द्वारा क्रीत ! उत्तम वेतन पर बद्ध अथवा उत्तम ऐश्वर्यों से अन्यों और अन्यों के श्रमों को अपने लिये

ख़रीदने में समर्थ (त्वं) तू (शम्बरस्य) शान्ति के नाशक (दस्योः) प्रजा के नाशकारी, दुष्ट एवं शत्रु के (शतानि) सैकड़ों और (अप्रतीनि) अप्रतीत, न मालूम देने वाली, गुप्त स्थानों और (पुरः) नगरियों, बस्तियों को भी (अव जघन्थ) पता लगा और नाश कर। (यत्र) जिस राष्ट्र में तू (सुन्वते) ऐश्वर्य बढ़ाने वा अभिषेक करने वाले (दिवः दासाय) तेजस्वी सूर्यवत् तेरे पास भृत्यवत् सेवक प्रजाजनों को और (गृणते) उपदेश करने वाले (भरद्-वाजाय) ज्ञानधारक विद्वान् पुरुष को तू (वसूनि अशिक्षः) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे वहां तू सुख से विराज।

स स॑त्यसत्वन्महु॒ते रणा॑य॒ रथ॒मा ति॑ष्ठ तुविनृम्ण भी॒मम्।
या॒हि प्र॑पथि॒न्नव॒सोप॑ म॒द्रिक्प्र च॑ श्रुत श्रावय चर्ष॒णिभ्यः॑॥५॥३॥

भा०—हे (सत्य-सत्वन्) सत्यपालक बलवान् पुरुषों के स्वामिन्! हे सत्य अन्तःकरण और बल वाले! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्यशालिन्! तू (महते रणाय) बड़े भारी संग्राम के लिये (भीमम्) भयजनक (रथम्) रथ वा रथ सैन्य पर (आ तिष्ठ) बैठ, उस पर शासन कर। हे (प्र-पथिन्) उत्तम मार्ग चलने हारे वा उत्तम अश्व यानादि के स्वामिन्! तू (अवसा) रक्षा, बल तथा ज्ञान सहित (मद्रिक्) मेरे समीप (उप याहि) प्राप्त हो और (चर्षणिभ्यः) विद्वान्, ज्ञानद्रष्टा पुरुषों से (प्र श्रुत च) उत्तम २ वचन सुना कर (चर्षणिभ्यः प्र श्रावय च) मनुष्यों के हितार्थ उत्तम ज्ञानों को सुनाया भी कर। इति तृतीयो वर्गः॥

[३२]

सुहोत्र ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः। २ स्वराट् पंक्तिः। ३, ५ त्रिष्टुप्। ४ निचृत्त्रिष्टुप्। पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अपू॑र्व्या पुरु॒तमा॑न्यस्मै म॒हे वी॒राय॑ त॒वसे॑ तु॒राय॑।
वि॒र॒प्शिने॑ व॒ज्रिणे॑ शन्तमा॑नि॒ वचां॑स्यासा स्थवि॑राय तक्षम्॥१॥

भा०—मैं (अस्मै) इस (महे) महान्, (तवसे) बलवान् (तुराय) वेग से कार्य करने वाले, अप्रमादी, (वीराय) विविध ज्ञानों के उपदेष्टा, विविध शत्रुओं को कम्पित करने वाले, (विरप्शिने) अति प्रशस्त, विशेष रूप से, और विविध प्रकारों से स्तुति के योग्य, (वज्रिणे) शक्तिशाली, (स्थविराय) स्थिर, वृद्ध, कूटस्थ प्रभु के (अपूर्व्या) अपूर्व, सबसे आदि, परम पुरुष के योग्य (पुरुतमानि) अति श्रेष्ठ, बहुत से (शंतमानि) अति शान्तिदायक, (वचांसि) वचनों को मैं (आसा) मुख से (तक्षम्) उच्चारण किया करूं।

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम्॥ २॥

भा०—(सः) वह विद्वान् तथा बलवान् पुरुष (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष द्वारा (कवीनाम्) क्रान्तदर्शी विद्वानों के (मातरा) माता पिता, उत्पादक राष्ट्र के नर नारी जनों को (अवासयत्) सुखपूर्वक बसावे, अर्थात् भावी में उत्तम सन्तानोत्पादक माता पिता बनने वाले बालक बालिकाओं की राजा तेजस्वी गुरु के समीप ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने की व्यवस्था करे। और वह स्वामी वा गुरु (गृणानः) उपदेश करता हुआ (अद्रिं रुजत्) अभेद्य अज्ञान को, मेघ को सूर्यवत् नाश करे। जिस प्रकार (वावशानः) कान्ति से चमकता हुआ सूर्य (सु-आधीभिः ऋक्वभिः उस्रियाणां निदानम् उत् असृजत्) उत्तम जलधारक तेजोयुक्त किरणों द्वारा कान्तियों का और मेघों द्वारा जल-धाराओं का दान कराता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष वह (वावशानः) निरन्तर कामना करता या चाहता हुआ, स्नेहवान् होकर (स्वाधीभिः) उत्तम ध्यान और धारणा वाले विद्वानों, (ऋक्वभिः) अर्चना योग्य, उपदेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुषों द्वारा (उस्रियागाम्) ज्ञान-वाणियों के (निदानम्) निश्चित रूप दान (उद् असृजत) करे, इसी प्रकार राजा, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष द्वारा

(अद्रिं) अभेद्य शत्रु का नाश करता हुआ, शासन करे, विद्वानों के माता पिता रूप सभा, सभापति दोनों की स्थापना करे। उत्तम बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषों से (उस्रियाणां निदानम्) वाणियों के निर्णय, तथा भूमियों के सुप्रबन्ध (उत् असृजत्) उत्तम रीति से करे।

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ३

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (ऋक्वभिः) पूजा करने योग्य प्रशंसनीय, (वह्निभिः) कार्य भार को अपने ऊपर लेने में समर्थ, (मित-ज्ञुभिः) जानुओं को सिकोड़ कर बैठने वाले, सुसभ्य वा, परिमित, नपे हुए जानु या गोड़े बढ़ाने वाले, एक चाल से चलने वाले, (सखिभिः) एक समान नाम वा ख्याति वाले वीरों वा विद्वान् जनों के साथ (सखीयन्) मित्रवत् आचरण करता हुआ, (शश्वत्) सदा (गोषु) भूमियों और वेद-वाणियों को प्राप्त करने के निमित्त, (पुरु-कृत्वा) बहुत से कर्म करने हारा विद्वान् पुरुष (जिगाय) विजय करे और उनके सहाय से ही वह (पुरोहा) शत्रु के पुरों का नाश करने हारा वा आगे आने वाले शत्रु को मारने हारा, (कविः) दूरदर्शी पुरुष स्वयं (कविः सन्) क्रान्तदर्शी होकर (दृढाः पुरः रुरोज) शत्रु की दृढ़ नगरियों को तोड़े। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष समवयस्क विद्वान् उपदेष्टाओं से मित्रभाव करके सदा विजय लाभ करे, और स्वयं क्रान्तदर्शी, तत्वज्ञानी होकर (पुरः) इन देहबन्धनों का नाश करे।

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामागिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह राजा तू सदा (नीव्याभिः) प्राप्त करने योग्य उद्देश्यों को लक्ष्य में रखने वाली वा 'नीवी' अर्थात् नामावलि या पंक्तियों में सुव्यवस्थित सेनाओं तथा (महद्भिः वाजेभिः) बड़े २ ज्ञानवान्, और

बलवान् पुरुषों तथा (महद्भिः शुष्मैः) बड़े २ बलों सहित (जरितारम्) स्तुतिशील तथा, स्वपक्ष को हानि करने वाले शत्रु जन को क्रम से पालन और हनन के लिये (अच्छ) सन्मुख होकर प्राप्त हो। हे (वृषभ) बलवन् ! हे (गिर्वणः) वाणियों, और आज्ञाओं के देने वाले और स्तुतियों के योग्य ! तू (क्षितीनाम् सुविताय) प्रजाओं के सुख प्राप्त और ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये (पुरु-वीराभिः) बहुत से वीर पुरुषों से बनी सेनाओं सहित (प्र याहि) आगे बढ़।

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५॥४॥

भा०—(इन्द्रः सर्गेण तक्तः) जिस प्रकार विद्युत् वा वायु जल से पूर्ण होकर (दक्षिणतः अत्यैः) दक्षिण से वेग से आने वाले मेघों या वायुओं द्वारा (अपः सृजति) जलों को बरसाता है और वे (सृजानाः दिवे दिवे अनपावृत् अर्थं विविषुः) उत्पन्न होकर दिनों दिन पुनः न लौटने योग्य गन्तव्य सागर को प्राप्त होजाते हैं उसी प्रकार (सः) वह वीर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (तुराषाट्) अपने वेग-वती सेना वा वेगयुक्त हिंसक भटों से शत्रुओं को विजय करने वाला होकर (सर्गेण) प्रजावत् (शवसा) सैन्य बल से (तक्तः) सुप्रसन्न, हृष्ट पुष्ट होकर (अत्यैः) वेगवान् अश्वगण सहित (अपः) आप्त प्रजावर्ग को प्राप्त करे। (इत्था) इस प्रकार से वे (सृजानाः) प्राप्त होती हुई प्रजाएं (दिवेदिवे) दिनों दिन (अनपावृत्) प्रत्यक्ष रूप से (अप्रमृष्यं अर्थं विविषुः) शत्रु से पराजय न होने वाले शरण योग्य पुरुष को प्राप्त करें। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३३]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः— १, २, ३ निचृत्पंक्तिः । ४ भुरिक्-पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यः) जो तू (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, (मदः) अतिहर्ष युक्त, (सु-अभिष्टिः) उत्तम आदरणीय रूप से प्राप्त, (दास्वान्) उत्तम दानों का दाता है, और (यः) जो तू (सु-अश्वः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी है, हे (वृषन्) बलवन् ! हे उत्तम प्रबन्धकर्त्तः ! वह तू (नः) हमें (तम्) उस नाना ऐश्वर्य हर्ष आदि को प्रदान कर। वह तू (सौवश्व्यं) उत्तम अश्व सैन्य के कारण प्राप्त होने योग्य यश को (वनवत्) प्राप्त कर, तू (समत्सु) संग्रामों में (वनवत्) विघ्नों का नाश करे, और धनों को प्राप्त करे, और (अमित्रान् ससहत्) शत्रुओं का पराजय करे ।

त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वि वाचः) विविध विद्यायुक्त वाणियों को जानने वाले, वा विविध भाषाओं को बोलने वाले, नाना देश वासी, (चर्षणयः) मनुष्य (शूरसातौ) शूर पुरुषों द्वारा सेवन योग्य संग्राम में (अवसे) रक्षा के निमित्त (त्वां हि) तुझ को ही (हवन्ते) पुकारते, वा रक्षक रूप से स्वीकार करते हैं। तू (विप्रेभिः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा ही (पणीन्) उत्तम, प्रशंसित, एवं व्यवहार वान् पुरुषों को भी (वि-अशायः) विशेष रूप से सुख की नींद सुला, वे तेरी रक्षा में सुख से निश्चिन्त होकर रात बितावें। (त्वा-उताः) तुझ से सुरक्षित रहकर (इत्) ही (अर्वाः) अश्व के तुल्य वेग से जाने आने हारा पुरुष भी (वाजम्) अन्न ऐश्वर्यादि का (सनिता) भोग करता है।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (तान्) उन (उभयान्) दोनों प्रकार के (अमित्रान्) शत्रु और (दासा) सेवकों को (वृत्राणि) धनों और (आर्या) स्वामियों, वैश्यों के योग्य ऐश्वर्यों को भी प्राप्त कर। हे (शूर) हे शूरवीर ! तू विवेक से (सुधितेभिः वना इव) कुठारों से जंगल के वृक्षों के समान (अत्कैः) अपने बलों द्वारा शत्रुओं को (वधीः) विनाश कर और ऐश्वर्यों को प्राप्त कर। हे (नृणां नृतम) नायकों में से उत्तम नायक तू (अमित्रान्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (आ दर्षि) सब ओर से विदीर्ण कर और (दासा अर्यः) सेवक श्रेष्ठ जनों को (आदर्षि) आदर कर।

स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्धवयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४॥

भा०—हे शूर ! (यत्) जब (युध्यन्तः) युद्ध करते हुए हम लोग (स्वः साता) सुख प्राप्त करने के लिये (पृत्सु) संग्रामों में (नेमधिता) आधे ऐश्वर्य को धारण करनेवाले होकर (त्वा ह्वयामसि) तुझे बुलाते हैं, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अकवाभिः) अनिन्दित वाणियों तथा (ऊती) रक्षा सामर्थ्य से (नः सखा) हमारा मित्र (विश्वायुः) सब मनुष्यों का स्वामी, (अविता) पालक और (वृधे भूः) हमारी वृद्धि करने के लिये समर्थ आश्रय होता है।

नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः॥५॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! दुःखविदारक ! तू (नूनं) निश्चय से (अपराय) दूसरे के लिये भी (मृळीकः) दयार्द्र, सुख कर (स्याः) हो। (उत) और (नः) हमें (अभिष्टौ) प्राप्त होने पर भी (मृडीकः भव) सुखकारी हो। (इत्था) इस प्रकार (गृणन्तः) स्तुति करते हुए

हम (महिनस्य) महान् सामर्थ्यवान् तेरे (दिवि) कान्तियुक्त, कमनीय, सुन्दर, (पार्ये) सब को पूर्ण करनेवाले और पालक (शर्मन्) सुखमय शरण में (गोस-तमाः) उत्तम ज्ञानवाणी, गवादि पशुओं और भूमियों का सुख सेवन करने वाले (स्याम) हों। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३४]

शुनहोत्र ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! प्रभो! (पूर्वीः) सबसे पूर्व की, उत्तम, (गिरः) वाणियां (त्वे) तुझ में ही (संजग्मुः) संगत, चरितार्थ होती हैं, तुझ में ही समन्वित होती हैं, और (विभ्वः मनीषाः) विशेष समर्थ बुद्धियां भी (त्वत् वियन्ति च) तुझ से विशेष रूप से प्रकट होती हैं। (इन्द्रे अधि) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त ही (ऋषीणां स्तुतयः च) मन्त्रार्थ द्रष्टाओं की स्तुतियां, प्रवचन, (उक्थ-अर्का) उत्तम अर्चना योग्य वचन (नूनं) अवश्य (पस्पृध्रे) एक दूसरे की स्पर्धा करते, वे सब एक दूसरे से उत्तम जंचते हैं।

पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानो३ऽस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (पुरुहूतः) बहुतों से स्तुति किया गया, (पुरु-गूर्त्तः) बहुतों से उद्यम किया गया, अर्थात् जिसके निमित्त बहुत से उद्यम करते हैं, (यः) जो (ऋभ्वा) सत्य के बल पर महान् (यज्ञैः) यज्ञों और ईश्वरपूजा अर्चनादि द्वारा (पुरु-प्रशस्तः) बहुतों से अच्छी प्रकार स्तुति किया जाता है, वह (महे) बड़े (शवसे) बल की वृद्धि के लिये

(अस्माभिः युजानः) हम लोगों से योग द्वारा, उपासित (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, (रथः न) महान् रथ के समान (अनुमाद्यः भूत्) प्रति दिन स्तुति योग्य और हर्ष अनुभव कराने हारा हो ।

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै॥३॥

भा०—(यं) जिसको (धीतयः) नाना कार्यस्तुतियें भी (न हिंसन्ति) कष्ट नहीं देतीं और (न वाणीः) न नाना वाणियां या याचनाएं भी विघ्न करती हैं । और वे (अभि वर्धयन्तीः इत्) इसको बढ़ाती हुई (इन्द्रं नक्षन्ति) ऐश्वर्यवान् प्रभु को ही व्यापती हैं, उसमें ही चरितार्थ होती हैं । (यदि शतं स्तोतार, यत् सहस्रं स्तोतारः) चाहे सौ स्तुतिकर्त्ता वा सहस्र स्तुतिकर्त्ता हों तो भी जब वे (गिर्वणसं गृणन्ति) समस्त स्तुतिवाणियों को स्वीकार करने वाले, उस प्रभु की ही स्तुति करते हैं (तत्) तो भी यह सब अर्चनादिक (अस्मै) इस जीव को (शं) शान्तिदायक ही होता है ।

अस्मा एतद्दिव्य१र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ ४ ॥

भा०—(दिवि इन्द्रे मासा यथा सोमः मिमिक्षे) आकाश तेजोमय सूर्य में जिस प्रकार 'सोम' अर्थात् चन्द्र एक मास के बाद (मिमिक्षे) उसके साथ मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार (एतत् सोमः) यह उत्पन्न होने वाला जीव, विद्वान् पुरुष, (अस्मै) अपने सुधार के लिये ही अपने जीव को भी (दिवि इन्द्रे) कामना योग्य ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (अर्चा एव) अर्चना द्वारा ही, (सं मिमिक्षे) मिल जाता है, इसी प्रकार यह जीव भी (नि अयामि) नम्र, विनीत हाकर प्राप्त हो । (धन्वन्) अन्तरिक्ष या मरुस्थल में जैसे (आपः सम् अभि ववृधुः) जल किसी को

बढ़ाते या शक्ति युक्त करते हैं उसी प्रकार (आपः) आप्त प्रजाजन (सत्रा) सदा (यज्ञैः) यज्ञों द्वारा (हवनानि वावृधुः) हवनों को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार हम यज्ञों द्वारा उस प्रभु का यश बढ़ावें।

अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५॥६॥

भा०—(मतिभिः) मननशील विद्वान पुरुषों द्वारा (अस्मै इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के लिये (एतत्) यह (महि) महत्व पूर्ण, (आंगूषम्) ग्रहण करने योग्य, (स्तोत्रं) स्तुति वचन (अवाचि) कहा या उपदेश किया जावे (यथा) जिससे (महति) बड़े भारी (वृत्र-तूर्ये) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले संग्राम के अवसर में (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (विश्वायुः) पूर्णायु, सर्वत्र पहुंचने में समर्थ, समस्त मनुष्यों का स्वामी, (अविता) सबका रक्षक (वृधः च असत्) सबका बढ़ाने हारा हो। इति षष्ठो वर्गः ॥

(३५)

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ पंक्तिः ॥ पचर्चं सूक्तम् ॥

कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।
कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१॥

भा०—हे राजन् ! तेरे (रथ-क्षयाणि) रथों में वा रमण, योग्य साधन, उत्तम प्रासाद आदि स्थानों में निवास करने के कार्य (कदा भुवन्) कब २ हों, और (स्तोत्रे) स्तुतियोग्य कार्य में अथवा स्तुति उपदेश करने वाले विद्वान् जन को (सहस्रपोष्यं ब्रह्म) सहस्रों को पोषण करने वाला धन (दाः) देवे, (राया) और धनैश्वर्य से युक्त (अस्य) इस राष्ट्र के (स्तोमं) स्तुत्य पद वा जन संघ को (कदा वासयः) कब बसावे

अलंकृत करे, और (कदा) कब २ (वाजरत्नाः) अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि रमणीय पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (धियः) नाना कर्म तू (करसि) करे। इत्यादि सब विवेकपूर्वक समय नियत कर।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन्।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कर्हि स्वित् तत्) कब ऐसा हो (यत्) कि तू (वीरैः नृभिः) वीर पुरुषों से (वीरान् नीडयासे) वीर को मिलावे और (कर्हि स्वित् आजीन् जय) कब संग्रामों को विजय करे। और कब (त्रिधातु) स्वर्ण, रजत और लोह से युक्त (गाः) भूमियों पर (अरध जयसि) जीत कर अधिकार करे। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अस्मे) हम प्रजाजन के उपकार करने के लिये (गोषु) उत्तम भूमियों में (स्वर्वत् द्युम्नं) सुख से युक्त, सुखप्रद धन (धेहि) अन्न उत्पन्न करावे। इत्यादि सब बातों का ठीक २ काल जान।

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः॥३॥

भा०—हे (शविष्ठ) उत्तम बलशालिन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (कर्हि स्वित्) कब २ (जरित्रे) विद्वान् पुरुषों को (विश्वासु ब्रह्म कृणवः) समस्त प्रकार के अन्न, धन आदि प्रदान करे। (कदा) कब २ (धियः) नाना कर्मों, प्रज्ञाओं तथा उनके करने वाले बुद्धिमान् पुरुषों को (नियुतः न) अपने अधीन नियुक्त पुरुषों या अश्वों के समान (युवसे) कार्य में लगावे, और (कदा) कब २ (गो-मघाः) भूमियों के धनस्वरूप (हवनानि) ग्रहण करने योग्य अन्न, रत्न, कर आदि पदार्थों को (गच्छाः) प्राप्त करे। इत्यादि का ठीक ठीक काल नियत कर।

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्राः वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह तू (जरित्रे) विद्वान् उपदेष्टा पुरुष के लिये (गो-मघाः) पृथिवी के समस्त ऐश्वर्य, भूमि, राज्य, धन, (अश्व-चन्द्राः) वेग से जाने वाले अश्व आदि आह्लादकारक (वाज-श्रवसः) बल कारक अन्नों से युक्त (पृक्षः) प्राप्त करने योग्य नाना पदार्थ, (अधि धेहि) अपने अधिकार में रख और प्रदान कर। तू (इषः) नाना अन्नों को (पिपीहि) पान कर, (इषः पिपीहि) आज्ञा वशवर्ती सेनाओं का पालन कर। (इषः पिपीहि) कामना योग्य प्रजाओं की वृद्धि कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सु-दुघां धेनुम्) उत्तम रीति से दोहने योग्य गौ के तुल्य इस भूमि और वाणी को और (सु-रुचः) उत्तम कान्तियुक्त तथा रुचि-कारक पदार्थों को (भरद्-वाजेषु) ज्ञान, ऐश्वर्य संग्रह करने वाले पुरुषों के अधीन (रुरुच्याः) उनको अधिक रुचिकर बना।

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५॥७॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! तू (यत्) जब (दुरः) द्वारों तथा शत्रुवारक सेनाओं को (वि गृणीषे) विविध प्रकार से आज्ञाएं देवे तब (शूरः) शूरवीर होकर (नूनं) निश्चय से (वृजनम्) जाने के मार्ग को (अन्यथा चित्) विपरीत (मा आगृणीषे) कभी मत बतला। (शुक्रः दुघस्य) जल को दोहन करने वाले मेघ के सदृश शुक्र या श्वेत कान्ति के धन या यश का दोहन करने वाले राजा की (धेनोः) विद्युत् के समान, वाणी, वा गौ के तुल्य भूमि से उत्पन्न (ब्रह्मणा) अन्न के तुल्य वृद्धिशील धन से हे (विप्र) विद्वन्! तू (अङ्गिरसान्) अंगारे के समान तेजस्वी, देह में प्राणों के तुल्य, राष्ट्र में बसे विद्वान् शक्तिशाली पुरुषों को (अरम्) खूब अच्छी प्रकार से (निर् जिन्व) सब प्रकार से तृप्त कर, उनको बढ़ा। इति सप्तमो वर्गः ॥

[३६]

नर ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् ।
४, ५ भुरिक् पंक्तिः । स्वराट् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जो तू (देवेषु) समस्त तेजस्वी पुरुषों के बीच में किरणों के बीच सूर्य के समान (असुर्यम्) सबके प्राणों के हितकारी बल, अन्नादि को (धारयथाः) धारण करता है, अतः तू (वाजानाम्) ऐश्वर्यों, अन्नों का (सत्रा विभक्ता अभवः) सत्यपूर्वक विभाग करने वाला हो । (तव मदासः = दमासः) तेरे समस्त हर्ष करने वाले कार्य और राष्ट्र दमनकारी उपाय (सत्रा) सदा वा सचमुच (विश्व-जन्याः) समस्त जनों के हितकारी हों । (अध ये) और जो (पार्थिवासः रायः) पृथिवी के ऊपर प्राप्त होने योग्य धनैश्वर्य हों वे भी (सत्रा) सदा, सचमुच (विश्व-जन्याः) सर्वजन हितकारी हों ।

अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥ २ ॥

भा०—(अस्य ओजः) इसके बल पराक्रम को (जनः) मनुष्य लोग (अनु येजे) प्रति दिन आदर से देखें, और (प्र येजे) उत्तम रीति से स्वीकार करें । (अस्य वीर्याय) इसके बल बढ़ाने के लिये (सत्रा अनु दधिरे) सदा सत्य व्यवहारों को धारण करें । (अपि) और (वृत्र-हत्ये) वारण करने योग्य, बढ़ते शत्रु को नाश करने के लिये (स्यूम-गृभे) एक दूसरे से सम्बद्ध, दृढ़ सैन्य को वश करने वाले (दुधये) शत्रुहिंसक (अर्वते) आगे बढ़ने वाले वीर पुरुष के योग्य (क्रतुं) कर्म को (वृञ्जन्ति) किया करें ।

तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (इन्द्रम्) सत्य न्याय और ऐश्वर्य को धारण करने वाले पुरुष को (ऊतयः) रक्षा करने वाले समस्त सैन्यादि साधन, (सध्रीचीः) एक साथ चलने वाली सेनाएं और (वृष्ण्यानि पौंस्यानि) बलशाली पुरुषों के बने सैन्य और (नियुतः) नियुक्त, लाखों, जन, (सश्चुः) प्राप्त होते हैं और (उक्थ-शुष्माः गिरः) उत्तम प्रशंसनीय बल से युक्त वा वचन २ में बल धारण करने वाली वाणियां (उरु-व्यचसं) उस महान, पराक्रमी पुरुष को (सिन्धवः समुद्रं न) समुद्र को नदियों के समान (आ विशन्ति) प्राप्त होकर उसमें आश्रय लेती हैं ।

स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्वम्) तू (गृणानः) हमें उपदेश करता हुआ और हम से स्तुति प्राप्त करता हुआ, (पुरु-चन्द्रस्य) बहुतों को सुखी करने वाले (वस्वः) धनों और (रायः) देने लेने योग्य ऐश्वर्य की (खाम्) खुदी नहर के समान (उप सृज) बनाकर बहा दे । तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (असमः) अनुपम, (एकः) अद्वितीय (पतिः) पालक और (विश्वस्य भुवनस्य राजा) समस्त संसार का राजा (बभूव) हो ।

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (द्यौः न) सूर्य के समान तेजस्वी (दुवोयुः) परिचर्या की कामना करता हुआ, (भूम रायः अभि) बहुत बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त कर (अर्यः) सबका स्वामी है (सः) वह तू (श्रुत्या)

श्रवण करने योग्य, प्रजाओं के वचनों को (श्रुधि तु) अवश्य श्रवण कर (यथा) जिससे तू (युगे युगे) प्रति वर्ष, (वयसा) दीर्घ आयु (शवसा) और बल, ज्ञान से (चकानः) कान्ति युक्त और (चेकितानः) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारा प्रिय (असः) हो। इत्यष्टमो वर्गः॥

[३७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत्पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १ ॥

भा०—हे (उग्र) उद्वेगजनक बलवन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (युक्तासः हरयः) नियुक्त मनुष्य अश्वों के समान (ते) तेरे (विश्ववारं) सबों से वरण करने योग्य (रथं) रथवत् रमण करने योग्य राष्ट्र चक्र को (वहन्तु) धारण करें। (स्वर्वान्) सुख और उत्तम उपदेश ज्ञान से युक्त (कीरिः) विद्वान् पुरुष (त्वा हवते) तुझे उपदेश दें वा विद्वान् जन तुझे स्वीकार करे। (अद्य) आज (ते) तेरे (सधमादः) साथ हर्षित और प्रसन्न होने वाले हम लोग (ऋधीमहि) समृद्ध हों।

प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा॥२॥

भा०—(हरयः) मनुष्य (द्रोणे) राष्ट्र में रहते हुए (कर्म) किसी भी उपयोगी कर्म को (प्र अग्मन्) अच्छी प्रकार करें। वे (पुनानासः) पवित्र, स्वच्छ रहते हुए (ऋज्यन्तः अभूवन्) ऋजु, सरल धर्मानुकूल आचरण करते हुए रहें। (नः) हममें से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध पुरुष (पूर्व्यः) पूर्व, सबसे प्रथम पूजा प्राप्त करने योग्य, या पूर्व विद्यमान वृद्ध जनों द्वारा नियत हो। वह (अस्य) इस राष्ट्र को (पपीयात्)

निरन्तर पालन और उसको उपभोग तथा समृद्ध करे। वह (द्युक्षः) आकाश के समान भूमि के राज्य को विस्तृत करनेहारा, व सूर्यवत् चमकने वाला, तेजस्वी पुरुष राजा होकर (सोम्यस्य) सोम, राज्यैश्वर्य पद के योग्य (मदस्य) आनन्द, हर्ष, तृप्ति, सुख उपभोग का (पपीयात्) लाभ करे।

आ स॒स्रा॒णासः॑ शवसा॒नमच्छेन्द्रं॑ सुच॒क्रे र॒थ्या॑सो॒ अश्वाः॑।
अ॒भि श्रव॒ ऋज्य॑न्तो वहेयु॒र्नू चि॒न्नु वा॒योर॒मृतं॒ वि द॑स्येत् ॥३॥

भा०—(रथ्यासः अश्वाः) रथ में लगने योग्य अश्वों के समान उत्तम धुरन्धर विद्वान् जन (शवसानम् इन्द्रम्) बलवान्, ऐश्वर्य-वान् राजा को (अच्छ आ-सस्राणासः) अच्छी प्रकार प्राप्त होते हुए, (ऋज्यन्तः) ऋजु, सरल सीधे, धार्मिक मार्ग पर गमन करते हुए (श्रवः अभि वहेयुः) ऐश्वर्य, उत्तम कीर्त्ति प्राप्त करावें और वह (नू चित्) अति शीघ्र ही (सु-चक्रे) उत्तम चक्र युक्त रथ के समान उत्तम राज्य चक्र में (वायोः) वायु के समान बलवान्, सबके प्राणप्रद (अमृतं) अवि-नाशी दीर्घायु, पद को प्राप्त कर (नु) दुःखों को (वि दस्येत्) नष्ट करे। अथवा (नूचित् इति निषेधे) वह उस अविनाशी पद का नाश न करे। अध्या-त्म में—आत्मा के 'अश्व' प्राणगण हैं देह सुचक्र है। इसको अन्न, बल और ज्ञान प्राप्त करावें। जिससे वह आत्मा 'वायुवत्' जीवनप्रद, ज्ञानमय प्रभु के अमृतपद को प्राप्त कर दुःखों का नाश करे।

वरि॑ष्ठो अस्य॒ दक्षि॑णामिय॒र्तीन्द्रो॑ म॒घोनां॑ तुविकू॒र्मित॑मः।
यया॑ वज्रिवः परि॒यास्यंहो॑ म॒घा च॑ धृष्णो॒ दय॑से॒ वि सू॒रीन् ॥ ४ ॥

भा०—(मघोनाम्) धन सम्पन्न पुरुषों में से (वरिष्ठः) सबसे उत्तम वरने योग्य, एवं सबसे श्रेष्ठ, दुःखों को दूर करने वाला और (तुवि-कूर्मितमः) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाला, पुरुष ही

(इन्द्रः) इन्द्र, ऐश्वर्य के राजपद के योग्य होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (दक्षिणाम्) दक्ष, अर्थात् बल से युक्त, बलवती, उस सञ्चालक शक्ति सैन्यादि और बलप्रद अन्न धनादि को भी (इयर्त्ति) प्राप्त होता और चलाता है। हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! (यया) जिससे (अंहः) पाप अपराध आदि को (परि यासि) दूर करता है। हे (धृष्णो) दुष्टों का दमन करने हारे ! तू (यया) जिस महती शक्ति द्वारा (सूरीन्) उत्तम विद्वानों को (मघा दयसे) दान करने योग्य धनों, अन्नों को देता और पालता है। (२) इसी प्रकार इन्द्र, ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष ही बहुत से कर्म करके दक्षिणा देता है। जिससे वह पाप को नाश करता और विद्वान् को धन अन्नादि देकर पालता है।

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणाति तूतुजानः॥५॥९॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (स्थविरस्य) स्थिर और बड़े (वाजस्य) अन्न, धन, बल का (दाता) देने वाला हो। वही (इन्द्रः) विद्या आदि का दाता, आचार्य (वृद्ध-महाः) वृद्धों द्वारा भी सत्कार करने योग्य होकर (गीर्भिः) उत्तम उपदेश योग्य वाणियों से (वर्धताम्) राष्ट्र की वृद्धि करे। (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (वृत्रं) बढ़ते शत्रु को (हनिष्ठः) खूब दण्ड देने वाला (अस्तु) हो। वह (सूरिः) विद्वान् पुरुष (तूतुजानः) दुष्टों का निरन्तर नाश करता, और सज्जनों को दान देता हुआ (सत्वा) बलवान् सात्विक पुरुष (ता) उन नाना धनों को पूर्ण करे और दे। इति नवमो वर्गः॥

(३८)

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १ ॥

भा०—(चित्र-तमः) अति आश्चर्यजनक कार्य करने हारा, अति पूज्य, सबसे उत्तम ज्ञानदाता, राजा और विद्वान् पुरुष (नः) हमें (इतः) प्राप्त होकर (अपात् उत् उ) सदा पालन करे। वह (मही) पूज्य, बड़ी (द्युमतीम्) तेजोयुक्त (इन्द्र-हूतिम्) ऐश्वर्य की देने वाली भूमि और ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वान् द्वारा उपदेश करने योग्य बाणी को भी (भर्षत्) पालन और धारण करे। वह (सु-दानुः) उत्तम दाता होकर (दैव्यस्य जनस्य) मनुष्यों और राजा के हितकारी प्रजाजन के (यामम्) नियन्त्रण करने के शासन कार्य में (पन्यसीं धीतिं) स्तुति योग्य धारण, सामर्थ्य, स्तुति प्राप्त करे और (रातिं) दानशीलता को भी (वनते) सेवन करे, दान योग्य धन प्रदान करे। परमेश्वर वा आत्मापक्ष में—(अपात्) पाद आदि अवयवों से रहित वह अद्भुतकर्मा है वह, द्युलोक सहित भूमि को धारण करता है, इत्यादि।

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २ ॥

भा०—(दूरात् चित्) दूर देश से (आ) आकर (वसतः) शिष्य रूप से रहने वाले (अस्य) इस उपस्थित शिष्य जन के (कर्णा) दोनों कानों को (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (घोषात्) वेद से (ब्रुवाणः) ज्ञान का उपदेश करता हुआ विद्वान् (तन्यति) अधिक विस्तृत करे, उसको अधिक ज्ञानवान् बनावे। (इयम् देव-हूतिः) यह विद्वान् पुरुष का विद्यादान वा देव अर्थात् विद्या की कामना करने वाले शिष्य जन की प्रार्थना (इन्द्रम्) उस विद्यादाता के आचार्य के प्रति (ऋच्यमाना) स्तुति करती हुई (मद्र्यक्) मुझ शिष्य के प्रति (एनम्

आववृत्यात्) उस गुरु को आवर्त्तन करे, मेरे प्रति उसका ध्यान और स्नेह आकर्षण करे।

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ३

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः) आप लोगों के बीच (परमया) सबसे उत्तम (धिया) बुद्धि और कर्म से युक्त (पुराजाम्) पूर्व उत्पन्न, (अजरम्) हानिरहित, (इन्द्रम्) ज्ञानप्रद गुरु को मैं (अर्कैः) आदर सत्कार योग्य उपचारों से (अभि अनूषि) साक्षात् स्तुति उपासना करूं। (अस्मिन्) इसके अधीन रहकर विद्वान् शिष्य जन (ब्रह्म) वेदज्ञान और (गिरः च) उपदेशयोग्य विद्या, वाणियों को (दधिरे) धारण करें। और (इन्द्रे अधि) उस विद्या-ऐश्वर्य के धारण करने कराने वाले गुरु की अध्यक्षता में (स्तोमः) उपदेश योग्य ज्ञान, वेदमय कोष, (वर्धत्) बड़ा भारी हो जाता है। (२) वह परमेश्वर, परम शक्ति ज्ञान से सम्पन्न, सनातन, अजर, अमर है। उसकी मन्त्रों से स्तुति करूं। वह महान् बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और वेद वाणियों, स्तुतियों को धारण करता है।

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा विद्वान् को (यज्ञः) परस्पर का सत्संग, आदर, मान, प्रतिष्ठा, और करादि देना, (वर्धात्) बढ़ाता है, (यं सोमः वर्धात्) जिसको सौम्य विद्वान् शिष्य, पुत्र, ऐश्वर्य, ओषधि अन्नादि, बढ़ाते हैं, और जिसको (ब्रह्म) बड़ा धन, बड़ा ज्ञान, बड़ा राष्ट्र तथा (गिरः) वाणियां और (मन्म उक्थ च) मनन करने योग्य उत्तम २ वचन भी (वर्धात्) बढ़ाते हैं। (अक्तोः यामन्) रात्रि के बीतने या सर्वप्रकाशक सूर्य के आगमन पर (एनम् उषसः) उस सूर्य को उषाओं के समान (उषसः)

शत्रु को दग्ध करने वा सन्तप्त, पीड़ित करने वाली सेनाएं (अक्तोः यामन्) तेजस्वी राजा के प्रयाण के समय में 'अक्तु' अर्थात् स्नेहयुक्त राष्ट्र के शासन काल में (वर्ध अह) निश्चय से बढ़ाता है । और (मासाः) मास (शरदः) वर्ष और (द्यावः) दिन में वर्ष के अवयव ये (इन्द्रं वर्धान्) उसके ऐश्वर्य को बढ़ावें । गुरु और शिष्य के पक्ष में—सोम शिष्य है, 'यज्ञ' अर्थात् ज्ञान का दान, वेदवाणियां, मननयोग्य वचन को बढ़ाते हैं । और प्रातः सायं, दिन रात, मास, ऋतु, वर्ष आदि विद्यार्थी को बालकवत् बढ़ावें ।

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(एव) इस प्रकार (सहसे) बल की वृद्धि के लिये (असामि जज्ञानं) पूर्ण होते हुए और (राधसे) आराधना और (श्रुताय च) श्रवण योग्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (वावृधानं) बढ़ते हुए (महाम्) महान् (उग्रम्) उत्तम पुरुष को (आ विवासेम) सब प्रकार परिचर्या करें (नूनम्) निश्चय से हम (अवसे) ज्ञान और रक्षा प्राप्त करने के लिये (वृत्र-तूर्येषु) विघ्नकारी अज्ञान, काम क्रोधादि व्यसनों और शत्रुओं का नाश करने के कार्यों के निमित्त भी हे (विप्र) विद्वन् ! उस महापुरुष को ही (आ विवासेम) आश्रय रूप से स्वीकार, उसकी सेवा करें । इति दशमो वर्गः ॥

[३९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ४, ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १ ॥

भा०—गुरु शिष्य प्रकरण । हे (देव) विद्या की अभिलाषा करने हारे विद्यार्थिन् ! तू (गृणते) उपदेश करने वाले गुरु के (गो-अग्राः इषः) उत्तम वाणियों से युक्त प्रेरणाओं अर्थात् उपदेशों को (युवस्व) प्राप्त कर और उस (मन्द्रस्य) स्तुति योग्य, (कवेः) क्रान्तदर्शी, (दिव्यस्य) ज्ञान प्रकाश में निष्ट, (वह्नेः) विद्या को धारण करने वाले, (विप्र-मन्मनः) विद्वान् मेधावी पुरुष के मनन योग्य ज्ञान को धारण करने वाले, (सचनस्य) सत्संग योग्य (मध्वः वचनस्य) मधुर वचन का सार (नः अपाः) हमें भी पान करा ।

अ॒यमु॑शा॒नः पर्य॒द्रिमु॒स्रा ऋ॒तधी॑तिभिर्ऋत॒युग्यु॑जा॒नः ।
रु॒जद॑रु॑ग्णं॒ वि व॒लस्य॒ सानु॑ प॒णीँर्वचो॑भिर॒भि यो॑ध॒दिन्द्रः॑ ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उशानः ऋतयुग् इन्द्रः ऋतधीतिभिः वलस्य-सानु रुजत्, पणीन् अभि योधत्) कान्तिमान्, तेजोयुक्त सूर्य वा विद्युत्, जलधारक किरणों से व्यापक मेघ के उच्च भाग को छिन्न भिन्न करता है, स्तुत्य व्यवहारों को गर्जनाओं सहित करता, है उसी प्रकार (अयम्) यह (उशानः) विद्याओं की कामना करने वाला, (युजानः) विद्याभ्यास में मनोयोग देने वाला विद्यार्थी जन (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान के भीतर योग देने वाला हो, और (ऋत-धीतिभिः) ज्ञान को धारण करने के उपायों से (अद्रिं परि उस्राः) मेघवत् ज्ञानवर्षण करने वाले गुरु के प्रति अपनी इन्द्रिय वृत्तियों को (युजानः) लगाने वाला हो । वह (इन्द्रः) अज्ञान का नाश करने में समर्थ विद्वान्, गुरु (अरुग्णं) न टूटे हुए (वलस्य) व्यापक (सानु) अज्ञान के प्रबल अंश को (रुजत्) छिन्न भिन्न करे, विद्या के कठिन मर्मों को खोले । वह (वचोभिः) उत्तम वचनों द्वारा (पणीन् प्रति) अपने विद्यार्थियों को लक्ष्य कर उनके प्रति (अभि योधत्) युक्ति प्रतियुक्तियों से आक्षेप-प्रत्याक्षेप करे, वादविवाद द्वारा सिद्धान्तों की शिक्षा दे । अर्थात् गुरु स्वयं वीर के

समान विद्यार्थी के लिये सब कठिन स्थलों को सरल कर दिया करे। तो साथ ही (अयम् उशानः) यह गुरु भी (ऋत-युग्) सत्य ज्ञान का योग कराने वाला होकर (ऋत-धीतिभिः) सत्य ज्ञान धारण कराने वाली क्रियाओं से (अद्रिं परि उस्राः युजानः) अपने अभीत, निर्भय शिष्य के प्रति किरणोंवत् वाणियों को प्रदान करता हुआ रहे।

अयं द्योतयदद्युतो व्यक्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, अज्ञान को नाश करने और ज्ञान के देनेहारे ! सूर्यवत् तेजस्विन् गुरो ! (इन्द्रः अक्तून् दोषा वस्तोः शरदः वि अद्योतयत्) जिस प्रकार चन्द्र रातों को सदा सब वर्षों में ही प्रकाशित करता है, उसी प्रकार (अयम्) यह (इन्दुः) चन्द्रवत् आल्हादकारी गुरु भी (दोषा वस्तोः) रात दिन (शरदः) छहों शरद आदि ऋतुओं में भी (अद्युतः अक्तून्) ज्ञान की दीप्ति से रहित रात्रिवत् अज्ञात विद्या-स्थलों को (वि अद्योतयत्) विशेष रूप से प्रकाशित करा करे। जिस प्रकार उषाएं (अह्नां केतुम् अदधुः) दिनों को चमकाने वाले सूर्य को धारण करती हैं उसी प्रकार (उषासः) विद्या की कामना करने वाले जितेन्द्रिय विद्यार्थी जन सूर्यवत् तेजस्वी, (अह्नां) न ताड़ना योग्य शिष्यों को (केतुम्) ज्ञान देने वाले गुरु को (अदधुः) धारण करें, उसको गुरुवत् स्वीकार करें। और जिस प्रकार सूर्य (शुचि-जन्मनः उषसः चकार) शुद्ध पवित्र जन्मवाली उषाओं को उत्पन्न करता है उसी प्रकार वह गुरु भी (उषसः) विद्या के इच्छुक शिष्यों के (शुचि-जन्मनः चकार) शुद्ध पवित्र विद्या माता में शुद्ध पवित्र जन्म ग्रहण करने वाला बना देता है, अर्थात् विद्वान् बना कर उनको ज्ञानमय पवित्र जन्म देता है।

अयं रोचयदरुचो रुचानो३यं वासयद्व्यृ१तेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४ ॥

भा०—(रुचानः अरुचः रोचयत्) जिस प्रकार सूर्य स्वयं कान्ति से चमकता हुआ कान्ति से रहित चन्द्र, पृथिवी आदि लोकों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार (अयम्) यह विद्वान् उपदेष्टा गुरु, स्वयं (रुचानः) तेजस्वी होकर (अरुचः) विद्या प्रकाश से रहित जनों को (रोचयत्) विद्या प्रकाश से प्रकाशित करे। (अयं) यह (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान प्रजाओं के समान ही नवीन विद्यार्थी जनों को (ऋतेन) सत्योपदेश के निमित्त (वासयत्) अपने अधीन बसावे, रखे। (अयम्) वह (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को ज्ञान से पूर्ण करने हारा विद्वान् (स्वः विदा नाभिना) तेजोमय, उपदेश को प्राप्त करने वाले 'नाभि' अर्थात् सम्बन्ध से (ऋत-युग्भिः) सत्य ज्ञान का योग करा देने वाले (अश्वैः) उत्तम विद्वान् सहायक अध्यापकों द्वारा (ईयते) आगे बढ़ता है।

नू गृ॒णा॒नो गृ॒ण॒ते प्र॑त्न राज॒न्निषः॑ पिन्व वसु॒देया॑य पू॒र्वीः।
अ॒प ओष॑धीरवि॒षा वना॑नि॒ गा अर्व॑तो॒ नॄनृ॒चसे॑ रिरीहि ॥५॥११॥

भा०—हे (प्रत्न राजन्) दीर्घायु ! विद्या प्रकाश से प्रकाशयुक्त ! विद्वन् ! हे राजन् ! तू (नू) अवश्य (गृणते गृणानः) प्रार्थना करने वाले को विद्योपदेश प्रदान करता हुआ (वसुदेयाय) द्रव्य देने में समर्थ जनों को भी (पूर्वीः इषः पिन्व) पूर्व की वेद वाणियों से तृप्त किया कर। और तू (ऋचसे) उत्तम काम के लिये (अपः) उत्तम जल (ओषधीः) नाना ओषधियां, (अविषा) विषों से रहित (वनानि) जल और वन के पदार्थ तथा (गाः अर्वतः) गौ और अश्व आदि पशु (रिरीहि) देना चाहा कर। इत्येकादशो वर्गः ॥

[४०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक् पंक्तिः । ५ स्वराट् पंक्तिः । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन् एवं विद्वन्! (तुभ्यं सुतः मदाय) जिस प्रकार उत्पन्न पुत्र हर्ष लाभ के लिये होता है उसी प्रकार यह उत्पन्न प्रजाजन, तथा ऐश्वर्य समूह तेरे ही हर्ष, प्रसन्नता एवं सुख के लिये है। तू उसका (पिब) पालन कर और ऐश्वर्य का उपभोग अन्न के समान किया कर। अर्थात् जैसे ओषधि आदि अन्न रस का पान पुष्टि के लिये किया जाता है उसी प्रकार प्रजा की समृद्धि का उपभोग अपनी शक्ति को पुष्ट करने के लिये कर, भोग विलासादि व्यसन तो उसको पुष्ट न करके निर्बल कर देते हैं अतः राजा का व्यसनों द्वारा भोग-विलास करना उचित नहीं है। हे राजन्! इसी प्रकार (तुभ्यं सुतः मदाय) तेरा राज्याभिषेक हर्ष के लिये हो, और तू प्रजा का (पिब) पालन कर, (अव स्य) तू प्रजा को दुःखों से छुड़ा। (सखाया हरी) मित्रवत् विद्यमान (हरी) स्त्री पुरुषों वा राजा प्रजा के वर्गों को रथ में जुते अश्वों के समान (वि मुच) विशेष रूप से बन्धनमुक्त, स्वतन्त्र जीवनवृत्ति वाला कर। (उत) और तू (गणे) प्रजागण के ऊपर (आ निषद्य) आदर पूर्वक धर्मासन पर विराज कर (प्र गाय) उत्तम २ उपदेश किया कर और उत्तम रीति से अज्ञाएं दिया कर। (अथ) और (गृणते यज्ञाय) उपदेश करने वाले सत्संग और आदर करने योग्य पुरुष को (वयः धाः) उत्तम अन्न, और बल प्रदान कर।

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२॥

भा०—हे (विरप्शिन्) महान्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (जज्ञानः) प्रकट या प्रसिद्ध होता हुआ तू (मदाय) हर्षित और तृप्त पूर्ण होने के लिये और (क्रत्वे) अपने कर्म सामर्थ्य को बढ़ाने के

लिये (यस्य अपिबः) जिस ऐश्वर्य का तू उपभोग और पालन करता है (अस्य पिब) बाद में भी तू उसी राष्ट्र के ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करता रह। (अस्यै ते) इस तेरी वृद्धि के लिये ही (गावः) गौएं, वाणियें और भूमियें (नरः) उत्तम नायक, (आपः) राष्ट्र में जल, मेघ, कूप, नदी, तडाग आदि, तथा आप्त प्रजाजन, (अद्रिः) मेघ, पर्वत तथा शस्त्रबल सब ।(तम् इन्दुं) उस ऐश्वर्य को (पीतये) पालन और उपभोग करने के लिये ही। (सम् अह्मन्) एकत्र प्राप्त हों।

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ॥
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुवितायं महे नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अग्नौ समिद्धे) अग्नि के खूब प्रदीप्त हो जाने के समान (अग्नौ) अग्रणी नायक के (सम-इद्धे) अति प्रज्वलित, तेजस्वी हो जाने पर (सोमे सुते) राष्ट्र ऐश्वर्य के अभिषेक द्वारा प्राप्त हो जाने पर हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (त्वा) तुझको (वहिष्ठाः) अपने ऊपर धारण करने वाले वा राज्य-भार को वहन करने में अत्यन्त कुशल (हरयः) विद्वान् मनुष्य उत्तम अश्वों के समान ही (त्वा वहन्तु) तुझे सन्मार्ग पर ले जावें। मैं प्रजाजन (त्वायता मनसा) तुझे चाहने वाले चित्त से (जोहवीमि) निरन्तर पुकारता हूं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले ! तू (नः महे सुविताय) हमारे बड़े भारी उत्तम शासन वा ऐश्वर्य भाव की वृद्धि करने के लिये हमें (आ याहि) प्राप्त हो।

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (शश्वत्) निरन्तर (उशता) प्रजा को चाहने वाले (मनसा) चित्त से (आ याहि) प्राप्त हो। तू (महा मनसा) बड़े उदार चित्त ज्ञान से युक्त होकर (सोम-पेयम्)

पुत्र वा शिष्यवत् पालन करने योग्य राष्ट्र-ऐश्वर्य रूप रक्षायोग्य धन को (ययाथ) प्राप्त कर । (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) उत्तम वेदोपदेशों को स्वयं शिष्यवत् (उप श्रृणवः) ध्यानपूर्वक श्रवण कर । (अथ) और (यज्ञः) सत्संग, आदर सत्कार तथा प्रजा का कर आदि देना, और दानवान् प्रजाजन भी (ते तन्वे) तेरे शरीर और विस्तृत राष्ट्र के लिये (वयः धात्) उत्तम अन्न और बल प्रदान करे, तुझे पुष्ट करे ।

यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥५॥१२

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (यत्) जब (पार्ये) पालन करने योग्य (दिवि) तेजस्वी, और सबको रुचने वाले कमनीय, राज्यपद वा आसन पर और (यत्) जब (ऋधक् वा) उससे पृथक् भी हो, (यद् वा) अथवा जब तुम (स्वे सदने) अपने आसन वा गृह में (यत्र वा असि) या जहां कहीं, जिस स्थिति में भी हो (अतः) वहां से ही हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! आप (नियुत्वान्) लक्षों सेनाओं, नियुक्त भृत्यों तथा अश्व सैन्य के स्वामी होकर (स-जोषाः) प्रीतिपूर्वक (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् मनुष्यों सहित (अवसे) रक्षा करने के लिये (नः यज्ञं पाहि) हमारे यज्ञ, राष्ट्र का पालन कर । इति द्वादशो वर्गः ॥

[४१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवन् ! शस्त्र सैन्य के स्वामिन् ! (इन्दवः सुतासः) ऐश्वर्यवान्, प्रेम दया से आर्द्र प्रजाजन, उत्पन्न पुत्र के समान होकर (तुभ्यं पवन्ते) तेरी वृद्धि के लिये ही यत्न करते हैं। तू (अहेडमानः) उन पर क्रोध और अनादर का भाव न करता हुआ (यज्ञं उप याहि) उनके किये आदर सत्कार तथा सत्संग को प्राप्त हो। (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यज्ञियानाम् प्रथमः) सत्कार योग्य पुरुषों में से सबसे प्रथम तू ही (स्वम् ओकः) अपने स्थान को (गावः नः) शासित भूमियों, प्रजाओं के समान ही (अच्छ आगहि) प्राप्त हो। जैसे गौवें स्वभावतः अपनी गोशाला में आ जाती हैं उसी प्रकार तू भी सौम्य भाव से अपने पद को प्राप्त हो अथवा जैसे मनुष्य अपने स्थान को आता है वैसे (स्वम् ओकः गावः न) भूमियों को अपना ही आश्रय जान, उन्हें प्राप्त हो।

या ते॑ काकुत्सुकृ॑ता या वरि॑ष्ठा यया॒ शश्व॒त्पिबा॑सि॒ मध्व॑ ऊ॒र्मिम् ।
तया॑ पाहि॒ प्र ते॑ अध्व॒र्युर॑स्था॒त्सं ते॒ वज्रो॑ वर्ततामिन्द्र ग॒व्युः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे अज्ञाननाशक स्वामिन् ! विद्वन् ! (या ते) जो तेरी (काकुत्) वाणी (सुकृता) उत्तम रीति से सम्पादित सु-अभ्यस्त, सुपरिष्कृत है (या) जो (वरिष्ठा) सबसे श्रेष्ठ, है (यया) जिससे तू (शश्वत्) सदा (मध्वः ऊर्मिम्) मधुर, ज्ञान के सार भाग का (पिबसि) स्वयं ग्रहण करता, और अन्यों को भी पान करता है, तू (तया पाहि) उससे हमारी रक्षा कर। (ते) तेरे लिये (अध्वर्युः) कभी नाश न करने वाला वीर जन (ते प्र अस्थात्) तेरी वृद्धि के लिये प्रतिष्ठित हो और आगे बढ़े। हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (ते वज्रः) तेरा वज्र, शत्रुसंहारक शस्त्रबल भी (गव्युः) राज्य भूमि का हितकारी होकर (सं वर्त्तताम्) उत्तम मार्ग से चले।

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! हे (स्थातः) स्थिर रहने वाले ! तू (यस्य ईशिषे) जिसका तू स्वामी होता है और (यः ते अन्नम्) जो तेरा भोग्य अन्न है (एषः) वह (द्रप्सः) सबको लुभाने वाला, वा (वृषभः) उत्तम सुखों को वर्षण करने वाला, (सोमः) ऐश्वर्य अथवा (द्रप्सः) द्रुत गति से जाने वाला, (वृषभः) बलवान् (विश्व-रूपः) नाना प्रजाजनों से युक्त, (सोमः) उत्पन्न पुत्रवत् प्रिय, राष्ट्र (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वृष्णे) बलवान् तेरे लिये ही (सम् अकारि) अच्छी प्रकार अन्नवत् संस्कार किया जावे, हे (उग्र) बलशालिन् ! तू (एतं पिब) उसका पालन और उपभोग कर ।

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (असुतात्) न उत्पन्न हुए की अपेक्षा (सुतः सोमः) उत्पन्न हुए पुत्र वा शिष्य के तुल्य यह अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य, अभिषिक्त होकर प्राप्त राज्य की अपेक्षा से (वस्यान्) बहुत अधिक धनैश्वर्य से सम्पन्न है तथा अधिक प्रजाजनों को बसाने हारा है और वह (चिकितुषे) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (रणाय) उत्तम सुख प्राप्त करने और शत्रुनाशक संग्राम करने के लिये भी (श्रेयान्) अति श्रेष्ठ है । हे (तितिर्वः) शत्रु नाश करने हारे बलवन् ! राजन् ! तू (एतं यज्ञं उपयाहि) उस यज्ञ अर्थात् पूज्य पद, सुसंगत राज्य को प्राप्त हो । तेन उससे (विश्वाः) समस्त (तविषीः) बलवती सेनाओं को (आपृणस्व) सब प्रकार से पालन और पूर्ण कर ।

ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ५।१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! बलवन् ! शत्रुहन्तः ! प्रभो ! (त्वा) तुझे हम (ह्वयामसि) बुलाते हैं । (सोमः) अन्न जिस प्रकार (तन्वे) शरीर के पोषण के लिये होता है । और (सोमः तन्वे) जिस प्रकार पुत्र या शिष्य वंश परम्परा के विस्तार के लिये होता है, उसी प्रकार यह पुत्रवत् राष्ट्र भी (ते तन्वे अरम्) तेरे विशाल शरीर वा राज्य विस्तार के लिये प्रदीप्त (भवाति) हो । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्वाङ् आयाहि) सब के समक्ष आ । अथवा (अर्वाङ्) अश्व सैन्य को प्राप्त करके (आ याहि) सब ओर प्रयाण कर, हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करनेहारे ! तू (अस्मान्) हम सबों को (सुतेषु) पुत्रवत् आह्लादकारक अभिषेकादि कर्मों के अवसरों वा ऐश्वर्यों के निमित्त सदा आनन्दित कर और (पृतनासु) संग्रामों के अवसरों और (विक्षु) प्रजाओं में भी (अस्मान् प्र अव) हमारी अच्छी प्रकार रक्षा कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[४२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडुष्णिक् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ४ भुरिगनुष्टुप् ॥ चतुरृर्चं सूक्तम् ॥

प्रत्य॑स्मै॒ पिपी॑षते॒ विश्वा॑नि वि॒दुषे॑ भर ।
अ॒र॒ङ्ग॒माय॒ जग्म॒येऽप॑श्चाद्दघ्वने॒ नरे॑ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे प्रजाजन ! तू (अस्मै) उस (पिपीषते) पान और उत्तम पालन करने की इच्छा करने वाले, (अरंगमाय) विद्या और संग्राम के पार जाने वाले, (अपश्चाद्-दध्वने) पीछे पैर न रखने वाले (जग्मये) आगे बढ़ने हारे, विज्ञानवान् वीर और (विदुषे) विद्वान् पुरुष के लिये (विश्वानि) सब प्रकार के पदार्थ (प्रति भर) ला ।

एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (एनं) इस (ऋजीषिणम्) ऋजु, सरल, धर्म मार्ग पर प्रजाजन को चलाने में समर्थ, तथा ऋजीष, अर्थात् बल वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता (सोमपातमं) उत्पन्न पुत्रवत् प्रजा तथा ऐश्वर्य के उत्तम पालक पुरुष को, (सुतेभिः) नाना पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र हृदय (अमत्रेभिः) सहायकारी (सोमेभिः) सौम्य गुण युक्त पुरुषों सहित (प्रति एतन) प्राप्त होवो ।

यदीं सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रति भूषथ ।
वेद विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३ ॥

भा०—(यदि) यदि आप लोग (सुतेभिः) उत्तम पदों पर अभिषिक्त (इन्दुभिः) दयार्द्र, तेजस्वी (सोमेभिः) उत्तम शासकों, ऐश्वर्यों वा गुणों सहित उस राजा को (प्रति भूषथ) सुभूषित करें तो वह (मेधिरः) शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, बुद्धिमान्, तथा अन्नादि सम्पन्न पुरुष (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र को (वेद) जाने, और प्राप्त करे । वह (धृषत्) शत्रुओं का पराजय करने हारा (तम्-तम् इत्) आपके दिये उस २ ऐश्वर्यादि पदार्थ को (आ ईषते) आदरपूर्वक प्राप्त करे ।

अस्मा अस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजाजन की हिंसा न करने वाले प्रजापालक जन ! तू (अस्मे अस्मे) इस इस प्रजाजन के लिये (अन्धसः सुतम्) अन्न से उत्पन्न ऐश्वर्य को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर और (समस्य) समस्त (जेन्यस्य) विजय करने योग्य (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (अभिशस्तेः) शस्त्र प्रहार से (कुवित्) बहुत बार, बारबार भी (अव-

स्परत्) हमारी रक्षा कर। अथवा, हे (अध्वर्यो) अहिंसक राजन्! तू (अस्मे अस्मे सुतम् प्र भर) उस २ नाना प्रजाजन के लिये उत्तम ऐश्वर्य अच्छी प्रकार प्राप्त कर। और (समस्य जेन्यस्य शर्धतः) समस्त विजय करने वाले (अभिशस्तेः) प्रशंसनीय बल को भी (अन्धसः) अन्न की (कुवित्) बहुत प्रकारों से (अवस्परत्) पालना कर। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

यस्य॒ त्यच्छम्ब॑रं॒ मदे॒ दिवो॑दासाय र॒न्धय॑ः ।
अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यस्य मदे) जिसके हर्ष में (दिवः दासाय) ज्ञान और तेज के देने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये तू (त्यत्) उस (शम्बरम्) मेघ के समान गर्जते शत्रु को (रन्धयः) वश करता है (सः अयम्) वह यह (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) बलकारक अन्नादि ओषधि रस के तुल्य ऐश्वर्य (ते) तेरे ही लिये है। तू (पिब) उसे पान वा पालन कर।

यस्य॑ तीव्र॒सुतं॒ मदं॒ मध्य॒मन्तं॑ च॒ रक्ष॑से ।
अ॒यं स सोम॑ इन्द्र ते सु॒तः पिब॑ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (यस्य) जिसके (तीव्र-सुतम्) तीव्र, वेग से कार्य करनेवाले, अप्रमादी पुरुषों से शासित, (मदम्) हर्षदायक (मध्यम् अन्तम्) राष्ट्र के मध्य और सीमाप्रान्त की भी तू (रक्षसे) रक्षा करने में समर्थ है (अयः सः सोमः) वह यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा प्रजाजन (ते सुतः) तेरे ही पुत्रवत् हैं। तेरे लिये ही वह (सुतः) अन्न वा ओषधि रसवत् तैयार वा अभिषेक किया गया है। तू उसका (पिब)

पुत्रवत् पालन कर वा, ओषधि अन्नादिवत् उपभोग कर। उससे अपनी रक्षा और पोषण कर।

यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळहा अवासृजः।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! राजन् ! (यस्य मदे) जिसके आनन्द, हर्ष के लिये (अश्मनः अन्तः) शस्त्र बल के भीतर (दृढ़ाः) दृढ़तया सुरक्षित (गाः) भूमियों को तू (अवासृजः) अपने अधीन शासन करता है (अयं) यह (सः) वह (सोमः) ओषधि रसवत् ऐश्वर्य युक्त राज्य है (ते सुतः) तेरे लिये ही मुझे अभिषेक प्राप्त है। तू (पिब) उसका पालन और उपभोग कर।

यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्य) जिसके (अन्धसः) प्राण धारण करने वाले, अन्नवत् पोषक राष्ट्र के बल पर (मन्दानः) तू अति हृष्ट प्रसन्न होता हुआ, (माघोनं शवः) ऐश्वर्यवान् होने योग्य बल को (दधिषे) धारण करता है (अयं सः सोमः) यह वह ऐश्वर्यमय राष्ट्र (ते सुतः) तेरा पुत्रवत् है। तू (पिब) उसका पालन कर। इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[४४]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृदनुष्टुप्। २, ५ स्वराडुष्णिक्। ६ आसुरी पंक्तिः। ७ भुरिक् पंक्तिः। ८ निचृत्पंक्तिः। ९, १२, १६ पंक्तिः। १०, ११, १३, २२ विराट् त्रिष्टुप्। १४, १५, १७, १८, २०, २४ निचृत्त्रिष्टुप्। १९, २१, २३ त्रिष्टुप् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १ ॥

भा०—हे (रयिवः) धन ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हे (स्वधा-पते) अन्न और धन धारण करने वाले बल के पालक ! (यः सोमः) जो ऐश्वर्य (ते) तेरा (रयिन्तमः) सबसे उत्तम और (द्युम्नैः) नाना प्रकार के धनों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यंत समृद्ध है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सुतः) सम्पन्न (सः ते मदः अस्ति) वह तुझे आनन्द देने वाला हो।

यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शग्म) बहुत से सुखों से पूर्ण प्रभो ! राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शग्मः) शान्तिदायक, (सोमः) ऐश्वर्य, युक्त राष्ट्र (मतीनाम्) मननशील, बुद्धिमान् पुरुषों को (रायः दामा) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है हे (स्वधापते) हे अन्नपते ! वह सब राष्ट्रैश्वर्य (ते सुतः) तेरे लिये समृद्ध होकर (मदः अस्ति) तुझे हर्षदायक हो।

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस के बल से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (शवसा) बल से (वृद्धः न) बढ़े हुए के समान और जिस ऐश्वर्य से तू (स्वाभिः ऊतिभिः) अपनी रक्षाकारिणी सेनाओं से (तुरः न) शत्रुओं को हिंसक के समान मारने वाला होता है हे (स्वधापते) स्वयं अपने ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति के पालक ! (सः सोमः) वह तेरा अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्य वा राष्ट्रधन (सुतः) तुझे प्राप्त हो और वह (ते मदः अस्ति) तुझे अति हर्षदायक हो।

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (त्यम् उ) उस (अप्रहणं) अन्याय से किसी को भी दण्डित न करने वाले, (शवसः पतिम्) समस्त सैन्य-बल और ज्ञान के पालक, (इन्द्रम्) दुष्टों के नाशक, तत्वदर्शी, (विश्वसाहम्) सब को पराजय करने वाले, (मंहिष्ठं) अति दानशील, (विश्वचर्षणिं) समस्त जगत् के द्रष्टा, और समस्त मनुष्यों के स्वामी (वरं) नेता, पुरुष, प्रभु को मैं (इन्द्रं गृणीषे) इन्द्र नाम से उपदेश करता हूं । वही सबका स्तुत्य, सर्वैश्वर्यवान् और आश्रय करने योग्य है ।

यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(यं) जिसके (तुरस्य) शत्रुहिंसक सैन्य-बल और (राधसः) कार्यसाधक भृत्य वर्ग और ऐश्वर्य के (पतिम्) पालक पुरुष को (गिरः) स्तुति वाणियां वा उत्तम वाग्मी पुरुष (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा जन, तथा स्त्री और पुरुष वर्ग दोनों (तत् इत् शुष्मं नु) उस ही शत्रुपोषक, बलशाली पुरुष की (सपर्यतः) सेवा करते हैं और (अस्य इत्) उसके ही (नु शुष्मं वर्धयन्ति) बल को नित्य बढ़ाया करते हैं । इति षोडशो वर्गः ॥

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य) जिस बलवान् पुरुष के (ऊतयः) रक्षा करने के साधन, शस्त्र-अस्त्र बल आदि उपाय (विपः) स्वयं ज्ञानवान् पुरुषों के समान ज्ञानपूर्वक चलते हैं और (यत्) जो (सक्षितः) एकही स्थान

पर रहकर (वि रोहन्ति) विशेष रूप से वृद्धि पाते हैं। (तत्) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रु नाशक स्वामी के (उक्थस्य) प्रशंसनीय बल के (बर्हणा) बढ़ने से ही (वः उप-स्तृणीषणि) आप लोगों की भी उत्तम वचन योग्य, छत के समान रक्षक या उपस्तरण बिछौने के समान सुखदायक हो।

अविंदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्।
ससवान्त्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७॥

भा०—(नवीयान्) सब से अधिक स्तुत्य पुरुष (पपानः) राष्ट्र का पालन करता हुआ (मित्रः) प्रजा को मरण से बचाने वाला और सबका स्नेही होकर (दक्षं अविदत्) बल प्राप्त करे और (वस्वः अचैत्) नाना धनों का सञ्चय करे। (वह ससवान्) उत्तम अन्न का स्वामी होकर (स्तौलाभिः धौतरीभिः) बड़ी २, शत्रुओं को कंपा देने वाली सेनाओं द्वारा (उरुष्या) प्रजा वा राष्ट्र की रक्षा करने की इच्छा से (सखिभ्यः) अपने मित्र वर्गों का भी (पायुः अभवत्) पालक हो।

ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन्।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥८॥

भा०—(ऋतस्य पथि) सत्य के मार्ग में रह कर (वेधाः) विधान करने में कुशल, विद्वान् न्यायपति (अपायि) राष्ट्र के स्वामी के समान पालन करे। और (देवासः) कामनाशील सभी मनुष्य (श्रिये) अपनी लक्ष्मी को प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये (मनांसि) अपने चित्त (अक्रन्) बनाये रक्खें। वे सदा उत्तम सम्पदा पाने और बढ़ाने की इच्छा करते रहें। (वेन्यः) कान्तिमान् तेजस्वी, राज्य और शासन बल की कामना करने हारा विजिगीषु पुरुष सूर्य के समान (महः वचोभिः) बड़े, उत्तम वचनों से (नाम दधानः) अपनी ख्याति धारण करता हुआ, (दृशये) देखने

योग्य अपने (वपुः) सुन्दर रूप को सूर्यवत् ही (वि आवः) विशेष रूप से प्रगट करे।

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि॥९॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (अस्मे) हम में (द्युमत्तमं) उत्तम तेज, और विद्या प्रकाश से युक्त (दक्षं) बल (धेहि) धारण करा। और (जनानां) मनुष्यों के बीच में (पूर्वीः अरातीः) पूर्व की विद्यमान न देने की तुच्छ, कृपण आदतों को (सेध) दूर कर। और (शचीभिः) उत्तम बुद्धियों, शक्तियों तथा वाणियों द्वारा (वर्षीयः वयः) अति उत्तम, बहुत वर्षों तक स्थिर रहने वाला जीवन और बल (कृणुहि) कर, जिससे प्रजाएं दीर्घायु हों। और (धनस्य) धन के (सातौ) न्यायपूर्वक विभाग करने के निमित्त तू (अस्मान् अविड्ढि) हम में प्रवेश कर, हम पर अध्यक्ष होकर रह।

इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः॥ १०॥ १७॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! धन के स्वामिन्! (इन्द्र) हे शत्रुहन्तः! (हरिवः) हे मनुष्यों के स्वामिन्! (वयम्) हम लोग (तुभ्यम् इत्) तेरे ही हितैषी (अभूम) हों। (तू दात्रे) दानशील पुरुष के लिये (मा वि वेनः) कभी विपरीत कामना मत कर। (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में से कोई भी दूसरा (आपिः) तुझ से अतिरिक्त बन्धु (नकिः ददृशे) दिखाई नहीं देता। (किम् अङ्ग) हे स्वामिन्! और क्या कहें? (त्वा) तुझको सब विद्वान् जन (रध्र-चोदनं आहुः) अपने वशीभूत, अधीन व्यक्तियों को उत्तम शिक्षा देने वाला बतलाते हैं। इति सप्तदशो वर्गः॥

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम।
पूर्वीष्ट इन्द्र निःषिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः॥११॥

भा०—(हे वृषभ) बलवान् पुरुष ! तू (नः) हमें (जस्वने) नाश कर देने वाले दुष्ट पुरुष के हाथ (मा ररीथाः) मत पड़ने दे। (ते रेवतः) तुझ ऐश्वर्यवान् पुरुष के (सख्ये) मित्रभाव में रहते हुए हम लोग (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों, और न एक दूसरे का विनाश करें। (जनेषु) मनुष्यों में हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (पूर्वीः) पूर्व से चली आई, सनातन (निःषिधः) बुरे मार्ग से निषेध करने वाली मर्यादाओं को (ररीथाः) हमें बार २ बतला। (असुष्वीन्) जो ऐश्वर्य की वृद्धि और सवन, यज्ञ, उपासना, कर आदि दान, और स्नान तथा तेरा अभिषेक न करने वाले जन हैं उनको (जहि) दण्डित कर। (अपृणतः) अपने सन्तानों को पालन पोषण न करने वाले तथा अपने वचन व्रत का पालन न करने वालों को (प्र वृह) उखाड़ डाल।

उद॒भ्राणी॑व स्त॒नय॑न्निय॒र्तीन्द्रो॒ राधां॒स्यश्व्या॑नि॒ गव्या॑।
त्वम॑सि प्र॒दिवः॑ का॒रुधा॑या॒ मा त्वा॑दा॒मान॒ आ द॑भन्म॒घोनः॑॥१२॥

भा०—(इन्द्रः अभ्राणि इव) जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् मेघों को गर्जता हुआ ऊपर उठाता है इसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (स्तनयन्) गर्जता हुआ। (अश्वानि गव्यानि राधांसि) अश्वों, गौवों और भूमियों के धनों को (उत् इयर्ति) उन्नत करता है। हे राजन् ! (त्वम्) तू (कारुधायाः) विद्वानों और शिल्पियों का धारण, पोषण करने वाला (प्र-दिवः) सबके द्वारा कामना करने योग्य (असि) है। (अदामानः) अदानशील, बन्धनरहित, उच्छृंङ्खल पुरुष (त्वा) तुझे और तेरे (मघोनः) राज्य में ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (मा दभन्) विनाश न करें।

अध्व॑र्यो वी॒र प्र म॒हे सु॒ताना॒मिन्द्रा॑य भर॒ स ह्य॑स्य॒ राजा॑।
यः पू॒र्व्याभि॑रु॒त नूत॑नाभिर्गी॒र्भिर्वा॑वृ॒धे गृ॑ण॒तामृषी॑णाम् ॥१३॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा का नाश करने वाले ! अहिंसक (वीर)

वीर पुरुष ! तू (महे) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (सुतानाम्) ऐश्वर्यों को अथवा उत्पन्न पुत्रों के समान राष्ट्र में उत्पन्न प्रजाओं को (प्र भर) अच्छी प्रकार धारण कर । (सः) वह तू (हि) निश्चय से (अस्य) इस राज्य और समस्त ऐश्वर्य का (राजा) राजा है । (यः) जो तू (पूर्व्याभिः) पूर्व की (उत) और (नूतनाभिः) नयी २ (ऋषीणाम्) तत्वदर्शी (गृणताम्) उपदेष्टा पुरुषों की (गीर्भिः) वाणियों से (ववृधे) अधिक वृद्धि प्राप्त करे ।

अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै॥१४॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः वृत्राणि जघान) सूर्य या विद्युत् मेघों को आघात करता है और (मदे) तृप्तिकारक, जल के आधार पर (पुरु वर्पांसि करोति) ओषधि वनस्पतियों के नाना प्रकार के रूपों को उत्पन्न करता है और विद्वान् पुरुष उसी प्रकार (वीराय) विविध सुखों या जलों के दाता (शिप्रिणे) बलवान् के पान के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधुर पदार्थों से युक्त ओषधि समूह को अग्नि में आहुति करता है उसी प्रकार (विद्वान् इन्द्रः) ज्ञानवान् राजा (अस्य मदे) इस राष्ट्र के तृप्तिकारक हर्षजनक ऐश्वर्य या दमन-शासन के बल पर ही (वृत्राणि) विघ्नकारी समस्त शत्रुओं को (अप्रति) विना रोक के (जघान) नाश करे । और (पुरु वर्पांसि) बहुतसे प्रजा के शरीरों की रक्षा करे । हे प्रजावर्ग तू (अस्मै) इस (शिप्रिणे) मुकुटधारी, समुख (वीराय) वीर पुरुष के (पिबध्यै) पान करने के लिये (मधुमन्तं सोमं) मधु से युक्त ओषधि रस के समान (तम्) वह नाना अन्नादि युक्त ऐश्वर्य (प्रहोषि) अच्छी प्रकार प्रदान कर ।

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः॥१५॥१८

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और शत्रुहन्ता पुरुष ही (सुतं पाता) उत्पन्न हुए अन्न आदि ऐश्वर्य का भोक्ता तथा प्रजाओं का पुत्रवत् पालनकर्त्ता (अस्तु) हो। वही (सोमं) उत्तम ऐश्वर्य का भोक्ता हो। वह (मन्दसानः) अति हृष्ट होकर (वज्रेण) शस्त्रबल से (वृत्रं) मेघ को सूर्यवत् अपने बढ़ते शत्रु को (हन्ता) नाश करने वाला हो। वह (परावतः चित्) दूर देश से भी (यज्ञं) यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों तथा पूज्य सत्संग योग्य पुरुष को (अच्छ गन्ता) प्राप्त होने वाला हो। वह (वसुः) प्रजा के बसाने हारा (कारु-धायाः) विद्वानों और शिल्पियों का पोषण करने वाला होकर (धीनाम्) उत्तम ज्ञानों और उत्तम कर्म कौशलों वा धन्धों का भी (अविता) रक्षक हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

इ॒दं त्यत्पात्र॑मिन्द्र॒पान॒मिन्द्र॑स्य प्रि॒यम॒मृत॑मपायि।
मत्स॒द्यथा॑ सौमन॒साय॑ दे॒वं व्य१॒॑स्मद् द्वेषो॑ युयव॒द्व्यंहः॑ ॥१६॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (इदं) यह शरीर ही (प्रियम्) प्रिय (इन्द्र-पानं पात्रम्) जीव और जीव को प्राप्त इन्द्रियादि भोगों के उपभोग का साधन है। इससे ही वह साधना करके (अमृतम् अपायि) अमृत मोक्ष रस का भी पान करता है और वह (देवं प्रति सौमनसाय मत्सत्) प्रभु परमेश्वर के प्रति शुभ चित्त रहने के लिये ही चाहता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के स्वामी राजा का (इदं त्यत्) यह भी एक अद्भुत उत्तम (इन्द्र-पानम्) ऐश्वर्यपद की रक्षा करने वाला (पात्रं) पालक साधन है जिससे (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) अमृत तुल्य सुख (अपायि) प्राप्त किया जाता है। वह प्रजाजन (देवं) उस तेजस्वी पुरुष को (सौमनसाय) शुभ चित्त बनाये रखने के लिये (मत्सत्) सदा आनन्दित किया करे। वह राजा भी (अस्मत्) हम प्रजाजन से (द्वेषः) द्वेष भाव को (वियुयवत्) पृथक् करे और वह हम से (अंहः वि) पाप को भी दूर करे।

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान्परा च इन्द्र प्र मृणा जही च॥१७॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! तू (मन्दानः) अति हर्षयुक्त, उत्साहवान् होकर (एना) पूर्व कहे राष्ट्रपालक बल से (शत्रून् जहि) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों को दण्डित कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जामिम्) अपने सम्बन्धी और (अजामिम्) सम्बन्ध रहित (अमित्रान्) स्नेह न करने वालों को तथा (अभि-सेनान्) सेनारहित सामने आने वाले और (आ-देदिशानान्) सन्मुख सेनाओं वा प्रजाओं पर आदेश चलाने वाले शत्रुओं को भी (परा जहि) दण्डित कर, दूर हटा । और हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! उनको (प्र मृण च) अच्छी प्रकार नाश कर और (प्र जहि च) खूब दण्ड दे, मार ।

आ सुष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८॥

भा०—हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (नः) हमारी (आसु पृत्सु) इन संग्रामों में वा वीरजनों की सेनाओं के बल पर (अस्मभ्यं) हमारे सुख के लिये (महि) बहुत बड़ा (सुगं) सुख जान कर (वरिवः) धनैश्वर्य (कः) पैदा कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अपां) प्राप्त प्रजाओं के (तोकस्य तनयस्य) पुत्र पौत्र के सुख के लिये ही (जेषे) विजय कर । और (नः) हमारे (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (अर्धं कृणुहिं) समृद्धि प्रदान कर ।

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु॥१९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (वृषणः) बलवान् उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (हरयः) मनुष्य (वृषरश्मयः) बलवान् शस्त्रास्त्रवर्षण कुशलरथ आदि

सैन्यों के स्वामी, महारथी, (वृष-रश्मयः) प्रबन्ध करने में समर्थ रश्मियों अर्थात् बागडोरों वाले उत्तम प्रबन्धक, नियम, मर्यादाओं से सम्पन्न, (अत्याः) सब से उत्तम, पुरुष अश्वों के समान दृढ़ (युजानः) तेरा सहयोग देने वाले (अस्मत्राञ्चः) हम लोगों में पूजनीय और (वज्रवाहः) खड्ग को नित्य धारण करने वाले, (वृषणः) बलवान्, पुरुष भी (वृष्णे) बलकारक (मदाय) तृप्ति और हर्ष के लिये (सुयुजः) उत्तम मनोयोग देते हुए (त्वां वहन्तु) तुझको अपने ऊपर धारण करें।

आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् २०।१९

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! (घृतप्रुषः ऊर्मयः न) जल वर्षाने वाले जल तरंगों के समान (मदन्तः) अति हर्षित, उत्साहवान्, (वृषणः) मेघों के समान शस्त्रवर्षी, बलवान् (ते) तेरे वीर जन (द्रोणम्) रथ और राष्ट्र पर (आ अस्थुः) विराजें। और वे (वृषभिः) बलयुक्त सैन्यों से (सुतानां) उत्पन्न किये ऐश्वर्यों में से हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! (तुभ्यं) तुझ (वृषभाय) सर्वश्रेष्ठ (वृष्णे) सुखों के दाता के लिये (सोमम् प्र भरन्ति) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करावें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय॥ २॥

भा०—हे राजन्! तू (दिवः वृषा असि) प्रकाश के वर्षाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी है। तू (पृथिव्याः वृषभः) पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। तू (सिन्धूनां वृषा) मेघवत् जलों का सेचन करने हारा है। तू (स्तियानां वृषभः असि) संघ बना कर रहने वाली सेनाओं और प्रजाओं में सर्वश्रेष्ठ है। हे (वृषभ) सुखों की प्रजा पर मेघवत् वर्षा करने हारे (वृष्णे) बलवान् (वराय) श्रेष्ठ, वरण करने योग्य पुरुष

के पान करने के लिये यह (इन्दुः) ऐश्वर्य युक्त (स्वादुः) आनन्द-दायक (मधुपेयः रसः) मधुर, शहद आदि के साथ मिलाकर खाने योग्य रस, वर को मधुपर्क आदि के तुल्य ही आदरार्थ (ते पीपाय) तुझे प्राप्त हो।

अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत्।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥ २२ ॥

भा०—(अयं) यह (देवः) तेजस्वी, पुरुष (सहसा) अपने बल से (जायमानः) प्रकट होकर (इन्द्रेण युजा) ऐश्वर्ययुक्त सहायक के साथ मिलकर (पणिम्) स्तुत्य व्यवहार और व्यवहार कुशल प्रजावर्ग को (अस्तभायत्) स्थिर करे, उसे शासन करे। और (अयं) वह (इन्दुः) स्वयं आर्द्र-हृदय एवं ऐश्वर्य युक्त चन्द्र के समान आह्लादक होकर (स्वस्य पितुः) अपने पालक पिता के (आयुधानि) शस्त्रों अस्त्रों को (अस्तभायत्) स्थिरता से धारण करे। और (अशिवस्य मायाः) अमङ्गलजनक शत्रु के छल कपटयुक्त चालों को (अमुष्णात्) दूर करे।

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (उषसः अकृणोत्) तेजोयुक्त प्रभात वेलाओं को प्रकट करता है उसी प्रकार (अयम्) यह तेजस्वी पुरुष (उषसः) शत्रु को दग्ध करने में समर्थ सेनाओं को (सु-पत्नीः) राष्ट्र की उत्तम पालक रूप से (अकृणोत्) तैयार करे। और वह (उषसः) कान्ति और कामना से युक्त स्त्रियों को (सु-पत्नीः) उत्तम गृहपत्नी होने का अधिकार दे। (सूर्ये अन्तः ज्योतिः) सूर्य के भीतर विद्यमान तेज के समान प्रखर तेज को वह (अदधात्) धारण करे। और (अयं) वह (त्रितेषु रोचनेषु) तीनों प्रकाशमान अग्नि, विद्युत्, सूर्य उनमें (नि-गूढं) गुप्त रूप से विद्यमान (त्रि-धातु अमृतम्) तीनों तत्वों को धारण करने

वाले अमृत के समान (दिवि) पृथिवी में भी (त्रितेषु) उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों स्थानों पर शोभा देने वाले पुरुषों में (नि-गूढं त्रिधातु अमृतं विन्दत्) छिपे तीनों प्रकार के प्रजाजन को धारण करने वाले अमृत-बल को प्राप्त करे।

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् २४।२०

भा०—(द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों को जिस प्रकार प्रभु परमेश्वर (वि स्कभायत्) विविध प्रकार से थाम रहा है उसी प्रकार (अयम्) यह राजा भी (द्यावा पृथिवी) तेजस्वी पुरुषों और भूमि वासी अन्य प्रजाओं को (वि स्कभायत्) विविध उपायों से वश करे। (सप्त-रश्मि रथम्) उसी प्रकार सात किरणों वाले सूर्य के समान सात रासों से युक्त रथ, वा सात प्रकृतियों से युक्त सर्व सुखप्रद राज्य को (अयुनक्) वश करे। (सोमः) सर्वोत्पादक प्रभु जैसे (शच्या) वाणी द्वारा (गोषु) वेदवाणियों के भीतर (पक्वम्) परिपक्व ज्ञान को (दाधार) धारण कराता है और जिस प्रकार वह सर्वप्रेरक (दशयन्त्रम् उत्सम्) दश यन्त्रों से युक्त कूप के समान दशों दिशाओं से नियन्त्रित (उत्सम्) इस जगत् को धारण करता है उसी प्रकार (अयं) यह (सोमः) अभिषेक योग्य राजा (शच्या) अपनी शक्ति वा आज्ञा के बल पर (गोषु अन्तः) भूमियों के बीच (पक्वम्) पके धान्य को (दाधार) ग्रहण करे, और (दश-यन्त्रम् उत्सम् दाधार) दश यन्त्रों से युक्त कूप आदि भी बनवावे। वा राष्ट्र को (दश-यन्त्रम् उत्सम्) दश विद्वानों द्वारा नियन्त्रित उत्तम राष्ट्र को धारण करे। अध्यात्म में दश, यन्त्र उत्स, यह देह दश इन्द्रियगण से युक्त है। इसमें इन्द्र आत्मा है। इति विंशो वर्गः॥

[४५]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ १—३० इन्द्रः । ३१—३३ बृबुस्तक्षा देवता ॥

छन्दः—१, २, ३, ८, १४, २०, २१, २२, २३, २४, २८, ३०, ३२ गायत्री। ४, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १५, १६, १७, १८, १९, २५, २६, २९ निचृद्गायत्री। ५, ६, २७ विराड्गायत्री। ३१ आर्च्युष्णिक्। ३३ अनुष्टुप्॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

य आन॑यत्परा॒वतः॒ सुनी॑ती तु॒र्वशं॒ यदु॑म्।
इन्द्रः॒ स नो॒ युवा॒ सखा॑॥ १॥

भा०—(यः) जो पुरुष (परावतः) दूर देश से भी (तुर्वशं यदुम्) हिंसक मनुष्यों को अथवा हिंसक सैन्यगण और यत्नशील प्रजावर्ग दोनों को, अथवा चारों पुरुषार्थों को चाहने वाले यत्नशील प्रजावर्ग को (सुनीती) उत्तम नीति, न्याय से (आ अनयत्) अच्छी प्रकार सत् मार्ग से ले जाता है, (सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (युवा) बलवान् पुरुष (नः सखा) हमारा मित्र हो।

अवि॒प्रे चि॒द्वयो॒ दध॑दना॒शुना॑ चि॒दर्व॑ता।
इन्द्रो॒ जेता॑ हि॒तं धन॑म्॥ २॥

भा०—जो राजा (अविप्रे चित्) अविद्वान्, बालक आदि में भी (वयः चित्) उत्तम जीवन और ज्ञान (दधात्) धारण कराता, और (अनाशुना अर्वता चित्) वेग से न जाने वाले अश्व सैन्य से भी (हितं धनं जेता) सुखकारी धन को विजय कर लेता है वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा होने योग्य है।

म॒हीर॑स्य॒ प्रणी॑तयः पू॒र्वीरु॒त प्रश॑स्तयः।
नास्य॑ क्षीयन्त ऊ॒तयः॑॥ ३॥

भा०—(अस्य) इस राजा के ईश्वर के समान ही (महीः प्रणीतयः) बड़ी उत्तम २ नीतियें और (पूर्वीः) सनातन से चली आई वेदोपदिष्ट (प्र-शस्तयः) उत्तम शासन विधान हों। (अस्य ऊतयः) उसके अनेक रक्षा आदि के साधन कभी (न क्षीयन्ते) क्षीण न हों।

सखा॑यो ब्रह्म॑वाहसेऽर्च॑त॒ प्र च॑ गायत ।
स हि नः॒ प्रम॑तिर्म॒ही ॥ ४ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो! आप लोग (ब्रह्म-वाहसे) वेद, ज्ञान को प्राप्त कराने वा धारण करने वाले विद्वान् वा प्रभु और धनैश्वर्य को प्राप्त करने या धारने वाले राजा की (प्र अर्चत) उत्तम रीति से सत्कार पूजा करो, और (प्र गायत च) उसकी उत्तम से उत्तम स्तुति प्रशंसा करो। (सः हि) वह ही (नः) हमारे बीच (मही) उत्तम वाणी और (प्र-मतिः) उत्तम बुद्धि को धारण करता है।

त्वमेक॑स्य वृत्रहन्नवि॒ता द्वयो॑रसि ।
उ॒तेदृशे॒ यथा॑ व॒यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्यवत् शत्रु को हनन करने हारे राजन्! (त्वम्) तू (एकस्य) एक का (उत) और (द्वयोः) दोनों का भी (अविता असि) रक्षक हो (उत) और (ईदृशे) ऐसे अवसर पर भी रक्षक हो (यथा) जैसे (वयम्) हम तुम्हारे रक्षक होते हैं। इत्येक विंशो वर्गः ॥

नय॒सीद्वति॒ द्विषः॑ कृणो॒ष्यु॑क्थशं॒सिनः॑ ।
नृभिः॑ सुवीर॑ उच्यसे ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू प्रजाजन को (द्विषः अति नयसि) शत्रुओं तथा अन्य संकटों से भी पार अवश्य पहुंचाता है। तू (द्विषः उक्थ-शंसिनः कृणोषि) द्वेषयुक्त जनों को भी उत्तम वचन कहने वाला बनाता है। तेरे गुणगण से मुग्ध होकर शत्रु जन भी तेरी स्तुति करें। तू (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (सु-वीरः) उत्तम वीर और विविध विद्याओं का उपदेष्टा (उच्यसे) कहा जाता है।

ब्र॒ह्माण॑ं ब्रह्म॑वाहसं गी॒र्भिः सखा॑यमृ॒ग्मिय॑म् ।
गां न दो॒हसे॑ हुवे ॥ ७ ॥

भा०—(दोहसे गां न) दूध दोहने के लिये जिस प्रकार गौ को प्रेम से बुलाते हैं उसी प्रकार मैं (ब्रह्म-वाहसं) वेद ज्ञान को धारण करने वाले (ऋग्मियं) ऋचाओं के वेत्ता, स्तुतियों के योग्य पात्र, (सखायं) सब के मित्र रूप, (ब्रह्माणं) बड़े वेदज्ञ विद्वान् पुरुष को (दोहसे) ज्ञान रस प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदर से बुलाऊं।

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता।
वीरस्य पृतनासहः ॥ ८ ॥

भा०—(यस्य) जिस (वीरस्य) विविध विद्या के उपदेष्टा तथा विविध प्रजाओं के आज्ञापक (पृतनासहः) शत्रुओं को पराजय करने वाले वीर के (हस्तयोः) हाथों में (विश्वानि वसूनि) समस्त ऐश्वर्य (नि ऊचुः) बतलाते हैं (तस्य द्विता) उस पुरुष के प्रति माता पिता, और गुरु दोनों प्रकार का भाव विद्यमान रहे।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रघु० ॥

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते।
वृह माया अनानत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वज्रधर ! हे (शचीपते) शक्ति, वाणी के पालक ! हे (अनानत) शत्रुजन के आगे कभी न झुकने हारे ! तू (जनानां) शत्रु लोगों को (दृढ़ानि) दृढ़दुर्गों और सैन्यों को तथा (मायाः) छल कपट के व्यवहारों को भी (वि वृह) उन्मूलन कर।

तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते।
अहूमहि श्रवस्यवः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (सत्य) सज्जनों में सर्वश्रेष्ठ, सत्यभाषण आदि व्यवहार करने हारे ! हे (सोमपाः) ओषधिरस का पान करनेवाले, ऐश्वर्य,

राष्ट्र प्रजा को प्रजा वा शिष्यवत् पालन करने वाले ! हे (वाजानां पते) बलों, ज्ञानों, अन्नों और संग्रामों के पालक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रु-हन्तः ! हम लोग (श्रवस्यवः) यश, अन्न, उपदेश आदि के इच्छुक जन (त्वा तम् उ) उस तुझ को ही (अहूमहि) पुकारते हैं, तुझ से विनय करते, तेरी स्तुति करते हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने ।
हव्यः स श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो तू (पुरा) पहले भी (हव्यः आसिथ)स्तुति योग्य रहा, (यः वा) और जो तू (नूनं) अब भी (हिते धने) हितकारी धन, ऐश्वर्य के प्राप्त होने पर भी (हव्यः) प्रजाओं के स्तुति-योग्य है (सः) वह तू (हवं श्रुधि) हमारी स्तुति प्रार्थना को सुन ।

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् ।
त्वया जेष्म हितं धनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (धीभिः) उत्तम कर्मों और बुद्धियों द्वारा (अर्वद्भिः) अपने शत्रु-नाशक वीरपुरुषों और अश्वों से (अर्वतः) शत्रु के वीरों, अश्वों तथा (श्रवाय्यान्) अति प्रसिद्ध, (वाजान्) संग्रामों और ऐश्वर्यों को तथा (हितं धनम्) हितकारी धन को (जेष्म) विजय करें ।

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते ।
भरे वितन्तसाय्यः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वीर) वीर पुरुष ! हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तुति करने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हिते धने) हितकारी, सुख-जनक धन प्राप्त करने के निमित्त (भरे) संग्राम और प्रजा के भरण पोषण के कार्य में (वितन्तसाय्यः) सबका विजय करने हारा है ।

या त॑ ऊतिर॑मित्रहन्म॒क्षूज॑वस्त॒मास॑ति ।
तया॑ नो हिनुही॒ रथ॑म् ॥ १४ ॥

भा०—हे (अमित्र-हन्) शत्रुओं को दण्डित करने वाले ! (या) जो (ते) तेरी (मक्षू जवस्तमा ऊतिः) अतिशीघ्र वेग से युक्त, गति, रक्षण, ज्ञान आदि क्रिया (असति) हैं (तया) उससे तू (नः) हमारा (रथम्) रथ के तुल्य सबको सुख देने वाले राष्ट्र को (हिनुहि) प्रेरित कर ।

स रथे॑न र॒थीत॑मो॒ऽस्माके॑नाभि॒युग्व॑ना ।
जेषि॑ जिष्णो हि॒तं धन॑म् ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (जिष्णो) विजय करने हारे ! तू (रथीतमः) सर्वश्रेष्ठ महारथी होकर (अस्माकेन) हमारे (अभि-युग्वना) शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ (रथेन) रथ सैन्य से (हितं धनं जेषि) सुखकर धन को उत्तम रीति से प्राप्त कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

य एक॒ इत्तमु॑ ष्टुहि कृ॒ष्टीनां॒ विच॑र्षणिः ।
पति॑र्ज॒ज्ञे वृष॑क्रतुः ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (यः) जो (एकः इत्) अकेला ही अन्य की विना सहायता के (कृष्टीनां विचर्षणिः) कृषियों को देखने वाले किसान के समान (कृष्टीनां) समस्त प्रजाओं का (विचर्षणिः) विशेष रूप से देखनेवाला और उनको विविध प्रकार से अपनी ओर आकर्षण करने वाला होकर (वृष-क्रतुः) बलवती प्रज्ञा और बलयुक्त कर्म वाला, (पतिः) सब का पालक (जज्ञे) प्रकट वा प्रसिद्ध हो (तम् उ स्तुहि) तू उसकी ही स्तुति कर ।

यो गृ॑ण॒तामिदासि॑थापिरू॒ती शि॒वः सखा॑ ।
स त्वं न॑ इन्द्र मृळय ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (गृणताम् इत्) अन्यों का उपदेश करने वाले विद्वानों तथा स्तुतिशील पुरुषों का (आपिः इत्) वास्तव बन्धु (आसिथ) हो और (ऊती) उत्तम रक्षा और ज्ञान से (शिवः) कल्याणकारक (सखा) परम मित्र हो (सः) वह (त्वं) आप (नः मृडय) हमें सुखी करो।

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः।
सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥ १८ ॥

भा० —हे (वज्रिवः) वज्र अर्थात् शस्त्र वा शत्रु के वर्जन करने वाले बलों से युक्त पुरुषों के स्वामिन् ! तू (रक्षो-हत्याय) दुष्ट पुरुषों के नाश करने के लिये (गभस्त्योः) बाहुओं में (वज्रं धिष्व) शस्त्रवत् बल वीर्य को धारण कर। और (स्पृधः) स्पर्धा करने वाली शत्रुसेनाओं को (अभि ससहिष्ठाः) मुक़ाबले पर पराजित कर।

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम्।
ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥ १९ ॥

भा०—मैं (रयीणां युजं) धनों और बलों के दाता, (प्रत्नं) पुराने, वृद्ध, (सखायं) मित्र, (कीरि-चोदनम्) विद्यार्थियों और स्तुतिकर्त्ताओं को उपदेश करने वाले (ब्रह्मवाहः-तमम्) सबसे उत्तम वेद विज्ञान वा धन को धारण एवं प्राप्त कराने वाले आप की (हुवे) आदरपूर्वक प्रार्थना करूं।

स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते।
गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥ २० ॥ २४ ॥

भा० – (सः हि) वह ही (एकः) अकेला, अद्वितीय, (विश्वा पार्थिवा) समस्त पृथिवी के (वसूनि) ऐश्वर्यों को (पत्यते) प्राप्त होता और उन पर स्वामित्व करता है और वही (गिर्वणः-तमः) सबसे अधिक

प्रशंसनीय और (अध्रि-गुः) बे रोक जाने वाला, तथा सत्य गति वाला होता है । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः ।
गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥ २१ ॥

भा०—हे (गोपते) वाणियों के पालक विद्वन् ! पृथ्वी के पालक राजन् ! इन्द्रियों के पालक जितेन्द्रिय ! गवादि पशुओं के पालक वैश्य वर्ग ! तुम (धृषत्) प्रगल्भ होकर (नियुद्भिः) अपने अधीन नियुक्त अश्वादि सैन्यों से, (वाजेभिः) बलों, वीर्यों, वेगयुक्त संग्रामों और ज्ञान अन्नादि से और (अश्विभिः) बलवान् वीरों से (गोमद्भिः) वाणी और भूमि के स्वामी विद्वानों और भूमि वालों से (सः) वह तू (नः) हमारे (कामम् आपृण) मनोरथ को पूर्ण कर ।

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद्गवे न शाकिने ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (वः सुते) आप लोगों के उत्पन्न इस जगत् में वा अन्न, धन, पुत्र, ऐश्वर्यादि के प्राप्त होने पर आप (सचा) सब एक साथ मिलकर (तत्) उस (सत्वने) सत्ववान्, बलवान्, शुद्ध अन्तःकरण वाले (पुरुहूताय) बहुतों से प्रशंसित, (गवेन शाकिने) बड़े बैल के समान शक्तिमान् सर्वव्यापक, ज्ञानी की (गाय) स्तुति करो । (यत्) जो (शं) तुम्हें शान्ति प्रदान करे ।

न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यत्सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २३ ॥

भा०—(यत् वसुः) जो गुरु के अधीन अन्तेवासी होकर (सीम्) सबसे (गिरः उप श्रवत्) वेदवाणियों का श्रवण करे । वह (गोमतः वाजस्य) वाणी युक्त ज्ञान का (दानं न घ नि यमते) शिष्यों में दान देना न रोके । प्रत्युत शिष्यों को ज्ञान दिया करे । इसी प्रकार (यत्

सीम् गिरः उपश्रवत्) जो राजा वा ऐश्वर्यवान् पुरुष सबसे अपने विषय में उत्तम स्तुतियां सुने वह (वसुः) प्रजा का बसाने हारा, (गोमतः वाजस्य दानं न घ नि यमते) उत्तम सत्कार योग्य वाणी से युक्त ऐश्वर्य के दान को कभी न रोके ।

कुवित्संस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (दस्युहा) दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला प्रबल राजा (कुवित्सस्य) बहुत से विवेकपूर्वक धन विभाग वा न्याय करने वाले अति विवेकी पुरुष के (गोमन्तं व्रजं) वाणी से युक्त उत्तम मार्ग को (प्र गमत्) अच्छी प्रकार जाता है वह सत्-मार्गगामी राजा ही (नः) हमें (शचीभिः) उत्तम वाणियों, प्रज्ञाओं और शक्तियों से (अप वरत्) हमारे कष्ट दूर करता हुआ हमें अपनावे ।

इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।
इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जिस प्रकार अपने वत्स को देख कर हंभारती हैं उसी प्रकार हे (शतक्रतो) अनन्त प्रज्ञाओं से से सम्पन्न ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः मातरः) उत्तम ज्ञान करने वाले (गिरः) उत्तम उत्तम उपदेष्टाजन, वा उनकी वाणियां (त्वा उ अभि प्र नोनवुः) तेरी ही स्तुति करती हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते ।
अश्वो अश्वायते भव ॥ २६ ॥

भा०—हे (वीर) विविध विद्याओं के उपदेष्टः ! विद्वन् ! और हे विविध प्रकारों से शत्रुओं को कंपाने हारे वीर पुरुष ! (तव सख्यं) तेरी मित्रता (दूनाशं) कभी नाश न होने वाली हो । तू (गव्यते गौः असि) गौ, भूमि, उत्तम वाणी को चाहने वाले के लिये गौ, भूमि, वाणियों के

समान ही, पुष्टिकारक अन्नवत् और आह्लाद देने वाला हो। और (अश्वायते अश्वः भव) वेगवान् अश्व आदि के चाहने वाले के लिये तू स्वयं अश्व के समान संकट से पार करने में समर्थ हो।

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे।

न स्तोतारं निदे करः ॥ २७ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (सः) वह आप (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (तन्वा) शरीर से (अन्धसः मन्दस्व) अन्न के द्वारा अति प्रसन्न रह और अन्यों को भी (तन्वा अन्धसः मन्दस्व) देह के निमित्त अन्न से ही तृप्त कर। (स्तोतारं) उत्तम ज्ञानोपदेष्टा पुरुष को (निदे न करः) निन्दक पुरुष के अधीन मत कर।

इमा उं त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः।

वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) विद्यायुक्त वाणियों से प्रशंसनीय, एवं उनका सेवन करने हारे विद्वन्! राजन्! प्रभो! (धेनवः गावः वत्सं न) दूध देने वाली गौएं जिस प्रकार अपने बछड़े को बड़े प्रेम से प्राप्त करती हैं उसी प्रकार (इमाः गिरः) ये उत्तम वाणियें (सुते-सुते) जब २ और जहां भी जगत् उत्पन्न होता है वहां वा, प्रत्येक ऐश्वर्य के उत्पन्न होने पर (त्वा उ नक्षन्ते) तुझे ही प्राप्त होती हैं। अर्थात् तब २ तू ही स्तुतियों और विद्याओं का भाजन होता है।

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि।

वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (वाजेभिः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों और बलों द्वारा (वाजयताम्) बल, ऐश्वर्य और ज्ञानों की प्राप्ति करने के इच्छुक (पुरूणां स्तोतॄणां) बहुत से विद्वान् पुरुषों के (विवाचि) विविध प्रकार के वाग्

व्यापार होने के अवसर में (गिरः त्वाः नक्षन्ते) नाना उत्तम वाणियां तुझे ही प्राप्त हों।

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः।
अस्मान्राये महे हिनु ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! प्रभो ! विद्वन् ! (अस्माकम्) हमारा (वाहिष्ठः) उत्तम कार्य वहन करने में समर्थ, (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अन्तमः) तेरे अति समीपतम होकर (ते भूतु) तेरी वृद्धि के लिये हो। इसी प्रकार (ते स्तोमः अस्माकम् अन्तमः वाहिष्ठः भूतु) तेरा स्तुति योग्य उपदेश, बल आदि द्वारा अति निकटतम उन्नतिप्रापक हो। तू (अस्मान्) हमें (महे राये हिनु) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि और प्राप्ति के लिये आगे बढ़ा।

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात्।
उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥ ३१ ॥

भा०—(पणीनां) विद्वान् पुरुषों के बीच में (बृबुः) संशयों का उच्छेदन करने वाला विद्वान् और (पणीनां) व्यवहारज्ञ व्यापारी पुरुषों के बीच में (बृबुः) काट २ कर नये पदार्थ बनाने वाला शिल्पी तथा शत्रुओं का उच्छेदक वीर पुरुष (गाङ्ग्यः कक्षः न) वेगवती नदी के तट के समान (वर्षिष्ठे मूर्धन्) दानशील, सर्वोच्च, महान्, शिरोवत् उन्नत पद पर (उरुः) महान् होकर (अधि अस्थात्) प्रतिष्ठित हो।

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी।
सद्यो दानाय मंहते ॥ ३२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस की (सहस्रिणी) सहस्रों ऐश्वर्य युक्त सुखों वाली (भद्रा रातिः) कल्याणमय दान क्रिया (वायोः इव) वायु की शीतल धारा के समान (सद्यः) अति शीघ्र (दानाय) दान देने के लिये (मंहते) बढ़ती है (सः ऊरुः गाङ्ग्यः कक्षः न मूर्धन्

अधि स्थात्) वह दुःख संकटों का काटने वाला महापुरुष नदी के ऊंचे तट के समान सबके शिरपर विराजता है ।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥ ३३ ॥ २६ ॥

भा०—(तत् वः) वह ही हमारा (आर्यः) उत्तम स्वामी होने योग्य है जिस (बृबुं) शत्रुनाशक, संशय, संकट काटने वाले (सहस्र-दातमं) हजारों के देने वाले और (सहस्र-सातमं) सहस्रों के विभाग करने वाले को (विश्वे कारवः सदा आगृणन्ति) समस्त विद्वान् जन नित्य आदर से स्तुति करते हैं । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[४६]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रः प्रगाथं वा देवता ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् । ५,७ स्वराडनुष्टुप् । २ स्वराड्बृहती । ३,४ भुरिग्बृहती । ८,९ विराड्बृहती । ११ निचृद्बृहती । १३ बृहती । ६ ब्राह्मी गायत्री । १० पंक्तिः । १२,१४ विराट् पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (कारवः) विद्वान् और शिल्पीजन, (वाजस्य साता) धन और बल के प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हि हवामहे) तुझ को ही आदर से पुकारते एवं तेरा आश्रय ग्रहण करते हैं । (वृत्रेषु) विघ्नकारी शत्रुओं के बीच में भी (सत्पतिं त्वाम्) सत्पुरुषों के पालक तुझको ही पुकारते हैं । और (नरः) नायक पुरुष भी (अर्वतः काष्ठासु) अश्वों को दूर दिशाओं के देशों तक पहुंचाने के लिये सारथि के समान अध्यक्ष तुझको ही प्राप्त करें ।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रबल को अपने हाथ अर्थात् वश में रखने वाले! हे (अद्रिवः) मेघ वा पर्वत के समान शस्त्रवर्षी और अचल वीरों के स्वामिन्! हे (चित्र) आश्चर्यबलयुक्त! तू (धृष्णुया) प्रगल्भ वाणी से (महः) उत्तम, २ (स्तवानः) हमें उपदेश और आदेश करता हुआ (जिग्युषे) विजयशील, पुरुष के लिये (वाजं) वेगयुक्त अश्व, और पारितोषिक रूप से ऐश्वर्यादि के समान (नः) हमें भी (गाम्) गौ, भूमि, (रथ्यम्) रथ योग्य अश्व को (सत्रा) सदा, सत्य ज्ञान वा न्याय से (सं किर) अच्छी प्रकार चला और हमें प्रदान कर।

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नोवृधे ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (सत्राहा) सब दिनों, वा (सत्राहा) सत्य बल से शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, (विचर्षणिः) विश्व का विविध प्रकार से द्रष्टा है (वयम्) हम (तम्) उसको (इन्द्रं हूमहे) 'इन्द्र' नाम से पुकारते हैं। और उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को अपनी रक्षा के लिये पुकारें। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक! हे (तुवि-नृम्ण) बहुत से धनों के स्वामिन्! हे (सहस्र-मुष्क) सहस्रों को पुष्ट करने वाले! और असंख्य वीर्यों, बलों से युक्त! तू (समत्सु) संग्रामों के अवसरों पर (नः वृधे भव) हमारी वृद्धि के लिये हो।

बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥

भा०—(ऋचीषम) हे स्तुति-अनुरूप गुण कर्मों और स्वभाव वाले!

राजन् ! वेद मन्त्रों में बतलाये गुणों धर्मों के अनुरूप भगवन् ! (घृषौ) घर्षण और (मीढे) वर्षणकाल में (वृषभा इव) जिस प्रकार मेघों को विद्युत (बाधते) पीड़ित करता है उसी प्रकार तू भी (घृषौ) परस्पर संघर्ष, प्रतिस्पर्धा के अवसर तथा ।(मीढे) शत्रु पर निरन्तर बाणवर्षा तथा प्रजा पर निरन्तर ऐश्वर्यों की वर्षा तथा भूमियों पर जल सेचनादि के निमित्त (मन्युना) क्रोध, और ज्ञानपूर्वक (वृषभा इव जनान्) मेघ तुल्य शरवर्षी एवं बलवान् सांडों के समान दृढ नरपुंगवों को भी (बाधसे) तू पीड़ित वा दण्डित करने में समर्थ है। हे राजन् ! हे प्रभो ! तू (मह-धने) बड़े ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त होने वाले संग्राम के अवसर में (तनूषु) प्रजाओं के शरीरों, (अप्सु) प्राणों और (सूर्ये) सूर्य में क्रम से आत्मा, जीवन और प्रकाश वा प्रताप के तुल्य होकर (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक और ज्ञानदाता होकर हमें (बोधि) ज्ञानवान् कर, हमें चेता ।

इन्द्र॒ ज्येष्ठं॑ न॒ आ भ॑रँ॒ ओजि॑ष्ठं॒ पपु॑रि॒ श्रवः॑ ।
येने॒मे चि॑त्र वज्रहस्त॒ रोद॑सी॒ ओभे सु॑शिप्र॒ प्राः ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (वज्र-हस्त) बल वीर्य को बाहु में धारण करने हारे ! हे (चित्र) आश्चर्यजनक कार्य करने हारे ! हे (सु-शिप्र) सुन्दर मुख नासिका एवं उत्तम मुकुट धारण करने हारे ! (येन) जिससे तू (इमे) इन दोनों (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर सम्बद्ध राजवर्ग या स्त्री पुरुषों को (आ प्राः) सब ओर से परिपूर्ण कर सके, तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें वही ((ज्येष्ठं) अत्यन्त अधिक, सर्वोत्तम (ओजिष्ठं) अति बलकारी, (पपुरि) नित्य तृप्त और पूर्ण करने वाला, (श्रवः) अन्न और ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

त्वामु॒ग्रमव॑से चर्षणी॒सहं॒ राज॑न्दे॒वेषु॑ हूमहे ।
विश्वा॒ सु नो॑ विथु॒रा पि॑ब्द॒ना व॑सो॒ऽमित्रा॑न्त्सु॒षहा॑न्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! (देवेषु) विद्वानों और विजय की कामना करने वालों के बीच में (चर्षणी-सहम्) समस्त मनुष्यों को पराजय करने वाले (उग्रं त्वाम्) बलवान् तुझको (हूमहे) हम पुकारते हैं। तू (नः) हमें (विथुरा) पीड़ा देने वाले (पिब्दना) पीस कर नष्ट कर देने योग्य वा, न समझ में आने वाली, अप्रकट या कूट भाषा बोलने वाले, अपने से भिन्न भाषा-भाषी, (अमित्रान्) शत्रुओं को तू (नः) हमारे लिये (सुसहान् कृधि) सुगमता से विजय करने योग्य कर।

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नाहुषीषु कृष्टिषु) मनुष्य प्रजाओं में (यत् ओजः नृम्णं च) जो बल पराक्रम और धनैश्वर्य है और (यत्) जो भी (पञ्च-क्षितीनां द्युम्नं) पांचों प्रकार की राष्ट्रवासिनी प्रजाओं वा भूमियों का तेज और ऐश्वर्य है और (सत्रा) सत्य (विश्वानि पौंस्या) सब प्रकार के पुरुषार्थोपयोगी बल हैं उन सबको (आ भर) तू स्वयं प्राप्त कर और हमें भी प्राप्त करा।

यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम्।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥ ८॥

भा०—(यत् वा कत् च) जो कोई भी (वृष्ण्यम्) बल (तृक्षौ जने) बलवान् मनुष्यों में (द्रुह्यौ वा जने) परस्पर द्रोह करने वाले मनुष्यों में वा जो बल (पूरौ वा जने) एक दूसरे का पालन करने वाले पुरुषों में हो, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तत्) वह बल तू (अमित्रान् तुर्वणे) शत्रुओं को नाश करने के लिये और (नृषाह्ये) मनुष्यों को वश करने के निमित्त और (पृत्सु) संग्रामों के अवसरों पर (अस्मभ्यं) हमें (सं रिरीहि) अच्छी प्रकार दे।

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवंद्भ्यश्च मह्यं च यावयां दिद्युमेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र ऐश्वर्यवन्) आप (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् धनाढ्यों और (मह्यं च) मेरे लिये भी (त्रि-धातु) तीन धातु, सुवर्ण, रजत, लोह आदि से युक्त (त्रि-वरूथं) तीनों ऋतुओं में वरणीय, तीनों प्रकार के कष्टों के वारक, (स्वस्तिमत्) सुख, मंगलयुक्त (शरणम्) शरण देने वाले, आश्रय योग्य (छर्दिः) घर (प्र यच्छ) प्रदान कर। (एभ्यः) इन प्रजाजनों के हितार्थ (दिद्युम् यवय) ज्ञान, प्रकाश प्राप्त कराओ और दीप्तियुक्त शस्त्रादि दूर करो।

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ १०॥२८॥

भा०—हे (गिर्वणः) उत्तम वाणियों के सेवन करने हारे! (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (ये) जो लोग (गव्यता मनसा) भूमि की इच्छा वाले मन से (शत्रुम्) शत्रु को (धृष्णुया) दृढ़ और प्रगल्भ होकर (आ दभुः) विनाश करते और (अभि प्र घ्नन्ति) सब प्रकार से दण्डित करते हैं, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (नः) हम लोगों के तू सदा (तनू-पाः) शरीरों का रक्षक और (अन्तमः) सदा निकटवर्ती (भव) हो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवर्धक! (अध) और तू (नः) हमारे (वृधे) वृद्धि के लिये (भवस्व) सदा यत्नवान् होकर रह। और (युधि) युद्धकाल में (तत्) जब कि (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष, आकाश में (पर्णिनः) पंखों से जड़े (तिग्म-मूर्धानः)

तीक्ष्ण सिरों से युक्त (दिद्युवः) बाण (पतयन्ति) पड़ रहे हों तब (अव) रक्षा कर। वा तेजस्वी अन्तरिक्ष से (पर्णिनः) अन्तरिक्ष में पक्षियों के समान (दिद्यवः) तीक्ष्ण (तिग्म-मूर्धानः) तीक्ष्ण शिर के टोप पहने, (युधि पतयन्ति) युद्ध में दौड़ रहे हों तब भी (नः नायम् अव) हमारे नायक की रक्षा कर।

यत्र शूरा॑सस्त॒न्वो॑ वितन्व॒ते प्रि॒या शर्म॑ पि॒तॄणाम्।
अध॑ स्मा यच्छ त॒न्वे॒३॒॑ तने॑ च छ॒र्दिर॒चित्तं॑ या॒वय॒ द्वेषः॑ ॥ १२ ॥

भा०—(यत्र) जहां (शूरासः) शूरवीर पुरुष (पितॄणाम्) अपने पालक माता पिता और गुरुओं के (तन्वः) शरीर के सुख के (प्रिया शर्म) प्रिय गृहादि सुखकारक पदार्थों का (वि तन्वते) विस्तार करते हैं ऐसे राष्ट्र में हे राजन्! विद्वन्! (अध स्म) आप भी हमारे (तन्वे तने) शरीर और पुत्र आदि विस्तृत कुल के निमित्त (छर्दिः यच्छ) उत्तम गृह प्रदान कर। और (अचित्तं द्वेषः यवय) चित्त रहित, निर्दयता युक्त वा अज्ञान से युक्त द्वेष को दूर करो।

यदि॑न्द्र॒ सर्गे॒ अर्व॑तश्चो॒दया॑से महा॒धने।
अ॒स॒म॒ने अध्व॑नि वृजि॒ने प॒थि श्ये॒नाँ इ॑व श्रवस्य॒तः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुनाशक! (यत्) जब (सर्गे) करने योग्य वा प्रयाण करने योग्य (महाधने) संग्राम में और (असमने) विषम, वा संग्राम से भिन्न अवसर में भी (वृजिने) बल-युक्त सैन्य और (पथि अध्वनि) गमन करने योग्य मार्ग में (श्येनान् इव) बाजों के समान अति वेगवान् (श्रवस्यतः) यश के अभिलाषी (अर्वतः) अवसरों को (चोदयासे) अपनी आज्ञा पर चलाता है, वह तू हमें सदा शरण दे।

सिन्धूँ॑रिव प्रव॒ण आ॑शु॒या य॒तो यदि॒ क्लोश॒मनु॒ ष्वणि॑।
आ ये वयो॒ न वर्वृ॑त॒त्यामि॑षि गृभी॒ता बा॒ह्वोर्गवि॑ ॥ १४ ॥ २९ ॥

भा०—(प्रवणे सिन्धून् इव) जिस प्रकार नीचे प्रदेश में नदियां बहती हैं और जिस प्रकार (स्वनि क्रोशम् अनु वयः न) खटका होनेपर भय पाकर पक्षिगण वेग से भागते हैं (बाह्वोः गृभीताः गवि आभिषि वयः न) बाहुओं में संकुचित हुए पक्षीगण मृत गौ के मांस के निमित्त वेग से झपटते हैं उसी प्रकार (आशुया) वेग से युक्त (स्वनि) नायक की आवाज़ पर (क्रोशम् अनु) कोस पर कोस, वा शत्रु या मित्र के आह्वान के साथ २ (यतः) जाते हुए (सिन्धून्) वेगवान् अश्वारोही वीरों को (गवि) भूमि विजय के निमित्त (बाह्वोः गृभीताः) रासों को हाथ में पकड़े (ये) जो (आ वर्वृतति) पुनः आक्रमण करते हैं तू उनकी भी रक्षा कर । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४७]

गर्ग ऋषिः ॥ १—५ सोमः । ६—१९, २०, २१—३१ इन्द्रः । २० लिंगोक्ता देवताः । २२—२५ प्रस्तोकस्य सार्ञ्जयस्य दानस्तुतिः । २६—२८ रथः । २९—३१ दुन्दुभिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, २१, २२, २८ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ७, १०, १५, १६, १८, २०, २९, ३० त्रिष्टुप् । २७ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ९, १२, १३, २६, ३१ भुरिक् पंक्तिः । १४, १७ स्वराट् पंक्तिः । २३ आसुरी पंक्तिः । १९ बृहती । २४, २५ विराड्गायत्री ॥ एकत्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतोन्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह ऐश्वर्य और ओषधि अन्नादि का उत्तम रस और विद्वज्जन समूह वा बल (किल) अवश्य (स्वादुः) अन्न के समान स्वादयुक्त, सुखजनक (मधुमान्) मधुर मधु से युक्त ओषधि रसवत् ही मधुर और गुणकारी, (उत अयं तीव्रः) और यह तीव्र रस वाले ओषधि रस के

समान ही वेग से कार्य करने वाला हो, (किल अयं रसवान् उत) और वह निश्चय से रस अर्थात् बलयुक्त भी हो (उतो नु) और (अस्य-पपिवांसम् इन्द्रम्) जिस प्रकार ओषधि को पान करने वाले पुरुष को बल की प्रतिस्पर्द्धा में कोई नहीं जीतता है उसी प्रकार (अस्य) इस ऐश्वर्य वा विद्वान् प्रजामय राष्ट्र के (पपिवांसम्) पालन करने वाले (इन्द्रं) समृद्ध राजा को भी (आहवेषु) युद्धों में (कश्चन न) कोई भी नहीं (सहते) पराजित कर सके ।

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३हन् ॥२॥

भा०—(अयं) यह सोम अर्थात् ऐश्वर्य, बल, और विद्वत्समूह देने वाला, (इह) इस राज्य शासन में वा लोक में (मदिष्ठः) अतिहर्ष-दायक और तृप्तिकारक (आस) होता है (यस्य) जिसके द्वारा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक, (वृत्र-हत्ये) मेघ के विनाश करने वाले सूर्य के तुल्य शत्रु के नाश के अवसर में (ममाद) अति प्रसन्न होता है । (यः) जो (शम्बरस्य) मेघ के समान ही प्रजा के सुखों के विनाशक शत्रु के (नवतिं नव) ९९ प्रकार के (च्यौत्ना) बलों और चालों को भी (वि अहन्) विविध उपायों से विनाश करता है ।

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३ ॥

भा०—(अयं) यह ओषधिरस जिस प्रकार (पीतः वाचम् उत् इयर्ति) पान किया जाकर उत्तम वाक्-शक्ति को उत्पन्न करता है, और (अयम्) जिस प्रकार ओषधिरस (उशतीम् मनीषाम् अजीगः) कामना करने योग्य, उत्तम प्रजा या बुद्धि को जागृत करता है उसी प्रकार (अयं) यह विद्वज्जन वा सौम्य प्रजाजन (पीतः) पालित पोषित होकर

(वाचम् इत् इयर्ति) वेदमय, ज्ञानवाणी का उपदेश करता है। (उश-तीम्) उत्तम कमनीय (मनीषाम्) बुद्धि, मति को (अजीगः) अन्यों को प्राप्त कराता और जगाता है। और जिस प्रकार ओषधि रस के बल से (धीरः) बुद्धिमान् ध्यानी पुरुष (याभ्यः आरे कत् चन भुवनं न) जिनसे परे कोई भुवन नहीं उन (षड् ऊर्वीः अमिमीत) छहों विशाल चराचर लोक-सृष्टियों, प्रकृति की विकृतियों को भी जान लेता है उसी प्रकार (अयं) यह राजा भी (धीरः) धैर्यवान् होकर उस विद्वज्जन के द्वारा (षट् ऊर्वीः) उन छः बड़ी, प्रजा संस्थाओं या राजप्रकृतियों को भी (अमिमीत) अपने अधीन कर लेता है (याभ्यः आरे) जिनसे परे या जिनसे निकट (कत् चन भुवनं न) कोई भी लोक नहीं है। षड् ऊर्वीः—प्रकृति के पांच भूत, पांच विकृति और महत्तत्व, अथवा पांच इन्द्रिय, तन्मात्रा और छठा मानस तत्व। राजतन्त्र स्वपक्ष की षड् प्रकृतियां स्वामी के अतिरिक्त अमात्यादि, वा षड् गुण, अथवा द्वादश राज-चक्र में स्वपक्ष परपक्ष के छः छः सुहृदादि।

अ॒यं स यो व॑रि॒माणं॑ पृथि॒व्या व॒र्ष्माणं॑ दि॒वो अकृ॑णोद॒यं सः।
अ॒यं पी॒यूषं॑ ति॒सृषु॑ प्र॒वत्सु॒ सोमो॑ दाधारो॒र्व॑१॒॑न्तरि॑क्षम् ॥ ४ ॥

भा०—व्यापक सोम तत्व का वर्णन। (अयं सोमः) यह वह सोम, सबका उत्पादक, सबका प्रेरक पदार्थ या बल है (यः) जो (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमाणं) श्रेष्ठ और बड़प्पन को (अकृणोत्) बनाता है, (अयं सः) यह वह पदार्थ है जो (दिवः वर्ष्माणं) सूर्य वा आकाश वृष्टिकारक सामर्थ्य और (वर्ष्माणं) दृढ़त्व वा समस्त लोकों के बन्धन वा नियन्त्रण करने वाले सामर्थ्य को (अकृणोत्) उत्पन्न करता है। (अयं) यह (तिसृषु) तीनों (प्रवत्सु) ऊपर नीचे की भूमियों में भी (पीयूषं) जल तत्व को और (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष वा जल को भी वायुवत् (दाधार) धारण करता है।

सोमः— स्वा वै मे एषा तस्मात्सोमो नाम। श० ३। ९ ४। २२॥ श्रीर्वै सोमः। श० ४। १। ३९॥ राजा वै सोमः श० १४। १। ३। १२। सोमो राजा राजपतिः। तै २। ५। ६। ३॥ अयं वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः। कौ० ४। ४॥ क्षत्रं सोमः। २। ३८॥ अन्नं सोमः कौ० ९। ६॥ उत्तमं वा एतत् हविर्यत् सोमः। श० १२। ८। २। १२॥ प्राणः सोमः श० ७। ३। १। २॥ रेतः सोमः। कौ० १३। ७॥ एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा यत्सोमो। राजा ऐ० १। १३॥ सोमो वै ब्राह्मणः। ता० २३। १६। ५॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा तै० १। ३। ३४॥ इन उद्धरणों से सोम शब्द से आत्मा, ऐश्वर्य, राजा, विद्वान् क्षत्रिय-बल, अन्न, प्राण, वीर्य, प्रजा, विद्वान्, सभापति, ब्राह्मण और वीर्यवान् पुरुष ये सब 'सोम' कहाते हैं।

अ॒यं वि॑दच्चित्रदृ॒शी॑क॒मर्णः॑ शु॒क्रस॑द्मनामु॒षसा॒मनी॑के।
अ॒यं म॒हान्म॑ह॒ता स्कम्भ॑ने॒नोद्याम॑स्तभ्नाद्वृ॒ष॒भो म॒रुत्वा॑न् ॥५॥३०॥

भा०—जिस प्रकार (शुक्रसद्मनाम्) जल वा तेज का आश्रय या ओस और प्रकाश रूप फैला देने वाली उषाओं के (अनेकों) प्रमुख भाग में (अयम्) यह सूर्य (चित्र-दृशीकम् अर्णः विदत्) आश्चर्य से देखने योग्य जल वा तेज को प्राप्त कराता है उसी प्रकार (अयम्) यह तेजस्वी राजा या क्षत्र वर्ग भी (शुक्र-सद्मनाम्) उत्तम गृह बना कर रहने वाली (उषसाम्) उसको चाहने वाली प्रजाओं वा शत्रु को भस्म करने वाली प्रजाओं के (अनीके) प्रमुख भाग वा दल सैन्य में (चित्रं दृशीकम् अर्णः) अद्भुत दर्शनीय तेज को (विदत्) प्राप्त करे और करावे। (अयं) और वह (मरुत्वान्) वायुवत् बलवान् वीर पुरुषों और प्रजा वर्गों का स्वामी, (वृषभः) मेघवत् वा सूर्यवत् ही प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला होकर (महता स्कम्भनेन द्याम्) बड़े भारी थामने वाले सूबल सेर्य जिस प्रकार आकाश के चन्द्रादि पिण्डों को धारण करता है

उसी प्रकार (महता स्कम्भनेन) बड़े भारी थामने के बल से (महान्) महान् होकर (द्याम् अस्तभ्नात्) चाहने वाली प्रजा वा पृथिवी को अपने वश करे। (२) इसी प्रकार गृहपति कामना योग्य शुद्ध गृह में बसने वाली दाराओं के सहयोग में (अर्णः) धन प्राप्त करे। बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ और दृढ़ प्राणवान् होकर बड़े बल से बलवान् होकर (द्याम्) नाना कामना वाली पत्नी को धारण करे। इति त्रिंशो वर्गः ॥

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम्।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (शूर) शूरवीर! (धृषत्) शत्रुओं को धर्षण करने में समर्थ होकर (वसूनाम् समरे) राष्ट्र में बसे प्रजाजन के संगम स्थान तथा (वसूनां समरे) राष्ट्र बसाने वाले अन्य राजाओं के संग्राम में विघ्नकारी वा बढ़ते शत्रु का नाशकारी होकर (कलशे) पात्र में रक्खे जल के समान (कलशे) राष्ट्र में विद्यमान (सोमम्) सर्व शासकपद तथा ऐश्वर्य को (पिब) पान कर, उपभोग वा पालन कर। सूर्य जिस प्रकार (माध्यन्दिने सवने) मध्याह्न में प्रखर ताप वाला होकर जल सोखता है उसी प्रकार तू भी (सवने) अभिषेक काल वा शासन-कार्य में तीक्ष्ण होकर (आ वृषस्व) सर्वत्र उत्तम प्रबन्ध कर। और (रयिस्थानः) ऐश्वर्य का आश्रय होकर (अस्मासु) हम में भी (रयिम् धेहि) ऐश्वर्य स्थापन कर।

इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन्! तू (नः) हमें (पुरः एता इव) अग्रगामी नायक के समान (प्र पश्य) अच्छी प्रकार देख, हमारे सुख दुःख का अच्छी प्रकार विचार कर। (नः) हमें (वस्यः)

श्रेष्ठ धन (प्रतरं) सब दुःखों से पार करने वाला (अच्छ प्र नय) अच्छी प्रकार हमें दे । तू (सुपारः) उत्तम पूर्ण और पालन करने हारा होकर (अति पारयः भव) सब संकटों से पार करने वाला हो । और तू (नः) हमारे भी (सु-नीतिः) उत्तम सुखकारक नीति वाला और (वाम-नीतिः) सुन्दर नीति वाला (भव) हो ।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (उरु) बड़े भारी (लोकं) उत्तम लोक, अभ्युदय और ज्ञानमय प्रकाश को (अनु नेषि) प्राप्त करा । तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (स्वर्वत्) सुखयुक्त (अभयं) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाश और (स्वस्ति) सुख कल्याण (अनु नेषि) प्राप्त करा । हे राजन् ! हम लोग (ते) तुझ (स्थविरस्य) वृद्ध, अनुभवी की (ऋष्वा) बड़े २ (बाहू) बाहुओं को (बृहन्ता) बड़े शरणदायक आश्रयवत् (उपस्थेयाम) प्राप्त करें ।

वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! अन्न के देने हारे ! तू (वरिष्ठे) बहुत बड़े और अति उत्तम (बन्धुरे) प्रेमयुक्त बन्धन में (नः आधाः) हमें रख । और उत्तम प्रबन्धयुक्त राष्ट्र में हमें स्थापित कर । और (वहिष्ठयोः) खूब सुख से वहन करने में समर्थ (अश्वयोः) दो घोड़ों के आश्रय पर जिस प्रकार रथ को सुख से ले जाते हैं उसी प्रकार (वहिष्ठयोः) राज्य कार्य-भार को वहन करने वाले दो उत्तम पुरुषों के आश्रय पर हे (शतावन्) सैकड़ों ऐश्वर्यों व सैकड़ों वीरों के स्वामिन् ! शतक्रतो ! शतपते ! (इषां) सेनाओं में से (वर्षिष्ठाम् इषम्) खूब शरवर्षा करने वाली बहुत बड़ी सेना को (आ वक्षि) धारण कर । और (इषं वर्षि-

ष्ठाम् इषम्) अन्नों के बीच में से बहुत बढ़े हुए अन्न सम्पदा को हमें प्रदान कर। हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू (अर्यः) स्वामी (नः रायः) हमारे धनों को (मा तारीत्) विनष्ट न कर।

इन्द्र॒ मृ॒ळ मह्यं॑ जी॒वातु॑मिच्छ चो॒दय॒ धिय॒मय॑सो॒ न धारा॑म्।
यत्कि॒ञ्चाहं त्वा॒युरि॒दं वदा॑मि॒ तज्जु॑षस्व कृ॒धि मा॑ दे॒वव॑न्तम्॥१०॥३१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सब सुखों के देने हारे! प्रभो! तू (मह्यं मृड) मुझे सुखी कर और (मह्यं जीवातुम् इच्छ) मेरे दीर्घ जीवन की इच्छा कर। (मह्यं धियं धारां च) बुद्धि और वाणी दोनों को (अयसः धाराम् न) लोहे के बने शस्त्र की धारा के समान अति तीव्र और तीक्ष्ण बनाकर (चोदय) उनको सन्मार्ग में चला। (अहं) मैं (त्वायुः) तेरी कामना करता हुआ (यत् किं च इदं वदामि) यह जो कुछ भी तेरे समक्ष कहूं (तत् जुषस्व) उसे तू स्वीकार कर और (मा मुझे (देववन्तं) उत्तम गुणवान् और उत्तम मनुष्यों का स्वामी (कृधि) कर। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

त्रा॒तार॒मिन्द्र॑मवि॒तार॒मिन्द्रं॒ हवे॑हवे सु॒हवं॒ शूर॒मिन्द्र॑म्।
ह्वया॑मि श॒क्रं पु॑रुहू॒तमिन्द्रं॑ स्व॒स्ति नो॑ म॒घवा॑ धा॒त्विन्द्रः॑॥११॥

भा०—मैं प्रजाजन (त्रातारम्) त्राण करने वाले, पालक (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् को (अवितारम् इन्द्रम्) ज्ञान रक्षादि देने वाले अविद्या आदि दोषों के नाशक, (शूरम्) शत्रुहिंसक, (इन्द्रम्) सेना के स्वामी, (सु-हवं) उत्तम नाम वाले वा उत्तम संग्रामकारी पुरुष को (हवे-हवे) प्रति संग्राम में (ह्वयामि) पुकारता हूं। और (शक्रं) शक्तिशाली (पुरु-हूतं) बहुतों से आह्वान करने योग्य (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शुभ गुण-धारी पुरुष को भी मैं 'इन्द्र' नाम से ही कहता हूं। और (मघवा) उत्तम धनवान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यप्रद पुरुष (नः स्वस्ति धातु) हमें कल्याण, सुख प्रदान करे।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता, दुष्टों का विदारक राजा, सेनापति (सु-त्रामा) प्रजा का सुख से, और उत्तम रीति से पालन करने वाला, (स्व-वान्) अपने नाना वन्धु भृत्यादि से युक्त और 'स्व' अर्थात् नाना धनों का स्वामी (सु-मृडीकः) उत्तम सुखप्रद, कृपालु, (अवोभिः) उत्तम रक्षा साधनों, ज्ञानों और तृप्तिकारक अन्नों से (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों को जानने और समस्त धनों को प्राप्त करने वाला (भवतु) हो। वह (द्वेषः बाधतां) समस्त द्वेष करने वाले शत्रुओं को पीड़ित करे और (अभयं कृणोतु) हमें भय से रहित करे। जिससे हम सब (सु-वीर्यस्य पतयः) उत्तम बल वीर्य के पालक, स्वामी हों।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (तस्य) उस (यज्ञियस्य) दान सत्कार, मान पूजा आदि के योग्य, पुरुष के (सु-मतौ) शुभ बुद्धि और (भद्रे) कल्याणकारी (सौमनसे) उत्तम मनन और ज्ञानयुक्त व्यवहार के (अपि स्याम) अधीन रहें। उसकी उत्तम सलाह और सद्विचार के अधीन रहें। (सः) वह (सु-त्रामा) सुखपूर्वक प्रजा के रक्षक (स्व-वान्) धन, भृत्य आदि वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे द्वेषः) हमारे से द्वेष करने वालों को (आरात् चित्) दूर से ही (सनुतः) सदा, (युयोतु) हमसे दूर कर दिया करे।

अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ऊर्मिः प्रवतः न) जल राशि, या जल स्रोत, वा जल-तरंग जिस प्रकार नीचे प्रदेशों की ओर जाते हैं उसी प्रकार

(गिरः) स्तुतिकर्त्ताओं की वाणियां, और विद्वान् जन, (ब्रह्माणि) समस्त वेद और धनैश्वर्य, (नि-युतः) लक्षों की संख्या में वा (नि-युतः) तेरे अधीन रहकर युद्ध करने वाले, वा अधीन नियुक्त अश्वादि जन, (त्वे) तेरे अधीन ही (अव धवन्ते) चलते हैं तुझको पति के समान स्वीकार करते हैं। तू भी हे (वज्रिन्) बलवन् ! (पुरूणि सवनानि) बहुत से ऐश्वर्यों को (ऊरु राधः न) बहुत से धन के समान और (अपः) आप्त प्रजाजनों को (गाः) भूमियों, उत्तम वाणियों और (इन्द्रम्) आह्लादक दयालु पुरुषों को भी (सं युवसे) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है।

क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत्।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५॥३२॥

भा०—(यत्) जो (मघवा) देने योग्य ऐश्वर्य का स्वामी (उग्रम् इत्) उग्र, बलवान्, समर्थ पुरुष को ही (विश्वहा) सदा (अवेत्) प्राप्त करता है, और जिस प्रकार (पादौ प्रहरन् इव) पैरों को चलाता हुआ पुरुष (पूर्वम् अपरं अन्यम्-अन्यम् कृणोति) पहले पैर को पीछे और दूसरे को आगे करता है उसी प्रकार जो (शचीभिः) अपनी बुद्धियों, शक्तियों और वाणियों द्वारा (पूर्वम् अपरम् अन्यम्-अन्यम्) पूर्व विद्यमान पदाधिकारी को पद से च्युत और पद पर अनियुक्त, पश्चात् आये नव युवक पुरुष को पद पर नियुक्त करता अथवा सैन्य सञ्चालन करते हुए आगे के जनों को पीछे और पीछे वालों को आगे करता रहता है, (कः ईं स्तवत्) उसको कौन वर्णन या उपदेश कर सकता है, (कः पृणात्) और उसको कौन प्रसन्न कर सकता है और उसका (कः यजाते) कौन सदा साथ दे सकता है ? यह वह जाने। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्॥१६॥

भा०—(वीरः) वीर पुरुष (उग्रम् उग्रम्) प्रत्येक उग्र, तेजस्वी

पुरुष को (दमायन्) दमन करता हुआ, और (अन्यम् अन्यम्) भिन्न २, नाना व्यक्तियों को (अति नेनीयमानः) एक दूसरे से बढ़ाता हुआ, (एधमान-द्विट्) अपने से बढ़ते हुए, प्रतिस्पर्धी शत्रु से द्वेष करता हुआ (उभयस्य राजा) शासकवर्ग और शास्यवर्ग दोनों के बीच चमकता हुआ, दोनों का राजा होकर (विशः) अपने शासन में प्रविष्ट, या बसे हुए (मनुष्यान्) मनुष्यों को वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यप्रद पुरुष (चोष्कूयते) बुलाता है, अपने अधीन उन पर शासन करता है।

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, अन्यों को वृत्ति आदि धन देकर पालने वाला राजा (पूर्वेषां) अपने से पूर्व विद्यमान बड़े अनुभवी लोगों के (सख्या) सख्य अर्थात् मित्रता के बल से वह (अनानुभूतीः) अपनी अनुभवशून्यताओं वा अज्ञात बातों को (वितर्तुराणः) विविध प्रकार से विनाश करता हुआ अपने अज्ञानों को (परावृणक्ति) दूर करता है। और (अपरेभिः) अन्य नाना पुरुषों के साथ मिल कर भी (अनानुभूतीः) अनुभवरहित सामर्थ्यहीन, असहृदय जनों को भी (अव-धून्वानः) दूर करता हुआ (एति) आगे बढ़ता है। इस प्रकार वह सूर्य के समान (पूर्वीः शरदः) अपने पूर्व की आयु के वर्षों को (तर्तरीति) व्यतीत करे।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८॥

भा०—राजा और जीवात्मा का वर्णन। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (रूपं रूपं) प्रत्येक रूप अर्थात् प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति का (प्रति रूपं) प्रतिनिधि (बभूव) हो। (अस्य) इस राजा का (तत्) वह रूप (प्रति-चक्षणाय) प्रत्यक्ष में देखने और कहने के लिये है। (इन्द्रः)

वह ऐश्वर्यवान् पुरुष (मायाभिः) अपनी नाना बुद्धियों और नाना शक्तियों से (पुरु-रूपः ईयते) बहुत प्रकार का जाना जाता है । क्योंकि (अस्य) इसके अधीन (शता दश) हजारों (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) नियुक्त रहते हैं । इसी प्रकार (इन्द्रः) जीवात्मा भी विद्युत् के समान (रूपं-रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक प्राणि के रूप में तदाकार होकर विराजता है । (तत् अस्य रूपं प्रति चक्षणाय) उसका वह रूप सबको प्रकट नहीं है वह प्रत्येक के लिये गुरु द्वारा कथन करने और अध्यात्म दृष्टि से देखने योग्य है । वह जीवात्मा (मायाभिः) नाना बुद्धियों, संकल्पों से ही (पुरु-रूपः ईयते) नाना रूप का जाना जाता है । (अस्य) इसके शासन में, देह में ही (दश शता हरयः) दस सैकड़ों प्राणगण अश्वों वा भृत्यों के समान (युक्ताः) जुड़ कर ज्ञानतन्तु, तथा शक्तितन्तुओं के रूप में काम करते हैं ।

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥

भा०—जिस प्रकार (रथे) रथ में (हरिता) वेग से जाने वाले अश्वों को (युजानः) लगाता हुआ रथी विराजता है उसी प्रकार राजा भी (रथे) अपने रमणीय, उत्तम राष्ट्र में (हरिता) कार्य भार उठा सकने में समर्थ संचालकों को (युजानः) नियुक्त करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी सूर्य के समान चमकता हुआ (इह) इस लोक में (भूरि राजति) बहुत अधिक प्रकाशित होता है । यदि वह इतना तेजस्वी न हो तो (कः) कौन अतेजस्वी पुरुष (विश्वाहा) सब दिनों (द्विषतः पक्षः) शत्रु को सन्तप्त करने हारा होकर (आसते) विराज सकता है । (उत) और (आसीनेषु सूरिषु) विद्वानों के विराजते हुए उनके बीच में भी कौन तेजस्वी होकर सिंहासन पर विराज सकता है । (२) इसी प्रकार (त्वष्टा) अति सूक्ष्म, कर्त्ता जीव (रथे) इस देह में (हरिता) विषयों का ग्रहण

करने वाले इन्द्रियों को (युजानः) जोड़ता हुआ वा योगी आत्मा (हरिता) प्राण अपान दोनों को दो अश्वों के समान ही योगद्वारा वश करता हुआ (सूरिषु आसीनेषु) देह के प्रेरक प्राणों के विराजते हुए भी (द्विषतः पक्षः विराजते) अप्रीतियुक्त द्वन्दों का भी ग्रहण करता रहता है।

अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम्॥२०॥३३

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! यह (भूमिः) भूमि (उर्वी सती) बहुत बड़ी होती हुई (अंहू-रणा) आने वाले प्राणियों से रण अर्थात् परस्पर युद्ध और रमण क्रीड़ा आदि करने योग्य (अभूत्) होती रही है। इस भूमि में हम लोग (अगव्यूति क्षेत्रम्) विना मार्ग के क्षेत्र या निवासार्थ भूमि को यदि (आगन्म) प्राप्त हों तो हे (बृहस्पते) राष्ट्र के स्वामिन् ! तू (गविष्टौ) भूमि के प्राप्त करने पर (प्र चिकित्स) अच्छी प्रकार गुण दोष आदि जान। (इत्था) इस प्रकार (सते जरित्रे) उत्तम सज्जन विद्वान् पुरुष के लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (पन्थाम् प्र चिकित्स) मार्ग का भी ज्ञान कर। (२) अध्यात्म में महती प्रकृति तमोमय होने से पापमयी होती है। जीव इस देह रूप ऐसे क्षेत्र में आजाता है जहां उसे जन्म-मरण के बन्धन से छूटने का मार्ग नहीं मिलता। इसलिये विद्वान जन मार्ग का उपदेश किया करे। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च॥२१॥

भा०—जिस प्रकार (जाः) उत्पन्न हुआ सूर्य (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः कृष्णाः) एक समान काली रात्रियों को (अप असेधत्) दूर करता है और (अन्यम् अर्धं) दूसरे आधे को (असेधत्) प्राप्त करता है और जिस प्रकार (वृषभः) वर्षा का मूल कारण सूर्य

(उद-व्रजे) जल के गमनयोग्य मार्ग आकाश में (वस्नयन्ता) रहना चाहते हुए (वर्चिनं शम्बरं च) तेजोमय मेघ और जल दोनों को (अहन्) आघात करता है उसी प्रकार राजा भी (जाः) प्रकट होकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः) एक समान (कृष्णाः) घोर प्रजाकर्षण, प्रजा-पीड़नकारिणी शत्रु सेनाओं को (सद्मनः) अपने स्थान से (अप असेधत्) दूर करे और (अन्यम्) दूसरे (अर्धम्) समृद्ध राष्ट्र को (असेधत्) प्राप्त करे। वह (वृषभः) बलवान् होकर (उद-व्रजे) जल के मार्ग नदी आदि के तटों पर (वर्चिनं) तेजस्वी (शम्बरं) शान्तिनाशक (वस्न-यन्ता दासा) नाना आच्छादन, तथा वस्त्र एवं निवासादि चाहने वाले (दासा) प्रजानाशक शत्रु स्त्री पुरुषों को (अहन्) दण्डित करे।

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

भा०— हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (प्र स्तोकः इत् नु) तेरी उत्तम स्तुति करने वाला प्रजाजन ही (ते) तुझे (राधसः) धनै-श्वर्य से पूर्ण (दश कोशयीः) कोशों या ख़ज़ानों से भरी पूरी दस भूमियों और (दश वाजिनः) बल, वेग, अन्न धनादि से युक्त दशों प्रकार के पदार्थों को भी (अदात्) प्रदान करता है। (दिवः-दासात्) ज्ञानप्रकाश और भूमि को तेरे हाथ सौंप देने वाले दाता ब्राह्मणवर्ग से प्राप्त (अतिथि-ग्वस्य) अतिथिवत् पूज्य होकर सम्मानयोग्य वाणी वा गौ, भूमि को प्राप्त करने वाले तेरे ही (राधः) धनैश्वर्य को हम लोग (शाम्बरं वसु) मेघ से बरसे जल के समान समग्र रूप से (प्रति अग्रभीष्म) हम प्राप्त करें। प्रजा राजा को सब प्रकार का ऐश्वर्य दे। ब्राह्मणवर्ग राजा को अतिथिवत् पूज्य जान कर उसके हाथ भूमि ऐसे ही सौंपता है जैसे सूर्य मेघ को भूमि देता है। तब उस राजा के ऐश्वर्य का प्रजाजन ऐसे ही उपयोग करे जैसे वे मेघ के जल का उपयोग करते हैं।

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३ ॥

भा०— मैं (दिवः-दासात्) कामना करने योग्य ज्ञानप्रकाश और भूमि आदि के नाना पदार्थों के देने वाले से (दश अश्वान्) दश अश्व (दश) दश (कोषान्) कोश (दश अधि-भोजना) दस प्रकार के उत्तम २ भोजन और (वस्त्रा) पहनने के वस्त्र (दशो हिरण्य-पिण्डान्) दस सुवर्णादि के पिण्ड भी (असानिषम्) प्राप्त करूं । (२) अध्यात्म में— अश्व इन्द्रियें, दश कोश अन्नमयादि पांच, अन्तःकरणचतुष्ट, और आत्मा इन्द्रियों के दश अर्थ, दशधा गात्र दश पिण्ड ।

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः ।
अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४ ॥

भा०—(अश्वथः) अश्वों, अश्व सैन्यों का स्वामी, राष्ट्र का भोक्ता राजा (अथर्वभ्यः) अहिंसक और राज्य के पालक विद्वान् शासकों के उपयोग के लिये (प्रष्टि-मतः) स्वतन्त्र इच्छा से रहित, पूछ कर काम करने के स्वभाव वाले, अधीन (दश रथान्) दस रथों, रथ सैन्यों को और (शतं च गाः) सौ भूमियां या सौ बैल (पायवे) उत्तम पालक अध्यक्ष के लिये (अदात्) देवे ।

महि राधो विश्वजन्यं दधाना-
न्भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥ २५ ॥ ३४ ॥

भा०—(सार्ञ्जयः) नाना न्याययुक्त राज्य-कार्यों को करने में समर्थ पुरुषों का अधिपति राजा (विश्वजन्यं) सर्वजनहितकारी (महि राधः) बड़े भारी धन को (दधानान्) धारण करने वाले (भरद्-वाजान्) ऐश्वर्य अन्नादि के द्वारा प्रजा का पालन करने में समर्थ ज्ञानी पुरुषों को (अभि अयष्ट) आदर पूर्वक प्रदान करे । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

वन॑स्पते वी॒ड्व॑ङ्गो॒ हि भू॒या अ॒स्मत्स॑खा प्र॒तर॑णः सु॒वीरः॑ ।
गोभि॑ः सन्न॑द्धो असि वी॒ळय॑स्वास्था॒ता ते॑ जयतु॒ जेत्वा॑नि ॥२६॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान तेजस्विन् ! सेवनीय ऐश्वर्य के पालक ! वा शत्रुहिंसक सैन्य के स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! तू (वीडु-अङ्गः) शरीर और राज्य के सुदृढ़ अंगों वाला, (प्रतरणः) नौकावत् वा रथवत् संकटों से पार उतारने, मार्ग पार कराने वाला (सु-वीरः) उत्तम वीर होकर (अस्मत् सखा भूयाः) हमारा मित्र और हमको अपना मित्र बनाये रखने वाला हो । हे राजन् तू (सन्नद्धः) अच्छी प्रकार तैयार होकर (गोभिः) वाण के फेंकने वाली डोरियों से, (वीडयस्व, वीरयस्व) वीर कर्मकर, शत्रुओं पर वाण फेंक । वा हे राजन् तू (संनद्धः) अच्छी प्रकार कस कसाकर, सुसज्जित होकर (गोभिः) उत्तम वाणियों और भूमियों से (वीडयस्व) अपने को अधिक दृढ़ कर । हे विद्वन् ! तू (गोभिः वीडयस्व वि-ईरयस्व) विविध विद्याओं का उपदेश कर । तू (आ-स्थाता असि) अध्यक्ष होकर विराज और (ते) तेरे अधीन सैन्य वर्ग (जेत्वानि जयतु) विजय करने योग्य शत्रु सैन्यों को विजय करे।

दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः पर्योज॒ उद्भृ॑तं॒ व॒न॒स्पति॑भ्य॒ः पर्याभृ॑तं॒ सहः॑ ।
अ॒पामो॒ज्मानं॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ ह॒विषा॒ रथं॑ यज ।२७।

भा०—(दिवः) सूर्य वा आकाश से और (पृथिव्याः) पृथिवी से (परि उद्भृतं ओजः) प्राप्त और उत्पन्न हुए तेज, और अन्न तथा (वनस्पतिभ्यः) वनस्पतियों से (परि आभृतं) प्राप्त किये (सहः) उत्तम बल को हे राजन् ! तू (यज) एकत्र प्राप्त कर । और (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) आच्छादित (अपाम् ओज्मानं) जलों के बल रूप (वज्रं) विद्युत रूप तेज और (रथं) उत्तम यानादि को भी (हविषा) ग्रहण करने के साधनों द्वारा (यज) सुसंगत कर । उसी प्रकार हे राजन् ! तू (हविषा) अन्न, आदि के बल पर

(इन्द्रस्य वज्रं) ऐश्वर्यवान शत्रुहन्ता राजा के शस्त्रबल और (रथं) रथ या नाभि को जो (गोभिः परि आवृतम्) भूमियों से घिरा हो जिसके अधीन नाना देश हों उनको (यज) प्राप्त कर । वह राजा का बल कैसा हो—(दिवः परिभृतम्) सूर्य से निकले तेज के समान विद्वान् तेजस्वी पुरुष वर्ग से प्राप्त (ओजः) पराक्रमस्वरूप हो और जो (पृथिव्याः परि उद्-भृतं) भूमि से उत्पन्न अन्न के समान परिपोषक, प्रजा बल, और (वनस्पतिभ्यः परि आभृतम्) बड़े वृक्षों के समान प्रजा के आश्रयप्रद शत्रु हिंसक सैन्य के पालक नायकों द्वारा एकत्र किया गया (सहः) शत्रु पराजयकारी बल है उसको और (अपाम् ओज्मानम्) आप्त प्रजा वर्गों के पराक्रम को भी (यज) एकत्र संगत कर ।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑ ।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥२८॥

भा०—इन्द्र का वज्र। हे (देव) विजय के इच्छुक! हे (रथ) रम्यस्वभाव ! वा रथवत् राष्ट्र के प्रजापालन को अपने कन्धों लेकर चलने हारे राजन् ! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र का (वज्रः) बल पराक्रम रूप है ! तू (मरुताम् अनीकम्) समस्त मनुष्यों का सैन्यवत् प्रमुख, एवं बलशाली है । तू (मित्रस्य गर्भः) मित्र राजवर्ग के अध्यक्ष में स्थित उनको भी अपने वश करने वाला है, तू (वरुणस्य नाभिः) श्रेष्ठ, पुरुष वर्ग का 'नाभि' अर्थात् उनके बीच केन्द्र के समान उनके अपने से सम्बद्ध करने वाला है । (सः) वह तू (नः) हमारी (इमां) इस (हव्य-दातिम्) ग्रहण करने योग्य भेट आदि के दान को (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (हव्या) ग्राह्य पदार्थों को (प्रति गृभाय) ग्रहण कर ।

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त् ।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥ २९ ॥

भा०—हे (दुन्दुभे) द्वन्द्व युद्ध में सबसे अधिक प्रकाशित वीर ! हे नक्कारे के समान गर्जने हारे ! हे वृक्ष को कुठार के समान शत्रुको छिन्न भिन्न करने वाले ! अथवा हे शत्रुओं को नाश करने हारे ! तू (पृथिवीम्) भूमिवासी (उत द्याम्) तेजस्विनी वा ऐश्वर्यादि को चाहने वाली वा व्यापार करने में लगी प्रजा को (उप श्वासय) आश्वासन और उनको प्राणवत् जीवन वृत्ति प्रदान कर । (ते) तेरे अधीन (पुरुत्रा) बहुत प्रकार के (जगत्) गतिशील नाना जंगम प्राणीगण (वि स्थितं) विविध प्रकार से स्थित होकर (मनुतां) तेरा मान करे । (सः) वह तू (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक भूमि पर कृषि अन्न के उत्पादक समृद्ध प्रजावर्ग (देवैः) विद्वान् पुरुषों से (सजूः) मिलकर उनके सहयोग से (शत्रून्) शत्रुओं को (दूराद् दवीयः) दूर से भी दूर तक (अपसेध) भगादे ।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ३०

भा०—हे (दुन्दुभे) नक्कारे के समान घोर गर्जन करने हारे ! तू शत्रुओं को (आ क्रन्दय) खूब ललकार और रुला । तू (नः) हममें (बलं ओजः) बल और पराक्रम (आ धाः) धारण करा । और (दुरिता) बुरे व्यसनों को (बाधमानः) दूर करता हुआ तू (निः स्तनिहि) गर्जना कर । (इतः) इस राष्ट्र से तू (दुच्छुनाः) हमें दुःखदायी दुष्ट कुत्तों के स्वभाव वाले, वा हमारे दुःखों को सुख मानने वाले शत्रुजनों को (अप प्रोथ) दूर मार भगा । तू (इन्द्रस्य) विद्युत् के (मुष्टिः) मुक्के के समान शत्रुसंहारक वा समृद्ध राष्ट्र का मुष्टिवत् संगठित बल (असि) है । वह तू सदा (वीडयस्व) पराक्रम किया कर ।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु३१।३५।७

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (अमूः) उन और (इमाः) इन अपनी और पराई सेनाओं को (आ अज) दूर हटा और भेज (प्रति वर्त्तय, आवर्त्तय च) परे लौटा दे और अपनी ओर लौटा ले । पराई सेनाओं को परे करदे और अपनी सेनाओं को वापस लौटा ले । (केतुमत् दुन्दुभिः) ध्वजा से युक्त नक्कारा जिस प्रकार गर्जता है उसी प्रकार तू राजा (वावदीति) बराबर अपनी सेनाओं को आज्ञा दे । (नः) हमारे (नरः) नायक जन (अश्व-पर्णाः) अश्वों पर चढ़कर वेग से जाने वाले (सञ्चरन्ति) एक साथ मिलकर गमन करें और (अस्माकं रथिनः) हमारे रथारोही लोग (जयन्तु) विजय प्राप्त करें । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

* इति सप्तमोऽध्यायः *

अष्टमोऽध्यायः

[४८]

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ तृणपाणिकं पृश्निसूक्तं ॥ १—१० अग्निः । ११, १२, २०, २१ मरुतः । १३—१५ मरुतो लिंगोक्ता देवता वा । १६—१९ पूषा । २२ पृश्निर्द्यावाभूमी वा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ४, १४ बृहती । ३, १९ विराड्बृहती । १०, १२, १७ भुरिग्बृहती । २ आर्ची जगती । १५ निचृदतिजगती । ६, २१ त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ९ भुरिगनुष्टुप् । २० स्वराडनुष्टुप् । २२ अनुष्टुप् । ११, १६ उष्णिक् । १३, १८ निचृदुष्णिक् ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

य॒ज्ञाय॑ज्ञा वो अ॒ग्नये॑ गि॒रागि॑रा च॒ दक्ष॑से ।
प्रप्र॑ व॒यम॒मृतं॑ जा॒तवे॑दसं प्रि॒यं मि॒त्रं न शं॑सिषम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् जिज्ञासु पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (यज्ञे यज्ञे) प्रत्येक यज्ञ, परस्पर के सत्संग के अवसर पर (वः) आप लोगों के प्रति

(गिरा गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे अग्नये) अग्नि के समान सब पापों और पापियों को भस्म कर देने वाले, क्रियाकुशल, दक्ष, व्यवहारज्ञ स्वामी या प्रभु के (अमृतम्) अविनाशी स्वरूप का (प्र-प्र) निरन्तर वर्णन उत्तम पद के लिये प्रस्ताव किया करें। हे जिज्ञासु जनो! मैं भी उसी (जात-वेदसं) समस्त ज्ञानों के जानने वाले सब ऐश्वर्यों के स्वामी को (प्रियं मित्रं न) प्रिय मित्र के तुल्य ही (प्र-प्र शंसिषम्) अच्छी प्रकार प्रशंसा करूं।

ऊर्जो नपा॑तं॒ स हि॒नाय॑म॒स्म॒युर्दाशे॑म ह॒व्यदा॑तये।
भुव॒द्वाजे॑ष्ववि॒ता भुव॑द्वृ॒ध उ॒त त्रा॒ता त॒नूना॑म् ॥ २ ॥

भा०—(सः हिन) वह निश्चय से (अस्मयुः) हमारा प्रिय स्वामी, (तनूनाम्) हमारे शरीरों का (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक (भुवत्) हो। वह (वृधः भुवत्) हमारा बढ़ाने हारा और (त्राता) पालक भी (भुवत्) हो। हम उस (ऊर्जः नपातम्) बल के पुत्र, बल-वान् पिता के पुत्र, बल को नष्ट न होने देने वाले नायक को प्रस्तुत करके (हव्य-दातये) कर आदि ग्राह्य पदार्थों को देने के लिये तैयार रहें और अपना अंश नियम से उसे (दाशेम) देते रहें।

वृषा॒ ह्य॑ग्ने अ॒जरो॑ म॒हान्वि॒भास्य॒र्चिषा॑।
अज॑स्रेण शो॒चिषा॒ शोशु॑चच्छुचे सु॒दीति॑भिः॒ सु दी॑दिहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान चमकने हारे तेजस्विन्! तू (हि) क्योंकि (वृषा) सुखों का मेघवत् वर्षण करने हारा और (अर्चिषा) विद्युत्वत् कान्ति से (वि भासि) प्रकाशित होता है तू (अजरः) कभी जीर्ण न होने वाला, अविनाशी, (महान्) महान्, (अजस्रेण) निरन्तर, अविनाशी, (शोचिषा) तेज से (शोशुचत्) चमकता हुआ हे (शुचे) शुद्ध स्वभाव! तू (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से हमें भी (सु दीदिहि) अच्छी प्रकार प्रकाशित कर।

मह्वो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! (महः) बड़े (देवान्) किरणों को सूर्यवत् (यजसि) संगत करते हो, उत और (दंसना) नाना कर्मों को भी (यक्षि) संगत करते हो, (तव क्रत्वा) तेरे कर्म सामर्थ्य और प्रजा बल से (आनुषक्) निरन्तर हम भी (यक्षि) यज्ञ करें, परस्पर मिलकर रहें । तू (सीम्) सब ओर से (अवसे) रक्षा के लिये (अर्वाचः कृणुहि) बड़े देवों, विद्वानों को हमें प्राप्त करा । और (वाजा) नाना ऐश्वर्यों को (रास्व) प्रदान कर (उत उ) और (वंस्व) न्यायपूर्वक विभक्त कर ।

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार (आपः) समुद्र के जल, (अद्रयः) मेघ (वना) सूर्य के किरण और काष्ठ (ऋतस्य गर्भम्) तेज को अपने भीतर धारण करने वाले अग्नि को (पिप्रति) अपने में विद्युत्, तेज, ताप आदि रूप में धारण करते हैं और (यः) जो (नृभिः सहसा मथितः जायते) मनुष्यों से बलपूर्वक मथा जाकर प्रकट होता है वह (पृथिव्याः अधि) पृथिवी के ऊपर और (अधि सानवि) अन्तरिक्ष के ऊपर भी विराजता है उसी प्रकार (यम्) जिस (ऋतस्य गर्भम्) सत्य न्याय व्यवहार को अपने में धारण करने वाले पुरुष को (आपः) आप्तजन, (अद्रयः) मेघवत् वा पर्वत तुल्य उदार, अचल, क्षत्रिय वीर पुरुष और (वना) शत्रुहिंसक सैन्यगण, (पिप्रति) प्रसन्न करते वा पूर्ण करते हैं जिसकी शक्ति को बढ़ाते हैं, और (यः) जो (नृभिः) नायक पुरुषों द्वारा (मथितः) परस्पर वाद विवाद द्वारा निर्णय पाकर (सहसा)

अपने शत्रुविजयी बल के कारण (जायते) प्रकट होता है, वह (पृथिव्याः अधि सानवि) पृथिवी के उच्च पद पर उदयाचल पर सूर्य के तुल्य विराजता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि । तिरस्तमो दद्दश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषोवृषा ॥६॥

भा०—जिस प्रकार जो अग्नि (भानुना) सूर्यस्थ प्रकाश से (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों को (आ पप्रौ) सब तरफ व्याप लेता है, और जो (धूमेन दिवि धावते) धूम से आकाश में ऊपर जाता है या जो (दिवि) दूर आकाश में (धूमेन धावते) धूमाकार होकर नीहारिका रूप से गति करता है । और जो (श्यावासु ऊर्म्यासु) काली रातों में (तमः तिरः) अन्धकार को दूर करके (आ दद्दशे) सब दूर तक दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो नायक, (अरुषः) तेजस्वी, शत्रुओं के मर्मों पर आघात करने वाला पुरुष (भानुना) अपने तेज से (रोदसी उभे) अपनी और शत्रु दोनों की सेनाओं वा भूमियों को (आपप्रौ) व्याप लेता है और जो (धूमेन) शत्रु को कंपा देने वाले सामर्थ्य से (दिवि) भूमि पर (धावते) वेग से आक्रमण करता है । (श्यावासु ऊर्म्यासु) श्याम वर्ण की सस्य श्यामला भूमियों में (तमः तिरः) शत्रु दल को अन्धकारवत् दूर करके (वृषा) सूर्यवत् वा मेघवत् (आ) विराजता है, वही (अरुषः) तेजस्वी, रोष रहित (वृषा) बलवान्, राज्य का प्रबन्धक और सुखों की प्रजा पर वृष्टि करने हारा राजा (श्यावाः) समृद्ध प्रजाओं को (आपप्रौ) सब प्रकार से पूर्ण करता है ।

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! जिस प्रजाकर अग्नि (बृहद्भिः अर्चिभिः) बड़ी ज्वालाओं से और (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध

निर्मल प्रकाश से (समिधानः) प्रकाशमान होता है उसी प्रकार हे (देव) तेजस्विन्! दानशील विद्वन्! राजन्! प्रभो! तू (बृहद्भिः) बड़े भारी (अर्चिभिः) अर्चना करने योग्य गुणों और सहायकों से और (शुक्रेण) शुद्ध, निर्मल (शोचिषा) तेज से (भरद्वाजे) बल, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि को धारण करते हुए राष्ट्र वा शिष्यादि में (समिधानः) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ विराज। हे (यविष्ठ्य) अति बल-शालिन्! हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन्! सदाचारिन्! तू (रेवत्) अन्नादि सम्पन्न होकर (नः दीदिहि) हमें भी प्रकाशित कर। हे (पावक) अग्निवत् पवित्र करनेहारे! तू (द्युमत्) ज्ञान प्रकाश से युक्त होकर (नः दीदिहि) हमें भी प्रकाशित कर, हमें भी तेजस्वी और ज्ञानवान् कर।

विश्वा॑सां गृ॒हप॑तिर्वि॒शाम॑सि॒ त्वम॑ग्ने॒ मानु॑षीणाम्। श॒तं पू॒र्भिर्य॑-विष्ठ पा॒ह्यंह॑सः समे॒द्धारं॑ श॒तं हिमा॑ः स्तो॒तृभ्यो॒ ये च॒ दद॑ति ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! अग्रणी! प्रभो! राजन्! पुरुष! (त्वम्) तू (मानुषीणाम् विश्वासां विशाम्) समस्त मानुष प्रजाओं के बीच, (गृहपतिः असि) गृह स्वामी के समान, एवं उनके गृहों, घरों व स्त्री पुत्रादि का भी पालक है। हे (यविष्ठ) अति बलशालिन्! अति तरुण! हे अति शत्रुहिंसक! (ये च ददति) जो तुझे कर आदि देते हैं उनको और (समेद्धारं) तुझे चमकाने और बढ़ाने वाले प्रजावर्ग को भी (पूर्भिः) उत्तम, पालक, नगर प्रकोट आदि साधनों से (शतं हिमाः) सौ २ वर्षों तक, पूर्ण आयु भर उनकी (अंहसः पाहि) पाप और हत्याकारी जन्तु, शत्रु आदि से रक्षा कर। (स्तोतृभ्यः) उपदेष्टाओं के हितार्थ उनके (समेद्धारं) बढ़ाने वाले को भी (शतं हिमाः पाहि) सौ बरसों तक पालन कर।

त्वं न॑श्चि॒त्र ऊ॒त्या वसो॒ राधां॑सि चोदय।
अ॒स्य रा॒यस्त्वम॑ग्ने र॒थीर॑सि वि॒दा गा॒धं तु॒चे तु नः॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजाओं को भूमि पर बसाने वाले राजन् ! सबको बसाने और सब में बसने वाले प्रभो ! शिष्यादि को अपने अधीन बसाने वाले आचार्य ! गृहपते ! पितः ! (त्वं) तू (ऊत्या) रक्षा और ज्ञान सामर्थ्य से, वा उसके साथ २ (नः राधांसि) हमें नाना ऐश्वर्य (चोदय) प्रदान कर । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप, सर्वप्रकाशक ! तू (अस्य रायः) इस ऐश्वर्य का (रथीः असि) महारथी के तुल्य स्वामी है । तू (नः तुचे तु) हमारे पुत्रादि के लिये भी (गाधं विदाः) प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और बुद्धि प्राप्त करा और (चोदय) उनको सन्मार्ग में प्रेरित कर ।

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१०॥२॥

भा०—हे (अग्ने) आगे सन्मार्ग पर ले चलने हारे ! नायक ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (अदब्धैः) अहिंसक, दम्भादि वृत्तियों से रहित, (अप्र-युत्वभिः) कभी भी पृथक् न होने वाले, सदा के संगी, (पर्तृभिः) पालक पुरुषों द्वारा (तनयं तोकं) पुत्र पौत्रवत् प्रजाजन को (पर्षि) पालन, और ज्ञान धनादि से पूर्ण कर । और (नः) हमारे (दैव्या) विद्वानों के प्रति उत्पन्न हुए (हेडांसि) अनादर और क्रोध आदि के भावों को (च) और (अदेवानि ह्वरांसि) हमारे अविद्वानों दुष्टों के योग्य कुटिल कर्मों को भी (युयोधि) हम से दूर कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११॥

भा०—जिस प्रकार लोग (सबर्दुघाम् अनपस्फुराम् धेनुम् आ अजन्ति, (आ सृजन्ति) दूध देने वाली, न मारने योग्य गौ को प्राप्त करते हैं और वध बंधन आदि से मुक्त करते हैं हे (सखायः) स्नेही मित्रो !

आप लोग भी उसी प्रकार (सबर्दुघाम्) ज्ञानरस, और सुखदायक अन्न आदि को दोहन करने वाली, (अनपस्फुराम्) कभी नाश न होने वाली, अविनाश्य (धेनुम्) वेद वाणी और भूमि की (नव्यसा) नये और स्तुत्य उपाय, अध्ययनाध्यापन तथा हलाकर्षणादि से (आ अजध्वम्) प्राप्त करो और भूमि को जोड़ो, और उत्तम (वचः आ सृजध्वम्) वचन बोलो। भूमि से (वचः = पचः) परिपक्व अन्न पैदा करो।

या शर्धा॑य॒ मारु॑ताय॒ स्वभा॑नवे॒ श्रवोऽमृ॑त्यु॒ धुक्ष॑त ।
या मृ॑ळी॒के म॒रुतां॑ तु॒राणां॒ या सु॒म्नैरे॑व॒याव॑री ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (या) जो भूमि गौ के समान ही (स्व-भानवे) धनैश्वर्य के तेज से स्वयं चमकने वाले, सूर्यवत् तेजस्वी (शर्धाय) बलवान् शरीरादि के धारक, शत्रुहिंसक, (मारुताय) मनुष्यों के स्वामी राजा, वा मनुष्यों के बसे राष्ट्र के लिये (अमृत्यु श्रवः) कभी न मरने वाले नित्य, एवं मृत्यु से रहित, क्षुधा रूप मृत्यु के नाशक, यश और अन्न को (धुक्षत) प्रदान करती है और (या) जो (मरुतां) मनुष्यों और (तुराणां) क्षिप्रकारी, शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (मृडीके) सुखदायी राजा के अधीन वा सुखकारी कार्य में लगी हो (या) और जो (सुम्नैः) सुखकारी कार्यों से (एव-यावरी) वेगयुक्त अश्वों, उत्तम उपायों द्वारा प्राप्त होती है उस भूमि को प्राप्त करो। (२) इसी प्रकार वाणी 'स्व' प्रकाश वाले (मारुताय) प्राण के लिये और बल के लिये अमृत ज्ञान प्राप्त करावे जो मनुष्यों के सुख के निमित्त है, जो (सुम्नैः) उत्तम ज्ञानी जनों द्वारा उपायों से प्राप्त होता है उस ज्ञान वाणी को प्राप्त करो।

भ॒रद्वा॑जा॒याव॑ धुक्षत द्वि॒ता ।
धे॒नुं च॑ वि॒श्वदो॑हस॒मिषं॑ च वि॒श्वभो॑जसम् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! वह पूर्व कही वेदवाणी, विदुषी स्त्री और पृथ्वी रूप गौ, (भरद्-वाजाय) ज्ञान और ऐश्वर्य को धारण करने वाले

के लिये (द्विता) दोनों ही पदार्थ (अव धुक्षत) प्रेमपूर्वक नम्र होकर देती है, एक तो (विश्वदोहसं धेनुं च) वह समस्त सुख देने वाली वाणी का उपदेश करती है और (विश्वभोजसम् इषं च) समस्त विश्व का पालन करने और सबके भोजन करने योग्य अन्न भी प्रदान करती है। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग भी उस समस्त सुखों के देने वाली और सुख का पालन करने वाली दोनों प्रकार की (धेनुं) वाणी और गोवत् भूमि का और (इषं च) इष्टतम अन्न और सेनादि का (अव धुक्षत) दोहन करो और ऐश्वर्यादि प्राप्त करो।

तं व॒ इन्द्रं॒ न सु॒क्रतुं॒ वरु॑णमिव मा॒यिन॑म्।
अ॒र्य॒मणं॒ न म॒न्द्रं सृ॒प्रभो॑जसं॒ विष्णुं॒ न स्तु॑ष आ॒दिशे॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (आदिशे) शासन-कार्य करने के लिये (इद्रं न) विद्युत् के समान (सु-क्रतुं) उत्तम कर्मकुशल, (वरुणम्) इन सबको आवरण करने में समर्थ जालिया के तुल्य हिंसक के नाशक (मायिनम्) प्रज्ञावान्, बुद्धिचतुर (अर्यमणं न) शत्रुओं को वा मनुष्यों को नियम में बांधने वाले न्यायकारी पुरुष के समान (मन्द्रं) अति स्तुत्य, और (विष्णुं न) व्यापक सामर्थ्य वाले प्रभु के समान (सृप्र-भोजसं) प्राप्त हुए शरणागत की रक्षा करने वाले (तं) उस पुरुष की (स्तुषे) मैं स्तुति करता हूं। ऐसे पुरुष को ही राजपद ग्रहण करने का प्रस्ताव करूं। परमेश्वर पक्ष में—'न' 'च' के अर्थ में है।

त्वे॒षं शर्धो॒ न मारु॑तं तुवि॒ष्वण्य॑न॒र्वाणं॑ पू॒षणं॒ सं यथा॑ श॒ता।
सं स॒हस्रा॒ कारि॑षच्चर्ष॒णिभ्य॒ आँ आ॒विर्गू॒ळ्हा वसू॑ करत्
सु॒वेदा॑ नो॒ वसू॑ करत् ॥ १५ ॥

भा०—(सुवेदाः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (तुविस्वणि) बहुत भारी शब्द करने वाला (त्वेषं) अतिदीप्तियुक्त (शर्धः) शत्रुहिंसक,

बलशाली शस्त्र (मारुतं शर्धः न) वायुओं के प्रबल बल के समान घोर शब्दकारी (कारिषत्) बनवाये और वह (अनर्वाणं करत्) अश्वादि से रहित सामान्य प्रजावर्ग को भी राष्ट्र का पोषक (पूषणं) पोषण करने वाला बनावे। (यथा) जिससे, वह (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हित के लिये (शता) सैकड़ों और (सहस्रा) हज़ारों (वसू) ऐश्वर्यों को (सम् कारिषत्) संग्रह करे उनको संस्कृत करे, और (सु-वेदाः) उत्तम वैज्ञानिक पुरुष (नः) हमारे लिये सैकड़ों सहस्रों (गूढा वसू) गूढ गुप्त रूप से विद्यमान ऐश्वर्यों की भी (आविः करत्) प्रकट करे।

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे।
अघा अर्यो अरातयः। ॥ १६ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषण करने हारे ! हे (आ-घृणे) सब दूर तक तेजस्विन् ! वा सब प्रकार से दयाशील ! तू (मा आ द्रव) मुझे आदरपूर्वक प्राप्त हो। (उप द्रव) अति समीप आ। (अपि-कर्णे) तेरे कान के समीप (शंसिषम्) तुझे मैं उपदेश करता हूं। तू (अर्यः) प्रजा का स्वामी होकर (अरातयः) कर न देने वाले उच्छृङ्खलों और अन्यों को धन न देने वाले दुष्टजनों को (अघाः) दण्डित कर। इति तृतीयो वर्गः ॥

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥ १७ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (काकं-बीरम्) काक आदि नाना पक्षियों को भरण पोषण करने वाले (वनस्पतिम्) वट आदि बड़े वृक्ष के तुल्य (काकं-बीरम्) क्षुद्र या छोटे जनों के पालक पुरुष को (मा उद् वृहः) मत उखाड़ और मत काट। (अशस्तीः) अप्रशंसित तथा अयुक्त वचन बोलने वालों को बुरी घासों के समान (वि नीनशः हि) अवश्य विनष्ट करदे। तू (सूरः) प्रजा का शासक, विद्वान् सूर्यवत् तेजस्वी होकर भी (वेः चन ग्रीवाः आदधते) व्याध लोग जिस प्रकार पक्षियों की गरदन

पकड़ लेते हैं और उसको दुःख देते हैं तू (एवा) उस प्रकार (आ चन) हमारी कभी गर्दनें मत पकड़ (उत) और (मा अहः) हमें मत मार।

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम्।
अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! (दधन्वतः) धारण करने वाले, (अच्छिद्रस्य) छिद्ररहित (दृतेः) पात्र के समान (दधन्वतः) प्रजा का भरण पोषण और पालन करते हुए (अच्छिद्रस्य) त्रुटिरहित, प्रजा का व्यर्थ छेदन भेदन न करने वाले और (दधन्वतः)अति धनवान्, अति धनुर्धर और भूमि के स्वामी (दृतेः) शत्रु सैन्य को विदारण और भयभीत करने वाले की (सख्यम्) मित्रता (अवृकम् अस्तु) भेड़िये के समान छल कपट से युक्त दिल काटनेवाली न हो।

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया।
अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥ १९ ॥

भा०—हे (पूषन्) राष्ट्र के पोषक! तू (मर्त्यैः) मनुष्यों सहित (परः) सबका पालक और तृप्तिकारक (असि) है (उत) और (श्रिया) लक्ष्मी से (देवैः समः असि) विद्वान्, तेजस्वी तथा व्यवहारवान्, धनाढ्य पुरुषों के समान है। तू (पृतनासु) संग्राम के अवसरों, मनुष्यों वा सेनाओं के बीच में (नः अभि ख्यः) हमें सब प्रकार से देख और (यथा पुरा) पहले के समान ही (नूनं) अवश्य (त्वं नः अव) तू हमारी रक्षा किया कर।

वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेज्यानस्य प्रयज्यवः ॥ २० ॥

भा०—(हे धूतयः) शत्रुओं को कंपाने और भीतरी दोषों को त्यागने हारे, (प्र-यज्यवः) उत्तम दान, यज्ञ और सत्संग करने वाले, (मरुतः)

विद्वान् पुरुषो ! (वामस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) दानशील, व्यवहारज्ञ, और तेजस्वी, (वा) और (ईजानस्य) यज्ञशील (मर्त्यस्य) मनुष्य की (सूनृता) उत्तम सत्यवाणी और (प्र-नीतिः) उत्तम नीति (वामी अस्तु) सबको सुन्दर लगने वाली, प्रिय हो।

सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः। त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१॥

भा०—(द्याम् परि सूर्यः नः) आकाश में जिस प्रकार सूर्य उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार जो (देवः) तेजस्वी, विजिगीषु राजा (द्यां परि एति) भूमि पर विचरता है, और (यस्य चित् सद्यः चर्कृतिः) जिसका कर्म सामर्थ्य शीघ्र ही फल देता है, वह पुरुष तेजस्वी होता है। उसके अधीन ही (मरुतः) वीर मनुष्य (त्वेषं) अति दीप्तियुक्त (शवः) बल और (वृत्रहं नाम) शत्रु हननकारी नाम, ख्याति और (यज्ञियं) यज्ञ, आत्मत्याग और परस्पर संगठन से उत्पन्न (शवः) बल को भी (दधिरे) धारण करें, क्योंकि (वृत्रहं शवः) विघ्नकारी एवं बढ़ते शत्रु को नाश कर देने वाला बल ही (ज्येष्ठं) सब से बड़ा, श्रेष्ठ होता है।

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (द्यौः सकृत् अजायत) सूर्य जिस प्रकार एक बार ही उत्पन्न होता है, (भूमिः सकृत् अजायत) और भूमि भी एक ही वार उत्पन्न होती है। (पृश्न्याः दुग्धं पयः सकृत्) भूमि से दोहन करने योग्य अन्न तथा अन्तरिक्ष से दोहन करने योग्य वृष्टि का जल भी वर्ष में एक ही बार होता है। (अन्यः) दूसरा जो होता भी है वह (न अनु जायते) उसके समान नहीं पैदा होता। उससे न्यून गुण वाला ही होता है, उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष एक ही वार अभिषिक्त हो, भूमि भी उसको एक वार ही वरले। इति चतुर्थो वर्गः॥

[४९]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, १०, ११ त्रिष्टुप्। ५,६,९,१३ निचृत्त्रिष्टुप्। ८, १२ विराट्त्रिष्टुप्। २, १४ स्वराट् पांक्तिः। ७ ब्राह्म्युष्णिक्। १५ अतिजगती। पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः॥१॥

भा०—(सु-व्रतं) उत्तम व्रत, धारण करने वाले, उत्तमकर्मा, (जनं) उत्पन्न बालक, शिष्य वा प्रजाजन को (नव्यसीभिः गीर्भिः) नयी से नयी, अति उत्तम विद्याओं वा वाणियों से (सुम्नयन्ता मित्रावरुणा) सुख प्रदान करते हुए स्नेहयुक्त और कुपथ से वारण करने वाले मित्र, वरुण, अध्यापक और उपदेशक एवं मित्र और वरुण, ब्राह्मण और क्षत्रिय जन, दोनों की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, संकटों का वारण करने वाला, (मित्रः) स्नेही वा प्रजा को मरण से बचाने वाला, (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष, तीनों ही (सु-क्षत्रासः) उत्तम, वीर्य, क्षात्रबल और धन से युक्त है। (ते) वे (आ गमन्तु) आवें, (ते इह) वे यहां हमारे प्रार्थना वचन (श्रुवन्तु) श्रवण करें।

विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥ २ ॥

भा०—(विशः विशः) प्रत्येक प्रजा में (ईड्यम्) स्तुति योग्य, (अध्वरेषु) हिंसारहित, अविनाश योग्य, स्थायी कार्य-व्यवहारों में, (अदृप्त-क्रतुम्) बुद्धि में मोहित न होने वाला, कर्म करने पर गर्व रहित, (युवत्योः) युवा युवति दोनों के बीच (दिवः) अति कमनीय, तेजस्विनी, एक पुत्र की कामना करने वाली स्त्री और (सहसः) बलवान् पुरुष दोनों के (सूनुम्) पुत्र (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (अरतिम्)

विषय में न रमने वाले, जितेन्द्रिय, (यज्ञस्य केतुम्) यज्ञ के परस्पर संगति, लेन देन के व्यवहार के ज्ञापक, प्रमुख चिह्न रूप और (अरुषं) रोष रहित, सौम्य पुरुष को (यजध्यै) आदर सत्कार करने के लिये उसकी स्तुति करूं ।

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३॥

भा०—(अरुषस्य) जिस प्रकार अति प्रदीप्त सूर्य के (दुहितरा) पुत्र पुत्रियों के समान (विरूपे) एक दूसरे से भिन्न रूप के होकर भी उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः पिपिशे) नक्षत्रों से सुशोभित होती है, और (अन्या सूरः) दूसरे को सूर्य प्रकाशित करता है, वे दोनों जिस प्रकार (मिथः-तुरा) परस्पर मिलने को त्वरावान् होते हुए (पावके) अति पवित्र रूप होकर (वि-चरन्ती) विविध रूप में गति करते हुए रहते हैं उसी प्रकार (अरुषस्य) तेजस्वी, सूर्यवत् ज्ञानवान् आचार्य के (दुहितरा) ज्ञान का अच्छी प्रकार दोहन करने वाले, शिष्य शिष्या, (वि-रूपे) भिन्न २ कान्तियों वाले, स्त्री पुरुष हों, उनमें से (अन्या) एक (स्तृभिः) नाना आच्छादक वस्त्रों से (पिपिशे) सजे (अन्या सूरः) अन्य स्वयं सूर्यवत् तेजस्वी कान्तिमान् हों । वे दोनों (पावके) अति पवित्र आचारवान् होकर (मिथः-तुरा) एक दूसरे से मिलने के लिये अति त्वरावान् अति उत्सुक (वि-चरन्ती) विविध व्रतादि का आचरण करते हुए हों । वे दोनों (ऋच्यमाने) स्तुति योग्य होते हुए (श्रुतं मन्म) श्रवण किये गये, मनन योग्य ज्ञान को (नक्षतः) सदा प्राप्त हों । अथवा—(पावके (मिथस्तुरा विचरन्ती) पावक, पापशोधक अग्नि को साक्ष्य में परस्पर उत्सुक होकर विविध व्रत, प्रतिज्ञादि करते हुए, (श्रुतं मन्म) वेदोपदिष्ट ज्ञान कर्म का आचरण करें ।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४॥

भा०—(मनीषा वायुम्) जिस प्रकार बुद्धि या मति, चित्त की वृत्ति ज्ञान या चेतनायुक्त आत्मा को प्राप्त होती है उसी प्रकार (बृहती मनीषा) बड़ी, बुद्धिमती, मन की प्रबल इच्छा वाली स्त्री (बृहद्-रयिं) बड़े ऐश्वर्य युक्त, (विश्व-वारं) सब प्रकार से वरण करने योग्य (रथ-प्राम्) रथ से आने वाले (वायुम्) वायुवत् बलवान् और प्राणवत् प्रिय पुरुष को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र इयक्षति) प्राप्त हो । हे (प्र-यज्यो) उत्तम सम्बन्ध में बंधने हारे पुरुष ! तू (कविः) विद्वान् और (द्युतद्-यामा) चमचमाते रथ वाला, (नियुतः) तेरे साथ सब प्रकार से मिलने वाली स्त्री का (पत्यमानः) पति होना चाहता हुआ तू (कविम्) विदुषी, बुद्धिमती स्त्री को (प्र इयक्षसि) अच्छी प्रकार प्राप्त कर । (२) योगी पक्ष में—(बृहती मनीषा) बड़ा भारी ज्ञान, उस (बृहद्रयिं विश्ववारं रथ-प्राम्) महान् ऐश्वर्यवान् सर्व वरणीय ब्रह्माण्ड में व्यापक प्रभु को प्राप्त है । हे (प्र-यज्यो) उत्तम ईश्वरोपासक ! तू विद्वान् होकर (द्युतद्-यामा) यम नियमों द्वारा तेजस्वी होकर (नियुतः पत्यमानः) इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय होकर तू (कविम्) उत्त क्रान्तप्रज्ञ प्रभु की ही (प्र यक्षसि) अच्छी प्रकार उपासना किया कर ।

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ५ ॥४॥

भा०—(यत् रथः) जो रमणीय, सुखजनक व्यवहार (वि-रुक्मान्) विविध रूचियों से समृद्ध, (मनसा युजानः) चित्त से जुड़ने वाला है (येन) जिससे (नरा) स्त्री और पुरुष दोनों (न-असत्या) कभी परस्पर असत्याचरण न करते हुए वा नासिका अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हुए, (तनयाय त्मने च) पुत्र लाभ और अपने जीवन या

आत्मा के हितार्थ (वर्त्तिः याथः) जीवन-मार्ग व्यतीत करते हैं वह (विरुक्मान् रथः) विशेष कान्तिमान् रथ के समान आश्रय (मे वपुः च्छदयत्) मेरे शरीर को आश्रय, बल देता हुआ उसकी रक्षा करे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (पर्जन्य-वाता वृषभा) पर्जन्य अर्थात् मेघ को लाने वाले और वर्षा करने वाले दो प्रकार के सूर्य वायु या मेघ और वायु दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के लिये (अप्यानि पुरीषाणि जिन्वतः) समुद्र के जलों को लाते हैं उसी प्रकार हे (वृषभा) वीर्य सेचन में समर्थ, नर-श्रेष्ठ, बलवान् स्त्री पुरुषो ! और (पर्जन्य-वाता) मेघ वायु के समान सुखवर्षक और प्राणवत् प्रिय ! आप दोनों (पृथिव्याः) पृथिवी के ऊपर उत्पन्न (अप्यानि) जलों से उत्पन्न (पुरीषाणि) नाना ऐश्वर्यों को (जिन्वतम्) प्राप्त करो। हे (कवयः) विद्वान् लोगो ! (यस्य सत्य-श्रुतः) सत्योपदेश का श्रवण करने वाले जिस विद्वान् की (गीर्भिः) वाणियों से (जगतः) जंगम संसार का और (स्थातः) स्थावर संसार का भी ज्ञान होता है आप लोग उसके (आ) अधीन ही (जगत्) इस जंगम संसार को (कृणुध्वम्) करो।

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ ७ ॥

भा०—(पावीरवी) आचारादि को पवित्र करने वाली, (कन्या) कान्तिमती, कन्या (चित्रायुः) आश्चर्यजनक आगमन, वा जीवन वाली, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त, (वीरपत्नी) वीर पुरुष की स्त्री, (ग्नाभिः) वेद वाणियों से (धियं धात्) यज्ञ आदि कर्म करे। वह (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (गृणते) मुझे स्तुति करने वाले को (दुराधर्षं) दृढ़ (शरणं) गृह और (शर्म) सुख (यंसत्) प्रदान करे।

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८॥

भा०—(पूषा) सबका पोषण करने वाला पोषक, सहायक जन, (कामेन कृतः) अपनी कामना से प्रेरित होकर (वचस्या) उत्तम वचन युक्त वाणी से (पथः-पथः) प्रत्येक मार्ग में (परिपतिं अर्कम् अभ्यानड्) पालक स्वामी से प्राप्त होने वाले अन्न वा आदर योग्य पद को प्राप्त करे। (सः) वह (नः) हमें (चन्द्राग्राः) आह्लादजनक वचनों और स्वर्णादि पदार्थों सहित (शुरुधः = आशु-रुधः, शुग्-रुधः) अति शीघ्र हृदय को पापादि प्रवृत्तियों को रोकने वाली वा शोकादि की नाशक वाणियों का (रासत्) उपदेश करे, और वह (धियं-धियं) प्रत्येक कार्य और प्रत्येक ज्ञान को (प्र सीसधाति) अच्छी प्रकार करे।

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ ९ ॥

भा०—(होता) दानशील (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् (वि-भा-वा) विशेष कान्तिमान्, होकर भी (प्रथम-भाजं) प्रथम, पूज्यों का सेवन करने वाले, (यशसं) यशस्वी, (वयोधां) बल, ज्ञान, दीर्घायु के धारण करने कराने वाले, (सुपाणिं) उत्तम हाथ वाले, उत्तम व्यवहारवान् (देवम्) दानशील, ज्ञानदाता, (सु-गभस्तिम्) सूर्यवत् उत्तम बाहु वाले और उत्तम किरणवान्, सुप्रकाशक, (ऋभ्वम्) अति तेजस्वी, सत्य ज्ञान से युक्त (यजतं) सत्संग योग्य, (त्वष्टारं) संशयादि के छेत्ता, सूर्यवत् प्रकाशक (पस्त्यानां) गृहों, वा प्रजाओं के बीच (सु-हवं) सुगृहीत नामधेय गुरुजन का (यक्षत्) सत्कार करे और उत्तम भेंट अन्न आदि प्रदान करे। स्नातक गृह में प्रवेश कर लेने या स्वयं जगत् में उच्च पदस्थ होकर भी गुरुजन व प्रभु का सदा आदर और उसकी उपासना, करता रहे।

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्य (आभिः गीर्भिः) इन नाना वाणियों से (भुवनस्य पितरं) समस्त संसार के पालक (रुद्रं) रोगों, दुःखों को दूर करने वाले, प्रभु परमेश्वर को (दिवा) दिन के समय और उसी (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले प्रभु को (अक्तौ) रात्रि के समय भी (वर्धय) सदा बढ़ा, सदा उसकी स्तुति कर । और हम (कविना) विद्वान् पुरुष द्वारा (इषितासः) प्रेरित होकर (बृहन्तम्) महान् (ऋष्वम्) दर्शनीय (अजरम्) अविनाशी, (सु-सुम्नम्) उत्तम सुखमय प्रभु को ही (ऋधक् हुवेम) सत्य स्वरूप में स्तुति किया करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ११

भा०—(अङ्गिरस्वत् मरुतः चित् अचित्रं जिन्वन्ति) दीप्ति युक्त किरणों के समान वायुगण जिस प्रकार नाना ओषधि आदि से रहित क्षेत्र को जल बरसा कर तृप्त करते हैं उसी प्रकार हे (युवानः कवयः) युवा विद्वान् पुरुषो ! हे (नरः) नेता जनो ! आप लोग भी (अंगिरस्वत्) अग्नियों, किरणों या प्राणों के तुल्य (नक्षन्तः) स्थान २ पर जाते हुए (अचित्रं हि जिन्वथ) साधारण जन को ज्ञान से तृप्त करो और (वृधन्तः) बढ़ते, बढ़ाते हुए, (यज्ञियासः) उत्तम आदर सत्कार के योग्य होकर (गृणतः) उपदेश करने वाले पुरुष की (वरस्यां) उत्तम वाणी को (गन्त) ग्रहण करो ।

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥ १२ ॥

भा०—(पशुरक्षिः अस्तम् यूथा इव) पशुओं की रक्षा करने वाला,

पशुपालक जिस प्रकार अपने पशुओं के रेवड़ों को अपने घर को हांक ले जाता है उसी प्रकार तू (वीराय) वीर, विविध विद्या के दाता, (तवसे) बलवान्, (तुराय) शत्रु हिंसक पुरुष के लिये (प्र अजं) स्तुतियें प्रकट कर, वा (यूथा प्र अज) जन समूहों को उत्तम मार्ग में चल । (नाकं स्तृभिः न) अन्तरिक्ष जिस प्रकार नक्षत्रों से मण्डित होता है उसी प्रकार (सः विपः) वह विद्वान् भी (श्रुतस्य) श्रवण करने योग्य (तन्वि स्तृभिः) शरीर पर उत्तम आच्छादक वस्त्रों से सुशोभित होकर (श्रुतस्य वचनस्य) श्रवण योग्य, उत्तम वचन का (पिस्पृशति) निरन्तर श्रवण किया करे ।

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (बाधिताय मनवे) कर्म बन्धनों से पीड़ित मनुष्य के मनन, ज्ञान वाले, चेतना से युक्त जीव-गण के उपकार के लिये (त्रिः चित् पार्थिवानि रजांसि) तीनों पार्थिव आदि लोक (वि ममे) विरचता है, हे प्रभो ! (तस्य ते) उस तेरे (उप-दद्य माने) दिये गये (शर्मन्) सुख, शरण में हम (तना) विस्तृत (राया) ऐश्वर्य और (तन्वा) शरीर से (मदेम) सुखी हों ।

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ और (पर्वतः) पालन पूर्ण करने वाला मेघ, वा पर्वत (सविता) और सूर्य (नः) हमें (तत् तत् तत्) नाना प्रकार का (चनः) अन्न (अद्भिः) जलों और (अर्कैः) सूर्य किरणों सहित (धात्) प्रदान करे । (तत्) वह

(राति-साचः) दानशील पुरुष (भगः) ऐश्वर्यवान्, और (पुरन्धिः) जगत् को एक पुर के समान धारण करने वाला प्रभु वा (ओषधीभिः) ओषधियों द्वारा (चनः) अन्न को (अभि जिन्वतु) खूब वृद्धि करें और (राये प्रजिन्व) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये अन्न को खूब बढ़ावें ।

नू नों रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम
विश आदेवीरभ्यश्नवाम ॥ १५ ॥ ७ ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (नः) हमें (रथ्यं) रथ आदि के योग्य (चर्षणिप्राम्) मनुष्यों को पूर्ण करने वाले (पूरुवीरं) बहुत से वीर पुरुषों से युक्त, (महः ऋतस्य) बड़े धनैश्वर्य के (गोपाम्) रक्षक (अजरं) अविनाशी (क्षयं) गृह, दुर्ग (नः) हमें (दात) प्रदान करो, (येन) जिससे हम (स्पृधः जनान्) स्पर्धा करने वाले मनुष्यों को और (अदेवीः) देव अर्थात् शुभ गुणों और उत्तम मनुष्यों से रहित दुष्ट प्रजाओं को (अभि क्रमाम) पराजित करें और (अदेवीः) सब प्रकार से उत्तम गुणों से युक्त शुभ प्रजाओं को (अभि अश्नवाम) प्राप्त करें । इति सप्तमो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[५०]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७ त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ८, १३ विराट्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ९ पंक्तिः । १४ भुरिक् पंक्तिः । १५ निचृत्पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो मैं (वः) आप लोगों के (मृडीकाय) सुख के लिये (अदितिम्) अदीन, अपराधीन, स्वतन्त्र, अखण्डित चरित्र वाली ब्रह्मचारिणी (देवीम्) तेजस्विनी स्त्री को (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (हुवे) अपने यहां बुलाऊं, निमन्त्रित करूं। इसी प्रकार (वरुणं) दुःखों, कष्टों को वारण करने वाले (मित्रम्) स्नेहवान्, सुहृद्, (अग्निम्)अग्रणी,तेजस्वी,ज्ञानी,(अभिक्ष-दाम्,अभि-क्षदाम् = अभिक्षदाम्) कुपात्र में भिक्षा न देने वाले वा शत्रुओं को उनके मुकाबले पर मारने वाले, (अर्यमणं) शत्रुओं को नियम में बांधने वाले, न्यायकारी, (सु-शेवं) उत्तम सुखदाता, (सवितारं) सूर्यवत् तेजस्वी और उत्पादक पिता, माता, गुरु, और (भगं) सेवने योग्य ऐश्वर्यवान् पुरुष और (त्रातॄन् देवान्) पालक वीरजन और व्यवहार कुशल पुरुष को भी मैं (नमोभिः हुवे) आदर युक्त वचनों और सत्कारों से बुलाऊं।

सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः॥२॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (सु-महः) उत्तम तेज युक्त (दक्ष-पितॄन्) दाहक सामर्थ्य, ताप से युक्त (सु-ज्योतिषः) उत्तम कान्तियुक्त (देवान्) किरणों को प्राप्त है उसी प्रकार हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! तू भी (सु-ज्योतिषः) उत्तम ज्ञान प्रकाश से युक्त, (दक्ष-पितॄन्) चतुर माता पिता और गुरुजनों (देवान्) ज्ञान, धन, अन्न, वस्त्रादि के दाता (स-महः) उत्तम उन पूजनीय पुरुषों को तू (अना-गास्त्वे) अपराध और पाप से मुक्त होने के लिये (वीहि) प्राप्त हो (वे) जो (द्वि-जन्मानः) माता पिता और गुरु द्वारा जो जन्म प्राप्त होकर द्विज, हो, (ऋत-सापः) सत्य वचन और ज्ञान से सम्बन्ध बनाने वाले, सत्यवादी (सत्याः) सत्य कर्मा, (यजताः) सत्संग योग्य, दानी, और (अग्नि-जिह्वाः) अग्नि के समान वाणी द्वारा यथार्थ बात को प्रका-

शित करने वाले और (स्वर्वन्तः) सुख और उत्तम उपदेशमय ज्ञान को धारण करने वाले हैं ।

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी या आकाश और पृथिवी के समान प्रजा और राजा तथा माता पिता जनो ! आप दोनों (उरु क्षत्रम् करथः) बहुत बड़ा बल उत्पन्न करो । हे (रोदसी) एक दूसरे का सन्मार्ग वा धर्म मर्यादा में रोकने वा बांधने वाले स्त्री पुरुषो ! हे (सु-सुम्ने) सुख से रहने वालो ! आप दोनों (बृहत् शरणं) बड़ा गृह (करथः) बनाओ । हे (धिषणे) धारण पोषण करने वाले जनो ! आप दोनों (नः) हमारे लिये (यथा महः वरिवः करथः) जिस प्रकार बड़ा भारी धन और सेवादि करते हैं उसी प्रकार (नः क्षयाय) हमारे रहने के लिये (अनेहः) पाप हत्यादि से रहित गृह, राज्य प्रबन्धादि करो ।

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥

भा०—(यत् ईम्) जो कोई (अर्भे महति वा) छोटे वा बड़े कार्य वा पद पर (हितासः) नियुक्त हैं ऐसे (रुद्रस्य सूनवः) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के अधीन चलने वाले, उसके पुत्रवत् आज्ञापालक (वसवः) राष्ट्र में बसे और अन्यों को बसाने वाले, (अधृष्टाः) अप्रगल्भ, विनीत हैं, वे (अद्य) आज (नः आ नमन्ताम्) हमें विनयपूर्वक प्राप्त हों । हम उन (देवान्) विद्वान् वा विजयेच्छुक (मरुतः) मनुष्यों को (बाधे) संग्राम, वा पीड़ा दुःखादि के अवसर पर (अह्वाम) बुलाया करें । वे हमें उस कष्ट से पार करें ।

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ।५।८।

भा०—जिस प्रकार (पूषा मरुत्सु देवी रोदसी मिम्यक्ष सिषक्ति च) सूर्य वायुओं के आश्रय पर ही आकाश और पृथिवी दोनों को वृष्टि आदि से सीचता है, उसी प्रकार (येषु) जिन विद्वानों और वीर पुरुषों का आश्रय लेकर (अभ्यर्ध-यज्वा) अपना उत्तम समृद्ध भाग देने वाला, (पूषा) प्रजा-पालक राजा (रोदसी देवी) रुद्र, दुष्टों के रुलाने वाले राजा वा सेनापति को विजयशील और सर्व सुखदात्री, सेना और प्रजा दोनों (मिम्यक्ष) ऐश्वर्य का सेचन करता, और (सिषक्ति) दोनों को परस्पर मिलाये रखता है, और (यत् ह) जो (मरुतः) वीर विद्वान् पुरुष (प्र-विक्ते) अच्छी प्रकार से निर्णय किये गये, विवेचित (अध्वनि) मार्ग में (रेजन्ते) गमन करते हैं हे मनुष्यो ! (भूमौ) इस भूमि पर आप उनका (हवं श्रुत्वा) उपदेश श्रवण करके ही (याथ) सन्मार्ग पर चलो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥ ६ ॥

भा०—हे (जरितः) उपदेश करने वाले विद्वन् ! जो (गृणानः) उपदेश करता हुआ (महः वाजान् उप रासत्) बड़े २ उत्तम ज्ञानों का उपदेश करता और (स्ववानः) स्तुति का उपदेश किया जाता हुआ (त्यम्) उस ग्राह्य ज्ञान का (उप श्रवत् च) गुरु के समीप श्रवण भी करता है (त्यं वीरम्) उस वीर, विविध विद्या के उपदेष्टा, (गिर्वणसं) वाणियों के प्रदाता, (इन्द्रं) ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानद्रष्टा आचार्य को (नवेन ब्रह्मणा) नये, नव उत्पन्न अन्न और धन से प्रथम विद्वान् उपदेष्टा गुरु की अर्चना करनी चाहिये । वे विद्वान् ज्ञान का उपदेश किया करें ।

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥ ७ ॥

भा०—हे (आपः) आप्त जनो ! आप लोग (ओमानं) रक्षा आदि

करने वाले, पुरुष को और (मानुषीः) मनुष्य प्रजा और (अमृक्तं) अशुद्ध जन को भी जलवत् स्वच्छ करके (धात) धारण पोषण करो। और (तोकाय तनयाय) छोटी उमर वाले पुत्र के लिये मातावत् (शं) शान्ति प्रदान और दुःख दूर करो। (यूयं) आप लोग (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः) स्थावर और जंगम दोनों की (जनित्रीः) पैदा करने वाली (मातृतमाः) उत्तम माताओं के समान (भिषजः स्थ) सब रोगों को दूर करने वाले होओ। जल जिस प्रकार स्थावर और वृक्षादि जंगम जीवों को उत्पन्न करते और सर्व रोग हरते, शान्ति देते, पीड़ा हरते अशुद्ध को स्वच्छ करते अन्न को बढ़ाते और उत्तम माता के समान हैं। उसी प्रकार आप्त जन वैद्यवर, और माताएं स्त्रियें भी, रक्षक को बचावें, अशुद्ध को शुद्ध करें, पुत्रों को शान्ति दें, उत्तम सन्तान और अन्य वनस्पति आदि को उत्पन्न करें। ज्ञानवान् प्रमाता होने से विद्वान् 'मातृतम' हैं। स्थावर जंगम सबका ज्ञान प्रकट करने वा विज्ञानपूर्वक उत्पन्न करने से दोनों के 'जनित्री' हैं।

आ नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणो॒ हिर॑ण्यपाणिर्यज॒तो ज॑गम्यात्।
यो द॒त्रवाँ॑ उ॒षसो॒ न प्रती॑कं व्यू॒र्णु॒ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ ८ ॥

भा०—(देवः) ज्ञान और धन का देने वाला, (सविता) पितावत् उत्पादक सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रायमाणः) प्रजा की रक्षा करने वाला, (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण आदि धन को अपने हाथ में रखने वाला, (यजतः) पूज्य पुरुष (नः आजगम्यात्) हमें प्राप्त हो। (यः) जो (दत्रवान्) दान योग्य धन का स्वामी, सूर्य के समान (उषसः प्रतीकं न) प्रभात वेला के समान प्रतीति-कर वचन तथा (वार्याणि) उत्तम धन और ज्ञान भी (दाशुषे) आत्मसमर्पक प्रजाजन को (वि उर्णुते) प्रकट करता है।

उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥ ९ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) शत्रु को पराजय करने में समर्थ, सैन्य बल के संचालक ! बलवान् पिता के शिष्य वा पुत्र ! (त्वं) तू (अद्य) आज (अस्मिन् अध्वरे) इस हिंसारहित प्रजापालनादि कार्य में (देवान्) उत्तम गुणों वा पुरुषों को (नः आववृत्याः) हमें प्राप्त करा । (उत) और मैं (सदम्) सदा, वा (सदम्) प्राप्त करने योग्य अंश को प्राप्त करके (ते रातौ स्याम्) तेरी दी वृत्ति के अधीन रहूं और (तव अवसा) तेरी रक्षा और अन्नादि से हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सुवीरः स्याम्) उत्तम वीर, और उत्तम सन्तानयुक्त होऊं ।

उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१०॥९॥

भा०—(उत) और (अङ्ग) हे (नासत्या) असत्याचरण करने वाले, सत्य मार्ग पर सबको लेजाने हारे (विप्रा) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (त्या युवम्) वे आप दोनों (मे) मेरे (हवम्) ग्राह्य पदार्थ, वचन अन्नादि को (जग्म्यातम्) प्राप्त करो । (अत्रिं न) सूर्य चन्द्र दोनों जिस प्रकार (अत्रिं) इस लोक में रहने वाले जनों को (महः तमसः मोचयतः) बड़े अन्धकार से मुक्त करते हैं उसी प्रकार आप दोनों (अत्रिं) इस लोक या स्थान में विद्यमान मनको (महः तमसः) बड़े अज्ञान रूप अन्धकार से और (दुरितात्) दुष्ट अधर्माचरण से भी (अमुमुक्तम्) सदा छुड़ाते रहो । हे (नरा) उत्तम नर नारियो ! उत्तम मार्ग में ले जाने हारे आप दानों (अभीके) सदा समीप रह कर (तूर्वतम्) दुष्ट जन वा दुर्गुणों का नाश करो । इति नवमो वर्गः ॥

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः।११

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हे दानशील पुरुषो ! (ते) वे आप लोग (नः) हमें (द्युमतः) दीप्तियुक्त, (वाजवतः) बलयुक्त, (नृवतः) उत्तम भृत्यादि वाले, (पुरु-क्षोः) बहुत से अन्नादि से सम्पन्न (रायः) धन ऐश्वर्य के (दातारः भूत) देने वाले होवो। आप लोग (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी, (गो जाताः) वाणी के प्रसिद्ध, विद्वान्, (अप्याः) जलादि विद्या के ज्ञाता वा भूमि, अन्तरिक्ष और जलों की विद्या में निष्णात होकर (दशस्यन्तः) ज्ञान प्रदान करते हुए (नः) हम सबको (मृडत) सुखी करो।

ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः॥१२॥

भा०—(रुद्रः) दुष्ट पुरुषों को दण्ड देने वाला, राजा और उपदेश देने वाला विद्वान् और रोगों को दूर करने वाला वैद्य, (सरस्वती) उत्तम विज्ञानवती वेदवाणी और विदुषी स्त्री, (सजोषाः) प्रीतियुक्त मित्रजन, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष, (वायुः) वायुवत् बलवान् और ज्ञानी पुरुष (ऋभुक्षाः) विद्वान्, (दैव्यः) विद्वानों से नियुक्त (विधाता) विधानकर्त्ता, (पर्जन्य-वाता) मेघ और वायु के समान, विजयशील और बलवान् पुरुष ये सभी (मीढुष्मन्तः) उत्तम सेचन करने वाले, प्रजा को बढ़ाने वाले गुणों से युक्त होकर (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें। और (नः इषं) हमारे अन्न की वृद्धि करें। (२) (रुद्रः) अग्नि, (सरस्वती) नदी, (विष्णुः) सूर्य, (वायुः) वायु, (ऋभुक्षाः) महान् (वाजः) बलवान् (दैव्यः विधाता) देव, किरणों का, प्रकाशों का कर्त्ता सूर्य और (पर्जन्यवाता) मेघ और प्रबल वात सब हमारे राष्ट्र में अन्न उत्पन्न करें।

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः॥१३॥

भा०—(उत) और (स्यः देवः) वह तेजस्वी (सविता) सूर्य और सूर्यवत् तेजस्वी और (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष और (अपां नपात्) जलों के बीच विद्यमान, उनमें से ही उत्पन्न, न गिरने वाला अग्नि, विद्युत्, (पप्रिः) सबको पूर्ण और पालन करने वाला, (त्वष्टा) तेजस्वी, (देवेभिः) दिव्य गुणों उत्तम पुरुषों और (जनिभिः) जन्मयुक्त प्राणियों सहित, (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (देवेभिः) किरणवत् तेजस्वी पुरुषों सहित, (समुद्रैः पृथिवी) समुद्रों सहित पृथिवी, ये सब (सजोषसः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः दानु) हमारे देने योग्य पदार्थ की (अवतु) रक्षा करें।

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु १४

भा०—(उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न हुआ मेघ, और (बुध्न्यः) आश्रय करने और प्रजाजन को सुप्रबन्ध में बांधने वाला (अहिः) अहिंसनीय, बलवान् पुरुष, (अजः एक-पात्) न कभी उत्पन्न होने वाला और एकमात्र अद्वितीय होकर समस्त जगत् में व्यापक, एक मात्र स्वयं समस्त जगत् का चरणवत् आश्रय रूप परमेश्वर और (अजः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने और राज्य कार्यों को सञ्चालन करने वाला (एक-पात्) एकमात्र चरणवत् राष्ट्र का आश्रय, प्रधान पुरुष, राजा, (पृथिवी) यह मातृ भूमि और (समुद्रः) समुद्र, अथवा पृथिवी के समान विशाल और समुद्र के समान गम्भीर और (ऋत-वृधः) सत्य, अन्न, तेज, यज्ञ और धनादि से बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले, (स्तुताः) स्तुति योग्य, (कविशस्ताः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्तुति या शिक्षाप्राप्त, (मन्त्राः) मननशील, उत्तम मन्त्र को देने वाले, विद्वान् वा वेद के मन्त्र और उत्तम विचार सभी (हुवानाः) हम से बुलाये गये या

आदरपूर्वक हमें बुलाने हारे (विश्वेदेवाः) सभी उत्तम मनुष्य (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें, हमें ज्ञान दें, अन्नादि से तृप्त और सन्तुष्ट करें।

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्नाहुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥१०॥

भा०—(एव) इस प्रकार जो (नपाताः) प्रजाओं को धर्म से न गिरने देने और स्वयं भी धर्म-मार्ग से न गिरने वाले, (भरद्-वाजाः) ज्ञान और बल को धारण करने वाले, (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों से और (अर्कैः) अन्नों द्वारा (अभि अर्चन्ति) आदर सत्कार करते हैं और (हुतासः) आदरपूर्वक आमन्त्रित, (अधृष्टाः) विनीत, (यजत्राः) दान शील, (विश्वे वसवः) सब राष्ट्रवासी जन और (ग्नाः) उत्तम स्त्रियां भी वे (स्तुतासः भूत) प्रशंसित हों। वे (ग्नाः अभ्यर्चन्ति) स्त्रियों और उत्तम ज्ञानप्रद वाणियों का आदर किया करें । इति दशमो वर्गः ॥

[५१]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । ४, ६, ९ स्वराट्पंक्तिः । १३, १४, १५ निचृदुष्णिक् । १६ निचृदनुष्टुप् ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (मित्रयोः वरुणयोः महि चक्षुः ऋतस्य दर्शतम्, अनीकं, दिवः रुक्मन्, उदिता वि अद्यौत्) मित्र, दिन, वरुण रात्रि इन दोनों में वह बड़ा, नेत्रवत् सूर्य प्रकाश दिखाने वाले मुख के समान और आकाश के स्वर्ण के समान, उदय काल में विशेष रूप से चमकता है उसी प्रकार (मित्रयोः) एक दूसरे को सदा प्रेम करने वाले (वरु-

णयोः) एक दूसरे का परस्पर वरण करने वाले, उत्तम वर वधू, दोनों की (त्यत्) वह (महि) बड़ी, (प्रियं चक्षुः) प्रिय, एक दूसरे को तृप्त और प्रसन्न करने वाली आंख (अदब्धम्) एक दूसरे से अहिंसित, अर्थात् अपीड़ित होकर विना बाधा के (एति) एक दूसरे को प्राप्त हो। वे दोनों सदा परस्पर प्रेम, आदर, उत्सुकता और निःसंकोच भाव से देखा करें। वह (दर्शतम्) देखने योग्य वा (ऋतस्य दर्शतम्) सत्य ज्ञान को दिखाने वाली, (शुचि) पवित्र, निर्मल, निष्पाप, (अनीकम्) मुखवत् दर्शनीय, सैन्यवत् एक दूसरे का विजय करने वाली, चक्षु भी, (दिवः रुक्मः न) मानो कामनायुक्त कामिनी का स्वर्णमय आभूषण हो, ऐसे (दिवः) कामना करने वाली स्त्री के (उदिता) उद्गमन काल में (रुक्मः) रुचि अर्थात् अभिलाषाओं का ज्ञापक होकर (वि अद्यौत्) विविध भावों, विशेष सौहार्दों को प्रकट करे। अथवा—वह चक्षु, दर्शनीय शुद्ध पवित्र, मुख को आभूषणवत् प्रकाशित करे, इसी प्रकार परस्पर मित्र, और परस्पर के वरण करने वाले, अध्यापक शिष्य और राजा और प्रजावर्गों के आंखों में स्नेह आदि सदा विद्यमान हो, वह विवेकपूर्ण, सत्यज्ञान और न्याय के पवित्र सुन्दर मुख को उज्ज्वल करे। इसी प्रकार सत्यासत्य को दिखाने वाले नेत्र के तुल्य वेदज्ञ पुरुष भी सब स्त्री पुरुषों को प्रिय, अहिंसित, पवित्र, भूमि का भूषणवत्, सूर्यवत् तेजस्वी हो।

वेद् यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥ २ ॥

भा०—पूर्व सूचित विद्वान् रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन। (यः) जो (त्रीणि विदथानि) जानने और प्राप्त करने योग्य ज्ञान, कर्म और उपासना को (वेद) जानता है, और जो (विप्रः) विद्वान् मेधावी, (सनुतः) सदा (देवानां) विद्वानों वा सूर्य चन्द्रादि लोकों के (जन्म) प्रकट होने

का तत्व (च) भी (वेद) जानता है वह (सूरः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् (अर्यः) स्वामी के समान, (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच, उनके हितार्थ, (ऋजु) सरल, धर्म मार्ग को और (वृजिना च) वर्जन करने योग्य अशोभन पाप कर्मों को भी (पश्यन्) विवेक पूर्वक देखता हुआ समस्त (एवान्) प्राप्तव्य पदार्थों और जाने योग्य मार्गों को भी (अभि चष्टे) प्रकाशित करता है, देखता और अन्यों को उपदेश करता है इसी से वह (चष्टे इति चक्षुः) 'चक्षु' कहाता है।

स्तुष उ॑ वो म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पानदि॑तिं मि॒त्रं वरु॑णं सुजा॒तान् ।
अ॒र्य॒मणं॒ भग॒मद॑ब्धधीती॒नच्छा॑ वोचे सध॒न्य॑: पाव॒कान् ॥ ३ ॥

भा०—(स-धन्यः) धन धान्य से सम्पन्न, एवं धन द्वारा सत्कार करने योग्य उत्तम जनों के सहित विद्यमान मैं, हे विद्वान् उत्तम पुरुषो ! (वः) आप लोगों में से (ऋतस्य गोपान्) वेद, सत्य ज्ञान, न्याय, तेज, धन, और बल के रक्षा करने वाले (अदितिः) सूर्य, पृथ्वी के समान तेजस्वी माता पिता, पुत्रादि, (मित्रं) स्नेही, (वरुणं) संकटों के वारक, श्रेष्ठ, (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुओं को नियम में रखने वाले, (भगं) ऐश्वर्यवान्, (सु-जातान्) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, उत्तम सत्य, (अदब्ध-धीतीन्) जिनका अध्ययन, पठन पाठन नष्ट, विघ्नित न हो, ऐसे पूर्ण शिक्षित (पावकान्) अग्निवत् अन्यों को पवित्र करने वाले, इन सब (महः ऋतस्य गोपान्) बड़े श्रेष्ठ सत्य ज्ञान, और तेज के रक्षक, जनों को मैं (स्तुषे) उत्तम स्तुति और (अच्छ वोचे) उनके प्रति सदा उत्तम वचन कहूं।

रि॒शाद॑सः स॒त्पती॒रद॑ब्धान्म॒हो राज्ञ॑: सुवस॒नस्य॑ दा॒तॄन् ।
यून॑: सुक्ष॒त्रान्क्षय॑तो दि॒वो नॄना॑दि॒त्यान्या॒म्यदि॑तिं दुवो॒यु ॥४॥

भा०—(रिशादसः) जो हिंसकों का नाश करने वाले, (सत्पतीन्) सज्जनों के पालक, (अदब्धान्) स्वयं अन्यों से पीड़ित न होने और

अन्यों को पीड़ा न देने वाले, (महः) बड़े (राज्ञः) राजावत् स्वामी, (सु-वसनस्य) उत्तम वस्त्र, वा आश्रय के (दातॄन्) देने वाले, (यूनः) युवा, तरुण, (सु-क्षत्रात्) उत्तम बल, धन से युक्त, (क्षियतः) ऐश्वर्यवान्, एवं राष्ट्र में बसने वाले, (दिवः) ज्ञान, प्रकाशक (आदित्यान्) आदित्य ब्रह्मचारी, सूर्यवत् तेजस्वी (नॄन्) नायक और (दुवोयु) परिचर्या या सेवा की कामना करने वाले पुरुषों को और (अदितिं) अखण्डित, एवं अदीन, उदात्त स्वभाव के माता व पिता को (यामि) मैं प्राप्त होऊं और विनय से उनसे याचना करूं।

द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ५।११

भा०—हे (पितः द्यौः) आकाश वा सूर्य के समान विशाल तेजस्विन्! पालक पितः! हे (मातः पृथिवि) माता पृथिवी! हे (अध्रुक्) द्रोह रहित (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (भ्रातः) भाई! हे (वसवः) बसे हुए प्रजाजनो! आप लोग (नः) हमें (मृडत) सदा सुखी करो। हे (आदित्याः) आदित्यसम तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! (अदिते) हे मातः! हे पितः! वा हे अखण्ड शक्ते। आप (विश्वे) सब लोग (सजोषाः) समान रूप से प्रीतियुक्त होकर (अस्मभ्यम्) हमें बहुत (शर्म) सुख (यन्त) प्रदान करो। इत्येकादशो वर्गः ॥

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६॥

भा०—हे (यजत्राः) दानशील और सत्संग योग्य पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (वृक्ये) चोरों के करने योग्य व्यवहार के निमित्त (समस्मै) सब प्रकार के (अघायते) हम पर पापाचरण करने की इच्छा करने वाले, (वृकाय) हिंसक, वृक या भेड़िये के समान चोर

डाकू स्वभाव के मनुष्य के लाभ के लिये (नः) हमें (मा रीरधत) हमें नष्ट मत करो। हमें उसके हितार्थ दण्डित मत करो और हमें उसके अधीन भी मत करो। (हि) क्योंकि आप लोग ((नः तनूनां) हमारे शरीरों के भी (रथ्यः) रथ के नेता, सारथिवत् सन्मार्ग में प्रयोग करने और लेजाने वाले (स्थ) हो, और (यूयं) तुम लोग सदा (दक्षस्य वचसः) उत्तम वचन के नेता वा प्रवर्त्तक भी (बभूव) हो।

मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले, विद्वान् पुरुषो! आप लोग अपने में से भी (अन्यकृतं) किसी अन्य के किये (एनः) पाप या अपराध को हम सब (मा भुजेम) न भोगें। (यत्) जिसे आप लोग (चयध्वे) नाश करो, या रोको वह कर्म भी हम (मा कर्म) न करें। हे (विश्व-देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो! आप लोग (विश्वस्य हि क्षयथ) सब कार्यों के स्वामी हो। मनुष्य प्रायः स्वयं अपने आप भी (रिपुः) शत्रु होकर कभी २ (तन्वं) अपने शरीर का (रीरिषीष्ट) विनाश कर लेता है। इसलिये सावधान रहो कि कहीं हमीं में ऐसा न हो कि एक के किये से और दुःख पावें, और जो काम स्वयं बाद नष्ट करना पड़े, उसको कर बैठे। चयति समुच्चये हिंसायां च। क्षि निवासे ऐश्वर्ये च॥

नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

भा०—(नमः इत्) 'नमस्' अर्थात् दुष्टों और सज्जनों का नमाने का उपाय बड़ा ही (उग्रं) बलशाली होना उचित है। मैं उसी (नमः) विनय के साधन, दण्ड बल, या नमस्कार योग्य परब्रह्म का (आ विवासे) सेवन करूं। (नमः) वही सबको वश करने वाला बल, सर्वनमस्य

परब्रह्म ही (पृथिवीम् उत द्याम् दाधार) पृथिवी और सूर्य दोनों को धारण कर रहा है। (देवेभ्यः नमः) विद्वानों, व्यवहारकर्त्ता, विजेताओं और द्यूतादि खेलने वाले लोग सबके लिये (नमः) उनको नमाने या वश करने वाला यह वज्र और विनय आदर का व्यवहार ही है। (नमः) वह विनयशाली दण्ड या आदर ही (एषां) इन सब पर (ईशे) प्रभुत्व करता है। इनके (कृतं चित् एनः) किये हुए पाप को भी मैं (नमसा) विनय से वा दण्ड से ही (आ विवासे) दूर करने में समर्थ होऊं।

ऋतस्य॑ वो र॒थ्यः॑ पू॒तद॑क्षानृ॒तस्य॑ पस्त्य॒सदो॒ अद॑ब्धान् ।
ताँ आ नमो॑भिरुरु॒चक्ष॑सो॒ नॄन्विश्वा॑न्व॒ आ न॑मे म॒हो य॑जत्राः॥९॥

भा०—हे (यजत्राः) न्याय, ज्ञान, और ऐश्वर्य को देने वालो ! हे सत्संग और पूजा के योग्य पुरुषो ! (रथ्यः) रथ को उत्तम मार्ग में ले जाने में उत्तम सारथि के समान गृहस्थ वा राष्ट्र का उत्तम नेता मैं (ऋतस्य) सत्य व्यवहार ज्ञान और न्याय के द्वारा (दूतदक्षान्) पवित्र कर्म करने वाले और (ऋतस्य) न्याय के ग्रहों में विराजने वाले (अदब्धान्) अधर्म से लोभ, अन्यायाचरण आदि से अपीड़ित, (उरुचक्षसः) बड़े दूरदर्शी (विश्वान् वः नॄन्) समस्त उन आप (महः) बड़े पूज्य लोगों को (नमोभिः) उत्तम विनय युक्त व्यवहारों से (आ नमे) नमता और नमाता हूं।

ते हि श्रेष्ठ॑वर्चस॒स्त उ॑ नस्ति॒रो विश्वा॑नि दुरि॒ता नय॑न्ति ।
सु॒क्ष॒त्रासो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निर्ऋ॒तधी॑तयो वक्म॒राज॑सत्याः १०।१२

भा०—(वरुणः) श्रेष्ठ, सबको पापों से निवारण करने वाला, (मित्रः) सबका स्नेही, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष, जो (ऋत-धीतयः) सत्य कर्म करने और सत्य शास्त्रों को पढ़ने

वाले और (वक्मराजसत्याः) वचन में सदा सत्य से चमकने वाले, सदा सत्यभाषी और (सु-क्षत्रासः) उत्तम बलशाली हैं (ते हि) वे ही निश्चय से (श्रेष्ठ-वर्चसः) सर्वोत्तम तेज से युक्त होते हैं। (ते उ) वे ही (नरः) लोग (नः) हमारे (विश्वानि दुरितानि) सब बुरे आचरणों को (तिरः नयन्ति) दूर करते हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन्पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः । सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ११

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी ऐश्वर्यवान्, (पृथिवी) भूमि के समान सर्वाधार, (क्षाम) भूमि के समान ही क्षमावान्, (पूषा) सर्व-पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान्, सर्व कल्याणकारी, (अदितिः) माता, पिता वा पुत्र अथवा अदीन शक्ति, (पञ्च जनाः) पांचों जन, (सु-शर्म्माणः) उत्तम गृह वा उत्तम सुख, शरण देने वाले, (सु-अवसः) उत्तम रक्षा करने वाले (सु-नीथाः) उत्तम वाणी बोलने और उत्तम मार्ग से स्वयं जाने और अन्यों को ले जाने वाले (भवन्तु) हों। और वे (नः) हमारे (सु-त्रात्रासः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाले और (सु-गोपाः) उत्तम रक्षक और भूमि पशुओं और इन्द्रियों के उत्तम भूमिपति पशुपाल, जितेन्द्रिय (भवन्तु) हों।

नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता । आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥ १२ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान्, प्रकाश के देने और लेने की कामना वाले गुरु शिष्य जनो ! जो (भारत्-वाजः) ज्ञान को धारण करने हारा और (होता) ज्ञान को अन्यों को दान करने वाला विद्वान् (सुमतिम् याति) उत्तम मतिमान् शिष्य को प्राप्त करता है वह (नु) मानो शीघ्र ही (दिव्यं सद्मानं) उत्तम प्रकाश योग्य गृह के समान (दिव्यं) ज्ञान धारण करने योग्य विद्या के सत्पात्र, को (नंशि) प्राप्त कर लेता है।

वह (यजमानः) ज्ञान का दान करने वाला, (आसानेभिः) समीप बैठे हुए (मियेधैः) सत्संग करने वाले, विद्यार्थियों से सत्संग करता हुआ, (वसूयुः) अधीन बसने वाले वसु, ब्रह्मचारियों का प्रिय इच्छुक, स्वामी होकर (देवानां) विद्याभिलाषी जनों के (जन्म) विद्या जन्म का (ववन्द) उपदेश करता है। (२) शिष्य पक्ष में—जो (भारद्वाजः) ज्ञान धारण करने वाला, तत्संग्रहीता, (होता) अपने को गुरु के अधीन सौंपने और विद्या को ग्रहण करने वाला, जिज्ञासु (सुमतिं याति) उत्तम मतिमान, सुज्ञानी गुरु को जाता और उससे विद्या की याचना करता है वह नु शीघ्र ही, मानो (दिव्यं) दिव्य, उत्तम, (सद्मानं) गृह या भवन के समान विशाल शरण को (नंशि) प्राप्त करता है। वह (यजमानः) उनका आदर सत्कार, पूजा आदि करता हुआ (आसानेभिः मियेधैः) विराजने वाले सत्संगी, जनों द्वारा (वसूयुः) वसु होने की कामना युक्त होकर (देवानां जन्म) विद्वानों के बीच (जन्म) उपनयन द्वारा नवीन जन्म (नंशि) प्राप्त करे और (ववन्द) गुरुओं को नमस्कार किया करे।

अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम्।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! आप (त्यं) उस (रिपुम्) पापवान्, शत्रु, (स्तेनम्) चोर, (दुराध्यम्) दुःख से वश में आने वाले (वृजिनं) मार्गवत् (दविष्ठम्) दूर से दूर को भी, पैर रखकर जाने योग्य वा वर्जनीय शत्रु को (सुगं कृधि) सुगम कर। हे (सत्पते) सज्जनों के प्रतिपालक ! तू (अस्य) इस प्रजाजन से उसे (अप कृधि) दूर कर।

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः।
जही न्य१त्रिणं पणिं वृको हि षः ॥ १४ ॥

भा०—हे (सोम) उत्पादक पितावत् सर्वप्रेरक ! अभिषेक योग्य

प्रजेश्वर ! (नः) हमारे बीच में (ग्रावाणः) उत्तम शास्त्र के उपदेष्टा और शत्रुओं को कुचलने वाले वीर पुरुष लोग (हि) भी (सखित्व-नाय) मित्रता के निमित्त (कं) कर्त्ता पुरुष को (वावशुः) सदा चाहते हैं । हे राजन् ! विद्वन् ! तू (पणिन्) व्यवहारवान्, (अत्रि-णम्) मूल खा जाने वाले पुरुष को (नि जहि) अच्छी प्रकार दण्डित कर (हि) क्योंकि (सः वृकः हि) वह अवश्य वृक, अर्थात् चौर, वा भेड़िये के स्वभाव वाला, प्रजा को विविध प्रकार से काटने और दुःख देने वाला है ।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) सुखपूर्वक ऐश्वर्यादि के दान करने वालो ! (यूयं) आप लोग (हि) निश्चय से (सु-दानवः) उत्तम, सुख, देने वाले, (अभि) सब प्रकार से तेजस्वी, और (इन्द्र-ज्येष्ठाः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को अपने में सब से बड़ा मानने वाले (स्थ) होकर रहो । (नः) हमारे (अध्वन्) मार्ग को (सुगं) सुख से गमन करने योग्य (आ कर्त) करो । हे (गोपाः) भूमि और प्रजा के रक्षक जनो ! आप लोग (अमा) हमारे गृह को भी (सुगं कर्त्त) सुखदायक बनाओ ।

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ १६ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (स्वस्ति-गाम्) सुख से चलने योग्य और कल्याण-मय उद्देश्य को जाने वाले वा कल्याणकारी सुखदायक भूमि वाले (अने-हसम्) पापों, दुःखों जौर कष्टों से रहित (पन्थाम्) मार्ग को (अपि अगन्म) प्राप्त हों, (येन) जिससे जाता हुआ मनुष्य (विश्वाः द्विषः) समस्त शत्रु सेनाओं को (परि वृणक्ति) दूर करने में समर्थ होता है और (वसु विन्दते) ऐश्वर्य का लाभ करता है । (२) अध्यात्म में परम गम्य

होने से प्रभु 'पन्था' है, वह सुख कल्याण मार्ग से गमन करने योग्य पाप-रहित है। हम उसको (अपि अगन्महि) अप्यय अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हों, जिससे भक्त जन सब द्वेष वृत्तियों को त्यागता और (वसु) सबमें बसे परम ब्रह्म को प्राप्त करता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[५२]

ऋजिश्वा ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, १५, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३, ६, १३, १७ त्रिष्टुप् । ५ भुरिक्पंक्तिः । ७, ८, ११ गायत्री । ९, १०, १२ निचृद्गायत्री । १४ विराड्जगती ॥

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥

भा०—(अतियाजस्य) अत्यन्त दान का (यष्टा) देने वाला, उत्तम सत्संग और मान, पूजा, ईश्वरार्चना करने वाला पुरुष (तत्) वह (न दिवा नि हीयताम्) न सूर्यवत् तेजस्वी पद से गिर सकता है, (न पृथिव्या निहीयताम्) और न वह पृथिवी से त्यागा जा सकता है, अर्थात् समस्त दुनियां भी उसका साथ देती है। (अनु मन्ये) मैं तो बराबर इस बात को स्वीकार करता हूं कि वह (न यज्ञेन नि हीयताम्) न कभी यज्ञ से ही रहित होता है, (उत न) और न (शमीभिः नि हीयताम्) वह उत्तम सुखदायक कर्मों से ही रहित होता है, (तम्) उसके प्रति तो (सुभ्वः) उत्तम २ भूमियां, तद्वत् उत्तम भूमियों के स्वामी लोग और (पर्वतासः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् उत्पन्न जन भी विनम्र होजावें। अथवा—उसको (न उब्जन्तु) कभी विनाश न करें।

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥

भा०—(यः वा) और जो हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (नः) हमारे (क्रियमाणं) किये जाते हुए (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान, धन, अन्न आदि को (अति मन्यते) अतिक्रमण करे, (वा) अथवा (यः) जो उसकी (निनित्सात्) निन्दा करे (तस्मै) उसके लिये (तपूंषि) समस्त तप, और तापदायक अस्त्रादि (वृजिनानि) वर्जन करने वाले, बाधक रूप से (सन्तु) हों। (तं) उस (ब्रह्म-द्विषम्) ज्ञान, प्रभु, धन, अन्न आदि के द्वेषी पुरुष को (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, वा व्यवहार, वा धनादि कामना, और (अभि शोचतु) सब ओर से शोक, दुःखी, व्यथित, करे।

कि॒मङ्ग त्वा॑ ब्र॒ह्मणः॒ सोम॒ गो॒पां कि॒मङ्ग त्वा॑हुरभिशस्ति॒पां नः॑ ।
कि॒मङ्ग नः॑ पश्यसि नि॒द्यमा॑नान्ब्रह्म॒द्विषे॒ तपु॑षिं हे॒तिम॑स्य ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (सोम) ऐश्वर्य के चाहने वाले ! राजन् ! (त्वा) तुझे (ब्रह्मणः) धन, वेद वाणी का रक्षक और बृहत् राष्ट्र आदि का (गोपाम्) रक्षक (किम् आहुः) क्यों कहते हैं ? (अङ्ग) हे राजन् ! (त्वा) तुझे (नः) हमारा (अभिशस्तिपाम्) निन्दा से बचाने वाला (किम्) क्यों (आहुः) कहते हैं ? (अङ्ग) हे राजन् ! प्रभो ! (नः) हमें (निद्यमानान्) निंदा का विषय बनाते हुए दुष्ट जनों का (किम् पश्यसि) क्या देखता है ? तू (ब्रह्म-द्विषे) वेद, धन और अन्नादि से द्वेष करने वाले को नाश करने के लिये (तपुषिम् हेतिम्) संतापदायक अस्त्र (अस्य) फेंक।

अव॑न्तु मामु॒षसो॒ जाय॑माना॒ अव॑न्तु मा॒ सिन्ध॑वः॒ पिन्व॑मानाः ।
अव॑न्तु मा॒ पर्व॑तासो ध्रु॒वासोऽव॑न्तु मा पि॒तरो॑ दे॒वहू॑तौ ॥ ४ ॥

भा०—(माम्) मुझको (जायमानाः) नित्य उत्तम गुणों वा प्रकाशों से प्रकट होने वाली प्रभात वेलाएं और शत्रु के दर्प को दग्ध करने

वाली सेनाएं, और मुझे चाहने वाली प्रजाएं (अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (पिन्वमानाः) सींचने वाली (सिन्धवः) वेगवती नदियें और बढ़ते समुद्र तथा, तृप्त होते हुए प्राणगण, और वेग से जाने वाले अश्व आदि (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (ध्रुवासः पर्वतासः) स्थिर रहने वाले पर्वत (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (देव-हूतौ) शुभ गुणों की प्राप्ति और विद्वानों की अर्चना तथा प्रभु की उपासना-काल में (पितरः) पालक जन गुरु माता पिता आदि सम्बन्धी तथा ऋतु गण, और ओषधि आदि पदार्थ सभी (मा अवन्तु) मेरी रक्षा करें और मुझे प्राप्त हों।

विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥१४॥

भा०—(विश्व-दानीम्) सदा ही हम सब लोग (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले (स्याम) रहा करें। हम लोग (सूर्यम् नु) सूर्य को ही (उत्-चरन्तम्) ऊपर आते हुए देखें, जिस प्रकार वह (देवान् ओहानः अवसा आगमिष्ठः) समस्त किरणों को धारण करता हुआ अपने तेजसहित आने वालों में सब से उत्तम है (तथा) उसी प्रकार (देवान् ओहानः) शुभ गुणों को धारण करने वाला और विद्वान् जनों वा विद्या की कामना करने वाले शिष्यों का पालन करता हुआ प्रधान पुरुष भी (अवसा) अपने रक्षा और ज्ञानसामर्थ्य से (आगमिष्ठः) आने वालों में सर्वश्रेष्ठ हो, और वह (वसूनां) बसे प्रजाजनों वा शिष्यों के बीच (वसु-पतिः) सब प्रजाजनों और वसु, ब्रह्मचारियों का स्वामी होकर (तथा करत्) सूर्य के समान ही तेजस्वी, ज्ञानी होकर राजा और आचार्य तेज और ज्ञान का प्रदान करें।

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा और विद्या वा ज्ञान का देने वाला आचार्य और शत्रुहन्ता राजा वह (अवसा) अपने ज्ञान और रक्षा सामर्थ्य से (नेदिष्ठम्) अति समीप (आगमिष्ठः) आने वाला हो, हमारे सदा अति समीप, निकटतम होकर रहे । वह (सिन्धुभिः) जल-धाराओं से (पिन्वमाना) खूब भर कर बढ़ी हुई, (सरस्वती) नदी के समान वेग से प्रवाहित होने वाले वचनों से उत्तम ज्ञान की धारावत् हमें नित्य सेचन या वृद्धि करने हारा हो। (ओषधीभिः), ओषधियों वन-स्पतियों सहित (पर्जन्यः) ऐसों को देने वाले मेघ के समान ज्ञान और रक्षा का देने वाला और शत्रुओं का विजेता होकर (नः) हमें (मयोभूः) सुख का देने हारा हो । वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी और ज्ञानवान् होकर भी (सु-शंसः) उत्तम उपदेश करने वाला, और (पिता इव) पालक पिता के समान (सु-हवः) सुख से, विना संकोच पुकारने योग्य और उत्तम आदर सत्कार करने योग्य हो ।

विश्वे॑ देवास॒ आ ग॑त शृणु॒ता म॑ इ॒मं हव॑म् ।
एदं ब॒र्हिर्नि षी॑दत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् लोगो ! (आ गत) आप लोग आओ । (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) गुरु से ग्रहण करने योग्य अधीत ज्ञान को (श्रृणुत) श्रवण करो और आप लोग (इदं बर्हिः) इस उत्तम पद, वृद्धि योग्य आसन पर (आ नि सीदत) आकर विराजो।

यो वो॑ देवा घृ॒तस्नु॑ना ह॒व्येन॑ प्रति॒भूष॑ति । तं विश्व॒ उप॑ गच्छथ॥८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (घृत-स्नुना हव्येन) घृत से युक्त अन्न से जैसे विद्वानों की स्निग्ध भोजनादि से सेवा आदर आदि किया जाता है उसी प्रकार हे (देवाः) विद्या की कामना करने वाले विद्यार्थी जनो ! (यः) जो (घृत-स्नुना) स्नेह से द्रवीभूत, वा स्नेह से हृदय से निकलने वाले, (हव्येन) ग्राह्य ज्ञान से (वः) आप लोगों

को अलंकृत करता है (तम्) उस विद्वान् गुरु को (विश्वे) आप सब लोग (उप गच्छथ) प्राप्त होओ और उसी की उपासना वा सेवा करो ।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः।९।

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) पुत्र पौत्रादि होंवे (अमृतस्य) कभी नाश न होने वाले परमेश्वर के नित्य ज्ञानमय वेद की (गिरः) वाणियों का (उप शृण्वन्तु) गुरु के समीप जाकर श्रवण करें और वे (नः) हमें (सुमृडीकाः भवन्तु) उत्तम सुख देने वाले हों ।

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः।।१०।१५

भा०—(विश्वे देवाः) समस्त विद्या की कामना करने वाले मनुष्य (ऋता-वृधः) सत्य ज्ञान की वृद्धि करने वाले हों । और वे (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के अनुसार अथवा ऋत, सत्य ज्ञान के स्वामी विद्वान् पुरुषों द्वारा (हवन-श्रुतः) दान करने और स्वयं ग्रहण करने योग्य ज्ञान का श्रवण करने वाले होकर (युज्यम्) परस्पर योग एवं सावधान, एकाग्रचित्त वा चित्तवृत्तिनिरोध शक्ति के बढ़ाने वाले, मधुर ज्ञान रस का (जुषन्ताम्) सेवन करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा ।
इमा हव्या जुषन्त नः ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष और (मरुद्-गणः) मनुष्यजन और (मित्रः) सब का स्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उत्तम उपदेश और (इमा हव्यानि) इन ग्राह्य वचनों तथा प्रेमपूर्वक प्रस्तुत किये पदार्थों को भी (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करें ।

इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज ।
चिकित्वान् दैव्यं जनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (होतः) ज्ञान के देने वाले! (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् आचार्य! प्रभो! आप (चिकित्वान्) ज्ञानवान् हो। आप (नः) हमारे बीच में से (अध्वरं) न हिंसा करने योग्य, अपीड़नीय, वा अविनाशी, अध्ययनादि ज्ञान यज्ञ को (वयुनशः) उनके ज्ञान शक्ति के अनुसार (यज) कर और हमें भी ज्ञान प्रदान कर। और तू (दैव्यं) देव, अर्थात् ज्ञान के इच्छुक (जनम्) जन, शिष्य को भी (यज) अपने संगति में रख। इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्, प्रतापिन्! राजन्! आप (अध्वरं चिकित्वान्) अहिंसनीय, स्थायी, प्रजापालन रूप यज्ञ को जानते हुए (वयुनशः) प्रजाजन को उनके ज्ञान और कर्म सामर्थ्य के अनुसार (देव्यं जनम्) देव अर्थात् राजा के उचित सेवक जन रूप में (यज) प्राप्त करो और उनको पद पर लगाओ।

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यविष्ठ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम्॥१३॥

भा०—(विश्वे देवाः) हे सब विद्वान् वा विद्या के अभिलाषी पुरुषो! (ये) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षवत् बीच की भूमि, (ये च द्यविस्थ) और जो सूर्यवत् प्रकाशमान ज्ञानमार्ग में विद्यमान हो (ये अग्नि-जिह्वाः) और जो अग्नि की जिह्वा अर्थात् ज्वाला के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करनेवाली वाणी वाले (उत वा) और (यजत्रा) जो ज्ञान देने और सत्संग करने योग्य हैं ये सभी (मे) मेरे (इमं) इस (हवं) देने योग्य, गुरु से ग्रहण करने योग्य ज्ञान को (श्रृणुत) श्रवण करें। और (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) वृद्धि युक्त, उच्च आसन पर (मादयध्वम्) स्वयं प्रसन्न हों अन्यों को भी हर्षित करें।

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम॥१४॥

भा०—हे (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो! हे (यज्ञियाः)

सत्संग, दान पूजादि के योग्य जनो ! हे (उभे रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् परस्पर के उपकारक स्त्री पुरुषो ! वा राजप्रजावर्गीय जनो ! और (अपां नपात् च) प्राणों का नाश न करने वाला जन (मम) मेरे (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान का आप लोग (शृण्वन्तु) श्रवण करें । मैं (वः) आप लोगों के प्रति (परि-चक्ष्याणि) निन्दा योग्य वा प्रतिवाद करने योग्य (वचांसि) वचन (मा वोचम्) कभी न कहूं । प्रत्युत (परि-चक्ष्याणि) सब प्रकार से सर्वत्र कहने योग्य वचन ही कहूं । हम लोग (वः सुम्नेषु) आप लोगों के सुखों में (इत्) ही (अन्तमाः) अति निकटवर्त्ती होकर (मदेम) सदा हर्ष लाभ करें ।

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ।१५।

भा०—(ये के च) और जो कोई (महिनः) गुणों में महान्, (ज्मा) इस भूमि पर (दिवः) सूर्य के प्रकाश से तथा (अपां सधस्थे अहि-मायाः) जलों के एकत्र विद्यमान रहने के स्थान अन्तरिक्ष में विद्यमान मेघ के समान आचरण करने वाले, उदार, निष्पक्षपात होकर ज्ञानों, सुखों की वर्षा करने वाले वा (अपां सधस्थे) आप्त विद्वज्जनों के साथ सभा आदि स्थानों में (दिवः) ज्ञान के प्रकाश से (अहि-मायाः) अन्यों को पराजित करने वाली, सर्वातिशायी बुद्धि वाले (जज्ञिरे) प्रकट हों । (ते देवाः) वे ज्ञानादि देने में कुशल ज्ञानी पुरुष (क्षपः उस्राः) रात दिन, (इषये) इष्ट सुख लाभ के लिये (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आयुः) समस्त आयु (वरिवस्यन्तु) दें, और जन समाज की सेवा किया करें ।

अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥

भा०—(अग्नि-पर्जन्या) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाश युक्त और

प्रतापी और मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने वाला, वा शत्रुओं को विजय और प्रजा को तृप्त, प्रसन्न करने वाला, ये दोनों प्रकार के पुरुष (सु-हवा) उत्तम दान योग्य ज्ञान और धन से युक्त वा प्रजाओं द्वारा सुखपूर्वक बुलाने, निसंकोच कहने सुनने योग्य होकर (मे धियं अवतम्) मेरी बुद्धि और सदाचार की रक्षा करें। और (अस्मिन् हवे) इस दान-प्रतिदान के यज्ञ में (नः सु-स्तुतिम् अवताम्) हमारी उत्तम स्तुति का श्रवण करें। उन दोनों से (अन्यः) एक (इडाम् जनयत्) मेघ के समान भूमि को बीज वपन योग्य बनाकर अन्न उत्पन्न करता है, उसी प्रकार (अन्यः) एक तो (इलाम् जनयत्) शिष्य के प्रति उपदेशयोग्य वाणी को ही प्रकट करे और (अन्यः गर्भम् जनयत्) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जलों को गर्भित करता वा पृथिवी पर जाठर रूप में अन्न को पचाकर, वीर्य बना कर प्रथम पुरुष में, फिर स्त्रीयोनि में गर्भ को उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अन्यः) दूसरा विद्वान् जन (गर्भम्) विद्यार्थी को माता के समान विद्या के गर्भ में ग्रहण करके पुनः शिष्य को पुत्रवत् वेदविद्या में उत्पन्न करे। जिस प्रकार सूर्य और मेघ दोनों (प्रजावतीः इषः धत्तम्) प्रजा से युक्त अन्न सम्पदा को देते और पुष्ट करते हैं उसी प्रकार गुरु, आचार्य, भी (प्रजा-वतीः इषः) उत्तम सन्ततियुक्त कामनाओं को धारण करें अग्नि मेघ वत् अग्रणी, सेना नायक और राजा दोनों प्रजा से युक्त सेनाओं को धारण करें।

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् १७।१६

भा०—(बर्हिषि स्तीर्णे) यज्ञ में, यज्ञवेदिपर आसन कुशा आदि आस्तरण योग्य पदार्थ के बिछ जाने पर और (अग्नौ समिधाने) अग्नि के प्रदीप्त होते हुए जिस प्रकार (महा-सूक्तेन) वेद के बड़े सूक्त से और

(महा नमसा) बड़े नमस्कार, आदर वा अन्नादि पदार्थ से (आविवासे) यज्ञ कर्म करता है उसी प्रकार (बर्हिषि) बड़े मान वृद्धि युक्त, (स्तीर्णे) बिछे आसन पर (अग्नौ समिधाने) अग्निवत् तेजस्वी राजा वा ज्ञान-प्रकाश से युक्त विद्वान् के विराजने पर मैं (महा-नमसा) बड़े शक्ति, आदर से (सूक्तेन) उत्तम वचनों से उसकी (आ विवासे) सेवा शुश्रूषा करूं। हे (यजत्राः) यज्ञशील, ज्ञानदाता, एवं सत्संगयोग्य पूज्य पुरुषो ! (अद्य) आज (नः) हमारे (अस्मिन् विदथे) उस यज्ञ में (विश्वे-देवाः) आप सब विद्वान् जन (हविषि) अन्नादि से (मादयध्वम्) स्वयं भी तृप्त और हर्षित होवो और (नः मादयध्वम्) हमें भी तृप्त प्रसन्न करो। इति षोडशो वर्गः॥

[५३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ पूषा देवता॥ छन्दः १, ३, ४, ६, ७, १० गायत्री। २, ५, ९ निचृद्गायत्री। ८ निचृदनुष्टुप्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये। धिये पूषन्नयुज्महि॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वाज-सातये रथं न) वेग से देशान्तर जाने के लिये वेग युक्त रथ को जोड़ते हैं उसी प्रकार हे (पथस्पते) मार्ग के स्वामिन् ! हे (पूषन्) सर्वपोषक प्रभो ! (वाज-सातये धिये) ज्ञान के देने वाली वाणी, बुद्धि और ऐश्वर्य के देने वाले कर्म के लिये (रथं) रमणीय, वा वेग से ले जाने वाले (त्वा) तुझ को (वयम् उ) हम (अयुज्महि) योगाभ्यास द्वारा, समाहित चित्त से ध्यान करें। इसी प्रकार हे राजन् ! तुझको ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ रथवत् ही नियुक्त करें।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्। वामं गृहपतिं नय॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (नर्यं) मनुष्यों का हितकारी, (वीरं) वीर (प्रयत-दक्षिणम्) उत्तमसंपत्-बलवीर्य से युक्त, (वामं)

सेवा करने योग्य (गृहपतिं) गृह स्वामी और (नर्यं) मनुष्यों के हित, (वीरं) विविध कष्टों को दूर करने वाले, (प्रयत-दक्षिणं) खूब दान दक्षिणा देने योग्य, (वामं) सुन्दर, सुखकर, (गृहपतिम्) गृह के पालक (वसु) धन को भी (नः) हमें (अभि नय) प्राप्त करा।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (आ घृणे) सर्वत्र प्रकाशित ! हे तेजस्विन् ! हे (पूषन्) निर्बलों के पक्षपोषक ! तू (अदित्सन्तं चित्) न देना चाहने वाले पुरुष को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरित कर। (पणेः चित्) व्यवहारकुशल, वणिग्जन, वा द्यूतादि व्यवहार करने वाले वा स्तुतिशील जन के भी (मनः) मन को (वि म्रद) विशेष रूप से मृदु कर। वह भी कंजूस न होकर दयाशील कोमल हृदय रहे।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (वाज-सातये) ज्ञान, ऐश्वर्य और बल को प्राप्त करने के लिये (पथः) उत्तम मार्गों को (वि चिनुहि) खोज। (मृधः) हिंसाकारियों को (वि जहि) विविध प्रकार से दण्डित कर। हे (उग्र) बलवन् ! (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां और कर्म (साधन्ताम्) उत्तम कर्म और फलों को सिद्ध करें।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! मेधाविन् ! दूरदर्शिन् ! आप (पणीनाम्) द्यूतादि व्यवहार करने वाले दुष्ट जनों के (हृदया) हृदयों को (आरया) आरा से जैसे काष्ठों को चीरा जाता है वा पैनी चोब से जैसे पशुओं को उद्विग्न करके ठीक रास्ते से चलाया जाता है उसी प्रकार

(आरया) सब प्रकार की शिक्षा और 'आर्त्ति' अर्थात् पीड़ा, दण्डादि की व्यवस्था द्वारा (परि तृन्धि) परिपीड़ित कर (अथ) और इस प्रकार (ईम्) उनको (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (रन्धय) वश कर और दण्डित कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों के पक्ष को पोषण करने हारे ! प्रजा-पोषक राजन् ! तू (पणेः) व्यवहार में लगे दुष्ट जनों को (आरया) दण्ड व्यवस्था से, पशुओं को चोब से जैसे वैसे ही (वि तुद) विविध प्रकार से व्यथित किया कर और (हृदि) हृदय में (प्रियम्) उनका प्रिय हित (इच्छ) चाहा कर। (अथ ईम् अस्मभ्यम् रन्धय) और उनको हमारे हितार्थ वश कर।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥ ७ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! तू (पणीनां) व्यवहारवान् प्रजा के लोगों के (किकिरा) व्यवस्था पत्रों की छोटी बातों को भी (आ रिख) अवश्य लिख। (अथ) और (हृदया) उनके हृदयों को (ईम्) सब प्रकार से (अस्मभ्यम्) हमारे ही हितार्थ (रन्धय) वश कर।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥ ८ ॥

भा०—हे (पूषन्) निर्बलों का पक्ष पोषण करने हारे ! हे (आ-घृणे) सब प्रकार तेजस्विन् ! समस्त ज्ञानों के प्रकाशक विद्वन् ! तू (यां) जिस (ब्रह्म-चोदनीम्) ब्रह्म विद्या और धन की ओर प्रेरित करने वाली (आराम्) चोब या आरा शस्त्री के तुल्य सद्-असद् विवेक करने वाली बुद्धि या वाणी को ((बिभर्षि) धारण करता है (तया) उससे (समस्य

हृदयम्) सबके दिलों को (आ रिख) अंकित कर और (किकिरा कृणु) अपने उत्तम विचारों को सर्वत्र विस्तारित कर।

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी ।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ९ ॥

भा०—हे (आ-घृणे) तेजस्विन् ! सूर्यवत् प्रतापिन् ! (पशु-साधनी) पशुओं को वश करने वाली, (अष्ट्रा गो-ओपशा) बैलों के सदा समीप रहकर चाबुक जैसे उनको सन्मार्ग में चलाती है उसी प्रकार हे राजन् ! (ते) तेरी (या) जो (अष्ट्रा) व्यापक शक्ति (गो-ओपशा) भूमि पर प्रशान्त रूप से विद्यमान रहकर (पशु-साधनी) पशु तुल्य मूर्ख जनों को भी अपने वश करने वाली, है (तस्याः) उसके (सुम्नम्) सुखकारी परिणाम को हम (ते) तुझ से (ईमहे) प्राप्त करें ।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।
नृवत्कृणुहि वीतये ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (पूषन्) पशुपाल के तुल्य प्रजापोषक राजन् ! (उत) और तू (गो-सणिम्) गौ देने वाली, (अश्व-साम्) अश्व देने वाली, और (वाज-साम्) अन्न, बल, ज्ञान ऐश्वर्य देने वाली, (उत) और नृवत् उत्तम नायकों से युक्त (धियं) बुद्धि वा कर्म को (नः वीतये) हमारे सुखोपभोग और हमें ज्ञान प्रकाशित करने के लिये (कृणुहि) कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ७, ८, ९ गायत्री । ३, १० निचृद्गायत्री । ५ विराड्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति ।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥ १ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजा के पोषक ! (यः) जो विद्वान् (इदम्

एव) यह ऐसा ही है इस प्रकार यथार्थ रूप से (ब्रवत्) उपदेश करता है और जो (अञ्जसा) तत्व ज्ञान-प्रकाश से (अनु शासति) अनुशासन अर्थात् सत्योपदेश करता है, तू उस (विदुषा) विद्वान् द्वारा हमें (सं नय) उत्तम मार्ग पर ले चल ।

समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवेति च ब्रवत् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (गृहान्) गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (अभि शासति) साक्षात् उपदेश करता है और (ब्रवत् च) बतलाता है कि (इमे एव इति) ये ही ठीक २ पदार्थ इस २ प्रकार से ग्रहण करने योग्य हैं ऐसे (पूष्णा) पोषक पालक के साथ (सं गमेमहि) हम सत्संग किया करें ।

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते ।
नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥

भा०—(पूष्णः) पोषण करने वाले राजा का (चक्रम्) राजतन्त्र (न रिष्यति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता । (कोशः न अवपद्यते) उसका ख़ज़ाना भी कमती नहीं होता है और (अस्य पविः न व्यथते) उसका बल वीर्य और शस्त्र बल भी पीड़ित नहीं होता ।

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते ।
प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो व्यक्ति (अस्मै) इस प्रजाजन का (हविषा) लेने देने योग्य कर अन्नादि से (अविधत्) पीड़ित करता है और स्वयं (प्रथमः) मुख्य होकर (वसु विन्दते) धन लेता है, (तं पूषा अपि) उसको प्रजापोषक राजा भी (न मृष्यते) कभी सहन नहीं करता ।

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः ।
पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥ १९ ॥

भा०—(पूषा) राज्य वा प्रजा का पोषक राजा, (गाः) गौवों को गोपाल के समान (नः गाः अन्वेतु) हमारी भूमियों के अनुकूल होकर चले। वह (अर्वतः न रक्षतु) अश्वों को सारथिवत् हमारी रक्षा करे। वह (पूषा नः वाजं सनोतु) सर्वपोषक अन्नवत् हमें ऐश्वर्य को न्यायपूर्वक विभक्त करे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

पूषन्नन्नु प्र गा इ॑हि यज॑मानस्य सुन्व॒तः।
अ॒स्माकं॑ स्तुव॒ताम॒त ॥ ६ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! (सुन्वतः यजमानस्य) तेरा अभिषेक करने और तुझे कर आदि देने वाले प्रजाजन के (गाः अनु) भूमियों वा वाणियों का (अनु इहि) गौ के पीछे २ गोपालवत् अनुगमन कर अर्थात् भूमि में बसने वाली प्रजा के बहुमत के पीछे चल, उनकी रेख देख रख। (उत्) और (स्तुवताम् अस्माकं) उत्तम उपदेश करने वाले हम लोगों की (गाः अनु इहि) वाणियों का अनुसरण कर। जैसे पशु-पाल दण्ड लेकर पशु को आगे बन्धन आदि से रहित करके भी, दण्ड के बल से सन्मार्ग पर ले जाता है उसी प्रकार राजा प्रजा के पीछे चलता हुआ भी दण्ड बल से उसका अनुशासन करे।

माकि॑र्नेश॒न्माकीं॑ रिष॒न्माकीं॒ सं शा॑रि॒ केव॑टे।
अथारि॑ष्टाभि॒रा ग॑हि ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रजाजन (माकिः नेशत्) कभी किसी प्रकार नष्ट न हो, (माकीं रिषत्) किसी अन्य द्वारा पीड़ित भी न हो। वह (केवटे) कूप या गढ़े के समान, अवनत दशा में भी (माकीं सं शारि) कभी शीर्ण न हो। (अथ) और (अरिष्टाभिः) अहिंसित प्रजाओं सहित तू, सुखी गौओं से गोपाल के समान, (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

शृ॒ण्वन्तं॑ पू॒षणं॑ व॒यमिर्य॑मन॑ष्टवेदसम्।
ईशा॑नं रा॒य ई॑महे ॥ ८ ॥

भा०—(वयम्) हम (इर्यम्) प्रजा को सन्मार्ग में चलाने वाले और स्वयं भी बड़ों द्वारा सन्मार्ग में प्रेरित, (अनष्ट-वेदसम्) ज्ञान और धन से सम्पन्न, (ईशानं) राष्ट्र पर प्रभुत्व करने में समर्थ, (शृण्वन्तं) प्रजा के न्याय्य कथन को सुनने वाले (पूषणं) सर्वपोषक राजा से (रायः) नाना ऐश्वर्यों की (ईमहे) याचना करते हैं ।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करने वाले पालक ! (तव व्रते) तेरे काम में लगे हुए (वयं) हम (कदा चन न रिष्येम) कभी भी पीड़ित न हों । हम (ते स्तोतारः) तेरे गुणों वा विद्या आदि का कथन करते हुए (इह) इस राष्ट्र में (स्मसि) रहें ।

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।
पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥ २० ॥

भा०—(पूषा) प्रजा को पोषण करने वाला राजा, (परस्तात्) दूर तक भी (दक्षिणं) बलयुक्त वा दानशील (हस्तं) हाथ (परि दधातु) धारण करे । जिससे (नः) हमारा (नष्टम्) खोया हुआ धन भी (आ अजतु) हमें प्राप्त हो । इति विंशो वर्गः ॥

[५५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥ षड़र्चं सूक्तम् ॥

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै ।
रथीर्ऋतस्य नो भव ॥ १ ॥

भा—हे (आ घृणे) तेजस्विन् ! तू (आ इहि) हमें प्राप्त हो । हे (नपात्) कभी कुमार्ग में न जाने वाले ! तू (वाम्) हम दोनों को

(विमुचः) विशेष रूप से दुःखों से मुक्त कर । हम (सं सचावहै) दोनों राजा प्रजा और स्त्री पुरुष परस्पर अच्छी प्रकार सम्बद्ध होकर रहें । तू (नः) हमारे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार, धन, यज्ञादि का (रथीः) रथवान् के समान सञ्चालक (भव) हो ।

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः ।
रायः सखायमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(रथीतमम्) श्रेष्ठ रथ के स्वामी, (कपर्दिनम्) मानसूचक शिखा धारण करने वाले, प्रमुख, (महः राधसः) बड़े भारी ऐश्वर्य के स्वामी, (सखायम्) मित्र से हम लोग (रायः) नाना धन (ईमहे) याचना करें ।

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व ।
धीवतोधीवतः सखा ॥ ३ ॥

भा०—हे (अजाश्व) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामिन् ! वा (अजाश्व) वेग से चलने वाले अश्वों के स्वामिन् ! तू (रायः) ऐश्वर्यों को (धारा असि) धारण करने वाली वाणी के समान आज्ञापक है, हे (आ-घृणे) तेजस्विन् ! तू (वसोः) बसने वाले प्रजाजन का (राशिः असि) राशि अर्थात् जन-संघ का प्रतिनिधि है । वा ऐश्वर्य का महान् राशि, परमैश्वर्यवान् है और तू (धीवतः धीवतः) प्रत्येक बुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुष का (सखा) मित्र है ।

पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् ।
स्वसुर्यो जार उच्यते ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग (वाजिनं) बलवान्, ज्ञानवान्, (अजाश्वम्) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले, अश्व सैन्य के स्वामी, (पूषणं) प्रजा के पोषक राजा को (नु उप स्तोषाम) अवश्य परस्पर समीप बैठकर विचार पूर्वक प्रस्तुत करें । ऐसे व्यक्ति को राजा बनावें (यः) जो (स्वसुः =

सु-असुः, स्व-सुः) उत्तम प्राणवान् , सुखजनक प्राणवत् प्रिय, वा सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ, स्व = धनैश्वर्य को उत्पन्न करने में समर्थ होकर भी (जारः) उत्तम, उपदेष्टा, विद्वान् (उच्यते) कहा जावे । अथवा (यः) जो (स्वसुः) स्वयं शरण में आई प्रजा का, उषा को जीर्ण करने वाले सूर्य के समान सन्मार्ग में आदेष्टा कहा जाता है ।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः ।
भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥ ५ ॥

भा०—जो (स्वसुः जारः) रात्रि वा उषा को नष्ट करने वाले सूर्य के समान भगिनी के तुल्य प्रजा को (जारः) सन्मार्ग में चलाने वाला, और (इन्द्रस्य सखा) अग्नि या विद्युत् के मित्र वायु के समान (मम सखा) मेरा मित्र (भ्राता) एवं पतिवत् वा (स्वसुः भ्राता इव) बहिन के भाई के समान, उसका भरण पोषण करने वाला है, उसको मैं (मातुः) ज्ञान देने वाली विद्या वा सबकी माता के समान, वा मापी जाने योग्य भूमि को (दिधुषुम्) धारण करने में समर्थ (अब्रवम्) कहता हूं, वह (नः श्रृणोतु) हमारा वचन श्रवण करे ।

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् ।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

भा०—(ते) वे (अजासः) शत्रु को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने वाले वीर पुरुष (नि-श्रृम्भाः) नित्य, स्थिर सम्बद्ध होकर (रथे अजासः) रथ में लगे वेग से जाने वाले अश्वों के समान (जन श्रियं बिभ्रतः) प्रजाजन की समृद्धि धारण पोषण करते हुए (जन-श्रियं) जनों के बीच शोभावान् (देवं) तेजस्वी राजा को (आ वहन्तु) धारण करें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ गायत्री । २, ३ निचृद्गायत्री । ६ स्वराडुष्णिक् ॥

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् ।
न तेन देव आदिशे ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् (एनं पूषणम्) उस प्रजा के पोषक राजा वा प्रभु को (करम्भात्) स्वयं कर्म फल का भोक्ता होकर इस रूप से (आ दिदेशति) उस प्रभु की स्तुति करता है (तेन) उसे (देवः) कर्म फल देने वाले प्रभु से (आदिशे न) कार्य-फल की याचना करने की आवश्यकता नहीं । वह प्रभु विना मांगे ही स्वयं कर्म करने पर फल देता ही है । (करम्भः) करोतेरम्भच् ॥ उ० ॥

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥

भा०—(उत) और (घ) निश्चय से (सः) वह (रथीतमः) उत्तम रथ का स्वामी, (सख्या युजा) मित्र सहायक से (सत्-पतिः) सज्जनों का प्रतिपालक है । वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् होकर (वृत्राणि) मेघों को सूर्य के समान विघ्नों और विघ्नकारियों को (जिघ्नते) विनाश करता है । अध्यात्म में—आत्मा ही रथीतम है । वह (युजा) सहयोगी, सहकारी प्रभु के कारण सत्-पति, उत्तम स्वामी का सेवक हो विघ्नों का नाश करता है ।

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् ।
न्यैरयद्रथीतमः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (रथीतमः सूरः गवि चक्रं नि एरयत्) उत्तम महारथि भूमि पर या प्रबल अश्व या बैल के बलपर, अपने रथ चक्र

को अच्छी प्रकार चला देता है वा (सूरः परुषे) शूरवीर पुरुष, कठोर भाषण करने वाले शत्रु पर (हिरण्ययम् चक्रं नि ऐरयत्) चमकते, दीप्तियुक्त हिंसा साधन, शस्त्र को चलाता है, वा जैसे (सूरः) सूर्य (परुषे) पर्वयुक्त या तर्पक मेघ और (गवि) भूमि पर (हिरण्ययम्) तेजोमय 'चक्र' वा विम्ब को प्रेरित करता है उसी प्रकार (रथीतमः) उत्तम रथों का स्वामी, (सूरः) शूरवीर आज्ञापक पुरुष (परुषे) कठोर शत्रु पर वा कठोर संग्राम काल में वा ([अ] प-रुषे) रोषरहित प्रजा के हितार्थ (गवि) इस भूमि पर (हिरण्ययं) हित और रमणीय (अदः) उस दूर स्थित (चक्रम्) राज्य चक्र, वा सैन्य चक्र को (नि ऐरयत्) अच्छी प्रकार संचालित करे ।

यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः ।
तत्सु नो मन्म साधय ॥ ४ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (दस्र) दर्शनीय ! हे दुःखों के नाश करने हारे ! हे (मन्तुमः) ज्ञानवन् ! (यत्) जो (अद्य) आज (त्वा) तुझे (ब्रवाम) उपदेश करें (नः) हमारे लिये (तत्) उस (मन्म) ज्ञान का (सु साधय) अच्छी प्रकार साधन कर ।

इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् ।
आरात्पूषन्नसि श्रुतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (पूषन्) प्रजापोषक ! तू (आरात्) दूर वा समीप (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है । तू (इमं) इस (गो-एषणम्) पशु, भूमि, उत्तम वाणी आदि के इच्छुक (जनं) जन समूह को (सातये) नाना ऐश्वर्यादि विभक्त करने के लिये (सीषधः) प्राप्त कर ।

आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥ ६ ॥ २२ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (अद्य च श्वः च) आज भी और कल भी

(सर्व-तातये) सबके कल्याणकारी, (सर्व-तातये) सर्वहित यज्ञादि कार्य में (ते) तेरी (आरे-अघाम्) पापादि से रहित (उप-वसुम्) धनप्रद (स्वस्तिम्) कल्याणकारिणी, सुखप्रद नीति को (ईमहे) याचना करते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[५७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्र-पूषणौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराड्गायत्री। २, ३ निचृद्गायत्री। ४, ५ गायत्री ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये।
हुवेम वाजसातये ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रा पूषणा नु) ऐश्वर्ययुक्त और सब निर्बलों के पोषक, दोनों प्रकार के पुरुषों को (सख्याय) मित्र भाव के लिये (स्वस्तये) सुख प्राप्ति के लिये और (वाज-सातये) बलैश्वर्य, अन्नादि प्राप्त करने के लिये (वयं हुवेम) हम प्राप्त करें, उनको आदर पूर्वक बुलावें। (इरां दृणाति 'इन्द्र') अन्नोत्पादक कृषक जन 'इन्द्र' है और भागधुक्, पृथिवी-पति पूषा है। अन्नादि के लिये दोनों आवश्यक हैं।

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम्।
करम्भमन्य इच्छति ॥ २ ॥

भा०—दोनों का पृथक् २ विवरण करते हैं। पूर्वोक्त इन्द्र और पूषा दोनों में से (चम्वोः) राष्ट्र का भोग करने वाले राजा और प्रजावर्ग दोनों में से (अन्यः) एक तो (पातवे) अपने पालन के लिये (सुतम्) अभिषिक्त (सोमम्) ऐश्वर्यवान्, सर्वप्रेरक राजा को (उप सदत्) प्राप्त होता है। और (अन्यः) दूसरा राजा (करम्भम्) कर ग्रहण कर उससे ही भरण करने योग्य अन्नवत् राष्ट्र को (इच्छति) प्राप्त करना चाहता है। (२) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान्, व्यापारी वर्ग (पातवे) आगे के लिये राष्ट्र का

उत्पन्न ऐश्वर्य प्राप्त करे और (अन्यः) दूसरा (पूषा) पृथिवीस्थ शेष प्रजावर्ग भूमि से अन्न उत्पन्न करना चाहता है । एक धन कमावे, और एक अन्न, वे दोनों ही इन्द्र और पूषा हैं । व्यापारी वर्ग 'इन्द्र' है, कृषक वर्ग 'पूषा' है ।

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥ ३ ॥

भा०—उन दोनों मे से, (अन्यस्य) एक प्रजावर्ग के (अजाः वह्नयः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ, अग्निवत् तेजस्वी, राज्य-भार को धारण करने वाले, (सम्भृता) वेतनादि द्वारा अच्छी प्रकार पोषित किये जांय । और (अन्यस्य) दूसरे, राजपक्ष के, (अजा) वेगवान् (हरी) अश्व वा स्त्री पुरुष (संभृता) एकत्र वेतनबद्धवत् खूब हृष्ट पुष्ट होने उचित हैं । (ताभ्याम्) उन दोनों से, (वृत्राणि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और राज्य पर आने वाले संकटों को (जिघ्नते) नाश करता है । अधिदेव में—इन्द्र सूर्य, पूषा वायु है ।

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषाभवत्सचा ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृषन्तमः) खूब वर्षा करने वाला सूर्य (महीः अपः) बहुत जलों को सर्वत्र फैला देता है (पूषा सचा अभवत्) पोषक वायु सहायक होता है । उसी प्रकार (यत्) जब (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वा शत्रुहन्ता राजवर्ग, (वृषन्तमः) खूब बलवान् , भूमिसेचक होकर (रितः) सब ओर जाने वाली गाड़ियों, वा (महीः) बड़ी अन्न सम्पद् देने वाली भूमि भूमियों को (अनयत्) प्राप्त करावे । (तत्र) वहां (सचा) सहायक रूप से (पूषा अभवत्) पोषक कृषक वर्ग होता है ।

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव ।
इन्द्रस्य चार्रभामहे ॥ ५ ॥

भा०—(पूष्णः) सर्वपोषक, और (इन्द्रस्य च) ऐश्वर्यवान् शत्रु-हन्ता तथा, अज्ञाननाशक उत्तम ज्ञानदायक जन की (तां) उस (सुमतिम्) शुभ मति को (वृक्षस्य) वृक्ष की (वयाम् इव) शाखा के समान अपने आश्रय और उन्नति के लिये (प्र आ रभामहे) प्राप्त करें । इसी प्रकार (पूष्णः) सर्वपोषक पृथ्वी और (इन्द्रस्य) विद्युत् मेघ, सूर्य आदि सम्बन्धी (सु-मतिं) उत्तम ज्ञान को भी हम प्राप्त करें ।

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः ।
मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥ ६ ॥ २३ ॥

भा०—(सारथिः अभीशून् इव) सारथि जिस प्रकार घोड़े की लगाम की रस्सियों को अलग २ रखता और उनको अपने वश करता है इसी प्रकार हम लोग भी (पूषणम्) प्रजा के पोषक, पृथ्वी, तथा उस पर कृषि आदि करने वाले प्रजावर्ग तथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त वैश्य वर्ग, इन दोनों को (मह्यै) भूमि या राष्ट्र की उन्नति और (स्वस्तये) सब के कल्याण के लिये (उत् युवामहे) उद्योगपूर्वक पृथक् २ रक्खें और उनको वश करें, उनकी उत्तम रूप से व्यवस्था करें । इसी प्रकार पूषा पृथ्वी और इन्द्र सूर्य या विद्युत् आदि पदार्थों का उत्तम रीति से उपयोग करें । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[५८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । ३–४ विराट् त्रिष्टुप् । २ विराड् जगती ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु॥१॥

भा०—हे (स्वधावः) अपने तेज को धारण कराने वाले पुरुष ! हे (पूषन्) धारण किये वीर्य को पोषण करने वाली ! भूमिवत् व्यक्ति स्त्रि ! आप दोनों (वि- सु-रूपे) विशेष सुन्दर रूपवान्, भिन्न २ उत्तम रुचि वाले, (अहनी) दिन रात्रिवत् एक दूसरे को पीड़ा न देने वाले, दीर्घायु होवो। हे (स्वधावः) अपने आत्मांश को धारण करनेवाले पुरुष ! (ते शुक्रं) तेरा विशुद्ध वीर्य, (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है और हे (पूषन्) गर्भ में वीर्य को पोषण करने हारी भूमिस्वरूप ! (ते) तेरा वीर्य रजः रूप (अन्यत्) भिन्न प्रकृति का है। पुरुष तू (द्यौः इव असि) सूर्य के समान है और आप दोनों (यजतम्) आदर पूर्वक मिलकर रहो। हे स्त्रि ! तू भी (द्यौः इव असि) भूमि के समान कामना वाली, वीर्य को सुरक्षित रखने वाली है। हे पुरुष ! हे स्त्रि ! तुम दोनों पृथक् (विश्वाः मायाः) समस्त निर्माणकारिणी, सृष्टि उत्पादक शक्तियों को (अवसि) सुरक्षित रखते हो। (ते) तुम्हारी (रातिं) दान आदान, (भद्रा अस्तु) भद्र, सुखप्रद और कल्याणकारक (इह) इस लोक में हो। उसी प्रकार प्रजा राजा आदि भी मिलकर रहें।

अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ॥ २ ॥

भा०—(पूषा) गृहस्थ का पोषण करने वाला पुरुष (अज-अश्वः) भेड़ बकरियों और अश्वों का स्वामी (पशु-पाः) पशुओं की पालना करने वाला, (वाज-पस्त्यः) गृह में अन्न और ऐश्वर्य का सञ्चय करने वाला, (धियं-जिन्वः) ज्ञान और उत्तम कर्म द्वारा परमेश्वर और अपने बन्धुजनों को प्रसन्न करने हारा होकर (विश्वे भुवने) इस समस्त संसार के बीच (अर्पितः) स्थिर होकर रहे। वह (पूषा) गृहस्थ का पालक पोषक (शिथिराम्) काम करने में शिथिल, अल्पशक्ति वाली, (अष्ट्राम्) भोग योग्य स्त्री को (उद् वरीवृजत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे, उस से

उद्वाह करे। वह (देवः) सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सं-चक्षाणः) अच्छी प्रकार देखता, कामना करता हुआ वा उत्तम वचन कहता हुआ (भुवना ईयते) समस्त पदार्थों को प्राप्त हो।

यास्ते॑ पूष॒न्नावो॑ अ॒न्तः स॑मु॒द्रे हि॑र॒ण्ययी॑र॒न्तरि॑क्षे॒ चर॑न्ति।
ताभि॑र्यासि दू॒त्यां सूर्य॑स्य॒ कामे॑न कृ॒त श्रव॑ इ॒च्छमा॑नः ॥ ३ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक ! पालक गृहपते ! (नावः हिरण्ययीः अन्तः समुद्रे अन्तरिक्षे चरन्ति) जिस प्रकार नौकाएं और स्वर्णादि से भूषित, वा लोह आदि से बनी, समुद्र और आकाश दोनों स्थानों पर चलती हैं उसी प्रकार (याः) जो (ते) तेरी (हिरण्ययीः) हितकारी और रमणयोग्य, सुखप्रद, (नावः) हृदय को प्रेरणा करने वाली वाणियां (समुद्रे) अति हर्षयुक्त (अन्तरिक्षे अन्तः) अन्तःकरण के बीच (चरन्ति) प्रवेश करती हैं (ताभिः) उन वाणियों से ही हे (कृत) कर्त्तः ! तू (श्रवः इच्छमानः) अन्न और यश की कामना करता हुआ (सूर्यस्य) सूर्य की (दूत्यां) दूतवत् प्रतिनिधि होने की क्रिया को (यासि) प्राप्त होता है अर्थात् सूर्य की कान्ति को प्राप्त करता है। अपनी प्रेरिका आज्ञा से ही पालक स्वामी, यशस्वी और सूर्यवत् तेजस्वी हो जाता है।

पू॒षा सु॒बन्धु॑र्दि॒व आ पृ॑थि॒व्या इ॒ळस्पति॑र्म॒घवा॑ द॒स्मव॑र्चाः।
यं दे॒वासो॒ अद॑दुः सू॒र्यायै॒ कामे॑न कृ॒तं त॒वसं॒ स्वञ्च॑म् ॥ ४ ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (कामेन कृतम्) कामना युक्त (तवसं) बलवान् (सु-अञ्चम्) सुभूषित, सुन्दर ढंग करके (देवासः) विद्वान् लोग (सूर्यायै) सूर्य की दीप्ति के समान उज्ज्वल, कमनीय स्त्री के लिये (अददुः) पति रूप से प्रदान करें। (पूषा) गृहस्थ का पोषक, गृहपति, (दिवः) कामना, करने वा उसे चाहने वाली और (पृथिव्याः) उसकी

पृथिवीवत् आश्रय रूप स्त्री का (सुबन्धुः) पूज्य बन्धुवत् प्रिय हो। वह (इडः पतिः) भूमि के पालक के समान अपनी 'इडा' अर्थात् चाहने योग्य प्रिय पत्नी का पालक और अन्न का स्वामी तथा (मघवा) धनादि सम्पन्न और (दस्म-वर्चाः) विघ्नों के नाशकारी तेज से सम्पन्न हो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[५९]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५ निचृद् बृहती। २ विराड्बृहती। ६, ७, ९ भुरिगनुष्टुप्। १० अनुष्टुप्। ८ उष्णिक् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र नु वो॑चा सु॒तेषु॑ वां वी॒र्या॒३॒॑ यानि॑ च॒क्रथुः॑ ।
ह॒तासो॑ वां पि॒तरो॑ दे॒वश॑त्रव॒ इन्द्रा॑ग्नी॒ जीव॑थो यु॒वम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सूर्य, वायु वा विद्युत् के समान बलवान् पुरुष और हे अग्नि के समान दीप्ति, उत्तेजना उत्पन्न करने वाली स्त्रि ! आप दोनों (सुतेषु) उत्पन्न होने वाले पुत्रों के निमित्त (यानि वीर्या) जिन २ वीर्यों, बलयुक्त कार्यों को (चक्रथुः) करें मैं (वां) आप दोनों को उन आवश्यक कर्त्तव्यों का (प्र वोच) उपदेश करता हूं। देखो, (देव-शत्रवः) 'देव' अर्थात् प्रकाश, जल, पृथिवी आदि पदार्थों और शुभ गुणों के शत्रु, उनका सदुपयोग न करके दुरुपयोग करने वाले (वां पितरः) आप दोनों के पालक माता पिता, पितामह, चाचा आदि वृद्धजन (हतासः) अवश्य पीड़ित होते और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और (युवम्) तुम दोनों (जीवथः) अभी भी उनके बाद जीवित होकर दीर्घ जीवन का भोग करो। विद्युत्-अग्निपक्ष में 'देव' अर्थात् किरणों के शत्रुभूत या उनसे नष्ट होने वाले उसी प्रकार

(३)—'कृतः' इति सायणाभिमतः पाठः ।

उत्तम गुणों के शत्रु, हिंसक जन्तु भी नाश को प्राप्त हों रोग आदि जन्तु (पितरः) जो अन्य जन्तुओं का नाश करते हैं वे भी (वां वीर्यैः हतासः) आप दोनों के बलों से विनष्ट हो जावें। 'पितरः' पीयतिर्हिंसाकर्मा। तस्यैतद्रूपम् इति सायणः।

वळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त सूर्य और अग्नि के तुल्य पति पत्नी, (वाम्) आप दोनों का (पनिष्ठः) अति स्तुत्य (महिमा) महान् सामर्थ्य वह (इत्था वट्) इस प्रकार का अति सत्य है। क्योंकि (वां) आप दोनों का (जनिता) उत्पादक, मा बाप वा आचार्या गुरुजन (समानः) एक समान पद के, समान रूप से मान पाने योग्य हैं। (युवं) आप दोनों वस्तुतः (भ्रातरौ) भाई बहन के समान, एक दूसरे के पोषक पालक होवो। (युवं) तुम दोनों एकवर्ग में निवास करने वाले, (यमौ) ब्रह्मचर्याश्रम में संयम से रहने वाले युगल, होकर रहो, और (इह-इह-मातरौ) इस गृहस्थाश्रम में रह २ कर एक दूसरे की कामना करने वाले एवं अगले सन्तानों के माता-पिता होवो॥ माता या स्त्री की अग्नि रूपता देखो, छान्दोग्य में पञ्चाग्नि प्रकरण, योषा वै अग्निः। तस्यां देवाः वीर्य जुह्वति। अथवा सामवेद मन्त्र-ब्राह्मण में—अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः। तेनाज्यमकृण्वन् त्रैश्रृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु॥ मन्त्र ब्रा० १।१।३॥ दोनों स्त्री पुरुष समान पद के माता पिता वा समधियों वा आचार्य से उत्पन्न होते हैं, 'यम' अर्थात् ब्रह्मचर्य काल में वे दोनों भाई भाई वा भाई-बहिन के समान होते हैं, परन्तु लोक में—गृहस्थ में होकर वे घर २ में, (इह इह) जगह २ मां बाप बन जाते हैं।

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने।
इन्द्रान्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रा) पूर्वोक्त दोनों वर वधू, पतिपत्नी, (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान्, मेघ विद्युत् के तुल्य परस्पर स्नेह धारण करने वाले, और (अग्नी) दोनों अग्नियों के तुल्य तेजस्वी, (ओकिवांसा) परस्पर मिल कर रहने वाले, परस्पर समवेत, अर्थात् एक दूसरे में नित्य सम्बन्ध बना कर रहने वाले, (सुते) पुत्र के निमित्त (सचा) एक साथ संगत हुए, (आदने) ऐश्वर्य भोग वा भोजन के निमित्त (अश्वा सप्ती इव) वेगवान् दो अश्वों के समान सदा एक साथ रहने वाले, (अवसा) परस्पर की रक्षा, अन्न-तृप्ति, ऐश्वर्य आदि के द्वारा (इह) इस गृहाश्रम में विराजें, और (वयम्) हम सब उन दोनों (वज्रिणा) बलवान् वीर्यवान्, (देवा) दानशील, तेजस्वी एवं एक दूसरे की कामना करते हुए दोनों को (हवामहे) इस गृहस्थाश्रम में आदरपूर्वक बुलाते हैं ॥

य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (तेषु) उन उत्पन्न करने योग्य पुत्रों के निमित्त (ऋत-वृधा वां) धन, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करने वाले आप दोनों को (यः) जो विद्वान् पुरुष (स्तवत्) उपदेश करे, आप दोनों (जोषवाकं वदतः) परस्पर प्रीतियुक्त वचन बोलने वाले उसके प्रति (पज्रहोषिणा) उत्तम कमाये धन के देने और उत्तम वचन कहने वाले होओ । आप दोनों (देवा) परस्पर प्रीतियुक्त, दानशील होकर उसके प्रति (नभसथः चन) कभी व्यर्थवाद वा उपहास आदि न किया करो ।

इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी और हे (देवौ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों के बीच, (कः मर्त्तः)

कौन मनुष्य (चिकेतति) जानता है जो (एकः) अकेला ही, (समाने रथे) एक समान रमणयोग्य गृहस्थ या देहरूप रथ में (वि-षूचः) विविध दिशाओं में जाने वाले (अश्वान्) अश्वों के समान नाना विषयों को भोगने वाले इन्द्रियों को (युयुजानः) योग वा कर्मकौशल से एकाग्र करता हुआ (ईयते) जीवन मार्ग पर गमन करता है ? उत्तर—(कः) कर्त्ता, प्रजापति, गृहस्थ पुरुष। विज्ञान पक्ष में—कौन पुरुष विद्युत् और अग्नि इन दोनों के रहस्य-विज्ञान को जानता है ? जो जानता है वह (समाने रथे विश्वाचः अश्वान् युयुजे) एक ही समान रथ में नाना प्रकार, के, नाना शक्ति वाले, नाना आकार-प्रकार के 'अश्व' अर्थात् वेगयुक्त ऐंजिन, यन्त्रादि लगा कर वेग से गमन करता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

इन्द्रा॑ग्नी अ॒पादि॒यं पूर्वागा॑त्प॒द्वती॑भ्यः ।
हि॒त्वी शिरो॑ जि॒ह्वया॒ वाव॑द॒च्चर॑त्त्रिं॒शत्प॒दा न्य॑क्रमीत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, विद्युत् और अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (इयम्) यह स्त्री (अपात्) अपने सत्य वचन से न गिरने हारी, (पद्वतीभ्यः) उत्तम आचरण वाली अन्य सखियों से भी (पूर्वा) प्रथम, सबसे मुख्य होकर (आ अगात्) सबके सन्मुख आवे। वह (शिरः हित्वी) शिर को बांधकर, उत्तम रीति से वेणी आदि बनाकर (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) व्यक्त भाव प्रकट करे और (चरत्) तदनुसार आचरण करे और (त्रिंशत् पदा) तीसों पदों पदों या स्थानों में (नि अक्रमीत्) निकल कर जावे। भोजनान्तरशतपदीवत् त्रिंशत्पदेत्युपलक्षणम् ॥ विद्युत्-पक्ष में—(इयं) यह विद्युत् वेगवती होने से गाड़ी के चरणों वाली, गमनशील, पशुओं से जुती गाड़ियों की अपेक्षा पूर्व पहुंच सकती है। (शिरः हित्वा) अग्र भाग जोड़ देने से यन्त्र द्वारा बोलती है, सर्किट में चलती है, तीसों स्थानों में व्याप जाती है।

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत्-अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (अस्मिन् महाधने) इस संग्राम में भी (गविष्टिषु) भूमियों को विजय करने के अवसरों में (नः मा परा वर्क्तम्) हम अन्य नगरवासियों को छोड़कर मत भागना। क्योंकि उस समय तो (नरः) मनुष्य लोग (बाह्वोः) बाहुओं में (धन्वानि) धनुषों को लेकर (आ तन्वते) युद्ध किया करते हैं। गृहस्थ में प्रवेश करने वाले स्त्री-पुरुषों को नागरिकों के कर्त्तव्य का उपदेश है कि संग्राम के अवसर पर नगर को संकट में छोड़कर न भाग जावें, प्रत्युत वे भी वीरों के समान शस्त्रास्त्र हाथ में लेकर युद्ध करें।

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (अर्यः) आगे आने वाली (अघाः) पापयुक्त हिंसक (अरातयः) शत्रु सेनाएं (मा तपन्ति) मुझे सन्ताप देती हैं। आप लोग (द्वेषांसि) द्वेष करने वालों को (अप आ कृतं) दूर करो और (सूर्यात् अधि) सूर्य के प्रकाशमय जीवन से उनको (युयुतम्) वियुक्त करो।

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों के (दिव्यानि) उत्तम, सूर्यादि से उत्पन्न, और (पार्थिवानि) पृथिवी से उत्पन्न, सुभिक्ष, अन्न, जल, रत्न, भूमि आदि (वसु) नाना द्रव्य हों। आप दोनों (नः) हमें (इह) इस राष्ट्र में (विश्वायु-पोष-

सम्) समस्त मनुष्यों को वा जीवन भर पोषण करने में समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य को (प्र यच्छतम्) प्रदान करो।

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये॥ १०॥ २६॥

भा०—हे (उक्थ-वाहसा) उत्तम वचन को धारण करने वाले ! (स्तोमेभिः) स्तुतियोग्य वचनों और वेदमन्त्र के सूक्तों से (हवन-श्रुता) दानयोग्य ज्ञान को श्रवण करने हारे ! (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (अस्य सोमस्य पीतये) इस उत्पन्न हुए पुत्रादि सन्तान के पालने के लिये (विश्वाभिः गीर्भिः) सब प्रकार की विद्याओं से ज्ञानवान् होकर (आ गतम्) आओ। बाद में गृहाश्रम धारण करो। इति षड्विंशो वर्गः॥

[६०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट्त्रिष्टुप्। ४, ६, ७ विराड्गायत्री। ५, ६, ११ निचृद्गायत्री। ८, १०, १२ गायत्री। १३ स्वराट् पंक्तिः १४ निचृदनुष्टुप्। १५ विराडनुष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात्।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता॥१॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रा) ऐश्वर्यवान् (अग्नी) अग्निवत् तेजस्वी (सहुरी) सहनशील (सहःतमा) अति बलशाली, (सहसा) बल से (वाजयन्ता) ऐश्वर्य वा संग्राम करने वाले, (भूरेः वसव्यस्य) बहुत द्रव्य के (इरज्यन्ता) स्वामियों की (सपर्यात्) सेवा करे। वह (वृत्रम् श्नथत्) विघ्नों को नाश करता, (वाजं सनोति) ऐश्वर्य का भोग करता और औरों को भी देता है। (२) (यः इन्द्र-अग्नी सहुरी

श्नथत्) जो वायु, विद्युत् और सूर्य और अग्नि दोनों को अपने वश कर लेता है वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) धन और अन्न का भोग करता है। वह (सहुरी सपर्यात्) इन दोनों बलशाली तत्वों को अपने कार्य में लगाता है । वह (वसव्यस्य भूरेः इरज्यन्त) भारी ऐश्वर्य वा स्वामी बन जाता है वह (वृत्रम् उत वाजं सनोति) बहुत धन और अन्नादि ऐश्वर्य को भोगता है ।

ता योधिष्टम॒भि गा इ॑न्द्र नू॒नम॒पः स्व॑रु॒षसो॑ अग्न ऊ॒ळ्हाः ।
दिशः॒ स्व॑रु॒षस॑ इन्द्र चि॒त्रा अ॒पो गा अ॑ग्ने युवसे नि॒युत्वा॑न् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! अग्रणी नायक ! अथवा पूर्वोक्त स्त्रीपुरुषो ! आप दोनों ! (ताः) उन (गाः अभि) भूमियों को लक्ष्य करके (योधिष्टम्) शत्रुओं से युद्ध करो । और (नूनम्) अवश्य (अपः) आप्त प्रजाओं और (स्वः) सुख कारक, वा उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाली (उषसः) कमनीय, कान्तियुक्त, प्रिय, प्रभातवेलाओं के समान सुन्दर (ऊढ़ाः) विवाहित पत्नियों को लक्ष्यकर उनकी मान रक्षा के लिये (अभि योधिष्टम्) शत्रु वा दुष्ट जनों को प्रहार करो । हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू (दिशः) दिशाओं (स्वः) सुखमय प्रकाश और (उषसः) उषाओं के समान सुप्रसन्न प्रजाजनों को और (चित्राः) अद्भुत एवं पूज्य (अपः) जलवत् शीतल, एवं आप्त जनों को और (गाः) भूमियों, इन्द्रिय गणों को (युवसे) मिला, और हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू भी उसी प्रकार (नियुत्वान्) उत्तम अश्वों का स्वामी होकर (दिशः) आदेश मानने वाली (स्वः) प्रेरणा योग्य (उषसः) शत्रु को दग्ध करने वाली (चित्राः) अद्भुत बलशाली, (अपः) जल धारावत् प्रवाह से जाने वाली, (गाः) शस्त्रास्त्र चलाने वाली सेनाओं को (युवसे) प्राप्त कर ।

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वृत्रहणा) विद्युत् और सूर्य के समान मेघवत् शत्रु पर आघात करने वाले (इन्द्र अग्ने) विद्युत् के समान तेजस्विन् ! राजन् अग्नि के तुल्य सत्यप्रकाशक विद्वन् ! सभ्यजन ! आप दोनों (वृत्रहभिः) दुष्टों का नाश करने वाले (नमोभिः) शस्त्रास्त्रों, उपायों से और (शुष्मैः) बलों सहित (अर्वाक् आ यातम्) हमारे पास आओ । और हे (इन्द्र अग्ने) दुष्ट नाशक ! पापियों को सन्ताप देने हारे जनो ! (युवं) आप दोनों (अकवेभिः) अनिन्दनीय अनेकों (उत्तमेभिः) उत्तम २ (राधोभिः) धनों से (भवतम्) सम्पन्न होओ ।

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥ ४ ॥

भा०—(ययोः) जिन दोनों के बल पर (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (पुरा कृतम्) पहले बना और अब भी (पप्ने) नियमपूर्वक व्यवहार करता, और चलता है, मैं (ता) उन दोनों (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि वा वायु और अग्नि तत्वों का (हुवे) उपदेश करूं । वे दोनों (न मर्धतः) इस विश्व को नाश नहीं करते । इसी प्रकार राष्ट्र में जिनके बल पर संसार का व्यवहार चलता है, जो राष्ट्र को नष्ट नहीं होने देते वे तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् पुरुष 'इन्द्र' और 'अग्नि' हैं ।

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—हम लोग (उग्रा) अति तेजस्वी, (वि-घनिना) विशेष २ रूप से आघात करने वाले (इन्द्राग्नी) वायु विद्युत् दोनों को (हवामहे) प्राप्त करें, उनको अपने वश करें (ता) वे दोनों (नः) हमें

(ईदृशे) इस प्रकार के व्यवहार में (नः) हमें (मृडातः) सुखी करते हैं। इसी प्रकार शत्रुओं को दण्ड देने वाले, तेजस्वी सेनापति और सैन्य को हम (मृधः) संग्रामों को विजय करने के लिये प्राप्त करें (ता नः मृडत) वे हम पर दया करें। कृपा बनाये रक्खें। मृडतिरुपदयाकर्मा ॥ इति सप्तविंशो वर्गः ॥

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती।
हतो विश्वा अप द्विषः ॥ ६ ॥

भा०—आप दोनों (आर्या) श्रेष्ठस्वभाव होकर (वृत्राणि हतः) विघ्नों और विघ्नकारियों को दण्डित करें। इसी प्रकार आप दोनों (सत्पती) सज्जनों के पालक और उत्तम पति-पत्नी होकर (दासानि) भृत्य जनों तथा प्रजा के उपक्षय करने वाले कार्यों और करने वालों को भी (हतः) दण्डित करो। और आप दोनों (विश्वा द्विषः) सब द्वेष के भावों और द्वेष करने वालों को भी (अप हतः) दण्डित कर दूर करो।

इन्द्राग्नी युवामिमे३भि स्तोमा अनूषत।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! सेनापति सैन्य जनो ! हे (शम्भुवा) शान्ति देने हारो ! (युवाम्) आप दोनों की (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुति युक्त वचन वा स्तोता जन (अभि-अनूषत) साक्षात् प्रशंसा करते हैं वा विद्वान् जन उपदेश करते हैं। आप दोनों (सुतम् पिबतम्) उत्पन्न अन्नादि ओषधि, प्राप्त ऐश्वर्य का पालन वा, उपभोग करो।

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (नरा) नायक जनो ! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् और

अग्रणी पुरुषो ! (याः) जो (वां) आप दोनों की (पुरु-स्पृहः) बहुतों से अभिलाषा करने योग्य (नि-युतः) अधीन नियुक्त सेनाएं वा लक्षों सम्पदाएं वा उत्तम इच्छाएं (सन्ति) हैं (ताभिः) उनसे आप दोनों (दाशुषे) दानशील, करप्रद प्रजाजन के हितार्थ (आगतम्) आइये ।

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवान् और अग्निसम तेजस्वी जनो ! आप (ताभिः) इन सम्पदाओं, शुभ कामनाओं से (आ गच्छतम्) आइये । (इदं सवनं) यह यज्ञ (उप सुतम्) अच्छी प्रकार किया गया है । आप (सोम-पीतये) ओषधिरस वत् ऐश्वर्य, सुख के उपभोग के लिये प्राप्त हूजिये ।

तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (अर्चिषा) अपनी ज्वाला से (विश्वा वना) सब बनों या काष्ठों में (परि स्वजत्) लग जाता है और उनको (जिह्वया) अपनी ज्वाला से (कृष्णा) काला कोयला (करोति) बना देता है और जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् जल (अर्चिषा) अपनी दीप्ति से (विश्वा-वना परिष्वजत्) समस्त किरणों और समस्त मेघस्थ जलों को व्यापता है और (जिह्वया कृष्णा करोति) अपनी ग्रहणकारिणी आकर्षक शक्ति से आकर्षण करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष अपने (अर्चिषा) अर्चना वा आदर सत्कार योग्य उत्तम कर्म से (विश्वा वना) समस्त विभाग योग्य द्रव्यों को (परि स्वजत्) प्राप्त कर लेता है और (जिह्व-या) वाणी द्वारा (कृष्णा) नाना आकर्षण (करोति) उत्पन्न करता है, हे विद्वन् ! तू (तम् ईडिष्व) उसको चाह, उसकी स्तुति और आदर कर । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा वा स्वामी के (द्युम्नाय) तेजोवृद्धि के लिये (सुतराः अपः) सुखप्रद जल और (सुम्नम्) सुखकारी अन्न (इद्धे) उसके अति तेजस्वी होने पर (आ विवासति) आदरपूर्वक देता है और उसकी सेवा करता है वह स्वयं भी (सुम्नम्) सुख और (सुतराः अपः) सुखजनक जलों को प्राप्त करता है । (२) (यः) जो मनुष्य (इन्द्रस्य) विद्युत् के (सुम्नम्) सुखकारी ऐश्वर्य को (इद्धे) उसके अति प्रदीप्त तेज के बल पर (आ विवासति) आविष्कार करना चाहता है वह (द्युम्नाय) ऐश्वर्य या अति तेज के लिये भी (सु-तराः अपः) खूब वेग से जाने वाले जलों को प्राप्त करे और उससे विद्युत् प्राप्त करे । (३) जो शिष्य (इन्द्रस्य) ज्ञानप्रद गुरु की सेवा करता है (द्युम्नाय) यश के लिये सुख से पार तराने वाले कर्मों वा ज्ञान को प्राप्त करता है ।

ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः ।
इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्ययुक्त, तेजस्वी और ज्ञानयुक्त स्त्री पुरुषो ! आप लोग (वः वाजवतीः इषः) हमारे बलयुक्त अन्नों, ऐश्वर्य-युक्त कामनाओं तथा संग्रामकारी सेनाओं को आप दोनों (पिपृतम्) पालो और (आशून् अर्वतः) शीघ्रगामी अश्वों और शत्रुहिंसक वीरों को भी (पिपृतम्) पालन करो और (इन्द्रम् अग्निं च) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ज्ञानयुक्त और अग्नितत्व युक्त तुझे प्राप्त होने वाले स्त्री पुरुष इन दोनों को (वोढवे) विवाह करने के निमित्त (पिपृतम्) पालन करो । अर्थात् पुरुष जब तक पर्याप्त धन न कमावे और स्त्री जब तक ऋतुसे न हो तब तक

उनके माता पिता पालें और बाद में उनके विवाह करें। (३) विज्ञानपक्ष में—विद्युत् और अग्नि दोनों का रथ वहने के लिये प्रयोग करो क्योंकि ये दोनों वेगवान् प्रेरणा और वेग से जाने वाले बलों को धारते हैं।

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम्॥१३॥

भा०—(इन्द्राग्नी) हे विद्युत् अग्निवत्, तेजस्वी प्रकाशवान् धनी, ज्ञानी स्त्री पुरुषो! (उभा) दोनों आप (इषां) अन्नों और (रयीणाम् दातारा) धनों को देने वाले हो। (वाम् उभा) आप दोनों को मैं (वाजस्य सातये) बल, अन्न और ऐश्वर्य के विभाग के लिये (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं और (उभा) दोनों आदरपूर्वक और (सह) एक साथ मिलकर (राधसः) धन का (मादयध्यै) आनन्द-लाभ करने के लिये (वाम् उभा हुवे) आप दोनों की प्रार्थना करता हूं।

आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यैरुप गच्छतम्।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे॥ १४॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य, विद्युत् या मेघ, विद्युत् के समान परस्पर वर्त्तने वाले स्त्री पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (गव्येभिः) गौ, पशु, से प्राप्त दुग्ध आदि पदार्थों, वाणी के ज्ञानों और भूमि से प्राप्त अन्नों सहित और (अश्व्यैः) अश्व योग्य रथों और (वसव्यैः) धनों से प्राप्त होने योग्य सुखों एवं बसे हुए जनों के हितकारी साधनों सहित (उप गच्छतम्) प्राप्त होओ। आप दोनों (सखायौ) समान ख्याति वा नाम, प्रसिद्धि वाले, परस्पर मित्र, (देवौ) दीप्तियुक्त, सुखप्रद, और (सख्याय) मित्रता की वृद्धि के लिये (शम्भुवा) शान्ति देने वाले हो। (ता) उन आप दोनों को हम लोग (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें। उसी प्रकार हमारे पास विद्युत् और अग्नि भूमि या किरणों के योग्य दीपकादि, वेगवान् साधनों, रथादि और गृहादि योग्य यन्त्रों सहित प्राप्त हों।

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ १५ ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! आप दोनों (सुन्वतः यजमानस्य) नाना पदार्थों को उत्पन्न करने वाले दानशील पुरुष के (हवं) वचन को (शृणुतं) श्रवण करो । (हव्यानि वीतं) उत्तम अन्नों का भोजन करो । (सोम्यं मधु) बलदायक, ओषधिरस से युक्त मधुर पदार्थ का (पिबतं) पान करो । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[६१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सरस्वती देवता ॥ छन्दः—१, १३ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड्जगती । ४, ९, ११, १२ निचृद्गायत्री । ५, ६, १० विराड्गायत्री । ७, ८ गायत्री । १४ पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति १

भा०—हे (इयम्) यह सरस्वती, वेगयुक्त जल, वाणी, नदी जिस प्रकार (वध्र्यश्वाय) अश्व अर्थात् वेग से जाने वाले प्रवाह को रोकने या उसको और अधिक बढ़ाने वाले पुरुष को (ऋण-च्युतं) जल से प्राप्त होने वाला, (दिवः दासम्) तेज या विद्युत् का देने वाला (रभसम्) वेग (अददात्) प्रदान करता है । और (यः) जो नदी (शश्वन्तम्) निरन्तर चलने वाली और (पणिं) व्यवहार योग्य, उत्तम (अवसं) गति को (आचखाद) स्थिर रखती है और उसके (ता तविषा दात्राणि) वे २ नाना प्रकार के बलयुक्त दान हैं उसी प्रकार यह सरस्वती, वाणी वा ज्ञानमय प्रभु ! (वध्र्यश्वाय) अपने इन्द्रिय रूप अश्वों को बांधकर संयम से रहने वाले और (दाशुषे) अपने आपको उसके अर्पण करने वाले भक्त को वा ज्ञानदाता विद्वान् को, (ऋण-च्युतं) ऋण से मुक्त करने

और (दिवोदासं) ज्ञान प्रकाश देने वाले (रभसं) कार्य साधक बल और ज्ञान (अददात्) प्रदान करती है और (या) जो (शश्वन्तम्) अनादि काल से विद्यमान, नित्य, (अवसम्) ज्ञान, रक्षा बल, और (पणिम्) व्यवहार साधक, वा स्तुत्य ज्ञान वा ज्ञानवान् पुरुष को (आचखाद्) स्थिर कर देती है। हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली वाणि ! (ते) तेरे (तविषा) बड़े (ता दात्राणि) वे, वे, अनेक दान हैं। स्त्रीपक्ष में—योषा वै सरस्वती वृषा पूषा ॥ शत० २। ५।१। ११ ॥ (इयम्) यह स्त्री (दाशुषे) अन्न, वस्त्र वीर्य सर्वस्व देने वाले (वध्र्यश्वाय) इन्द्रिय बल को बढ़ाने वाले, वीर्यवान् पुरुष के लिये (रभसम्) दृढ़ (ऋण-च्युतम्) पितृऋण से मुक्त कर देने वाले (दिवः-दासं) प्रसन्नतादायक पुत्र प्रदान करती है। (अवसं) रक्षक (पणिं) स्तुत्य पति को (शश्वन्तम्) पुत्रादि द्वारा सदा के लिये (आचखाद) स्थिर कर देती है, स्त्री के वे नाना बड़े महत्वयुक्त (दात्रा) सुखमय प्रदान है।

इ॒यं शुष्मे॑भिर्बिस॒खा इ॑वारुज॒त्सानु॑ गिरी॒णां त॑वि॒षेभि॑रू॒र्मिभिः॑ ।
पा॒रा॒व॒त॒घ्नीमव॑से सुवृ॒क्तिभिः॒ सर॑स्वती॒मा वि॑वासेम धी॒तिभिः॑ ॥२॥

भा०—जैसे नदी (बिसखाः-इव) कमल के मूल उखाड़ने वाले के समान (उर्मिभिः तविषेभिः) बलवान् तरंगों से (गिरीणां सानु अरुजत्) पर्वतों वाले चट्टानों को तोड़ डालती है और जिस प्रकार विद्युत् (शुष्मेभिः) बलयुक्त प्रहारों से (गिरीणां सानु) मेघों या पर्वतों के शिखरों को अनायास तोड़ फोड़ डालती है, उसी प्रकार (इयं) यह वाणी (शुष्मेभिः) बलयुक्त (तविषेभिः) बड़े २ (ऊर्मिभिः) तरंगों से युक्त उल्लासों से (गिरीणां) स्तुति वा वाणियों के प्रयोक्ता विद्वान् पुरुषों के (सानु) प्राप्तव्य ज्ञान को (अरुजत्) तोड़ देती है। उसे (पारावतघ्नी) परब्रह्मस्वरूप 'अवत' अर्थात् प्राप्तव्य पद तक पहुंचने वाली, वहां तक का ज्ञान देने वाली (सरस्वतीम्) प्रशस्त ज्ञानयुक्त वेद वाणी

को (सु-वृक्तिभिः) उत्तम मलनाशक, पापशोधक (धीतिभिः) अध्ययनादि-कर्मों से (आ विवासेम) अच्छी प्रकार सेवन करें, उसका निरन्तर अभ्यास करें।

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति देवि ! वाणि ! तू (देवनिदः) विद्वानों और देव, परमेश्वर की निन्दा करने वालों, और निंदा के भावों को भी (नि बर्हय) दूर कर। (बृसयस्य) संशय आदि करने वाले (विश्वस्य) सब (मायिनः) प्रज्ञावान् पुरुष की (प्रजां) प्रजा, शिष्य आदि को (अविन्दः) प्राप्त कर (उत) और (क्षितिभ्यः) भूमि पर निवास करने वाले मनुष्यों के हितार्थ (अवनीः) नदीवत् सुरक्षित भूमियों को (अविन्दः) प्राप्त करा। हे (वाजिनीवति) ज्ञानयुक्त विद्याओं से समृद्ध वाणि ! तू (एभ्यः) इन लोगों के लिये (विषम्) मलशोधक जल के समान विविध पापों का अन्त कर देने वाले ज्ञान को (अस्रवः) प्रवाहित कर। (२) नदी लोगों को बसने के लिये नाना स्थान देती और जल प्रदान करती है।

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
धीनामवित्र्यवतु ॥ ४ ॥

भा०—(सरस्वती देवी) उत्तम जल-प्रवाह से युक्त नदी जिस प्रकार (वाजेभिः) नाना अन्नों से (वाजिनीवती) अन्न से सम्पन्न भूमि वाली होकर (धीनाम् अवित्री) नाना कौशल कर्मों को चलाने वाली होती है और प्रजा को पालती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती स्त्री हो। वह (वाजेभिः) ज्ञानों और बलों से (वाजिनीवती) विद्या सम्पन्न होकर (धीनाम्) उत्तम बुद्धियों और कर्मों की (अवित्री) प्रकाश करने वाली होकर (नः प्र अवतु) हमें प्राप्त हो।

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते ।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देवि) ज्ञानदात्रि ! (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न महाभागे ! (वृत्र-तूर्ये इन्द्रं न) मेघ को छिन्न भिन्न करने के कार्य में 'इन्द्र' अर्थात् विद्युत् के समान (यः) जो पुरुष (त्वा) तुझ को (हिते धने) हितकारी धन को प्राप्त करने के निमित्त (उप ब्रूते) उपदेश करता है तू ऐसे पुरुष को (धीनाम् अवित्री प्र अवतु) बुद्धियों को पालन करती हुई प्राप्त हो । अवत्वित्यस्य पूर्वतोऽपकर्षः ॥ इति त्रिंशो वर्गः ॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (देवि) कमनीय स्वभावयुक्त, प्रिय (सरस्वति) विदुषि ! हे (वाजिनि) उत्तम, ज्ञानवति, अन्नदात्रि ! बलवति ! तू (वाजेषु) बलयुक्त संग्राम आदि ज्ञानयुक्त अध्ययनादि कालों में भी (नः सनिम्) हमें देने योग्य हमारी वृत्ति तथा विवेचक बुद्धि को (पूषा) भूमि या पोषक पति के समान ही (अव) पालन कर (रद) दे । स्त्री भृत्यादि को पतिवत् ही पालन करे ।

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (सरस्वती) वेद वाणी, (घोरा) दुष्टों को भय देने वाली, (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित और प्रिय मार्ग का उपदेश देने वाली (वृत्र-घ्नी) अज्ञान रूप विघ्न को नाश करने वाली, (सु-स्तुतिम् वष्टि) सदा उत्तम उपदेश करना चाहती है । इसी प्रकार (नः) हमारे बीच वह विदुषी स्त्री, (घोरा) दयाशील, सुवर्ण रथ पर चढ़ने हारी, वा उत्तम हितकारक सदाचार मार्ग पर चलने हारी, (वृत्रघ्नी) दुष्टों का नाशक होकर उत्तम प्रशंसा की कामना करे ।

यस्या॑ अन॒न्तो अह्रु॑तस्त्वे॒षश्च॑रि॒ष्णुर॑र्ण॒वः ।
अम॒श्चर॑ति॒ रोरु॑वत् ॥ ८ ॥

भा०—(यस्याः) जिस वाणी का (अनन्तः) अनन्त (अमः) व्यापक ज्ञान (अह्रुतः) कुटिलतारहित, सरल, (त्वेषः) दीप्तियुक्त, (चरिष्णुः) फैलने वाला, (अर्णवः) सत्य से युक्त, समुद्र के समान महान्, (रोरुवत्) शब्द करता हुआ उपदेश रूप में (चरति) गुरु से शिष्य के पास जाता है वह वेदवाणी सबको अभ्यास करने योग्य है। (२) इसी प्रकार (यस्याः अमः) जिसका साथी पुरुष अनन्त बलशाली, (त्वेषः) तेजस्वी, (चरिष्णुः) विचारशील, समुद्रवत् गम्भीर, गर्जना वा उपदेश करता हुआ विचरता है। (३) इसी प्रकार नदी का (अमः) गमन स्थान समुद्र है, वह गर्जता है।

सा नो॒ विश्वा॒ अति॒ द्विषः॒ स्वसॄ॑र॒न्या ऋ॒ताव॑री ।
अत॒न्नहे॑व॒ सूर्यः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अहा इव सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार दिनों के पार पहुंच जाता है, इसी प्रकार (सा) वह, (ऋतावरी) सत्य ज्ञान से श्रेष्ठ, वाणी, (अन्याः) अन्य (स्वसॄः) स्वयं आ जाने वाले (नः) हमारे (द्विषः) शत्रु, द्वेष या अप्रीति युक्त भावों से (अति अतन्) हमें पार करें। इसी प्रकार विदुषी स्त्री, सत्य और श्रेययुक्त, न्यायनिष्ठ होकर अन्य सब बहिनों को भी पार कर सब शत्रुओं से हमें पार करे।

उ॒त नः॑ प्रि॒या प्रि॒यासु॑ स॒प्तस्व॑सा॒ सुजु॑ष्टा ।
सर॑स्वती॒ स्तोम्या॑ भूत् ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—(उत) और (सरस्वती) उत्तम अन्तरिक्ष में विचरने वाली एवं उत्तम ज्ञान से पूर्ण वाणी (सप्त-स्वसा) ५ प्राण, मन और बुद्धि इन ७ मुखों में स्थित वा ७ प्राणों से युक्त, (सु-जुष्टा) सुखपूर्वक सेवित, (प्रियासु) सब प्रिय वृत्तियों में भी (नः प्रिया) हमें अति प्रिय होने से

(स्तोम्या भूत) स्तुति योग्य है। वेदवाणी, गायत्री आदि सात छन्दों से 'सप्त-स्वसा' है। वही अति प्रिय होकर (स्तोम्या) भगवत्स्तुति के योग्य है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् ।
सरस्वती निदस्पातु ॥ ११ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्यारूप सरस्वती तो (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित समस्त पदार्थों, (रजः) कण २ परमाणु २ समस्त लोकों और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में भी (आपप्रुषी) सर्वत्र व्याप्त है। वह ज्ञानमयी प्रभु की शक्ति हमें (निदः) निन्दा करने वाले से (पातु) बचावे।

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती ।
वाजेवाजे हव्या भूत् ॥ १२ ॥

भा०—जो वाणी (त्रि-सधस्था) नाभि, उरस् और कण्ठ तीनों में एक साथ ही विराजती है। जो (सप्त-धातुः) रक्त, मेदस्, मांस, अस्थि, वसा, मज्जा और शुक्र सातों से धारण करने योग्य होकर (जाता) उत्पन्न हुए (पञ्च) पांचों ज्ञानेन्द्रियों को (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई, (वाजे वाजे) प्रत्येक ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के कार्य में (हव्या भूत्) स्तुति करने योग्य है। वेदमयी वाणी सात छन्दों से धारण करने योग्य होने से सप्त धातु और ब्राह्मणादि और निषाद इन पांचों को बढ़ाती है। प्रत्येक अवसर में ईश्वरस्तुति के योग्य है। देवी, स्त्री, सातों धातुओं को धारण करने वाली, पिता, श्वसुर, भाई, देवर, और पुत्र पांचों का मान बढ़ाती हुई प्रत्येक यज्ञ में संगिनी रूप से स्वीकार्य है।

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ १३ ॥

भा०—(या) जो वाणी, (महिम्ना) अपने महान् सामर्थ्य वा ज्ञान से (महिना) पूज्य है जो (अप्सु) इन सबमें (द्युम्नेभिः)

यशों वा ज्ञानमय प्रकाशों से (अन्याः) अन्य प्रजाओं को भी (चेकिते) ज्ञानयुक्त करती है। और (अपसाम्) कर्म करने वाले निष्ठ विद्वानों के बीच में भी (अपस्तमा) सबसे उत्तम कर्मोपदेश करने वाली है, जो (रथः) रथ, वा महान् आकाशवत् (बृहती) बहुत बड़ी, वेद वाणी (विभ्वने) विभु, व्यापक परब्रह्म की स्तुति करने के लिये (कृता) प्रकट की जाती है, जो (चिकितुषा) विद्वान् पुरुष द्वारा (उपस्तुत्या) उपासना काल में भी परमेश्वर की स्तुति के योग्य होती है वह (सरस्वती) वाणी, वा वेदवाणी सदा पूज्य है।

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मापं स्फरीः पयसा न आ धक्। जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥ ३२॥८॥४॥५॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न वेदवाणि ! हे प्रभो ! तू (नः) हमें (वस्यः) अति समृद्ध ऐश्वर्य को (अभिनेषि) प्राप्त करा। (मा अप स्फरीः) हमें विनाश मत कर। (पयसा) पुष्टि-कारक ज्ञान से (नः) हमें (मा आधक्) थोड़ा भी दग्ध, संतप्त न होने दे। (वेश्या) प्रवेश होने योग्य (सख्या) मित्रभाव से (नः जुषस्व) हमें प्रेम पूर्वक स्वीकार कर। (त्वत्) तुझ से रहित होकर हम (अरणानि) अरमणीय, दुःखदायी (क्षेत्राणि) क्षेत्र या देहों में (मा गन्म) न जावें, तिर्यग् देहों में न भटकें। इसी प्रकार सरस्वती स्त्री हमें उत्तम धन प्राप्त करावे, हमें नष्ट न करे, न उजाड़े। जल अन्नादि के कारण हमें न सतावे। अपने हृदय में प्रवेश होने योग्य मित्र भाव से हमेंप्रेम से अपनावे। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार–मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित–श्रीपण्डित–जयदेवशर्मविरचिते ऋग्वेदालोकभाष्ये चतुर्थोऽष्टकः समाप्तः ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

(षष्ठ मण्डले षष्ठोऽनुवाकः)

[६२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २ भुरिक् पंक्तिः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६, ७, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ९, ११ त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

स्तुषे नरा॑ दि॒वो अ॒स्य प्र॒सन्ता॒श्विना॑ हुवे॒ जर॑माणो अ॒र्कैः ।
या स॒द्य उ॒स्रा व्यु॒षि ज्मो अन्ता॒न्युयू॑षतः॒ पर्यु॒रू वरां॑सि ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उस्रा) किरणों और वायुओं से युक्त, (अश्विना) वेगवान् किरणादि से युक्त सूर्य और उषा (ज्मः अन्तान् उरू वरांसि) पृथिवी के समीप के नाना पदार्थों को (परि युयूषतः) पृथक् २ दर्शाते हैं उसी प्रकार (अश्विना) अश्व आदि वेगवान् साधनों से सम्पन्न (दिवः नरा) ज्ञानप्रकाश वा उत्तम कामना और व्यवहार के प्रवर्त्तक, (अस्य) इस जगत् के बीच (प्र-सन्ता) उत्तम सामर्थ्यवान्, मान-युक्त होकर रहें । (या) जो (सद्यः) शीघ्र ही (उस्रा) तेजस्वी होकर (व्युषि) विशेष कामना या इच्छा होने पर (अन्तान्) समीपस्थ सत्य पदार्थों को और (उरू वरांसि) बहुत से दुःखवारक, श्रेष्ठ पदार्थों को (ज्मः परि युयूषतः) पृथिवी से पृथक् कर लेते, प्राप्त करते और उनका विवेक करते हैं । ऐसे विवेचक, स्त्री पुरुषों को (अर्कैः जरमाणः) उत्तम अर्चना अर्थात् सत्कारोचित साधनों से (हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं ।

ता युज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥ २ ॥

भा०—(रथस्य रजोभिः भानुम्) रथ के धूलिकणों से सूर्य को सुशोभित करते हुए, रथ से जाते हुए जिनको लोग सूर्य उषा के समान जानते हैं (ता) वे आप दोनों (शुचिभिः) शुद्ध पवित्र आचरणों से, (यज्ञम् आ चक्रमाणा) परस्पर सत्संग, दान, मान, सत्कार आदि व्यवहार करते हुए (रथस्य) अपने रमणीय व्यवहार के (रजोभिः) तेजों से (भानुम्) अपने तेज को (रुरुचुः) अति रुचिकारक बनाओ और आप दोनों इस जगत् में (अमिता) अनेक (पुरू) बहुविध (वरांसि) श्रेष्ठ रथादि पदार्थों का (मिमाना) निर्माण करते हुए (अज्रान्) अपने वेग से जाने वाले अश्व, यानादि की (अपः धन्व अतियाथः) समुद्रों और मैदानों के पार पहुंचाने में समर्थ होवो ।

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—(त्यत् वर्त्तिः) वह मार्ग (यत् अरध्रम्) जो मनुष्यों के वश का न हो, जिस पर चला न जासके, ऐसा ऊंचा, नीचा, विषम, आकाश जलादि का मार्ग है और जो (दाशुषः मर्त्यस्य) राष्ट्र में कर आदि देने वाले प्रजाजन को (व्यथिः) नाना प्रकार से व्यथा, दुःख देता है, उसको (परि शयध्यै) सुख से पार करने के लिये (उग्रा) बलवान् (ता) वे दोनों (अश्विना) वेगवान् रथ, अश्व यन्त्रादि के जानने वा बनाना जानने वाले, विद्युत् अग्निवत् शिल्प कुशल स्त्री पुरुष, (शश्वत्) सदा ही (अश्वैः) वेग से जाने वाले यन्त्रों और (मनोजवेभिः) मन के समान वेगवान् वा विज्ञानपूर्वक अपने संकल्पानुसार न्यूनाधिक वेग रखने योग्य (इषिरैः) इच्छानुकूल चलने वाले रथादि साधनों से

(इत्था धियः ऊहथुः) इस २ प्रकार नाना कर्म किया करें, लोगों को उन रथ, अश्व, यन्त्रादि से (परि ऊहथुः) पार या दूर देश तक पहुंचा दिया करें ।

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥ ४ ॥

भा०—(युयुजान-सप्ती) वेग से जाने वाले रथादि यन्त्रों में जुड़ने वाले वायु, विद्युत् जिस प्रकार (नव्यसः जरमाणस्य मन्म उपभूषतः) स्तुत्य उपदेष्टा के ज्ञान को भूषित करते हैं उसी प्रकार (युयुजान-सप्ती) वेगवान् अश्वादि को अपने रथ में जोड़ने वाले स्त्री पुरुष वा (युयुजान-सप्ती) अपने सातों प्राणों से युक्त मन को योग द्वारा एकाग्र करने वाले (ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (नव्यसः जरमाणस्य) स्तुत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (मन्म उपभूषतः) मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करावें । वे दोनों (शुभं) उत्तम कान्ति (पृक्षम्) परस्पर के सम्पर्क, और (इषम्) अन्न (ऊर्जं) बल को (वहन्ता) धारण करते हुए हों । उन (युवाना) युवा युवति बलवान् दोनों को (प्रत्नः) वृद्ध (होता) ज्ञानदाता विद्वान्, बड़ा धनप्रद पुरुष (यक्षत्) ज्ञान प्रदान करे । वा उनको धन की सहायता देकर विज्ञान की उन्नति करे ।

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्ररांती ॥५॥१॥

भा०—जिस प्रकार वायु और विद्युत् दोनों (वल्गू) सुखजनक, (दस्रा) दुःखों के नाशक, (पुरु-शाक-तमा) नाना शक्तिमान्, (नव्यसा वचसा) अतिस्तुत्य, वचन योग्य और (शंसते स्तुवते शंभविष्ठा बभूवतुः) विद्वान् उपदेष्टा को अति शान्तिदायक होते और (चित्र-राती) नाना अद्भुत ऐश्वर्य देने वाले होते हैं उसी प्रकार (या) जो स्त्री पुरुष (शंसते)

उत्तम आशंसा करने वाले और (स्तुवते) ज्ञान के उपदेष्टा विद्वान् को (शम्-भविष्ठा) शान्तिदायक (बभूवतुः) हों, और (गृणते) विद्या के दाता गुरु को (चित्र-राती) नाना प्रकार के उत्तम धनादि देने वाले होते हैं (ता) उन (वल्गू) सुमधुर वचन बोलने वाले, (दस्रा) दुःखनाशक, (पुरु-शाक-तमा) बहुत सी शक्तियों से सम्पन्न (प्रत्ना) श्रेष्ठ हैं उनका (नव्यसा) अति स्तुतियोग्य (वचसा) वचन से (विवासे) आदर करूं। इति प्रथमो वर्गः ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे दोनों यन्त्रस्थ विद्युत और पवन (तुग्रस्य सूनुम्) लेन देन करने वाले के पुत्र, व्यापारी को और (तुग्रस्य सूनुम्) शत्रु का नाश करने वाले, बलवान् सैन्य के प्रेरक, वा सञ्चालक (भुज्युं) भोक्ता, वा पालक सेनानायक को (समुद्रात् अद्भ्यः) आकाश से और जलों से (विभिः) पक्षियों के समान आकाश में जाने वाले यन्त्रों द्वारा (रजोभिः) उत्तम मार्गों से और (अरेणुभिः योजनेभिः) रजोरेणु से रहित, योजनों तक (अर्णसः उपस्थात्) जल के समीप (पतत्रिभिः) वेग से जाने वाले साधनों से वे (भुजन्ता) पालन करने वाले (निर् ऊहथुः) उठा ले जाने में समर्थ होते हैं। स्त्री पुरुष पक्ष में—(ता) वे दोनों स्त्री पुरुष (अद्भ्यः) मूल, कारणीभूत उत्पादक वीर्यांशों से (विभिः, रजोभिः) कान्ति युक्त, शुक्रांशों और रजों से (समुद्रात्) परस्पर को मिलकर हर्ष देने वाले संग से (तुग्रस्य) पालक पति के (भुज्युं) वंश के पालक (सूनुं) पुत्र को (निरु ऊहथुः) अच्छी प्रकार उत्पन्न करें अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों मिलकर भी शुक्रों और रजों से आनन्द पूर्वक संग से पुत्र उत्पन्न करें। वह पुत्र 'तुग्र्' अर्थात् वीर्यदाता और पालक पतिकारी ही होता है, वही वंश का पालक होता है। और पुत्र

उत्पन्न हो जाने पर वे दोनों स्त्री पुरुष (अरेणुभिः) पापरहित, निर्दोष (योजनेभिः) परस्पर के समागमों से (भुजन्ता) एक दूसरे को पालन करते हुए और नाना ऐश्वर्यों, सुखों का भोग करते हुए भी (पतत्रिभिः) वेग से जाने वाले रथों, नौकाओं वा पक्षादि युक्त यन्त्रों से जैसे (अर्णसः उपस्थात्) समुद्र या जल के पार जाते हैं उसी प्रकार वे दोनों (पतत्रिभिः) गिरने से बचाने वाले धर्म-साधनों से वा सन्तानों से (अर्णसः उपस्थात्) पितृऋण रूप सागर से (भुज्युं) वा पालक माता पिता को (निर्-ऊहथुः) पार कर देते हैं। सन्तान उत्पन्न करके वे दोनों मिलकर पति-पत्नी माता पिता के ऋण से मुक्त हो जाते हैं।

वि ज॒युषा॑ रथ्या यात॒मद्रिं॑ श्रु॒तं हवं॑ वृषणा वध्रिम॒त्याः ।
द॒श॒स्यन्ता॑ श॒यवे॑ पिप्यथु॒र्गामिति॑ च्यवाना सु॒म॒तिं भु॑रण्यू ॥७॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (जयुषा रथ्या) विजयशील रथ पर सवार, रथी-सारथी के समान (अद्रिं वि यातम्) मार्ग में आये बाधक पर्वतादि दुर्गम मार्ग को भी पार करो। (वृषणा) आप दोनों बलवान्, परस्पर सुखों का वर्षण करते हुए भी (वध्रिमत्याः) कुल की वृद्धि करने वाली और सुसंयत इन्द्रियों से युक्त भूमि रूप स्त्री के (हवं) वचन को (वध्रिमत्या हवं) नाना वृद्धि युक्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी भूमि विषयक उत्तम ज्ञान का (श्रुतं) श्रवण करो। (दशस्यन्ता) एक दूसरे का बल बढ़ाते हुए और प्रेमपूर्वक धन, वीर्य आदि देते हुए, (शयवे) शयु अर्थात् शिशु को उत्पन्न करने के लिये (गाम्) योग्य भूमि रूप स्त्री को भूमिवत् (पिप्यथुः) उन्नत अधिक गुण, शक्तियुक्त करो। (इति) इस प्रकार (सुमतिं च्यवाना) उत्तम ज्ञान और बुद्धि को प्राप्त होते हुए (भुरण्यू) सन्तानों का पालन पोषण करने वाले होवो। 'शयवे'—शयुः शिशुश्च समानधातुजावेतौ समानार्थकौ ॥

यद्रो॑दसी प्र॒दिवो॒ अस्ति॑ भू॒मा हेळो॑ दे॒वाना॑मु॒त म॑र्त्य॒त्रा ।
तदा॑दित्या वसवो रुद्रियासो रक्षो॒युजे॒ तपु॑र॒घं द॑धात ॥ ८ ॥

भा०—हे (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाले राजन्, सेनानायक, एवं उसके प्रजागण वा सैन्यगण ! (यत्) जो (देवानाम्) तेजस्वी पुरुषों (उत) और (मर्त्यत्रा) सामान्य मनुष्यों, विद्वानों और 'मर्त्य' अर्थात् शत्रु-मारक वीर भटों में (प्रदिवः) उत्तम तेजस्वी और उत्तम व्यवहार (भूमा) और बहुत बड़ा (हेडः) क्रोधवान् अनादृत पुरुष (अस्ति) है हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! हे (वसवः) राष्ट्र में बसे प्रजाजनो ! और हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने और सबके दुःखों को दूर करने हारे जनो ! उस (रक्षो युजे) विघ्नकारी पुरुषों के सहयोगी, पुरुष को दण्डित करने के लिये आप लोग (अघं तपुः) हिंसा रहित स्वयं नष्ट न होने और शत्रु को नाश करने वाला शत्रुसंतापक उपाय शस्त्रादि, (दधात) धारण करो । और (रक्षोयुजे अघं तपुः दधात) रक्षकों के सहयोगी, पुरुष की वृद्धि के लिये (अघं तपुः दधात) शत्रुनाशक शस्त्र धारण करो ।

य ईं राजा॑नावृतु॒था वि॒दध॒द्रज॑सो मि॒त्रो वरु॑ण॒श्चिके॑तत् ।
ग॒म्भी॒राय॒ रक्ष॑से हे॒तिम॑स्य॒ द्रोघा॑य चि॒द्वच॑स॒ आन॑वाय ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (ईं) सब प्रकार से (राजानौ) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाशित होने वाले उत्तम स्त्री पुरुषों को (रजसः) समस्त लोकों के हितार्थ, उनमें (ऋतुथा) समय पर (विदधत्) विशेष रूप से आदरपूर्वक धारण करता है उस जगत् को वे दोनों भी (वरुणः मित्रः) दुष्टों के वारक और स्नेही बनकर (चिकेतत्) जानें । और (आनवाय) अति नवीन, या मनुष्यों के (द्रोघाय चित्) द्रोह के लिये और (वचसे) निन्दा वचन के लिये जिस प्रकार राजा दण्ड देता है उसी

प्रकार (गम्भीराय रक्षसे) बड़े भारी दुष्ट पुरुष को विनाश के लिये भी (हेतिम् अस्य) शस्त्र का प्रहार करो ।

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१०॥

भा०—हे (अश्विनौ) उत्तम स्त्री पुरुषो ! सभा वा सभापति ! प्रजावर्ग और राजन् ! आप दोनों (द्युमता) उत्तम तेज से युक्त (नृवता) उत्तम नायक से युक्त (रथेन) रथ के समान रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ से और (अन्तरैः चक्रैः) भीतरी साधनों से (तनयाय) उत्तम सन्तान-लाभ के लिये (वर्त्तिः यातम्) रथ से जैसे मार्ग चला जाता है उसी प्रकार गृहस्थोचित रति द्वारा (वर्त्तिः यातम्) गृहस्थोचित व्यवहार वा गृहाश्रम को प्राप्त होओ । जिस प्रकार (त्यजसा वनुष्यतां शीर्षा वृञ्जन्ति तथा) क्रोध से जिस प्रकार हिंसकों के शिर काट देते हैं उसी प्रकार आप दोनों (सनुत्येन त्यजसा) चिरस्थायी पुत्र और धन के बल से (मर्त्यस्य) मरणशील मनुष्य को (वनुष्यताम्) विनाश कर देने वालों के (शीर्षा) प्रमुख कारकों को (ववृक्तम्) विनष्ट करो । हिंसक मृत्यु आदि अर्थात् चिरस्थायी सन्तान व प्रजा से आप दोनों भी अपने को नष्ट कर देने वाले कारणों को दूर करो, सन्तान द्वारा मरणधर्मा मनुष्य भी स्थिर, अमर होकर रहे । प्रजातिरमृतम् । शत० ॥

आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद्गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ११।२

भा०—हे (चित्रराती) अद्भुत दान देने वाले, अति विस्मयजनक परस्पर प्रेम करने वाले राजा, प्रजा, सैन्य सेनापति वा पति-पत्नी जनो ! (परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुद्भिः) उत्कृष्ट, मध्यम, और निकृष्ट इन सब प्रकार की अश्व-सेनाओं से जिस प्रकार राजा आदि जाते

हैं उसी प्रकार आप दोनों भी इन तीनों प्रकार के (नियुद्भिः) नियुक्त प्रजावर्गों सहित (आ यातम्) आदरपूर्वक आओ। और (दृढस्य) दृढ़ (गोमतः) गवादि पशु, उत्तम भूमि आदि वाले (व्रजस्य) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम के (दुरः) द्वारों को (वि वर्त्तम्) खोलो और (गृणते) उपदेश करने वाले विद्वान् के भी (गोमतः व्रजस्य) वेद वाणी से युक्त व्रज अर्थात् आश्रय के द्वार को भी (वि वर्त्तम्) विशेष रूप से खोलो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[६३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ स्वराड्बृहती । २, ४, ६, ७ पंक्तिः । ३, १० भुरिक् पंक्तिः । ८ स्वराट् पंक्तिः । ११ आसुरी पंक्तिः ॥ ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताय दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥ १ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (दूतः न) दूत या संदेश-हर जिस प्रकार (पुरुहूता वल्गू नमस्वान् सत् अविदत्) बहुतों में प्रशंसित, बलशाली राजा सेनापति दोनों को नमस्कारवान् होकर आदर से भेंट करता है उसी प्रकार (स्तोमः) स्तुतियुक्त विद्वान् !(नमस्वान्) दण्डपूर्वक शासन करने योग्य ज्ञान से सम्पन्न होकर (त्या) उन (वल्गू) सुन्दर वाणी बोलने वाले, (पूरु-हूता) बहुतों से प्रशंसित आप दोनों को आज (क्व अविदत्) किस स्थान पर मिले ? हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले जनो ! (यः) जो आप लोगों को (अर्वाक्) विनययुक्त होकर वा (अर्वाक् = अर्-वाक्) उत्तम वचनयुक्त होकर (आ ववर्त्त) तुम दोनों से आदरपूर्वक व्यवहार करे । तुम दोनों भी (अस्य मन्मन्) उसके मान आदर करने और उसके ज्ञान में (प्रेष्ठा हि असथः) अति प्रिय होकर रहो।

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (मे अस्मै) इस मुझ जन के उपकार के लिये आप दोनों (मे हवनाय) मेरे आह्वान या मेरे किये सत्कार को स्वीकार करने के लिये (गृणाना) उत्तम वचन कहते हुए (यथा) जब भी (अरं गन्तम्) अच्छी प्रकार आइये तो (अन्धः पिबाथः) अन्न का अवश्य भोजन करिये और आप दोनों (त्यद् वर्त्तिः परियाथः) उस उत्तम मार्ग में सदा गमन करें (यत् परः न) जिससे जाने से न दूसरा शत्रुजन और (न अन्तरः) न अपना अन्तरंग, समीपवर्त्ती जन भी (तुतुर्यात्) अपने पर प्रहार करें । अथवा (वर्त्तिः परियाथः) आप लोग ऐसे व्यवहार करें वा ऐसे गृह में जावें या रहा करें जिससे अपना, पराया भी हानि न पहुंचा सके ।

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों के प्रति (वरीमन्) उत्तम, वरण करने योग्य, अवसर में (अन्धसः) अन्नों का (अकारि) सत्कार किया जाय । और (सुप्र-अयनतमम्) सुख से, उत्तम रीति से स्थिति करने योग्य (बर्हिः) मान-वर्धक आसन (अस्तारि) बिछाया जावे । (युव-युः) तुम दोनों को चाहने वाला पुरुष (वां) आप दोनों को (उत्तान-हस्तः) अपने हाथों को ऊपर उठाकर (ववन्द) आप लोगों की स्तुति और अभिवादन करे और (अद्रयः) मेघ के तुल्य उदार जन (वां नक्षन्तः) आप दोनों को प्राप्त होकर (आञ्जन्) स्नेहपूर्वक चाहें वा आप दोनों का जलादि से अभिषेक, प्रोक्षण, अर्घ्य सत्कार आदि करें ।

ऊर्ध्वो वा॑म॒ग्निर॑ध्व॒रेष्व॑स्था॒त्प्र रा॒तिरे॑ति जू॒र्णिनी॑ घृ॒ताची॑ ।
प्र होता॑ गू॒र्तम॑ना उरा॒णोऽयु॑क्त॒ यो नास॑त्या॒ हवी॑मन् ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले, वा नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजमान, प्रमुख स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (होता) ज्ञान वा धन का देने वाला, (गूर्त-मनाः) उद्यमयुक्त चित्त वाला, मुख से ज्ञान का उपदेश करने वाला, (उराणः) अति दानशील वा बहुत बड़े कर्म करने वाला, (ऊर्ध्वः) तुम दोनों के ऊपर अध्यक्षवत् रहकर (प्र अयुक्त) आप लोगों को सत्कर्म में लगाता है और (अग्निः) अग्नि, वा सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक, तेजस्वी, होकर (अध्वरेषु) उत्तम हिंसारहित उपकार के सत्कार्यों में (वाम् ऊर्ध्वः अस्थात्) आप दोनों के ऊपर स्थित होता है तब उसके (हवीमनि) शासन में रहकर (वाम्) तुम दोनों को (जूर्णिनी घृताची) वेग से गुज़रती रात्रि के समान (जूर्णिनी घृताची) वृद्ध पुरुष की स्नेह से युक्त (रातिः) ज्ञान आदि की दान-सम्पदा, (प्र एति) अच्छी प्रकार उज्ज्वल रूप में प्राप्त होती है ।

अधि॑ श्रि॒ये दु॑हि॒ता सूर्य॑स्य॒ रथं॑ तस्थौ पुरुभुजा श॒तोति॑म् ।
प्र मा॒याभि॑र्मायिना भूत॒मत्र॒ नरा॑ नृतू॒ जनि॑मन्य॒ज्ञिया॑नाम् ॥५॥३॥

भा०—(सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की पुत्री, उषा वा प्रभातवेला, जिस प्रकार सूर्य के (रथं) रमणीय या वेगयुक्त (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीप्तियुक्त विम्ब पर (श्रिये) शोभा वृद्धि के लिये विराजती है उसी प्रकार (सूर्यस्य) उत्तम विद्वान् तेजस्वी पिता की (दुहिता) दूर देश में जाकर विवाह करने वाली कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों दीप्तियों अस्त्र शस्त्र रक्षा साधनों तथा (शत-ऊतिम्) सैकड़ों उत्तम भोगों से युक्त (रथं) सुन्दर रमण योग्य, सुखप्रद आश्रय पर शोभा वृद्धि के लिये रथवत् ही (अधि तस्थौ) विराजे । इसी प्रकार वह कन्या (शत-ऊतिम्) सैकड़ों

रक्षा साधनों से सम्पन्न (रथं) रमण करने योग्य पुरुष को (श्रिये अधि तस्थौ) प्राप्त कर उसके आश्रय या सेवा करने के निमित्त, निर्भय होकर रहे। हे (पुरु-भुजा) बहुत से भोग और प्रजापालनादि कुशल तुम दोनों ! (अत्र) इस लोक वा आश्रम में ही आप दोनों (मायाभिः) नाना बुद्धियों से सम्पन्न होकर (मायिना भूतम्) उत्तम बुद्धिमान् हो जाओ ! आप दोनों (नरा) उत्तम नायक, (यज्ञियानां) यज्ञयोग्य, सत्कारपात्र पुरुषों के बीच में (जनिमन्) इस नवीन जन्म ग्रहण के अवसर पर (नृतू भूतम्) अति हर्ष युक्त, सदा आनन्द, सुप्रसन्न रहो। इति तृतीयो वर्गः ॥

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सेनापति और सभापति, राजा, दोनों ही (सूर्यायाः) सूर्य की कान्ति से चमकने और अन्नों और वाणियों को उत्पन्न करने वाली, भूतधात्री पृथ्वी की (शुभे) शोभा के लिये, (आभिः, दर्शताभिः श्रीभिः पुष्टिम् वहतः) इन नाना देखने योग्य लक्ष्मी या कान्ति सहित समृद्धि को (ऊहथुः) वहन करते हैं इसी प्रकार हे वर वधू जनो ! (युवं) आप दोनों (आभिः दर्शताभिः श्रीभिः) इन भिन्न २ दर्शन करने योग्य नाना लक्ष्मी, सम्पदाओं द्वारा (शुभे) अपनी शोभा और शुभ संकल्प के निमित्त (पुष्टिम् ऊहथुः) गवादि सम्पदा और धन समृद्धि प्राप्त कर उसे अपने घर ले जाओ तो (वां) तुम दोनों के (वयः) अश्वों के समान वेगवान् इन्द्रियगण, दीप्तियां, वा रक्षक गण, (वां वपुषे) तुम दोनों की सुरूपता, शरीर की पुष्टि और रक्षा के लिये (अनु-पप्तन्) पीछे २ चलें, और हे (धिष्ण्या) गृहस्थ धारण करने में समर्थ दृढ़ वर वधू जनो ! (वाम्) आप दोनों को (सु-स्तुता वाणी नक्षत्) उत्तम प्रशंसित वाणी प्राप्त हो। अर्थात् सम्पन्न होने पर स्त्री पुरुषों की

इन्द्रियें विजित हों जिससे शरीर भोग विलासों से नष्ट न हो। लोग आचार की प्रशंसा करें, वे सम्पन्न हों, उनके रक्षक लोग भी उनके आज्ञाकारी हों।

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः॥ ७॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर स्थित वा कभी असत्य व्यवहार न करने वाले स्त्री पुरुषो! (वां) आप दोनों के (प्रयः) उत्तम गमन करने के साधन रथ को (वयः) वेग से जाने वाले वा कान्तिमान् (अश्वासः) अश्ववत् आशु गति से जाने वाले अग्नि आदि तत्व (वहिष्ठाः) स्थान से स्थानान्तर पहुंचा देने में समर्थ होकर (अभि वहन्तु) आगे ले चलें। इसी प्रकार (वयः) तेजस्वी पुरुष (वहिष्ठाः) उत्तम कार्य वा ज्ञान के धारक होकर (वाम् प्रयः वहन्तु) तुम दोनों को उत्तम ज्ञान, प्रीतिकारक वचन प्राप्त करावें। (वां रथः) आप लोगों का रथ (मनः-जवाः) मन के समान तीव्र वेग से वा मन के संकल्पानुसार, इच्छानुकूल मृदु, मध्य, तीव्र वेग से जाने वाला (प्र असर्जि) बहुत अच्छा बनाया जावे। और वह (पूर्वीः) पूर्ण (इषः) चाहने योग्य (पृक्षः) सम्पर्क करने योग्य (इषिधः) नाना इच्छाओं को प्रकट कराने वाला, रुचिकारक अन्न भी (अनु असर्जि) अनुकूल ही तैयार हो।

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसंक्राम्।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्॥८॥

भा०—जिस प्रकार मेघ और विद्युत्, दोनों का जन्तु मात्र पर बहुत बड़ा उपकार होता है, वे प्राणि-जगत् को (इषं धेनुं पिन्वतः) अन्न और भूमि के समान सेचन करते हैं समस्त ओषधियों के रसादि भी उनके किये वृष्टि के अनुसार ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार हे

(पुरु-भुजा) बहुत सी प्रजाओं और इन्द्रियों को आत्मा व मन के तुल्य पालन और उपभोग करने वाले राजा अमात्य वा तद्वत् सहयोगी स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों का (देष्णम्) दान योग्य धन भी (पुरु हि) बहुत प्रकार का हो और आप दोनों (नः) हमारी (धेनुं न) गौ या भूमि को मेघ विद्युत् के समान, ही (असक्राम् इषम्) हमसे अन्य के पास न जाने वाली, निजू ही (इषं) अन्न आदि सम्पदा को (पिन्वतम्) सेचन, वृद्धि करो। और (ये) जो (स्तुतः) उत्तम उपदेष्टा, विद्वान् और (सुस्तुतिः च) उत्तम स्तुति, और (ये रसाः च) जो रस, नाना बल हैं वे भी हे (माध्वी) मधुर अन्नादि के भोक्ता जनो ! (वाम् रातिम् अनुग्मन्) आप दोनों के दिये धन का अनुगमन करे। अर्थात् आपका दिया दान ही सबको अधिक सुख दिया करे।

उत मं ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्का।
शांडो दांद्धिरणिनः स्मदिष्टीन्दश वशासो अभिषाच ऋष्वान्॥९॥

भा०—(पुरयस्य) अग्रणी वा पुर अर्थात् नगर के नियन्ता नगराध्यक्ष (मे) मुझ पुरुष के अधीन मेरे (ऋज्रे) धर्मयुक्त, सरल नीति से युक्त सर्वप्रिय (सुमीढे) धन धान्य से समृद्ध, मेघादि से सुसेचित, (पेरुके च) उत्तम प्रजा पालक, राष्ट्र में (रघ्वी) सदा कर्म करने में कुशल प्रजा वेगवती नदी के समान सुखप्रद हो, और (शतं पक्का) नाना पके अन्न, खेत आदि हों। और (शांडः) प्रजा को शान्तिदायक, और शत्रुओं का अन्त करने में समर्थ वीर पुरुष, (हिरणिनः) सुवर्ण आदि का स्वामी (स्मद्-दिष्टीन्) उत्तम, शुभ दर्शन, वा ज्ञान वाले (ऋष्वान्) बड़े २ (दश) दस (अभि-साचः) सहयोगी ऐसे पुरुषों को (दात्) स्थापित करे जो (वशासः) उसके अधीन होकर कार्य करें उत्तम राष्ट्र में राजा दश विद्वान् पुरुषों की दशावरा राज्यपरिषत् बनाकर

उत्तम राज्य का पालन करे। (शांडः) शं ददाति इति शांडः। स्यति अन्तं करोति वा शत्रूणां। स्यतेरडजौणादिकः॥ दात्-धात्। वर्णविकारः।

सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः॥१०॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य का व्यवहार न करने वाले, एवं प्रमुख स्थान पर स्थित जनो! (वां) तुम दोनों के (अश्वानां) अश्व सैन्यों के (गिरे) उपदेष्टा, वा शिक्षक के लिये (पुरु-पन्थाः) बहुतों को नाना प्रकार के जीवनोपाय रूप मार्ग देने में समर्थ, बहुतों को वृत्ति देने वाला राजा (शता सहस्रा) सैकड़ों और हज़ारों तक (दात्) दे। अथवा हे (नासत्या) सदा सत्य ज्ञान व्यवहार करने वाले राजा प्रजा वर्गो (पुरुपन्थाः) बहुत से मार्गों से सम्पन्न देश वा देश का राजा (State) (गिरे) विद्वान् ज्ञानवक्ता पुरुष के अधीन शिक्षा पाने के लिये (अश्वानां शता सहस्रा दात्) अश्व-सवारों के सैकड़ों हज़ारों वा सैकड़ों विद्या के इच्छुक जन भी देवे। और हे (वीर) वीर पुरुष! तू (भरद्-वाजाय) ज्ञान और बल को धारण करने वाले (गिरे) उपदेष्टा, शासक विद्वान् के सेवार्थ उसके अधीन (दात्) सैकड़ों सहस्रों अश्व सैन्य रक्खे जिससे हे (पुरु-दंससा) बहुत से उत्तम कर्म करने वाले राज प्रजावर्गो! (रक्षांसि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष सदा (हताः स्युः) दण्डित हों।

आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम्॥ ११॥ ४॥

भा०—सत्य व्यवहार निपुण राजा प्रजावर्गो! वा सभा सेनाध्यक्षो! वा गृहस्थ स्त्री पुरुषो! मैं (वां) आप दोनों के (वरिमन् सुम्ने) अति विशाल सुखप्रद शासन में (सूरिभिः) विद्वानों के सहित (स्याम्) रहूं। इति चतुर्थो वर्गः॥

[६४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्। ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (रोचमानाः) प्रकाशमान होकर (श्रिये उत् अस्थुः) शोभा वृद्धि के लिये ऊपर उठती हैं और जिस प्रकार (रुशन्तः अपां ऊर्मयः न) स्वच्छ वर्ण की जलों की तरंगे उठा करती हैं उसी प्रकार (उषसः) कमनीय, कान्तिवाली, विदुषी (रोचमानाः) रुचिर दीप्ति वाली, सुस्वभाव स्त्रियें स्वच्छ विमल आचार वाली, शुक्ल कर्मा, होकर (श्रिये) घर की शोभा के लिये (उत् अस्थुः) उन्नति को प्राप्त करें, उत्तम स्थिति को प्राप्त करें, मान पावें। (मघोनी) उत्तम ऐश्वर्यवती (दक्षिणा) कर्मकुशल स्त्री, (वस्त्री अभूत् उ) गृह में बसने वाली, माता बनने योग्य हो। वह ही (विश्वा सुपथा) समस्त उत्तम धर्म मार्गों को भी (सुगा कृणोति) सुगम कर देती है।

भद्रा ददृक्ष उर्विया विभास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः देवि) प्रभात वेला वा उषा के समान कान्तिमति देवि ! पति की कामना करने हारी विदुषि ! तू (भद्रा) कल्याणकारिणी सौम्य वंश वा स्वभाव वाली (ददृशे) दीखा कर, वेश और आकार प्रकार से उत्तम, स्वरूप दिखाई दे। (उर्विया) बहुत महत्वयुक्त, उत्तम गुणों से प्रकाशित हो, और बहुत से गुणों को प्रकाशित कर (ते) तेरी (शोचिः) शुद्ध (भानवः) कान्तियोंवत् कामनाएं (द्याम्) तेरी कामना करने वाले तेजस्वी पुरुष को (उत् अपप्तन्) उत्तम रीति से प्राप्त हों। तू (शुम्भमाना) सुशोभित होकर (वक्षः) अपना स्वरूप और उत्तम वचन एवं गृहस्थ के बहुत सामर्थ्य को (आविः कृणुषे) प्रकट कर। हे (देवि)

विदुषि ! तू (महोभिः) बड़े उत्तम २ गुणों से (रोचमाना) सबको प्रिय लगती हुई विराज ।

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो नवोल्हा ॥३॥

भा०—(गावः) अश्व जिस प्रकार (ऊर्विया प्रथानां भूमिम् प्राप्य रथं वहन्ति) विस्तृत भूमि को प्राप्त होकर रथादि को ढो ले जाते हैं और जिस प्रकार (गावः प्रथानाम् उर्वियाम् वहन्ति) किरण फैलती हुई उषा को धारण करते हैं उसी प्रकार (अरुणासः) तेजस्वी, (रुशन्तः) दुष्टों के वा दुष्ट भावों के नाश करने वाले, (गावः) ज्ञानवान् पुरुष, (उर्विया प्रथानाम्) पृथ्वी के समान विशाल, (सुभगाम्) सौभाग्यवती स्त्री को (वहन्ति) उद्वाहपूर्वक ग्रहण करें । (शूरः अस्ता इव शत्रून् अप-राजते) शूरवीर, अस्त्र-कुशल धनुर्धारी के समान वह स्त्री तथा उसके साथ विवाह करने वाला पुरुष, अन्तःशत्रु काम, क्रोधादि तथा बाहरी शत्रुओं को भी दूर करे । (तमः बाधते) जिस प्रकार उषा वा सूर्य प्रकट होकर अन्धकार को दूर करते हैं उसी प्रकार वे दोनों भी (तमः) दुःखदायी अज्ञान, शोक आदि अन्धकार को नाश करें । वह पुरुष (अजिरः नवोढा) वेग से जाने वाला अश्व जिस प्रकार रथ का बोझ ढोने में समर्थ होता है उसी प्रकार (अजिरः) जरा वा बृद्धावस्था और शरीर की दुर्बलता से रहित पुरुष ही (नवोढा) नयी वधू का विवाह करने वा गृहस्थ भार को उठाने में समर्थ हो ।

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरासि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

भा०—उषा जिस प्रकार (दिवः दुहिता) प्रकाश वा प्रकाशवान् सूर्य से उत्पन्न होने, वा प्रकाशों के देने, वा जगत् को पूर्ण करने से 'दिवः दुहिता' है । वह पर्वतों या मेघों पर भी पड़ती, (स्वभानुः) स्वतः कान्तिमती

होकर समस्त प्राणिवर्ग को जीवन देती है उसी प्रकार हे (दिवः दुहितः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने हारी, स्त्रि ! (ते) तेरे लिये (पर्वतेषु) पर्वतों में वा पर्वत मेघवत् पालन करने वाले सम्बन्धि जनों के बीच (सु-पथा) उत्तम २ सदाचार और धार्मिक मार्ग (सुगा) सुख से गमन करने योग्य हों। उनके बीच दुराचार के कुमार्गों पर तू कभी पैर न रख। (अवाते अपः तरसि) प्रचण्ड वात से रहित शान्त अवसर में जिस प्रकार महासमुद्र का जल पार कियाजाता है उसी प्रकार हे (स्व-भानो) स्वयं अपनी कान्ति से चमकने हारी हे (दिवः दुहितः) उत्तम संकल्पों के उत्पन्न करने हारी स्त्रि ! तू भी (अवाते) विघ्नादि नाशक कारणों से रहित वा अहिंसक पुरुष अधीन रहकर (अपः) अपने नाना कर्मों को अन्तरिक्ष वा जलमार्ग के समान (तरसि) पार कर। (ता) वह तू (पृथु-यामन्) बड़े भारी (ऋष्वे) महान धर्म में रहकर (नः) हमें (इषध्यै) आदर सत्कार करती हुई (नः आवह) हमें प्राप्त कर।

सा व॑ह॒ योक्ष॑भि॒रवा॒तोषो॒ वरं॒ वह॑सि॒ जोष॒मनु॑।
त्वं दि॑वो दुहित॒र्या ह॑ दे॒वी पू॒र्वहू॑तौ मं॒हना॑ दर्श॒ता भूः॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) कमनीय कान्ति वाली, सुकुमारि ! तू (या ह) जो निश्चय से (देवी) पति की कामना करती हुई (अवाता) किसी को प्राप्त न होकर, अनन्यपूर्वा होकर (जोषम् अनु) अपने प्रेम के अनुसार (वरं) अपने वरण करने योग्य वर पुरुष के साथ (आवहसि) विवाह करती है, और (या ह) जो तू (देवी) शुभ गुणों से युक्त होकर (पूर्वहूतौ) प्रथम वार के दान और प्रथमवार के स्वीकार करने के अवसर में (मंहना) अति पूज्य एवं आदरणीय और (दर्शता) दर्शनीय (भूः) होती है। (त्वं) तू हे (दिवः दुहितः) सूर्य की कन्या या पति की कामना पूर्ण करने हारी विदुषि ! (सा) वह तू (उक्षभिः आ वह) सेचन समर्थ दृढ अंगों से, बैलों से शकटवत् गृहस्थ भार को धारण कर।

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥ ५॥

भा०—(व्युष्टौ) विशेष रूप से प्रकाश का आवरण हट जाने पर, प्रभात काल में (चित्) जिस प्रकार (वयः) पक्षी गण (वसतेः) अपने घोंसले से (उत् अपप्तन्) उड़कर देशान्तर जीविका के लिये चले जाते हैं उसी प्रकार (नरः च) पुरुष लोग भी (व्युष्टौ) प्रातःकाल होजाने पर (ये पितु-भाजः) जो अन्न खा चुकते हैं वे भोजनानन्तर (वसतेः) निवास स्थान से (उत् अपप्तन्) बाहर वृत्ति कमाने के लिये जाया करें। हे (देवि उषः) देवि ! विदुषि ! उषावत् कान्तिमति ! एवं पति को हृदय से चाहने वाली ! तू (दाशुषे) अपने अन्न वस्त्र देने वाले (अमा) साथ के सहचर (सते) प्राप्त, सच्चरित्र (मर्त्याय) पुरुष के लिये (भूरिवामम् वहसि) बहुत उत्तम २ ऐश्वर्य, सुख आदि प्राप्त करा। इति पञ्चमो वर्गः॥

[६५]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः। ५ विराट् पंक्तिः। २, ३ विराट्त्रिष्टुप। ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्॥ षड्टचं सूक्तम्॥

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून्॥ १॥

भा०—उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (एषा) यह (दिवः-ओजाः) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न हुई उषा जिस प्रकार (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (मानुषीः क्षितीः) मननशील, मनुष्य प्रजाओं को जगाती है और (राम्यासु) रात्रियों के उत्तर भाग में वह जिस प्रकार (रुशता भानुना) चमकते प्रकाश से (अज्ञायि) सबको जान पड़ती है, वह (तमसः अक्तून्) अन्धकार से रात्रियों को (तिरः) पृथक् करती अथवा (तमसः) अन्धकार से 'अक्तु' अर्थात् प्रकाशयुक्त

दिनों को वा तमोमय रात्रि कालों को, (तिरः) प्राप्त करा देती है, (चित्) उसी प्रकार (एषा) यह (नः) हमारी (दुहिता) पुत्री (दिवः दुहिताः) कामना, सद्व्यवहारों, उत्तम इच्छाओं और भावनाओं को पूर्ण करने वाली और दूर देश में विवाहित होने योग्य कन्या (दिवः-जाः) जो तेजोमय ज्ञानी पुरुष से शिक्षा, विनयादि से गुणों में प्रसिद्ध होकर, (मानुषीः क्षितीः) मनुष्य प्रजाओं को जगावे और (या) जो (रुशता भानुना) चमकते ज्ञान प्रकाश और सदाचार की कान्ति से (राम्यासु) रमण करने योग्य स्त्रियों में से सर्व-श्रेष्ठ (अज्ञायि) प्रसिद्धि प्राप्त कर, जानी जावे, वा (राम्यासु) रमण अर्थात् पति को सुख देने की क्रियाओं में (अज्ञायि) कुशलता प्राप्त करे। और (स्या) वह (अक्तून्) पूज्य माता पिता, सास ससुर, भाई आदि पूज्य पुरुषों को (तमसः) शोकादि खेदजनक कारणों से (तिरः) पृथक् करे।

वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) प्रभात वेलायें (चन्द्र-रथाः) आह्लादजनक, रमणीय रूप वाली, या मानो प्रातःकाल तक दीखने वाले चन्द्र पर रथवत् चढ़कर आने वाली होकर (अरुण-युग्भिः) प्रातः-कालिक अरुण वर्ण से युक्त अश्वों अर्थात् किरणों सहित (तत् वि ययुः) उस परम क्रान्तिमार्ग पर गति करते हैं उसी प्रकार (उषसः) कम-नीय कन्याएं, (चन्द्र-रथाः) आह्लादजनक, उत्तम रमणीय व्यवहारों वाली वा उत्तम रथों पर विराजमान होकर (अरुण-युग्भिः) रक्त वर्ण के (अश्वैः) किरणों से (चित्रं) अद्भुत (वि भान्ति) विशेष रूप से चमकें (तत्) उस परम गृह-आश्रम को (ययुः) प्राप्त हों। वे (यज्ञस्य) परस्पर संगति, मुख्य पद या श्रेष्ठ प्रजोत्पत्ति रूप अंश को प्राप्त

कराती हुई, (ताः) वे सब मिलकर (ऊर्म्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार के समान दुःख को (वि बाधन्ते) विविध प्रकार से दूर करें।

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

भा०—हे (उषसः) प्रभात वेलाओं के सदृश रमणीय कान्ति से युक्त, उदयकालिक अनुराग वाली शुभ कन्याओ ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अन्न, वस्त्र, आभूषण आदि देने वाले पुरुष के लिये (श्रवः) यश, ज्ञान, (वाजम्) बल वीर्य, (इषम्) उत्तम अन्न, उत्तम इच्छा और (ऊर्जम्) बल पराक्रम (वहन्तीः) प्राप्त कराती हुई, अर्थात् इन पदार्थों को प्राप्त करने में सहायक होती हुई स्वयं (मघोनी) उत्तम धन सम्पन्न होकर (पत्यमानाः) पति की कामना करती हुई (वीरवत् अवः) उत्तम सन्तानयुक्त कामना, अलिंगनादि (पत्यमानाः) प्राप्त करती हुई (विधते) विशेष पोषक पति के लिये (अद्य) आज (रत्नम् निधात) उत्तम, रमणीय, धनवत् पुत्र को धारण किया करो ।

इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४॥

भा०—हे (उषासः) प्रभात के समान कान्ति युक्त स्त्रियो ! (वः) आप लोगों में से (विधते) विशेषरूप से धारण पोषण करने वाले के लिये (इदा हि) इसी अवसर में (रत्नम्) रम्य सुख (अस्ति) है । (वीराय दाशुषे) वीर, दानशील पुरुष को भी (इदा) इस समय (रत्नम् अस्ति) रमण योग्य सुख प्राप्त होता है । आप लोग (पुरा-चित्) पहले के समान ही (मावते) मेरे सदृश (जरते विप्राय) उप-देष्टा विद्वान् पुरुष के लिये (यद् उक्था) जो उत्तम वचन हों वे भी (इदा) इस अवसर में ही (नि वहथ स्म) प्रकट करो । अर्थात् गृहस्थ

का सुख, पुत्रादि लाभ, पालक पोषक वीर्यवान् दानशील पुरुष को भी इसी चढ़ते यौवन काल में ही प्राप्त होता है, इसलिये स्त्रियें अपने सदृश वरों को उत्तम वचनों से इसी काल में वर लिया करें और वरणकाल में विद्वान् आचार्यवत् ही अर्घ पाद्यादि का उपचार किया करें।

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (अद्रिसानो) पर्वत के शिखर के समान दृढ़ आधार-शिला पर आरूढ़ (उषः) कमनीय कन्ये! (इदा हि) इसी नव यौवन काल में ही (अंगिरसः) विद्वान् तेजस्वी लोग (ते) तेरे उपदेश के लिये, (गवाम् गोत्रा गृणन्ति) नाना वाणियों के समूह उपदेश करें। और (अर्केण) सूर्यवत् प्रकाशमान, अर्चनायोग्य (ब्रह्मणा च) वेद के द्वारा वे (सत्या) सत्य सत्य रहस्यों को (वि बिभिदुः) विशेष रूप से खोल २ कर कहें। इस प्रकार ही (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (देव-हूतिः अभवत्) उत्तम गुणों की प्राप्ति वा 'देव' अर्थात् कामना योग्य वर की प्राप्ति हो।

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्य से उत्पन्न उषावत् कमनीय! विदुषि स्त्रि! (प्रत्नवत्) पुराने आचार के समान ही तू भी (नः) हमारे प्रति (दिवः उच्छ) ज्ञान प्रकाश और सद् व्यवहारों को प्रकट कर। हे (मघोनि) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त विदुषि! (विधते) विशेष पालक पोषक स्वामी के लिये (भरद्-वाजवत्) ज्ञानवान् वा ऐश्वर्यवान् विद्वान् के समान ही आदर सत्कार कर। (गृणते) उत्तम उपदेश देने वाले विद्वान् पति के लिये तू (सुवीरं रयिम्) उत्तम पुत्र भृत्यादि से

युक्त धन को (रिरीहि) प्रदान कर। (नः) हम में (उरु-गायम् श्रवः) बहुत से अपत्यादि से युक्त उत्तम धन, यश और बहुतों से स्तुति योग्य ऐश्वर्य (अधि धेहि) धारण करे। इति षष्ठो वर्गः ॥

[६६]

११ भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१,९,११ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ५ विराट्त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत्पंक्तिः। ६, ७, १० भुरिक् पंक्तिः। ८ स्वराट्पंक्तिः। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं का (वपुः समानं, धेनु, पत्यमानम्) रूप, एक समान, सबको प्राण से तृप्त करने वाला और सदा गति युक्त होता है वह (चिकितुषे) विद्वान् पुरुष के लिये (नाम) कार्यसाधक होता है, उनका एक स्वरूप (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों में (दोहसे) जीवन प्रदान करने के लिये (पीपाय) उनको प्राण से तृप्त करता है और दूसरा रूप यह कि (ऊधः पृश्निः) रात्रि काल में अन्तरिक्ष, एक बार ही (शुक्रं दुदुहे) जल को प्रदान करता है। अर्थात् दूसरा गुण वायु का यह है कि वह अपने में जल को भी धारण करता है। वह स्थूल पदार्थों का वाष्प रूप है। इसी प्रकार समस्त (वपुः नु) शरीर (चिकितुषे) रोग दूर करने वाले वैद्य की दृष्टि में, (समानं चित् अस्ति) एक समान ही है। सब शरीर के घटक तत्व एक समान हैं, उनके रोगोत्पत्ति और स्वस्थता के कारण सर्वत्र एक समान हैं। उन सबका (नाम समानं) नाम भी एक समान हो। (पृश्निः) सूर्य के समान तेजस्वी, विज्ञान के प्रश्नों को सरल करने वाला विद्वान् पुरुष (धेनु) वत्स को तृप्त करने वाले (ऊधः) गाय के थन के समान (धेनु) सबके तृप्त

करने वाले वाङ्मय रूप (पत्यमानम् ऊधः) प्राप्त होते हुए उत्तम ज्ञान को धारण कराने वाले, (शुक्रं) शुद्ध कान्तियुक्त शास्त्र वेद को (सकृत् दुदुहे) एक ही वार ब्रह्मचर्य काल में दोहन करे, प्राप्त करे । वह उसको (अन्यत्) नाना रूप में (मर्त्तेषु) मनुष्यों के बीच (दोहसे) उसका ज्ञान प्रदान करने के लिये (पीपाय) उसी को बढ़ावे ।

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२॥

भा०—(मरुतः) वायु के समान बलवान् पुरुष (इधानाः अग्नयः न) प्रदीप्त होते हुए अग्नियों को समान (शोशुचन्) अपने को प्रज्ज्वलित, तथा शुद्ध आचारवान् बनावें । वे (द्विः त्रिः ववृधन्त) दुगना तिगुना वृद्धि को प्राप्त हों । (एषां) इन लोगों के सम्बन्धी जन भी (अरेणवः) अहिंसक, निर्दोष और (हिरण्ययासः) स्वर्ण आदि से ऐश्वर्यवान् और (नृम्णैः) धनों और (पौंस्यैः च साकं) बलों से सम्पन्न (भूवन्) हो जांय ।

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३गर्भमाधात् ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (रुद्रस्य) वायु के समान बलवान्, (मीढ्हुषः) वीर्य सेचन में समर्थ पूर्ण युवा पुरुष के (पुत्राः) पुत्र होते हैं (यान् च) और जिनको (नु) शीघ्र ही (भरध्यै) भरण पोषण के लिये (विदे) प्राप्त करती है वे ही (महः) गुणों से महान् होते हैं । और (सा माता) वह माता (मही) बड़ी पूज्य होती है । (सा इत्) वह माता ही (पृश्निः) अन्तरिक्ष, पृथ्वी के समान दूध पिलाकर पालने पोषने में समर्थ माता (सुभ्वे) उत्तम वीर्यवान् पुरुष की वंश वृद्धि के लिये (गर्भम् आधात्) गर्भ धारण करती और इसी प्रकार (पृश्नि) वृष्टिकारक

सूर्यवत् वीर्यसेचन में समर्थ पुरुष भी (शुभे) उत्तम भूमि के समान उत्तम सन्तानोत्पादक स्त्री के शरीर में (गर्भम् आ अधात्) गर्भ धारण करावे।

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः।
निर्यद्दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः॥ ४॥

भा०—(ये) जो विद्वान् सज्जन (जनुषः) जन्म लेने वाले, जन्तुओं की (न ईषन्ते) हिंसा नहीं करते, ऐसे (सन्तः) सत जन (अन्तः) अपने अन्तःकरण के भीतर बैठे (अवद्यानि) निन्द्य विचारों को (पुनानाः) दूर करके पवित्र होते हुए, और अन्यों को भी पवित्र करते हुए (शुचयः) शुद्ध पवित्र होकर (जोषम्) प्रेम-रस का (अनु निर्दुह्रे) सबके अनुकूल रूप से भरपूर प्रदान करते हैं जिस प्रकार (श्रिया) विद्युत्-कान्ति से युक्त होकर वायु गण (तन्वं) विस्तृत भूमि सेचन करते हैं उसी प्रकार वे (अनु) बाद में (श्रिया) शोभा से अपने (तन्वम्) शरीर, यशः-शरीर को (उक्षमाणाः) सेचन करते, बढ़ाते हैं। (तन्वम् उक्षमाणाः) देह कान्ति के लिये देह को जैसे सेचते, स्नान करते हैं, ऐसे ही वे (श्रिया) शोभा, सौभाग्य वा ऐश्वर्यों से (तन्वम्) अपने सन्तति का भी सेचन, उत्पादन और वृद्धि करते हैं।

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान्॥५॥७॥

भा०—(येषु) जिन मनुष्यों में राजा (मक्षु) शीघ्र ही (दोहसे न) ऐश्वर्य प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता और जो (अयाः) मनुष्य (धृष्णु) शत्रु को पराजित करने वाले (मारुतं) वायुवत् अनन्त बल वा मनुष्यों का सामूहिक बल को (दधानाः) धारण करते हैं। और (ये) जो (अयासः) प्रजाजन (स्तौनाः न) चोर भी नहीं हैं उन (उग्रान्) बलवान् पुरुषों को (चित्) भी (सुदानुः) उत्तम दानशील पुरुष

(मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (नु) शीघ्र ही (अव यासत्) अपने अधीन रखकर एकत्र, संहत करे । इति सप्तमो वर्गः ॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) बलवान् वायुगण (शवसा) बल, या जल से (उभे रोदसी सुमेके = सुमेघे युजन्त) उत्तम मेघयुक्त आकाश और पृथिवी दोनों को मिलाये रखते हैं उसी प्रकार (ते) वे (उग्राः) बलवान् पुरुष (इत्) ही (शवसा) अपने शरीर-बल और ज्ञान-बल से (धृष्णु-सेनाः) शत्रु को पराजय कर देने वाली सेनाओं को बनाकर (रोदसी उभे) सूर्य और पृथिवी दोनों के तुल्य राजवर्ग और प्रजावर्ग (सुमेके) उत्तम रूपवान् एक दूसरे को बढ़ाने वाले दोनों को (युजन्त) संयुक्त बनायें रक्खें, दोनों को परस्पर प्रेम भाव से मिलाये रक्खें । (अध स्म) और (अमवत्सु तेषु) बलवान्, गृहवान् और सहायवान् उन पुरुषों में ही (रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों की (स्वशोचिः) अपनी कान्ति, अर्थात् शुद्ध पवित्र ज्योति (रोकः न तस्थौ न) उनके उत्तम रुचि के समान ही विराजती है ।

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ७ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो ! जिस प्रकार वायु-बल से जाने वाला यान (अनश्वः चित्) विना अश्व के होता है और (यम्) जिसको (अरथीः) विना रथि वा सारथी के एक ही आदमी (अजति) चला सकता है, (अतवसः अनभीषुः) जिसमें न कोई गति देने वाला, और न कोई लगाम हो, तो भी (रजस्तूः) जल और पृथ्वी दोनों लोकों में चले, वह भूमि और पृथ्वीपर बेरोक चले । उसी प्रकार हे (मरुतः)

विद्वान् लोगो ! (वः यामः) तुम्हारा जीवन का सत्-मार्ग (अनेनाः) निष्पाप (अस्तु) हो। और वह (अनश्वः अरथीः) अश्व और रथ आदि नाना साधनों से रहित भी (यम् अजति) जिसको चला सके वा जिस तक पहुंच सके। वह (अनवसः) सच्चरित्रता का मार्ग जिसपर अन्नादि भोग्य पदार्थों से रहित, (अनभीशुः) अंगुलि, बाहु आदि विशेष बल शक्ति से रहित (रजस्तूः) रजो गुण को दूर करने वाला पुरुष भी (पथ्या साधन्) पथ्य, हिताचरण करता हुआ (वि याति) विशेष रूप से चलता है। निष्पाप धर्म के मार्ग पर अमीर गरीब सब कोई समान रूप से चल सकता है।

नास्य वर्त्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्त्ता पार्ये अध द्योः ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् वीर और प्रजा के जीवन देने वाले पुरुषो ! आप लोग (वाज-सातौ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और संग्राम के कार्य में (यम् अवथ) जिसकी रक्षा करते हो, (अस्य वर्त्ता न) उसको निवारण करने वाला कोई नहीं होता और (अस्य तरुता न नु अस्ति) उसको मारने वाला भी कोई नहीं होता। हे वीर पुरुषो ! (यम्) जिसको आप लोग (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र, (वा गोषु) और भूमि, गवादि पशुओं के निमित्त (अवथ) रक्षा करते हो, (सः) वह (व्रजं) गो-समूह को (दर्त्ता = धर्त्ता) धरने में समर्थ होता तथा वह (द्योः पार्ये) भूमि के पालन पूरण करने में वा विजिगीषु पुरुष के साथ संग्राम में भी (व्रजं दर्त्ता) सैन्य दल तथा शत्रु के मार्ग, नगर आदि का नाश करने में समर्थ होता है।

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम्।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (गृणते) उपदेश देने वाले और (तुराय) शत्रु का नाश करने और (स्वतवसे) अपने धन को बल के तुल्य धारण करने वाले विद्वान्, क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के (मारुताय) मनुष्य वर्ग के लिये (चित्रम् अर्कम्) उचित, अद्भुत, नाना प्रकार का, सञ्चययोग्य ज्ञान, अर्चना करने योग्य आदर सत्कार, शस्त्रादि बल, तथा नाना अन्न (प्र भरध्वम्) अच्छी प्रकार धारण करो । हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! जिन के (मखेभ्यः) संग्रामों और यज्ञों के भयसे (पृथिवी) समस्त संसार (रेजते) कांपता है और (ये) जो (सहसा) बल और उत्साह से (सहांसि) नाना शत्रु सैन्यों को भी (सहन्ते) पराजित करते हैं । उनके लिये भी (चित्रम् अर्कं प्र भरध्वम्) नाना संचय योग्य अन्न प्रदान करो । अर्थात् शत्रु विजय करने में सहायक सेनाओं का भोजन भी राज्य दे ।

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वोऽनाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥ १० ॥

भा०—(अध्वरस्य इव दिद्युत्) जिस प्रकार यज्ञ का प्रकाश हो और (अग्नेः जुह्वः न) जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं प्रकाश युक्त हों उसी प्रकार (मरुतः) वायु के समान बलवान् मनुष्य भी (त्विषीमन्तः) कान्ति से युक्त (तृषु-च्यवसः) तीक्ष्ण-वेगयुक्त गति वा (अर्चत्रयः) परस्पर का मान सत्कार करने वाले, वा माता पिता गुरु वा और परमेश्वर के उपकारक (धुनयः न) शत्रुजनों और वृक्षों को वायुओं के समान कंपाने वाले, (वीरः) वीर, शूर, (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी शरीर वाले, (अधृष्टाः) विनीत और अपराजित होकर रहें ।

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११॥८॥

भा०—मैं प्रजाजन (वृधन्तं) राष्ट्र को बढ़ाने वाले, (रुद्रस्य

सूनुम्) दुष्टों को रुलाने वाले, सेनापति और उपदेष्टा आचार्य के पुत्रवत् प्रिय तथा उसके अभिषेक्ता, (तं) उस (मारुतं) बलवान् मनुष्य गण को मैं (हवसा) अन्नादि से (आविवासे) सत्कार करूं। वे (दिवः) तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, पवित्र, ईमानदार, (मनीषाः) मनस्वी, (गिरयः न) मेघों के समान और (आपः न) जल धाराओं के समान (शर्धाय) जल वर्षण और बल के लिये (अस्पृध्रन्) एक दूसरे से बढ़ने के लिये उद्योग करें। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६७]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ स्वराट् पंक्तिः। २, १० भुरिक् पंक्तिः। ३, ७, ८, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्। ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

विश्वे॑षां वः स॒तां ज्येष्ठ॑तमा गी॒र्भिर्मि॒त्रावरु॑णा वावृ॒धध्यै॑।
सं या र॒श्मेव॑ य॒मतु॒र्यमि॑ष्ठा॒ द्वा जनाँ॒ असमा बा॒हुभिः॒ स्वैः ॥१॥

भा०—हे मनुष्यो! (विश्वेषां वः सताम्) आप समस्त सज्जन पुरुषों के बीच (ज्येष्ठ-तमा) सबसे अधिक श्रेष्ठ (मित्रा-वरुणौ) मित्रवत् स्नेही और दुःखों के वारण करने वाले वे दोनों हैं जो (द्वा) दोनों मिलकर (असमौ) अन्यों के समान न रहकर, वा परस्पर भी आयु, और रूप, बल में समान न रहकर भी (वावृधध्यै) राष्ट्र और कुल की वृद्धि करने के लिये (यमिष्ठौ) संयमशील होकर (गीर्भिः) अपने उपदेश वाणियों से (जनान् सं यमतुः) लोगों को नियम में रखते हैं। और जो (बाहुभिः) बाहुबलों से जनों को अपने वश करते हैं और जो दोनों (स्वैः) अपने धनों के बल से मनुष्यों को काबू करते हैं अर्थात् उत्तम ब्राह्मण, उत्तम क्षत्रिय, और उत्तम वैश्य तीनों ही वर्ण के स्त्री पुरुष सर्व श्रेष्ठ जानने योग्य हैं।

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥ २ ॥

भा०— हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, हे परस्पर स्नेह करने वाले और एक दूसरे का वरण करने वाले वर वधू ! (इयं मनीषा) यह मेरे मन की उत्तम कामना (प्रिया वां) आप दोनों प्रिय जनों को (यत्) मेरी ओर से (नमसा) विनयपूर्वक अन्नादि सत्कार के साथ (प्र स्तृणीते) प्राप्त होती है । इसी प्रकार (अच्छ बर्हिः प्र स्तृणीते) उत्तम आसन भी आप लोगों के लिये बिछाया जाता है। आप दोनों (सु-दानू) उत्तम दानशील होकर (नः) हमें (वरूथ्यं) शीत, आतप, वर्षा आदि को वारण करने वाला (छर्दिः अधृष्टं) दृढ़ गृह (यन्तं) दो ।

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेह और परस्पर वरण करने वाले श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (चित्) जिस प्रकार (अप्नः स्थः) कर्माध्यक्ष पुरुष (अवसा) कर्म द्वारा (श्रुधीयतः जनान्) अन्न, वृत्ति के चाहने वाले मनुष्यों को (यतते) काम कराता है उसी प्रकार (यौ) जो आप दोनों (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (श्रुधीयतः) अन्न के इच्छुक (जनान्) जन्तुओं को (सं यतथः) एक साथ कार्य कराओ । (नमसा) आदर सत्कारपूर्वक (हूयमाना) आमन्त्रित होकर (प्रिया) एक दूसरे के प्रिय होकर (सुशस्ति) उत्तम कीर्त्ति तथा उपदेशादि को (उप आ यातम्) प्राप्त होवो ।

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद्गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥ ४ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (अश्वान्) रथ में लगे दो अश्वों के

समान, (वाजिना) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य में समान हैं जो आप दोनों (पूत-बन्धू) पवित्र सम्बन्धों से बंधे और शुद्ध चित्त युक्त, सम्बन्धियों वाले, (ऋता) सत्य, ज्ञान आचरण करने वाले हो (यत्) जिन आप दोनों को (अदितिः) माता के समान भूमि, वा भूमि के समान माता (भरध्यै) पालन पोषणार्थ (गर्भ) गर्भ रूप में धारण करती है। और (या) जो आप दोनों (मर्त्ताय, रिपवे) सामान्य मनुष्य तथा रिपु, अर्थात् पापयुक्त शत्रु के दमन के लिये (घोरा) भयंकर हो, वे आप दोनों (महान्ता) गुणों में महान् (जायमाना) उत्पन्न, एवं प्रसिद्ध होकर (महि प्र नि दीधः) बहुत बल और ज्ञान एवं बड़े उपास्य ब्रह्म का प्रणिधान, पुनः २ अभ्यास, मनन और प्राप्ति करो।

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५॥

भा०—(यत्) जो आप दोनों (रोदसी चित्) भूमि आकाश, वा सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाश, जल, अन्न, आश्रय आदि देने वाले माता पिता के समान (ऊर्वी) विशाल (परि भूथः) शक्तिमान् होकर रहते हो, उन (वाम्) आप दोनों के (मंहना) बड़े भारी सामर्थ्य से (मन्दमानाः) अति प्रसन्न होकर (विश्वे देवासः) सब मनुष्य, (सजोषाः) समान रूप से प्रीति से युक्त होकर (वां क्षत्रं अदधुः) प्राण अपान के बल को इन्द्रिय गण के तुल्य, आप दोनों के बल को धारण करते हैं और आपके (स्पशः) यथार्थ बात को देखने वाले, दूत, विद्वान् आदि जन भी (अदब्धासः) कभी नाश या पीड़ित न होने वाले (अमूराः) प्रलोभनादि से मोह में न पड़ने वाले (सन्ति) हों। इति नवमो वर्गः ॥

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥ ६ ॥

भा०—(ता हि) वे आप दोनों (अनु द्यून् हि) सब दिनों (क्षत्रं धारयेथे) बल को धारण करें। और आप दोनों (द्योः उपमात् इव) सूर्य के तेज और ताप के समान सामर्थ्य से स्वयं दृढ़ होकर (सानुम्) भोग योग्य ऐश्वर्य व उन्नत शिखर भाग को (दृंहेथे) वृद्धि करो। (विश्वदेवः नक्षत्रः सन् यथा दृढ आयोः धासिना द्याम् आतान्) सब किरणों का स्वामी सूर्य जिस प्रकार आकाश में एकत्र होकर दृढ़ है और वह जीवन वा जन समूह के धारक पोषक सामर्थ्य से प्रकाश को सर्वत्र फैला देता है उसी प्रकार (दृढ) सुदृढ़, बलवान् (नक्षत्रः) व्यापक सामर्थ्यवान् , वा कभी (नक्षत्रः) क्षीण न होने वाला (विश्व-देवः) सब मनुष्यों का स्वामी, (आयोः धासिना) सब मनुष्यों के, वा जीवन के धारण करने वाले सामर्थ्य, बल, अन्नादि से (भूमिम् आ अतान्) भूमि को सब प्रकार से वश करे और पालन करे।

ता वि॒ग्रं धै॑थे ज॒ठरं॑ पृ॒णध्या॒ आ यत्सद्म॒ सभृ॑तयः पृ॒णन्ति॑ ।
न मृ॑ष्यन्ते युव॒तयोऽवा॑ता॒ वि यत्पयो॑ विश्वजिन्वा॒ भर॑न्ते ॥७॥

भा०—हे मित्रवत् स्नेही और एक दूसरे से प्रेमपूर्वक वरण करने वाले स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों जिस प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट को तृप्त करने के लिये (विग्रं) विशेष रूप से गले से नीचे उतारने योग्य खूब चबाया खाद्य अन्न प्राप्त करते हो, उसी प्रकार (जठरं पृणध्यै) पेट भर खिलाने के लिये (विग्रम्) विद्वान् पुरुष को (धैथे) आदर पूर्वक भरण पोषण करो, विद्वान् को अन्नादि दो। (यत्) क्योंकि (स-भृतयः) एक समान भरण पोषण या वेतन प्राप्त करने वाले भृत्यादि लोग (सद्म) एक ही आश्रय गृह को (आपृणन्ति) सब प्रकार से पूर्ण कर उसे भरते हैं और एक गृह की सेवा करते हैं, परन्तु (अवाताः युवतयः) अविवाहित, पति को न प्राप्त हुई युवति स्त्रियें (न मृष्यन्ते) एक दूसरे को सहन नहीं करतीं, इसलिये हे (विश्व-जिन्वा) समस्त विश्व को अन्नादि से तृप्त करने

वालो ! (यत्) जो (पयः सद्म विभरन्ते) नदियों के समान अन्न जलादि पुष्टिकारक पदार्थों से गृह को भरपूर करें उनको ही तुम दोनों (धैथे) पालन पोषण करो ।

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥ ८ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो पुरुष (इदं सदम्) आप दोनों के इस विद्वानों के बैठने योग्य गृह को प्राप्त होकर (जिह्वया) वाणी से तुम्हें प्राप्त हो, वह (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् हो । वह आप दोनों को (आ) प्राप्त हो, वह (ऋते) सत्य ज्ञान और धर्मानुकूल व्यवहार वा धन के सम्बन्ध में (सत्यः) सच्चा (वाम् अरतिः) आप दोनों का स्वामी (भूत्) हो, (वां तत् महित्वम्) आप लोगों का यह बड़ा भारी गुण हो । हे (घृतान्नौ) घृत युक्त अन्न का भोजन करने वाले सत्पुरुषो ! (ता युवं) वे आप दोनों (दाशुषे अंहः) दान देने वाले के पाप को (वि चयिष्टम्) दूर करो । विद्वान् स्त्री पुरुष अपने को शिष्य रूप से अर्पण करने वाले के दोषों को चुन २ कर दूर करें । अथवा शिष्यादि जन (दाशुषे) ज्ञान दाता के पाप को (वि चयिष्टं) स्वयं संग्रह न करें । वे घृतयुक्त अन्न का भोजन करें, रूखा न खाया करें । अस्माकं यानन्यवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ॥ तै० उप० ॥

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥ ९ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) स्नेहवान् एवं वरण करने योग्य माता पिता के समान पूज्य पुरुषो ! (यत्) जो लोग (प्रिया) प्रिय (धामा) आप दोनों के धारण करने योग्य कर्मों और पदों को प्राप्त करने के लिये (स्पूर्धन्) स्पर्धा करते हैं और (युव-धिता) आप लोगों के किये

कर्मों का (न प्र मिनन्ति) विनाश नहीं करते । और (ये देवासः) जो विद्वान् (मर्त्ताः) मरणधर्मा, मनुष्य (ओहसा) अपने कर्म सामर्थ्य से (अयज्ञ-साचः) यज्ञ, परस्पर सत्संग को प्राप्त न होकर भी (नः स्पूर्धन्) आप दोनों के कर्मों में विघ्न नहीं करते वे भी (अप्यः न पुत्राः) आप दोनों के कर्म निष्ठ एवं प्राप्त दाराओं में उत्पन्न पुत्रों के समान ही प्रिय होते हैं ।

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (कीस्तासः) विद्वान् लोग (वाचं) वेद वाणी को (वि भरन्ते) विविध प्रकार से धारण करते हैं (यत् केचित्) जो कोई विद्वान् लोग (निविदः शंसन्ति) विशेष विद्यायुक्त वाणियों का अन्यों को उपदेश करते हैं वे (मनानाः) मननशील हम लोग (सत्यानि उक्था) सत्य २ वचनों का (आत्) बाद में (वां ब्रवाम) हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों को उपदेश करें । (देवेभिः) विद्वान् उत्तम पुरुषों के साथ आप दोनों (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से अवश्य यत्न करते रहो ।

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद्गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ११।१०॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणौ) स्नेह युक्त और श्रेष्ठ विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यत् अनु) जिन आप दोनों के पीछे २ (गावः) वाणियें और उत्तम पशुजन किरणोंवत् (अनु स्फुरान्) चलते हैं और (यत्) जो आप दोनों (ऋजिप्यं) सत्य धर्म के पालक, (धृष्णु) शत्रु को पराजय करने में समर्थ (वृषणं) बलवान्, पुरुष को (रणे) संग्राम में (युनजन्) नियुक्त करते हैं । उन (अवोः वां) रक्षा करने वाले आप दोनों के (इत्था) इस प्रकार (छर्दिषः अभिष्टौ) गृह को प्राप्त करने में (अस्कृधोयुः) महत्वा-

कांक्षी पुरुष (युवोः) आप दोनों के अधीन रहे और विद्या का अभ्यास किया करे। इति दशमो वर्गः॥

[६८]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः॥ इन्द्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, ४, ११ त्रिष्टुप्। ६ निचृत्त्रिष्टुप्। २ भुरिक् पंक्तिः। ३, ७, ८ स्वराट्पंक्तिः। ५ पंक्तिः। ९, १० निचृज्जगती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद्वृक्तबर्हिषो यजध्यै।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत्॥१॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणौ) ऐश्वर्ययुक्त, सौभाग्यवान्! हे 'वरुण' एक दूसरे का वरण करने और एक दूसरे के दुःखों का वारण करने वाले युगल पुरुषो! (यः यज्ञः) जो आप दोनों का परस्पर का दान प्रतिदान, सत्संग (अद्य) आज (महे इषे) बड़े उत्तम, इच्छापूर्त्ति और (महे) बड़े उत्तम (सुम्नाय) सुख प्राप्ति के लिये (आ ववर्त्तत्) हो वह (वां यज्ञः) आप दोनों का यज्ञ (श्रुष्टी) शीघ्र ही (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त, (उद्यतः) उत्तम रीति से सुनियंत्रित, और (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों से युक्त, और (वृक्तबर्हिषः) तृणों के समान संशयों वा बन्धनों को काटने वाले विद्वान् पुरुष के (यजध्यै) दान, सत्संग करने के लिये (आववर्त्तत्) नित्य ही हो।

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना॥२॥

भा०—(ता) वे इन्द्र और वरुण, ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक और श्रेष्ठ, शत्रुवारक दोनों प्रकार के प्रमुख पुरुष (हि) निश्चय से, (देवताता) उत्तम विद्वान्, व्यवहारवान् मनुष्यों के बीच में (श्रेष्ठा) सबसे उत्तम, (शूराणां तुजा) शूर वीर पुरुषों के पालक और शत्रु के वीरों के नाशक

हों। (ता) वे दोनों (हि) निश्चयपूर्वक (शविष्ठा भूतम्) सब से अधिक बलशाली होवें। वे दोनों (मघोनां मंहिष्ठा) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के बीच अति दानशील, पूजनीय, और (तुवि-शुष्मा) बहुत से बलों से सम्पन्न, और (ऋतेन) सत्य ज्ञान, न्यायव्यवहार और धन-बल से (वृत्र-तुरा) मेघवत् बढ़ते शत्रु और विघ्नों का नाश करने वाले और (सर्व-सेना) सब सेनाओं के स्वामी (भूतम्) हों। आधिदैविक में इन्द्र और वरुण, सूर्य मेघ, वा विद्युत् और जल।

ता गृ॑णीहि न॒मस्ये॑भिः शू॒षैः सु॒म्नेभि॒रिन्द्रा॒वरु॑णा चका॒ना।
वज्रे॑णा॒न्यः शव॑सा॒ हन्ति॑ वृ॒त्रं सिष॑क्त्य॒न्यो वृ॒जने॑षु॒ विप्रः॑ ॥३॥

भा०—हे विद्वन् ! तू ((इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान्, शत्रु-हन्ता और प्रमुख रूप से वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ, सैन्य और सेनापति, (सुम्नेभिः) सुखकारी (शूषैः) बलों से (चकानौ) अति तेजस्वी और प्रजा की शुभ कामना करने वाले (ता) उन दोनों की (नमस्येभिः) आदर करने योग्य वचनों से (गृणीहि) स्तुति कर उन दोनों मे से (अन्यः) एक तो (वज्रेण) अपने बाहुबल से और (शवसा) सैन्यबल से (वृत्रं हन्ति) बढ़ते शत्रु को दण्डित करे और (अन्यः) दूसरा (वृजनेषु) सैन्यबलों के बीच में (सिषक्ति) समवाय उत्पन्न करे।

ग्नाश्च॒ यन्नर॑श्च वावृ॒धन्त॒ विश्वे॑ दे॒वासो॑ न॒रां स्वगू॑र्ताः।
प्रैभ्य॑ इन्द्रावरुणा महि॒त्वा द्यौश्च॑ पृथिवि भूतमु॒र्वी ॥ ४ ॥

भा०—(ग्नाः) स्त्रियें और (नरः च) पुरुष (नरां) मनुष्यों के बीच में भी (विश्वे देवासः) विद्वान्, व्यवहारकुशल स्त्री पुरुष सभी (स्वगूर्त्ताः) स्वयं उद्यमी होकर ही (वावृधन्त) बढ़ा करते हैं। हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुषो ! आप दोनों भी (महि-

त्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (एभ्यः) इन उद्यमी प्रजाजनों के लिये (द्यौः पृथिवि च) सूर्य और भूमि के समान प्रकाश और अन्न खूब देने वाले (प्र भूतम्) होओ।

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वाँ वरुण दाशति त्मन् ।
इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५॥११॥

भा०—इन्द्र वरुण की व्याख्या । हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त ! हे वरण करने योग्य दोनों जनो ! (वां) आप दोनों में से (यः) जो (त्मन् दाशति) अपने बलपर दान करता है, (सः इत् सुदानुः) वही उत्तम दाता है। वही (स्व-वान्) आत्मवान्, व सच्चा धनवान्, वही (ऋतावा) बलवान् तेजस्वी धनाढ्य है। (सः) वह (दास्वान्) दानशील पुरुष ही (इषा द्विषः तरेत्) अपनी इच्छामात्र या प्रेरणा, आज्ञा और सैन्य बल और अन्नसम्पदा से अपने शत्रुओं को पार करता है, जो (रयिं सत्) नाना ऐश्वर्य को विभक्त करता और (जनान् च रयिवतः करोति) सब लोगों को धन सम्पन्न करता है।

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः॥६॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानादिगुणों में श्रेष्ठ पुरुषो ! (यूयं) आप दोनों (दाशु-अध्वराय) दानरूप से दूसरे को कष्ट न देने वाले यज्ञ को सम्पादन करने के लिये (यम्) जिस प्रकार के (वसुमन्तं) धन सम्पन्न और (पुरु-क्षुम्) बहुत प्रकार के धान्यों से सम्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य वा ऐश्वर्यवान् पुरुष को (धत्थः) धारण करते और औरों को प्रदान करते हैं (यः) जो ऐश्वर्य (वनुषाम् अशस्तीः) याचक लोगों की दुःखदायी दशाओं को (प्र भनक्ति) दूर करता और जो पुरुष (वनुषां अशस्तीः प्र भनक्ति) हिंसक दुष्ट पुरुषों के अप्र-

शस्त, निन्दित कर्मों को तोड़ता है (सः) वह (अस्मे) हमारे हितार्थ (अपि स्यात्) होवे।

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात्।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्ता और प्रमुख रूप से वरण करने योग्य ! सैन्य-सेनापति जनो ! (येषां) जिनका (शुष्मः) बल (पृतनासु) संग्रामों और मनुष्यों वा सेनाओं के बीच में (साह्वान्) सर्वविजयी, हो। जो (सद्यः) बहुत शीघ्र ही (ततुरिः) शत्रुनाशक होकर (द्युम्ना) धन और बल से (तिरते) शत्रुओं को नाश करता है, और जिनका (रयिः) धन वा बल (नः) हमारे (सूरिभ्यः) विद्वानों का (सुत्रात्रः) उत्तम रीति से रक्षा करने वाला और (देवगोपाः) सब मनुष्यों का रक्षक (स्यात्) हो वही हमारा (सुत्रात्रः) उत्तम रक्षक होने योग्य है।

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक सेनापति एवं सैन्यवर्ग ! आप दोनों (देवा) विजयशील होकर (गृणाना) मा बाप के तुल्य उत्तम २ आज्ञाएं और उपदेश करते हुए, (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति लाभ करने के लिये (रयिं पृङ्क्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करो। (इत्था) इस प्रकार सत्य २ (महिनस्य शर्धः) महान् पुरुष, प्रभु के बल की हम लोग (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नावा अपः न) नाव से जलों के समान (नावा) उत्तम स्तुति और तेरी प्रेरणा से हम लोग (दुरिता) सब पापों और कष्टों से (तरेम) पार होजायं।

प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा वि भात्यजरो न शोचिषा ९

भा०—(यः) जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से, (उर्वी) विशाल भूमि और आकाश दोनों को (शोचिषा न) दीप्ति से सूर्य के समान राजा और प्रजा वर्ग को (विभाति) प्रकाशित करता है वह (महिव्रतः) बड़े २ कर्म करने वाला, (सप्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (अजराः) सदा युवा, जरारहित, अविनाशी (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि और कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न है उस (बृहते सम्राजे) बड़े सम्राट्, (देवाय) दानशील (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ परम पुरुष की (प्रियम् मन्म) प्रिय, उत्तम मननयोग्य ज्ञान और स्तुति का (प्र अर्च) सेवन कर।

इन्द्रा॑वरुणा सुतपावि॒मं सु॒तं सोमं॑ पिबतं॒ मद्यं॑ धृतव्रता।
यु॒वो रथो॑ अध्व॒रं दे॒ववी॑तये॒ प्रति॒ स्वस॑र॒मुप॑ याति पी॒तये॑ ॥१०॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणौ) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ मान्य स्त्री पुरुष ! आप लोग (धृत व्रता) व्रतों को धारण करने वाले (सुत-पा) प्रजा जनों को, राष्ट्र को पुत्रवत् पालन करने वाले, आप दोनों (इमं सुतं) इस पुत्रवत् उत्पन्न प्रजा जनको (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र वा, प्रिय सौम्य स्वभाव के (मद्यम्) आनन्द वा हर्ष के जनक, अन्नवत् तृप्ति-दायक सुखजनक को (पिबतम्) पालन करो। (युवोः) आप दोनों का (रथः) रथ और रमणीय व्यवहार (देव-वीतौ) विद्याभिलाषी जन तथा उत्तम विद्वानों की रक्षा और कान्ति के लिये, (स्व-सरम् अध्वरम् प्रति) दिन के समान सुप्रकाशित, स्वयं उत्तम वेग से जाने वाले, हिंसा रहित, राज्यपालन, अध्ययनाध्यापन कार्य के प्रति (प्रीतये) प्रजाजन के पालन के लिये (उप याति) प्राप्त हो।

इन्द्रा॑वरुणा॒ मधु॑मत्तमस्य॒ वृष्णः॒ सोम॑स्य वृष॒णा वृषे॑थाम्।
इ॒दं वा॒मन्धः॒ परि॑षिक्तम॒स्मे आ॒सद्या॒स्मिन्ब॒र्हिषि॑ मादये-थाम् ॥ ११ ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्ययुक्त और हे श्रेष्ठ और दुःखों के

वारण करने और उत्तम पद पर वरण करने योग्य स्त्री पुरुषो! आप दोनों (मधुमत्-तमस्य) अति मधुर (वृष्णः) बलकारक (सोमस्य) अन्न, जल और ऐश्वर्य के उपभोग से (वृषेथाम्) खूब बलवान् बनो। हे (वृषणा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! (इदं) यह (वाम्) आप दोनों का (अन्धः) उत्तम अन्न (अस्मे) हमारे लिये भी (परि-सिक्तम्) सब प्रकार से सिंच कर पात्रादि में रक्खा हो और आप दोनों (अस्मिन् बर्हिषि) इस वृद्धिशील राष्ट्रगृह और उत्तम आसन पर (आसद्य) विराज-कर (मादयेथाम्) अति हर्ष लाभ करो, सुखी होओ। इति द्वादशो वर्गः ॥

[६६]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्राविष्णू देवते ॥ छन्दः— १, ३, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ८ त्रिष्टुप् । ५ ब्राह्म्युष्णिक् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र ऐश्वर्ययुक्त ! हे 'विष्णु' अर्थात् व्यापक रूप से विद्यमान, वा प्रवेश करने योग्य, वा विविध सुखों को देने वाले वा विविध मार्गों से जाने वाले ! आप दोनों सूर्य, विद्युत्वत् राजा और प्रजाजनो ! वा स्त्री पुरुषो ! मैं विद्वान् पुरुष (अस्य अपसः पारे) इस कर्म के पार (वां) आप दोनों को (कर्मणा) उत्तम कर्म सामर्थ्य से (सं हिनोमि) अच्छी प्रकार पहुंचाता हूं और (इषा सं) अन्नादि सम्पत्ति, उत्तम अभिलाषा, प्रेरक आज्ञा, तथा सेनादि से भी (वां सं हिनोमि) आप दोनों को बढ़ाता हूं। आप दोनों (नः) हम सब लोगों को (अरिष्टैः) हिंसादि उपद्रवों से रहित (पथिभिः) मार्गों और गमन शील साधनों से (अस्य अपसः पारे पारयन्ता) इस महान् कर्म के पार पहुंचाते हुए (यज्ञं) हमारे इस सत्संग, को (जुषेथाम्) प्रेम

से स्वीकार करो और (नः द्रविणं च धत्तम्) हमारे धनादि को भी धारण करो, एवं हमें धनादि प्रदान करो।

या विश्वासां जनितारां मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः २

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् और व्यापक सामर्थ्य से युक्त, राजा और प्रजावत् सूर्य विद्युत्वत् वर्त्तमान स्त्री पुरुषो! आप दोनों (सोमधाना) अन्न, ऐश्वर्य को धारण करने वाले (कलशा) दो कलसों के समान अक्षयनिधि वा बलवीर्य को धारण करने वाले होकर भी (विश्वासां) समस्त (मतीनां) उत्तम मनन योग्य बुद्धियों, ज्ञान की वाणियों को (जनितारा) प्रकट करने वाले होओ। (अर्कैः) अर्चना, स्तुति वा आदर सत्कार करने योग्य वेदमन्त्रों और सूर्यवत् तेजस्वी, विद्वान् पुरुषों से (गीयमानासः) गाये गये (स्तोमासः) स्तुति वचन, और वेद के सूक्त, तथा (शस्यमानाः) उपदेश की गईं (गिरः) वाणियां (वां प्र अवन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हों।

इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः॥३॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः और व्यापक सामर्थ्यवन्! सभा, सभापते, सेना, सेनापते! वा राजन्! प्रभो! आप दोनों (द्रविणः दधाना।) नाना धनों को धारण करते हुए (सोमं आ यातम्) ऐश्वर्य वा सोम्य स्वभाव प्रजाजन को पुत्र वा शिष्यवत् प्राप्त होओ, आप दोनों (मदानां मदपती) सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कर उनको पालन करने वाले होओ। (मतीनां) मननशील विद्वान् पुरुषों के (शस्यमानासः) उपदेश किये गये (स्तोमासः) स्तुतियोग्य उपदेश, (उक्थैः) उत्तम वचनों, वा प्रशंसनीय (अक्तुभिः) चमका देने वाले

गुणों से सब दिनों (वां सं सं अञ्जन्तु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्रकाशित, सुभूषित करें ।

आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! राजन्, हे विष्णो ! प्रजा में व्यापक सर्वशक्ति के स्वामिन् ! (ताम्) आप दोनों को (अभिमाति-सहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ, (अश्वासः) घुड़सवार वीर पुरुष (सध-मादः) एक साथ प्रसन्न होकर (वहन्तु) धारण करें । आप दोनों (मतीनां) मननशील विद्वानों के (विश्वा) समस्त (हवना) ग्रहण करने योग्य वचनों और पदार्थों का (जुषेथाम्) प्रेम से सेवन करो और (मे) मेरे तथा उन विद्वानों के (ब्रह्माणि) वेदोक्त मन्त्रों और (गिरः) वाणियों को (उप शृणुतम्) शिष्यवत् ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।

इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवन् ! हे व्यापक सामर्थ्यवन् राजन्, विद्वन् ! (वां) आप दोनों का (तत्) वह (पनयाय्यं) अति प्रशंसनीय कार्य है कि आप दोनों (सोमस्य मदे) अन्न के समान ही ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र के द्वारा तृप्ति और हर्षलाभ करने पर, (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष को सूर्य वायु के समान स्वभूमियों के बीच के प्रदेश में भी (उरु चक्रमाथे) बहुत वेग से जाते हो, और पराक्रम करते हो, उसको (वरीयः अकृणुतम्) विस्तृत, और अति उत्तम बनाओ और (नः) हम प्रजाओं को (जीवसे) दीर्घ और सुख युक्त जीवन के लिये (रजांसि अकृणुतम् अप्रथतम्) नाना ऐश्वर्यों की उत्पत्ति और वृद्धि करो ।

इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्ययुक्त और व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुषो! आप दोनों (हविषा) 'हवि' अर्थात् प्रजाजन से ग्रहण करने योग्य कर, और अन्न से (वावृधाना) बढ़ते हुए और अन्यों को बढ़ाते हुए (रातहव्या) उत्तम अन्नों को सूर्य वा मेघवत् प्रदान करते हुए, (नमसा) विनय और शक्ति से (अग्राद्वाना) सबसे प्रमुख होकर भोग्य सम्पत्ति को सब में न्यायपूर्वक विभाग करते हुए, (घृतासुती) सूर्य मेघवत् जल के समान तेज और अन्न आदि को उत्पन्न करते हुए, (अस्मे द्रविणं धत्तम्) हमें ऐश्वर्य प्रदान करो। आप दोनों तो (सोम-धानः) ऐश्वर्य या खजाने को अपने में रखने वाले (कलशः समुद्रः) मुद्रा से अंकित बन्द हुए कलशे के समान पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त एवं हर्षयुक्त, समुद्रवत् रत्नादि के आकर (स्थः) होओ।

इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम्।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्रा विष्णू) शत्रुनाशक! ऐश्वर्ययुक्त तथा विविध विद्याओं के प्रदान करने वाले बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषो! आप दोनों (अस्य मध्वः) उस मधु, अर्थात् मधुर अन्न वा जल, (सोमस्य) ओषधिरसवत् उत्पन्न वनस्पति और ऐश्वर्य का भी (पिबतं) पान, भोजन एवं उपभोग करो। इस प्रकार ही (जठरं) अपने उदर को (पृणेथाम्) पूर्ण करो। (वाम्) आप दोनों को (मदिराणि अन्धांसि) हर्षजनक नाना प्रकार के जीवनप्रद अन्न (अग्मन्) प्राप्त हों, आप दोनों (मे हवं उप शृणुतम्) मेरे उत्तम उपदेश का श्रवण करो और (मे ब्रह्माणि उपशृणुतम्) मेरे उपदेश किये वेद मन्त्रों का उत्तम ज्ञान श्रवण करो।

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ८।१३॥

भा०—हे विष्णो! वायु के समान व्यापक बलशालिन्! (इन्द्रः

च) विद्युतवत् शत्रु का नाश करने हारे आप दोनों (यत्) जब (अप स्पृधेथाम्) बढ़ने का उद्योग करते हो तब (सहस्रं) अपरिमित ज्ञान, अपरिमित वल और अपरिमित ऐश्वर्य इनको (त्रेधा ऐरयेथां) तीनों प्रकारों से प्रेरित करो, तीनों को प्रकट करो। इस प्रकार (उभा जिग्यथुः) आप दोनों ही विजय को प्राप्त करो, (न पराजयेथे) कभी पराजित मत होओ। (कतरः चन एनोः) इनमें से कोई एक भी (न पराजिग्ये) पराजय को प्राप्त न होवे। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७०]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ६ जगती ॥ षड़ृचं सूक्तम् ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१॥

भा०—भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू, वा स्त्री पुरुषों का कर्त्तव्य। जिस प्रकार (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (घृतवती) जल और तेज से युक्त हो तो (भुवनानाम् अभिश्रिया) सब उत्पन्न प्राणियों और लोकों को आश्रय देने वाले, (मधु-दुघे) जल और अन्न को प्रदान करनेवाले, (सु-पेशसा) उत्तम रूपयुक्त, (वरुणस्य धर्मणा वि-स्कभिते) सर्वश्रेष्ठ प्रभु, परमेश्वर या वायु के धारण सामर्थ्य से थमे हुए (भूरि-रेतसा) बहुत जल, उत्पादक बल, तेज से युक्त होते हैं उसी प्रकार माता पिता और वर वधू दोनों ही (घृतवती) तेज, अन्न और हृदयों में प्रवाहित स्नेह से युक्त हों। वे दोनों (भुवनानाम् अभिश्रिया) उत्पन्न होने वाले प्रजाओं, पुत्रादि के सब प्रकार से आश्रय योग्य और (उर्वी) बहुत विशाल हृदय, (पृथ्वी) भूमिवत् आश्रयदाता (मधु-दुघे) मधुर वचन और अन्न को देने वाले (सु-पेशसा)

उत्तम रूपवान, हों। वे दोनों (वरुणस्य) वरण करने वाले, वा वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के (धर्मणा) धर्म से (वि-स्कभिते) विविध प्रकार से एक दूसरे का आश्रय होकर (अजरे) युवा युवति, जरा वस्था से रहित (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान् होकर रहें।

असंश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते। राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (रोदसी) सूर्य और भूमि (असश्चन्ती) पृथक् २ रह कर भी (भूरि-धारे) बहुत सी जलधाराओं से युक्त (पयस्वती) जल और अन्न से सम्पन्न, होकर (घृतं दुहाते) तेज और अन्न प्रदान करते हैं, वे (मनुर्हितं रेतः सिञ्चतम्) मनुष्यों के हितकारी तेज और जल प्रदान भी करते हैं उसी प्रकार माता पिता दोनों (असश्चन्ती) पृथक् गोत्रों के होते हुए, (भूरि-धारे) बहुत सी उत्तम वाणियों और स्तन्यधाराओं से युक्त वा बहुत से पदार्थों को धारण करने वाले, (पयस्वती) अन्न और दूध से युक्त, (शुचि-व्रते) शुद्ध पवित्र कर्म और व्रत का पालन करने वाले (सु-कृते) उत्तम पुण्य कर्म वाले, होकर (घृतं दुहाते) प्रस्रवणशील स्नेह, दुग्ध और अन्न को प्रदान करें। वे दोनों (अस्य भुवनस्य) इस संसार के बीच (राजन्ती, गुणों से प्रकाशित होकर (रोदसी) सूर्य भूमिवत् एक दूसरे की मर्यादा का पालन करते हुए (यत् मनुः हितम्) जो मननशील मनुष्य के उत्पन्न करने के लिये पूर्व आश्रम में धारण किया (रेतः) वीर्य हो, उसकी वे दोनों (अस्मे) हमारे प्रजावृद्धि के लिये (सिञ्चतम्) गृहाश्रमकाल में निषिक्त कर धारण करें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करें।

यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति। प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ३

भा०—हे (धिषणे) एक दूसरे को धारण करने वाले, बुद्धिमान्, (रोदसी) सूर्य भूमि के समान तेजस्वी और दृढ़ स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों में से (यः मर्त्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) धर्म मार्ग पर चलने के लिये (ददाश) अपने को समर्पित करता है (सः साधति) वही वस्तुतः सन्मार्ग पर जाता और वही उद्देश्य साधता है। वही (युवोः) आप दोनों के बीच (धर्मणः परि) धर्मानुसार (प्रजाभिः प्र जायते) उत्तम प्रजा और सन्तानों द्वारा उत्पन्न होता है। (युवोः) आप दोनों के (सिक्ता) वीर्यों से उत्पन्नसन्तान (विषु-रूपाणि) नाना प्रकार के(सव्रता) समान शुभचारण युक्त उत्पन्न होते हैं।

घृतेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒भीवृ॑ते घृत॒श्रिया॑ घृत॒पृचा॑ घृता॒वृधा॑।
उ॒र्वी पृ॒थ्वी हो॑तृवू॒र्ये॑ पु॒रोहि॑ते॒ ते इद्विप्रा॑ ईळते सु॒म्नमि॒ष्टये॑ ॥४॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि जिस प्रकार (घृतेन अभीवृते) जल और प्रकाश से युक्त उनसे शोभा धारण करते, उनकी ही वृद्धि करते, उसी प्रकार स्त्री पुरुष (द्यावापृथिवी) एक दूसरे की कामना करने वाले, एक दूसरे को चाहने वाले और एक दूसरे का आश्रय होकर धारण करने वाले, (घृतेन अभीवृते) स्नेह से सबके समक्ष एक दूसरे द्वारा वरण किये जावें। वे दोनों (घृत-श्रिया) जल से शोभित मेघविद्युत् के जमान, तेज से शोभित पूर्य विद्युत् के तुल्य, स्नेह और ज्ञान से शोभा युक्त हों, वे दोनों (घृत-पृचा) स्नेहपूर्वक एक दूसरे से सम्बद्ध हों, (घृता-वृधा) स्नेह से स्वयं बढ़ने और एक दूसरे को बढ़ाने वाले ह,ों दोनों ही वे (उर्वी) बड़े आदरणीय हों (पृथ्वी) विस्तृत भूमि के समान परस्पर आश्रय रूप (होतृ-वूर्ये) दोनों ही ज्ञानादि के देने वाले विद्वानों का यज्ञों में वरण करने वाले वा, एक दूसरे को आप ही देने और स्वीकार करने वाले, दाता प्रतिगृहीता रूप से वरण करने वाले, (पुरोहिते) दोनों एक दूसरे के कार्यों के ऊपर विद्वान् पुरोहित के

समान साक्षी, एवं हित को सदा अपने आगे रखने वाले, वा गृहस्थ में प्रविष्ट होने के पूर्व सबके समक्ष परस्पर प्रेम ग्रन्थि से बद्ध हों। (विप्राः) विद्वान् पुरुष (इष्टये) इष्ट एवं परस्पर की सत्संगति लाभ के लिए, (ते इत्) उन दोनों को ही (सुम्नम् ईडते) सुखपूर्वक चाहा करते हैं।

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते । दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि दोनों जिस प्रकार (मधु-मिमिक्षतः) अन्न और जल सब पर वर्षाते हैं उसी प्रकार स्त्री-पुरुष, वर-वधू दोनों माता पिता होकर (नः) हमें (मधु मिमिक्षताम्) अन्न प्रचुर मात्रा में दें। वे दोनों (मधु-श्चुता) मधुर पदार्थों के देने वाले, (मधु-दुघे) मधुर पदार्थों को दोहन करने वाले, (मधु-व्रते) मधुर फलो-त्पादक कर्म करने वाले, हों। वे दोनों (अस्मे) हमें (महि) बड़ा (सु-वीर्यम्) उत्तम बलप्रद (वाजं श्रवः) बल, अन्न और ज्ञान और (द्रविणं यज्ञम् च दधाने) धनैश्वर्य और सत्संग को धारण करने वाले होकर (मधु मिमिक्षताम्) मधुर अन्न प्रदान करें।

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा। संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—(द्यौः च पृथिवी च) सूर्य और पृथिवी जिस प्रकार (वः) हमें (ऊर्जं) अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार (विश्व-विदा) सब प्रकार के ज्ञानों को जानने और सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाले (सुदं-ससा) उत्तम कर्म करने वाले, सदाचारी, (पिता माता) पिता और माता (नः ऊर्जं पिन्वताम्) हमें उत्तम बलकारक अन्न प्रदान करें। वे दोनों (विश्वशम्भुवा) समस्त जनों को शान्ति देने वाले, (रोदसी) सूर्य पृथिवीवत् (सनिं) उत्तम दान योग्य (वा) ऐश्वर्य को (सं-

रराणे) अच्छी प्रकार देते हुए, (अस्मे) हमें (रयिं सम् इन्वताम्) बल, वीर्य और धन प्रदान करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[७१]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ जगती । २, ३ निचृज्जगती । ४ त्रिष्टुप् । ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । षड्चं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥ १॥

भा०—जिस प्रकार (देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य हिरण्यया बाहू) सबके हित और रमणीय 'बाहू' अर्थात् अन्धकार को बांधने वाले किरणों को (इत् अयंस्त) ऊपर थामता है और (सु-दक्षः) खूब दाहकारी होकर (विधर्मणि) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः अभि घृतेन प्रुष्णुते) समस्त भुवनों को तेज से संतप्त करता वा जल से सेचनभी करता है उसी प्रकार (स्यः देवः) वह दानशील व्यवहारज्ञ, युद्धनिपुण राजा (सविता) शासक, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और बुद्धि से सम्पन्न होकर (सवनाय) ऐश्वर्य की वृद्धि और शासन कार्य के सम्पादन के लिये (हिरण्यया बाहू) हित और सबको अच्छे लगने वाले, सुवर्ण से अलंकृत बाहुओं को तथा हिरण्य अर्थात् लोहे के बने, वा कान्तिमान् तेजस्वी शस्त्रास्त्रों से युक्त, बाहुवत् शत्रु के पीड़क बलवान् सैन्यों को भी (उत् अयंस्त) उत्तम रीति से उठाता, उनको नियन्त्रण में रखने में समर्थ होता है, वही (मखः) यज्ञ के समान पूज्य, उपकारक (युवा) बलवान्, (सु-दक्षः) उत्तम कार्यकुशल, होकर (विधर्मणि) विविध प्रजाओं के धारण करने के कार्य में (रजसः अभि) लोक समूह के प्रति (घृतेन) तेज से (पाणी) अपने हाथों को (प्रुष्णुते) प्रतप्त करता है, जिनसे वह दुष्टों का दमन कर प्रजा का शासन करने में समर्थ हो। (प्रुष्णुते) प्रुष प्लुष दाहे । भ्वा० ॥

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः २

भा०—हे प्रभो ! (यः) जो तू (विश्वस्य) समस्त (द्विपदः) दोपाये मनुष्यों और (यः चतुष्पदः) जो चौपायों तथा (भूमनः) बहुत प्रकार के जगत् के भी (निवेशने) बसने और (प्रसवे) पैदा होने, समृद्ध होने और शासन में (च) भी समर्थ है उस तुझ (सवितुः) सर्वोत्पादक, सर्वशासक (देवस्य) सर्वप्रद, तेजस्वी प्रभु के (बलिष्ठे) अति प्रशंसनीय, (सवीमनि) शासन और (वसुनः) दावने) ऐश्वर्य के दान पर हम (स्याम) सुखपूर्वक रहें ।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥३॥

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक, सत्कर्मों और शुभमार्गों में चलाने हारे प्रभो ! स्वामिन् ,! (अदब्धेभिः) कभी नाश न होने वाले रक्षासाधनों से और (शिवेभिः) कल्याणकारी, सुखजनक उपायों से (अद्य) आज (नः गयम्) हमारे गृह और प्राणमय जीवन को (त्वं) तू (परि पाहि) सब प्रकार से पालन कर । तू (हिरण्य-जिह्वः) सर्व हितकारी और सब को भली लगने वाली और सुवर्णवत् कान्तियुक्त, सत्यप्रकाशक वाणी को बोलने वाला (नव्यसे) नये से नये सर्वश्रेष्ठ, अति रमणीय, (सुविताय) सुखपूर्वक गमनयोग्य-सदाचार पालन तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर और (नः) हम पर (अघ-शंसः) पापी, दुष्ट, पापमार्ग का उपदेश करने वाला पुरुष (माकिः ईशत) कभी प्रभुता न करे ।

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४॥

भा०—(सविता देवः प्रतिदोषम् उत् अस्थात्) जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य प्रतिरात्रि की समाप्ति पर उदय होता है, उसी प्रकार (स्यः देवः) वह तेजस्वी दानशील, (सविता) उत्तम शासक, (दमूनाः) मन इन्द्रियों पर दमन करने वाला, (हिरण्य-पाणिः) सुवर्णादि धन को अपने हाथ में, अपने वश में रखने वाला होकर (प्रति-दोषम्) प्रति दिन, वा प्रत्येक दोष वा दुष्टों के प्रत्येक अपराध पर (अस्थात्) उठ खड़ा हो, वह (अयोहनुः) लोहे के बने अस्त्रों शस्त्रों से शत्रु का हनन करने वाला सेना का स्वामी, (यजतः) पूज्य एवं सत्संगयोग्य वृत्तिदाता, (मन्द्र-जिह्वः) सबको प्रसन्न करने वाली वाणी को बोलने वाला होकर (दाशुषे) आत्मसमर्पक भृत्य वा करप्रद प्रजाजन के उपकार के लिये (भूरि-वामम् आसुवति) बहुत सा उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करे।

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता सुप्रतीका उत् अयान् पतयत् अभ्वम् अरीरमत् दिवः पृथिव्या रोहांसि अरुहत्) सूर्य सुन्दर प्रतीति-कर तेजों को लेकर उदय होता, आता हुआ महान् जगत् को प्रसन्न करता, भूमि और आकाश के उन्नत भागों पर चढ़ता है, उसी प्रकार जो (सविता) शासक, राजा, (उपवक्ता इव) उपदेष्टा पुरुष के समान (हिरण्यया) हित, रमणीय (सुप्रतीका) उत्तम मार्ग को बतलाने वाले (बाहू) शत्रुओं के नाशक बाहुओं को (उत् अयान् उ) सदा उद्यत रक्खे, वह (दिवः) तेज के (रोहांसि) उन्नत पदों को और (पृथिव्याः रोहांसि) पृथ्वी के उत्तम भागों, पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्यों को भी (अरुहत्) प्राप्त करे, (अभ्वम्) महान् राष्ट्र को भी (कत् चित्) कभी (पतयत्) प्राप्त करे और व (अरीरमत्) सुख से स्वयं रमण कर राष्ट्र का पति, स्वामी पालक हो। (२) सर्वोत्पादक प्रभु सुखजनक उत्तम

बाहुएं हमारे प्रति उपदेष्टावत् उठावे, कभी (अभ्वं पतयत्) हमारे असामर्थ्य को दूर कर हमें सुखी करे।

वाममद्य सवितर्वाममुश्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ।६।१५।

भा०—हे (सवितः) सर्वोत्पादक ! सर्वप्रेरक प्रभो ! (अद्य) आज तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुख (सावीः) प्रदान कर । (श्वः उ) और कल भी हमारे लिये (वामम्) उत्तम सुखैश्वर्य (सावीः) प्रदान कर। और तू (दिवेदिवे अस्मभ्यम् वामम् सावीः) प्रति दिन हमें उत्तम २ सुख ऐश्वर्य प्रदान किया कर। हे (देव) दानशील ! दिव्य पुरुष ! (वयं) हम लोग (अया धिया) इस प्रकार की उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (वामस्य) प्रशंसनीय और (भूरेः) बहुत से (क्षयस्य) गृह और ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा के (वामभाजः स्याम) सुखपूर्वक उपभोग करने वाले हों । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[७२]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ इन्द्रासोमौ देवते ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) सूर्य और चन्द्र के समान ऐश्वर्य और वीर्य से युक्त और प्रजाओं का उत्पन्न करने में समर्थ उत्तम स्त्री पुरुषो ! वा उत्तम आचार्य वा शिष्य जनो ! (वां तत् महित्वं) तुम दोनों का वह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है कि (युवं) तुम दोनों (महानि) पूज्य, आदर योग्य (प्रथमानि) श्रेष्ठ २ कार्य (चक्रथुः) किया करो । (युवं) तुम दोनों (सूर्यं) सर्व प्रकाशक सूर्य को, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को तथा

सर्वोत्पादक सर्व प्रकाशक प्रभु परमेश्वर को, (विविदथुः) अपना आदर्श रूप से जानो, और उसीको सदा प्राप्त करो। (युवं) तुम दोनों सदा सुखप्रद, प्रकाशस्वरूप प्रभु को प्राप्त करो। (विश्वा तमांसि अहतम्) सब प्रकार के अविद्याजनित मोह, शोकादि अन्धकारों को नाश करो और (निदः च अहतम्) निन्दकों और निन्दनीय व्यवहारों को भी नाश करो।

इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त एवं प्रजा को शासन करने वाले जनो ! तेजस्वी और वीर्यवान् पुरुषो ! आप लोग (उषासं वासयथः) उत्तम कामना युक्त प्रजा को सुखपूर्वक बसाओ, एवं उत्तम कामना युक्त, प्रभात वेलावत् कमनीय रूपयुक्त युवा युवति को गृहाश्रम में बसाने का उद्योग करो। (सूर्यं) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (ज्योतिषा सह) उसके तेज सहित (उत् नयथः) उत्तम पद प्राप्त कराओ। (स्कम्भनेन) आश्रय देने वाले स्तम्भ से जिस प्रकार गृह की छत को थामा जाता है उसी प्रकार (स्कम्भनेन) आश्रयप्रद सामर्थ्य से (द्यां) परस्पर की कामना करने वाले दूसरे अंग को (स्कम्भथुः) अपने ऊपर थामो। (पृथिवीं मातरम्) पृथिवी के समान माता को (वि अप्रथतम्) विशेष रूप से विख्यात, विस्तृत करो। अर्थात् राष्ट्र के वृद्धि के साथ २ मातृ जाति का अधिक मान करो। (२) आचार्य और शिष्य दोनों (उषासम्) विद्येच्छुक ब्रह्मचारी को अन्तेवासी रूप में बसावें, सूर्यवत् कान्तियुक्त करें, ज्ञानमय वेद का धारण करें और विस्तृत वेदमयी माता का विस्तार करें।

इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रा सोमौ) आचार्य और शिष्य ! प्रभु, प्रजावत् विद्यमान स्त्री पुरुषो ! वा विद्युत् पवन के समान परस्पर सहायक जनो ! (अपः परि-स्थाम् अहिम् वृत्रम् हथः) जिस प्रकार विद्युत् और वायु जलों को धारण करने वाले व्यापक मेघ को आघात करते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (अपः परि-स्थाम्) उत्तम कर्मों वा ज्ञानों के ऊपर स्थित (वृत्रम् अहिम्) आवरणकारी, आच्छादक अज्ञान को (हथः) विनाश करो। (वां) आप दोनों में से (द्यौः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (अनु अमन्यत) उत्तम कार्य की अनुमति दिया करे। आप दोनों (नदीनां) नदियों के (अर्णांसि) जलों को विद्युत् और पवन के समान, (नदीनाम्) समृद्धि युक्त प्रजाजनों के (अर्णांसि) नाना ऐश्वर्यों वा ज्ञानों को (प्र ऐरयतम्) अच्छी प्रकार प्रदान करो। (पुरूणि) बहुत से (समुद्राणि) समुद्रवत् विस्तृत कामना योग्य उत्तम कर्मों, विशाल अन्तःकरणों वा मनोरथों को (आ पप्रथुः) विस्तृत करो।

इन्द्रा॑सोमा प॒क्वमा॒मास्व॒न्तर्नि गवा॒मिद्द॑धथुर्व॒क्षणा॑सु ।
ज॒गृ॒भथु॒रन॑पिनद्धमासु॒ रुश॑च्चि॒त्रासु॒ जग॑तीष्व॒न्तः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र-सोमा) सूर्य चन्द्रवत् वा, वायु विद्युत्वत् युगल जनो ! जिस प्रकार (आमासु अन्तः पक्वम् निदधथुः) सूर्य वायु वा सूर्य चन्द्र कच्ची ओषधि में परिपक्व रस प्रदान करते हैं और जिस प्रकार (गवां वक्षणासु जलं नि दधथुः) भूमियों के बीच बहती नदियों में वायु और मेघ जल प्रदान करते हैं उसी प्रकार आप दोनों भी (आमासु) सह धर्मचारिणी दाराओं में (पक्वम् वीर्यं नि दधथुः) परिपक्व वीर्य का आधान करो और (गवाम्) गमन योग्य धर्मदाराओं के (वक्षणासु अन्तः) कोखों में ही विद्यमान गर्भ, शिशु आदि को (नि दधथुः) पालन करो। (आसु) उनके बीच में सब उत्तम व्यवहार (अनपिनद्धम्) बन्धन रहित, स्पष्ट रूप से (जगृभथुः) ग्रहण करो। और (चित्रासु

जगतीषु अन्तः) अद्भुत सृष्टियों के बीच (रुशत्) सुरूप, तेजोयुक्त पदार्थ को (जगृभथुः) ग्रहण कराओ ।

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५॥१६॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त सूर्यवत् तेजस्विन् ! एवं सोम्य गुणयुक्त चन्द्रवत् सुन्दर युगल स्त्री पुरुष जनो ! (युवम्) आप दोनों (तरुत्रम्) पार उतारने वाले (अपत्य-साचं) पुत्रादि सन्तान युक्त, (श्रुत्यं) श्रवण करने योग्य धन को (रराथे) प्रदान करो । आप दोनों (उग्रा) बलवान् होकर (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (नर्यं) नायकोचित (पृतना-षाहम्) सैन्यों, वा संग्रामों को भी जीतने वाले (शुष्मं) बल वा बलवान् पुत्र को (सं विव्यथुः) सन्तान रूप से उत्पन्न करो । इति षोडशो वर्गः ॥

[७३]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—(यः) जो (अद्रि-भित्) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान, (अद्रिभित्) शस्त्रयुक्त सैन्यों को भी भेदने में समर्थ (प्रथमजाः) प्रथम मुख्य रूप से प्रकट होने वाला, (ऋतावा) न्याय, सत्य मार्ग, और ऐश्वर्य, तेज को सेवन करने वाला, (हविष्मान्) अन्नों का स्वामी, (अङ्गिरसः) जलते अङ्गारों के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुषों का स्वामी है, (बृहस्पतिः) वही 'बृहस्पति' अर्थात् बड़े भारी राष्ट्र का पालक, स्वामी होने योग्य है । वह (द्विबर्हज्मा) शास्त्र बल और बुद्धिबल दोनों

से भूमि या राष्ट्र की वृद्धि करने वाला (प्राधर्मसत्) उत्तम तेज को धारण करने वाला (नः पिता) हमारा वास्तविक पिता के समान पालक होकर (रोदसी) सूर्य पृथिवी, राजा प्रजा वर्ग दोनों को (आ रोरवीति) सब प्रकार से आज्ञा करे।

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२॥

भा०—(यः) जो (बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी राजा और वेदवाणी का स्वामी विद्वान्, (देवहूतौ) विद्वानों को एकत्र निमन्त्रित करने योग्य यज्ञ और विजयेच्छु पुरुषों की आहुति योग्य संग्राम के अवसर में (ईवते जनाय) शरणागत मनुष्य की रक्षा के लिए (उ) भी (लोकं) आश्रय (चकार) करता है और जो (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं को (घ्नन्) विनाश करता हुआ, (अमित्रान्) स्नेह न करने वाले (शत्रून्) शत्रुओं को (पृत्सु) संग्रामों में (साहन्) पराजय करता और (जयन्) जीतता (पुरः वि दर्दरीति) शत्रु के गढ़ों को विविध प्रकार से तोड़ता फोड़ता है।

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥१७॥

भा०—(बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का स्वामी, (देवः) तेजस्वी दानशील राजा, (महः वसूनि) बहुत से ऐश्वर्यों और बसने योग्य जनपदों को (सम् अजयत्) समवाय बना कर विजय करे। और (एषः) वह (महः) बड़े २ (गोमतः) भूमियों से युक्त (व्रजान्) मार्गों को भी मेघों को सूर्यवत् विजय करे। वह (बृहस्पतिः) बड़े ऐश्वर्य और बल सैन्यादि का पालक होकर (अप्रतीतः) अन्यों से मुक़ाबला न किया जाकर, (अपः सिषासन्) मेघवत् जलों की वर्षा करता हुआ और

(स्वः) राष्ट्र में सुख सम्पदाएं विभक्त करता हुआ, (अमित्रम्) शत्रु जन को (अर्कैः) शास्त्रों द्वारा (हन्ति) दण्ड दे । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७४]

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः ॥ सोमारुद्रौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) सोमवत् शान्तिदायक चन्द्रवत् आह्लादक, और रुद्र अर्थात् रोगों को दूर करने वाले वैद्य के समान देश से दुष्टों को दूर भगाने वाले राजन् ! आप दोनों (असुर्यं धारयेथाम्) विद्युत् और मेघ के स्वरूप जल वा पवन के समान प्राणयुक्त बल को धारण कराओ । (वाम्) आप दोनों के (इष्टयः) दिये दान हमें (अरम् अश्नुवन्तु) खूब प्राप्त हों । आप दोनों (दमे दमे) प्रत्येक घर में (सप्त रत्ना दधाना) सातों प्रकार के रत्नों को धारण कराते हुए (नः द्विपदे) हमारे दो पाये और चौपायों को (शं शं भूतम्) अति शान्तिदायक होओ ।

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) सोम अर्थात् ओषधिवर्ग वा जल के समान शान्तिदायक और 'रुद्र' अर्थात् रोगहारक अग्नि के समान पीड़ा को दूर करने वाले वैद्य के तुल्य कीर्तिनाशक ! (या अमीवा) जो रोग दायक पीड़ा (नः गयम्) हमारे गृह और प्राणयुक्त देह में (आविवेश) प्रविष्ट हो (विषूची) विविध प्रकार के अनर्थों से युक्त उस

को (वि-वृहतम्) सर्वथा उखाड़ फेंको और (निर्ऋतिं) अति कष्टदायी विपत्ति को (पराचैः बाधेथाम्) दूर से ही हरो और (अस्मे) हमें (भद्रा सौश्रवसानि सन्तु) सुखदायी श्रेष्ठ २ अन्न समृद्धियें प्राप्त हों।

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ ३॥

भा०—हे (सोमारुद्रा) जल और अग्नितत्वों के तुल्य शान्तिदायक और रोगहारक विद्वान् पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (अस्मे तनूषु) हमारे शरीरों के निमित्त (एतानि) ये नाना प्रकार के (विश्वा) समस्त (भेषजानि) रोग दूर करने के औषधों को (धत्तम्) धारण करो। (नः तनूषु) हमारे शरीरों में (यत्) जो (कृतं) किया हुआ (एनः) पाप (बद्धं अस्ति) बंधा है उसको (अव स्यतम्) दूर करो और (अस्मत्) हमसे (अव मुञ्चतम्) छुड़ाओ।

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना ४।१८।

भा०—(सोमारुद्रौ) जल अग्निवत् शान्तिदायक और पीड़ानाशक जन (तिग्म-आयुधौ) तीक्ष्ण प्रहारसाधनों से युक्त, (तिग्म-हेती) तीक्ष्ण शस्त्रों वाले, (सु-शेवौ) उत्तम सुखदायक पुरुष (नः सुमृडतम्) हमें अच्छी प्रकार सुखी करें। वे दोनों (सु-मनस्यमाना) शुभ चित्त वाले होते हुए (नः) हमें (वरुणस्य पाशात्) वरुण अर्थात् उदान के समान प्रबल रोग के पाश से (नः मुञ्चतम्) हमें छुड़ावें और (नः गोपायतम्) हमारी रक्षा करें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७५]

पायुर्भारद्वाज ऋषिः ॥ देवताः—१ वर्म। १ धनुः। ३ ज्या। ४ आर्त्नी। ५ इषुधिः। ६ सारथिः। ६ रश्मयः। ७ अश्वाः। ८ रथः। रथगोपाः। १०

लिङ्गोक्ताः । ११, १२, १५, १६ इषवः । १३ प्रतोदः । १४ हस्तघ्न : । १७—१९ लिङ्गोक्ता सङ्ग्रामाशिषः (१७ युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरादितिश्च । १८ कवचसोमवरुणाः । १९ देवाः । ब्रह्म च) ॥ छन्दः—१, ३, निचृत्त्रिष्टुप् ॥ २, ४, ५, ७, ८, ९, ११, १४, १८ त्रिष्टुप् । ६ जगती । १० विराड् जगती । १२, १९ विराडनुष्टुप् । १५ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १३ स्वराडुष्णिक् । १७ पांक्तिः ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

भा०—(यत्) जो शूरवीर (वर्मी) कवच धारण करके (समदाम् उपस्थे) संग्रामों में (याति) जाता है वह (जीमूतस्य इव) मेघ के समान (प्रतीकं) प्रतीत होने लगता है । वह मेघ के समान श्याम एवं शत्रु पर शस्त्रास्त्र की वर्षा करने में समर्थ होता है । हे शूरवीर पुरुष तू (अनाविद्धया तन्वा) विना घायल हुए शरीर से (जय) विजय कर । (वर्मणः सः महिमा) कवच का यही बड़ा गुण है कि शरीर पर एक भी घाव न लग सके । वही कवच का विशेष महत्व (त्वा पिपर्तु) तेरा पालन करे, तुझे संग्रामों में क्षत-विक्षत न होने दे । विशेष विवरण देखो यजुर्वेद (अ० २९ । मं० ३८-५७)

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ २ ॥

भा०—जो (धनुः) धनुष् (शत्रोः) शत्रु के (अपकामं) मन चाहे फल का नाश (कृणोति) करता है । ऐसे (धन्वना) धनुष के बल से हम लोग (गाः जयेम) गौओं और भूमियों का विजय करें । उसी (धन्वना आजिं जयेम) धनुष से हम संग्राम का विजय करें । उसी (धन्वना तीव्राः समदः जयेम) धनुष से हम ही वेग से आने वाली हर्ष या मद से युक्त शत्रु सेनाओं और कठिन संग्रामों को भी जीतें ।

(धन्वना) धनुष के बल से हम (सर्वाः दिशः जयेम) समस्त दिशाओं का विजय करें । इस प्रकार दिग्-विजयी हों ।

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३॥

भा०—(योषा-इव) जिस प्रकार स्त्री (प्रियं सखायं परि-सस्वजाना) प्रिय मित्र को आलिङ्गन करती हुई और (वक्ष्यन्ती इव) कुछ कहना सा चाहती हुई मानो (कर्णम् आ गनीगन्ति) कान के समीप आती है उसी प्रकार (अधि धन्वन्) धनुष पर (वितता) लगी, तनी (ज्या) यह डोरी भी प्रिय मित्रवत् सदा सहायक धनुर्दण्ड के साथ लगकर मानो वीर पुरुष के कान में कुछ कहना सा चाहती हुई खिंचकर कान तक पहुंचती है और (समने पारयन्ती) संग्राम में शत्रुसंकट से पार करती हुई (शिङ्क्ते) मधुर रव करती है ।

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥

भा०—(समना-इव योषा) समान मन, वा एक चित्त हुई स्त्री जिस प्रकार अपने पति को और (माता इव पुत्रं) माता जिस प्रकार अपने पुत्र को (आचरन्ती) अपना प्रेम व्यवहार करती हुई (संविदाने) परस्पर ऐकमत्य होकर (उपस्थे बिभृताम्) अपने समीप, गोद में धारण करती है उसी प्रकार (ते) वे (इमे) ये दोनों (आर्त्नी) धनुष् की कोटियां भी (सं-विदाने) एक साथ डोरी से मिल कर (अमित्रान्-विस्फुरन्ती) शत्रुओं का नाश करती हुई (शत्रून् अप विध्यताम्) शत्रुओं को मार भगावें । एक ही पुरुष की प्रियस्त्री और प्रियमाता दोनों सह-मति कर उसका प्रियाचरण करतीं उस को प्रेमालिंगन करती हैं उसी प्रकार शूरवीर के धनुष की कोटियों के तुल्य (आर्त्नी) शत्रुनाशक दायें बायें की दो सेनाएं उसकी रक्षा करें, शत्रु का नाश करें ।

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ५।१९

भा०—जिस प्रकार (बह्वीनां पिता) एक पुरुष बहुत सी कन्याओं का पिता हो और (अस्य बहुः पुत्रः) उसके बहुत से पुत्र होवें, वे सब (समना अवगत्य चिश्चा कृणोति) एक स्थान पर मिलकर चीं चां करें ठीक उसी प्रकार (इषुधिः) वाणों को अपने भीतर धारण करने वाला तरकस (बह्वीनां पिता) बहुत से बाणों का पालक होने से उनका पिता है और (अस्य) इसके भीतर से निकलने वाला वाणसंघ (बहुः पुत्रः) बहुत संख्या में पुत्र के तुल्य है। वह (समना अवगत्य) संग्राम में आकर (चिश्चा कृणोति) 'चींचां' ऐसी ध्वनि करते हैं। वह तरकस (पृष्ठे निनद्धः) वीर पुरुष के पीठ पीछे बंधकर भागते शत्रु के पीठ पर लगे सन्नद्ध वीर के समान (प्र-सूतः) मानों वाणों को अपने में से पैदा सा करता हुआ (सर्वाः सं-काः) समस्त संग्राम में स्थित, संघ बनाकर खड़ी (पृतनाः) नर सेनाओं को (जयति) विजय करता है। उसी प्रकार (इषुधिः) वाणों को धारण करने वाला वीर भी (नि-नद्धः) कवच बांधे शत्रु के पीछे लग कर वाणों को निरन्तर फेंकता हुआ शत्रु सेनाओं को विजय करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६॥

भा०—(सु-सारथिः) रथ का चलाने वाला उत्तम सारथि (रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ, (यत्र-यत्र कामयते) जहां जहां भी चाहता है वहां २ (वाजिनः) वेगवान् अश्वों को (पुरः नयति) अपने आगे आगे लेजाता है। (मनः) मन जिस प्रकार इन्द्रियों को अपने वश रखता है उसी प्रकार (रश्मयः) रासें भी घोड़ों को (पश्चात् अनु यच्छन्ति) पीछे से नियम में बांधे रहती हैं। हे विद्वानो! आप

लोग (अभीशूनां महिमानं पनायत) रासों के ही महान् सामर्थ्य का वर्णन करो कि सारथि यथेष्ट रथ चलाता और अश्वों को वश करता है। अध्यात्म में 'मन' रासें हैं।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनःप्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

आत्मा रथका स्वामी, शरीर रथ, बुद्धि कोचवान्, मन रासें, इन्द्रिय घोड़े और विषय देश हैं। बुद्धि, इन्द्रिय, मन सब मिलकर 'भोक्ता' है ऐसा विद्वान् वर्णन करते हैं।

ती॒व्रान्घोषा॑न्कृण्वते॒ वृष॑पाण॒योऽश्वा॒ रथे॑भिः स॒ह वा॒जय॑न्तः।
अ॒व॒क्राम॑न्तः॒ प्रप॑दैर॒मित्रा॑न् क्षि॒णन्ति॒ शत्रूँ॒रन॑पव्ययन्तः॥ ७॥

भा०—(रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों के साथ वेग से जाते हुए (अश्वाः) अश्व (वृषपाणयः) शकट में लगे बैलों के समान अधिक से अधिक भार वहन करने में समर्थ (अश्वाः) घोड़े और (रथेभिः सह वाजयन्तः) रथों और रथ सवारों सहित युद्ध करने वाले (वृष-पाणयः) बलवान् शस्त्रवर्षी धनुष को हाथ में लिये, वा बलवान् पुरुषों वा मेघवत् वर्षी वीरों को अपने हाथ में लिये, उनको अपने वश किये (अश्वाः) बलवान् अश्व-सवार सेनानायक जन (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) तीव्र घोष, गर्जना करते हैं। वे (प्र-पदैः) आगे के कदमों से (अमित्रान् अव-क्रामन्तः) शत्रुओं को रौंदते हुए स्वयं (अनप-व्ययन्तः) दूर न जाते हुए भी स्थिर रह कर, या स्वयं अपना नाश न होने देते हुए (शत्रून् क्षियन्ति) शत्रुओं का नाश करते हैं।

र॒थ॒वाह॑नं ह॒विर॑स्य॒ नाम॒ यत्रायु॑धं॒ निहि॑तमस्य॒ वर्म॑।
तत्रा॒ रथ॒मुप॑ श॒ग्मं स॑देम वि॒श्वाहा॑ व॒यं सु॑मन॒स्यमा॑नाः॥ ८॥

भा०—(यत्र) जिस में (अस्य) इस शूरवीर के (रथवाहनं) रथ को संचालित करने वाले यन्त्रादि उपकरण (हविः) अन्न और (नाम) शत्रुको नमाने वाले (आयुधं) अस्त्रादि और (अस्य) इस शूरवीर का (वर्म) कवच भी (निहितम्) रक्खे हों (तत्र) उस रथवत् राष्ट्र में हम (सु-मनस्यमानाः) शुभ चित्त वाले होकर रहें और (विश्वाहा) सब दिनों (शर्म) सुखकारी (रथम्) रथ को (सदेम) प्राप्त हों, रथ पर सवारी करें।

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥ ९ ॥

भा०—(स्वादु-संसदः) उत्तम सुखजनक अन्न ऐश्वर्यादि भोग करने के लिये न्यायासन आदि उत्तम पदों पर विराजने वाले, (वयः-धाः) दीर्घायु, ज्ञान व बल को धारण करने वाले (कृच्छ्रे-श्रितः) संकटों में प्रजाओं द्वारा आश्रय लेने योग्य, (शक्तिवन्तः) शक्तिमान्, (गभीराः) गंभीर स्वभाव के, (चित्र-सेनः) अद्भुत सेनाओं के स्वामी (इषु-बलाः) धनुषबाण के बल, सैन्य से युक्त, (अमृध्राः) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य, प्रजा की हिंसा न करने वाले, (सतः-वीराः) सत्व, बल से सम्पन्न, (व्रात-सहाः) शत्रु सैन्यदलों को पराजित करने वाले, (उरवः) बहुत, संख्या में अधिक (पितरः) हमारे पालक, पिता के तुल्य आरदणीय हों। वा जो हमारे पालक हों वे उक्त २ विशेषणो वाले हों।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत १०।२०

भा०—हे (पितरः) पालन करने वाले, पिता माता के समान आदर करने योग्य (सोम्यासः) 'सोम' अर्थात् चन्द्रमा, सोम ओषधि के गुणों के योग्य, वा सोम अर्थात् पुत्र, वा शिष्यों के प्रति हितकारी (ब्राह्मणासः) ब्रह्म, वेद के जानने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (रक्ष)

हमारी रक्षा करो और (ऋत-वृधः) सत्य, न्याय, ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए (ईशत) हम पर शासन करो । (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी दोनों (नः) हमें (दुरितात् पातु) पाप, दुष्टाचरण से बचावें और (अघशंसः) पाप की शिक्षा देने वाला, चोर पुरुष (नः माकिः ईशत) हम पर प्रभुत्व न करे । इति विंशो वर्गः ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११

भा०—इषवः देवताः । यह 'इषु' अर्थात् वाण (मृगाः) सिंह के समान वेग से आक्रमण करने वाला, वा अति शुद्ध, चमचमाता हो । वह (सुपर्णं) उत्तम वेग से जाने योग्य पंखों को (वस्ते) धारण करता है । (अस्याः दन्तः) इस वाण का, काटने का साधन दांत के समान तीक्ष्ण फला हो वह (सं-नद्धा) खूब दृढ़ता से बंधा हो, और (गोभिः प्र-सूता पतति) धनुष की डोरियों से प्रेरित होकर दूर जाता है । (यत्र) जिस संग्राम में (नरः सं द्रवन्ति च वि द्रवन्ति च) मनुष्य मिलकर वेग से दौड़ते और विविध दिशाओं में भागते हैं (तत्र) उस युद्ध काल में भी (अस्मभ्यम्) हमें वे (इषवः) वाण गण (शर्म यंसन्) शरण प्रदान करते हैं । भूमिपक्ष में—यह भूमिः (गोभिः सन्नद्धा) गौ आदि पशुओं, से अच्छी प्रकार व्याप्त, वा सूर्य की किरणों से सुदृढ़ होकर भी (प्र-सूता) उत्तम २ अन्नों को उत्पन्न करने हारी होकर (पतति) ऐश्वर्य-समृद्धि से युक्त होती है । (मृगः) सिंह के समान पराक्रमी, (दन्तः) दन्त के समान शत्रु का छेदन भेदन करने में समर्थ बलवान् पुरुष (अस्याः) इसके (सुपर्णं) सुख से पालने वाले वा इस को पूर्ण समृद्ध करने वाले शस्त्र-बल और वैश्य जन को (वस्ते) अपने नीचे बसाये, उसे अपनी सेवा में रक्खे । और (यत्र) जिस भूमि में लोग एकत्र होते वा विविध दिशाओं में जाते हैं उसी पृथिवी पर (इषवः)

चाण वा इच्छानुकूल प्राप्त काम्य पदार्थ में हमें (शर्म यंसन्) सुख प्रदान करें ।

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऋजीते) सरल, सूधे, सत्य न्याय मार्ग में चलने हारे विद्वन् ! सीधे जाने वाले बाण के समान तू (नः) हमें (परि-वृङ्धि) रक्षा कर । (नः) हमारा शरीर (अश्मा) पत्थर या शिला के समान कठोर (भवतु) हो । (सोमः) विद्वान्, उत्तम शास्ता (नः अधि) हमारे ऊपर रह कर (ब्रवीतु) शासन करे । (अदितिः) अखण्डशासन और यह अदीन प्रजा वा भूमिमाता (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख प्रदान करे ।

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्वाजनि) अश्वों को चलाने वाली, कशा के समान आज्ञादात्रि विदुषि ! राजसभे ! तू (अश्वान्) अश्वों के समान (प्र-चेतसः) उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् पुरुषों को (समत्सु) संग्रामों और उत्तम आनन्द युक्त अवसरों पर (चोदय) सन्मार्ग में चला । जो विद्वान् लोग (एषां) इन दुष्ट शत्रु लोगों के (सानु) अवयवों पर (आ जङ्घन्ति) प्रहार करते और (जघनात्) नीच जनों, मारने वाले वा मारने योग्य शत्रु जनों को (उप जिघ्नते) मारने में समर्थ होते हैं उनको (समत्सु चोदय) संग्रामों में ठीक प्रकार से चला । जिस प्रकार कशा से अश्व को चलाते हैं उसी प्रकार उत्तम जनों को सन्मार्ग से चलाने वाली विदुषी स्त्री ऐसे वीरों को तैयार करे जो शत्रुओं के अंगों पर और अन्य हिंसकजनों को भी मारने में समर्थ हो ।

अहिरिव भोगैः पर्यैति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः॥१४॥

भा०—(अहिः इव भोगैः बाहुम् परि एति) सांप जिस प्रकार अपने अंगों से बाहु के इर्द गिर्द लिपट जाता है उसी प्रकार (हस्त-घ्नः) हाथ में लगा दस्तबन्द भी (भोगैः) पालक अवयवों से (बाहुं परि एति) बाहु के इर्द गिर्द रहता है और (ज्यायाः) डोरी के (हेतिं) आघात को (परि-बाधमानः) बचाता है । उसी प्रकार (पुमान्) वीर पुरुष (हस्त-घ्नः) अपने सधे हाथ से शत्रुओं को मारने में कुशल वीर (अहिः इव) मेघ के समान (भोगैः) प्रजा को पालन करने में समर्थ शस्त्रादि उपायों सहित (बाहुम् परि एति) शत्रु को बाधने वाले सैन्य को प्राप्त होता और (ज्यायाः) प्राणों का नाश करने वाली शत्रु की सेना के (हेतिं) शस्त्र-बल को (परि-बाधमानः) दूर से ही नाश करता हुआ (विश्वा वयुनानि) सब प्रकार के ज्ञानों को जानता हुआ (विश्वतः) सब प्रकार से (पुमांसं परि पातु) सहयोगी पुरुष की रक्षा करे ।

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥ १५ ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार 'इषु' अर्थात् बाण की डण्डी (आल-अक्ता) विष से बुझी, (रुरु-शीर्ष्णी) मृग के समान अग्रमुख वाली, (अथो) और (यस्याः मुखम्) जिसके मुख में (अयः) लोहे का फल लगा रहता है वह (पर्जन्यरेतसे) मेघ के जल से सिंचकर वृद्धि पाती है उसको ही हम (बृहत् नमः) बड़ा शत्रु नमाने का साधन बनाते हैं उसी प्रकार (या) जो स्त्री (आलाक्ता = आरक्ता वा आरा-अक्ता) ईषत् अनुराग से युक्त (रुरु-शीर्ष्णी) हरिण के समान शिर, मुख नयनों से युक्त, (अथो यस्य मुखम् अयः) और जिसका मुख सुवर्ण अलंकार से सुभूषित हो, ऐसी (पर्जन्य-रेतसे) तृप्ति, सुख देने वाले प्रिय पुरुष के वीर्य के धारण करने वाली (इष्वै) मनोकामना

युक्त (देव्यै) उत्तम विदुषी स्त्री को प्राप्त करने अर्थात् गृहस्थ बसाने के लिये हम (बृहत् नमः) बहुत आदर, अन्नादि से ग्रहण करें। सेनापक्ष में—जो सेना (आलाक्ता—आरा-अक्ता) आरा अर्थात् शस्त्रों से सुशोभित (रुरु-शीर्ष्णी) हितकारी सिंहवत् पराक्रमी नेताओं को अपने प्रमुख शिरोमणि पद पर नियुक्त करने वाली है (यस्याः) जिसका (मुखम् अयः) मुख लोह के समान तीक्ष्ण और कठिन है, उस (इष्वै देव्यै) प्रेरणा करने योग्य, युद्ध करने में कुशल (पर्जन्य-रेतसे) शत्रु को जीतने वाले वीर पुरुषों के पराक्रम वाली सेना का हम (बृहत् नमः) सदा आदर करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शरव्ये) वाण दूर तक फेंकने में कुशल सेने ! वाण जिस प्रकार (अव-सृष्टा परा पतति) छूट कर दूर पड़ता है और शत्रुओं को पहुंचकर उनका नाश करता है उसी प्रकार हे सेने ! तू भी (अव-सृष्टा) शत्रु पर पड़कर (परा पत) दूर २ तक जा और हे (ब्रह्म-संशिते) 'ब्रह्म', वेदज्ञ सेनानायक वा 'ब्रह्म' अर्थात् धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिये अति तीक्ष्ण तू (अमित्रान् गच्छ) शत्रुओं को लक्ष्य करके जा, (तान् प्रपद्यस्व) उनतक पहुंच और (अमीषां) उनमें से (कं चन मा उत् शिषः) किसी को भी मत बचा रहने दे।

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु १७

भा०—जिस गृह में (वि-शिखाः) विना शिखा के, चूड़ा कर्म करने के उपरान्त मुंडित (कुमाराः सं पतन्ति) बालक आते हैं वहां जिस प्रकार (ब्रह्मणः पतिः) वेद का पालक विद्वान् और (अदितिः) माता पिता सदा ही (शर्म यच्छन्ति) सुख प्रदान करते हैं उसी प्रकार (यत्र) जिस रण में (कुमाराः) बुरी मार मारने वाले (वि-शिखाः) विना शिखा वा

विविध चोटियों या विशेष तीक्ष्ण शिखा वाले, पैने, (बाणाः सम्पतन्ति) बाण एक साथ बहुत से आ गिरते हैं (तत्र) वहां (ब्रह्मणः पतिः) धनैश्वर्य, वेद और बड़े राष्ट्र का पालक (अदितिः) अखण्ड चरित्र और राज्य का स्वामी होकर (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख शान्ति दे। (विश्वाहा शर्म यच्छतु) वह सदा ही हमें शान्ति दे।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे वीर योद्धः ! हे नायक ! (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढकता हूं। (राजा सोमः) राजा, तेजस्वी, 'सोम' ऐश्वर्यवान् पुरुष (त्वा) तुझे (अमृतेन) अन्नादि से (अनु वस्ताम्) और भी सुरक्षित करें। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रधान (ते) तेरे लिये (उरोः वरीयः कृणोतु) बहुत २ धन प्रदान करे। (जयन्तं त्वा अनु) विजय करते हुए तेरे पीछे २ (देवाः) अन्य सब उत्तम मनुष्य (मदन्तु) हर्षित हों।

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥ १९ ॥ २२ ॥ ६॥६॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारा (स्वः) अपना (अरणः) विना रण वा संग्राम के ही, विना युद्ध के ही है, जिससे कोई हमारा झगड़ा भी नहीं, या जो (अरणः) हमें अच्छा या प्रिय नहीं लगता, (यः च) और जो (नि-स्त्यः) छिपा या दूर रह कर भी (नः) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है (तं) उस शत्रु पुरुष को (सर्वे) समस्त (देवाः) युद्धकुशल विजयेच्छु पुरुष (धूर्वन्तु) विनाश करें। (मम) मेरा (अन्तरं) समीप, अति निकटतम (वर्म) कवच (ब्रह्म) बहुत बड़ा, महान् चेतन ही है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

❀ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ❀

❀ ओ३म् ❀

अथ सप्तमं मण्डलम्

[१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१—१८ एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड्गायत्री । १९—२५ त्रिष्टुप् ॥ पंचविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निं नरो॒ दीधि॑तिभिर॒रण्यो॒र्हस्त॑च्युती जनयन्त प्रश॒स्तम् । दू॒रे॒दृशं॑ गृ॒हप॑तिमथ॒र्युम् ॥ १ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (दीधितिभिः) अंगुलियों से और (हस्त-च्युती) हाथों से घुमा २ कर (अरण्योः) दो अरणि काष्ठों में ऐसे (अग्निं जनयन्त) अग्नि को उत्पन्न करें जो (प्रशस्तम्) सब से उत्तम (दूरे-दृशं) दूरसे दीखने योग्य और (अथर्युम्) जो पीड़ा कष्ट भी न दे । उसी प्रकार (नरः) नायक लोग (हस्त-च्युती) हनन साधन, शस्त्रास्त्रों के सञ्चालन द्वारा शत्रुओं का नाश करके (अरण्योः) उत्तरारणि, और अधरा-रणिवत् पूर्वपक्षी उत्तर पक्ष के दोनों दलों में से (दीधितिभिः) कर्मों को धारण करने में समर्थ सहायसहित वा उसके गुणों, प्रकाशक स्तुतियों से (प्रशस्तम्) गृह के स्वामीवत् राष्ट्र पालक (अग्निं) अग्रणी नायक और तेजस्वी पुरुष को (जनयन्त) प्रकट करें । अर्थात् गार्हपत्याग्नि को अरणियों से मथकर जिस प्रकार स्थापन करे उसी प्रकार राज्यशासनार्थ परस्पर वादविवाद के अनन्तर गुणवान् तेजस्वी पुरुष को नायक पद पर स्थापित करें ।

तम॒ग्निमस्ते॒ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्वन्त्सुप्रति॒चक्ष॒मव॑से॒ कुत॑श्चित् । द॒क्षाय्यो॒ यो दम॒ आस॒ नित्यः॑ ॥ २ ॥

भा०—(वसवः अग्निम् अस्ते कुतश्चित् नि ऋण्वन्) जिस प्रकार

नये बसने वाले गृहाश्रम में प्रविष्ट जन कहीं से भी अग्नि को लेकर स्थापित करते हैं वह (दक्षाय्यः नित्यः दमे आस) सब कर्म करने हारा, पूजनीय होकर गृह में नित्य रूप से रहता है उसी प्रकार (यः) जो (नित्यः) सदा स्थिर, (दक्षाय्यः) चतुर विद्वान्, पूजनीय, होकर (दमे आस) प्रजाओं के दमन करने में लगा रहे (तम्) ऐसे (सु-प्रति-चक्षम्) प्रत्येक कार्य, प्रत्येक बल-विद्या को उत्तम रीति से देखने वाले (कुतश्चित्) कहीं से, भी किसी भी कुल से उत्पन्न पुरुष को (अग्निम्) अग्रणी ज्ञानी, नायक रूप से (वसवः) राष्ट्र में बसी समस्त प्रजाएं (अवसे) राष्ट्र की रक्षा के लिये (नि-ऋण्वन्) नियुक्त करें।

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! अग्रणी नायक ! तू (प्र-इद्धः) अच्छी प्रकार प्रकाशित, अग्नि के समान दीप्तिमान्, युद्धक्रीड़ा और व्यवहार में कुशल होकर (नः पुरः) हमारे आगे (सूर्म्या) उत्तम क्रियाओं और वाणी से, (दीदिहि) चमक और हे (यविष्ठ) अति बलवन् ! युवक ! (त्वां) तुझ को (शश्वन्तः) नित्य, अनेक (वाजाः) जानने और प्राप्त करने योग्य पदार्थ, ज्ञान, ऐश्वर्यादि (उप-यन्ति) प्राप्त होते हैं।

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निभ्यः अग्नयः) पूर्व विद्यमान कारण रूप अग्नियों से उत्पन्न होकर जिस प्रकार अन्य कार्य रूप अग्नियें भी (द्यु-मन्तः) तेजोयुक्त होकर (शोशुचन्त) खूब चमकती हैं उसी प्रकार (अग्निभ्यः) अपने अग्रणी विद्वानों से (वरं) श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करके (द्युमन्तः) तेजस्वी, ज्ञानप्रकाश से युक्त होकर (अग्नयः) विद्वान् जन (निः शोशुचन्त) खूब

चमकें, तेजस्वी बनें और उस उत्तम पद को प्राप्त हों, (यत्र) जहां (सु-जाताः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध, सुविख्यात (नरः) प्रधान, अग्रगण्य पुरुष (सम् आसते) एकत्र होकर विराजते हैं।

दा नो॑ अग्ने धि॒या र॒यिं सु॒वीरं॑ स्वप॒त्यं स॑हस्य प्रश॒स्तम्।
न यं यावा॒ तर॑ति यातु॒मावा॑न् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार (धिया) कर्म द्वारा (प्रशस्तं) उत्तम (सु-वीरं) सुख से बहुतों को सञ्चालित करने में समर्थ (स्व-पत्यं) अपना ऐसा वेगयुक्त (रयिं) बल उत्पन्न करता है (यं यावा) पैरों से जाने वाला वा (यातुमावान्) यानसाधनों अश्वादि का स्वामी भी पार नहीं करता अर्थात् विद्युत् से उत्पन्न यन्त्रवेग का पैदल वा सवारी भी मुकाबला नहीं कर सकती, इसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! तू (धिया) उत्तम बुद्धि और कर्मकौशल से (नः) हमें (सुवीरं) उत्तम वीरों से समृद्ध (स्वपत्यं = सु-अपत्यं) उत्तम सन्तान से युक्त (प्रशस्तं रयिम्) प्रशंसनीय ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर (यं) जिसका (यावा) आक्रमणकारी और (यातुमा वान्) प्रयाण या पीड़ा देने में मेरे समान बल-सामर्थ्य वाला अन्य पुरुष वा सामान्य जन (न तरति) पार न कर सके, वैसा ऐश्वर्य न पासके, उसकी तुलना भी न कर सके। इति त्रियोविंशो वर्गः ॥

उप॒ यमेति॑ युव॒तिः सु॒दक्षं॑ दो॒षा वस्तो॑र्ह॒विष्म॑ती घृ॒ताची॑।
उप॒ स्वैन॑म॒रम॑तिर्वसू॒युः ॥ ६ ॥

भा०—(हविष्मती घृताची दोषा वस्तोः सुदक्षं) घृत, चरु आदि हविष्यान्न से युक्त, घृत से पूर्ण आहुति जिस प्रकार दिन रात्रि, सायं प्रातः उत्तम दाह करने वाले अग्नि को प्राप्त होती है और (युवतिः दोषा वस्तोः) युवति स्त्री जिस प्रकार दिन रात्रि काल में निवासार्थ उत्तम कुशल पुरुष के पास (हविष्मती) उत्तम अन्न का भोजन कर (घृताची) घृत आदि स्निग्ध पदार्थ अंग में लगाकर (उप एति) प्रिय

पुरुष को प्राप्त होती है और जिस प्रकार (वसू-युः) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक युवा पुरुष को चाहने वाली (अरमति) पूर्व रति को न प्राप्त हुई, ब्रह्मचारिणी (स्वा) स्वयं (उप एति) प्राप्त होती है उसी प्रकार (यम्) जिस (सु-दक्षं) उत्तम कर्मकुशल, अग्नि के समान प्रतापी पुरुष को (हविष्मती) ग्राह्य अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त (घृताची) तेज, अन्नादि से पूर्ण भूमि या प्रजा (उपएति) प्राप्त होती है, (वसू-युः) अपने बसाने वाले प्रभु और नाना धनों की कामना करती हुई (अरमतिः) अन्य कहीं विश्राम सुख न पाकर (स्वा) उसकी निजी सम्पत्ति सी बन कर (एनम्) उसको ही (उप एति) प्राप्त होती है।

विश्वा॑ अग्ने॒ऽप॑ द॒हारा॑ती॒र्येभि॒स्तपो॑भि॒रद॑हो॒ जरू॑थम्।
प्र नि॒स्व॒रं चा॑तय॒स्वामी॑वाम् ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (तपोभिः) अपने तीक्ष्ण तापों से (जरूथम्) जीर्ण, सूखे घास या काठ को जला देती है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्विन् नायक ! तू भी (येभिः) जिन (तपोभिः) संतापदायक शस्त्रास्त्रादि साधनों से (जरूथं) परुषभाषी शत्रु को (अदहः) दग्ध करो। उनसे ही (अरातीः) अन्य शत्रुओं को भी (अप दह) भस्म कर और शत्रु को (अमीवाम्) कष्टदायक रोग के समान (नि-स्वरं) निः शब्द, मूक, कुछ, न कहने लायक, मृतवत् करके (चातयस्व) पीड़ित कर और उसे नष्ट कर।

आ यस्ते॑ अग्न इ॒धते॒ अनी॑क॒म् वसि॑ष्ठ॒ शुक्र॒ दीदि॑वः॒ पाव॑क।
उ॒तो न॑ ए॒भिः स्त॒वथै॑रि॒ह स्याः॑ ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि वा विद्युत् अपने चमकाने वाले पुरुष को ही प्राप्त होता है उसको उत्तम प्रकाश आदि कार्य भी देता है उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! विद्वन् ! हे (वसिष्ठ) बसने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! हे (शुक्र) कान्तिमन् शुक्र ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् !

हे (पावक) अग्निवत् पंक्तिपावन ! अन्यों के दोषों के शोधक ! (यः) जो (ते) तेरे (अनीकं) तेजोवत् सैन्य बल को (आ इधते) अति दीप्त करता है, उसे उत्तेजित वा बलवान् बनाता है उस प्रजावर्ग (उत) और (नः) उनके समान हमें भी (एभिः स्तवथैः) इन स्तुति योग्य वचनों, कर्मोंसहित (इह स्याः) यहां प्राप्त हो।

वि ये ते॑ अग्ने भेजि॒रे अनी॑कं॒ मर्ता॒ नरः॒ पित्र्या॑सः पुरु॒त्रा।
उ॒तो न॑ ए॒भिः सु॒मना॑ इ॒ह स्याः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(उत) और हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रतापवन् ! सेनापते ! (ये) जो (मर्त्ताः) मनुष्य (नरः) नेता रूप से (पुरु-त्रा) बहुत से पदों पर (पित्र्यासः) माता पिता के पद के योग्य, उन सदृश प्रजा के पालक होकर (ते अनीकं) तेरे सैन्य को (भेजिरे) बनाते हैं (एभिः) उनके साथ ही तू (नः) हमें (सुमनाः) शुभ चित्तवान् होकर (इह स्याः) इस राष्ट्र में रह।

इ॒मे नरो॑ वृत्र॒हत्ये॑षु॒ शूरा॒ विश्वा॒ अदे॑वीर॒भि स॑न्तु मा॒याः।
ये मे॒ धियं॑ प॒नय॑न्त प्रश॒स्ताम् ॥ १० ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन् (ये) जो (मे) मुझ राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (प्रशस्तां) अति उत्तम (धियं) बुद्धि को (पनयन्त) उपदेश करते हैं (इमे) ये (नरः) उत्तम लोग (शूराः) शूरवीर होकर (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं को मारने के निमत्त संग्रामों में (विश्वाः) समस्त (अदेवीः) अशुभ (मायाः) शत्रुकृत छलादि वञ्चनाओं को (अभि सन्तु) पराजित कर दूर करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

मा शूने॑ अग्ने॒ नि ष॑दाम नृ॒णां माशेष॑सो॒ऽवीर॑ता॒ परि॑ त्वा।
प्र॒जाव॑तीषु॒ दुर्या॑सु दुर्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणीनायक ! तेजस्विन् ! राजन् ! हे (दुर्य)

गृहों के स्वामिन् ! हम (अशेषसः) विना पुत्र सन्तानादि के होकर (शूने) सुखयुक्त, सम्पन्न, वा शून्य गृह में भी (मा नि सदाम) कभी न बैठें। और (नृणां) मनुष्यों के बीच में हम (त्वा परि) तेरे अधीन रहते हुए (अवीरता) वीरता से रहित होकर भी (मा नि सदाम) उच्च प्रतिष्ठा को प्राप्त न करें। और (प्रजावतीषु दुर्यासु) प्रजाओं से युक्त गृह में बसी स्त्रियों के बीच रहते हुए भी हम (अशेषसः अवीरता) मा निषदाम) पुत्रादि से रहित और वीर्य शौर्यादि से रहित होकर घरों में न बैठे रहें, प्रत्युत हम पुत्रवान्, वीर, और प्रजावान् हों।

यम॒श्वी नित्य॑मुप॒याति॑ य॒ज्ञं प्र॒जाव॑न्तं स्वप॒त्यं क्षयं॑ नः ।
स्वज॑न्मना॒ शेष॑सा वावृ॒धा॒नम् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् यज्ञम्) जिस यज्ञ को (अश्वी) इन्द्रियरूप अश्वों का स्वामी, जितेन्द्रिय पुरुष (नित्यम् उप याति) नित्य प्राप्त करता है, और (यम् प्रजावन्तं) जिसको प्रजा से युक्त (क्षयं) बसे हुए (स्वपत्यं) अपने अधिपतित्व में विद्यमान देश के (अश्वी) अश्व सैन्य का स्वामी राजा प्राप्त होता है, और जो यज्ञ और निवास योग्य गृह (स्व-जन्मना) अपने से जन्म लाभ करने वाले (शेषसा) पुत्र और धन से (वावृधा-नम्) बढ़ते हुए को भी प्राप्त होता है उसी (प्रजावन्तं) पुत्रादि से समृद्ध (स्वपत्यं = सु—अपत्यं) उत्तम पुत्र युक्त और (स्व-जन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं) अपने वीर्य से उत्पन्न और सपुत्र से बढ़ते हुए यज्ञस्वरूप (क्षयं) गृह को (नः) हमें भी प्राप्त करा।

पा॒हि नो॑ अग्ने र॒क्षसो॒ अजु॑ष्टात्पा॒हि धू॒र्तेरर॑रुषो अघा॒योः ।
त्वा यु॒जा पृ॑तना॒यूँर॒भि ष्या॑म् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणीनायक, अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! आप (अजुष्टात्) धर्म का सेवन न करने वाले तथा अप्रीति युक्त

(रक्षसः) अतिक्रोधी, अतिहिंसक, (आघायोः) पापाचारी, पापमय जीवन व्यतीत करने वाले, सदा अन्यों पर पाप, छल हत्यादि का प्रयोग करने वाले दुर्जन से भी (नः पाहि) हमारी रक्षा करो। मैं (त्वा युजा) तुझ सहायक से (पृतनायून) सेना वा संग्राम के इच्छुक शत्रुओं को भी (अभि स्याम्) पराजित करने में समर्थ होऊं।

सेद॒ग्निर॒ग्नीँरत्य॑स्त्व॒न्यान्यत्र॑ वा॒जी तन॑यो वी॒ळुपा॑णिः।
स॒हस्र॑पाथा अ॒क्षरा॑ स॒मेति॑ ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य सब अग्नियों से बढ़ कर (अग्निः) यज्ञाग्नि (वाजी) अन्नादि आहुति युक्त, और (सहस्रपाथाः) अनेक विध अन्नों वाला अनेक किरणों से जल पीकर और (अक्षरा समेति) मेघ के उदकों सहित प्राप्त होता है उसी प्रकार (यत्र) जहां (अग्निः) विद्वान् तेजस्वी नायक (अन्यान् अग्नीन् अति) अन्य तेजस्वी पुरुषों को अति क्रमण करके स्वयं (वाजी) बलवान् (तनयः) प्रजाजनों का पुत्रवत् प्रेमपात्र और (वीळु-पाणिः) वीर्यवान् हाथों वाला या वीर्यवान् सैन्य जनको अपने हाथ में वश करता हुआ हो, वहां (सः इत् अग्निः) वही सच्चा 'अग्नि' है। वह ही (सहस्र-पाथः) सहस्रों जनों का पालक वा अन्नों और पालनसाधनों से समृद्ध होकर (अक्षरा) न नाश होने वाली नदियों के समान सदाबहार प्रजाओं को (सम् एति) प्राप्त होता है।

सेद॒ग्निर्यो व॑नुष्य॒तो नि॒पाति॑ स॒मे॒द्धार॒मंह॑स उरु॒ष्यात्।
सु॒जा॒तासः॒ परि॑ चरन्ति वी॒राः ॥ १५ ॥ २५ ॥

भा०—(यः) जो (वनुष्यतः) याचना, अर्थात् शरण, अन्न, आजीविकादि चाहने वालों को (निपाति) रक्षा करता है और (समेद्धारम्) अपने को प्रदीप्त, प्रज्वलित, बलवान् करने वाले को (अंहसः) पाप से (उरुष्यात्) रक्षा करे। अथवा—(यः) जो (समेद्धारम्)

अपने को प्रदीप्त करने वाले पुरुष को (वनुष्यतः) हिंसक पुरुष से और (उरुष्यात् अंहसः) महान् पापाचार से भी (नि पाति) बचा लेता है और जिसको (सु-जातासः) उत्तम कर्मों में जन्म लेने वाले (वीराः) वीर, विद्योपासक द्विज, शिष्य, (परिचरन्ति) सेवा करते हैं (सः इत् अग्निः) वह गुरु भी अग्निवत् तेजस्वी है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् । परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि को (ईशानः यम् सम्-इन्धे) सब जगत् का स्वामी परमेश्वर सूर्य विद्युत् से खूब प्रज्वलित करता है और (यम् होता अध्वरेषु परि एति) जिस प्रकार अग्नि को आहुतिदाता अध्वर अर्थात् हिंसारहित यज्ञादिकर्मों में प्राप्त होता है उसी प्रकार (यम्) जिस प्रतापी पुरुष को (हविष्मान्) नाना अन्नादि का स्वामी (ईशानः) राष्ट्र का बड़ा स्वामी (सम् इन्धे इत्) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करता है और (यम्) जिसका (अध्वरेषु) प्रजापालन अध्ययनाध्यापनादि हिंसारहित, प्रजाशिष्यादिपालन कार्यों में (होता) कर आदि देने और विद्यादि ग्रहण करने वाला प्रजा वा शिष्यादि जन (परि एति) परिचर्या करता है (सः) वह ही (अयम्) यह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान्, प्रकाशक पुरुष (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (आहुतः) आदर पूर्वक स्वीकार करने योग्य है।

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या । उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार हम लोग (मियेधे) पवित्र यज्ञ में (आहवनानि) आहुति करने योग्य अन्नादि (आ जुहुयाम) आहुति करते हैं, उसी प्रकार (ईशानासः) ऐश्वर्ययुक्त होकर भी हे विद्वन् ! हम लोग (त्वे) तेरे अधीन (नित्या आहवनानि)

नित्य, सदा आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम वचन, वा अन्न वस्त्रादि भी (आ जुहुयाम) आदरपूर्वक दिया करें और (मियेधे) पवित्र यज्ञादि के अवसर पर भी (वहतू) कार्य या गृहस्थाश्रम के भार को धारण करने वाले विवाहित वर वधू या यजमान पुरोहित (उभा) दोनों को भी (आ कृण्वन्तः) सन्मुख करते हुए (त्वे आ जुहुयाम) अग्निवत् तुझ में दान आदि दें।

इमो अ॑ग्ने वी॒तत॑मानि ह॒व्याज॑स्रो वक्षि दे॒वता॑ति॒मच्छ॑।
प्रति॑ न ईं सुर॒भीणि॑ व्यन्तु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! प्रतापयुक्त ! विद्वन्, ज्ञानवन् ! जिस प्रकार अग्नि (देवतातिम् हव्या वहति) यज्ञ को प्राप्त कर उसमें हव्य चरु आदि ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (इमा) ये (वीत-तमानि) उक्त कामना योग्य (हव्या) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को (वक्षि) धारण कर और (वीत-तमानि हव्या) खूब ज्ञानप्रकाशक, कामना योग्य, सुन्दर, ग्राह्य ज्ञानों का (वक्षि) धारण कर, दूसरों तक पहुंचा और उपदेश कर। तू (अजस्रः) अहिंसित, अपीड़ित होकर (देवतातिम् अच्छ) शुभ गुणों को प्राप्त कर और (नः) हमें (सुरभीणि) उत्तम शक्तिप्रद अन्न (ईम्) सब प्रकार से (प्रति व्यन्तु) प्रति दिन प्राप्त हों।

मा नो॑ अग्ने॒ वीर॑ते॒ परा॑ दा दु॒र्वास॒सेऽम॑तये॒ मा नो॑ अ॒स्यै।
मा नः॑ क्षु॒धे मा र॒क्षस॑ ऋतावो॒ मा नो॒ दमे॒ मा वन॒ आ जु॑हूर्थाः ॥१९॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे विद्वन् ! हे प्रभो ! (नः) हमें (अवीरते) वीरों से रहित सैन्य में, वा देश में, (मा परा दाः) मत छोड़। (दुर्वाससे) बुरे, मैले कुचैले वस्त्र पहनने के लिये वा मलिन वस्त्र धारण करने वाले के लाभ के लिये और (अस्यै अमतये) इस मूढ़ता या मति रहित मूर्ख पुरुष के सुख के लिये (नः मा परा दाः) हमें

मत त्याग अर्थात् तू हमें मैला कुचैला और मूढ़ मत रहने दे और न मैले कुचैले और मूर्ख के पल्ले डाल। हे विद्वन्! (क्षुधे नः मा परा दाः) भूख से पीड़ित होने के लिये या भूखे के आगे भी हमें मत डाल हे (ऋतावः) सत्य, न्यायशील! ऐश्वर्यवन्! तू हमें (रक्षसे मा परा दाः) दुष्ट राक्षस पुरुष के सुख के लिये भी मत त्याग। (नः) हमें (दमे मा आ जुहूर्थाः) घर में भी पीड़ित न होने दे और (नः वने मा आ जुहूर्थाः) हमें वन में भी मत त्याग।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २०।२६

भा०—हे (देव) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले! (अग्ने) अग्निवत् तत्व को प्रकाशित करने हारे विद्वन्! (त्वं) तू (मे) मेरे हित के लिये (ब्रह्माणि) उत्तम २ ज्ञानमय वेदमन्त्रों का (उत् शशाधि) उत्तम रीति से शासन कर। हे विद्वन्! तू (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों के हितार्थ भी (ब्रह्माणि उत् शशाधि) ज्ञानमय वेद मन्त्रों का उपदेश कर और (सु-सूदः) दुःखों को दूर कर। हम (उभयासः) विद्वान् और अविद्वान् दोनों जन (ते रातौ आ स्याम) तेरे दान में समर्थ हों। हे विद्वान् जनो! (यूयम्) आप सब लोग (नः) हमें सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणजनक साधनों से (पात) रक्षा करो।
इति षड्विंशो वर्गः ॥

त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्सुदीती सूनो सहसो दिदीहि।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ् मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् २१

भा०—जिस प्रकार (सहसः सूनुः अग्निः रण्वसंदृक् सुदीती दीप्यते) बलपूर्वक उत्पन्न किया अग्नि, विद्युत्, उत्तम कान्ति से चमकता और रम्य रूप से दीखता और रम्य पदार्थों को दिखाता है। वह (मा अधङ्) हमें भस्म न करे और (मा वि दासीत्) किसी प्रकार पीड़ा न पहुंचावे

उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी पुरुष ! (त्वं) तू (सु-हवः) उत्तम दानशील, और उत्तम गुणों और पदार्थों का ग्रहण और भोजन करने हारा वा शुभ नामा तथा (रण्व-संदृक्) रमणीय, रूप से दीखने और उत्तम सुखजनक उपायों वा रम्य आत्मतत्व को ठीक प्रकार से सम्यक्-दृष्टि से देखने हारा हो । हे (सहसः सूनो) बलवान् वीर्यवान् पुरुष के पुत्र ! एवं उत्तम बल सैन्यादि के संचालक ! तू (सुदीती) उत्तम दीप्ति से (दिदीहि) चमक और सबको प्रिय लग। (सचा) सम्बन्ध से (त्वे तनये) तेरे सदृश पुत्र रहने पर तू अपने पितृजनों को (मा आ धक्) दग्ध न कर, अपने दुराचरणों और कुलक्षणों से माता पिता को न सता। इसी प्रकार (वीरः नर्यः) हमारा पुत्र वीर और मनुष्यों का हितकारी होकर (मा वि दासीत्) विनष्ट न हो।

मा नो॑ अग्ने दु॒र्भृ॑तये॒ सचै॒षु दे॒वेद्धे॒ष्व॒ग्निषु॒ प्र वो॑चः ।
मा ते॑ अ॒स्मान्दु॑र्म॒तयो॑ भृ॒माच्चि॑द्दे॒वस्य॑ सूनो सहसो नशन्त ॥२२॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! तू (सचा) हमारा सहयोगी होकर (देवेद्धेषु अग्निषु) उत्तम विद्वान् पुरुषों वा उत्तम गुणों से प्रदीप्त हुए अग्निवत् तेजस्वी पुरुषों के होते हुए भी (नः) हमें (दुर्भृतये) दुःख वा कष्ट से अपना भरण पोषण करने के लिये, वा दुःख से भरण पोषण करने वाले कुस्वामी की सेवा के लिये (मा प्र वोचः) कभी मत कह। हे (सहसः सूनो) बलवान् के पुत्र ! बल के सञ्चालक ! (देवस्य) तेजस्वी वा आखेट, द्यूत, रति आदि क्रीड़ाशील (ते दुर्मतयः) तेरी दुष्ट बुद्धि या, दुर्विचार (भृमात् चित्) भ्रम से, भूल कर भी (अस्मान् मा नशन्त) हमें प्राप्त न हों अर्थात् राजा के दुर्व्यसन प्रजा में न आवें और न उनको कष्टदायक हों। भूल कर भी राजा अपने व्यसनों से प्रजा को पीड़ित न करे। प्रजा के कन्धे चढ़कर अपने दुर्व्यसनों की पूर्त्ति न करे।

स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥ २३ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (अमर्त्ये) न मरने वाले, अविनाशी आत्मा वा परमेश्वर में (हव्यम्) अग्नि में हव्य के समान देने योग्य चित्त की (आ जुहोति) आहुति देता है हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम बल-शालिन् ! स्वप्रकाश अग्ने ! (सः मर्त्तः) वह मनुष्य (रेवान्) रयि अर्थात् भौतिक देहांश का उत्तम स्वामी होकर रहता है । (यं) जिस परमेश्वर को (सूरिः) विद्वान् ज्ञानी और (अर्थी) अभ्यर्थना करने वाला, अर्थार्थी, वा ज्ञानार्थी कामनायुक्त पुरुष (पृच्छमानः) विद्वानों से ब्रह्म विषयक शक्तियों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का देने हारा पुरुष (वसु-वनिं) उत्तम ऐश्वर्य, समस्त जीवगणों को (दधाति) न्यायानुसार प्रदान करता है । उसी प्रकार हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम सैन्य के स्वामिन् ! राजन् ! जो तुझे विशेष जानकर कर आदि देता है वह राष्ट्रवासी जन धनसम्पन्न हो जाता है । (सः) और वह अर्थी, धनार्थी और न्यायार्थी उसके पास धर्म वा व्यवहार विषयक प्रश्न करता हुआ आता है, वह देवस्वरूप राजा उसके धनादि का न्यायपूर्वक विभाग करे ।

महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वानूयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू (नः) हमारे (सुवितस्य) सुख-दायक कल्याणहित का (विद्वान्) जानने हारा, (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लाभ के लिये (बृहन्तं रयिम्) बहुत बड़ा ऐश्वर्य (आ वह) प्राप्त कर और धारण कर । हे (सहसावन्) बल से राष्ट्र पर प्रभुत्व करने हारे ! (येन) जिस ऐश्वर्य से (वयम्) हम (अविक्षितासः) विना क्षीण हुए (मदेम) प्रसन्न हों और (आयुषा) दीर्घ जीवन से युक्त और (सु-वीराः) उत्तम वीर और उत्तम पुत्रों वाले हों ।

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥२७॥१

भा०—व्याख्या देखो (मं० ७। सू० १। मन्त्र २०) इति सप्तविंशो वर्गः॥ इति प्रथमोऽध्यायः॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

[२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ आप्रं देवता॥ छन्दः—१, ६ विराट्त्रिष्टुप्। २, ४ त्रिष्टुप्। ३, ६, ७, ८, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ पंक्तिः॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन्।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! अग्रणी पुरुष! तू (नः) हमारे (समिधम्) काष्ठ को अग्नि के समान अच्छी प्रकार मिलकर तेजस्वी होने के साधन को (जुषस्व) प्राप्त कर, तेजस्वी बन। (अद्य) आज (बृहत्) बड़े भारी (यजतं) संगति या परस्पर के सम्मिलित सम्मेलन को (शोच) उज्ज्वल, सुशोभित कर। और धूम के समान (धूमम्) शत्रु को कंपित करने वाले सामर्थ्य को (ऋण्वन्) प्रदान करता हुआ, (स्तूपैः) रश्मियों से सूर्य के समान प्रतापी होकर (स्तूपैः) स्तुत्य गुणों से (दिव्यं सानु) कान्तियुक्त ऐश्वर्य वा उत्तम पद को (उपस्पृश) प्राप्त कर। और (रश्मिभिः) रश्मियों से (सूर्यस्थ) सूर्य के समान तेज को (सं ततनः) विस्तारित कर।

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या॥२॥

भा०—(ये) जो (सु-क्रतवः) उत्तम कर्म करने वाले (शुचयः) शुद्ध आचार-चरित्रवान् (धियं-धाः) उत्तम कार्यों और उत्तम बुद्धि को धारण करने वाले, (देवाः) विद्वान् पुरुष (उभयानि) शरीर और आत्मा दोनों को पुष्ट करने वाले, (हव्या) ग्राह्य पदार्थ, अन्नों और ज्ञानों का (स्वदन्ति) आस्वाद लेते हैं (एषाम्) उनकी और (यज्ञैः) उत्तम यज्ञों दानों, आदर सत्कारों से (यजतस्य) सत्कार करने योग्य (नराशंसस्य) मनुष्यों से स्तुति योग्य पुरुष के (महिमानम्) बड़े भारी सामर्थ्य की हम (उप स्तोषाम) स्तुति करें, उनके गुणों का सर्वत्र वर्णन और उपदेश किया करें।

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम्।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (नः) आप लोगों में से (ईडेन्यम्) स्तुति योग्य, (असुरं) मेघ के समान जीवन-प्राण के देने वाले, बलवान्, (सुदक्षं) उत्तम कर्मकुशल, अग्निवत् तेजस्वी, (रोदसी अन्तः) भूमि और आकाश दोनों के बीच (दूतम्) सूर्यवत् प्रतापी, (सत्य-वाचम्) सत्य वाणी के बोलने वाले, (मनुष्वत्) मननशील विद्वान् के समान (अग्निं) अग्रणी ज्ञानी, (मनुना) मननशील पुरुषों द्वारा वा ज्ञान से (समिद्धं) अच्छी प्रकार अग्नि के समान ही प्रज्वलित वा प्रसिद्ध पुरुष को (अध्वराय) हिंसा से रहित, प्रजापालन, अध्ययनाध्यापनादि उत्तम कार्य के लिये, अग्नि के तुल्य ही (सदम्-इत्) सदा ही (सं महेम) अच्छी प्रकार आदर सत्कार करें।

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अध्वर्यवः) यज्ञ करने वाले विद्वान्, (घृत-

पृष्ठं आ-जुह्वानाः) घृत से सिंचे, एवं तेजोयुक्त अग्नि में आहुति करते हुए (अभि-ज्ञु) आगे गोडे किये, पालथी मार कर बैठते और (नमसा) अन्नादि से युक्त (बर्हिः अग्नौ प्र वृञ्जते) चरु को अग्नि में त्यागते हैं उसी प्रकार (सपर्यवः) सेवा-परिचर्या करने वाले, (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजा को (भरमाणाः) भरण पोषण करते हुए, (अभि-ज्ञु) अपने अभिमुख गोड़े किये, सभ्यतापूर्वक आसन पर विराज कर, (अग्नौ) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर, (नमसा) वज्र, वा बल वीर्य के द्वारा (प्र वृञ्जते) उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक धनादि का विभाग करते हैं। और आप (घृत-पृष्ठं) तेजस्वी पुरुष को (आजुह्वानाः) आदर पूर्वक अपना अध्यक्ष स्वीकार करते हुए (पृषद्-वत) सेचनकारी मेघों के समान (हविषा) ग्राह्य ज्ञान से अपने को (मर्जयध्वम्) शुद्धाचारवान् बनाओ।

स्वाध्यो॒३॑वि दुरो॑ देव॒यन्तोऽशि॑श्रयू रथ॒युर्दे॒वता॑ता ।
पूर्वी॑ शिशुं॒ न मा॒तरा॑ रिहा॒णे सम॒ग्रुवो॒ न सम॑नेष्वञ्जन् ॥५॥१॥

भा०—(पूर्वी मातरा) पूर्व विद्यमान माता और पिता (शिशुं न) दोनों जिस प्रकार बालक को (रिहाणे) नाना भोज्य पदार्थ का आस्वादन कराते हुए उसको (समङ्क्तः) अच्छी प्रकार अभ्यङ्ग-मर्दनादि से चमकाते हैं और (समनेषु) संग्रामों में जिस प्रकार (अग्रुवः) आगे २ बढ़ने वाली सेनाएं (सम् अंजन्) अपने नायक के गुणों को चमकातीं, उसको प्रसिद्ध करती हैं उसी प्रकार (देवयन्तः) विद्वानों को चाहने वाले (स्वाध्यः) उत्तम ध्यान और चिन्ता करने वाले, (देवताता) विद्वानों के करने योग्य उत्तम कार्य में (रथयुः) वीर रथी के समान (दुरः अशिश्रयुः) उत्तम द्वारों का आश्रय लेते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

उ॒त योष॑णे दि॒व्ये म॒ही न॑ उ॒षासा॒नक्ता॑ सु॒दुघे॑व धे॒नुः ।
ब॒र्हि॒षदा॑ पुरुहू॒ते म॒घोनी॒ आ य॒ज्ञिये॑ सुवि॒ताय॑ श्रयेताम् ॥ ६ ॥

भा०—(सुदुघा-इव धेनुः) उत्तम दूध देने वाली गौ और वाणी के समान कल्याणकारक (दिव्ये योषणे) उत्तम गुणयुक्त युवा युवतीजन (उषासानक्ता न) दिन रात्रि के समान (बर्हि-सदा) उत्तम आसन पर विराजने वाले (पुरु-हूते) बहुतों से प्रशंसित, (मघोनी) ऐश्वर्यवान् और (यज्ञिये) दान, सत्संग योग्य होकर (सुविताय) कल्याण और उत्तम सन्तान को प्राप्त करने के लिये (श्रयेताम्) परस्पर का आश्रय लें।

विप्रा॑ य॒ज्ञेषु॒ मानु॑षेषु का॒रू मन्ये॑ वां जा॒तवे॑दसा॒ यज॑ध्यै।
ऊ॒र्ध्वं नो॑ अध्व॒रं कृ॑तं॒ हवे॑षु॒ ता दे॒वेषु॑ वनथो॒ वार्या॑णि ॥ ७ ॥

भा०—हे (विप्रा) विविध विद्यायुक्त, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (मानुषेषु यज्ञेषु) मनुष्यों के यज्ञों में (कारू) उत्तम कर्मशील, (जातवेदसा) ज्ञान और ऐश्वर्य से युक्त आप दोनों को (यजध्यै) प्रतिष्ठा करने योग्य (मन्ये) मानता हूं। आप लोग (नः) हमारे बीच यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों के बीच और (हवेषु) ग्रहण योग्य आश्रमों में से भी अपने (अध्वरं) हिंसारहित एवं अविनाशी यज्ञ भी (ऊर्ध्वं कृतम्) सबसे श्रेष्ठ करो। और (ता) उन नाना प्रकार के (वार्याणि) वरण योग्य धनों को (वनथ) प्राप्त करो।

आ भार॑ती॒ भार॑तीभिः स॒जोषा॒ इळा॑ दे॒वैर्म॑नु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः।
सर॑स्वती सारस्व॒तेभि॑र॒र्वाक् ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं सद॑न्तु ॥ ८ ॥

भा०—(भारती) सब शास्त्रों को अपने में धारण करने वाली, सर्वपालक, विद्या माता के समान वेद वाणी (भारतीभिः) विदुषी स्त्रियों के साथ और (इड़ा) स्तुति योग्य वाणी (मनुष्यैः देवैः) साधारण मनुष्यों और विशेष विद्वानों के साथ और (सरस्वती) विज्ञान युक्त वाणी (सारस्वतेभिः) विज्ञान युक्त वाणी के विद्वानों से (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त हों। (तिस्रः देवीः) तीनों प्रकार की विदुषी स्त्रियां (इदं

बर्हिः सदन्तु) इस वृद्धियुक्त राष्ट्र में वाक्, मन, प्राण शक्तियों के समान देह में (अर्वाक् सदन्तु) सबके समक्ष आदर प्राप्त करें।

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९॥

भा०—हे (देव) कामनायुक्त ! पुत्र की इच्छा करने और वीर्य-दान देने में समर्थ ! हे (त्वष्टः) तेजस्विन् ! हे प्रजा उत्पन्न करने हारे ! तू (रराणः) पत्नी के साथ रमण करता हुआ (नः) हमारे उपकार के लिये (तत्) उस (तुरीपम्) विनाश से बचानेवाले (पोषयित्नु) शरीर को पुष्ट करने वाले वीर्य को (वि स्यस्व) त्याग कर (यत्) जिससे (कर्मण्यः) कर्म करने में कुशल (सु-दक्षः) उत्तम चतुर, (युक्त-ग्रावा) विद्वानों का उपासक (देवकामः) विद्वानों का प्रिय, (वीरः) पुत्र (जायते) उत्पन्न होता है। इसी प्रकार (त्वष्टा) राज्य का कर्त्ता राजा सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, वह हिंसकों से बचाने वाले राष्ट्रपोषक सैन्यबल को जोड़कर (रराणः) रमण करता हुआ, गर्जन सहित शत्रु पर अस्त्र छोड़े। जिस से कर्मकुशल वीर पुरुष (युक्त-ग्रावा) क्षात्रबल और शस्त्रादि से युक्त होकर अपने दाता स्वामी का प्रिय होसके।

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के समान (वनस्पते) महावृक्ष, वटादि के समान आश्रित, शरण धनादि के याचकों के पालक ! राजन् ! एवं शत्रुओं के हिंसक सैन्य जनों के पति सेनापते ! (देवान्) सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्रकट करता है उसी प्रकार तू भी (देवान्) उत्तम गुणों को, ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुषों को और अग्नि, जल, पृथिवी आदि दिव्य तत्वों को तथा विद्या धनादि की कामना करने वाले शिष्यादि

जनों को भी (उप अव सृज) अपने समीप और अपने अधीन रख, उनको सन्मार्ग में चला, तथा उपभोग कर। (शमिता हविः सूदयाति) पाचक जिस प्रकार अन्न को पकाता और रसयुक्त करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्नि ही ऐसा है जो हमें (शमिता) शान्ति, सुख कल्याण का करने वाला होकर (हविः) ग्राह्य अन्नादि पदार्थ, को (सूदयाति) पकाता है, वही (हविः) देह में मुख के मार्ग से ग्रहण किये अन्न को रस बना कर देह के अंग २ में (सूदयाति) प्रवाहित करता है। इसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (शमिता) प्रजा वा राष्ट्र में शान्तिकारक होकर (हविः सूदयाति) अन्न, कर आदि को ग्रहण कर विभक्त करे। (सः इत् होता) वही, 'होता' देने और लेने में समर्थ (सत्य-तरः) सत्य, न्याय के बल से स्वयं सर्व श्रेष्ठ, एवं अन्यों को अज्ञान, दुःखों से पार करने वाला, होकर (यजाति) ज्ञान, न्याय और धनका यथोचित रूप से प्रदान करे, (यथा) क्योंकि वही (देवानां) देव, उत्तम गुणों, विद्वानों और विद्या के इच्छुक शिष्य, आदि के भी (जनमानि) यथार्थ रूपों, तथा जन्मों आदि को (वेद) जानता है।

आ या॑ह्यग्ने समिधा॒नो अ॒र्वाङिन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ तु॒रेभिः॑। ब॒र्हिर्न॒ आस्ता॒मदि॑तिः सुपु॒त्रा स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥११॥२॥

भा०—(समिधानः अग्निः यथा इन्द्रेण देवैः तुरेभिः अर्वाङ् आ याति) अच्छी प्रकार दीप्तियुत अग्नि वा सूर्य-प्रकाश जिस प्रकार विद्युत्, मेघ और जलादि देने वाले वायुगण तथा दीप्ति युक्त प्रकाशों, रोगनाशक और अतिवेगयुक्त गुणों सहित (स-रथं) समान रंगरूप में हमें प्राप्त होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! नायक! तू भी (समिधानः) अच्छी प्रकार तेजस्वी होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र और (तुरेभिः) शत्रु बल के नाशक और आशु कार्य करने वाले वीरों, (देवैः) उत्तम विद्वानों सहित (अर्वाङ् आयाहि) हमें विनय

युक्त होकर वा (अर्वाङ्) अश्वादि से युक्त होकर आ, प्राप्त हो। (बर्हिः न) कुशा के आसन पर विद्वान् के समान (बर्हिः) वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजन के ऊपर (आस्ताम्) विराजे। वह (स्वाहा) उत्तम वचन, सत्य क्रिया और शुभ से (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रों की माता के समान, (अदितिः) अखण्ड शासन और अदीन स्वभाव वाली हो। और (देवाः) देव, विद्वान्‌गण (अमृताः) राज्यों में दीर्घायु, मृत्युभय से रहित होकर (मादयन्ताम्) स्वयं सुखी हों और अन्यों को भी सुखी करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ९, १० विराट्‌त्रिष्टुप्। ४, ६, ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्। २ स्वराट् पंक्तिः। ३ भुरिक् पांक्तिः ॥

दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मा प्राणियों, मनुष्यों के बीच (निध्रुविः) नित्य, ध्रुव, स्थायीरूप से वर्त्तमान (ऋतावा) सत्य, न्याय प्रकाश और धनैश्वर्यादि का स्वयं भोक्ता, और अन्यों को उचित रूप में देने वाला, (तपुः-मूर्धा) सूर्य अग्नि, वा विद्युत् के समान दुष्टों को सन्ताप देने के सामर्थ्य में सर्वोत्कृष्ट (घृतान्नः) अग्नि जिस प्रकार घृत को अन्नवत् ग्रहण करता, उसी प्रकार जो घृत से युक्त अन्न का भोजन करता है। और (पावकः) प्रजा के आचार व्यवहारों को पवित्र करता है एवं (स-जोषाः) समान भावसे सब के प्रति प्रीतियुक्त हो (वः) आप लोगों के बीच में उस (देवम्) तेजस्वी, व्यवहारज्ञ, दानशील, ज्ञानप्रकाशक (यजिष्ठं) अतिपूज्य, सत्संग

योग्य, (अग्निम्) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि तुल्य ही हिंसारहित, प्रजापालना अध्ययनाध्यापन, विद्याग्रहण आदि कार्यों में (दूतम्) सेवा के योग्य, (कृणुध्वम्) बनाओ। ऐसे ही विद्वान् को राजा लोग भी दूतवत् प्रमुख वक्ता रूप से नियत करें।

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति २

भा०—(अविष्यन्) तृप्ति चाहता हुआ (अश्वः) अश्व (यवसे) घास चारे के लिये (न) जिस प्रकार (प्रोथत्) हर्षध्वनि करता, हिनहिनाता है उसी प्रकार हे राजन्! तू भी (अविष्यन्) प्रजा की रक्षा करना चाहता हुआ (यवसे) शत्रु को छिन्न भिन्न करने के कार्य के लिए (प्रोथत्) उत्तम गर्जना करता हुआ (यदा) जब (महः संवरणात्) बड़े भारी रक्षास्थान, प्रकोट से (वि अस्थात्) विशेष रूप से प्रस्थान करे (आत्) अनन्तर (अस्य शोचिः अनु) उसके तेज के साथ साथ अग्नि की ज्वाला के पीछे २ (वातः) वायुवत् प्रबल वृक्षों को उखाड़ देने वाले आंधी के समान प्रबल सैन्य समूह (अनु-वाति) जाता है (अध) तब हे राजन्! सेनापते! (ते व्रजनं) तेरा गमन करना (कृष्णम् अस्ति) बड़ा चित्ताकर्षक एवं शत्रुओं के मूल का टदेने वाला होता है। अश्व, अग्नि और राजा इन तीनों पक्षों में श्लेष-विवरण पूर्वक सरल व्याख्या देखो यजुर्वेद, आलोक भाष्य (अ० १६।६२)। अध्यात्म में—व्यापक होने से परमेश्वर वा आत्मा, 'अश्व' है। दृश्य जगत् उसका हिरण्यमय संवरण है, वह जब उसके दूर होने पर प्रकट होता है, उसके तेज के साथ साथ यह वात, वायु, प्राण भी चलता है उसकी (व्रजनं) प्राप्ति ही (कृष्णम्) आकर्षक, अति आनन्दप्रद और सब दुःख बन्धनों को काटने में समर्थ है।

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (नवजातस्य अजराः इधाना उत् चरन्ति) नये उत्पन्न अग्नि से गतिशील जलते लपट ऊपर उठते हैं (द्याम् धूमः अच्छ एति) आकाश की ओर धूम उठता है, (दूतः सन् देवान् ईयसे) अति सन्तापदायक तप्त होकर किरणों को प्रकट करता है इसी प्रकार हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! विद्वन् ! (यस्य नवजातस्य) जिस नये, विद्वान् या पदाधिकारी रूप से बने (वृष्णः) सुखों के वर्षक, बलवान्, प्रबन्धक (ते) तेरे (इधानाः) तेजस्वी (अजराः) शत्रु कण्टकों को उखाड़ देने वाले पुरुष (उत्-चरन्ति) उत्तम पद पर नियुक्त होकर राष्ट्र में विचरते हैं वह तू (धूमः) शत्रुओं को कंपा देने वाला, रोषरहित, तेजस्वी होकर (द्याम् अच्छ एति) सूर्यवत् तेजस्वी उच्च पद को प्राप्त होता है। वह ही हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (दूतः) शत्रुओं को सन्तापदायी होकर ही (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (सम् ईयसे) अच्छी तरह से प्राप्त हो।

वि यस्य॑ ते पृथि॒व्यां पाजो॒ अश्रे॑त्तृ॒षु यदन्ना॑ स॒मवृ॑क्त॒ जम्भैः॑।
सेने॑व सृ॒ष्टा प्रसि॑तिष्ट एति॒ यवं॒ न द॑स्म जु॒ह्वा॑ विवेक्षि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (पाजः तृषु वि अश्रेत्) शीघ्र ही पृथिवी में विविध दिशाओं में फैल जाता है, जैसे जाठराग्नि (जम्भैः अन्ना सम् अवृक्त) दाता द्वारा अन्नों को ग्रहण कर समस्त शरीर में फैला देता है, जैसे अग्नि की (प्रसितिः) ज्वाला या विद्युत् की (प्रसितिः) उत्तम जकड़ या आकर्षण (सेना इव) सेना के समान फैलता है और जैसे वह (जुह्वा) ज्वाला से चमकता वा यवादिकों को भस्म करता है। उसी प्रकार हे राजन् ! सेनापते ! (यस्य ते) जिस तेरा (पाजः) बल (तृषु) अतिशीघ्र (पृथिव्याम् वि अश्रेत्) इस पृथिवी पर विविध प्रकार से विराजता है, (यत्) जो (जम्भैः) अन्नों को दांतों के समान हिंसाकारी शस्त्रों अस्त्रों के बल से अन्नवत् भोग्य देशों को (सम् अवृक्त)

पृथक् २ विभक्त करता है। (ते प्रसितः) तेरा उत्तम प्रबन्ध, व्यवस्था (सेना इव सृष्टा) सेना के समान ही उत्तम व्यवस्थित होकर (एति) प्राप्त होता है। वह तू (जुह्वा) अपनी वाणी से (यवं) यव को मुख के समान खाद्य या बिनाश्य शत्रु का हे (दस्म) शत्रुनाशक ! (विवेक्षि) नाश करता है।

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ५।३॥

भा०—(नरः) मनुष्य (अत्यं न) अश्व को जिस प्रकार (मर्जयन्तः) खरखरे से नित्य सायं प्रातः साफ़ करते और उसको स्वच्छ कर रखते हैं उसी प्रकार (नि-शिशानाः नरः) खूब तीक्ष्ण करने वाले मनुष्य (तम्) उस (यविष्ठम्) युवा के समान अति बलशाली (अतिथिम्) व्यापक (अग्निम्) अग्नि वा विद्युत् को (दोषा उषसि) रात्रि-काल और प्रातः-काल में (मर्जयन्तः इत्) सदा स्वच्छ रक्खें, और घर्षण द्वारा प्रकट करें। (आहुतस्य) एकत्र एक स्थान पर सब ओर से सुरक्षित (वृष्णः) बलवान्, (अस्य) इसके (शोचिः) कान्ति को (योनौ) गृह में (दीदाय) मनुष्यवत् प्रकाशित कर। इसी प्रकार (नरः) उत्तम पुरुष (दोषा उषसि) रात दिन, प्रातः सायं (यविष्ठं अतिथिं तम् अग्निम्) युवा, बलवान् अतथिवत् पूज्य, सर्वोपरि विराजमान उस अग्रणीनायक को (नि-शिशानाः) निरन्तर तीक्ष्ण, एवं कर्म व्यवहार चतुर करते हुए उसे (मर्जयन्त) सदा शुद्ध, स्वच्छ आचारवान् बनाये रक्खें। (आहुतस्य अस्य वृष्णः) आदरपूर्वक स्वीकर किये इस बलवान् पुरुष का (शोचिः) तेज (योनौ) उसके उपयुक्त पद पर ही (दीदाय) प्रकाश करे। इति तृ० व० ॥

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६॥

भा०—हे (स्वनीक) सुन्दर मुख वाले ! सुमुख ! विद्वन् ! हे

उत्तम सैन्य वाले ! सेनापते ! राजन् ! (यत्) जो तू (रुक्मः) कान्तिमान्, सूर्य के समान (उपाके) सबके समीप (रोचसे) सबको रुचिकर प्रतीत होता है, सबके मन भाता है (ते प्रतीकं) तेरा प्रतीति कराने वाला, ज्ञान और बल उत्तम हो और तेरी (सु-सन्दृक्) उत्तम शुभ दृष्टि हो । (ते शुष्णः) तेरा बल, (दिवः न तन्यतुः न) आकाश सूर्य या मेघ विद्युत् के समान (एति) प्राप्त होता है । और तू (सूरः न चित्रः) सूर्य के समान आश्चर्यकारक होकर (भानुम् प्रति चक्षि) अपने तेज को प्रकट करे ।

यथा॑ वः॒ स्वाहा॒ग्नये॒ दाशे॑म॒ परीळा॑भिर्घृ॒तव॑द्भिश्च ह॒व्यैः ।
तेभि॑र्नो अग्ने॒ अमि॑तै॒र्महो॑भिः श॒तं पू॒र्भिराय॑सीभि॒र्नि पा॑हि ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (इडाभिः घृतवद्भिः हव्यैः च अग्नये स्वाहा) अन्नों, और घृतयुक्त आहुति योग्य पदार्थों से अग्नि के लिये आहुति दी जाती है, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के बीच में (अग्नये) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाशक और अग्नि पद पर स्थित होकर सन्मार्ग पर ले जाने वाले पुरुष के लिये हम लोग (इडाभिः) उत्तम वाणियों से और (घृतवद्भिः) घृत से युक्त हव्यों अर्थात् भोजन करने योग्य अन्नों से (परि दाशेम) उसका सत्कार करें । हे (अग्ने) अग्रणी ! विद्वन् ! तू (तेभिः) उन २, नाना (अमितैः) अपरिमित (महोभिः) तेजों से और (शतम्) सैकड़ों (आयसीभिः पूर्भिः) लोह की बनी दृढ़ नगरियों से (नि पाहि) अच्छी प्रकार राष्ट्रकी रक्षा कर ।

या वा॑ ते॒ सन्ति॑ दा॒शुषे॒ अधृ॑ष्टा॒ गिरो॑ वा॒ याभि॑र्नृ॒वती॑रुरु॒ष्याः ।
ताभि॑र्नः सूनो सहसो॒ नि पा॑हि॒ स्मत्सू॒रीञ्ज॑रि॒तॄञ्जा॑तवेदः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! (वा) और (या) जो (ते दाशुषे) तुझ विद्या और न्याय के दाता की (अधृष्टा) निरादर करने के

अयोग्य, आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य, विनययुक्त (गिरः) वाणियां वा तेरी जो वाणियां (दाशुषे) करादि देने वाले, तुझ पर अपने को त्यागने वाले प्रजाजन के हित के लिये हैं (वा) अथवा (याभिः) जिनसे (नृवतीः) उत्तम नायकों वाली सेनाओं और प्रजाओं को (उरुष्याः) रक्षा करता है, हे (सहसः सूनो) बलशाली सैन्य के चालक ! हे (जातवेदः) ज्ञानवन् विद्वन् वा ऐश्वर्यवन् ! तू (ताभिः) उनसे (नः) हमारे (जरितृन्) उपदेश करने वाले (सूरीन्) विद्वानों को (नि पाहि) अच्छी प्रकार पालन कर ।

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जो (पूता इव स्वधितिः) शुद्ध स्वच्छ शस्त्र की धार के समान (शुचिः) कान्तियुक्त, (निर्गात्) अपने गृह से निकले, और (स्वया कृपा) अपनी कृपा, वा सामर्थ्य और (तन्वा) देह से (रोचमानः) अग्निवत् तेज से चमकता है, (यः) जो (मात्रोः) माता पिता के बीच (उशेन्यः) कामना करने योग्य पुत्र के समान (आ जनिष्ट) स्नेहपूर्वक अरणियों के बीच अग्नि के समान ही प्रकट होता है, वह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मों को करता हुआ (पावकः) अग्निवत् पवित्र करने वाला होकर (देव-यज्याम्) विद्वानों के आदर तथा सत्संग के लिये यत्नशील रहे ।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥४

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (नः) हमारे (एता) इन नाना (सौभगानि) सुखजनक, उत्तम ऐश्वर्यों को (दिदीहि) प्रकाशित कर । हम लोग (अपि) अवश्य (सुचेतसं) उत्तम चित्त वाली

(क्रतुम्) बुद्धि को (वतेम) प्राप्त करें । (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील और (गृणते) उपदेश-कुशल पुरुष के लिये (विश्वा च) सब प्रकार के सौभाग्य (सन्तु) हों और हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी कर्मों से (नः) हमारी (सदा पात) सदा रक्षा करो।

[४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७ भुरिक् पंक्तिः । ६ स्वराट् पंक्तिः । ८, ६ पंक्तिः । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । १० विराट्त्रिष्टुप् ॥

दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों में से (यः) जो (शुक्राय) शुद्ध (भानवे) ज्ञान प्रकाश प्राप्त करने के लिये और (अग्नये) ज्ञानवान् परमेश्वर की उपासना करने और अग्नि में आहुति देने के लिये (सु-पूतं) शुद्ध पवित्र (हव्यं) आहुति देने योग्य अन्नादि पदार्थ और (मतिं) उत्तम बुद्धि को (जिगाति) प्राप्त करता है, और (यः) जो (दैव्यानि) विद्वानों और (मानुषा) साधारण मनुष्यों के (विश्वानि) समस्त (जनूंषि) जन्मों को भी (अन्तः) अपने भीतर (जिगाति) प्राप्त कर लेता है। उस विद्वान् के लिये आप भी (हव्यं) उत्तम पदार्थ (प्र भरध्वम्) प्राप्त कराओ।

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यं वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (मातुः अजनिष्ट) माता से बालक के समान ज्ञानदाता गुरु से उत्पन्न होता है। (सः) वह (यतः) यम नियम का पालक, (यविष्ठः) उत्तम युवा, और (तरुणः) तरुण (गृत्सः) विद्वान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (अस्तु) हो। वह (शुचिदन्) शुद्ध

विमल दन्तों वाला, स्वच्छ मुख हो और (वना) सूर्यवत् किरणों को (युवते) प्राप्त करता है और वह (समित् चित्) काष्ठों को अग्नि के समान (सद्यः) शीघ्र ही (भूरि चित् अन्ना) नाना प्रकार के अन्नों, वा भोग्य ऐश्वर्यों का (अत्ति) भोग करता है।

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) विद्वान् पुरुष को (संसदि) सभा वा (अनीके) सैन्य में (यं) जिस नायक को (मर्त्तासः) मनुष्य (श्येतं) शुद्ध चरित्र जान कर (जगृभ्रे) स्वीकार करते हैं (यः) जो (पौरुषेयीम् गृभम्) पुरुषों के व्यवहार योग्य पदार्थों के लेने देने की विधि का (नि उवोच) नियमित रीति से उपदेश करता है और जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (आयवे) राष्ट्रवासी जन के हितार्थ (दुरोकम्) शत्रुओं से दुःख से सेवने योग्य राष्ट्र वा सैन्य बल को (शुशोच) चमका देता है वही सेनानायक वा राजा होने योग्य है।

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि के समान अज्ञान अन्धकार के बीच भी ज्ञान का प्रकाश करने हारा, (कविः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी, (प्रचेताः) उत्तम ज्ञान, उत्कृष्ट चित्त वाला, (अमृतः) दीर्घायु, (अकविषु) अविद्वानों के बीच (नि धायि) स्थापित हो। (सः) वह (नः) हमें (अत्र) इस लोक में (मा जुहुरः) विनाश न करे, हमसे कुटिल वर्त्ताव न करे। हे अग्ने, तेजस्विन्! (ते) तेरे अधीन हम लोग (सदा) सदा (सु-मनसः) शुभ चित्त वाले होकर (स्याम) रहें।

आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत्।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५॥६॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (देवकृतं योनिमाससाद) विद्वानों द्वारा स्थापन योग्य स्थान कुण्ड आदि में स्थापित होता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) कर्म वा यज्ञद्वारा जीवों को संकट से पार करता और (ओषधीः वनिनः भूमिः च बिभर्ति) इसको ओषधियां और बन के वृक्ष अरणि आदि, और भूमि आदि धारण करते हैं उसी प्रकार (यः) जो विद्वान् तेजस्वी पुरुष (देवकृतं) विद्याभिलाषी विद्यार्थियों के लिये बनाये (योनिं) गृह पाठशालादि को (आ ससाद) प्राप्त होता है, (च) और जिस प्रकार समस्त विश्व के धारक अग्नि को (ओषधयः वनिनः भूमिः च) ओषधियें अपने रस में, और बन के वृक्ष काष्ठादि, आग के रूप में और भूमि अपने गर्भ में ज्वालामुखी आदि से प्रकट होने वाली अग्नि को धारण करते हैं उसी प्रकार (विश्व-धायसं) समस्त ज्ञान के पालन करने वाले (तम्) उसको (वनिनः) वनस्थ, वानप्रस्थी विद्वान् जन (ओषधीः च भूमिः च गर्भं) गर्भ को ओषधियों और उत्पादक भूमि के माता के समान (बिभर्त्ति) धारण करते और पालते पोषते हैं। वह भी उन सबको पालन पोषण करे इसी प्रकार जो वीर तेजस्वी पुरुष (देवकृतं योनिम् आससाद) विद्वानों से दिये पद को प्राप्त करता, (क्रत्वा अमृतान् अतारीत्) अपने कर्म सामर्थ्य से जीवित मनुष्यों को संकट से पार करता, उस (विश्व-धायसं) समस्त राष्ट्र के धारक पोषक, उनको दूध पिलाने वाली माता की तरह पालक पोषक राजा को (ओषधीः) बल वीर्य धारण करने वाली सेनाएं और (वनिनः) तेजस्वी, धनी, और शस्त्रधर लोग और (भूमिः च) और भूमि राष्ट्र, ये सब पुष्ट करते और वह भी उनको (बिभर्त्ति) पालन पोषण करता है। इति पञ्चमो वर्गः ॥

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः अमृतस्य ईशे) अग्नि, विद्युत्, या सूर्य जिस प्रकार

अमृत, जल, अन्न वा जीवन का प्रभु है, वह उसको उत्पन्न करता है उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (हि) निश्चय से (भूरेः अमृतस्य) बड़े भारी मोक्षमय अमृत को (ईशे) प्राप्त करे और वह (भूरेः रायः) बहुत धन, ऐश्वर्य और (सु-वीर्यस्य) बहुत उत्तम बल (भूरेः दातोः) बहुत अधिक दान को भी (ईशे) करने में समर्थ हो। हे (सहसावन्) बहुत बलयुक्त (वयम्) हम लोग (अवीराः) पुत्र सन्तानादि से रहित, बल युक्त प्राणों से रहित और वीरता से रहित होकर (त्वा मा परि सदाम) तेरे इर्द गिर्द न बैठे रहें। और हम (अप्सवः) केवल दर्शनीय रूप ही बनकर (मा परि सदाम) न बैठे रहें। और (मा अद्रुवः) और हम सेवा परिचर्या से रहित, निकम्मे होकर भी न रहें। अर्थात् हम तेरे अधीन वीर रूपवान्, कर्मण्य और उत्तम सेवक होकर रहें।

परि॒षद्यं॒ ह्यर॑णस्य॒ रेक्णो॒ नित्य॑स्य रा॒यः पत॑यः स्याम।
न शेषो॑ अग्ने अ॒न्यजा॑तम॒स्त्यचे॑तानस्य॒ मा प॒थो वि दु॑क्षः ॥ ७ ॥

भा०—(अरणस्य) ऋण से रहित, पुरुष का (रेक्णः) धन (परि-सद्यम्) पर्याप्त होता है, इसलिये हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् ! हम लोग (नित्यस्य) नित्य, स्थायी (अरणस्य) ऋण और रण, संग्राम, लड़ाई झगड़े आदि से मुक्त (रायः) धनैश्वर्य के भी (पतयः) स्वामी (स्याम) हों। क्योंकि ऋण लिया और लड़ाई झगड़े में पड़ा हुआ धन स्थायी नहीं होता। वह पराया होने से हाथ से निकल जाता है। इसी प्रकार (अरणस्य) जिसके उत्पन्न करने में रमण अर्थात् स्वयं वीर्याधान नहीं किया ऐसे पुरुष का (रेक्णः)अन्य के वीर्य सेचन से उत्पन्न सन्तान भी (परि-सद्यं) त्याज्य ही होता है। क्यों ? क्योंकि (अन्य-जातम् शेषः) दूसरे से प्राप्त किया धन और पुत्र दोनों ही (न अस्ति) नहीं के बराबर है। इसलिये हे विद्वन् ! पराये का धन और पराये का पुत्र तो (अचेतानस्य) ना समझ आदि का होता है। अविद्वान्, अप्रयत्नशील पुरुष दूसरे के धन और

पुत्र को अपना समझ बैठते हैं। वस्तुतः हे विद्वन् ! तू (पथः मा वि दुक्षः) सन्मार्गों को दूषित मत कर । अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने और परिश्रम से धनोपार्जन करने आदि के शास्त्रीय उपायों पर दोषारोपण मत कर। अथवा (अचेतानस्य) अनजान, नाबालिग के (पथः) प्राप्त करने योग्य धनादि को (मा वि दुक्षः) दूषित मत कर, उस पर भी अपना हक आदि जमाने की टेढ़ी चाल न कर। अथवा (परिषद्यं रेक्णः अन्यजातं च शेषः न अस्ति) परिषद् अर्थात् जन सभा का रुपया और दूसरे से उत्पन्न पुत्र दोनों ही नहीं के समान हैं। वे अपने नहीं होते । हम (अरणस्य नित्यस्य रेक्णः पतयः स्याम) झगड़े, विवाद से रहित स्थायी धन के स्वामी हों। (अचेतानस्य पथः मा वि दुक्षः) अनजान मूर्ख के मार्गों को पाखण्डादि से दूषित मत करो (स्वा० दया०) ॥

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(अरणः) जो सुन्दर, उत्तम रूप, एवं गुण स्वभाव वाला न हो वा जो ऋण दूर न कर सके ऐसा (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (अन्योदर्यः) दूसरे के पेट से उत्पन्न हुआ सन्तान (मनसा उ ग्रभाय मन्तवै नहि) मन से भी अपनालेने की नहीं सोचनी चाहिये । परक्षेत्र में उत्पन्न पुत्र चाहै कितना ही सुखद हो तो भी उससे पितृऋण नहीं उतरता इसलिये उसको चित्त से कभी अपना न मानना चाहिये। (अध चित्) और (सः पुत्रः) वह पुत्र ही (ओकः इत् एति) गृह को प्राप्त करता है, जिसको पुत्र बनाया जाता है वह तो गृहादि सम्पत्ति का स्वामी होता है इसलिये पराये को पुत्र बना लेने पर पराया ही घर का स्वामी होजाता है। यह अनर्थ है, इसलिये (नः) हमें (नव्यः) स्तुति योग्य, उत्तम, (वाजी) बलवान् (अभिषाड्) शत्रुओं को पराजय करने वाला पुत्र (एतु) प्राप्त हो।

त्वम॑ग्ने वनुष्य॒तो नि पा॑हि॒ त्वमु॑ नः सहसावन्नव॒द्यात् ।
सं त्वा॑ ध्वस्म॒न्वद॒भ्ये॑तु॒ पाथः॒ सं र॒यिः स्पृ॑ह॒याय्यः॑ सह॒स्री ॥९॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! राजन्! हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् परंतप! (त्वं) तू (नः) हमें (वनुष्यतः) हिंसाकारी और (अवद्यात्) निन्दनीय कर्मों, पुरुषों और जन्तुओं से (नि पाहि) निरन्तर रक्षा कर। ((ध्वस्मन्वत्) दोषों से रहित (पाथः) पथ और (ध्वस्मन्-वत् पाथः) शत्रुओं का नाश करने के सामर्थ्य वाला, राष्ट्र-पालक बल (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो। (स्पृहयाय्यः रयिः) सब से चाहने योग्य धन भी (सहस्री) सहस्रों की संख्या में, अपरिमित (त्वा सम् अभ्येतु) तुझे प्राप्त हो।

ए॒ता नो॑ अग्ने॒ सौभ॑गा दिदी॒ह्यपि॒ क्रतुं॑ सु॒चेत॑सं वतेम ।
विश्वा॑ स्तो॒तृभ्यो॑ गृण॒ते च॑ सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः १० ६

भा०—व्याख्या देखो सू० ३ मन्त्र १० ॥ इति षष्ठो वर्गः ॥

[५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७ स्वराट् पंक्तिः । ६ पंक्तिः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्राग्नये॑ त॒वसे॑ भरध्वं॒ गिरं॑ दि॒वो अ॑र॒तये॑ पृथि॒व्याः ।
यो विश्वे॑षाम॒मृता॑नामु॒पस्थे॑ वैश्वान॒रो वा॑वृ॒धे जा॑गृ॒वद्भिः॑ ॥१॥

भा०—(यः) जो (विश्वेषाम्) समस्त (अमृतानाम्) नाश न होने वाले अग्नि, आकाश आदि नित्य पदार्थों और जीवात्माओं के (उपस्थे) समीप में (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों से उपासित, सब में विद्यमान है और जो (जागृवद्भिः) अविद्या की नींद त्याग कर जागने वाले ज्ञानी पुरुषों से उपासित होता और (ववृधे) सबको बढ़ाता, और स्वयं भी

सबसे महान् है। उस (दिवः पृथिव्याः अरतये) सूर्य और पृथिवी में व्यापक, उनके भी स्वामी, (तवसे) अनन्त बलशाली, (अग्नये) अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप प्रभु की उपासना के लिये (गिरं प्र भरध्वम्) वाणी का प्रयोग करो, उसकी स्तुति प्रार्थना किया करो।

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥ २ ॥

भा०—जो (अग्निः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश, महान् आत्मा, (दिवि पृथिव्यां) तेजस्वी पदार्थ सूर्य आदि, और पृथिवी आदि प्रकाश रहित पदार्थों में भी (धायि) अग्निवत् उनको धारण करता है, जो (सिन्धूनां नेता) बहने वाले प्रवाहों, वेग से गति करने वाले सूर्यादि का भी संचालक है जो (स्तियानाम् वृषभः) अप् अर्थात् प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं के बीच विद्यमान और अनन्त बलशाली, उनको नियम, व्यवहार में बांधने वाला है, (सः) वह (अग्निः) सबका अग्र नायक, सर्वोत्तम संचालक ही (वैश्वानरः) सबको ठीक २ मार्ग में चलाने वाला होने से 'वैश्वानर' कहाता है। वही प्रभु (मानुषीः विशः) समस्त मनुष्य प्रजाओं को भी (अभि वि भाति) प्रकाशित करता और उनमें स्वयं भी प्रकाशित होता है। वह समस्त मनुष्यों में विद्यमान होने से भी 'वैश्वानर' है। वह(वरेण) सर्वश्रेष्ठ स्वभाव से ही (वावृधानः) सदा सबको बढ़ाने हारा है। स्वयं भी सबसे महान् है।

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वैश्वानर) समस्त मनुष्यों के हृदयों में विराजमान, सबके हितू ! हे (अग्ने) सबके पूर्व विद्यमान ! अग्निवत् स्वयं-प्रकाश, सर्वप्रकाशक (यत्) जो (पूरवे) मनुष्यमात्र के लिये (शोशुचानः) प्रकाशक ज्ञानरूप में प्रकाश करता हुआ, (पुरः दरयन्) ज्ञान

वज्र से देह रूप आत्मा के पुरों अर्थात् देह-बन्धनों को काटता हुआ (अदीदेः) ज्ञान को प्रकाशित करता है (त्वद् भिया) तेरे ही भय से (असिक्नीः) रात्रि के समान अन्धकारमय दशाओं को प्राप्त (विशः) जीव प्रजाएं भी (असमना) एक समान चित्त न होकर (भोजनानि जहतीः) नाना भोग्य पदार्थों को त्याग कर (आयन्) तेरी शरण आती हैं। वीर राजा के पक्ष में—वीर राजा तेजस्वी होकर (पुरः दरयन् अदीदेः) शत्रु के किलों, नगरों को तोड़ता हुआ प्रताप से चमकता है उस में भय से शत्रु सेनाएं भोजनों तक त्याग कर (असमनाः) संग्राम छोड़ कर (असिक्नीः आयन्) अन्धकारमय गुफाओं का आश्रय लेती हैं।

तव॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौर्वैश्वा॑नर व्र॒तम॑ग्ने सचन्त ।
त्वं भा॒सा रोद॑सी॒ आ त॑त॒न्थाज॑स्रेण शो॒चिषा॒ शोशु॑चानः ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! हे (वैश्वानर) समस्त संसार के चलाने हारे, (त्रि-धातु) तीनों गुणों को धारण करने वाली, परम सूक्ष्मतत्व प्रकृति और (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी अर्थात् प्रकाशसहित समस्त पदार्थ भी (तव व्रतम्) तेरी ही कर्म-व्यवस्था को (सचन्ते) धारण करते हैं। वे तेरे ही सर्वोपरि शक्ति के आश्रय पर उसमें नित्य सम्बद्ध हैं। हे प्रभो ! (त्वं) तू (भासा) अपनी दीप्ति से (रोदसी) भूमि और आकाश, सर्वत्र (आ ततन्थ) व्याप रहा है। तू (अजस्रेण) अविनाशी, निरन्तर स्थिर रहने वाले (शोचिषा) प्रकाश, तेज से सूर्यवत् (शोशुचानः) प्रकाशमान रहता है।

त्वाम॑ग्ने ह॒रितो॑ वावशा॒ना गिरः॑ सचन्ते॒ धुन॑यो घृ॒ताचीः॑ ।
पतिं॑ कृष्टी॒नां र॒थ्यं॑ रयी॒णां वै॑श्वान॒रमु॒षसां॑ के॒तुमह्ना॑म् ॥५॥७॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (वावशानाः) चाहती हुई (हरितः) दिशावासी प्रजाएं, (गिरः) वेद

वाणियों और (घृताचीः धुनयः) समुद्र को जलयुक्त नदियों के समान (कृष्टीनां पतिम्) समस्त प्रजाओं, मनुष्यों के पालक, (रथ्यम्) रथयोग्य अश्व वा सारथिवत् (रयीणां) ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले (उषसाम्) प्रभात वेलाओं और (अह्नाम्) दिनों के (केतुम्) प्रकट करने वाले सूर्य के समान (उषसां केतुम्) पापों, दुर्भावों को भस्म करने एवं कामना करने वालों के ज्ञापक (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों के सञ्चालक सर्व हितू (त्वाम्) तुझ परमेश्वर को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं। इति सप्तमो वर्गः ॥

त्वे असुर्यं१ वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रमहः) स्नेह करने वालों से शून्य और उनका स्वयं भी आदर करने वाले ! प्रभो ! (वसवः) बसने वाले जीवगण (त्वे) तेरे ही में (असुर्य) मेघ में विद्यमान परम उदार सामर्थ्य को (नि ऋण्वन्) सब प्रकार से साधते हैं, वे (ते हि) निश्चय से तो तेरे (क्रतुं जुषन्त) कर्म और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेमपूर्वक सेवन करते हैं। (त्वं) तू हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (आर्याय) सज्जन, श्रेष्ठ, एवं कर्मण्य और स्वामी होने योग्य पुरुष के लिये (उरु) बहुत भारी (ज्योतिः जनयन्) ज्ञानप्रकाश करता हुआ (ओकसः) उसके समवाय या निवासस्थान, देह से (दस्यून्) दुष्टों, दुष्टभावों और जनों को भी (आ अजः) दूर करता है।

स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥ ७ ॥

भा०—(सः) वह तू हे परमेश्वर ! (परमे) सबसे उत्कृष्ट, (व्योमन्) विशेष रक्षा करने वाले पद पर (जायमानः) सर्व रक्षक रूप से प्रकट होता हुआ (वायुः न) प्राण के तुल्य या जीवनाधार वायु के

समान (पाथः) समस्त विश्व का पालन करता है और (सद्यः) संकट में तुरन्त, विना विलम्ब के (परि पासि) सब प्रकार से बचा लेता है। हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न भुवनों, प्राणियों और समस्त पदार्थों के जानने हारे प्रभो ! तू (भुवना) समस्त लोकों को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ और (अपत्याय) पुत्र के समान समस्त जीव संसार को (अभि क्रन्) ज्ञान का मेघ वा विद्युत्वत् निष्पक्षपात रूप से गर्जनवर्षणादिवत् उपदेश करता हुआ और उनके (दशस्यान्) सुख सामग्री, दीर्घायु, भोग्य और भोग शक्ति प्रदान करता हुआ (परि पासि) सबको पालन करता है।

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (द्युमतीम् इषम् ईरयति) आकाश से आने वाली विद्युत् सूर्य के तेज से युक्त वृष्टि को प्रेरित करती है इसी प्रकार हे (अग्ने) तेजःस्वरूप ! हे (जातवेदः) मतिमन् ! दुष्टों को संतप्त करने हारे प्रभो ! आप (अस्मे) हमारे भले के लिये (ताम्) उस (द्युमतीम्) कामना योग्य (इषम्) अन्न-समृद्धि को (ईरयस्व) प्रदान कर। हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के भीतर बसने वाले ! तू (यया) जिस भी प्रकार से (राधः पिन्वसि) धन की वृष्टि करता है हे (विश्ववार) सब के वरने योग्य और सब संकटों को दूर करने हारे आप (दाशुषे मर्त्याय) दानशील मनुष्य को (पृथु श्रवः) बहुत बड़ा यश, अन्न और ज्ञान (पिन्वसि) प्रदान करता है।

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥ ९ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! ज्ञानवन् ! आप (नः) हममें से

(मघवद्भ्यः) उत्तम पूजनीय पापादिरहित, सात्विक ऐश्वर्य वाले पुरुष को (तं) उस नाना प्रकार के (पुरुक्षुम्) बहुत प्रकार के अन्नों से सम्पन्न (रयिम्) ऐश्वर्य और (श्रुत्यं वाजं) श्रवण करने योग्य ज्ञान (युवस्व) प्रदान कर, हे (वैश्वानर) सर्व मनुष्यों के हित करने वाले प्रभो ! आप (रुद्रेभिः) पृथिवी अग्नि आदि द्रव्यों और (वसुभिः) प्राणों सहित (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः) हमें (महि) बड़ी (शर्म यच्छ) शान्ति और सुखमय शरण (यच्छ) प्रदान कर। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्पंक्तिः । ३, ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥१॥

भा०—(असुरस्य) बलवान्, मेघ के समान उदार (सम्राजः) सर्वत्र समान भाव से, और अच्छी प्रकार चमकने वाले, अति तेजस्वी, (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के बीच, उनके लिये (अनु-माद्यस्य) उसके हर्ष में अन्यों को भी हर्षित होने योग्य (तवसः) बलवान (पुंसः) पुरुष की (इन्द्रस्य इव) सूर्य, विद्युत्, वायु के समान ही (प्रशस्तिं) उत्तम प्रशंसा और (कृतानि) उनके समान उसके कर्त्तव्य कर्मों को (वन्दे) वर्णन करता हूं। और (दारु) शत्रु-सैन्यों, दुःखों और शत्रु-नगरों के विदारण करने वाले, तथा दुष्टों के भयदाता की (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (विवक्मि) उनके विशेष २ गुणों और कर्त्तव्यों का भी वर्णन करता हूं। यहां यह भी स्पष्ट है कि, सम्राट्, बलवान्, उत्तम पुरुष का वर्णन भी वेद में 'इन्द्र' के समान ही किया गया है।

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (रोदस्योः) सूर्य पृथिवी के समान राज-वर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में (कविम्) अति बुद्धिमान्, (केतुम्) ज्ञानवान्, अन्यों को सन्मार्ग बतलाने वाले, (धासिम्) अन्नवत् पालक पोषक, (भानुम्) दीप्तियुक्त, तेजस्वी (राज्यम्) राजा के पद के योग्य और (शं) प्रजाओं को शान्तिदायक और कल्याणकारक पुरुष को (हिन्वन्ति) प्राप्त होते और उसको बढ़ाते हैं। (अद्रेः) मेघ के समान, उदार वा प्रबल शस्त्रास्त्र बल से सम्पन्न, (पुरन्दरस्य) शत्रु के नगरों को तोड़ने वाले, (अग्नेः) अग्नि के समान तेजस्वी, पुरुष के (पूर्व्यं) पूर्व के जनों से किये, वा उपदेश किये, श्रेष्ठ २ (महानि) बड़े २ आदर योग्य (व्रतानि) कर्त्तव्य कर्मों का (आ विवासे) वर्णन करता हूं।

न्य॑क्रतून्ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥३॥

भा०—(पूर्वः) सब से मुख्य, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (अक्रतून्) कर्महीन और प्रजाहीन, मूर्ख, (ग्रथिनः) कुटलाचारी, वा अज्ञान में बंधे (मृध्रवाचः) दूसरों के पीड़ा देने वाली, असत्य वाणी बोलने वाले, (पणीन्) व्यवहारी, और (अश्रद्धान्) सत्य वचन, कर्मादि को धारण न करने वाले, (अश्रद्धान्) दूसरों को न बढ़ने देने वाले, (अयज्ञान्) यज्ञ, सत्संग, अग्निहोत्र, दान, उपासनादि से रहित, और (तान्) उन २ नाना (अपरान्) अन्य २ (अयज्यून्) अन्यों का सत्कार न करने वाले लोगों को (प्र विवाय, निचकार) दूर करे और पराजित करे।

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (अपाचीने) नीचे के या दूर के (तमसि)

अन्धकार में (मदन्ती) सुखी व मत्त रहने वाली प्रजाओं को अपनी (शचीभिः) शक्तियों, वाणियों और किरणों से सूर्य के समान (नृतमः) पुरुषोत्तम (प्राचीः चकार) आगे और उत्तम पद की ओर अग्रसर करता है (तम्) उस (वस्वः ईशानम्) बसे समस्त संसार और ऐश्वर्य के स्वामी, (पृतन्यून्) सेनाओं को चाहने वाले, उनके स्वामियों को भी (दमयन्तम्) दमन करते हुए (अनानतं) अति विनयी, (अग्निम्) अग्रणी सेनानायक पुरुष के (गृणीषे) गुण वर्णन करता हूं। (२) इसी प्रकार परमेश्वर अपनी वेद वाणियों से नीचे कोटि के तमोगुण में वर्त्तमान प्रजाओं को भी उन्नत करता है, वह सब का ईशान, स्वामी है, उसकी मैं स्तुति करूं।

यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५॥

भा०—(यः) जो (देह्यः) कर आदि द्वारा बढ़ाने योग्य, देह में आत्मा के समान राष्ट्र में बसने वाला, (बधस्नैः) वध, दण्डादि से राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ, निष्कण्टक करने वाले राजभृत्यों, न्यायाधीश आदि शासकों द्वारा (अनमयत्) दुष्टों को दबाता और (वधस्नैः अनमयत्) बधकारी शस्त्रों द्वारा शत्रु-कण्टकों को मार्ग से साफ करने वाले सैन्यों से शत्रु को नमाता है और जो सुरम्य व्यवस्था द्वारा (अर्यपत्नीः) स्वामी की पत्नियों को (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान सुभूषित, (चकार) करता है, अर्थात् जिसके शासन में विवाहित स्त्रियों का सौभाग्य स्थिर रहता है, (सः) वह (यह्वः) महान् (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष भी स्वयं (नहुषः) सत्य नियम में बद्ध होकर (विशः निरुद्धय) प्रजाओं को नियमों में नियन्त्रित करके (सहोभिः) शत्रु-पराजयकारी बलों से शत्रुओं को भी (बलिहृतः चक्रे) कर देने वाला बनाता है।

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥ ६ ॥

भा०—(यस्य शर्मन्) जिसके सुखप्रद गृहवत् शरण में रहकर (विश्वे जनासः) समस्त मनुष्य, (सुमतिं भिक्षमाणाः) उत्तम मति, ज्ञान की याचना करते हुए (एवैः) ज्ञानों और शुभ गुणों सहित (उप तस्थुः) विराजते हैं । वह (वैश्वानरः) सब मनुष्यो में श्रेष्ठ (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (रोदस्योः) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच में सूर्य के समान (पित्रोः) माता और पिता दोनों के (उप-स्थम्) समीप, दोनों के तुल्य आदरणीय (वरम्) श्रेष्ठ पद को (आ ससाद) प्राप्त करता है ।

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥९॥

भा०—(सूर्यस्य उदिता वैश्वानरः) जिस प्रकार सूर्य के उदयकाल में अग्नि ही (बुध्न्या वसूनि आ ददे) अन्तरिक्ष में छाये अन्धकारों को ग्रस लेता है (दिवः पृथिव्याः आ ददे) आकाश और पृथिवी के अन्धकारों को भी हर लेता है उसी प्रकार (देवः) दानशील, (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितैषी पुरुष (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान अपने अभ्युदयकाल में (बुध्न्या वसूनि) भृत्यादि को कार्यों में बांधने वाले ऐश्वर्यों को (आ ददे) प्राप्त करे । और वह (अवरात् समुद्रात्) उरे के, समीपवर्ती समुद्र से और (परस्मात्) दूरस्थ समुद्र तट से, भी (दिवः, पृथिव्याः) व्यवहार, व्यापार से, तथा (पृथिव्याः) पृथिवी से भी धन और अन्न, रत्नादि नाना पदार्थ (आ, आ, आ ददे) पुनः पुनः प्राप्त करे । इति नवमो वर्गः ॥

[७]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक् पंक्तिः । ७ स्वराट् पंक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥१॥

भा०—(वाजिनं अश्वं नमोभिः) जिस प्रकार वेगवान् अश्व को विनम्र करने के लिये कशादि (चाबक) साधनों से प्रेरित किया जाता है और जिस प्रकार उसको (नमोभिः) अन्नों से बढ़ाते, पुष्ट करते हैं, उसी प्रकार हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के बीच (देवं चित्) सूर्यवत् तेजस्वी, अग्नि के समान प्रतापी, ज्ञानप्रकाशक, (सहसानम्) बलवान् (अश्वम्) राष्ट्र के भोक्ता, (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुष का भी (नमोभिः प्र हिषे) उत्तम आदर सत्कारों से प्रेरित, प्रार्थित करें और शस्त्रादि से उसे बढ़ावें। हे विद्वन्! राजन् ! तू (त्मना) स्वयं अपने सामर्थ्य से (मित-द्रुः) परिमित भय वाला, (देवेषु) विद्वान् श्रेष्ठ पुरुषों के बीच (विविदे) विदित हो, प्रसिद्धि और परिचय प्राप्त कर और तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमारे (अध्वरस्य) यज्ञ, अविनाश्य कर्तव्य का (दूतः) अग्निवत् प्रकाशक (भव) हो।

आ याह्यग्ने पथ्या३अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! तू (देवानां सख्यं) विद्वान्, तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक किरणवत् विद्वानों के (सख्यं) मित्र भाव को (जुषाणः) प्राप्त करता हुआ (मन्द्रः) सबको हर्ष देता हुआ (स्वाः) अपनी (पथ्याः) धर्म मार्ग पर चलने वाली प्रजाओं को (अनु आयाहि) अनुकूल रूप से प्राप्त कर, हमें प्राप्त हो और सिंह वा मेघवत् (पृथिव्याः सानु) पृथिवी के उच्चतम उन्नत प्रदेश को भी (शुष्मैः) अपने बलों से (नदयन्) गुंजित वा समृद्ध करता हुआ (जम्भेभिः) अपने शत्रु-नाशक उपायों से (विश्वम्) समस्त राष्ट्र और (वनानि) ऐश्वर्यों को भी (उशधक्) काष्ठों को अग्निवत् चाहे और उपभोग करे।

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (प्राचीनः यज्ञः) प्राङ्मुख यज्ञ (सुधितम् बर्हिः) अच्छी प्रकार बिछे कुशासनादि चाहता उसी प्रकार (प्राचीनः) उत्तम पद पर प्राप्त (यज्ञः) सत्संग और आदर योग्य (अग्निः), अग्रणी तेजस्वी पुरुष आदर सत्कार प्राप्त कर (बर्हिः अग्निः च) हविद्रव्य को अग्नि के समान (होता) स्वयं ग्रहण करके (प्रीणीते) तृप्त होता है । हे (यविष्ठ) बलशालिन्, अति तरुण ! तू (यतः) जिनसे (जज्ञिषे) उत्पन्न होता है वे (मातरा) माता पिता (विश्व-वारे) सब सुखों के देने वाले, सब प्रकार से वरण योग्य, परम पूज्य होते हैं, उन दोनों को तू (आ हुवानः) आदरपूर्वक स्तुति करता हुआ (सुशेवः) उनको सुख देने वाला हो ।

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥ ४ ॥

भा०—(ये) जो (एषाम्) इन प्रजावर्गों में से (वि-चेतसः) विविध और विशेष ज्ञान वाले (मानुषासः) मनुष्य हैं वे (सद्यः) शीघ्र (अध्वरे) यज्ञ में अग्नि के समान तेजस्वी एवं (रथिरं) रथ-सैन्य के संचालन का स्वामी (जनन्त) बनावें । (दुरोणे अग्निः) दुःख से चढ़ने योग्य अन्तरिक्ष में, दूर जिस प्रकार सूर्य है उसी प्रकार वह भी (दुरोणे) गृह में (अग्निः) गार्हपत्य अग्नि को स्थापन किया जाता है (विशां विश्पतिः) प्रजाओं का स्वामी, (विशां दुरोणे) प्रजा के गृहस्थवत् राष्ट्र में (मन्द्रः) सबको अनन्दप्रद हो । (मधुवचाः) मधुरभाषी (ऋतावा) सत्य न्याय का सेवन करने वाला पुरुष (अधायि) राजा पद पर स्थापित हो ।

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥५॥

भा०—जिस प्रकार (नृसदने अग्निः विधर्त्ता) मनुष्यों के रहने के स्थान में अग्नि स्थापित होकर विविध सुखों को धारण करता है उसी प्रकार (वह्निः) पत्नी से विवाह करने वाला, (वृतः) पत्नी द्वारा स्वयं वृत (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नृ-सदने) नर नारी दोनों के रहने योग्य गृह में (ब्रह्मा) प्रजा की वृद्धि करने हारा होकर (आ जगन्वान्) आदर पूर्वक आकर (असादि) विराजे । और जो स्वयं (द्यौः) सूर्य के समान है और (पृथिवी) गृहस्थ का आश्रय होने से पृथिवी के तुल्य है इसी प्रकार स्त्री भी कामना योग्य होने से 'द्यौ' और सन्तान की उत्पादक भूमि के होने से पृथिवी के तुल्य है इसी प्रकार दोनों ही पद (यं वावृधाते) जिसको बढ़ाते हैं, (यं) जिसको (होता) ज्ञानोपदेष्टा पुरुष भी (विश्ववारं) सबसे वरण करने योग्य जानकर (यजति) प्राप्त होता और ज्ञान प्रदान करता है । इसी प्रकार 'वृत' अर्थात् वरण किया राजा भी राज्य-भार को अपने कन्धों पर उठाने से 'वह्नि' है । वह बड़ा होने से 'ब्रह्मा', अग्रणी नायक होने से 'अग्नि' है, वह राज्य भार को विशेष रूप से धारण करने वाला हो । (यं) जिसको (द्यौः पृथिवी च) ज्ञानी अज्ञानी वा शासक और शास्य दोनों वर्ग बढ़ावें, और ज्ञान और अधिकार को दाता जन प्राप्त होते और जिसको शक्ति और अधिकार देते हैं ।

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ।६।

भा०—(ये) जो (नर्याः) मनुष्यों के हितकारी लोग (वारं) वरणीय, श्रेष्ठ (मन्त्रम्) विचार, राष्ट्रचालक मन्त्रणा को (अतक्षन्) प्रकट करते हैं (एते) वे (द्युम्नेभिः) ऐश्वर्यों से (विश्वम्) सब विश्व को (आ अतिरन्त) सब प्रकार से बढ़ाते हैं और (ये) जो (श्रोषमाणाः) स्वयं ज्ञान का श्रवण करते कराते हुए, (विशः) सब प्रजाओं को (प्र तिरन्त) बढ़ाते हैं और (ये) जो (मे) मुझे (अस्य ऋतस्य) इस, सत्य

विज्ञान और न्याय को (आदीधयन्) प्रकाशित करते हैं। वे ही (विश्वस् आतिरन्त) सब को पालन करते हैं और वे ही सबको दुःखों से पार करते हैं।

नू त्वाम॑ग्न ईमहे॒ वसि॑ष्ठा ईशा॒नं सू॑नो सहसो॒ वसू॑नाम् ।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घव॑द्भ्य आनड्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ७।१०

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (सहसः सूनो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! एवं बलशाली सैन्य के स्वामिन् ! हम (वसिष्ठाः) उत्तम वसु होकर (वसूनाम् ईशानम्) गुरु के अधीन वास करके ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करने वाले, वा राष्ट्र में बसाने वाले प्रजाजनों के (ईशानं) स्वामी (त्वाम्) तुझ से (ईमहे) हम यह प्रार्थना करते हैं कि (स्तोतृभ्यः) विद्वान् उपदेष्टा, स्तुतिशील और (मघवद्भ्यः) उत्तम धन सम्पन्नों के लिये (इषं आनट्) उनके इच्छानुरूप ज्ञान और धन प्रदान कर और हे उत्तम विद्वानों और आढ्य पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (सदा नः पात) हमारी सदा रक्षा करें। वसन्ति आचार्याधीनं ब्रह्मचर्यमिति वसवः तेषु उत्तमाः वसिष्ठाः । वसन्ति गृहेषु इति वसवः पितरः । तेषु उत्तमा वसिष्ठाः । इति दशमो वर्गः ॥

[८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ७ स्वराट् पंक्तिः । ५ निचृत्त्रिष्टुप् २, ३, ४, ६ त्रिष्टुप् ॥

इ॒न्धे राजा॒ सम॒र्यो नमो॑भि॒र्यस्य॒ प्रती॑क॒माहु॑तं घृ॒तेन॑ ।
नरो॑ ह॒व्येभि॑रीळते स॒बाध॒ आग्नि॒रग्र॑ उ॒षसा॑मशोचि ॥ १ ॥

भा०—(अग्निः) जिस प्रकार सूर्य (उषसाम् अग्रे) प्रभात वेलाओं के पूर्व भाग में (आ अशोचि) प्रदीप्त होता है उसी प्रकार (अग्निः) यह

आहवनीय अग्नि भी (उषसाम् अग्रे अशोचि) प्रभात वेलाओं के पूर्व के अंश में ही प्रदीप्त होना उचित है। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतम्) जिसका प्रज्वलित स्वरूप तेज से व्याप्त, सूर्य विम्ब के समान (घृतेन आहुतम्) घृत से आहुत होकर चमकता है (सबाधः नरः) बाधा अर्थात् पीड़ा रोगादि से व्यथित लोग उसको (हव्येभिः) नाना प्रकार के अग्नि में जलने योग्य ओषधि अन्नों से (ईडते) तृप्त करते हैं, रोगपीड़ित होकर जन रोगनाश के लिये नाना ओषधियों की आहुति करते हैं (सः राजा अर्यः) वह अग्नि प्रदीप्त होकर स्वामी के समान (नमोभिः सम् इन्धे) उत्तम अन्नों से खूब प्रदीप्त हो। इसी प्रकार (उषसाम् अग्रे) कामना युक्त धन रक्षादि, चाहने वाली प्रजाओं और शत्रु दाहक सेनाओं के बीच में अग्र, मुख्य पद पर (अग्निः) अग्रणी नायक (आ अशोचि) खूब प्रदीप्त हो, वह अपने को सदा स्वच्छ, निष्पाप और शुचि, अर्थात् अर्थ, कामादि से भी च्छस्व होकर रहे। (यस्य) जिसकी (प्रतीका) प्रतीति कराने वाला सैन्य (घृतेन) तेज से (आहुतम्) युक्त हो। और जिसकी (सबाधः नरः हव्येभिः ईडते) दुष्टों से पीड़ित होकर प्रजा के लोग उसको देने योग्य नाना भेटों, करों, वा दण्डों से उसको प्रसन्न करते हैं। वह (अर्यः) सबका स्वामी, (नमोभिः) अन्नों से वैश्य के समान और आदर सत्कारों से ज्ञानी पुरुष के समान (राजा) तेजस्वी राजा (नमोभिः) शत्रु नमाने के उपाय रूप शस्त्रास्त्र बलों से (समिन्धे) खूब प्रदीप्त होता है।

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥२॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः कृष्ण-पविः ओषधीभिः ववक्षे) आग काले मार्ग वाला है उसे ओषधियां धारण करती हैं। उसी प्रकार (मनुष्यः) मननशील मनुष्य, भी (यह्वः) महान् पूज्य (अग्निः)

अग्नि के समान तेजस्वी है जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (कृष्ण-पविः) श्याम धारावाले वा शत्रु को काटने वाले शस्त्रास्त्र से युक्त है । उसे (ओषधीभिः) तीक्ष्ण शत्रुबल को दग्ध करने वाले सैन्यगण (ववक्षे) धारण करते हैं । वह (ससृजानः) अग्नि के समान उत्पन्न होकर, (ससृजानः) स्वयं कार्य करता हुआ (भाः वि अकः) नाना प्रकार से या विशेष रूप से कान्तियें, तेज प्रकट करता है (अयम् उ स्यः) वह ही यह (होता) महान् राज्य को स्वीकार करने और सहस्रों को वृत्ति देने वाला और (मन्द्रः) सब को सुखी करने वाला होकर (सु-महान् अवेदि) खूब बड़ा जाना जाता है ।

कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥

भा०— हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! अग्रणी, मुख्यपद को प्राप्त राजन् ! तू (कया) किस रीति नीति से (नः वि वसः) हमें विविध प्रकार से रक्षा करते हो ? और (काम् सुवृक्तिम्) किस उत्तम संविभाग की (स्वधां) ऐश्वर्य एवं स्वराष्ट्र को धारण करने वाली नीति को आप (शस्यमानः) स्तुति योग्य होकर (ऋणवः) प्राप्त होते हो । हे (सुदत्र) उत्तम दानशील ! हम लोग (दुस्तरस्य रायः) अपार ऐश्वर्य के (पतयः) स्वामी और (वन्तारः) सेवन करने वाले (कदा) कब (भवेम) हों और (दुःस्तरस्य) बल विद्या में अपार (साधोः) सज्जन पुरुष के हम भी (वन्तारः कदा भवेम) सेवक कब हों ।

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

भा०—(यत्) जो (भाः) दीप्तिमान् होकर (सूर्यः न रोचते) सूर्य के समान प्रकाशित होता, (बृहत्) महान्, होकर (अयम्)

वह (भरतस्य) मनुष्यमात्र का (अग्निः) अग्नि के समान मार्ग-दर्शक प्रकाशक रूप से (प्र-प्र शृण्वे) उच्च पद पर विख्यात होकर सुना जाता और उनके सुख दुःख निवेदनादि सुनता है । (यः) जो (पृतनासु) मनुष्यों में (पूरुम्) पालक जनों को (अभि तस्थौ) प्राप्त कर ऊपर अध्यक्ष रूप से विराजता है और वह (द्युतानः) दीप्तियुक्त होकर (दैव्यः) देव, विद्वानों में प्रशंसित (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य और सबको अतिक्रमण कर सर्वोपरि विराजने वाला होकर (शुशोच) चमकता है ।

असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! (त्वे) तेरे निमित्त (भूरि) बहुत से (आहवनानि) सत्कार पूर्वक नियन्त्रण (असन् इत्) हों । तू (विश्वेभिः अनीकैः) सब सैन्यों से युक्त और (सुमनाः) उत्तम चित्त वाला (भुवः) हो । हे (सुजात) उत्तम गुणों से प्रख्यात ! तू (स्तुतः-चित्) प्रशंसित और (गृणानः) उत्तम उपदेश करता हुआ भी (शृण्विषे) अन्यों के वचनों का श्रवण किया कर और (स्वयं) अपने आप (तन्वं वर्धस्व) शरीरवत् अपने राष्ट्र और विस्तृत ज्ञानकी वृद्धि किया कर ।

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (द्वि-बर्हाः) विद्या और नियम, ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ने वाला पुरुष (अग्नये) अग्रगण्य पुरुष की उन्नति के लिये (शत-साः) सैकड़ों ज्ञानों को देने वाला होकर (सं-सहस्रम्) सहस्रों, अपरिमित ऐश्वर्यों और ज्ञानों के देने वाला (इदं वचः) इस

प्रकार का वचन (उत् जनिषीष्ट) उत्पन्न करे, कहे (यत्) जो (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (आपये) आप्तजन, बन्धु वर्ग के लिये (शं भवाति) शान्तिदायक हो और जो (द्युमत्) शुभ कामनायुक्त, (अमीव-चातनं) रोगादिनाशक और (रक्षः-हा) दुष्ट पुरुषों का नाशकारी हो।

नू त्वाम॑ग्न ईमहे॒ वसि॑ष्ठा ईशा॒नं सू॑नो सहसो॒ वसू॑नाम्।
इषं॑ स्तो॒तृभ्यो॑ म॒घव॑द्भ्य आनड्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ७।११

भा०—व्याख्या देखो (सू० ७। म० ७)। इत्येकादशो वर्गः ॥

[८]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्।, २, ३ भुरिक् पंक्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः ॥ षड्र्चं सूक्तम् ॥

अबो॑धि जा॒र उ॒षसा॑मु॒पस्था॒द्धोता॑ म॒न्द्रः क॒वित॑मः पाव॒कः।
दधा॑ति के॒तुमु॒भय॑स्य ज॒न्तोर्ह॒व्या दे॒वेषु॒ द्रवि॑णं सु॒कृत्सु॑ ॥ १ ॥

भा०—(जारः) रात्रि को जीर्ण कर देने वाला सूर्य जिस प्रकार (उषसाम् उपस्थात्) प्रभात वेलाओं के बीच में प्रकट होकर (अबोधि) सबको प्रबुद्ध करता, (उभयस्य जन्तोः) दोपाये, चौपाये दोनों को (केतुम्) प्रकाश वा चेतना देता है, उसी प्रकार (उषसाम् उपस्थात्) हृदय से चाहने वाले शिष्यों वा प्रजाओं के बीच (जारः) उत्तम उपदेश करने हारा पुरुष (अबोधि) अन्यों को ज्ञान से बोधित करे। वह (होता) उत्तम ज्ञान का देने वाला (मन्द्रः) उत्तम हर्षजनक, (कवि-तमः) श्रेष्ठ विद्वान्, (पावकः) शोधक अग्नि के समान सबको पवित्र करने वाला होता है। वह (उभयस्य जन्तोः) ज्ञानी अज्ञानी दोनों प्रकार के, वा पशु व मनुष्य, दोनों वा इहलोक वा परलोक को जाने वाले दोनों प्रकार के (जन्तोः) प्राणियों को (केतुम्) ज्ञान का

प्रकाश (दधाति) प्रदान करता है। वह (देवेषु) विद्वानों और ज्ञान की कामना करने वालों और (सुकृत्सु) उच्च आचारवान् सुकर्मा पुरुषों में (हव्या) ग्रहण करने योग्य अन्न, वचनादि तथा (द्रविणं) धन भी (दधाति) प्रदान करे।

स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (राम्याणां तमः दमूनाः तिरः ददृशे) रात्रियों के अन्धकार को दूर करके अग्नि वा सूर्य दिखाई देता है उसी प्रकार (यः) जो (दमूनाः) दान में अपना चित्त देने वाला, जितेन्द्रिय, मन को जीतने वाला, (होता) दाता, (मन्द्रः) सब को प्रसन्न करने वाला पुरुष (नः) हमारे (पुरु-भोजसं) बहुतों को पालने वाले, और बहुत से ऐश्वर्यों को भोगने वाले (अर्कं) पूज्य पुरुष को (वि पुनानः) विशेष रूप से पवित्र रूप से अभिषिक्त वा स्थापित करता हुआ (पणीनां) व्यवहार करने वाले प्रजागणों के (पुरः) नाना द्वारों या व्यवहार के मार्गों को (वि पुनानः) न्यायमर्यादा से स्वच्छ, निष्कण्टक करता हुआ (राम्याणाम्) रमण करने योग्य (विशां तमः तिरः ददृशे) प्रजाओं के अज्ञान, अधर्म वा पाप को दूर करके स्वयं अग्नि या सूर्यवत् तेजस्वी रूप से दीखता है (सः सुक्रतुः) वही पुरुष शुभ कर्म और उत्तम बुद्धिवाला है।

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (चित्र-भानुः) अद्भुत कान्तिवाला सूर्य (उषसाम् अग्रे भाति) प्रभात वेलाओं के अग्रभाग में चमकता है और जिस प्रकार विद्युत् (अपाम्) जलों के (गर्भः) बीच गर्भित होकर

(प्र-स्वः) उत्तम रीति से ओषधियों को उत्पन्न करने वाली भूमियों और ओषधियों में भी (आ विवेश) प्रविष्ट हो जाता है उसी प्रकार (अमूरः) कभी नाश न होने वाला, एवं (अमूरः) अमूढ़, मोह अज्ञान से रहित, (कविः) क्रान्तदर्शी, (अदितिः) अदीन, उत्साही, (विवस्वान्) सूर्यवत् नाना किरणों के सदृश वसुओं, प्रजाओं का स्वामी, (सु-संसत्) उत्तम राजसभा का स्वामी, (मित्रः) प्रजा को मारने या विनाश होने से बचाने वाला, सबका स्नेही, न्यायशील, (अतिथिः) अतिथिवत् पूज्य, सबको अतिक्रमणकर सर्वोपरि विराजमान, (शिवः) सब का कल्याणकारी हो । वह (नः) हमारे बीच में (उषसाम्) शत्रु और पापों को भस्म करने वाले सैन्यों के आगे सेनानायकवत् प्रकाशित हो और वह (अपां) आप्त प्रजाओं को (गर्भः) अपने वश में लेने हारा होकर (प्र-स्वः) उत्तम धनवान् होकर (प्रस्वः = प्रसुवः) प्रभूत ऐश्वर्यवान्, प्रजाओं के भीतर प्रजापति गृहपति के समान ही (आविवेश) प्रविष्ट होता है ।

ई॒ळेन्यो॑ वो॒ मनु॑षो यु॒गेषु॑ समन॒गा अ॑शुचज्जा॒तवे॑दाः ।
सु॒स॒न्दृशा॑ भा॒नुना॒ यो वि॒भाति॒ प्रति॒ गावः॑ समिधा॒नं बु॑धन्त॥४॥

भा०—हे मनुष्यो ! जो (युगेषु) वर्षों में (समनगाः) संग्रामों में जाने वाला, (जातवेदाः) धनाढ्य, और विद्यावान्, (वः) आप सब (मनुषः) मनुष्यों को (अशुचत्) शुद्ध पवित्र करता है वह (ईडेन्यः) स्तुति योग्य है । और (यः) जो (भानुना) तेज से सूर्य के समान (सु-सन्दृशा) उत्तम सम्यक् दर्शन, यथार्थ ज्ञान प्रकाश से (वि भाति) स्वयं प्रकाशित होता है (गावः) किरणें जिस प्रकार (समिधानं) चमकते सूर्य का बोध कराती हैं उसी प्रकार (गावः) वेद-वाणियां भी (समिधानं प्रति) अच्छी प्रकार सम्यक् ज्ञान से प्रकाशमान पुरुष को (प्रति बुधन्त) प्रत्येक पदार्थ का प्रत्यक्ष बोध कराती हैं ।

अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, प्रतापशालिन् ! तू (दूत्यं याहि) अग्नि के समान ही शत्रु संतापन के सामर्थ्य को प्राप्त हो, तो भी (देवान्) उत्तम मनुष्यों को (मा रिषण्यः) दण्डित मत कर और शुभ गुणों का नाश मत कर । (ब्रह्म-कृता गणेन) धन, अन्न और ज्ञान को उत्पन्न करने वाले 'गण' अर्थात् नाना साधनों से (सरस्वतीम्) वेद वाणी को, (मरुतः) प्रजाओं के व्यापारी पुरुषों को और (अश्विना) प्रजा के उत्तम स्त्री पुरुषों, अश्वारोही, रथी सारथी जनों और (अपः) आप्त पुरुषों के साथ (अच्छ यक्षि) भली प्रकार सत्संग कर । (रत्नधेयाय) रमणीय गुणों और पदार्थों को धारण करने के लिये (विश्वान् देवान्) समस्त प्रकार के विद्वान् पुरुषों का (यक्षि) सत्संग कर ।

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्, अग्निवत् तेजस्विन् ! (वसिष्ठः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन उत्तम वसु ब्रह्मचारी (त्वा जरूथं) तुझ विद्या और वयस् में वृद्ध एवं उत्तन ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष को (हन्) प्राप्त हो । वह विद्वान् होकर (राये) धन को प्राप्त करने के लिये (पुरन्धिम्) बहुत से धनों को धारने वाले आढ्य पुरुष को (यक्षि) प्राप्त करे । हे (जातवेदः) विद्वन् ! हे धनवन् ! तू (पुर-नीथाः) बहुत सी वाणियों और बहुत से मार्गों व उपायों से सम्पन्न होकर (जरस्व) अन्यों को विद्या का उपदेश कर और स्वयं बड़ा हो । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा शुभ कल्याणकारी साधनों से पालन करो । इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (जारः) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य (पृथु-पजः आश्रेद्) महान् तेज धारण करता है, (शोशुचानः दविद्युतत्) खूब तेजस्वी होकर चमकता है उसी प्रकार (जारः) विद्या का उपदेष्टा, (उषः न) उषा वा प्रभात काल के समान (पृथु-पाजः) बड़े भारी बल और अन्न को (अश्रेत्) प्राप्त करे । वह (शोशुचानः) स्वयं तेजस्वी होकर अन्यों को भी शुद्ध करता हुआ (दविद्युतत्) स्वयं प्रकाशित हो, सब को प्रकाशित करे । वह (शुचिः) शुद्धचित्त, धर्मात्मा, (वृषा) बलवान् सब पर सुखों की वर्षा करने हारा, उत्तम प्रबन्धक (हरिः) पुरुष (आ भाति) सब प्रकार से प्रकाशित हो । वह (धियः) कर्त्तव्यों, ज्ञानों और बुद्धियों को (हिन्वानः) उपदेश करता हुआ (उशतीः) विद्या धनादि की अभिलाषा करने वाली प्रजाओं को (अजीगः) प्रबुद्ध करे ।

स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद्दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥२॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, विद्वान् पुरुष (वस्तोः स्वः न) दिन के समय कान्ति युक्त किरणों के बीच सूर्य के समान (उषसाम्) कामना युक्त प्रजाओं और शत्रुओं को दग्ध करने वाली सेनाओं के बीच (अरोचि) सबको अच्छा लगता है । (यज्ञं तन्वानाः उशिजः न) यज्ञ करने वाले धनादि के इच्छुक ऋत्विजों के समान (उशिजः) विद्या धनादि की कामना करने वाले पुरुष भी (यज्ञं तन्वानाः) सत्संग

करते हुए (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें और वह (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (देवः) ज्ञानदाता, सर्व अज्ञात तत्वों का प्रकाशित करने वाला, (विद्वान्) विद्वान् (देव-यावा) ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर वा अन्यों को शुभ गुण प्राप्त कराने वाला, (वनिष्ठः) ज्ञान ऐश्वर्यादि का उदारता से विभाग करता हुआ (जन्मानि) नाना उत्तम जन्मों, रूपों वा उत्तम जन्म ग्रहण करने हारे शिष्य जनों को (आ वि द्रवत्) आदर पूर्वक विशेष रूप से प्राप्त करे ।

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसन्दृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (द्रविणं भिक्षमाणाः मानुषाणाम् अरतिं यन्ति) द्रविण, धन के याचक लोग मनुष्यों के स्वामी को प्राप्त होते हैं । और जिस प्रकार (गिरः) उत्तम वाणियां, (मतयः) उत्तम बुद्धियां (देवयन्तीः) प्रभु की कामना करती हुई (भिक्षमाणः) धन, यज्ञादि की प्रार्थना करती हुई प्रभु को लक्ष्य कर जाती हैं उसी प्रकार (गिरः) उत्तम स्तुतिशील (मतयः) मननशील कन्याएं भी (देवयन्तीः) देव, दानशील, कामना योग्य पति की कामना करती हुई (द्रविणं भिक्षमाणः) धन, यश, एवं पुत्रादि की याचना करती हुई (सुसन्दृशं) उत्तम, समान रूप से सुन्दर दीखने वाले, (सुप्रतीकम्) सुमुख, (स्वञ्चम्) उत्तम रीति से पूजा करने योग्य (हव्य-वाहम्) ग्राह्य और देय, ऐश्वर्य, अन्न वस्त्रादि प्राप्त कराने वाले (अरतिम्) स्वामी को (मानुषाणाम्) मनुष्यों के बीच में (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को एवं (अग्निम्) यज्ञाग्नि को भी (यन्ति) प्राप्त करती हैं । उसी प्रकार (गिरः मतयः देवयन्त) उत्तम वक्ता, मतिमान्, विद्वान् की कामना युक्त शिष्यादि, वा प्रजाएं (सुसंदृशम्) उत्तम ज्ञान, न्याय आदि के द्रष्टा, पूज्य (अग्नि) अग्र नेता, पुरुष को आचार्य, वा राजा रूप से प्राप्त होते हैं ।

इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ।४।

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! आप (सजोषाः) प्रेम युक्त होकर (वसुभिः) जल पृथिवी आदि पदार्थों द्वारा हमें (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त, एवं भूमि पर्वतादि के विदारण में समर्थ विद्युत्, मेघ आदि को (आ वह) प्राप्त करा । (आदित्येभिः) सूर्य के द्वारा उत्पन्न मास आदि कालावयवों से (विश्व-जन्यां) समस्त जनों के हितकारी (अदितिं) अखण्ड काल के ज्ञान को और (ऋक्वभिः) ऋचाओं से (विश्व-वारम्) सबके वरने योग्य (बृहस्पतिम्) बड़े ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु को (नः आवह) हमें प्राप्त करा । उन २ द्वारा उन २ पदार्थों का अच्छी प्रकार ज्ञान और उनका उपयोग कर । इसी प्रकार हे राजन् ! (वसुभिः इन्द्रं) ब्रह्मचारियों सहित आचार्य (रुद्रेभिः रुद्रं) रोगनाशक ओषधियों सहित 'रुद्र' अर्थात् वैद्य को, (आदित्येभिः अदितिं) आदान प्रतिदानकारी व्यवहारज्ञों से इस सर्व सेनोपयोगी भूमि को, और (ऋक्वभिः) अर्चना योग्य पुरुषों सहित सर्वदुःखवारक, बड़ों के भी पालक प्रभु वा राजा को हम प्राप्त करें ।

मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ।५।१३।

भा०—(उशिजः) रक्षा, द्रव्यादि की कामना करने वाले (विशः) प्रजागण (अध्वरेषु) हिंसारहित, प्रजापालनादि कार्यों में (अग्नि) यज्ञों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी, (मन्द्रम्) सब को हर्ष देने वाले, (होतारम्) सबको आदर से बुलाने और भृति, वेतनादि देने वाले, (अग्निम्) ज्ञानी अग्रनायक पुरुष को (ईडते) सदा चाहते हैं । (सः हि) वह निश्चय से (रयीणाम्) ऐश्वर्यों की रक्षा के लिये (अतन्द्रः) अप्रमादी, (दूतः) दुष्टों का संतापक और (देवान् यजथाय)

विद्वानों का आदर सत्कार सत्संगादि करने के लिये सदा तत्पर एवं (क्षपावान्) रात्रियों के स्वामी चन्द्र के समान अह्लादकारक और (क्षपावान्) शत्रुओं को नाश करने वाली सेनाओं का स्वामी (अभवत्) हो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[११]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः। २, ४ भुरिक्पंक्तिः। ३ विराट्त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम्

म॒हाँ अ॑स्यध्व॒रस्य॑ प्रके॒तो न ऋ॒ते त्वद॒मृता॑ मादयन्ते।
आ विश्वे॑भिः स॒रथं॑ याहि दे॒वैर्न्य॑ग्ने॒ होता॑ प्रथ॒मः स॑दे॒ह ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! प्रभो! तू (अध्वरस्य) सब प्रकार के व्यवहार का (प्र-केतः) बतलाने वाला और (महान् असि) गुणों में महान् है। (त्वद् ऋते) तेरे विना (अमृताः) जीवित जीव (न मादयन्ते) प्रसन्न नहीं हो सकते, तेरे विना सुख का जीवन व्यतीत नहीं कर सकते। तू (विश्वेभिः देवैः) समस्त उत्तम मनुष्यों सहित (सरथं आयाहि) अपने रथों, सुखों, सहित आ, (होता) तू सब के सुखों का दाता (प्रथमः) सबसे मुख्य होकर (इह सद) यहां विराज।

त्वामी॑ळते अजि॒रं दू॒त्या॑य ह॒विष्म॑न्त॒ः सद॒मिन्मानु॑षासः।
यस्य॑ दे॒वैरास॑दो ब॒र्हिर॑ग्नेऽहा॑न्यस्मै सु॒दिना॑ भवन्ति ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (हविष्मन्तः मानुषासः) अन्नादि साधनों वाले मनुष्य (सदम् इत्) स्थिरता से विराजने वाले (अजिरम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले (त्वाम्) तुझको (दूत्याय) उत्तम दूत कर्म और शत्रु संतापन के कार्य के लिए (ईडते) प्रार्थना करते और चाहते हैं। (यस्य) जिसका (बर्हिः) बड़ा राष्ट्र (देवैः आ सदः) विद्वान् पुरुषों द्वारा शासित होता है, (अस्मै) उसके ही (अहानि)

सब दिन (सुदिना भवन्ति) उत्तम होते हैं। या जिस विद्वान् का वृद्धिकारक ज्ञान विद्या के इच्छुक विद्वानों द्वारा ग्राह्य होता है वे उस दिन सुखदायक होते हैं।

त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् प्रकाशक! (त्वे अन्तः) तेरे शासन में (दाशुषे मर्त्याय) वृत्ति आदि देने वाले मनुष्य के (वसूनि) ऐश्वर्यों को विद्वान् लोग (अक्तोः) दिन वा रात्रि में भी (त्रिः) तीन वार (प्रचिकितुः) अच्छी प्रकार चेत लेवें। तू मनुष्वत्) मनुष्यों के समान विचारवान् होकर ही (देवान् यक्षि) शुभ गुणों और उत्तम पुरुषों से संगत हो। (नः) हमारा (दूतः) दूत, शत्रुसंतापक होकर (अभिशस्ति-पावा) दुरपवाद वा शत्रु-प्रहार से बचाने वाला वा हम प्रशंसितों का रक्षक (भव) हो।

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥ ४ ॥

भा०—(अग्निः) जिस प्रकार (बृहतः अध्वरस्य ईशे) बड़े भारी यज्ञ को कराने में समर्थ है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणीनायक, तेजस्वी पुरुष (बृहतः अध्वरस्य) बड़े भारी हिंसारहित यज्ञ का (ईशे) प्रभु है। (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष ही (कृतस्य) स्वच्छ किये (विश्वस्य) सब प्रकार के (हविषः) अन्न वा धन का (ईशे) स्वामी है। (अस्य) इसके उपदेश किये (क्रतुम्) काम और इसके ज्ञान को (हि) निश्चय से (वसवः) ब्रह्मचारी लोग (जुषन्त) सेवन करते हैं (अथ) और देवाः) विद्वान् लोग भी (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों को धारण करने वाले इसको (दधिरे) धारण करें।

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम्।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।५।।१४।।

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! हे तेजस्विन्! (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (अद्याय) खाने के लिये (हविः आ वह) उत्तम अन्न प्राप्त करा। अथवा (हविः-अद्याय) उत्तम अन्नादि भोजन कराने के लिये (देवान् आ वह) उत्तम विद्वान् पुरुषों को प्राप्त कर। (इह) इस राष्ट्र में (इन्द्र-ज्येष्ठासः) राजा को अपना मुख्य मानने वाले प्रजाजन (मादयन्ताम्) यहां प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करें। हे विद्वन्, राजन्, (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) विद्वान्, पुरुषों के आश्रय पर (धेहि) स्थापित कर। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) तुम सब लोग (नः) हमें (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः पात) सुख कल्याणकर साधनों से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[१२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। पंक्तिः॥
तृचं सूक्तम्॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ॥ १ ॥

भा०—(स्वे दुरोणे) अपने गृह, अग्नि कुण्ड में (समिद्धः) प्रदीप्त अग्नि के समान (यः) जो पुरुष वा प्रभु (स्वे दुरोणे) अपने गृह वा परम पद में (सम्-इद्धः सम् दीदाय) सर्वत्र समान रूप से प्रकाशित हो रहा है उस (यविष्ठं) अति बलवान् वा परमाणु २ को विद्युत् के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ, (महा) बड़े भारी उर्वी (रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथिवी के बीच (चित्र-भानुम्) अद्भुत

कान्तिमान्, सूर्यवत् स्वयं प्रकाशित हो अन्यों को भी प्रकाशित करने वाले, (विश्वतः प्रत्यञ्चम्) सर्वत्र प्रत्येक पदार्थ में व्यापक (सु-आहुतम्) उत्तम रीति से स्वीकृत एवं आदरपूर्वक वर्णन करने योग्य, सुप्रकाशित प्रभु को (अगन्म) प्राप्त हों ।

स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ॥ २ ॥

भा०—(दमे) गृह में (अग्निः) प्रज्वलित अग्नि के समान (दमे) समस्त संसार को दमन करने में सर्वत्र प्रकाश करने हारा (जात-वेदाः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (स्तवे) स्तुति करने पर (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (सः) वह (विश्वा दुरितानि) सब प्रकारों के दुष्टाचारों और दुःखों को (साह्वान्) पराजित करने हारा है। (सः) वह (नः) हम (गृणतः) स्तुति करने वालों को (अवद्यात् दुरितात्) निन्दनीय पापाचार से (रक्षिषत्) बचावे और (उत्) वह (नः मघोनः) धन सम्पन्न हुए हमें भी निन्द्य पापाचार से बचावे ।

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१५॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वप्रकाश प्रभो ! (त्वं वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सबसे चाहने, वरने योग्य और सब दुःखों के वारण करने और सबको जीवन, आत्मधनादि का न्यायपूर्वक विभाग करने से तू 'वरुण' है। (उत मित्रः) और तू ही सबको स्नेह करने और सब जीवों को मृत्यु से बचाने वाला होने से 'मित्र' है। (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, विद्याओं में निवास करने, रमने वाले विद्वान् (मतिभिः) अपनी मननशील बुद्धियों और वाणियों से (त्वां वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं, तेरी स्तुति कर तेरा गुण सर्वत्र फैलाते हैं। (त्वे) तेरे में ही

समस्त (वसु) ऐश्वर्य (सु-सननानि) उत्तमरीति से देने योग्य (सन्तु) हों। हे विद्वानो! (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (स्वस्तिभिः पात) सुख कल्याणजनक उपायों से रक्षा करो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

[१३]

वसिष्ठ ऋषिः॥ वैश्वानरो देवता॥ छन्दः—१, २ स्वराट् पंक्तिः। ३ भुरिक्पंक्तिः॥

प्राग्नये॑ विश्व॒शुचे॑ धिय॒न्धे॑ऽसुर॒घ्ने मन्म॑ धी॒तिं भ॑रध्वम्।
भरे॑ ह॒विर्न ब॒र्हिषि॑ प्रीणा॒नो वै॑श्वान॒राय॒ यत॑ये म॒तीना॑म्॥ १॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (विश्व-शुचे) सब जगत् को प्रकाशित और पवित्र करने वाले और (विश्व-शुचे) सब के प्रति शुद्ध अन्तःकरण वाले, (धियन्धे) उत्तम बुद्धि, ज्ञान और कर्म को धारण करने, कराने वाले, (असुरघ्ने) दुष्टों का नाश, तिरस्कार करने वाले (मतीनां यतये) ज्ञान बुद्धियों के देने वाले एवं मननशील पुरुषों के बीच संयम से रहकर ईश्वर प्राप्ति और जगत् के सुधार का यत्न करने वाले, (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों के हितकारी, सर्वनायक रूप (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (बर्हिषि अग्नये) यज्ञ में अग्नि के लिये (हविः न) हवि के समान (मन्म धीतिम् भरे) मननयोग्य, उत्तम संकल्प और स्तुति प्रस्तुत करता हूं।

त्वम॑ग्ने शो॒चिषा॒ शोशु॑चा॒न आ रोद॑सी अपृणा॒ जाय॑मानः।
त्वं दे॒वाँ अ॒भिश॑स्तेरमुञ्चो॒ वैश्वा॑नर जातवेदो महि॒त्वा॥ २॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! प्रकाशस्वरूप! ज्ञानवन्! जिस प्रकार अग्नि या सूर्य (जायमानः) प्रकट होता हुआ (शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणात्) स्वयं प्रदीप्त होकर आकाश, पृथिवी दोनों को तेज से पूर्ण कर देता है उसी प्रकार तू भी (जायमानः)

प्रकट होकर (शोशुचानः) शुद्ध पवित्र होकर (शोचिषा) अपने तेज से (रोदसी) स्त्री पुरुषों को (अपृणाः) पूर्ण कर। (त्वं) तू (देवान्) उत्तम मनुष्यों को हे (जातवेदः) विद्यावन् ! (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (अभि-शस्तेः) अभिमुख प्रशंसा करने वाले दम्भी और सन्मुख शस्त्रादि के प्रयोक्ता घातक से, मिथ्याभियोगी पुरुष से (अमुञ्चः) छुड़ा।

जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१६

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! अग्निवत् तेजस्विन् ! संन्यासिन् ! जिस प्रकार अग्नि (जातः भुवना वि-अख्यः) उत्पन्न होकर नाना उत्पन्न पदार्थों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तू भी (जातः) विद्यादि गुणों से प्रकाशित होकर (भुवना) नाना ज्ञानों को (वि-अख्यः) विशेष रूप से उपदेश कर। तू (परिज्मा) सब ओर भ्रमण करने वाला होकर (गोपाः पशून् न) गौओं का पालक जिस प्रकार पशुओं को दण्ड के बल से सीधे रास्ते चलाता है उसी प्रकार पशु सदृश अज्ञानी जनों का (गोपाः) रक्षक होकर (इर्यः) उनको सन्मार्ग में चलाने वाला है। (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के हितैषिन् ! सब के बीच सत्य ज्ञानका, प्रकाश करने हारे ! तू (ब्रह्मणे) प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये (गातुम्) सन्मार्ग (विन्द) प्राप्त कर, उसी का उपदेश कर। हे विद्वान् लोगो ! (यूयं) आप लोग भी (स्वस्तिभिः) उत्तम, उपायों से (नः पात) हमारी रक्षा करो। राज्य में राजा और विश्व में परमेश्वर भी त्याग वृत्ति से सब के रक्षक और सत्पथ में चलाने से सबके द्रष्टा, पालक, हैं। राजा (ब्रह्मणे) धनैश्वर्य की प्राप्ति के मार्ग को सदा जाने, जनावे। राजा के चमकते पीले केसरिये वस्त्र और संन्यासी के गेरुए वस्त्र अग्नि के अनुकरण में होते हैं। इति षोडशो वर्गः॥

[१४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृद्बृहती । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ॥

स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे दे॒वाय॑ दे॒वहू॑तिभिः ।
ह॒विर्भिः॑ शु॒क्रशो॑चिषे नम॒स्विनो॑ व॒यं दा॑शेमा॒ग्नये॑ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नये देवहूतिभिः समिधा हविर्भिः सह वयं नमस्विनः सन्तः दाशेम) अग्नि में परमेश्वर की स्तुतियों, काष्ठों, और चरुओं सहित अन्नयुक्त वा नमस्कार श्रद्धा विनयादि से युक्त होकर चरु आदि त्यागते हैं उसी प्रकार (वयम्) हम लोग (जातवेदसे) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी, और उत्पन्न विद्या-व्रतस्नातकों, वा निष्ठ पुरुषों में विद्यमान, (देवाय) पूज्य, ज्ञानप्रद, जीवनप्रद (शुक्रशोचिषे) शुद्ध, तेज, एवं वीर्य की तेजोमयी कान्ति से युक्त, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष के आदर सत्कार के लिये (नमस्विनः) उत्तम अन्न वाले और अति विनय आदि साधनों से युक्त होकर (देव-हूतिभिः) विद्वान् और इष्ट देव के प्रति आदर पूर्वक कहने योग्य वाणियों से और (हविर्भिः) उत्तम अन्नों सहित (वयं दाशेम) उसकी हम सेवा शुश्रूषा करें ।

व॒यं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र ।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर्व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! जिस प्रकार हम लोग (समिधा सुस्तुती, घृतेन, हविषा दाशेम) अग्नि की परिचर्या, काष्ठ उत्तम मन्त्रस्तुति, घी, और हवि, अन्नमय पुरोडाश आदि द्वारा करते हैं उसी प्रकार (वयम्) हम हे विद्वन् ! (ते) तेरी सेवा (समिधा) अच्छी प्रकार गुणों के प्रकाशन, प्रोत्साहन से (विधेम) करें, हे (यजत्र) ज्ञान के देने हारे ! हे सत्संगयोग्य ! हम (ते सुस्तुती दाशेम) तेरी उत्तम

स्तुति द्वारा सत्कार करें । हे (अध्वरस्य होतः) यज्ञ के होता के समान अहिंसामय व्यवहार का उपदेश देने, अहिंसा व्रत को स्वीकार करने हारे ! हे (देव) विद्वन् ! तेजस्विन् ! हे (भद्र-शोचे) कल्याण, सुखमय मार्ग के प्रकाशक ! (वयम्) हम (घृतेन हविषा विधेम) घी और हविष्य, सात्विक अन्न से तेरा आदर सत्कार करें ।

आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।१७

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! ज्ञानप्रकाशक ! तू (नः) हमारे (वषट्-कृतिं = अन्नसत्कृतिं जुषाणः) आदर सत्कार को प्रेम पूर्वक स्वीकार करता हुआ (देवेभिः) अपने उत्तम गुणों और विद्वानों सहित, किरणों सहित सूर्य के समान (नः) हमारे (देव-हूतिम्) विद्वानों की आमन्त्रित सभा को (आ उप याहि) प्राप्त हो । (देवाय तुभ्यम्) तुझ विद्वान् के उपकारार्थ हम (दाशतः) सदा आदर सहित देने और सेवा करने वाले (स्याम) हों । हे विद्वान् त्यागी पुरुषो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप सब सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा कीजिये । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[१५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, १०, १२, १४ विराड्गायत्री । २, ४, ५, ६, ९, १३ गायत्री । ८ निचृद्गायत्री । ११, १५ आर्च्युष्णिक् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः ।
यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (नः) हमारे (नेदिष्ठम्) अति समीप (आप्यम्) प्राप्त करने योग्य, बन्धुत्व, सौहार्द आदि प्राप्त करता उस

(उप-सद्याय) उपासना करने योग्य (मीढुषे) सुख और शान्ति के वर्षक विद्वान् पुरुष के (आस्ये) मुख में (हविः) अन्न का (जुहुत) त्याग करो। उसका अन्नादि ग्राह्य और दान योग्य पदार्थों से सत्कार करो।

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे ।
कविर्गृहपतिर्युवा ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (युवा) युवा, बलवान् (गृहपतिः) गृह का पालक, गृहस्थ और गृह के समान राष्ट्र का पालक राजा (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (दमे-दमे) गृह गृह में एवं इन्द्रियों के और मन के विषयों से दमन करने तथा, राष्ट्र में दुष्टों को दमन करने के कार्य में (पञ्च-चर्षणीः) पांचों प्रकार के प्रजाओं तथा (पञ्च चर्षणीः) पांचों विषयों के द्रष्टा पांचों इन्द्रियों पर (अभि नि-ससाद) अध्यक्षरूप से विराजता है वही उपास्य एवं शरण और सत्संग योग्य है।

स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः ।
उतास्मान्पात्वंहसः ॥ ३ ॥

भा०—(सः अग्निः) वह अग्रणी, विद्वान् पुरुष (नः) हमारी और (अमात्यं) हमारे साथी मित्र वा पुत्र की और (नः वेदम्) हमारे धन की भी (विश्वतः) सब प्रकार से रक्षा करें। (उत) और वह (अस्मान्) हमें (अंहसः) पापाचरण से भी (पातु) रक्षा करे।

नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् ।
वस्वः कुविद्वनाति नः ॥ ४ ॥

भा०—जो (नः) हमें (कुवित्) बहुत अधिक (वस्वः) धन की मात्रा (वनाति) प्रदान करता है उस (दिवः) शुभ कामना और विजय की पूर्त्ति के लिये (श्येनाय) श्येन, बाज के समान वेग से और उत्तम गति से जाने वाले (अग्नये) तेजस्वी, पुरुष के लिये (नवं स्तोमं) उत्तम स्तुतिवचन (जीजनम्) कहूं।

स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा।
अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यज्ञस्य अग्रे शोचतः अग्नेः यथा श्रियः दृशे स्पार्हाः) यज्ञ के अग्र भाग, में जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि की कान्तियां देखने के लिये हृदयहारिणी होती हैं उसी प्रकार (यज्ञस्य) ज्ञान, धन आदि के दान-प्रतिदान और छोटे बड़ों के सत्संगादि योग्य व्यवहार के (अग्रे) प्रथम साक्षी रूप में (शोचतः) तेजस्वी, व्यवहार को सदा स्वच्छ, निश्चल बनाये रखने वाले (वीरवतः) वीरों, विद्वानों के स्वामी (यस्य) जिसकी (स्पार्हाः श्रियः) स्पृहा करने योग्य उत्तम सम्पदायें (दृशे) देखने योग्य हैं उसी प्रकार उसका (रयिः) ऐश्वर्य और बल भी देखने योग्य हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः।
यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

भा०—(सः) वह (यजिष्ठः) अतिपूज्य एवं दानशील,(हव्य-वाहनः) ग्राह्य, स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (सः) वह (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (इमाम्) इस (नः) हमारे किये (वषट्-कृतिम्) सत्कार को (वेतु) प्राप्त करे आर इसी प्रकार हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (नः) हमारी वाणियों और सत्कार को (जुषत) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो।

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि।
सुवीरमग्न आहुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (विश्पते) प्रजाओं के पालक ! हे (देव) दानशील ! प्रकाशक तेजस्विन् ! हे (आ-हुत) आदरपूर्वक निमन्त्रित ! हे (अग्ने) अग्रणी, अग्र, मुख्य पद के योग्य ! हे (नक्ष्य) प्राप्त होने योग्य, शरण्य !

विद्वन्! हम (त्वा) तुझको (द्युमतां) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, उत्तम कामनावान्, (सुवीरम्) उत्तम वीर्यवान् जानकर (धीमहि) तुझे धारण करते और ध्यान करते हैं।

क्षप॑ उ॒स्रश्च॑ दीदिहि स्व॒ग्नय॒स्त्वया॑ व॒यम्।
सु॒वीर॒स्त्वम॑स्म॒युः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तू (क्षपः उस्रः च) दिन और रात्रि को भी (दीदिहि) स्वयं प्रकाशित हो और उनको भी सूर्य, दीपकवत् प्रकाशित कर। (त्वया) तेरे से ही (वयम्) हम लोग (सु-अग्नयः) उत्तम अग्नियुक्त, उत्तम नेता वाले हों। और (त्वम्) तू (सु-वीरः) उत्तम वीर पुरुषों का स्वामी तथा (अस्मयुः) हम लोगों को प्रिय हो।

उप॑ त्वा सा॒तये॒ नरो॒ विप्रा॑सो यन्ति धी॒तिभिः॑।
उपाक्ष॑रा सह॒स्रिणी॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! प्रभो! (विप्रः नरः) विद्वान्, बुद्धिमान् मनुष्य (धीतिभिः) अंगुलियों से जैसे (अक्षरा उप यन्ति) अक्षरों को लिखते हैं और (धीतिभिः) अध्ययनादि क्रियाओं द्वारा (अक्षरा) अविनाशिनी (सहस्रिणी) सहस्रों वेद मन्त्रों से युक्त वेदवाणी को (उप यन्ति) प्राप्त होते हैं उसी प्रकार वे (धीतिभिः) उत्तम कामों और धारण पालन की शक्तियों से वा (धीतिभिः) विनय से बद्ध अंगुलियों से (सातये) तेरा सम्यक् भजन और अपने अभीष्ट लाभ के लिये (त्वा उप यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं।

अ॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति शु॒क्रशो॑चि॒रम॑र्त्यः।
शुचिः॑ पाव॒क ईड्यः॑ ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी (शुक्र-शोचिः) शुद्ध तेज वाला, (शुचिः) धर्मात्मा, स्वच्छाचारवाला, (पावकः) स्वयं पवित्र, अन्यों को पवित्र करने वाला पुरुष (ईड्यः) स्तुति और आदर करने

योग्य है। वह (अमर्त्यः) अन्य साधारण मनुष्यों से भिन्न, उनसे अधिक होकर ही (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को (सेधति) वश करता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो ।
भगश्च दातु वार्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) बलवान् पुरुष के पुत्र ! हे बलशाली सैन्य के सञ्चालक ! (सः) वह तू (ईशानः) सबका स्वामी है। तू (नः) हमें (राधांसि) नाना प्रकर के धनैश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा। (भगः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमें (वार्यम् दातु) उत्तम धन प्रदान करे। अथवा (दातु वार्यं आ भर) देने योग्य धन प्राप्त करावे।

त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः ।
दितिश्च दाति वार्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू और (देवः सविता च) प्रकाशमान सूर्यवत् उत्तम दानशील, सर्वोत्पादक (भगः) ऐश्वर्यवान्, (दितिः च) दुःखों, कष्टों को नाश करने वाली नीति और हल आदि से कर्षित भूमि ये सब (वार्यम् दाति) उत्तम धन प्रदान करे।

अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः ।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! तू (नः) हमें (अंहसः रक्ष) पाप और पापी पुरुष से बचा। हे (देव) तेजस्विन् ! अभयदातः ! तू (रीषतः) हिंसकों को स्वयं (अजराः) उखाड़ने में समर्थ एवं जरारहित, बलवान् होकर (तपिष्ठैः) अति सन्तापदायक उपायों से (प्रति दह स्म) एक २ करके दग्ध कर, समूल नाश कर।

अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये ।
पूर्भवा शतभुजिः ॥ १४ ॥

भा०—(अध) और हे राजन् और राज्ञि ! जिस प्रकार (नृ-पीतये) मनुष्यों के पालन करने के लिये तू (अनाधृष्टः) शत्रुओं से कभी पराजित नहीं होता उसी प्रकार हे रानी ! तू भी (अनाधृष्टा उ नृ-पीतये) मनुष्यों में नारियों की रक्षा करने के लिये कभी पराजित न हो । और (आयसी पूः) लोह की बनी प्रकोट के समान (शत-भुजिः) सैकड़ों की पालक, पालिका, (भव) हो ।

त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः ।
दिवा नक्तमदाभ्य ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (दोषावस्तः) रात्रि और दिन (नः) हमें (अंहसः पाहि) पाप से बचा । हे अहिसंनीय ! तू (नः) हमें (अघायतः) हम पर पापाचार करना चाहने वाले पुरुष से (दिवा नक्तम्) दिन और रात (पाहि) बचाया कर । इति विंशो वर्गः ॥

[१६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ स्वराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् ॥ ११ भुरिगनुष्टुप् । २ भुरिग्बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४, ६, १० बृहती । ६, ८, १२ निचृत्पंक्तिः ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रजाजनो ! (वः) आप लोगों के (ऊर्जः नपातम्) बल से उत्पन्न, एवं अन्न, बल, वीर्य, पराक्रम का नाश न होने देने वाले, ब्रह्मचारी (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (प्रियम्) प्रिय, (चेतिष्ठम्) ज्ञान के उपदेष्टा, (अरतिम्) सुखदायक, विषयों में सशक्त (स्वध्वरम्) उत्तम हिंसा रहित कर्त्तव्यों के पालक, (विश्वस्य) सबके (दूतम्) शुभ सन्देश-हर (अमृतम्) अविनाशी दीर्घजीवी,

पुरुष को (एना मनसा) इस प्रकार के अन्न आदि सत्कार, विनय, आदर, शक्ति, अधिकार से (आ हुवे) आमन्त्रित करता हूं।

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह विद्वान् पुरुष (अरुषा) तेज से युक्त अश्वों के समान (विश्व-भोजसा) समस्त विश्व के पालक, जल और अग्नि तत्व को (योजते) रथ में संयुक्त करता है (सः स्वाहुतः) वह उत्तम रीति से आदृत (दुद्रवत्) अति वेग से जाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार वह (सु-ब्रह्मा) उत्तम वेदों का ज्ञाता विद्वान् और उत्तम धन-सम्पन्न राजा, (यज्ञः) पूजनीय, (सु-शमी) सुकर्मा और उत्तम, शम का साधक (वसूनां जनानां) वसी प्रजाओं में से (देवं) सुख देने वाले (राधः) ऐश्वर्य को भी (दुद्रवत्) प्राप्त होता है। (२) इसी प्रकार जो 'विश्व' नाम जीवात्मा के पालक अश्ववत् नियुक्त प्राण अपान दोनों को (योजते) योग द्वारा वश करता है वह (सु-आहुतः) उत्तम ज्ञानी, यष्टा, सुकर्मा, होकर वसु, जीवों के आराध्य परम देव को प्राप्त होता है।

उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (आजुह्वानस्य मीढुषः) आहुति दिये गये, घी से सींचे गये (अस्य) इस अग्नि की (शोचिः) ज्वाला (उत् अस्थात्) ऊपर को उठती है और (अरुषासः धूमासः दिवि स्पृशः उत् अस्थुः) चमकते आकाश को छूने वाले धूम गण ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) अग्नि को (नरः समिन्धते) उत्तम पुरुष प्रज्वलित करते हैं इसी प्रकार (आ-जुह्वानस्य) अपनी किरणों से जल को ग्रहण करने वाले (मीढुषः) वृष्टि करने वाले (अस्य) इस सूर्य का (शोचिः) प्रकाश (उत अस्थात्)

सब से ऊपर विद्यमान रहता है। और उसके (दिविस्पृशः) आकाश भर में व्यापक (अरुषासः) अति देदीप्यमान (धूमासः) धूम के समान ज्वाला पटल (उत्) ऊपर उठते हैं उस (अग्निम्) तेजस्वी, अग्निमय सूर्य के (नरः) प्रकाश लाने वाले किरण (सम् इन्धते) प्रदीप्त करते हैं उसी प्रकार (आ-जुह्वानस्य) सबको वेतन देने और सब से कर आदि लेने वाले (मीढुषः) वीर्यवान्, दानशील पुरुष का (शचिः उत् अस्थात्) पवित्र तेज सर्वोपरि विराजता है। उसके (अरुषासः) दोषरहित, तेजस्वी, (दिवि-स्पृशः) व्यवहार, तेज, युद्ध, कांक्षादि में चतुर (धूमासः) शत्रु को कंपा देने वाले वीर पुरुष (उत्) सर्वोपरि विराजते हैं और ऐसे ही (नरः) नायकगण (अग्निम्) अग्रणी नायक को (सम् इन्धते) खूब चमकाते और प्रदीप्त करते हैं।

तं त्वा॑ दू॒तं कृ॑ण्महे य॒शस्त॑मं दे॒वाँ आ वी॒तये॑ वह ।
विश्वा॑ सूनो सहसो मर्त॒भोज॑ना रास्व॒ तद्यत्त्वेम॑हे ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि या विद्युत्, सर्व व्यापक होने से 'शयस्तम' वा 'यशस्तम' है अति संताप जनक होने से 'दूत' है, बल-उत्पादक होने से और बलपूर्वक रगड़ से उत्पन्न होने से 'सहसः-सूनु' है वह मनुष्यों का (मर्त्त-भोजना) भोजन पकाता नाना भोग्य पदार्थ प्रस्तुत करता है वह (वीतये) प्रकाश के लिये (देवान् आ वहति) किरणों को धारण करता है। उसी प्रकार हे राजन् ! (तं) उस (त्वा) तुझ (यशस्तमं) वीर्यवान् और कीर्त्तिमान् पुरुष को ही हम (दूतं) समस्त दुष्टों को दण्ड द्वारा पीड़ित करने और सबको शुभ सन्देश, आदेशादि देने वाला प्रमुख रूप से (कृण्महे) बनाते हैं तू (वीतये) राष्ट्र की रक्षा के लिये (देवान्) उत्तम व्यवहारज्ञ, विजयेच्छुक, तेजस्वी, दानशील पुरुषों को (आवह) धारण कर। हे (सहसः सूनो) बल, बिजली, सैन्य के संचालक तू ही (विश्वा) समस्त (मर्त्तभोजना) मनुष्यों के नाना भोग योग्य

वृत्ति ऐश्वर्यादि पदार्थ (रास्व) प्रदान कर (यत्) जो २ हम (त्वा) (ईमहे) तुझ से मांगे । अर्थात् राजा प्रजा की सभी उपयुक्त मार्गों को स्वीकार कर देवे ।

त्वम॑ग्ने गृ॒हप॑ति॒स्त्वं होता॑ नो अध्व॒रे ।
त्वं पोता॑ विश्ववार॒ प्रचे॑ता॒ यक्षि॒ वेषि॑ च॒ वार्य॑म् ॥ ५ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार गार्हपत्य रूप से गृहपति एवं रोग नाशक होने से भी गृह का पालक, (अध्वरे होता) यज्ञ में हवि गृहण करने से 'होता,' वायु जलादि को पवित्र करने से 'पोता', है उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन् ! हे तेजस्विन् ! (त्वम्) तू (गृहपतिः) गृहपति, गृहस्थ और हे राजन् ! तू राष्ट्र को भी गृहवत् पालन करने वाला (अध्वरे) अहिंसक, प्रजापालक पद पर स्थित होकर (होता) सबको सब प्रकार के सुख, अन्न, वेतनादि देने वाला, और करादि लेने वाला है । (त्वं पोता) न्याय व्यवहार और उत्तम व्यवस्था से राज्य शासन और धर्म-व्यवहार को शोधने वाला है । हे (विश्ववार) समस्त संकटों को धारण करने हारे ! तू (प्रचेताः) सबसे उन्नतचित्त और ज्ञान वाला होकर (वार्यम्) श्रेष्ठ धन का (यक्षि) प्रदान करता और प्राप्त करता है । अथवा (वार्यम्) शत्रु आदि का कष्ट निवारण करने वाले सैन्यादि को (यक्षि) संगत कराता और (वेषि च) पालता भी है ।

कृ॒धि रत्नं॒ यज॑मानाय सुक्रतो॒ त्वं हि र॑त्न॒धा असि॑ ।
आ न॑ ऋ॒ते शि॑शीहि॒ विश्व॑मृ॒त्विजं॑ सु॒शंसो॒ यश्च॒ दक्ष॑ते ॥६॥२१॥

भा०—हे (सुक्रतो) शुभ कर्म और शुभ बुद्धि वाले पुरुष ! (हि) जिससे (त्वं रत्नधा असि) तू रमण करने योग्य, उत्तम धन्धों को धारण करता है, इस से तू (यजमानाय) परोपकारार्थ दान, यज्ञादि करने वाले पुरुष के लिये (रत्नं कृधि) उत्तम धन उत्पन्न कर । और

(नः)हमारे (विश्वम् ऋत्विजं) समस्त ऋतु अनुकूल यज्ञ करने और संगति करने वाले को (ऋते) यज्ञ, धर्म व्यवहार और धनोपार्जन के कार्य में (आ शिशीहि) सब प्रकार से तीक्ष्ण अर्थात् उत्साहित कर और उसको भी उत्साहित कर (यः) जो (सु-शंसः) उत्तम प्रशंसा योग्य होकर (दक्षते) बढ़ता है, कुशल होकर कार्य्य करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

त्वे अ॑ग्ने स्वाहुत प्रि॒यास॑: सन्तु सू॒रय॑: ।
य॒न्तारो॒ ये म॒घवा॑नो॒ जना॑नामू॒र्वान्दय॑न्त॒ गोना॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे (स्वाहुत) उत्तम रीति से आमन्त्रित होने योग्य (अग्ने) तेजस्विन्! विद्वन्! (ये) जो (मघवानः) अधिक धनैश्वर्यवान्, (यन्ता) नियम व्यवस्था करने में कुशल पुरुष (जनान् गोनाम्) मनुष्यों के पशुओं, भूमियों और इन्द्रियों के (ऊर्वान्) पालकों की (दयन्त) रक्षा करते हैं ऐसे (सूरयः प्रियासः सन्तु) विद्वान् जन तेरे अधीन तेरे अति प्रिय होकर रहें।

येषा॒मिळा॑ घृ॒तह॑स्ता दुरो॒ण आँ अपि॑ प्रा॒ता नि॒षीद॑ति ।
तांस्त्रा॑यस्व सहस्य द्रु॒हो नि॒दो यच्छा॑ न॒: शर्म॑ दीर्घ॒श्रुत् ॥ ८ ॥

भा०—(येषां) जिन पुरुषों के (दुरोणे) घर में (इला) पूज्य देवी, आदर सत्कार और शुभ कामना का पात्र होकर (घृतहस्ता) पूज्यों का आदर सत्कार करने के निमित्त जलपात्र हाथ में लिये (प्राता) पूर्ण पात्र होकर (अपि निषीदति) विराजती है, हे (सहस्य) बलवन्! तू (तान् त्रायस्व) उनकी रक्षा कर और (द्रुहः) द्रोही और (निदः) निन्दकों को (आ अपि यच्छ) निग्रह कर और तू (दीर्घश्रुत्) दीर्घ काल तक ज्ञान श्रवण करने हारा होकर (नः) हमें (शर्म यच्छ) सुख प्रदान करे।

स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥ ९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (सः) वह तू (वह्निः) राज्य कार्य-भार को उठाने वाला, धुरन्धर पुरुष (मन्द्रया जिह्वया) सब को हर्ष देने वाली वाणी और (आसा) हर्षप्रद मुख से तू (विदुः-तरः) सबसे उत्तम विद्वान् होकर (नः मघवद्भ्यः) हमारे धनाढ्य पुरुषों को (रयिम् आ वह) ऐश्वर्य और बल प्राप्त करा और (हव्य-दातिं च) अन्न के विनाश या त्रुटि को (सूदय) दूर कर अर्थात् हमारे यहां ग्राह्य अन्न धनादि का टोटा कभी न हो ।

ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥ १० ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अतियुवा, बलशालिन् ! (ये) जो (महः) बड़े (श्रवसः) अन्न, यश, और ज्ञान की (कामेन) अभिलाषा से (राधांसि) नाना धन, (अश्व्या) अश्वों के नाना सैन्य और (मघा) नाना प्रकार के पूजा सत्कार (ददति) प्रदान करते हैं तू (तान्) उनको (पर्तृभिः) पालक और पूरक जनों से और (शतं पूर्भिः) सैकड़ों नगरियों या प्रकोटों आदि उपायों से (पिपृहि) पालन और पूर्ण कर ।

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥ ११ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (देवः) सब सुखों का दाता ही (वः) आप लोगों को (द्रविणोदाः) सब प्रकार के ऐश्वर्य देता है । वह (पूर्णाम्) पूर्ण (आसिचम्) आहुति (विवष्टि) चाहता है । (वा) अथवा (उप पृणध्वम्) उसकी उपासना करो (आत् इत्) अनन्तर वही (देवः) दाता प्रभु ((वः) आप लोगों के (ओहते) कर्मों का विवेचना करता और नाना कर्म-फल प्रदान करता है ।

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥ १२ ॥ २२ ॥

भा०—(देवः) विद्वान् लोग (होतारं) विद्या के ग्रहण करने और शिष्यों व जनों के प्रदान करने वाले (अध्वरस्य) अहिंसामय यज्ञ के (प्र-चेतसम्) उत्तम ज्ञाता, पुरुष को (वह्निम् अकृण्वत) अग्नि के समान कार्य का बोझ उठाने वाला, आश्रय बनावें । वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (विधते) विशेष कर्म करने वाले को (रत्नं) उत्तम सुखकारी फल (दधाति) प्रदान करता और वही (दाशुषे) दानशील पुरुष को (सु-वीर्यम् दधाति) उत्तम वीर्य, बल प्रदान करता है । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[१७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ आर्च्युष्णिक् । २ साम्नी त्रिष्टुप् । ५ साम्नी पंक्तिः । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥१॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! आप (सु-समिधा) उत्तम काष्ठ से जैसे अग्नि चमकता है उसी प्रकार उत्तम तेज, और सत्कर्म, विद्या प्रकाश से (समिद्धः भव) चमका कर । (उत) और (उर्विया बर्हिः) जिस प्रकार यज्ञ में बहुत कुशा बिछती है वा जैसे सूर्य वा यज्ञाग्नि प्रचुर जल पृथ्वी पर बरसाता है उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भी (उर्विया) बहुत (बर्हिः) वृद्धिशील ज्ञान और प्रजाजन को (विस्तृणीताम्) विस्तृत करे ।

उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! (उत) और (द्वारः) वेग से जाने वाली, शत्रु का वारण करने वाली सेनाएं (उशतीः) तुझे निर-

न्तर चाहती हुई देवियों के समान (वि श्रयन्ताम्) विशेष रूप से अपने स्वामी का आश्रय लें। (उत) और (उशतः देवान्) तुझे चाहते विद्वान् पुरुषों को भी तू (इह) इस स्थान में (आ वह) प्राप्त करा आदर पूर्वक बुला।

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (हविषा) उत्तम अन्न आदि पदार्थ से (वीहि) विद्वानों की रक्षा कर और (देवान् यक्षि) विद्वानों का आदर सत्कार कर। हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान वाले ! तू (सु-अध्वरा कृणुहि) उत्तम हिंसारहित, एवं नष्ट न होने वाले श्रेष्ठ कर्म कर।

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥ ४ ॥

भा०—(जातवेदाः) ऐश्वर्य और ज्ञान वाला पुरुष (सु-अध्वरा करति) उत्तम २ यज्ञ करे। वह (देवान् यक्षत्) विद्वानों का सत्संग और सत्कार करे वह (अमृतान् पिप्रयत्) मरण रहित, जीवित पुरुषों को अन्नों से पालन करे।

वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥५॥

भा०—हे (प्रचेतः) उत्तम ज्ञान और उत्तम चित्त वाले पुरुष ! तू (विश्वा वार्याणि) सब प्रकार के वरण करने योग्य धन, ज्ञान आदि पदार्थ (नः वंस्व) हमें प्रदान कर। और (अद्य) आज, (नः आशिषः) हमारी सब अभिलाषाएं (सत्याः भवन्तु) सत्य, उत्तम फलदायक हों।

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (ते) वे (देवासः) विद्वान् लोग (ऊर्जः) बल पराक्रम का नाश न होने देने वाले (हव्यवाहं) उत्तम वचनों, गुणों और पदार्थों के धारक (त्वाम् उ) तुझ को ही (दधिरे) पुष्ट करते हैं, सर्वस्व तुझे ही प्रदान करते हैं।

ते ते॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम म॒हो नो॒ रत्ना॑ ।
वि द॑ध इया॒नः ॥ ७ ॥ २३ ॥ १ ॥

भा०—जो तू (नः इयानः) हमें प्राप्त होकर (महः रत्ना) बड़े, उत्तम २ पदार्थ (विदधे) बनाता, और उत्तम २ कर्मों का विधान, अनुशासन करता है (ते देवाय) तुझ विद्वान्, के लिये हम सदा (दाशतः स्याम) सब कुछ देने वाले हों। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[१८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—२१ इन्द्रः । २२—२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, १७, २१ पंक्तिः । २, ४, १२, २२ भुरिक् पंक्तिः । ८, १३, १४ स्वराट् पंक्तिः । ३, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ९, ११, १६, १९, २० निचृत्त्रिष्टुप् । ६, १०, १५, १८, २३, २४, २५ त्रिष्टुप् ॥
पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

त्वे ह॒ यत्पि॒तर॑श्चिन्न इन्द्र॒ विश्वा॑ वा॒मा ज॑रि॒तारो॑ अस॑न्वन् ।
त्वे गाव॑ः सु॒दुघा॒स्त्वे ह्यश्वा॒स्त्वं वसु॑ देवय॒ते वनि॑ष्ठः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (नः पितरः चित्) हमारे पिता, माता, अन्य मान्य बन्धुजन (चित्) और (जरितारः) ज्ञानोपदेष्टा गुरुजन भी (त्वेह) तुझ पर ही आश्रय पाकर (विश्वा वामा) सब उत्तम २ फलों की (असन्वन्) याचना करते और पाते हैं, तू ही (वनिष्ठः) सब से श्रेष्ठ देने हारा है। (त्वे गावः) तेरे ही अधीन गौएं (सु-दुघाः) उत्तम दूध देने हारी, (त्वे हि अश्वाः) तेरे ही अधीन अश्व हैं। (त्वं वसु देवयते) विद्वानों और शुभ गुणों के इच्छुक को तू ही ऐश्वर्य देता है।

राजे॑व॒ हि जनि॑भिः क्षे॒ष्येवाव॒ द्युभि॑र॒भि वि॒दुष्क॒विः सन् ।
पि॒शा गिरो॑ मघव॒न्गोभि॒रश्वै॑स्त्वाय॒तः शि॑शीहि रा॒ये अ॒स्मान् ॥२॥

भा०—हे विद्वन् ! (जनिभिः) उत्पन्न प्रजाओं सहित तू (राजा इव) राजा के समान (क्षेषि) निवास कर और तू (विदुः) विद्वान् (कविः) क्रान्तदर्शी, उत्तम काव्यनिर्माण में चतुर एवं उपदेष्टा होकर (अभि अव क्षेषि) सर्वत्र सबको अनुशासन कर। और हे (मघवन्) उत्तम पूज्य विद्याधन के धनी ! तू (कविः सन्) विद्वान् कवि होकर (पिशा) उत्तम रूप से (गिरः शिशीहि) उत्तम वाणियों को प्रकट कर। और (त्वायतः अस्मान्) तेरी सदा शुभ कामना करते हुए हमें तू (गोभिः) गौओं, भूमियों और (अश्वैः) अश्वों से (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने, बसाने और उसकी रक्षा करने के लिये (शिशीहि) सम्पन्न, एवं उत्साहित और तीक्ष्ण कर।

इमा उं त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः गिरः) ये वाणियां (देवयन्तीः) विद्वानों को चाहती हुई उनके योग्य (मन्द्राः) हर्ष देने वाली (पस्पृधानासः) एक दूसरे से बढ़ कर (त्वा उ) तुझ को ही (उप स्थुः) प्राप्त हों। (ते) तेरी (अर्वाची) नवीन (पथ्या) सन्मार्ग पर चलने वाली सत्-नीति (राये एतु) हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये हमें प्राप्त हो। हम लोग (ते सुमतौ) तेरी उत्तम सम्मति और (शर्मन्) तेरी शरण में (स्याम) सुख से रहें।

धेनुं न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुयवसे धेनुं न दुदुक्षन्) उत्तम अन्न, चारे आदि के ऊपर गौ का पालक गौ को खूब दुहने की इच्छा करता है इसी प्रकार हे राजन् ! (वसिष्ठः) राज्य में बसने वाला उत्तम प्रजाजन (सूय-

वसे) उत्तम अन्न सम्पदा के निमित्त (त्वा) तुझ को गौ के समान (दुदुक्षन्) दोहने, अर्थात् तुझ से बहुतसा ऐश्वर्य लेने वा तुझे समृद्धि से पूर्ण करना चाहता हुआ (ब्रह्माणि) नाना बल, धन, अन्न और ज्ञान (उप ससृजे) उत्पन्न करता, प्राप्त करता है। अर्थात् स्वामी राजा से ऐश्वर्य प्राप्त करने और राजा को समृद्ध करने के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्ग क्रम से नाना प्रकार के ज्ञानों, धनों, बलों और अन्नों को उत्पन्न करें। हे स्वामिन्! (विश्वः) समस्त जन (त्वाम् इत्) तुझ को ही (मे गोपतिम्) मेरा 'गोपति', भूमिपति (आह) कहे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नः) हमारे (सुमतिं) उत्तम सम्मति को (अच्छ गन्तु) अच्छी प्रकार प्राप्त करे।

अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ५।२४

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक राजा (सुदासे) उत्तम करप्रद प्रजाजन के लिये वा उत्तम देने लेने के व्यवहार के लिये (पप्रथाना अर्णांसि) दूर तक फैले जलों को भी सेतु, नौकादि द्वारा (गाधानि) परिमित एवं (सुपारा) सुख से पार जाने योग्य (अकृणोत्) करे। वह (नव्यः) स्तुति योग्य राजा (सिन्धूनां) नदियों के समान प्रवाह से चलने वाली, एवं उत्तम प्रबन्ध से बंधी प्रजाओं में से (शर्धन्तं) बलात्कार करते हुए (शिम्युम्) कर्म करने वाले को (उचथस्य) आज्ञा वचन कहने वाले के आगे (शापं) शाप अर्थात् आक्रोश या दुर्वचन कहने योग्य, निन्दनीय करे। और (अशस्तीः) निन्दित लोगों को (अकृणोत्) दण्ड दे। अर्थात् जो 'शिम्यु' कर्मकर है वह यदि 'उचथ' अर्थात् अपने ऊपर आज्ञा देने वाले के समक्ष (शर्धन्तं) बल दिखावे, आज्ञा का पालन न करके उल्लंघन करे तो वह 'शाप' अर्थात् कठोर वचनों का पात्र हो, वह डांटा जाय, और दण्ड भी पावे, इसी

प्रकार प्रजाओं में (अशस्तीः) निन्दित लोगों को भी राजा दण्ड दे। अन्न (अकृणोत्) करे। कृञ् हिंसायाम् इत्यस्य रूपम्॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः॥ ६॥

भा०—(यक्षुः) दान देने और आदर सत्कार करने वाला (तुर्वशः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों का अभिलाषी, वा अन्य को अतिशीघ्र अपने वश करने में समर्थ पुरुष (पुरोडाः इत् आसीत्) द्रव्य के पहले या आगे कर देने वाला हो। जो चाहता है कि मैं आदर से दान करूं या कर्म-कर लोगों को अपने वश कर शीघ्र काम कराऊं उसे चाहिये वह पहले समक्ष द्रव्य देना ठहरा दे, तब (राये मत्स्यासः) जिस प्रकार मत्स्य अन्नादि लेने के लिये जल में वेग से दौड़ते हैं उसी प्रकार (राये) धनैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (मत्स्यासः) अति प्रसन्न चित्त होकर लोग (अतीव निशिताः) बहुत ही तेज हो जायेंगे। और (भृगवः) वेद वाणी को धारण करने वाले विद्वान्, भूमिधारक भूमिपति क्षत्रिय और गवादिपालक वैश्य तथा (द्रुह्यवः च) परस्पर के द्रोही या विरोधी स्पर्धालु लोग भी (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य करने लगेंगे। (विसूचोः) आगे रक्खे धन के कारण विरुद्ध अर्थात् एक दूसरे को विपरीत जनों में से (सखा) मित्र भी (सखायम् अतरत्) अपने मित्र को पार कर जाता है मित्र भी मित्र से बढ़ जाना चाहता है। इस प्रकार की स्पर्धा से राजा के काम बहुत शीघ्र हो जा सकते हैं।

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ७

भा०—(पक्थासः) परिपक्व ज्ञान और परिपक्व उमर वाले वृद्ध जन (भलानसः) उत्तम नासिका वाले सौम्य, सुमुख जन वा (भल-अनसः) उत्तम रथों, शकटों पर स्थित (अलिनासः) सुन्दर नाक वाले

या जो तप में बहुत निष्ठ या (अलिनासः अलीनाः) लीन अर्थात् कार्य व्यग्र, या आसक्त न हों, (विषाणिनः) सींग के समान हाथ में सदा शस्त्र रखने वाले, वीर, (शिवासः) सब के मंगलकारी लोग (अभनन्त) जब २ उत्तम उपदेश, संदेशादि कहा करें। (यः) जो (सधमाः) एक समान स्थान या पद पर मान पाकर (आर्यस्य) उत्तम पुरुष के (गव्या) भूमि विषय का राज्य कार्यों को (अनयत्) चलाने में समर्थ है वह सेनापति होकर (तृत्सुभ्यः) हिंसक पुरुषों के विनाश के लिये (युधा) युद्ध के हेतु (नॄन् अजगन्) उत्तम नायकों को प्राप्त करे।

दुराध्यो॒३॒ऽअदि॑तिं स्रे॒वय॑न्तोऽचे॒तसो॒ वि ज॑गृभ्रे॒ परु॑ष्णीम्।
म॒ह्नावि॑व्यक्पृथि॒वीं पत्य॑मानः प॒शुष्क॒विर॑शय॒च्चाय॑मानः ॥ ८ ॥

भा०—(दुराध्यः) दुष्ट बुद्धि वाले, दुष्ट आचार वाले (अचेतसः) विना चित्त के और अज्ञानी (अदितिम्) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष वा उसकी अखण्ड, (परुष्णीम्) पालन करने वाली अति दीप्तियुक्त तेजस्विनी नीति को (स्रेवयन्तः) उल्लंघन करते हुए (वि जगृभ्रे) विग्रह विरोध किया करते हैं। (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (चायमानः) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष (पृथिवीं पत्यमानः) पृथिवी का स्वामी होता हुआ (अविव्यक्) पृथ्वी पर अपना अधिकार प्राप्त करता है। और (पशुः) पशु के समान मूर्ख राजा (चायमानः) वृद्धियुक्त होकर भी (पत्यमानः) गिराया जाकर (पृथिवीम् अशयत्) भूमि पर पशु के समान सोता है, मारा जाता है।

ई॒युरर्थं॒ न न्य॒र्थं परु॑ष्णीमा॒शुश्च॒नेद॑भिपि॒त्वं ज॑गाम।
सु॒दास॒ इन्द्रः॑ सु॒तुकाँ॑ अ॒मित्रा॒नर॑न्धय॒न्मानु॑षे॒ वध्रि॑वाचः ॥ ९ ॥

भा०—(यत्) जब (सुदासः) उत्तम भृत्य वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (मानुषे) बहुत मनुष्यों से करने योग्य संग्रामों में (वध्रि-

वाचः) हिंसायुक्त, परुष भाषण करने वाले (सु-तुकान्) खूब हिंसक (अमित्रान्) शत्रुओं को (अरन्धयत्) दण्डित करता और वश करता है और इसी प्रकार वह राजा (मानुषे) मनुष्यों से बसे इस राष्ट्र में (वध्रि-वाचः) निर्बल वाणियों वाले, वा वृद्धिकारक उत्तम विद्वानों और (सु-तुकान्) उत्तम बालक, व पुत्रों वाले प्रजाजनों को (अरन्धयत्) वश करता है। तब वह (आशुः) शीघ्रकारी होकर (अभिपित्वं) अपने प्राप्त होने योग्य लक्ष्य वा अभिमत ऐश्वर्य को (जगाम) प्राप्त करता है। तब ही सब लोग भी (अर्थं न) अपने इष्ट धन के समान (न्यर्थं) निश्चित लक्ष्य को और (परुष्णीम्) पालक नीति और दीप्तियुक्त तीक्ष्णदण्ड नीति को (ईयुः) प्राप्त होते हैं।

ई॒युर्गावो॒ न यव॑सा॒दगो॑पा यथाकृ॒तम॒भि मि॒त्रं चि॒तासः॑ ।
पृश्नि॑गाव॒: पृश्नि॑निप्रेषिता॒सः श्रु॒ष्टिं च॑क्रुर्नि॒युतो॒ रन्त॑यश्च ॥१०॥२५॥

भा०—(अगोपाः गावः न) रक्षक से रहित, विना ग्वाले की गौएं जिस प्रकार (यवसात्) भुस, अन्नादि के हेतु ही (ईयुः) स्वामी के गृह में आ जाती हैं उसी प्रकार (चितासः) चेतना युक्त जीवगण भी (यथा-कृतम्) अपने किये कर्म के अनुसार ही (मित्रम् अभि ईयुः) अपने स्नेह करने वाले, वा जीवन से बचाने वाले प्रभु को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार (पृश्नि-गावः) 'पृश्नि' अर्थात् सूर्य से उत्पन्न नाना वर्ण की किरणें (पृश्नि-निप्रेषितासः) पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष से प्रेरित होकर (श्रुष्टिं चक्रुः) वर्षा द्वारा अन्न उत्पन्न करती हैं और जिस प्रकार (पृश्नि-गावः) नाना वर्ण के बैल (पृश्नि-निप्रेषितासः) विद्वान् पुरुषों द्वारा खेत में चलाये गये (श्रुष्टिं चक्रुः) अन्न को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-गावः) भूमि रूप गौवें, (पृश्नि-निप्रेषितासः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से प्रेरित या शासित होकर (श्रुष्टिं चक्रुः) अन्न सम्पत्ति को उत्पन्न करती हैं इसी प्रकार

(नियुतः) लक्षों नियुक्त सेनादि, अश्वारोही, पुरुष तथा (रन्तयः) रमण करने वाले सुप्रसन्न प्रजाजन भी (श्रुष्टिं चक्रुः) सम्पदा को उत्पन्न करते वा वायुवत् (श्रुष्टिं चक्रुः) शीघ्र कार्य सम्पादन करते हैं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ११

भा०—(न्यस्तः) निश्चितरूप से स्थापित (यः) जो (राजा) तेजस्वी राजा, (वैकर्णयोः) विविध कानों वाले दोनों पक्षों के बीच (एकं च विंशतिं च) एक और बीस अर्थात् इक्कीस, (जनान्) विद्वान् मनुष्यों को (श्रवस्या) श्रवण योग्य राज्य-कार्यों को सुनने के लिये अपना सभासद् बनाता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रु (एषाम्) इन इक्कीसों का (सर्गम्) एक सर्ग अर्थात् समिति या संघ (अकृणोत्) बना लेता है। वह (सद्मन्) अपने भवन में विराजता हुआ भी (दस्मः) शत्रु नाश करने में समर्थ (शूरः) शूरवीर पुरुष (बर्हिः) कुश तृण के समान बढ़ते शत्रु को (नि शिशाति) नाश करता है।

राजा २० सभासदों की अमात्यसभा बनावे आप उनमें इक्कीसवां हो। उनके दो पक्ष (वैकर्ण) हों उन इक्कीसों का एक 'सर्ग' (body) या एक रचना (Constitution) हो।

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥ १२ ॥

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र या लोक में हे राजन्! (ये) जो (त्वायन्तः) तेरी चाहना करते हुए, (त्वा सख्यं) तुझ मित्र को (सख्याय) अपना मित्र बनाने के लिये (वृणानाः) चुनते हुए (त्वा अनु अमदन्) तेरी ही प्रसन्नता में प्रसन्न होते हैं (अध) तू भी (वज्र-बाहुः) 'बज्र' अर्थात् शस्त्रास्त्र बल और वीर्य को बाहुओं में धारण

करता हुआ (अप्सु) आप्त प्रजाओं के बीच में (श्रुतं) प्रसिद्ध, बहु-श्रुत, (कवषं) उपदेष्टा, विद्वान् (वृद्धम्) विद्या वयोवृद्ध पुरुष को (अनु वृणक्) अपने अनुकूल करता, उसके हृदय को प्रसन्न करता और (द्रुह्युम् निवृणक्) द्रोह करने वाले को दूर करता है ।

वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥१३॥

भा०—जब भी (सद्यः) शीघ्र ही (विश्वा) सब (दृंहितानि) अपने सैन्य दृढ़ हों । (इन्द्रः) आत्मा जिस प्रकार (सहसा) अपने प्राण बल से (एषां) इन जीव शरीरों के (सप्त पुरः वि दर्दः) सात इन्द्रिय, ज्ञानपूरक छिद्रों को भेदता है उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा भी (एषां) इन शत्रु जनों को (सप्त पुरः) सातों प्रकार के दुर्गों को (वि दर्दः) विविध प्रकार से भेदे, नष्ट करे । आत्मा जिस प्रकार 'अनु' अर्थात् प्राणी जीव के योग्य इस देह के (गयम्) प्राण का (वि भाक्) देह भर में विभक्त करता है उसी प्रकार राजा (आनवस्य) अनु अर्थात् मनुष्यों के रहने योग्य राष्ट्र के (गयं) प्रजाजन को ((वि भाक्) विभक्त करे और (तृत्सवे) हिंसक पुरुष को राष्ट्र से हटाने के लिये हम लोग (मृध्र-वाचः) हिंसक, दुःखदायी वाणी बोलने वाले (पूरुं) मनुष्य समूह को (जेष्म) जय करें ।

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

भा०—(गव्यवः) गौ आदि पशु और भूमियों की चाहना करने वाले (अनवः) मनुष्य युद्धार्थी लोग भी जो (षष्टिः शता, अधि षष्टिः षट्) साठ सौ अर्थात् ६ सहस्र और छः सहस्रों पर ६६ अधिक संख्या में (दुवोयु) सेवकों के स्वामी के सुख के लिये (नि सुषुपुः) बड़े

सुख से सोते हैं, इसी प्रकार (द्रुह्यवाचः षट् सहस्रा अधि षष्टिः षट्) द्रोह करने वाले विरोधी लोग भी ६०६६ संख्या में (दुवोयु) स्वामी के सुख के लिये (अधि सुषुपुः) भूमि पर पड़े सोते हैं। अर्थात् मारे जाते हैं, (विश्वा इत्) ये सब (इन्द्रस्य कृतानि वीर्या) ऐश्वर्ययुक्त, शत्रुहन्ता राजा के ही करने योग्य कार्य हैं। अर्थात् दोनों ओर से ६।६ सहस्रों की सेनाओं का खड़े होना, छावनी में पड़े रहना, लड़ना, मारे जाना आदि कार्य राजाओं के निमित्त ही होते हैं।

इन्द्रे॑णै॒ते तृत्स॑वो वेवि॑षाणा॒ आपो॒ न सृ॒ष्टा अ॑धवन्त॒ नीचीः॑ ।
दु॒र्मि॒त्रास॑ः प्रकल॒विन्मिमा॑ना ज॒हुर्विश्वा॑नि॒ भोज॑ना सु॒दासे॑ १५।२६

भा०—(एते) ये (तृत्सवः) हिंसाकारी, सैन्य में भर्त्ती हुए सिपाही लोग (वेविषाणा) शत्रु सैन्य में फैलते हुए (सृष्टाः आपः न) वर्षा से उत्पन्न जलों के समान (नीचीः अधवन्त) नीचे की भूमियों में वेग से जाते हैं, वा (नीचीः) नीच गुण की दुष्ट सेनाओं को (अधुवन्त) कंपाते, भयभीत करते हैं। और (दुर्मित्रासः) दुष्ट मित्र, (मिमानाः) हिंसा करते हुए भी (प्रकलवित्) उक्त संख्या जानने वाले (सुदासे) या उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम दानशील राजा के हितार्थ (भोजना जहुः) अपने भोजनवत् समस्त भोग्य सुखों को भी त्यागते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

अ॒र्धं वी॒रस्य॑ शृत॒पाम॑नि॒न्द्रं परा॒ शर्ध॑न्तं नुनुदे अ॒भि क्षाम् ।
इन्द्रो॑ म॒न्युं म॑न्यु॒म्यो॑ मिमाय भे॒जे प॒थो व॑र्त॒निं पत्य॑मानः ॥१६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वीरस्य अर्धम्) वीरों, और विद्वान् पुरुषों के बढ़ाने वाले (श्रृतपाम्) परिपक्व, दुग्धादि उत्तम पदार्थों के पीने वाले पुरुष को (क्षाम् अभि) भूमि को प्राप्त करने के लिये (नुनुदे) प्रेरित करता है और (अनिन्द्रं शर्धन्तम्) इन्द्र के

विरोधी बल को बढ़ाते हुए पुरुष को भी (परा नुनुदे) दूर करने में समर्थ होता है। वह ऐश्वर्यवान् (मन्युम्यः) मन्यु करने वालों का नाशक होकर ही (मन्युम्) क्रोध (मिमाय) करता है वा क्रोधयुक्त पुरुष का नाश करने में समर्थ होता है वह (पत्यमानः) स्वयं राष्ट्र की प्रजा का पति, पालक, स्वामी होकर (वर्तनिं) व्यवहार योग्य न्यायमार्ग तथा (पथः) सन्मार्गों को (भेजे) सेवन करे।

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥

भा०—वह 'इन्द्र' पद पर स्थित राजा, (आध्रेण चित्) सब प्रकार से रक्षित सैन्य बल (तत् उ) उस समस्त राष्ट्र को (एकं चकार) एक द्वितीय साम्राज्य बना लेता है। (पेत्वेन) अश्व सैन्य या पालक बल के सामर्थ्य से (सिंह्यं चित्) सिंह के समान शत्रु को भी (आजघान) आघात करे। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वेश्या) भीतर दुर्गादि में भी प्रवेश करने वाली सूची व्यूहादि के आकार की तीक्ष्ण सेना से (स्रक्तीः) मालाओं के समान लम्बी और राष्ट्र को घेरने वाली शत्रु सेनाओं (आवृश्चत्) बनों को परशु के समान काट गिरावे। और (सुदासे) उत्तम, शुभ कल्याण दान देने वाले, प्रजा वर्ग को (विश्वा भोजना) सब प्रकार के रक्षा के साधन और भोग्य ऐश्वर्य भी (प्रायच्छत्) प्रदान करे।

शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्तां एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र १८

भा०—हे राजन्! (ते) तेरे (शश्वन्तः शत्रवः) सदा के शत्रु लोग (शर्धतः) बलवान् (भेदस्य) भेद नीति में कुशल (ते) तेरे अधीन (रारधुः) वश हों। और तेरे ही द्वारा वे (रन्धि विन्द) विनाश को प्राप्त हों और (यः) जो (स्तुवतः) प्रार्थना स्तुति आदि करते हुए

(मर्त्तान्) मनुष्यों अथवा (मर्त्तान् स्तुवतः) मनुष्यों के प्रति उत्तम उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुषों के प्रति (एनः कृणोति) पाप, अपराध करता है, (तस्मिन्) उस दुष्ट पुरुष पर भी हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन्! राजन् ! तू (वज्रं जहि) शस्त्र या दण्ड का प्रयोग कर।

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥

भा०—(यमुना) प्रजाओं को नियन्त्रण करने वाली नीति, और नियन्त्रण करने वाले जन और (तृत्सवः च) शत्रुओं के नाश करने में कुशल वीर सैनिक लोग, और जो (अत्र) इस राष्ट्र में (सर्वताता) सर्वहितकारी कार्य में (भेदं) परस्पर के 'भेद' अर्थात् फूट को (प्र मुषायत्) नष्ट करते, एकता, संगठन, और परस्पर प्रेम को बढ़ाते हैं और (अजासः) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, और (शिग्रवः) अन्यों को न पता चलने वाले संकेत शब्द बोलने वाले या अस्पष्ट, भाषा लोलने वाले, विदेशी और (यक्षवः च) राजा से संगति, या सन्धि करके रहने वाले ये सभी लोग (इन्द्रं आवत्) ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करें और वे (बलिं जभ्रुः) अर्थात् कर लावें, इसके अतिरिक्त वे (शीर्षाणि) शिरःस्थानीय, प्रमुख २ (अश्व्यानि) अश्वों के बड़े बड़े २ सैन्यों को भी (जभ्रुः) धारण करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् २०।२७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरी वा तेरे (सुमतयः) शुभ बुद्धियां और उत्तम बुद्धिमान् पुरुष (सञ्चक्षे न) गिने और वर्णन नहीं किये जा सकते। इसी प्रकार हे राजन् (ते रायः न सञ्चक्षे) तेरे ऐश्वर्य भी वर्णन, नहीं किये जा सकते। वे वर्णनातीत और गणनातीत हैं।

(पूर्वाः उषसः न नूत्नाः) जिस प्रकार नई प्रभात वेलाएं पूर्व की प्रभात वेलाओं के समान ही होती हैं उसी प्रकार (उषसः) तुझे चाहने वाली प्रजाएं भी (पूर्वाः न नूत्नाः) पूर्व प्रजाओं के समान ही नयी भी तुझे चाहें। तू (मान्यमानं) मान्य पुरुषों के सत्कार करने वाले (देवकं) विद्वान् जनों को (जघन्थ) प्राप्त हो और (मान्यमानं) अभिमान करने वाले (देवकं) क्षुद्र व्यवहारी, और क्षुद्र कामुक एवं जूआखोर लोगों को (जघन्थ) दण्डित कर। और (त्मना) अपने ही सामर्थ्य से (बृहतः) बड़े से बड़े के (शम्बरम्) मेघ के समान सूर्यवत् शान्तिनाशक आवरण को (भेत्) छिन्न भिन्न कर। इति सप्तविंशो वर्गः॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् २१

भा०—(ये) जो लोग (त्वाया) तेरी कामना वा नीति से (गृहात्) गृह से निकल कर भी (अममदुः) बराबर प्रसन्न रहते हैं और (पराशरः) दुष्टों का नाशक (शत-यातुः) सैकड़ों वीरों को साथ लेकर चलने वाला वा सैकड़ों दुष्टों को दण्डित करने वाला (वसिष्ठः) सर्वश्रेष्ठ जन, अर्थात् प्रमुख प्रजाजन ये सब और (ये) जो (ते भोजस्य) तुझ पालक राष्ट्र भोक्ता के (सख्यं) मित्र भाव को (न मृषन्त) नहीं भूलते या सहन नहीं करते और उन (सूरिभ्यः) विद्वानों के तू (सुदिना) शुभ दिन (वि उच्छान्) प्रकट कर जिससे वे और अधिक हर्षित हों।

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन्॥ २२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, अग्निवत् तेजस्विन्! विद्वन्! (होता इव सद्म) दानशील पुरुष जिस प्रकार सभाभवन को प्राप्त होता है उसी प्रकार मैं भी (अर्हन्) सत्कार को प्राप्त होकर (रेभन्) उपदेश, करता हुआ (पैजवनस्य) स्पर्धा करने योग्य वेग, गति, आचार व्यवहार वाले अनु-

करणीय चरित्रवान् पुरुष के पुत्र (सु-दासः) उत्तम दानशील पुरुष के (दानं) दिये सात्विक दान (सद्म पर्येमि) अपने प्रतिष्ठित गृह के समान ही प्राप्त करूं। इसी प्रकार (नप्तुः) प्रजाओं का उत्तम प्रबन्ध करने वाले (देव-वतः) विद्वानों, वीरों और व्यवहारवान् पुरुषों के (सु-दासः) उत्तम दानशीलराजा के (द्वे शते) दो सौ (गोः) भूमि के (वधू-मन्ता) 'वधू' अर्थात् राज्य के भार को वहन करने वाली विशेष शक्ति से युक्त, (द्वा रथा) दो रथ, रथवान् नायक जनों को भी मैं प्रजा-जन प्राप्त करूं। अध्यात्म में—सर्वातिशायी, सर्वप्रद प्रभु पैजवन सुदास है। सर्व प्रबन्धक एवं बन्धु होने से नप्ता है। प्रति वर्ष दो अयन, जीवन में २०० हैं। यह शरीर और लिङ्ग शरीर दो (चित्) वधू युक्त रथ हैं। प्रभु के सब दिये दानों को मैं स्तुतिपूर्वक ग्रहण करता हूं।

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति २३

भा०—(पैजवनस्य) उत्तम आचरण, क्षमावान् प्रभु के (स्मद्दिष्टयः) उत्तम दर्शन वाले, (कृशनिनः) धनादि सम्पन्न (दानाः) दानशील (ऋज्रासः) सरल धार्मिक व्यवहारवान्, (पृथिविष्ठाः) पृथिवी पर विद्यमान (चत्वारः) चार (सुदासः) उत्तम सुख देने वाले हैं। वे (मा तोकं) पुत्रवत् पालनीय मुझ को (निरेके) शङ्कारहित सन्मार्ग में (वहन्ति) यज्ञ में चार ऋत्विजों और मार्ग में, रथ में नियुक्त चार अश्वों के समान लेजावें और वे (मा) मुझ को (तोकाय) उत्तम सन्तान और (श्रवसे) उत्तम यश प्राप्त करने के लिये (वहन्ति) सन्मार्ग पर चलावें। ये चार प्रभु के चार वेद और राजा के राज्य में चार वेदज्ञ विद्वान् हों।

यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥

भा०—(यस्य श्रवः) जिस पुरुष का ज्ञान, यश वा ऐश्वर्य (उर्वी रोदसी अन्तः) विशाल आकाश और पृथ्वी के बीच तेज को सूर्य के समान (शीर्ष्णे-शीर्ष्णे) प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति के लिये (वि बभाज) विभक्त किया जाता है। जिसको(स्रवतः सप्त) वेग से चलने वाले सातों, देह में प्राणों के समान राष्ट्र के सातों विभाग, या सर्पणशील वेगवान् अश्वादि सैन्य (इन्द्रं न) अपने आत्मा वा राजा के समान (गृणन्ति) बतलाते हैं वह (युधि-आमधिम् अथवा युध्या-मधिं = मदिम्) युद्ध में पीड़ादायक वा युद्ध के मद वाले शत्रु को (अभीके) संग्राम में (नि अशिशात्) खूब शासन करे, उसको पराजित करे।

इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५॥२८॥

भा०—हे (नरः) नायक (मरुतः) बलवान्, वायुवत् सर्वप्रिय मनुष्यो ! (दिवः दासम्) ज्ञान-प्रकाश, सत्य व्यवहार के उपदेश देने वाले पुरुष को (पितरम्) पिता के समान (अनुसश्चत) जानकर उसका अनुकरण और सेवा, आज्ञा पालन आदि करो। (सु-दासः) शुभ ज्ञान और उत्तम द्रव्य के देने वाले (पैजवनस्य) उत्तम आचारवान् पुरुष के (केतम्) गृह और ज्ञान को (अविष्टन) प्राप्त करो, उसकी रक्षा करो। (दुवोयु) उत्तम शुश्रूषा के अभिलाषी स्वामी वा गुरुजन के (दूनाशं) अविनाशी, (अजरं) नित्य, स्थायी, (क्षत्रं) बलवीर्य को प्राप्त करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[१९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ९, १० विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्पंक्तिः । ४ पंक्तिः । ८, ११ भुरिक् पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

भा०—(यः) जो राजा (तिग्म-शृङ्गः वृषभः न) तीक्ष्ण सींगों वाले बड़े सांड के समान वा तीक्ष्ण विद्युत् रूप हननसाधन से युक्त, वर्षणशील मेघ के समान (भीमः) भयंकर, (तिग्म-शृंगः) तीक्ष्ण शस्त्र-बल से युक्त राजा (एकः) अकेला ही (विश्वाः कृष्टीः) समस्त मनुष्यों को (प्र च्यावयति) उत्तम रीति से चलाने में समर्थ होता है । और (यः) जो (शश्वतः) बहुत से (अदाशुषः) कर आदि न देने वाले शत्रु का, और (गयस्य) अपत्यवत् अपने प्रजाजन का भी (प्रयन्ता) अच्छा शासक है और वह तू (सुष्वि-तराय) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष को (वेदः प्रयन्ता असि) ज्ञान और धन को देने वाला है । अथवा—वेद (सुष्वि-तराय) ज्ञान के प्रति उत्तम मार्ग में चलाने वाले आचार्य के निमित्त (गयस्य अदाशुषः प्रयन्तासि) अपने पुत्र को समर्पित न करने वाले को दण्ड देने हारा हो ।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं ह) तू निश्चय ही (त्यत् कुत्सम्) उस शत्रु को काट गिराने वाले शस्त्र बल को (आवः) प्राप्त कर । (शुश्रूषमाणः) उत्तम ज्ञान और प्रजा की प्रार्थना को ध्यानपूर्वक सुनता हुआ (तन्वा) विस्तृत राष्ट्रबल वा सैन्य बल से (अस्मै आर्जुनेयाय) इस पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्रजाजन के उपकार के लिये (दासं) प्रजा के नाशक, (शुष्णं) प्रजा को शोषण करने वाले (कु-यवम्) निन्दित अन्न खाने वाले वा कुत्सित उपायों से मारने योग्य पुरुष को (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ (अरन्धयः) दण्डित और विनाश कर ।

त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।

प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु को पराजय करने हारे ! राजन् ! (त्वं) तू (धृषता) प्रगल्भ शत्रुविजयी शस्त्र बल से और (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त प्रकार के रक्षा साधनों से (वीत-हव्यम्) अन्नादि पदार्थों के रक्षक (सु-दासम्) उत्तम दानशील, वा उत्तम भृत्य वर्ग के स्वामी की (प्र आवः) रक्षा कर । तू (पौरु-कुत्सिम्) बहुत से शस्त्रों के धारण करने वाले सैन्य के नायक (त्रसदस्युम्) दुष्ट पुरुषों को भयभीत करने वाले, वीर (पूरुम्) पुरुष को (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं के नाश करने के अवसरों और (क्षेत्र-सातौ) रणक्षेत्र को प्राप्त करने और क्षेत्र अर्थात् भूमियों के न्यायोचित विभाग के लिये भी (प्र अवः) प्रधान, मुख्य पद पर स्थापित करो ।

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) उत्तम वेग से जाने वाले अश्वों के स्वामिन् ! वा हरि अर्थात् मनुष्यों, के स्वामिन् ! हे (नृमणः) उत्तम अधि नायकों में अपना मन, चित्त देने हारे ! वा मनुष्यों के मनों, चित्तों के स्वामिन् ! (त्वं) तू (देव-वीतौ) शुभगुणों, वीरों, विद्वानों को प्राप्त कराने वाले कार्य, उनकी रक्षा, के लिये तथा देव, विजिगीषु जनों के आने और चमकने, विघ्नों, के स्थान युद्ध के बीच, (भूरिणि) बहुत से (वृत्राणि) बाधक शत्रुओं को (हंसि) विनाश कर । और (त्वं) तू (चुमुरिम्) प्रजा का अन्न, धन सर्वस्व चुराने वाले, और (धुनिम्) प्रजा को भय से कंपाने वाले को (दभीतये) शत्रु नाश करने के सद् उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये ही, (सु-हन्तु) अच्छी प्रकार दण्ड दे और (निः स्वापः) सदा के लिये सुला दे, अर्थात् उनको समूल नाश कर ।

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहन् च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५॥२९॥

भा०—हे (वज्रहस्त) शस्त्रास्त्र-बल को हाथों में धारण करने वाले, वीर्यवन्! बलवन्! (तव) तेरे (तानि) वे नाना प्रकार के (च्यौत्नानि) प्रजावर्गों, वा सैन्यों के संचालित करने और शत्रु को पदच्युत करने वाले सामर्थ्य हों (यत्) कि तू (सद्यः) शीघ्र ही (नव नवतिं पुरः) ९९ (निन्यानवे) शत्रु-नगरों को भी (अहन्) नाश करने में समर्थ हो और स्वयं (निवेशने) अपने आप बसने के लिये (शत-तमाम्) सौवीं नगरी को (आविवेषीः) व्यापकर, अधिकार करके रह ॥ (वृत्रं) बढ़ते हुए विघ्नकारी (नमुचिम्) अपनी दुष्टता को न छोड़ने वाले वा अपराध करने पर विना दण्ड के न छोड़ने योग्य, कैद करने योग्य शत्रु को भी अवश्य (अहन्) दण्ड देने में समर्थ हो। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

सना ता तं इन्द्र भोजनानि रातहंव्याय दाशुषे सुदासें।
वृष्णें ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजंम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे (सना) सदा से चले आये (ता) वे २ अपूर्व (भोजनानि) नाना भोग्य ऐश्वर्य हैं वे (रात-हव्याय) समस्त ग्राह्य ऐश्वर्यों को प्रदान करने और रक्षा करने वाले (दाशुषे) दानशील, (सु-दासे) उत्तम भृत्यवत् आज्ञापालक एवं उत्तम कर देने वाले प्रजाजन के हित के लिये हो। और (दाशुषे सु-दासे) सर्वप्रद, सुखदाता (वृष्णे) सुखों की वर्षा करने वाले, मेघवत् उदार, पुरुष के रथ में (वृषणा) विद्या और कर्म कौशल से बलवान् पुरुषों को (युनज्मि) युक्त करता हूं जोड़ता हूं, जिससे कि हे (पुरु-शाक) बहुत शक्तिशालिन्! (ते ब्रह्माणि) तेरे नाना वेदज्ञ कुल (वाजं व्यन्तु) अन्न का भोजन करें अथवा इसी प्रकार (ते ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) ब्रह्मण्य कुल तेरे लिये ज्ञान को (व्यन्तु) प्रदीप्त करें, वा (ब्रह्माणि) वेद मन्त्र (वाजं) तेरे ज्ञान को प्रकाशित करें और तेरे (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यप्रद धन, ज्ञान-वान् पुरुष को प्रधान बनावें।

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसावन्) बलवन् ! (ते) तेरी (अस्याम्) इस (परिष्टौ) सब ओर से प्राप्त प्रजा में हम लोग (अघाय) पाप या हत्यादि अपराध के लिये (परादै मा भूम) त्याग देने योग्य न हों। तू (नः) हमें (अवृकेभिः) चोर, डाकू, भेड़िये के स्वभाव से रहित (वरूथैः) शत्रुवारक सैन्यों द्वारा (नः) हमें (त्रायस्व) रक्षा कर । हम (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच (तव प्रियासः) तेरे प्रिय (स्याम) होकर रहें ।

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! हम (नरः) नायक (सखायः) तेरे ही मित्र होकर (अभिष्टौ) अभीष्ट वस्तु प्राप्त करने के लिये (ते प्रियासः इत्) तेरे प्रिय होकर ही (मदेम) आनन्दित रहें । (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होकर उनके आदर सत्कार के लिये (तुर्वशं) निकट रहने वाले और (याद्वं) मनुष्यों को (निशिशीहि) तीक्ष्ण कर । वे अतिथि के सत्कार के लिये समीप के पड़ोसी भी सदा सहयोगी होवें ।

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन और पूज्य ज्ञान के स्वामिन् ! (ते) तेरी अभिमत नीति में (सद्यः चित् नु) बहुत शीघ्र ही (नरः) उत्तम पुरुष (उक्थ-शासः) उत्तम वेद वचनों का अनुशासन और अध्ययन करने वाले (उक्था) उत्तम मन्त्रों का (शंसन्ति) उपदेश करते हैं, और (ये) जो (हवेभिः) आदर सत्कारों सहित, (ते पणीन्)

तुझे उत्तम व्यवहारवान् और स्तुत्य पुरुष (अदाशन्) प्रदान करते हैं । (तस्मै) उस (युज्याय) सहयोग के योग्य हे विद्वान् पुरुष ! तू (अस्मान्) हमें ही (वृणीष्व) योग्य कार्यकर्त्ता जानकर वरण कर । अर्थात् हम ही राजा के योग्य कार्यों में अपने को समर्पित करें ।

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् १०

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एते अस्मद्र्यञ्चः) हमें प्राप्त (नरां स्तोमाः) उत्तम पुरुषों के वचन समूह वा स्तुत्यजन समूह (हे नृतम) नरश्रेष्ठ ! (मघानि ददतः) नाना ऐश्वर्य देते रहते हैं । तू (तेषाम्) उनके (वृत्र-हत्ये) शत्रुनाशक संग्राम में (शिवः भूः) कल्याणकारी हो । तू (नृणाम्) सब मनुष्यों का (सखा शूरः च) मित्र और शूरवीर (भूः) हो (अविता च) और रक्षक भी (भूः) हो ।

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व । उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११।३०।२॥

भा०—हे (इन्द्र शूर) ऐश्वर्यवन् ! हे शूरवीर ! तू (स्तवमानः) अपने सैन्यों के उत्साह की प्रशंसा करता हुआ (ब्रह्म जूतः) बड़े धनों और बड़े राष्ट्र से युक्त होकर (तन्वा) अपने शरीरवत् प्रिय विस्तृत राष्ट्र से (वावृधस्व) बढ़, वृद्धि को प्राप्त हो । (नः) हमें (वाजान्) बहुत से ऐश्वर्य (उप मिमीहि) प्राप्त करा और (ऊतीन्) संघ बने शत्रुओं को (उप मिमीहि) उखाड़ फेंक । हे वीर पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः सदा पात) हमारी सदा शुभ, सुखदायक उपायों से रक्षा किया करो । इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

[२०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ स्वराट् पंक्तिः । ७ भुरिक् पंक्तिः । २, ४, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६, ८, ९ त्रिष्टुप् ॥
दशर्चं सूक्तम् ॥

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥१॥

भा०—(यः) जो (उग्रः) तेजस्वी पुरुष (स्वधावान्) अन्न, आदि से सम्पन्न वा आत्मा को धारण पोषण करने के उपायों का स्वामी, होकर (वीर्याय) बल सम्पादन करने के लिये (जज्ञे) समर्थ होता है वह (चक्रिः) कर्म करने में कुशल, (अपः करिष्यन्) सूर्य जिस प्रकार वृष्टि जलों को उत्पन्न करना चाहता हुआ तपता है उसी प्रकार (अपः करिष्यन्) उत्तम कार्य करना चाहता हुआ (नृ-सदनं जग्मिः) नायक के विराजने योग्य, या उत्तम पुरुषों के सभा भवन आदि को प्राप्त होकर (युवा) बलवान् पुरुष (महः चित् एनसः) बड़े भारी पापाचरण से (नः) हमें (अवोभिः) नाना ज्ञानों और रक्षा साधनों द्वारा (त्राता) बचाने हारा हो ।

हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वृत्रं हन्ता) मेघ के समान विघ्नकारक दुष्ट का अवश्य नाश करे । वह (वीरः) वीर (ऊती) रक्षा से (जरितारम्) स्तुति, प्रार्थना करने वाले को (प्र अवीत् नु) शीघ्र ही रक्षा करे । (अह-वा उ) और (सुदासे) उत्तम दानशील पुरुष के हित के लिये (लोकं)

दर्शनीय, उत्तम उपकार वा उत्तम जन्म का (कर्त्ता) करने वाला हो और (दाशुषे) अपने आप को देने वाले पुरुष के पालनार्थ (मुहुः) बार २ (वसु दाता भूत्) नाना ऐश्वर्यों को देने वाला हो।

युध्मो अ॑न॒र्वा ख॑ज॒कृत्स॒मद्वा॒ शूर॑: सत्रा॒षाड् ज॒नुषे॒मषा॑ळ्हः ।
व्या॑स॒ इन्द्र॒: पृत॑ना॒: स्वोजा॒ अधा॒ विश्वं॑ शत्रू॒यन्तं॑ जघान ॥३॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (युध्मः) उत्तम योद्धा, (अनर्वा) अहिंसक वा जिसके समान दूसरा कोई सवार न हो, (खजकृत्) संग्राम करने में कुशल, (समद्वा) मद अर्थात् उत्तेजना वा हर्ष से युक्त पुरुषों को प्राप्त करने वाला, (सत्राषाड्) बहुत से यज्ञों, का कर्त्ता वा सत्य व्यवहार से विजय करने वाला, (ईम् जनुषा अषाढः) और सब प्रकार से, स्वभाव से किसी से पराजित न होने वाला हो। वह (सु-ओजाः) उत्तम बल-पराक्रमशील होकर (आसे) स्वयं मुखवत् प्रमुख स्थान पर विराजकर (पृतनाः वि जघान) सब मनुष्यों को प्राप्त करे (अध) और (पृतनाः) शत्रु सेनाओं तथा (विश्वम् शत्रूयन्तं) शत्रुता का व्यवहार करने वाले सब का (वि जघान) विविध उपायों से नाश करे।

उ॒भे चि॑दिन्द्र॒ रोद॑सी महि॒त्वा प॑प्राथ॒ तवि॑षीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्र॒मिन्द्रो॒ हरि॑वा॒न्मिमि॑क्ष॒न्त्सम॑न्ध॑सा॒ मदे॑षु॒ वा उ॑वोच ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! आप (तुविष्मः) बहुत बलवान् होकर (तविषीभिः) बलशालिनी, सेनाओं से (उभे रोदसी चित्) आकाश और पृथिवी दोनों के समान अति विस्तृत राजवर्ग प्रजावर्ग, शासक और शास्य देश दोनों को (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (पप्राथ) विस्तृत कर। (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी होकर (वज्रम्) अपने शस्त्रास्त्र बल को (अन्धसा) अन्न सम्पदा से (नि मिमिक्षन्) खूब पुष्ट करता

हुआ (मदेषु) तथा युद्ध के अवसरों में (वा) भी (सम् उवोच) अच्छी प्रकार समवाय बनावे।

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः॥५।१॥

भा०—(यः) जो (सेनानीः) सेना का नायक (गवेषणः) भूमि राज्य का अभिलाषी, (सत्वा) बलवान् (नृभ्यः इनः अस्ति) मनुष्यों का स्वामी राजा है (सः धृष्णुः) वह शत्रुओं को पराजय करने वाला होता है। (तम् वृषणम्) उस बलवान् पुरुष को (रणाय) रणादि शूरवीरता के कार्य के लिये (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ बलवान् पुरुष ही (जजान) उत्पन्न करता है और (चित्) उसी प्रकार (नर्यं) मनुष्यों से श्रेष्ठ उस पुरुष को (नारी) उत्तम स्त्री ही (सुसूव) कोख से जनती है। स्त्री पुरुष ऐसे ही नररत्न को सदा उत्पन्न करें जो सेनानायक बलवान् शत्रुपराजयकारी, संग्रामविजयी हों। इति प्रथमो वर्गः॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः॥६॥

भा०—जो मनुष्य (अस्य) इस स्वामी के (घोरं मनः) घोर, अति आर्द्र, दयाशील, मन, अन्तःकरण को (आविवासात्) सेवता है, उसके अभिप्रायानुसार कार्य करता है (सः जनः) वह मनुष्य कभी (न भ्रेषते) च्युत नहीं होता, (न रेषत्) कभी नष्ट नहीं होता और (यः) जो (यज्ञैः) यज्ञ, उपासना पूजादि उपायों से (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् प्रभु में (दुवांसि दधते) प्रार्थनादि करते हैं (सः) वह (ऋत-पाः) सत्य व्रतों का पालक और (ऋतेजाः) सत्य में निष्ठ होकर (राये क्षयत्) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये निरन्तर अच्छी प्रकार रहता है।

यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णम्।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! (यत्) जो (पूर्वः) पूर्व विद्यमान जीवन, और ज्ञान के अनुभवी, (अपराय) दूसरे के लिये (देष्णम् शिक्षन्) देने योग्य ज्ञान वा धन देता वा (कनीयसः) छोटों से (ज्यायान्) बड़ा होकर भी (अयत्) प्राप्त करता है वा (अमृतः) अमृत, दीर्घायु, ज्ञानी, मुमुक्षु होकर (दूरम् इत पर्यासीत) दूर ही रहता है, हे (मित्र) पूज्य ! तू (नः) हमें वह (चित्र्यं रायः) आश्चर्यजनक अद्भुत संग्रह योग्य (रयिम् आभर) ऐश्वर्य, ज्ञान प्रदान कर ।

यस्त॑ इन्द्र प्रि॒यो जनो॒ ददा॑श॒दस॑न्नि॒रे॒के अ॑द्रिवः सखा॑ ते ।
व॒यं ते॑ अ॒स्यां सु॑म॒तौ चनि॑ष्ठाः स्याम॒ वरू॑थे॒ अघ्न॑तो॒ नृपी॑तौ ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (अद्रिवः) मेघ तुल्य शत्रुओं पर शस्त्रवर्षण करने हारे वीर पुरुषों के स्वामिन् ! (यः) जो (ते) तेरा (प्रियः जनः) प्रिय, प्रजाजन (ददाशद्) कर आदि देवे, वह (निरेके) निःशंक व्यवहार में (ते सखा) तेरा मित्र, होकर (असत्) रहे । (वयम्) हम लोग (ते) तेरी (अस्यां) इस (सुमतौ) शुभ मति में (चनिष्ठाः) अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों और (अघ्नतः) न हिंसा करने वाले तुझ पालक के (नृ-पीते) उत्तम नायकों द्वारा पालन करने वाले (वरूथे) सैन्य या शासन में हम घर के समान हुए (स्याम) सुख से रहें ।

ए॒ष स्तोमो॑ अचिक्रद॒द्वृषा॑ त उ॒त स्ता॒मुर्म॑घवन्नक्रपिष्ट ।
रा॒यस्कामो॑ जरि॒तारं॑ त॒ आग॒न्त्वम॒ङ्ग श॑क्र॒ वस्व॒ आ श॑को नः ९

भा०—हे प्रजाजन ! (एषः) यः (स्तोमः) स्तुत्य, प्रशंसायोग्य (वृषा) बलवान् राजा (ते अचिक्रदत्) तुझे आदर से बुलावे (उत) और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! विना किसी प्रकार का कष्ट पाये (अक्रपिष्ट) सब सामर्थ्य प्राप्त करे । (ते रायः कामः) तेरे लिये ऐश्वर्य की कामना

करने वाला पुरुष (जरितारं) सत्य ज्ञान के उपदेष्टा रूप तुझ को (आगन्) प्राप्त हो और (अंग शक्र) हे शक्तिशालिन् ! तू (नः वस्वः) हमारे धन पर (आ शकः) सब प्रकार से शक्ति या अधिकार प्राप्त कर। अर्थात् प्रजा धनाभिलाषी होकर राजा को प्राप्त करे। राजा के ऐश्वर्य का उपभोग करे और राजा प्रजा के धन पर अपना स्वत्व समझे।

स नं इन्द्र त्वयंताया इषे धास्त्मनां च ये मघवांनो जुनन्ति।
वस्वी षु तें जरित्रे अंस्तु शक्तिर्यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः १०॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! (नः) हम लोगों में से (ये) जो (त्मना) अपने सामर्थ्य से (मघवानः) उत्तम धन सम्पन्न होकर (जुनन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं उनको भी तू (त्वयताया) तेरे से सुप्रबद्ध (इषे) उत्तम प्रेरणा के लिये (धाः) धारण कर। (जरित्रे) उत्तम विद्वान् के लिये (ते) तेरी (वस्वी) ऐश्वर्ययुक्त (शक्तिः) दान शक्ति (सु अस्तु) खूब अधिक हो। (यूयम्) तुम लोग हे विद्वानो (नः सदा) हमें सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी उपायों से पालन करो। 'वस्वीषु' इत्येकं पदं सायणाभिमतं पदपाठेन विरुध्यते। इति द्वितीयो वर्गः॥

[२१]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ६, ८, ६ विराट् त्रिष्टुप्। २, १० निचृत्त्रिष्टुप्। ३, ७ भुरिक्पंक्तिः। ४, ५ स्वराट् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम्॥

असांवि देवं गोऋंजीकमन्धो न्यंस्मिन्निन्द्रों जनुषेमुवोच।
बोधांमसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधां नः स्तोममन्धंसो मदेषु॥१॥

भा०—(गो-ऋजीकं) भूमि से सरलता से, न्याय धर्म के अनुसार प्राप्त होने वाला, (देवं) सुखप्रद वा व्यवहार योग्य (अन्धः) अन्न आदि पदार्थ (असावि) उत्पन्न होता है। (अस्मिन्) उस पर (इन्द्रः

ईम् उवोच) जिस प्रकार सूर्य या मेघ जल प्रदान करता और बढ़ाता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (जनुषा) स्वभावतः (अस्मिन् नि उवोच) उस अन्न के निमित्त सब प्रकार के उपायों को प्राप्त करावे और बढ़ावे। हे (हर्यश्व) मनुष्यों में श्रेष्ठ ! हम (यज्ञैः) सत्कारों से (त्वा बोधामसि) तुझे तेरा कर्त्तव्य बतलाते हैं (अन्धसः मदेषु) अन्न आदि प्राणधारक पदार्थों के सुखों के निमित्त तू (नः) हमें (स्तोमम्) स्तुत्यवचन का (बोध) बोध करा। उनके प्राप्त करने के लिये उत्तम २ उपाय और व्यवस्था का उपदेश कर।

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः॥ २॥

भा०—(सोम-मादः) अन्न, ऐश्वर्य और बलवीर्य से हर्ष युक्त, प्रसन्न, और (दुध्र-वाचः) दुर्धर बड़ी कठिनता से धारण करने योग्य वाणी के स्वामी, शासक लोग (यज्ञं) आदर, सत्कार, यज्ञ, विद्वत्संग और परस्पर के दृढ़ संघ को (प्र यन्ति) प्राप्त करते हैं, (बर्हिः विपयन्ति) उत्तम वृद्धिशील पद वा आसन को प्राप्त करते और (विदथे) यज्ञ वा संग्राम में वा ज्ञान-व्यवहार में विशेष रूप से रहते हैं। वे (यशसः गृभात्) यशोजनक घर से निकल कर (वृषणः) बलवान् पुरुष (नृषाचः) मनुष्यों का समवाय बनाकर (दूरे-उपब्दः) दूर २ देशों तक अपनी वाणी वा वक्तव्य पहुंचाते और (नि भ्रियन्ते) निरन्तर आदर प्राप्त करते हैं।

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
त्वद्वावक्रे रथ्योऽ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा॥ ३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य या विद्युत् (अहिना परिस्थिता) मेघ रूप से या सूर्य द्वारा सर्वत्र व्यापक होकर विद्यमान (अपः) जल परमाणुओं को (स्रवितवै अकः) नीचे बहने के लिये प्रवृत्त करता है।

उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शूर) शूरवीर ! (त्वम्) तू (पूर्वीः) समृद्धि से पूर्ण (अहिना परि स्थिताः) अग्रगन्ता नायक से अधिष्ठित (अपः) आप्त प्रजाओं को (स्रवितवै अकः) सन्मार्ग पर चलने के लिये तैयार करता और (अहिना परिस्थिताः) अभिमुख आकर हनन करने वाले शत्रु के अधीन स्थित शत्रु सेनाओं को (अपः) जलों के समान (स्रवितवै अकः) बहने या भाग जाने को बाधित कर । (त्वत् धेनाः) तेरी वाणियां (रथ्यः न) रथारोही वीरों वा रथ के अश्वों के समान वेग से वा (वावक्रे) वक्रता पूर्वक सौन्दर्य से निकलें, प्रकट हों । और (विश्वा) समस्त (कृत्रिमाणि) कृत्रिम, अपने २ स्वार्थ-कारणों से बने मित्र और शत्रुजन (भीषा रेजन्ते) भय से कांपें ।

भीमो विवेषा युधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (आयुधेभिः) शस्त्रों करके (भीमः) भयानक, (एषां)इन शत्रुजनों के (विश्वा) समस्त (नर्याणि) मनुष्यों से करने योग्य, उनके हितकारी (अपांसि) कर्मों को (विद्वान्) जानता हुआ, (विवेष) शत्रुओं के भीतर उनके एक २ काम में व्याप जाय और सब पता लगावे । वह (जर्हृषाणः) हृष्ट प्रसन्न होकर शत्रुओं के (पुरः) नगरियों को (वि दूधोत्) विविध प्रकार से कंपा डाले। (वज्र-हस्तः) हाथों में सैन्यबल लिये (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (वि जघान) विविध प्रकार से शत्रुओं को दण्डित करे ।

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (यातवः)

पीड़ा देने वाले, वा आक्रमणकारी लोग (नः न जुजुवुः) हम तक न पहुंचें, हमारा घात न करें। हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! (वेद्याभिः) ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं से वे पीड़ादायक लोग (नः वन्दना) हमारे स्तुत्य उपदेश योग्य उत्तम कार्यों तक भी (न जुजुवुः) न पहुंचें, न नाश करें। (अर्यः) स्वामी, राजा (विषुणस्य जन्तोः) विस्तृत फैले प्रजाजन को (शर्धत्) उत्साहित करे और (शिश्न-देवाः) उप-स्थेन्द्रिय से क्रीड़ा विलास करने वाले, कामी, नीच पुरुष (नः) हमारे (ऋतं) सत्य व्यवहार, धर्म्म, कर्म्म, वेद ज्ञान, यज्ञ, और हमारे अन्न जल को भी (मा अपि गुः) प्राप्त न हों। इति तृतीयो वर्गः ॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः राजन् ! हे (इन्द्र) जीवात्मन् ! (अध) और तू (क्रत्वा) उत्तम ज्ञान और कर्म के सामर्थ्य से (ज्मन्) इस पृथिवी पर (रजांसि) समस्त लोकों और समस्त राजस भावों को (अभि भूः) पराजित कर। (रजांसि) वे लोग (ते) तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (न विव्यङ्) न प्राप्त कर सकें। तू (स्वेन शवसा हि) अपने ही बल से (वृत्रं) आवरणकारी अज्ञान और विघ्नकारी शत्रु को (जघन्थ) विनाश कर। (शत्रुः) शत्रु, तेरा नाश करने वाला, (ते अन्तं) तेरा अन्त (युधा) युद्ध द्वारा (न विविदत्) न पासके।

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥ ७ ॥

भा०—हे राजन् ! स्वामिन् ! (असुर्याय क्षत्राय) मेघ में उत्पन्न जल प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार अन्नाभिलाषी जन नाना यत्न करते

हैं उसी प्रकार (पूर्वे देवाः) वे पूर्व के, प्रथम शिक्षित, दीर्घायु वृद्ध विद्वान् मनुष्य (ते असुर्याय क्षत्राय) तेरे मेघ में उत्पन्न विद्युत् के प्रबल बलवीर्य को प्राप्त करने के लिये (सहांसि) नाना साहस और नाना बल युक्त सैन्य (अनु ममिरे) तेरी आज्ञा में करते हैं। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् तू (विषह्य) विविध प्रकार से शत्रुओं को पराजित करके (मघानि दयते) उत्तम ऐश्वर्यों का दान और रक्षा करता है। प्रजाजन (वाज-स्य सातौ) ऐश्वर्य, बल और संग्राम के प्राप्त करने और विजय लाभ करने के लिये (इन्द्रः) शत्रु हनन करने वाले शूरवीर, ऐश्वर्यवान् आप्त, पुरुष को (जोहुवन्त) बुलाते, पुकारते और उसी की उपासना करते हैं।

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् स्वामिन्! प्रभो! (कीरिः) स्तोता, विद्वान्, क्रियाकुशल पुरुष (चित्) भी (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (भूरेः) बहुत बड़े, (सौभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य के (ईशानं) स्वामी (त्वाम्) तुझको ही (जुहाव) पुकारता है। हे (शतम्-ऊते) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न! तू (अस्मे) हमारा (अवः बभूथ) रक्षा करने हारा हो। (त्वावतः) तेरे जैसे (अभि-क्षत्तुः) सन्मुख आये शत्रु के हिंसक वीर, पुरुष को (वरूता) स्वीकार करने और उसको युद्ध में परा-जित कर भगाने वाला भी तू ही (बभूथ) हो।

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीकेऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥ ९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (तरुत्र) शत्रुओं को मारने और शरणागत प्रजाओं को दुःखों और संकटों से पार उतारने वाले राजन्! स्वामिन्! प्रभो! (ते) तेरे हम लोग (विश्वह) सदा (सखायः)

मित्र, स्नेही और (महिना) तेरे महान् सामर्थ्य से (नमोः वृधासः) नमस्कार, विनय, अन्न और शस्त्र बल से बढ़ने और बढ़ाने हारे (स्याम) हों। (समीके) रण में (ते) तेरे (अवसा) रक्षण सामर्थ्य से ही प्रजास्थ पुरुष (अभीतिम् वन्वन्तु) अभय प्राप्त करें और (अभि-इतिम् वन्वन्तु) अभिगमन, अर्थात् अभिमुख प्रयाण करें और (वनुषां शवांसि) हिंसक शत्रुओं के बलों के प्रति (अभि-इतिम् वन्वन्तु) प्रयाण करें और उनके आक्रमण को नाश करें। तू उनका (अर्यः) स्वामी होकर रक्षा कर।

स न॑ इन्द्र त्व॒यता॑या इ॒षे धा॒स्त्मना॑ च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑।
वस्वी॑ षु ते॑ जरि॒त्रे अ॑स्तु श॒क्तिर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥१०॥४

भा०—व्याख्या देखो सू० २० (म० १०) इति चतुर्थो वर्गः॥

[२२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—भुरिगुष्णिक्। २, ७ निचृदनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ५ अनुष्टुप्। ६, ८ विराडनुष्टुप्। ४ आर्ची पंक्तिः। ९ विराट् त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्

पिबा॒ सोम॑मिन्द्र॒ मन्द॑तु त्वा॒ यं ते॑ सु॒षाव॑ हर्य॒श्वाद्रिः॑।
सो॒तुर्बा॒हुभ्यां॒ सुय॑तो॒ नार्वा॑॥ १॥

भा०—जिस प्रकार (अद्रिः) मेघ, जिस अन्न को उत्पन्न करता है उसको सूर्य अपनी किरणों से पान करता है उसी प्रकार (अद्रिः) मेघवत् शस्त्रवर्षी और शत्रु द्वारा दीर्ण, खण्डित, या छिन्न भिन्न न होने वाले, दृढ़, हे (हर्यश्व) उत्तम सैन्य के स्वामिन् वा उत्तम मनुष्यों को अश्वों के समान अपने राष्ट्र-रथ में लगाने हारे सुव्यवस्थित सैन्य बल! (यं) जिस (सोमम्) अन्नवत् उपभोग्य ऐश्वर्य को (ते) तेरे लिये (अद्रिः) मेघ व मेघवत् उदार शस्त्र बल (सुषाव) उत्पन्न करता है तू उसको (सोमम्) अन्न रस और ओषधि रस के समान (पिब) उपभोग कर। वह

तुझे बल दे और तेरे लिये शक्तिकारक हो। वह (त्वा मन्दतु) तुझे हर्षित करे। और (सोतुः बाहुभ्यां सुयतः) सञ्चालक सारथि के बाहुओं से उत्तम प्रकार से नियन्त्रित (अर्वा न) अश्व के समान तू भी (सोतुः) उत्तम मार्ग में सञ्चालन करने वाले पुरुष के (बाहुभ्यां) कुमार्ग से रोकने वाले ज्ञान और कर्मरूप बाहुओं से (सु-यतः) उत्तम रूप से नियन्त्रित होकर तू (सोमम् पिब) इस राष्ट्ररूप ऐश्वर्य का पुत्र वा शिष्यवत् पालन कर।

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगयुक्त अश्वों के स्वामिन्! हे मनुष्यों को अश्वों के समान सन्मार्ग पर चलाने हारे! (यः) जो (ते) तेरा (युज्यः) सहयोग देने योग्य, (चारुः) उत्तम (मदः) हर्ष (अस्ति) है और (येन) जिससे तू (वृत्राणि) मेघों को सूर्यवत् शत्रुओं को (हंसि) विनाश करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (प्रभूवसो) प्रचुर ऐश्वर्य के स्वामिन्! (सः) वह (त्वा) तुझको (ममत्तु) अति हर्षयुक्त बनावे।

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (याम्) जिस (प्रशस्तिम्) उत्तम प्रशंसा योग्य (ते) तेरी (वाचम्) वाणी का (वसिष्ठः) उत्तम वसु, विद्वान् (सु अर्चति) आदर कर रहा है तू (इमाम्) उसको (सु बोध) अच्छी प्रकार जान। (इमा ब्रह्म) तू इन ज्ञानों, अन्नों और धनों को (सध-मादे) एक साथ मिलकर हर्ष मनाने के अवसर में (जुषस्व) सेवन कर।

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥ ४ ॥

भा०—(वि-पिपानस्य) विविध प्रकार के रसों को अपने भीतर पालन

करने वाले (अद्रेः) मेघ के समान नाना विद्याओं के रसों का पान या पालन करने वाले (अद्रेः) आदर योग्य (विप्रस्य) मेधावी (अर्चतः) अर्चना करने योग्य विद्वान् के (हवम्) उपदेश और (मनीषाम्) बुद्धि का (बोध) ज्ञान कर और (इमा) इन (दुवांसि) नाना सेवाओं को (अन्तमा कृष्व) समीप कर ।

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! (विद्वान्) मैं विद्वान् होकर भी (ते गिरः) तेरी वाणियों का (न अपि मृष्ये) त्याग न करूं । (तुरस्य) अति शीघ्र कार्यकर्त्ता, और शत्रुओं के हिंसक (असुर्यस्य) बलवानों में श्रेष्ठ तेरे (सु-स्तु तिम्) उत्तम स्तुति को भी (न अपि मृष्ये) त्याग न करूं । हे राजन् ! मैं (ते नाम) तेरे नाम या शत्रु को दबाने के सामर्थ्य को ही (स्व-यशः) अपनी कीर्त्ति या बल (वि वक्मि) कहूं ।

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्ययुक्त ! (ते) तेरे (भूरि हि सवना) बहुत से ऐश्वर्य (मानुषेषु) मनुष्यों में हैं । (मनीषी) बुद्धिमान् पुरुष (त्वाम् इत् हवते) तेरी ही स्तुति करता है, तुझे ही पुकारता है । तू (अस्मत्) हम से (ज्योक् माकः) विद्वान् पुरुष को वा अपने आपको चिरकाल के लिये दूर मत कर ।

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ ७ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर शत्रुहिंसक ! (तुभ्यं इत् इमा सवना) ये समस्त ऐश्वर्य तेरे ही उपभोग के लिये और तेरे ही अधिकार में हों ।

(तुभ्यं वर्धना) तुझे ही बढ़ाने वाले (विश्वा ब्रह्माणि) ये समस्त धन, अन्न और वेद वचन मैं (कृणोमि) करता हूं । हे राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नृभिः) मनुष्यों से (हव्यः) स्तुति योग्य, स्वीकार करने योग्य, और (विश्वधा असि) समस्त विश्व को धारण करने हारा है ।

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ ८ ॥

भा०—हे (दस्म) दर्शनीय ! हे शत्रुहिंसक ! हे (उग्र) शत्रु-भयजनक राजन् ! प्रभो ! (मन्यमानस्य) मान करने योग्य (ते) तेरे (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को (नु चित् नु) अवश्य सज्जन लोग (उत् अश्नुवन्ति) उत्तमता से प्राप्त करें । परन्तु शत्रु जन (ते महिमानम् न उद् अश्नुवन्तु) तेरे महान् सामर्थ्य को न पा सकें और वे (न ते वीर्यम्, न ते राधः) न तेरे बल और न तेरे ऐश्वर्य को प्राप्त करें । वे तेरे से अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् कभी भी न हों ।

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।९।६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे आचार्य विद्वन् ! (ये च ऋषयः) जो मन्त्रार्थों और उत्तम सत्य सत्य ज्ञानों के देखने वाले, (पूर्वे) पूर्व काल के, वृद्ध, गुरुजन और (ये च नूत्नाः) जो नये शिष्य जन, नव-शिक्षित (विप्राः) विद्वान् पुरुष हैं वे (ब्रह्माणि जनयन्त) वेद मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश करें । हे विद्वन् ! राजन् (ते) तेरी (सख्यानि) मित्रता के कार्य (अस्मे) हमारे लिये (शिवानि) कल्याणकारक हों । (यूयम्) आप लोग हे विद्वान् ऋषिजनो ! (नः) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो । इति षष्ठो वर्गः ॥

[२३]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ६ भुरिक्पंक्तिः। ४ स्वराट् पंक्तिः।
२, ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

उदु ब्रह्मा॑ण्यैरत श्र॒व॒स्येन्द्रं॑ सम॒र्ये म॑हया वसिष्ठ।
आ यो विश्वा॑नि॒ शव॑सा त॒ताना॑पश्रो॒ता म॒ ईव॑तो॒ वचां॑सि॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) प्रजा को उत्तम रीति से वसाने और उनमें स्वयं भी अच्छी प्रकार वसने हारे उत्तम वसो! राजन्! प्रजाजन! विद्वन्! तू (श्रवस्या) धन, अन्न, और यश की कामना से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर (उद् ऐरत उ) उत्तम रीति से उपदेश कर। हे विद्वन्! तू (श्रवस्या) ज्ञानोपदेश की कामना से (ब्रह्माणि उद् ऐरत) वेद मन्त्रों का उत्तम उपदेश कर। हे राजन्! हे उत्तम प्रजावर्ग! तू (समर्ये) संग्राम में वा मनुष्यों के एकत्र होने के स्थान, सभा आदि में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर पुरुष का (महय) आदर सत्कार, विशेष सम्मान कर। हे उत्तम शिष्यवर्ग! (सम् अर्ये) उत्तम ज्ञानोपार्जन के निमित्त (इन्द्रं महय) आचार्य का समान, पूजन किया कर। (यः) जो राजा (उप-श्रोता) प्रजाओं के कष्टों को ध्यान से श्रवण करने वाला (शवसा) बलपूर्वक (ईवतः) समीप आने वाले (मे) मेरे उपकारार्थ (विश्वानि वचांसि) समस्त उत्तम वचन, व आज्ञाएं (आ ततान) प्रदान करता है अथवा (यः शवसा विश्वानि वचांसि आततान) जो बल के साथ सब प्रकार के आज्ञा वचन विस्तारित करता है वह (ईवतः मे वचांसि उप-श्रोता) शरण में आये मेरे वचनों को भी ध्यान से श्रवण करने हारा हो। इसी प्रकार जो विद्वान् (शवसा वचांसि आततान) ज्ञानपूर्वक वचन कहे वह प्राप्त शिष्य के वचनों को भी श्रवण करे।

अया॑मि॒ घोष॑ इन्द्र दे॒वजा॑मिरिर॒ज्यन्त॒ यच्छु॒रुधो॒ विवा॑चि।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (देवजामिः घोषः) जलदाता मेघ की गर्जना होती है और (विवाचि) विविध मध्यमा वाक् विद्युत् के गर्जते हुए (शुरुधः) शीघ्र आने वाली ओषधियां खूब बढ़ती हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! (यत्) जब (देव-जामिः) 'देव' व्यवहारवान्, और विजयेच्छु पुरुषों में रहने वाला (घोषः) घोष, या वाणी उठती है उस समय (वि-वाचि) विविध या विशेष वाणी के प्रवक्ता पुरुष के अधीन (शुरुधः) शीघ्र ही शत्रुओं को रोकने में समर्थ वीरजन (इरज्यन्त) आगे बढ़ते हैं। (जनेषु) मनुष्यों में कोई भी (स्वम् आयुः) अपना जीवन सुरक्षित (नहि चिकिते) नहीं जानता तब हे राजन् ! तू ही (तानि इत् अहांसि) उन नाना प्रकार के पापाचारों से (अस्मान् अतिपर्षि) हमें पार करता है।

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्टस्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥

भा०—(हरिभ्यां रथं) जिस प्रकार दो अश्वों से रथ को जोड़ा जाता है उसी प्रकार मैं भी (हरिभ्याम्) दो उत्तम विद्वान् पुरुषों से (रथम्) सुख देने वाले राष्ट्र को (युजे) युक्त करूं और समस्त प्रजा वर्ग (ब्रह्माणि जुजुषाणम्) नाना धनों को प्राप्त करने वाले ऐश्वर्यवान् पुरुष का (उप अस्थुः) आश्रय लेते हैं। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (रोदसी) शत्रु को रुलाने वाली उभय पक्ष की सेनाओं को (वि बाधिष्ट) विविध प्रकार से वश करे। और वह (अप्रति) बे-मुकाबला होकर (वृत्राणिजघन्वान्) शत्रुओं को नाश करे और धनों को प्राप्त करे।

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥

भा०—(स्तर्यः गावः न) जिस प्रकार सुरक्षित गौएं गृहस्थ को (पिप्युः) बढ़ाती हैं (आपः चित्) और जिस प्रकार जलवत् देह में बहती रक्तधाराएं शरीर की वृद्धि करती हैं। उसी प्रकार (आपः) आप्त विद्वान् और प्रजाएं (स्तर्यः) शत्रुहिंसक और देश की रक्षा करने वाली सेनाएं तथा (गावः) गौएं, वा भूमियें भी देश को (पिप्युः) बढ़ाती, समृद्ध करती हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (जरितारः) विद्वान् उपदेष्टा और शत्रुओं की जीवन हानि करने वाले वीर पुरुष (ते ऋतं रक्षन्) तेरे सत्य न्याय, ऐश्वर्य आदि को प्राप्त करें। (त्वं) तू (नः) हमारे (नियुतः) लक्षों प्रजाजनों को, नियुक्त भृत्यों को, तथा (नियुतः) अश्व-सैन्यों को भी (वायुः) वायु अर्थात् प्राणवत् प्रिय होकर, वा वायु के समान बल से शत्रु को उखाड़ने में समर्थ होकर (अच्छ याहि) प्राप्त हो। और (धीभिः) अपने कर्मों और सम्मतियों से (वाजान्) ऐश्वर्यों को (वि दयसे) विविध प्रकार से दे और (वाजान् वि दयसे) वेगवान् अश्वों को विविध प्रकार से पालन कर, और संग्रामों को कर। ज्ञानवान् पुरुषों पर (वि दयसे) विशेष दया कृपा कर।

ते त्वा मदा॑ इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं॑ तुविराध॑सं जरि॒त्रे ।
एको॑ देव॒त्रा दय॑से॒ हि मर्ता॑न॒स्मिञ्छू॑र॒ सव॑ने मादयस्व ॥ ५ ॥

भा०—(हि) जिस कारण से हे (शूर) शूरवीर ! तू (देवत्रा) विजयशील और विद्वान् पुरुषों के बीच, वा उनका त्राता होकर (एकः) अकेला, अद्वितीय होकर (मर्तान् दयसे) सब मनुष्यों को जीवन देता, उन पर विशेष कृपा करता, उनकी रक्षा करता है (जरित्रे) विद्वान् विद्योपदेष्टा के लिये (तुवि-राधसं) बहुत सा धन प्रदान करने वाले (शुष्मिणं) बलशाली, (त्वा) तुझको हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) वे (मदाः) तृप्तिकारक नाना पदार्थ, और (मदाः) हर्षयुक्त नाना सुभट (मादयन्तु) तृप्त और प्रसन्न करें।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६।७॥

भा०—(वसिष्ठासः) राष्ट्र में बसे उत्तम प्रजाजन (एव) निश्चय से (वृषणं) बलवान्, मेघवत् वा सूर्यवत् शत्रु पर शरों और प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले (वज्र-बाहुम्) शस्त्रास्त्र बल और शक्ति को बाहुओं में, अपने वश में रखने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को (अर्कैः) नाना अर्चना योग्य उपायों से (अभि-अर्चन्ति) सत्कार करते हैं। (सः स्तुतः) वह प्रशंसित शासक (नः) हमारे (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त सैन्य और (गोमत्) भूमियों से युक्त राष्ट्र की (पातु) रक्षा करे। और हे वीर पुरुषो (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) उत्तम उपायों से (पात) पालन करो। इति सप्तमो वर्गः॥

[२४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ६ विराट् पंक्तिः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सदने) विराजने योग्य उत्तम सभा गृह आदि स्थान में (ते) तेरा (योनिः) गृहवत् स्थान (अकारि) बने। हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित ! तू (तम्) उस पद या स्थान को (नृभिः) नायकों सहित (आ याहि) प्राप्त कर। और उस मुख्य पद को प्राप्त कर (प्र याहि) प्रयाण कर। (यथा) जिस प्रकार से भी हो उस प्रकार से तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (असः) हो। (नः वृधे च) हमारे वृद्धि के लिये तू (वसूनि आ ददः) नाना ऐश्वर्य प्रदान और ग्रहण कर। तू (सोमैः च) सौम्य पुरुषों, उत्तम ऐश्वर्यों और नाना ओषधि रसों से (ममदः) हर्ष प्राप्त कर, तृप्त हो और सुखी रह।

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥ २ ॥

भा०—(इयम्) यह (सु-वृक्तिः) उत्तम सद् व्यवहार और उत्तम सेवा करने वाली (मनीषा) मन से प्रिय, मनोहारिणी, (विसृष्ट-धेना) विविध उत्तम वाणी बोलने वाली स्त्री (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त पुरुष को (जोहुवती) प्राप्त करती हुई (परि-सिक्ता) गर्भाशय में निषिक्त (मधूनि) वीर्यों को (भरते) धारण करती है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने हारे ! (ते मनः गृभीतं) तेरा मन उस स्त्री द्वारा ग्रहण किया जाय। तेरा (सुतः) उत्पन्न हुआ (सोमः) पुत्र (द्वि-बर्हाः) माता पिता दोनों द्वारा वृद्धि को प्राप्त और दोनों को बढ़ाने हारा हो। इसी प्रकार हे (इन्द्र) राजन् ! राष्ट्र में (मधूनि परिषिक्ता) नाना जल सिंचें। (द्विबर्हाः) मेघ और पृथिवी दोनों से बढ़ने वाला (सोमः सुतः) ओषधिगण उत्पन्न हो। राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों को बढ़ाने वाला राजा अभिषेक को प्राप्त हो। (ते मनः गृभीतम्) तेरा मन राष्ट्र में लगे। (सु-वृक्तिः) उत्तम रीति से विभक्त (इयम्) यह भूमि (विसृष्ट-धेना) नाना शासनाज्ञा से युक्त होकर (मनीषा) मनभावनी होकर (इन्द्रं जोहुवती) राजा को पुकारती, अपनाती और करादि देती हुई, (भरते) समस्त प्रजाजन को अपने में धारण करती, पालती है।

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) ऋजु, सरल धार्मिक मार्ग में समस्त प्रजाओं को चलाने हारे ! तू (सोम-पेयाय) पुत्रवत् प्रजा के पालन करने, और ऐश्वर्यों का ओषधिरसवत् उपभोग करने के लिये (दिवः पृथिव्याः) उत्तम व्यवहार, विजय-कामना और भूमि के लिये (नः) हमारे (इदं बर्हिः) इस वृद्धिकारक प्रजावर्ग को (आ याहि) प्राप्त हो। (हरयः)

प्रजास्थ पुरुष (तवसं) बलवान् (मद्यूञ्चम्) मेरे प्रति आदरपूर्वक आने वाले (त्वा) तुझ को (मदाय) तेरी प्रसन्नता के लिये (आङ्गूषं अच्छ वहन्तु) उत्तम स्तुतियुक्त वचन प्रदान करें।

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र॥ ४॥

भा०—हे (हर्यश्व) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ! अश्ववत् राज्य रथ के सञ्चालक! राजन्! तू (नः) हमारे (ब्रह्म जुषाणः) धन, अन्न और वेद ज्ञान को प्रेमपूर्वक स्वीकार और सेवन करता हुआ (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार के रक्षा साधनों से (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो। हे (सु-शिप्र) उत्तम मुकुटधारिन्! शोभित मुखावयव, सौम्य मुख! तू (स्थविरेभिः) विद्या और आयु में वृद्ध पुरुषों सहित, शत्रुओं और दुःखों तथा दैवी, मानुषी विपत्तियों को (वरीवृजत्) सदा दूर किया कर। और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (अस्मे) हमारे लिये (वृषणं) बलवान् (शुष्मम्) शत्रु शोषक सैन्य को (दधत्) निरन्तर धारण कर।

एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरी३वात्यो न वाजयन्नधायि।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः॥५॥

भा०—(वाहे धुरि अत्यः न) रथ को उठाने वाले धुरा में जिस प्रकार अश्व लगाया जाता है उसी प्रकार (वाहे धुरि) राष्ट्र को धारण, पोषण और सञ्चालन करने वाले पद पर (महे उग्राय) महान्, बलवान् पुरुष के लिये (एषः स्तोमः) यह स्तुत्य व्यवहार, वा अधिकार (वाजयन् इव) उसको अधिक बल और ऐश्वर्य देता हुआ (अधायि) नियत किया जाता है। (वसूनां मध्ये दिवि अर्कः) पृथिव्यादि वस्तुओं के बीच आकाश में सूर्य के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वसूनाम्)

बसे प्रजाजनों, विद्वानों, प्रजापालक शासकों के बीच (अयम् अर्कः) यह अर्चना योग्य पद या अधिकार, मान आदर सत्कार (त्वाम् ईट्टे) तुझे ही ऐश्वर्य प्रदान करता है। तू (नः) हमें प्रकाशवत् (द्याम्) ज्ञान, उत्तम व्यवहार और (श्रोमतं) श्रवण योग्य यश भी (धाः) धारण करा।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।६।८।

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें तू (वार्यस्य) उत्तम धनैश्वर्य से (पूर्धि) पूर्ण कर। (ते) तेरी (महीं) अति पूज्य, (सुमतिं) उत्तम ज्ञान को अच्छी प्रकार प्राप्त करें। तू (मघवद्भ्यः) उत्तम धन युक्तों को (सुवीराम्) शुभ पुत्रों से युक्त (इषं) अन्न समृद्धि (पिन्व) दे। हे सम्पन्न पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम सुखदायक उपायों से हमारी सदा रक्षा, पालन करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२५]

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः। २ विराट् पंक्तिः। ४ पंक्तिः। ६ स्वराट् पंक्तिः। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र) शत्रु नाश करने में कठोर ! (यत्) जब (महते) तुझ महान् की (समन्यवः) क्रोध से युक्त वा एक समान मन्यु, क्रोध और गर्व से पूर्ण (सेनाः) सेनाएं (ऊती) अपने देश की रक्षा के लिये (सम्-अरन्त) अच्छी प्रकार आगे बढ़ें वा युद्ध करें तब (नर्यस्य) सब मनुष्यों में श्रेष्ठ एवं सबके हितैषी (ते) तेरे (बाह्वोः) बाहुओं में (दिद्युत्) चमकता शस्त्रास्त्र (पताति)

शत्रु पर वेग से पड़े और (ते मनः) तेरा चित्त (विश्वद्र्यग् मा विचारीत्) सब तरफ न जाय। अथवा—(ते बाह्वोः दिद्युत् मा पताति) तेरी बाहुओं का तेजस्वी अस्त्र नीचे न गिरे, प्रत्युत (ते मनः विश्वद्र्यग् विचारीत्) तेरा चित्त, विवेक सब ओर जाये। सब ओर से सावधान रहे कि तेरा बल तेरे हाथों से भ्रष्ट होकर न निकल जावे।

नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ॒अ॒भि ये नो॒ मर्तासो॒ अ॒मन्ति॑।
आ॒रे तं शंसं॑ कृणुहि निनि॒त्सोरा नो॑ भर सम्भर॒णं वसू॑नाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (मर्तासः) मनुष्य (नः) हमें (अमन्ति) रोगों के समान पीड़ा देते हैं उन (अमित्रान्) हम से न स्नेह करने वाले शत्रुओं को (दुर्गे) दुर्ग या नगर के प्रकोट में बैठ कर (अभि श्नथिहि) मुकाबला करके मार। (निनित्सोः) निन्दा करने वाले से (आरे) दूर रह कर ही (नः) हमारी (तं शंसं कृणुहि) वह प्रशंसनीय विजय कर और (नः) हमें (वसूनाम्) नाना ऐश्वर्यों का (सम्भरणं आ भर) समूह लादे। वा (नः वसूनां सम्भरणं आ भर) हमारे राष्ट्र वासियों, और शासकों को अच्छी प्रकार पालन पोषण कर।

श॒तं ते॑ शिप्रिन्नू॒तयः॑ सु॒दासे॑ स॒हस्रं॒ शंसा॑ उ॒त रा॒तिर॑स्तु।
ज॒हि वध॑र्व॒नुषो॒ मर्त्य॑स्या॒स्मे द्यु॒म्नमधि॒ रत्नं॑ च धेहि ॥ ३ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुख नासिका, सुन्दर ठोढ़ी वाले ! सोम्य मुख ! वा उत्तम मुकटयुक्त राजन् ! (सु-दासे) उत्तम दानी पुरुष के लिये (ते) तेरी (शतं) सैकड़ों (ऊतयः) रक्षायें हों। और (सहस्रं शंसाः) सहस्रों प्रशंसाएं हों और (सहस्रं रातिः अस्तु) हज़ारों दान हों। हे राजन् ! तू (वनुषः मर्त्यस्य) हिंसक दुष्ट पुरुष के (वधः) हिंसाकारी साधनों को (जहि) नष्ट कर। और (अस्मे)

हमें (द्युम्नम्) यश और (रत्नं च) उत्तम धन (अधि धेहि) बहुत अधिक दे ।

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! (विश्वा इत् अहानि) मैं सब दिनों (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी के (क्रत्वे) कर्म करने और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (अस्मि) रहूं । हे (शूर) शूरवीर ! शत्रुनाशक ! मैं सब दिनों (त्वावतः अवितुः) तेरे जैसे रक्षक के ही (रातौ) दिये दान के ऊपर (अस्मि) वृत्ति करूं । हे (तविषीवः) बलवती सेना के स्वामिन् ! हे शक्तिमन् ! तू सब दिनों (उग्रः) शत्रुओं के लिये भयजनक मेरे लिये (ओकः कृणुष्व) उत्तम स्थान और सेना का उत्तम समवाय बना । हे (हरिवः) अश्वों, अश्वसैन्य और मनुष्यों के स्वामिन् ! तू (न मर्धीः) हमें मत मार, हिंसा मत कर ।

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः ।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥५॥

भा०—(इन्द्रे) शत्रुहन्ता, ऐश्वर्यवान् राजा के अधीन ही (हर्यश्वाय) उस नरश्रेष्ठ, वेगवान् अश्व सैन्य के स्वामी के विजय लाभ के लिये (एते) ये (कुत्साः) शस्त्रास्त्र समूह, शत्रु के काटने वाले वीर पुरुष और (कुत्साः) संशयों के काटने वाले वा नाना उत्तम स्तुतियों और नाना शिल्पों के कारने वाले जन भी (देव-जूतम्) विजयेच्छुक वीर पुरुषों से प्रेरित, वा उनके अभिलषित (शूषम्) सुखकारी (सहः) शत्रुपराजयकारी बल को (इयानाः) प्राप्त करते हुए रहें । और ऐसे ही (वयम्) हम लोग भी (तरुत्राः) सबको दुःखों, कष्टों से तारते और बचाते हुए (वाजम् सनुयाम) ऐश्वर्य, ज्ञान, बल और धन प्राप्त करें और

अन्यों को भी दान करें । हे (शूर) शूरवीर ! तू (सत्रा) सदा, न्याय और सत्य के अनुसार (वृत्रा) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (सुहना कुरु) सुख से नाश करने योग्य कर । और (वृत्रा सुहना कुरु) धनैश्वर्य भी सुप्राप्य बना । राजा ऐसा प्रबन्ध करे जिससे दुष्ट सुगमतासे दण्डित हो सकें और प्रजाजन ईमानदारी से सहज ही धन प्राप्त कर सकें ।

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।६।९।

भा०—व्याख्या देखो (सू० २४ । मं० ६) ॥ इति नवमो वर्गः ॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥ १ ॥

भा०—(असुतः सोमः) जिस प्रकार विना तैयार किया हुआ ओषधि रस (इन्द्रम्) इन्द्रिय युक्त जीव को (न ममाद) हर्ष या सुख नहीं देता और (असुतः सोमः) न उत्पन्न हुआ पुत्र वा अस्नातक शिष्य (इन्द्रं न ममाद) गृह स्वामी, सम्पन्न पुरुष वा आचार्य को भी हर्षित नहीं करता, उसी प्रकार (असुतः) ऐश्वर्यरहित (सोमः) राष्ट्र (इन्द्रम् न ममाद) राजा को सुखी नहीं कर सकता । (अब्रह्माणः सुतासः) वेदज्ञान से रहित शिष्य वा पुत्र (मघवानम्) पूज्य धन वा ज्ञान के स्वामी पिता को भी हर्ष नहीं देते, उसी प्रकार (अब्रह्माणः) निर्धन, धनसम्पदा न देने वाले उत्पन्न जन वा पदार्थ भी (मघवानं न ममदुः) धनाढ्य पुरुषको प्रसन्न नहीं करते । (यत् जुजोषत्) जो प्रेम से सेवन करे मैं (तस्मै) उसी के लिये (उक्थं जनये) उत्तम वचन प्रकट करूं (यथा) जिससे

वह (नः नवीयः) हमारा उत्तम वचन (नृवत्) उत्तम पुरुष के समान (शृणवत्) श्रवण करे ।

उक्थ उक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥ २ ॥

भा०—(उक्थे-उक्थे) प्रत्येक उत्तम, उपदेश करने योग्य व्यवहार ज्ञान में (सोमः) शिष्य (इन्द्रं ममाद) उत्तम आचार्य को हर्ष देने वाला हो, प्रत्येक उत्तम ज्ञान के लिये शिष्य गुरु को प्रसन्न करे । (नीथे-नीथे) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाले प्रत्येक मार्ग वा सत्य व्यवहार, उत्तम २ वचन में (सुतासः) उत्पन्न शिष्य वा पुत्रजन भी (मघवानं) दान योग्य ज्ञान और धन के स्वामी गुरु वा पिता को प्रसन्न करें । इसी प्रकार (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र पुत्रवत् राजा को प्रसन्न करे । प्रत्येक न्याययुक्त व्यवहारों में वे प्रजाजन ऐश्वर्यवान् राजा को हृष्ट, संतुष्ट रक्खें । (समान-दक्षाः पुत्राः सबाधः पितरं न) समान बल से युक्त पुत्र जिस प्रकार पीड़ा-युक्त पिता को (अवसे हवन्ते) उसकी रक्षा के लिये प्राप्त होते हैं वा (सबाधः पुत्राः पितरं अवसे हवन्ते) पीड़ायुक्त पुत्र अपनी रक्षा के लिये पिता को पुकारते हैं उसी प्रकार (यत् ईम्) जब भी प्रजाजन (सबाधः) पीड़ा से पीड़ित हों तब वे भी पुत्रवत् ही (पितरं) अपने पालक राजा को (समान-दक्षाः) समान बलशाली होकर (अवसे हवन्ते) अपनी रक्षा के लिये पुकारें । इसी प्रकार जब राजा (सबाधः) पीड़ा युक्त, संकट में हो तो वे (अवसे) उसकी रक्षा करने के लिये उसे (हवन्त) अपनावें ।

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३॥

भा०—(वेधसः) विद्वान् लोग (सुतेषु) अपने उत्पन्न ·त्रों में

और विद्वान् जन (सुतेषु) अभिषिक्त पुरुषों में (यानि) जिन २ नाना (अन्या) भिन्न २ उपदेश्य वचनों का (ब्रुवन्ति) उपदेश करते हैं (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा (ता) उन २ उत्तम कर्मों को (नूनम्) अवश्य (चकार) करे, और (कृणवत्) अन्य अन्य भी उत्तम कर्म किया करे। (एकः) एक (पतिः) पति जिस प्रकार (जनीः इव) पुत्रोत्पादक धर्मदाराओं को (नि मामृजे) प्रथम ही दोष रहित कर लेता है इसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (एकः) अद्वितीय, (सर्वाः समानः) उत्तम मान आदरयुक्त एवं सबके प्रति समान, निष्पक्ष होकर समस्त (पुरः) समक्ष आये प्रजाओं को (सु) अच्छी प्रकार (नि मामृजे) पापाचरणों से शुद्ध पवित्र करे। जनीः—दारावद्बहुवचनं, जात्याख्यायां वा।

एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम्।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (पूर्वीः) सदा से विद्यमान (मिथस्तुरः) परस्पर मिलकर अति शीघ्र कार्य करने वाली वा मिलकर शत्रु का नाश करने वाली, (ऊतयः) रक्षाएं, वा रक्षाकारणी सेनाएं, शक्तियें (अस्मे) हमें (भद्राणि) सुखजनक, (प्रियाणि) प्रिय ऐश्वर्य (सश्चत) प्राप्त कराती हैं वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा (एकः) एक अद्वितीय, (तरणिः) सबको संकटों से पार उतारने वाला, (मघानां विभक्ता) नाना ऐश्वर्यों का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला है (तम् एव आहुः) उसका ही लोग उपदेश करते हैं (उत तम् एव शृण्वे) और उसको ही मैं गुरुजनों से उपदेश कथाओं द्वारा श्रवण करूं वा उसके प्रति ही मैं कान देकर उसके ज्ञान, आज्ञा वचनादि सुनूं।

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति। सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ १० ॥

भा०—(सुते) अन्न को उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीनां)

खेतियों के वृद्ध्यर्थं (वृषभं) वर्षण करने वाले मेघ की विद्वान् जनस्तुति करते हैं और अन्न के उत्पन्न करने के लिये जिस प्रकार (कृष्टीनां) खेती करने हारों के बीच (वृषभं) बलवान् बैल की स्तुति की जाती है उसी प्रकार (वसिष्ठः) देश में वसने वाले उत्तम जन (सुते) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के निमित्त, और (ऊतये) रक्षा के लिये भी (कृष्टीनां) मनुष्यों के बीच (वृषभं) सर्वश्रेष्ठ (इन्द्रं) शत्रुहन्ता और ऐश्वर्य युक्त पुरुष की (गृणाति) स्तुति करता है। इसी प्रकार (वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् ऐश्वर्य प्राप्ति और रक्षार्थ उस राजा को उपदेश भी करे। हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू (नः) हमें (सहस्रिणः वाजान्) सहस्रों सुखों से युक्त ऐश्वर्य (उप माहि) प्रदान कर। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम २ उपायों से रक्षा करें। इति दशमो वर्गः ॥

[२७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ १ ॥

भा०—(यत्) जो (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् और विद्वान् को (नेमधिता) संग्राम में (नरः) मनुष्य (हवन्ते) पुकारते हैं, (यत्) जो (पार्याः) पालन करने योग्य (धियः) और धारण पोषण योग्य प्रजाएं उस ऐश्वर्यवान् राजा का (युनजते) सहयोग करती हैं, हे राजन् ! तू वह (शूरः) शूरवीर (नृ-साता) मनुष्यों को विभक्त करने वाला, (शवसः चकानः) बल की कामना करता हुआ (ताः) उन २ मनुष्यों और उन प्रजाओं को और (नः) हमें भी (गोमति व्रजे) उत्तम वाणियों से युक्त परम प्राप्तव्य ज्ञान मार्ग वा ब्रह्मपद में और (गोमति व्रजे) भूमियों से

युक्त उत्तम राज्य में (आ भज) हमें रख और हम पर अनुग्रह कर। (२) परमेश्वर पक्ष में—जिसको सब स्वीकार करते (पार्याः धियः युञ्जते) जिसको परम पद को प्राप्त होने वाली बुद्धियां, योग द्वारा प्राप्त करती हैं वह प्रभु हममें हो, उन मनुष्यों और उन बुद्धियों का (गोमतिं व्रजे) वाणियों से युक्त परम गन्तव्य ज्ञानमार्ग में (आ भज) रक्खे और अनुग्रह करे।

य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! राजन् ! विद्वन् ! (यः) जो (ते) तेरा (शुष्मः अस्ति) बल है, वह तू (सखिभ्यः) मित्र (नृभ्यः) उत्तम मनुष्यों को (शिक्ष) प्रदान कर। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन् ! (त्वं हि) तू निश्चय से (वि-चेताः) विशेष ज्ञानवान् होकर (परि-वृतं राधः नः) छुपे धन के समान ही (दृढा) दृढ़ दुर्गों और परम ज्ञान को भी (अप वृधि) खोलकर हमें प्रदान कर।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ ३ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक पुरुष (राजा) सूर्यवत् तेजस्वी, विद्या विनय से प्रकाशित और (जगतः) जगत् या जंगम संसार और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का भी स्वामी हो। (अधि क्षमि) पृथिवी पर (यत्) जो भी (विषु-रूपं) विविध प्रकार का धन है वह भी उसी का है। (ततः) उसमें से ही वह (दाशुषे) दानशील पुरुष को भी (वसूनि ददाति) नाना धन देता है। वह (उप-स्तुतः) प्रशंसित होकर (अर्वाक्) हमें प्राप्त होकर (राधः चोदत्) धन प्राप्त करने की प्रेरणा करे।

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः॥४॥

भा०—(यस्य) जिसकी (अभि-वीता) तेज से युक्त, प्रजा का रक्षण करने वाली, (दक्षिणा) दानशीलता और क्रिया सामर्थ्य, (अनूना) किसी से भी न्यून नहीं होकर (सखिभ्यः नृभ्यः) मित्र जनों के लिये (वामं) उत्तम ऐश्वर्य को (पीपाय) बढ़ाती है (नु चित्) वह पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (मघवा) उत्तम धन, ज्ञान का स्वामी (दानः) दान करता हुआ (नः) हमारी (ऊती) रक्षा के लिये और (स-हूती) समान रूप से सबको देने की नीति से (वाजं) बल और ऐश्वर्य को (नि यमते) नियन्त्रित करता, और प्रदान करता है। राजा प्रजा की रक्षा में और समान मूल्य पदार्थों के विनिमय से धन और बल दोनों को नियम में रक्खे। तब उसका अप्रतिम धन, दानशक्ति और क्रिया सामर्थ्य प्रजा को सुख दे सकते हैं।

नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय।
गोमदश्वावद्रथवद्व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नु) शीघ्र ही (राये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने और उसकी वृद्धि करने के लिये (नः वरिवः कृधि) हम प्रजाजनों की सेवा कर। प्रजा के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये राजा भी प्रजा की सेवा करे। हम भी (ते मनः) तेरे मन को (मघाय) उत्तम आदर योग्य प्रशंसनीय उपाय से प्राप्त हुए धन के लिये ही (आ ववृत्याम) आकर्षण करें। आदरपूर्वक वार २ व्यवहार युक्त करें। हे विद्वान् वीर पुरुषो! (गोमत्) गौओं और भूमियों से युक्त (अश्ववत्) अश्वों से युक्त, (रथवत्) रथों से सम्पन्न ऐश्वर्य का (व्यन्तः) उपभोग, रक्षण और प्राप्ति करते हुए (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें। इत्येकादशो वर्गः॥

[२८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् पंक्तिः । ४ स्वराट्पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व १

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य और साक्षात् विद्योपदेश देने हारे राजन् ! आचार्य ! प्रभो ! तू (विद्वान्) विद्वान् होकर (नः ब्रह्म उप याहि) हमारा बड़ा राष्ट्र और धन प्राप्त कर । हे विद्वन् ! तू हमें ब्रह्मज्ञान प्राप्त करा । (ते) तेरे अधीन (हरयः) अश्वारोही गण और नियुक्त मनुष्य (अर्वाञ्चः) विनयशील और (युक्ताः) मनोयोग देने वाले हों । (विश्वे चित् मर्त्ताः हि) समस्त मनुष्य निश्चय से (त्वा वि हवन्त) तुझे विविध प्रकार से पुकारते हैं । हे (विश्वमिन्व) सबके प्रेरक, सर्वज्ञ, सर्वप्रिय ! तू (अस्माकम् इत्) हमारा वचन अवश्य (शृणुहि) श्रवण कर ।

हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! दुष्टनाशक ! (ते महिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (हवं) उत्तम वाणी के व्यवहार, तथा यज्ञ और संग्राम को भी (वि आनड्) व्याप्त है । (यत्) जिससे हे (शवसिन्) बलवन् ! तू (ऋषीणाम्) ऋषियों, वेदज्ञ विद्वानों के (हवं, ब्रह्म) स्तुत्य ब्रह्मज्ञान और देश के धन को भी (पासि) रक्षा करता है । हे (उग्र) तेजस्विन् ! (यत्) जो (वज्रं हस्ते दधिषे) शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ में धारण करता है वह तू (घोरः सन्) शत्रु को मारने में समर्थ होकर (क्रत्वा) अपने ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से (अषाढः) अन्यों के लिये असह्य (जनिष्ठाः) होजाता है । अथवा (अषाढः) असह्य, न पराजित होने वाली सेनाओं को प्रकट करता है ।

तव॒ प्रणी॑तीन्द्र॒ जोहु॑वाना॒न्त्सं यन्नॄन्न रोद॑सी नि॒नेथ॑ ।
म॒हे च॒त्राय॒ शव॑से॒ हि ज॒ज्ञेऽतू॑तुजिं चि॒त्तू॑तुजिरशिश्नत् ॥ ३ ॥

भा०—(रोदसी न) सूर्य जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी के पदार्थों को सन्मार्ग पर चलाता है उसी प्रकार (यत्) जो पुरुष (जोहुवानात्) निरन्तर आदर से बुलाने, पुकारने वाले, और आदरपूर्वक राज्य के नाना पदों पर बुलाये गये (नॄन्) नायक पुरुषों को (सं निनेथ) अच्छी प्रकार सन्मार्ग पर चलाता है और जो (तूतुजिः) शत्रुओं का नाशक और प्रजा का पालक होकर (अतूतुजिं) अपनी अहिंसक प्रजा और कर न देने वाले शत्रु का (अशिश्नत्) शासन करता है वह तू (हि) निश्चय से (महे क्षत्राय) बड़े भारी क्षात्र बल, और धन प्राप्त करने और (महे शवसे) बड़े भारी बल, सैन्य बल का सञ्चालन करने के लिये (जज्ञे) समर्थ होता है ।

ए॒भिर्नॄ॑ इन्द्रा॒ह॑भि॒र्द॑शस्य दु॒र्मि॒त्रासो॒ हि क्षि॒तय॒ः पव॑न्ते ।
प्रति॒ यच्चष्टे॒ अनृ॑तमने॒ना अव॑ द्वि॒ता वरु॑णो मा॒यी नः॑ सात् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) सत्य न्याय के देखने हारे राजन् ! (नः) हमारे (दुः-मित्रासः) दुष्ट मित्र और (क्षितयः) हमारे साथ रहने वाले लोग (हि) भी (पवन्ते) तुझे प्राप्त होते हैं । तू (एभिः अहभिः) इन कुछ दिनों में, शीघ्र (दशस्य) न्याय को प्रदान कर । (यः) जो तू (अनृतम्) असत्य को (प्रतिचष्टे) प्रत्याख्यान करता है वह तू (अनेनाः) पाप रहित, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (मायी) बुद्धिमान् होकर (द्विता) सत्य और असत्य इन दोनों के बीच (नः अव सात्) हमारा निर्णय कर ।

वो॒चेमेदिन्द्रं॑ म॒घवा॑नमेनं म॒हो रा॒यो राध॑सो॒ यद्दद॑न्नः ।
यो अर्च॑तो॒ ब्रह्म॑कृति॒मवि॑ष्ठो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ।५।१२।

भा०—(यत्) जो (महः रायः) बड़े २ ऐश्वर्य (नः ददत्) हमें प्रदान करता है (एनं मघवानम्) उस ऐश्वर्यों के स्वामी को हम (इन्द्रम्

इत् वोचेम) ऐश्वर्यवान्, 'इन्द्र' ही नाम से पुकारें। और (यः) जो (अर्चतः) अपने सत्कार करने वालों को (ब्रह्म-कृतिम्) धनैश्वर्य के उत्पन्न करने के प्रयत्न वा साधन देता वही (अविष्ठः) सबसे उत्तम रक्षक है। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से पालन करो। इति द्वादशो वर्गः॥

[२६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ स्वराट्पंक्तिः। ३ पंक्तिः। २ विराट्त्रिष्टुप्। ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

अयं सोम॑ इन्द्र॒ तुभ्यं॑ सुन्व॒ आ तु प्रया॑हि हरिव॒स्तदो॑काः।
पिबा॒ त्व१॒॑स्य सुषु॑तस्य॒ चारो॒र्ददो॑ म॒घानि॑ मघवन्निया॒नः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (सुन्वे) उत्पन्न किया जाता है। हे (हरिवः) उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (तदोकाः) तू उस श्रेष्ठ गृह में निवास करता हुआ (तु) भी (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (प्र याहि) प्रयाण कर। (अस्य) इस (सु-सुतस्य) उत्तम रीति से उत्पन्न राष्ट्र के ऐश्वर्य तथा प्रजाजन को (तु) भी (पिब) उपभोग और पालन कर। हे (मघ-वन्) ऐश्वर्यवन् ! प्राप्त होता हुआ तू हमें (मघानि) उत्तम ऐश्वर्य (ददः) प्रदान कर।

ब्रह्म॑न्वीर॒ ब्रह्म॑कृतिं जुषा॒णो॑ऽर्वाची॒नो हरि॑भिर्याहि॒ तूय॑म्।
अ॒स्मिन्नु॒ षु सव॑ने मादय॒स्वोप॒ ब्रह्मा॑णि शृणव इ॒मा नः॑॥ २॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन् ! चारों वेदों के जानने हारे ! हे (वीर) विविध विद्याओं का उपदेश करने हारे ! हे महान् राष्ट्र के पालक ! हे शूरवीर राजन् ! तू (ब्रह्मकृतिं) परमेश्वर के बनाये जगत् को, हे वीर ! तू बड़े राष्ट्र के कार्य को (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (हरिभिः)

उत्तम पुरुषों सहित (अर्वाचीनः) अब भी (तूयम् याहि) शीघ्र प्राप्त हो। (अस्मिन् सवने) इस ऐश्वर्यमय यज्ञ, वा राष्ट्र शासन के कार्य में (नु सु मादयस्व) शीघ्र ही तू स्वयं प्रसन्न होकर अन्यों को भी सुखी कर। और (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) उत्तम वेद-वचनों को (उप श्रृणवः) श्रवण कर।

का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन्दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा॥ ३॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम और दातव्य ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामिन्! (ते) तेरी (सूक्तैः) उत्तम वचनों और वेदविद्या के प्रवचनों से (का अरंकृतिः अस्ति) क्या ही, कैसी उत्तम शोभा है। वे उत्तम वचन और विद्या के गुप्त रहस्य तुझे आभूषण के समान सुशोभित करते हैं। हे ऐश्वर्यवन्! हम शिष्यगण (ते) तेरे लिये (नूनं) सत्य कहो, आज्ञा करो (कदा दाशेम) कब २ उपहार गुरु दक्षिणादि प्रदान करें (त्वाया) तुझ से ही हमारी (विश्वाः मतीः) सब बुद्धियां (आ ततने) विस्तृत ज्ञान वाली होती हैं। (अध) और हे (इन्द्र) अखिल ज्ञानप्रद! (मे इमा हवा) मेरे ये ग्राह्य पदार्थ और प्रार्थना के वचन (श्रृणवः) श्रवण करो और (हवा) ग्राह्य ज्ञानोपदेश (मे श्रृणवः) मुझे श्रवण कराओ।

उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम्।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्या के ऐश्वर्य का दान करने हारे! (उतो घ) और (येषाम्) जिन (पूर्वेषां ऋषीणाम्) पूर्व के विद्यमान सत्य ज्ञान के द्रष्टा गुरुजनों के ज्ञान को तू (अश्रृणोः) श्रवण करता रह। (ते इत्) वे भी निश्चय से (पुरुष्याः आसन्) पुरुषों में उत्तम, मनुष्यों के हितकारी ही थे। हे (मघवन्) श्रेष्ठ धनवन्! (अध) और (अहं) मैं (त्वा) तुझे (जोहवीमि) अपना गुरु स्वीकार करता हूं, (त्वं) तू

(प्रमतिः) उत्तम ज्ञान और बुद्धि वाला होकर (नः पिता इव असि) हमारे पालक पिता के समान है।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्दन्नः। यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥१३॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८। मं० ५ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ निचृत्पंक्तिः। ४, ५ स्वराट् पंक्तिः ॥

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य। महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ १ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन्! राजन्! हे प्रभो! तू (शवसा) बल और ज्ञान सहित या उसके द्वारा (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो। हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अस्य) इस (रायः) धनैश्वर्य का (वृधः भव) बढ़ाने हारा हो। वा, (अस्य वृधः रायः भव) इस बढ़ाने और बढ़ने वाले ऐश्वर्य का स्वामी हो। हे (सु-वज्र) उत्तम वीर्यवन्! हे (शूर) शत्रुनाशन! हे (नृपते) मनुष्यों के पालक! जीवों के पालक! तू (महे नृम्णाय) बड़े भारी धनैश्वर्य और (महि क्षत्राय) बड़े भारी शत्रुनाशक राष्ट्र और (पौंस्याय) पौरुष, बल के प्राप्त करने के लिये उद्यत हो।

हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ। त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! (शूरः) शूरवीर पुरुष (वि वाचि) विविध वाणियों के प्रयोग करने के अवसर अर्थात् संग्राम में और स्तुतिकाल में (हव्यं) पुकारने और स्तुति करने योग्य (त्वा उ) तुझको ही (हवन्ते)

पुकारते और स्तुति करते हैं। (तनूषु) शरीरों में (सूर्यस्य सातौ) सूर्य नाम दक्षिण नासागत प्राण के प्राप्त होने पर आवेश में अथवा (तनूषु) अंगों में सूर्य के समान तेज के प्राप्त करने के निमित्त भी (त्वा उ हवन्ते) तेरी ही स्तुति करते हैं।। (त्वं विश्वेषु जनेषु) तू सब मनुष्यों में (सेन्यः) सेना नायक होने योग्य है। और (त्वं) तू (वृत्राणि) बढ़ते शत्रु सैन्यों को (सु हन्तु) अच्छी प्रकार दण्डित कर और (रन्धय) वश कर अथवा (सुहन्तु रन्धय) उत्तम हनन साधनों से शत्रुओं का नाश कर।

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (सुदिना) शुभ दिनों को (वि उच्छान्) खूब प्रकाशित कर (दधे) धारण करता है (केतुम् दधे) ज्ञान प्रकाशक को भी धारण करता है, वह (सुभगाय देवान् हुवानः होता न) सुख, कल्याण के लिये किरणों को देता हुआ यज्ञ में देवताओं को हवि देता या आह्वान करते हुए होता या अग्नि के समान प्रतीत होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! तू भी (सुदिना अहा) शुभ दिनों को प्राप्त कर (व्युच्छान् देवान् दधः) खूब तेजस्वी उज्ज्वल वीर पुरुषों और शुभ गुणों को धारण कर और (समत्सु) संग्राम के अवसरों में (उपमं) आदर्श रूप (केतुम्) ध्वजा वा ज्ञापक चिह्न को (दधः) धारण कर। तू (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी और (असुरः न) प्राणवत् सर्वत्र सबको जीवन देने वाला वा वायुवत् शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होकर (होता) सबको वृत्ति देने वाला होकर (देवान्) विजयेच्छुक, वीर पुरुषों को (सु-भगाय) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (हुवानः) बुलाता, उनको स्वीकार करता तथा युद्धाग्नि में होता के तुल्य मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ (नि सीदत्) विराजे। (२) विद्वान् (उपमं केतुम् दधत्) सर्वोपमायोग्य ज्ञान धारण करे। (देवान् हुवानः) ज्ञानेच्छुकों को ज्ञान

प्रदान करता हुआ (अग्निः असुरः न निसीदत्) अग्निवत् सुप्रकाशक और वायुवत् सर्वप्रिय होकर विराजे ।

वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! हे (देव) दानशील ! (मघानि) नाना ऐश्वर्य (ददतः) देते हुए (ते) तेरी (ये च स्तवन्त) जो लोग स्तुति करते हैं (ते) वे और (वयम्) हम (स्वाभुवः) उत्तम रीति से समृद्ध और सामर्थ्यवान् होकर (जरणाम्) उत्तम स्तुति और दीर्घ आयु को (अश्नवन्त) प्राप्त हों । तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (उपमं वरूथं) उत्तम गृह और कष्टवारक सैन्य (यच्छ) प्रदान कर।

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
योऽर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५।१४॥

भा०—व्याख्या देखो सू० २८ । मं० ५ ॥ इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[३१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराड्गायत्री । २, ८ गायत्री । ६, ७, ९ निचृद्गायत्री । ३, ४, ५ आर्च्युष्णिक् । १०, ११ भुरिगनुष्टुप् । १२ अनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र लोगो ! आप लोग (सोमपाव्ने) सोम पान करने वाले यजमान, 'सोम' अर्थात् वीर्य का पालन वा रक्षण करने वाले ब्रह्मचारी, 'सोम' अर्थात् शिष्य और पुत्र के पालन करने वाले गृहपति और आचार्य, तथा 'सोम' ऐश्वर्य और अन्न के पालक, राजन्य और वैश्य तथा 'सोम' ब्रह्मज्ञान के पान करने वाले मुमुक्षु और सोम अर्थात्

उत्पन्न जगत् के पालक परमेश्वर (हर्यश्वाय) मनुष्यों में श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, वेगवान् अश्वों के स्वामी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, अन्नदाता, भूमिपालक, आत्मा आदि के लिये (मादनं) अतिहर्षजनक सुखदायी (प्र गायत) वचन का उपदेश करो वा उसके गुणों का वर्णन किया करो ।

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥ २ ॥

भा०—(सु-दानवे) उत्तम दान देने हारे (सत्य राधसे) सत्य ज्ञान और न्याय के धनी पुरुष की प्रशंसा के लिये मैं (उक्थं) उत्तम वचन (शंसे) अवश्य कहूँ । (यथा) जिस प्रकार (नरः) लोग उसके लिये (द्युक्षं) उत्तम अन्न आदि का सत्कार करते हैं वैसे ही हम लोग उसका (द्युक्षं चकृम) सत्कार किया करें ।

त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो ।
त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे लिये (वाज-युः) अन्न, ज्ञान, बल वेग आदि की कामना करने वाला, (गव्युः) भूमि, इन्द्रिय सामर्थ्य, वाणी आदि चाहने वाला हो । हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धि के स्वामिन् ! हे (वसो) सब में बसने और बसाने हारे ! (त्वं) तू (हिरण्ययुः) ऐश्वर्य एवं हित, रमणीय कार्य को चाहने वाला हो । अथवा हे राजन् ! विद्वन् ! तू हमारा बल, ऐश्वर्य, भूमि, वाणी, सुवर्णादि का स्वामी है ।

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्व१स्य नो वसो ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे जितेन्द्रिय ! हे (वृषन्) बलवन् ! सुखों के देने वाले ! हे (वसो) बसने और बसाने वाले ! (वयम्)

हम लोग (त्वायवः) तेरी कामना करते हुए, तुझे चाहते हुए (अभि प्र नोनुमः) खूब स्तुति और आदर विनय करते हैं (अस्य तु नः विद्धि) तू हमारी इस अभिलाषा को जान ।

मा नो॑ नि॒दे च॒ वक्त॑वे॒ऽर्यो र॑न्धी॒ररा॑व्णे ।
त्वे अपि॒ क्रतु॒र्मम॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) स्वामी होकर (नः) हमें (निदे) निन्दक (वक्तवे) गर्हित, (अराव्णे) अदानशील, अराति, शत्रु के हित के लिये (मा रन्धीः) मत दण्डित कर, उसके अधीन भी मत कर, और (मम त्वे अपि क्रतुः) मेरी जो तेरे में सद् बुद्धि है उसे भी तू नष्ट मत होने दे ।

त्वं वर्मा॑सि स॒प्रथः॑ पुरो॒यो॒धश्च॑ वृत्रहन् ।
त्वया॒ प्रति॑ ब्रुवे यु॒जा ॥ ६ ॥ १५ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! (त्वं) तू (सप्रथः) उत्तम ख्याति से युक्त (वर्म असि) कवच के समान रक्षक, और (पुरः योधः च) आगे बढ़कर युद्ध करने हारा भी है । (त्वया युजा) तुझ सहायक से मैं (प्रति ब्रुवे) शत्रु का उत्तर दूं ।

म॒हाँ उ॒तासि॒ यस्य॒ तेऽनु॑ स्व॒धाव॑री॒ सहः॑ ।
म॒म्नाते॑ इन्द्र॒ रोद॑सी ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुदलविदारक ! जिस प्रकार सूर्य के अधीन (स्वधावरी रोदसी अनु मम्नाते) जल और अन्न से युक्त आकाश और पृथिवी दोनों परस्पर स्थिर हैं उसी प्रकार (यस्य ते सहः) जिस तेरे बल के (अनु) अनुकूल रहकर (स्वधावरी रोदसी) अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त स्त्री पुरुष, वा राजा प्रजा वा राष्ट्र और सेनावर्ग दोनों ही (मम्नाते) परस्पर मिलकर रहते हैं वह तू (महान् असि) गुणों और बलों में महान् हो ।

तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी ।
नक्षमाणा सह द्युभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (मरुत्वती) बलवान् मनुष्यों वाली, (स-यावरी) तेरे साथ प्रयाण करने वाली (द्युभिः सह) तेजों, और धनों के साथ बढ़ती हुई, (वाणी) शत्रुहिंसक वाक् आदि शस्त्रों से सम्पन्न सेना (तं त्वा परि भुवत्) उस तुझको सदा घेरे रहे, वह सदा तेरी आज्ञाकारिणी हो। और तुझको (मरुत्वती वाणी) मनुष्यों की स्तुति उत्तम गुणों सहित वाणी प्राप्त हो। और विद्वान् को (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजों, उत्तम गुणों और काम्य फलों से युक्त (स-यावरी) सदा साथ विद्यमान (मरुत्वती) उत्तम विद्वानों से प्राप्त (वाणी) वाणी, वेदविद्या, (परि भुवत्) सुशोभित करे।

ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि ।
सं ते नमन्त कृष्टयः ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (ऊर्ध्वासः) जो उत्तम कोटि के (इन्दवः) समस्त ऐश्वर्य, एवं ऐश्वर्ययुक्त, आनन्दित जन हैं वे (द्यवि) इस पृथिवी पर (त्वा दस्मम्) शत्रुनाशक तुझ को ही (उप-भुवन्) प्राप्त हों और (त्वा अनु भुवन्) तेरे अनुकूल हों। (कृष्टयः) सब प्रजाजन (ते सं नमन्त) तेरे लिये विनय से झुकें।

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ १० ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (वः) अपने में से (महि वृधे) बड़ों के बढ़ाने वाले, बड़ों का आदर सत्कार करने वाले, (महे) स्वयं गुणों में महान् के आदरार्थ (प्र भरध्वम्) उत्तम २ पदार्थ प्रस्तुत करो। और (प्र-चेतसे) उत्तम चित्त वाले शिष्य और उत्तम ज्ञान वाले विद्वान् के लिये (सुमतिं) शुभ मति और उत्तम ज्ञान (प्र कृणुध्वम्) अच्छी प्रकार

सम्पादन करो। उसको ज्ञान प्राप्त करने के उत्तम से उत्तम साधन प्रदान करो। हे राजन्! विद्वन्! (त्वं) तू (चर्षणि-प्राः) मनुष्यों का धन और विद्या, बल से पूर्ण करने वाला होकर (पूर्वीः विशः) पिता पितामहादि से प्राप्त प्रजाओं को (प्र चर) प्राप्त कर। उसमें अपना अधिकार फैला और हे विद्वन्! तू उनमें परिव्राजक होकर ज्ञान प्रसार कर।

उ॒रु॒व्यच॑से म॒हिने॑ सुवृ॒क्तिमिन्द्रा॑य॒ ब्रह्म॑ जनयन्त॒ विप्राः॑।
तस्य॑ व्र॒तानि॒ न मि॑नन्ति॒ धीराः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(उरु व्यचसे) बड़े विश्व में व्यापक (महिने) महान् (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (सुवृक्तिम्) उत्तम स्तुति और (ब्रह्म जनयन्त) वेदमन्त्र प्रकट करते हैं। (धीराः) वे उसी के ध्यान में मग्न होकर (तस्य व्रतानि) उसके निमित्त करने योग्य धर्म कार्यों का (न मिनन्ति) कभी नाश नहीं करते। इसी प्रकार बड़े राष्ट्र में व्यापक सामर्थ्य वाले महान् राजा के लिये विद्वान् लोग (सु-वृक्तिम्) उत्तम शत्रुवर्जक और पापनिवारक साधन और (ब्रह्म) ऐश्वर्य को उत्पन्न करें उसके बनाये (व्रतानि) कर्त्तव्य नियमों का नाश न करें।

इन्द्रं॒ वाणी॒रनु॑त्तमन्युमे॒व स॒त्रा राजा॑नं दधिरे॒ सह॑ध्यै।
हर्य॑श्वाय बर्हया॒ समा॒पीन् ॥ १२ ॥ १६ ॥

भा०—(वाणीः) वाणवत् शत्रुनाशक सेनाएं (अनुत्त-मन्युम्) मन्यु, शत्रु को उच्छिन्न करने के प्रबल संकल्प से युक्त (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (राजानं) तेजस्वी राजा को (सत्रा) अपने साथ (सहध्यै) शत्रु को पराजय करने के लिये (दधिरे) धारण करें। हे प्रजाजन! (हर्यश्वाय) मनुष्यों में, अश्व के समान बलवान्, वेगवान्, श्रेष्ठ पुरुष की वृद्धि के लिये (आपीन्) अपने आप्त बन्धु जनों को भी (सं बर्हय) अच्छी प्रकार बढ़ा, उनको उत्साहित कर। (२) (वाणीः) उत्तम स्तुतियां, वा याचना

प्रार्थना करने वाली प्रजाएं भी, (अनुत्त-मन्युम्) क्रोध रहित, प्रसन्न राजा वा प्रभु को, अन्तः और बाह्य शत्रु के विजय के लिये धारण करें। उसके ही प्राप्त जनों को बढ़ावें। इति षोडशो वर्गः ॥

[३२]

वसिष्ठः। २६ वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, २४ विराड् बृहती। ६, ८, १२, १६, १८, २६ निचृद्बृहती। ११, २७ बृहती। १७, २५ भुरिग्बृहती २१ स्वराड्बृहती। २, ६ पंक्तिः। ५, १३, १५, १६, २३ निचृत्पंक्तिः। ३ साम्नी पंक्तिः। ७ विराट् पंक्तिः। १०, १४ भुरिगनुष्टुप्। २०, २२ स्वराडनुष्टुप् ॥ सप्तविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

मो षु त्वा वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन्।
आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥ १ ॥

भा०—हे राजन्! (वाघतः) विद्वान् लोग भी (अस्मत् आरे) हम से दूर (त्वा मो सु निरीरमन्) तुझे आनन्द विनोद में न रमने दें। (आरात्तात् चित्) दूर रहता हुआ भी तू (नः सधमादं आ गहि) हमारे साथ आनन्द हर्ष करने के निमित्त प्राप्त हो। (इह वा) और इस राष्ट्र वा जगत् में (सन्) रहकर (नः उप श्रुधि) हमारे वचन श्रवण कर।

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥ २ ॥

भा०—हे राजन्! हे विद्वन्! हे प्रभो! परमेश्वर! (इमे ब्रह्म-कृतः) ये अन्न, धन और वेद द्वारा स्तुति करने वाले लोग (मधौ मक्षः न) मधु, वा मधुर पदार्थ पर मधुमक्खी के समान (ते सुते) तेरे ऐश्वर्य या शासन में (आसते) प्रेम पूर्वक विराजते हैं। और (जरितारः) उपदेष्टा, स्तुतिशील (वसूयवः) धन प्राण और नाना लोकों की कामना वाले लोग (रथे न पादम्) रथ में पैर के समान (इन्द्रे कामम् आदधुः) ऐश्वर्यप्रद, परमैश्वर्ययुक्त तुझ प्रभु में ही अपनी समस्त कामना वा अभिलाषा को स्थिर करते हैं।

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (रायस्कामः) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ, (पितरं पुत्रः न) पिता को पुत्र के समान (सु-दक्षिणं) उत्तम दानशील, उत्तम क्रिया-सामर्थ्यवान्, (वज्रहस्तं) बलवीर्य सम्पन्न, बल से शत्रु को मारने वाले राजा को अपना (पितरं) पालक (हुवे) स्वीकार करता हूं।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥ रघु० ॥

इमे इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥ ४ ॥

भा०—(इमे) ये (दध्याशिरः) राष्ट्र को धारण करने और उसका उपभोग करने वाले (सोमासः) ऐश्वर्य युक्त तेरे शासक जन (सुन्विरे) प्रजाओं का शासन करें। हे (वज्रहस्त) बलवीर्य को हाथों में धारण करने हारे राजन्! (पीतये) राष्ट्र को पालन करने के लिये (तान् आ याहि) उनको प्राप्त कर और (हरिभ्याम्) उत्तम अश्वों से तू (ओकः आयाहि) अपने गृह, भवन को आ। इसी प्रकार ध्यान धारणा वाले जन प्रभु की आराधना करते हैं। वह उनके आनन्द देने और रक्षा करने के लिये प्राप्त हैं।

श्रवच्छुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥५॥१७॥

भा०—(वसूनां) बसे हुए प्रजाजनों की (गिरः) वाणियों को जो राजा (श्रुत्कर्णः) श्रवण करने वाले सावधान कानों से (श्रवत्) सुने, वही (ईयते) आदरपूर्वक प्रार्थना किया जाता है। वह (नः गिरः चित् नु) हमारी वाणियों को (मर्धिषत्) चाहे। (सद्यः चित्) अति शीघ्र (यः) जो (शता सहस्राणि) सैकड़ों और सहस्रों को (ददत्)

प्रदान करे। (दित्सन्तम्) दान देना चाहने वाले को (न किः आ मिनत्) कोई भी पीड़ित या दुखी न करे।

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! और धनों के प्राप्त करने हारे राजन् ! (यः) जो (ते) तेरे (गभीरा) गम्भीर (सवना) शासनों, आदेशों को (सुनोति) करता और (आ-धावति च) आगे वेग से बढ़ता है (सः) वह (वीरः) विविध विद्या और बल से युक्त पुरुष (इन्द्रेण) ऐश्वर्य और (नृभिः) उत्तम नायकों सहित (अप्रतिष्कुतः) सबसे बढ़कर (शुशुवे) होजाता है।

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जो तू (शर्धतः) बलवान् शत्रुओं को (सम् अ-जासि) एक साथ उखाड़ने में समर्थ हो, और (शर्धतः सम् अजासि) बलवान् उत्साहवान् पुरुषों को सम्यक् मार्ग में एक साथ ही सेनावत् सञ्चालित करता है, वह तू (मघोनां) उत्तम धन धान्य वाले, पुरुषों के (वरूथं) गृह के समान शरण योग्य, रक्षक (भव) हो। हम (त्वाहतस्य) तेरे से मारे गये (शर्धतः) बलवान् शत्रु के (वेदनं) धन सम्पद् को (वि भजेमहि) विविध प्रकार से बांट लें और सेवन करें, (दुः-नशः) तू कठिनता से नाश होने योग्य, सुदृढ़ होकर हमारे (गयम् आ भर) गृह को प्राप्त करा और (नः गृहम् आ भर) हमारे गृह को पूर्ण कर।

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सोमपाव्ने) 'सोम' ओषधिरस का पान करने वाले के लिये (सोमम् सुनोत) उत्तम ओषधिरस उत्पन्न करो । इसी प्रकार (सोमपाव्ने) ऐश्वर्य को पालन करने में समर्थ (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणे) बलवान् पुरुष के लिये (सोमं) ऐश्वर्य (सुनोत) उत्पन्न करो और उक्त वीर्यवान् 'इन्द्र' पद के लिये वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक करो । (अवसे) तृप्ति के लिये (पक्तीः) नाना पकने योग्य अन्नों को (पचत इत्) पकाओ। (पृषन् इत्) सबको पालन और पूर्ण करने वाला ही (मयः पृणते) सबको सुख प्रदान करता है ।

मा स्रे॑धत सोमिनो॒ दक्ष॑ता म॒हे कृ॑णु॒ध्वं रा॒य आ॒तुजे॑ ।
त॒रणि॒रिज्ज॑यति॒ क्षेति॒ पुष्य॑ति॒ न दे॒वासः॑ कव॒त्नवे॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोमिनः) 'सोम' धनैश्वर्य, वीर्य अन्नादि के पालक जनो ! आप लोग (मा स्रेधत) विनाश और परस्पर का नाश मत करो । (महे राये) बड़े भारी धनैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये और (आ-तुजे) सब प्रकार के बल प्राप्त करने कराने वाले के लिये सर्वतः पालक ऐश्वर्य के लिये (दक्षत) सदा यत्न करते रहो । (तरणिः इत्) सब संकटों को पार करने वाला और शीघ्रकारी पुरुषार्थी पुरुष ही (जयति) विजय प्राप्त करता है और (पुष्यति) पुष्ट, समृद्ध हो जाता है। (देवासः) विद्वान् पुरुष और उत्तम गुण भी (कवत्नवे) कुत्सित आचार वाले पुरुष के हित के लिये (न) नहीं होते ।

नकिः॑ सु॒दासो॒ रथं॒ पर्या॑स॒ न री॑रमत् ।
इन्द्रो॒ यस्या॑वि॒ता यस्य॑ म॒रुतो॒ गम॒त्स गोम॑ति व्र॒जे ॥१०॥१८॥

भा०—(यस्य) जिसका (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् , शत्रुहन्ता, तत्वदर्शी वीर, विद्वान् और प्रभु (अविता) रक्षक है यस्य (मरुतः) जिसके रक्षक और शिक्षक प्राणवत् प्रिय और वायुवद् बलवान् विद्वान् जन हैं (सः) वह विद्वान् पुरुष (गोमति व्रजे) वाणियों से युक्त प्राप्तव्य ज्ञान

मार्ग में (गमत्) जाता और (स गोमति व्रजे) वह नाना भूमियों और गवादि पशुओं से सम्पन्न प्राप्तव्य पद को (गमत्) प्राप्त करता है। (सु-दासः) उत्तम दान देने वाले के (रथं) रथ को (नकिः परि आस) कोई पलट नहीं सकता और (न रीरमत्) वह अन्यों को सुख नहीं दे सकता, न स्वयं सुख पाता है।

गमद्वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! (यस्य भुवः) जिसकी भूमि की (त्वम् अविता) तू रक्षा करता (वाजयन्) ऐश्वर्य अन्न आदि की कामना करता रहता है वह (मर्त्यः) मनुष्य (वाजं गमत्) ऐश्वर्य अन्नादि (गमत्) प्राप्त करता है इसी प्रकार हे (इन्द्र) परमेश्वर! (यस्य भुवः) जिस उत्पन्न हुए के प्राणों का तू रक्षक है वह (वाजयन् मर्त्यः) मनुष्य बल, अन्न और ज्ञान की कामना करता हुआ अवश्य (वाजं गमत्) बल, अन्न और ज्ञान प्राप्त करता है। हे (शूर) शत्रुनाशक! वीर स्वामिन्! तू (अस्माकम्) हमारा और हमारे (नृणाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों का और हे प्रभो! (अस्माकं नृणाम् रथानाम्) हमारी इन्द्रियों और रमण योग्य देहों का भी (अविता) रक्षक होकर (अस्माकं बोधि) हमें ज्ञान दे और हमारा विचार रख।

उदिन्न्वस्य रिच्यतेऽशो धनं न जिग्युषः।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥१२॥

भा०—(यः) जो पुरुष (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, सूर्य के समान तेजस्वी (हरिवान्) मनुष्यों का स्वामी और अश्व सैन्यों का स्वामी होकर (सोमिनि) बल, वीर्य, और ऐश्वर्यवान् पुरुष में (दक्षं दधाति) अपना ज्ञान और कर्म बल धारण करा सकता है। (जिग्युषः न)

विजेता के समान (अस्य इत् नु) उसका (अंशः धनं न) भाग वा धन (उद्रिच्यते) सबसे अधिक होता है।

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत्॥ १३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यज्ञियेषु) पूजा सत्कार करने योग्य जनों और (यज्ञियेषु) यज्ञ, दान, सत्संग प्रजापालन आदि व्यवहारों में (अखर्वं) बहुत अधिक (सु-धितम्) उत्तम रीति से रक्षित, विहित, हितकारी, (सुपेशसं) उत्तम रूप से युक्त, भव्य, (मन्त्रं) मन्त्र को (आ दधात) सब ओर से धारण करो। (पूर्वीः चन) पूर्व के भी (प्र-सितयः) उत्तम प्रेमबन्धन (तं तरन्ति) उसको प्राप्त होते हैं (यः) जो पुरुष (कर्मणा) अपने सत्कर्म से (इन्द्रे भुवत्) परम ऐश्वर्यवान् राजा या प्रभु परमेश्वर में दत्तचित्त रहता है।

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति॥ १४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! (त्वा वसुम्) तुझ से ऐश्वर्य पाने वाले और (त्वा वसुम्) तुझ में ही बसने वा रमने और तेरे अधीन रहने वाले (तं) उस पुरुष को (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (आ दधर्षति) तिरस्कार कर सकता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे (पार्ये दिवि) पालन योग्य व्यवहार और संसार से पार उतारने और संकटों से बचाने वाले ज्ञान-प्रकाश में (श्रद्धा इत्) सत्य धारण ही है जिससे प्रेरित होकर (वाजी) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुष (वाजं सिषासति) अन्न, ज्ञान व ऐश्वर्य का भोग करता है।

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता॥ १५॥ १९॥

भा०—(ये) जो लोग (प्रिया वसु) प्रिय धन (ददति) प्रदान

करते हैं उन (मघोनः) ऐश्वर्यवान् पुरुषों को ही (वृत्र-हत्येषु) शत्रुओं का नाश करने के संग्राम आदि कार्यों वा धनों को प्राप्त करने के उद्योगों में (चोदय स्म) नित्य प्रेरित किया कर। हे (हरि-अश्व) हे उत्तम बलवान् मनुष्यों के स्वामिन् (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति और न्याय-पूर्वक शासन में (सूरिभिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से (विश्वा दुरिता) सब प्रकार के दुःखजनक कारणों और दुष्टाचारों को (तरेम) पार कर जावें।

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम्।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! प्रभो! (अवमं वसु) निकृष्ट, तुच्छ धन वा प्रजा का पालक धन, गौ, अन्न, भूमि, वस्त्रादि और (मध्यमं वसु) मध्यम कोटि का धन, चान्दी, सोना आदि सिक्के के पदार्थ अन्य पदार्थों के विनिमय का माध्यम बन सके जिससे (तां पुष्यसि) उस प्रजा को पुष्ट करता है वह सब (तव इत्) तेरा ही है और (परमस्य) सर्वोत्कृष्ट (विश्वस्य) समस्त ऐश्वर्य के द्वारा (सत्रा) तू अपने सत्य और न्याय के बल से (राजसि) राजा के समान है। (गोषु) सब भूमियों पर शासन करने के लिये (त्वा) तुझे (नकिः वृण्वते) भला कौन स्वीकार नहीं करे, सभी तुझे सर्वेश्वर स्वीकार करते हैं। अथवा-(नकिः त्वा वृण्वते) तुझे भूमियों पर कोई नहीं रोक सकता।

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ १७ ॥

भा०—(ये) जो (ईम्) सब ओर (आजयः भवन्ति) संग्राम होते हैं उनमें सर्वत्र (त्वं) तू ही (विश्वस्य धनदाः श्रुतः असि) सबका धन देने हारा प्रसिद्ध है। हे (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित! (अयं) यह (विश्वः) समस्त (पार्थिवः) पृथिवी में रहने वाला राजवर्ग और

प्रजावर्ग (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ (तव नाम) तेरे ही दुष्टों को नमाने वाले शासन और तेरे ही अधीन आजीविका, वृत्ति (भिक्षते) चाहता है।

यदि॑न्द्र याव॑त॒स्त्वमे॒ताव॑द॒हमीशी॑य ।
स्तो॒तार॒मिद्दि॑धिषेय रदावसो॒ न पा॑प॒त्वाय॑ रासीय ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जिस प्रकार और (यावतः) जितने भी धनैश्वर्य का (त्वम्) तू स्वामी है (एतावन्) उतना ही (अहम्) मैं भी (ईशीय) ऐश्वर्य का स्वामी हो जाऊं। हे (रदावसो) शत्रु कर्षण करने वाले बसी प्रजाजनों के स्वामिन् ! वा धनों के देने वाले ! मैं उस धन से (स्तोतारम् इत्) स्तुति करने वाले को ही (दिधिषेय) पालन करूं। मैं अपना धन (पापत्वाय) पाप कर्म की वृद्धि के लिये (न रासीय) कभी न दूं।

शिक्षे॑यमिन्म॑हय॒ते दि॒वेदि॑वे रा॒य आ कु॑हचि॒द्विदे॑ ।
न॒हि त्वद॒न्यन्म॑घवन्न॒ आप्यं॒ वस्यो॒ अस्ति॒ पि॒ता च॒न ॥ १९ ॥

भा०—मैं ऐश्वर्यवान् होकर (दिवे दिवे) प्रति दिन (कुह चिद्विदे) कहीं भी विद्यमान वा कुछ भी प्राप्त करने योग्य (महयते) बड़े, पूज्य पुरुष के आदरार्थ (रायः) नाना धन (शिक्षेयम् इत्) दिया ही करूं। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वत् अन्यत्) तुझसे दूसरा (नः) हमारा (वसीयः) श्रेष्ठ (आप्यं) बन्धु और (पिता चन) पालक भी (नहि अस्ति) नहीं है।

त॒रणि॒रित्सि॑षासति॒ वाजं॒ पुर॑न्ध्या यु॒जा ।
आ व॒ इन्द्रं॑ पुरुहू॒तं न॑मे गि॒रा ने॒मिं तष्टे॑व सु॒द्र्व॑म् ॥२०॥२०॥

भा०—(तरणिः इत्) संकट से तारने वाला, वा शीघ्रता से कार्य करने में कुशल पुरुष ही (युजा पुरन्ध्या) नगर को धारण करने वाली नीति वा नगररक्षक (युजा) सहायक वर्ग से (वाजं सिशासति)

अपने ऐश्वर्य और बल को न्यायपूर्वक विभक्त करता है। हे प्रजाजनो! मैं (वः) आप लोगों में से (इन्द्रं) ऐश्वर्य युक्त (पुरुहूतं) बहुतों में प्रशंसित (सुद्रवं) उत्तम, स्थिर पुरुष को (गिरा) वाणी से (तष्टा इव सुद्रवं नेमिम्) शिल्पी से बनाई काष्ठमय चक्र की धार के तुल्य (नमे) नमाऊं। उसको विनयशील करूं।

न दुःष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥ २१ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (दुःस्तुती) दुष्ट पुरुष की स्तुति, सेवा, बुरी स्तुति अर्थात् निन्दा से (वसु न विन्दते) धन को प्राप्त नहीं करता। (स्रेधन्तं) हिंसक पुरुष को (रयिः) ऐश्वर्य (न नशत्) कभी नहीं मिलता। और उसको (सुशक्तिः इत् न नशत्) उत्तम प्रशंसनीय शक्ति, सामर्थ्य भी प्राप्त नहीं होता। हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! (यत्) जो (पार्ये दिवि) पालने और पूर्ण करने योग्य कामनायोग्य व्यवहार में (मावते) मेरे जैसे याचक को (देष्णं) देने योग्य धन देने की (सुशक्ति इत् तुभ्यम्) उत्तम शक्ति भी तेरी ही है।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ २२ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक! (अदुग्धाः धेनवः इव) न दुही गौओं के समान हम लोग (अस्य जगतः) इस जंगम और (तस्थुषः) स्थावर चल और अचल संसार के (ईशानम्) स्वामी, सञ्चालक और निर्माता (स्वर्दृशं त्वाम्) सर्वद्रष्टा तुझको वा सुख आनन्द दर्शन के लिये तेरे प्रति (अभि नोनुमः) हम झुकते हैं। तेरी प्रेम से स्तुति करते हैं। अथात् जिस प्रकार न दुही गौएं प्रेम से अपना दुग्ध सर्वस्व देने के लिये गवाले के प्रति नमती हैं उसी प्रकार हम प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण करने

के लिये झुकें। हम प्रजाजन भी दुःखी अकिञ्चन तुझ सर्वस्व के स्वामी के प्रति पुत्र, धन, अन्नादि सुख प्राप्त्यर्थ झुकते और स्तुति करते हैं।

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! अन्न जल, धनादि के देने हारे राजन्! प्रभो! (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामिन्! (त्वावान्) तेरे जैसा, (अन्यः) दूसरा, (न दिव्यः) न ज्ञानवान्, तेजस्वी, शुद्ध (न पार्थिवः) न दूसरा कोई इस पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। ऐसा (न जातः) अभी तक न उत्पन्न हुआ (न जनिष्यते) न पैदा होगा। हम (वाजिनः) ज्ञान, ऐश्वर्य, बल आदि से युक्त, (अश्वायन्तः) उत्तम विद्वानों और अश्व, राष्ट्र, अश्वसैन्य के इच्छुक और (गव्यन्तः) गौ, वाणियों और भूमियों के इच्छुक होकर (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति प्रार्थना करते हैं।

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्ययुक्त! हे (मघवन्) पूजित धन के स्वामिन्! तू (पुरु-वसुः) बहुतों को बसाने वाला, बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी और (सनात्) सनातन से (भरे भरे च हव्यः) प्रत्येक पालन करने योग्य, कार्य, यज्ञ, संग्रामादि में भी पुकारने और स्तुति करने योग्य (असि) है। तू (सतः) सत्स्वरूप, (ज्यायः) महान् और (कनीयसः) अति दीप्तियुक्त, अति सूक्ष्म उस परम तत्व का ज्ञान (आ भर) प्राप्त करा।

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (मघवन्) परम पूजित धन के स्वामिन्! तू (नः अमित्रान्) हमारे शत्रुओं को (परा नुदस्व) दूर कर और (नः) हमें

(वसू) नाना ऐश्वर्य (सुवेदा कृधि) सुख से प्राप्त करने योग्य कर। अथवा हे (सु-वेदाः) उत्तम धनाध्यक्ष ! तू (नः वसू कृधि) हमें उत्तम धन प्रदान कर। (महा-धने) संग्राम के अवसर पर वा भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, तू (अस्माकं) हमारा (अविता) रक्षक हो (बोधि) हमें चेताता रह। और (अस्माकं सखीनाम्) हम मित्रों और हमारे मित्रों का (वृधः भव) बढ़ाने हारा हो। 'सुवेदाः' 'सुवेदा' उभावपि पदपाठौ।

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६॥

भा०—(पिता) पालक, गुरु और आचार्य (पुत्रेभ्यः) पुत्रों और शिष्यों को (यथा) जिस प्रकार (क्रतुं) ज्ञान का उपदेश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें भी (क्रतुम् आ भर) धर्म युक्त उत्तम बुद्धि प्रदान कर। (अस्मिन् यामनि) इस वर्त्तमान समय में, यज्ञ और संसारमार्ग में हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! एवं प्रजाद्वारा स्वीकृत ! तू (नः शिक्ष) हमें ज्ञान दे जिससे (जीवाः) हम सब जीवगण, जीवित रहकर (ज्योतिः अशीमहि) परम प्रकाश-स्वरूप ज्ञानमय तुझको प्राप्त हों।

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि॥ २७ ॥ २१ ॥

भा०—(नः) हमें (अज्ञाताः) अज्ञात (वृजनाः) वर्जन करने योग्य, हिंसक, (दुराध्यः) दुःख से ध्यान करने योग्य, दुःखदायी चिन्ताजनक और (अशिवासः) अकल्याणकारी बुरे लोग (मा अव क्रमुः) मत रौंदें। हे (शूर) दुष्टों के नाशक (वयम्) हम लोग (त्वया) तेरी सहायता से (प्रवतः) अति विनीत होकर (शश्वती अपः) अनादि काल से प्राप्त वा बहुत से कर्मबन्धनों को नदियों के समान (अति तरामसि) पार कर जावें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[३३]

संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः ॥ १—९ वसिष्ठपुत्राः । १०—१४ वसिष्ठ ऋषिः ॥ त एव देवताः ॥ छन्दः—१, २, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ७, ९, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । १० भुरिक् पंक्तिः ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियञ्जिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नॄन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥ १ ॥

भा०—(श्वित्यञ्चः) वृद्धि को प्राप्त, उन्नत (दक्षिणतः-कपर्दाः) दायें भाग में जटा जूट रखने वाले (धियं-जिन्वासः) ज्ञान और उत्तम मति को स्वयं प्राप्त और उत्तम काम करने वाले (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी, विद्वान् वसुगण (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे सदा आनन्दित करें । और वे (अवितवे) रक्षा और ज्ञान प्रदान करने के लिये (दूरात्) दूर देश से भी प्राप्त हों । उन (नॄन्) उत्तम मार्गों में ले जाने वाले उत्तम पुरुषों को मैं (बर्हिषः) वृद्धियुक्त आसन से (उत् तिष्ठन्) उठ कर (परि वोचे) आदर युक्त वचन सत्कार करूं । अथवा उन (बर्हिषः) वृद्धिशील अन्यों को बढ़ाने वाले विद्वानों का सत्कार करूं ।

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् २

भा०—विद्वान् लोग (वैशन्तम्) राष्ट्र में प्रविष्ट प्रजा के हितकारी (उग्रम्) बलवान् (पान्तम्) पालन करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (सुतेन) धर्म से उत्पन्न ऐश्वर्य के बल से (दूरात्) दूर देश से भी (तिरः अनयन्) अपने समीप ले आते हैं उन (वसिष्ठान्) राष्ट्र में बसे उत्तम पुरुषों को (पाश-द्युम्नस्य) धन के पाश में फँसे वैश्यवर्ग और (वायतस्य) विज्ञानवान् पुरुषों और (वायतस्य) तेज और रक्षा से युक्त क्षात्रवर्ग के (सुतात् सोमात्) उत्तम अन्न ऐश्वर्य और ज्ञान से

(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अवृणीत) वरण करे। उनका मान, आदर, सत्कार करे।

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) राष्ट्र में बसे उत्तम प्रजाजनो ! वा अपने बाहुबल से प्रजा को सुखपूर्वक उत्तम रीति से बसाने वाले वीर पुरुषो ! वा आचार्य के अधीन खूब ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर विद्याभ्यास करने हारे जनो ! (वः एभिः) आप लोगों में से ही इन कुछ जनों की सहायता से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सिन्धुं नु कं ततार इत्) बड़े भारी समुद्र को भी पार करे, (एभिः) इन विशेष जनों सहित (भेदं नु कं ततार एव इत्) फूट डालने वाले वा मेघवत् शत्रु को भी पार करे। (वः ब्रह्मणा) आप लोगों के बल, धन और ज्ञान से ही वह (दाशराज्ञे) सुख देने वाले राजा के लिये (एव नु कं) भी (सुदासं) उत्तमदानशील प्रजा की (प्रावत्) रक्षा करे।

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) उत्तम जनो ! आप लोग (वः) अपने (पितॄणाम्) पालक जनों के (अव्ययं) कभी नाश न होने वाले उस (अक्षम्) व्यापक और सत्यदर्शक ज्ञान-ऐश्वर्य (ब्रह्मणा) बल और महान् बल को (न किल रिषाथ) नाश न करे प्रत्युत ऐश्वर्य से (जुष्टी) प्रेमपूर्वक (अदधात) धारण करो (यत्) जिस (शुष्मं) बल को हे (वसिष्ठाः) ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के अधीन रहने वाले और राष्ट्र में बसने वाले जनो ! आप लोग (बृहतः रवेण) बड़े भारी आघोष के साथ (शक्वरीषु) शक्ति युक्त सेनाओं और (इन्द्रे) ऐश्वर्य युक्त राजा में या उनके अधीन रहकर (अदधात) धारण करते रहो।

उद्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम्॥५।२२

भा०—(वृतासः) वरण किये गये (तृष्णजः) तृष्णा अर्थात् उत्तम फल वा धन आदि की कामना से युक्त (नाथितासः) धनादि की याचना करने वाले, लोग (दाशराज्ञे) दानशीलों में तेजस्वी राजा के लिये (द्याम् इव द्याम्) सूर्य के समान तेज या उसकी कामना या भूमि को (उद् अदीधयुः) उत्तम रीति से धारण करें । (स्तुवतः) स्तुति करने वाले (वसिष्ठस्य) बसे उत्तम प्रजाजन की (इन्द्रः) शत्रुहन्ता ऐश्वर्यवान् सूर्यवत् तेजस्वी राजा भी (अश्रोत्) श्रवण करे और वह (तृत्सुभ्यः) शत्रुओं का नाश करने वाले सैनिकों के लिये भी (उरुम् लोकम्) बहुत बड़ा स्थान (अकृणोत्) प्रदान करे ।

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥

भा०—(दण्डा इव परिच्छिन्ना गो-अजनासः) दण्ड जिस प्रकार शाखा से कट कर भी पशु आदि को हांकने के लिये उत्तम होते हैं इसी प्रकार (परि-छिन्नाः) सब प्रकार कटे छटे, सुभूषित, सकुशल, (भरताः) प्रजापालक (अर्भकासः) बालकों के समान निर्द्वेष, निर्मोह, स्वच्छ हृदय वा (अर्भकाः = ऋभवः) सत्य न्याय से प्रकाशित जन, दण्डों के समान ही (दण्डाः) दुष्टों के दमन करने वाले (गो-अजनासः) भूमियों को शासन करने वाले (आसन्) हों । (वसिष्ठः) सबसे उत्तम प्रजा को बसाने वाला राजा, इनका (पुरः-एता) अग्रयायी नायक (अभवत्) हो और (आत् इत्) अनन्तर (तृत्सूनां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों की ही यह (विशः) समस्त प्रजाएं (अप्रथन्त) प्रसिद्ध होती हैं । अथवा—जो (अर्भकासः) बालकवत् वा अल्प बुद्धि बल वाले (भरताः) भरण पोषण योग्य मनुष्य (परिच्छिन्नाः) सब ओर से घिरे हुए, सुरक्षित

(दण्डाः इव) दण्डों के समान (गो-अजनासः) वाणी के अभ्यास में अप्रगल्भ हों (तृत्सूनां) अनादर योग्य अल्पमान वाले जनों का (पुरः एता वसिष्ठः अभवत्) अग्रयायी नायक उत्तम विद्वान् हो तब वे (विशः) उसके अधीन रहकर उसकी प्रजा रूप से प्रसिद्ध होते हैं ।

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

भा०—(त्रयः) तीन (भुवनेषु) उत्पन्न हुए लोकों में उनके निमित्त (रेतः) जल, तेज, वीर्य को (कृण्वन्ति) उत्पन्न करते हैं और (तिस्रः) तीन प्रकार की (अर्याः प्रजाः) श्रेष्ठ प्रजाएं (ज्योतिः-अग्राः) प्रकाश को मुख्य रूप से प्राप्त होने वाली होती हैं (त्रयः) तीनों (घर्मासः) तेजस्वी, वीर्यवान् ही (उषसं) उषा को सूर्यवत् कामना योग्य भूमि वा शक्ति को (सचन्ते) प्राप्त करते हैं (तान् सर्वान् इत्) उन सब को ही (वसिष्ठाः अनु विदुः) विद्वान् ब्रह्मचारी अच्छी प्रकार जानते और प्राप्त करते हैं । लोक में सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों (रेतः) प्रजोत्पादक तेज को उत्पन्न करते और सूर्य वायु और भूमि तीनों प्रजोत्पादक प्रकाश, प्राणाधार जल और अन्न को उत्पन्न करते हैं, तीनों प्रकार की श्रेष्ठ प्रजाएं, जेरज अण्डज और उद्भिज तीनों ही (ज्योतिरग्राः) प्रकाश की ओर बढ़ने वाली होती हैं (त्रयः घर्मासः) तीनों तेजो युक्त सूर्य, अग्नि, विद्युत् वा (घर्मासः) रोचक सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष (उषसं) दाहक तापशक्ति और उषाकाल, और कान्ति तथा कामना योग्य स्त्री को प्राप्त करते हैं । उन सब पदों को (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी जन ही (अनु विदुः) प्राप्त करते हैं ।

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वसिष्ठाः) विद्वान्, ब्रह्मचारी लोगो ! हे राष्ट्र में बसे

जनों में श्रेष्ठ जनो ! (एषां) इन (वः) आप लोगों का (वक्षथः) रोष, तेज और वचनोपदेश, (सूर्यस्य ज्योतिः इव) सूर्य के तेज के समान असह्य और यथार्थ तत्व का प्रकाशक हो। (महिमा) महान् सामर्थ्य (समुद्रस्य इव गभीरः) समुद्र के समान गंभीर हो। (प्र-जवः) उत्तम वेग भी (वातस्य इव) वायु के समान अदम्य हो और (वः) आप लोगों का (स्तोमः) बलवीर्य, अधिकार तथा उत्तम स्तुत्य चरित भी ऐसा हो जो (अन्येन) दूसरे असमर्थ निर्बल पुरुष से (अन्वेतवे न) अनुकरण न किया जासके, वह भी सर्वोत्तम हो।

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥ ९ ॥

भा०—(ते इत् वसिष्ठाः) वे ही पूर्ण ब्रह्मचारी, गुरु के अधीन विद्या प्राप्ति के लिये अच्छी प्रकार कर्म करने हारे विद्वान् जन (यमेन) नियन्त्रण करने वाले आचार्य वा परमेश्वर द्वारा (ततं) विस्तारित (परिधिं) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञान, व्रत और दीक्षादि को (वयन्तः) प्राप्त होते और उसका पालन करते हुए (अप्सरसः उप-सेदुः) गृहाश्रम में स्त्रियों को प्राप्त करें। अथवा, वे विद्वान् जन ही (अप्सरसः) प्राप्त प्रजा जनों में और उत्तम कर्म मार्गों पर विचरते हुए (अप्सरसः) आकाश में विचरते हुए सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु और मेघादि के तुल्य ही उपकारक होकर हमें प्राप्त हों। (त इत्) वे ही (हृदयस्य) हृदय के (प्रकेतैः) उत्तम ज्ञानों से सहस्रों अंकुरों, शास्त्र ज्ञानों से युक्त (निण्यं) निश्चित ज्ञान को (अभि सञ्चरन्ति) प्राप्त कर विचरें। इसी प्रकार राज्य में बसे उत्तम वीर पुरुष भी (यमेन ततं) नियन्ता राजा की बनाई (परिधिं) नगर के दीवार की (वयन्तः) रक्षा करते हुए, (प्रकेतैः) उत्तम संकेतों से (सहस्रवल्शं) सहस्रों शाखाओं वाले (निण्यं) सुगुप्त दुर्ग वा राष्ट्र में (अभि सञ्चरन्ति) सर्वत्र

विचरें। वे ही (अप्सरसः उप सेदुः) प्रजाओं में विचरते हुए सदा अपने कर्त्तव्यों में उपस्थित हों। इसी प्रकार ये सब 'वसिष्ठ' जन वसुओं प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा, जीव गण हैं जो नियन्ता प्रभु के बनाये 'परिधि' मर्यादा को पालन करते हुए (अप्सरसः) आकाश में या प्राप्त शरीरों, कर्मों और प्रकृति के घटक परमाणुओं या लिंग शरीरों में विचरते हुए (उप-सेदुः) इन शरीरों में प्राप्त होते हैं। वे ही हृदय, अन्तःकरण स्थित प्रज्ञानों से अप्रकट सहस्र शाखा वाले संसार के मार्गों पर विचरते हैं।

विद्युतो ज्योतिः परि सञ्जिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार॥१०॥२३॥

भा०—जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य बतलाते हैं। हे (वसिष्ठ) देह में बसे प्राणों में से सबसे श्रेष्ठ जीव! (विद्युतः ज्योतिः) विद्युत् की ज्योति के तुल्य दीप्तिमात्र को (परि संजिहानं) सब प्रकार से धारण करने वाले तुझको (यत्) जब (मित्रा वरुणौ) सूर्य चन्द्रवत्, प्राण अपान वा माता पिता दोनों, (त्वा अपश्यताम्) तुझको देखते हैं (तत्) तब, वह (ते) तेरा (जन्मः) जन्म होता है (उत) और (एकं) एक जन्म तब होता है (यत्) जब (अगस्त्यः) सूर्य (त्वा) तुझको (विशः) प्रवेश योग्य देहों में, वा आचार्य प्रजाओं में राजा के समान (आजभार) प्राप्त कराता है। विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप— "तस्यैष आदेश यदेतत् विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीतिन्यमीमिषदा३ इत्यधिदैवतम्। अथाध्यात्मं ददेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः॥ केनोपनिषत्।" आत्मा के नाना जन्मों का रहस्य देखो ऐतरेयोपनिषत् अ० २। ख० १॥ जैसे सूक्ष्म जीव के दो जन्म हैं एक पुरुष देह से स्त्री देह में आना, दूसरा स्त्री देह से संसार में प्रकट होना उसी प्रकार इस मनुष्य के दो जन्म हैं, एक मनुष्य योनि में जन्म लेना दूसरा आचार्य गृह में विद्या माता में जन्म लेना।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त॥११॥

भा०—हे (वसिष्ठ) देह में बसे प्राणों में सर्वश्रेष्ठ जीव ! (उत) और तू (मैत्रावरुणः) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों का स्वामी (असि) है । हे (ब्रह्मन्) वृद्धिशील जीव ! तू (उर्वश्याः) अति कान्तिमती, तैजस, सात्विक विकार से युक्त वा 'उरु' अति विस्तृत व्यापक प्रकृति के ऊपर (मनसः) मनन शक्ति द्वारा (अधि-जातः) भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है । (दैव्येन) समस्त किरणों के समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी (ब्रह्मणा) महान्, परम ब्रह्म परमेश्वर से (स्कन्नं) प्रदत्त (द्रप्सं) वीर्य के समान (त्वा) तुझको (देवाः) समस्त दिव्य शक्तियां (पुष्करे) पुष्टिकारक तत्व में (अददन्त) धारण करती हैं । श्वेताश्वतर में विविध ब्रह्म का वर्णन हैं वह यहां उर्वशी, वसिष्ठ, और ब्रह्म तीनों रूप हैं । उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, और ब्रह्म परमेश्वर । (२) इसी प्रकार यह जीव प्राणी भी परस्पर प्रेमी और एक दूसरे को वरण करने वाले वर वधू, माता पिता से उत्पन्न होने से मैत्रावरुण है । वह माता पिता के गृह से उत्पन्न होकर (उर्वश्या) बड़ी भारी वेदविद्या के अभ्यास से (ब्रह्मन्) वेदज्ञान (मनसः) मननशील ज्ञानवान् आचार्य से (जातः) उत्पन्न होता है । फिर वह (दैव्येन ब्रह्मणा) देव, विद्येच्छु शिष्यों के हितैषी चतुर्वेदवित् आचार्य से (स्कन्नः) विसर्जित (द्रप्सः) कान्तियुक्त, तेजस्वी पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (पुष्करे) पुष्टिकारक, सर्वाश्रमपोषक गृहाश्रम में (अददन्त) नियुक्त करते हैं ।

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥ १२ ॥

भा०—माता और आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना— जिस प्रकार (यमेन) सर्वनियन्ता परमेश्वर से (ततं) फैलाये या बनाये

(परिधिं) धारक रक्षक देह सांसारिक जीवन को (वयिष्यन्) पट के समान स्वयं अपने कर्मों द्वारा बिनता, या बनाता और उसको प्राप्त होना चाहता हुआ (वसिष्ठः) उत्तम वसु जीव (अप्सरसः परि जज्ञे) स्त्री के शरीर से परिपुष्ट होकर प्रकट होता है उसी प्रकार (वसिष्ठः) गुरु के अधीन वास कर रहने वाला उत्तम वसु ब्रह्मचारी भी (यमेन) नियन्ता आचार्य से (ततं) विस्तारित, प्रकाशित (परिधिं) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञानमय शास्त्रपट को (वयिष्यन्) प्राप्त, रक्षण और विस्तृत करना चाहता हुआ (अप्सरसः) अन्तरिक्षचारी वायु के समान ज्ञानवान् पुरुष वा आप्त जनों की व्याप्त विद्या से (परि जज्ञे) उत्पन्न होता है। (सः) वह (प्र-केतः) उत्तम ज्ञानी और (उभयस्य) पाप और पुण्य, इह लोक और परलोक दोनों को (प्र-विद्वान्) भली प्रकार जानता हुआ, (सहस्र-दानः) सहस्रों का दान देने वाला, परमैश्वर्य का स्वामी हो। (उत वा) अथवा (स-दानः) दानशील पुरुषों के दिये दान से अलंकृत भिक्षु, ब्राह्मण हो। अर्थात् विद्वान् होने के अनन्तर धनी और त्यागी दोनों में से एक यथेच्छ होकर रह सकता है।

स॒त्रे ह॑ जा॒तावि॑षि॒ता नमो॑भिः कु॒म्भे रेतः॑ सिषिचतुः स॒मा॒नम्।
ततो॑ ह॒ मान॒ उदि॑याय॒ मध्या॒त्ततो॑ जा॒तमृषि॑माहु॒र्वसि॑ष्ठम् ॥१३॥

भा०—(सत्रे) दीर्घ वेदाध्ययन रूप यज्ञ वा गुरु के सदन, आश्रम गृह में (जातौ) उत्पन्न हुए कुमार और कुमारी, दोनों (इषिता) एक दूसरे की इच्छा करने वाले होकर (नमोभिः) आदर सत्कारों सहित (कुम्भे रेतः) कलश में रक्खे जल से (समानं) मानसहित, वा एक समान (सिषिचतुः) अभिषेक वा स्नान करें, अथवा वे दोनों (समानं) एक दूसरे के समान, परिपक्व (रेतः) वीर्य को (कुम्भे) घट में जल के समान गर्भ में वीर्य का (सिषिचतुः) सेचन करें। (ततः मध्यात्) उन दोनों के बीच से (मानः) उत्तम परिमाणयुक्त बालक (उत्

इयाय) उत्पन्न होता है (ततः) उससे अनन्तर उसको (ऋषिम्) प्राप्त जीव को (वसिष्ठम् आहुः) वसिष्ठ कहते हैं। ठीक इसी प्रकार सत्र में स्थित गुरु आचार्य, घर में नलवत् पात्र में ज्ञान-जल का प्रदान करते हैं। (ततः) तब (मानः) ज्ञानवान् पुरुष उत्पन्न होता है। उसको विद्वान् जन 'वसिष्ठ ऋषि' उत्तम विद्वान्, ब्रह्मचारी कहते हैं।

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे। उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः १४।२४।२।

भा०—जो विद्वान् (अग्रे) सबसे पूर्व, (बिभ्रत्) स्वयं ज्ञान को धारण करता हुआ (प्र वदाति) उत्तम प्रवचन करता है वह (ग्रावाणं) मेघ के समान ज्ञान-जल को धारण करने वाले (उक्थ-भृतं) ऋग्वेद के धारण करने और (साम-भृतं) सामवेद के धारण करने वाले विद्वान् शिष्य को भी (बिभर्ति) धारण करता है। वही (वसिष्ठः) वसु, ब्रह्मचारियों में सर्वश्रेष्ठ विद्वान् है। हे (प्र-तृदः) तीनों आश्रमों को अन्नादि देने वाले गृहस्थो! वा हे (प्रतृदः) खण्ड २ कर वेद का अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियो! जब वह (वः आगच्छति) तुम्हें प्राप्त हो तब आप लोग (एवं) उसकी (सुमनस्यमानाः) शुभ संकल्पयुक्त होकर (उप आध्वम्) उपासना कर, उसके समीप बैठकर ज्ञान ग्रहण करो। अथवा—वह वसिष्ठ ही अध्याय, वा पद, प्रकृति प्रत्ययादि विच्छिन्न २ कर पढ़ाने हारा, वा संशयों का छेत्ता ज्ञानी पुरुष 'प्रतृद' है वह जब आवे तब सब उसकी उपासना कर ज्ञान-लाभ करें। इसी प्रकार सबमें बसा महान् आत्मा प्रभु 'वसिष्ठ' है। वही सबसे (अग्रे प्र वदाति) प्रथम उपदेश करता है। उक्थ, साम आदि के धारक, उपदेष्टा वेद को स्वयं धारण करता है। हे जनो! आप उसकी उपासना करें। इति चतुर्विंशो वर्गः। द्वितीयोऽनुवाकः॥

[३४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—१५, १८—२५ विश्वे देवाः। १६ अहिः। १७ अहि-

बुध्न्यो देवता ।। छन्दः—१, २, ५, १२, १३, १४, १६, १९, २० भुरिगार्चीगायत्री । ३, ४, १७ आर्ची गायत्री । ६, ७, ८, ९, १०, ११, १५, १८, २१ निचृत्त्रिपादगायत्री । २२, २४ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । २३ आर्षी त्रिष्टुप् । २५ विराडार्षी त्रिष्टुप् च ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥ १ ॥

भा०—(वाजी) वेगवान् (रथः) रथ (सु-तष्टः) उत्तम रीति से शिल्पी द्वारा निर्मित होकर जिस प्रकार (मनीषाः एति) मनोऽनुकूल गतियें करता है उसी प्रकार (सु-तष्टः) उत्तम रीति से अध्यापित, (वाजी) ज्ञानी पुरुष और (शुक्रा) शुद्ध अन्तःकरणवाली, शुद्धाचार युक्त (देवी) उत्तम विदुषी स्त्री भी (अस्मत्) हमसे (मनीषाः) उत्तम उत्तम बुद्धियों को (एतु) प्राप्त करे ।

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अधः क्षरन्तीः ॥ २ ॥

भा०—(अधः क्षरन्तीः आपः) मेघ से नीचे गिरती जलधाराएं जिस प्रकार (दिवः) आकाश से (जनित्रं) अपनी उत्पत्ति और (पृथिव्याः जनित्रं) पृथिवी, अन्न की उत्पत्ति का कारण होती हैं उसी प्रकार (अधः क्षरन्तीः) नीचे के अंगों से स्रवित वा ऋतु से होने वाली नवयुवति (अपः) आप्त, स्त्रियें (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष और (पृथिव्याः) पृथिवी के समान बीजों को अंकुरित करने वाली उत्तम माता से ही (जनित्रं) उत्तम सन्तान के जन्म को जानें और (शृण्वन्ति) वैसा ही उपदेश गुरुजनों से श्रवण करें । नवयौवन के लक्षण प्रकट होने पर उत्तम सन्तान उत्पन्न होने की विद्या को वे भली प्रकार जानें और शिक्षा प्राप्त करें ।

आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥ ३ ॥

भा०—(वृत्रेषु) मेघों में (आपः चित्) जलधाराएं जिस प्रकार (अस्मै) इस सूर्य के बल से (पृथ्वीः) भूमियों को (पिन्वन्त)

सींचती हैं और (वृत्रेषु) मेघों के ऊपर (उग्रः) उग्र बल की प्रचण्ड वायुएं (मंसन्ते) प्रहार करते हैं (चित्) उसी प्रकार (अस्मै) इस राजा के निमित्त ही (आपः) नहरें या आप्त प्रजाजन (पृथ्वीः पिन्वन्त) भूमियों को सींचते, उस पर कृषि आदि करते और (शूराः) शूरवीर पुरुष (वृत्रेषु) विघ्नकारी पुरुषों पर और नाना धनों के निमित्त (मंसन्ते) उद्योग करते हैं ।

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अस्मै) इस नायक के ही लिये (धूर्षु) धुराओं में (अश्वान्) अश्वों को (दधात) धारण करो । (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् ही (वज्री) हाथ में वज्र, बल, वीर्य, शस्त्रास्त्र सैन्य को धारण करने और (हिरण्य-बाहुः) सुवर्णादि धन को अपने बाहुबल से रखने वाला है ।

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (अह इव) और आप लोग (यज्ञं अभि) पूजनीय प्रभु, सत्संग, यज्ञ आदि को लक्ष्य कर (प्र स्थात) आगे बढ़ो । (याता इव) यात्री या जाने वाले पुरुष के समान (त्मना) आत्म सामर्थ्य से (पत्मन्) सन्मार्ग पर (हिनोत) आगे बढ़ो ।

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग (समत्सु) संग्राम के अवसरों में (त्मना) अपने सामर्थ्य से (यज्ञं) पूज्य नायक को (हिनोत) बढ़ाओ । (जनाय) साधारण प्रजाजन के हितार्थ (केतुं) ध्वजा के समान सबके आज्ञापक (वीरम्) वीर और नाना विद्योपदेष्टा पुरुष को (दधात) स्थापित करो । उसको पुष्ट करो । (२) हे स्त्रीजनो ! (समत्सु) हर्षयुक्त अवसरों में (त्मना) अपनी देह से (यज्ञं) संगतियोग्य गृह्य कार्य वा पति को (हिनोत) बढ़ाओ । और (जनाय) पुत्रोत्पादन के लिये (केतं वीरं दधात)

विद्वान्, रोगरहित, वीर्यवान् पुरुष को धारण करो तथा (जनाय) अपने पति के लिये (वीरं केतं दधात) ज्ञानवान् पुत्र को धारण करो ।

उद॑स्य शुष्मा॑द्भानुर्नार्त॑ बिभ॑र्ति भारं॑ पृ॑थिवी न भूम॑ ॥ ७ ॥

भा०—(भानुः न) जिस प्रकार सूर्य के बल से कान्ति ऊपर उठती है उसी प्रकार (अस्य शुष्मात्) इस नायक के बल से (भानुः) कान्ति या तेजवत् उसके आश्रित प्रजा (उत् आर्त्त) उन्नति को प्राप्त होती है । (पृथिवी न) पृथिवी के समान विदुषी स्त्री भी (भूम भारं) बहुत भारी भार, प्रजाओं के पालन पोषण का भार (बिभर्त्ति) धारण करती और भरण पोषण करती है ।

ह्वया॑मि दे॒वाँ अया॑तुरग्ने॒ साध॑न्नृ॒तेन॒ धियं॑ दधामि ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! मैं (अयातुः) अन्यत्र कहीं भी न जाकर, वा किसी को भी पीड़ा न देता हुआ, अहिंसाव्रती होकर (देवान्) विद्या, धनादि की कामना करने वाले शिष्यों को (ह्वयामि) प्रेमपूर्वक बुलाता हूं । मैं (ऋतेन) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार के द्वारा (साधन्) साधना करता हुआ (धियं दधामि) ज्ञान प्रदान करूं और कर्म करूं । इसी प्रकार हे विद्वन् ! मैं शिष्य भी विद्वानों को प्रार्थना करूं कि मैं स्थिर होकर सत्य निष्ठापूर्वक साधना करता हुआ (धियं) ज्ञान, और कर्म को धारण करूं ।

अ॒भि वो॑ दे॒वीं धियं॑ दधिध्वं॒ प्र वो॑ देव॒त्रा वाचं॑ कृणुध्वम् ॥९॥

भा०—हे जनो ! आप लोग (वः) अपनी (देवीं धियं) दिव्य मति को (अभि दधिध्वं) धारण करो । और (वः) अपनी वाणी को भी (देवत्रा वाचम्) विद्वानों में विद्यमान उत्तम वाणी के समान बनाओ ।

आ च॑ष्ट आसां॒ पाथो॑ न॒दीनां॒ वरु॑ण उ॒ग्रः स॒हस्र॑चक्षाः ॥१०।२५॥

भा०—(उग्रः) प्रचण्ड (वरुणः) सूर्य जिस प्रकार (नदीनां पाथः आ चष्टे) नदियों के जल को खींच लेता है उसी प्रकार (सहस्र-

चक्षाः) सहस्रों आज्ञा-वचन कहने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (उग्रः) बलवान् होकर (नदीनां) समृद्ध (आसां) इन प्रजाओं के (पाथः) पालनकारक राज्य व्यवहार को (आ चष्टे) स्वयं देखता है। इसी प्रकार सूर्यवत् सहस्रचक्षु प्रभु इन जीव प्रजाओं के सब व्यवहारों को देखता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥ ११ ॥

भा०—वरुण, अर्थात् जल जिस प्रकार (नदीनां पेशः) नदियों के स्वरूप को बनाता है, उसी प्रकार यह (राजा) राजा (राष्ट्रानां) राष्ट्रों और समृद्ध प्रजाओं के (पेशः) उत्तम समृद्धि रूप को बनाता, और (अस्मै) उसका (विश्वायु) सर्वगामी, (अनुत्तम्) अबाधित, (क्षत्रं) बल वीर्य होता है।

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (अस्मान्) हमें (विश्वासु विक्षु) समस्त प्रजाओं में (अविष्टो) रक्षा करो। और (शंसं कृणोत) हमें उत्तम उपदेश करो। (निनित्सोः अद्युं कृणोत) निन्दा करने वाले के सब काम को अन्धकार युक्त करो।

व्येतु दिद्युद्द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥ १३ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (दिद्युत्) खूब चमकता हुआ प्रकाश (वि एतु) विविध दिशाओं में फैले। (द्विषाम् अशेवा) शत्रुओं को नाना दुःख प्राप्त हों। (तनूनाम्) देह धारियों के (रपः) दुःख अपराधों को आप लोग (विश्वक्) सब प्रकार से (युयोत) पृथक् करो।

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवन्, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से तथा शस्त्रों से (नः) हमारी रक्षा करे। वह (हव्यात्) ग्राह्य, भक्ष्य पदार्थों को खाने वाला, (प्रेष्ठः) सर्व प्रिय हो। (अस्मै)

उसके लिये (स्तोमः) स्तुति योग्य व्यवहार (अधायि) किया जावे । और वह भी इस राष्ट्र के वासी प्रजा जन के लिये उत्तम व्यवहार करे ।

सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (देवेभिः सजूः) किरणों पृथिव्यादि तत्त्वों के सहित वर्त्तमान अग्नि वा सूर्य के समान (अपां नपातं) जलों को न गिरने देने वाले, मेघवत् उपकारक प्रजाओं को वा प्राणों को नाश न होने देने वाले पुरुष को अपना (सखायं कृध्वम्) मित्र बनाओ । वह (नः) हमारा (शिवः) कल्याणकारक (अस्तु) हो ।

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (बुध्ने) अन्तरिक्ष में (अब्जाम्) जलों के उत्पादक (अहिम्) सूर्य को कहा जाता है वही सूर्य (नदीनां रजःसु सीदन्) नदी के जलों या कण २ में भी विराजता है । उसी प्रकार मैं (उक्थैः) उत्तम वचनों से (अब्जाम्) आप्त जनों के बीच प्रसिद्ध, (अहिम्) शत्रुओं के नाशक पुरुष के (बुध्ने) प्रजा के ऊपर आकाशवत् सर्वप्रबन्धक पद पर (गृणीषे) प्रस्तुत करूं । वह (नदीनां) समृद्ध प्रजाओं के बीच (रजःसु) ऐश्वर्ययुक्त लोगों और वैभवों में (सीदन्) विराजें ।

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥१७॥

भा०—(बुध्न्यः अहिः) आकाशस्थ मेघ के समान (बुध्न्यः) उदार, बुध विद्वान् पुरुषों द्वारा सन्मार्ग पर सञ्चालित, वा आकाश में स्थित, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (नः) हमें (रिषे) हिंसा पीड़ा के लिये वा हिंसक लाभ के लिये (मा धात्) न रख छोड़े । (अस्य ऋतायोः) इस सत्य व्यवहार, अन्न और धनाभिलाषी राजा का (यज्ञः) दान, संगति, आदि (मा स्रिधत्) नष्ट न हो ।

उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥ १८ ॥

भा०—विद्वान् लोग, (नः) हमारे (एषु नृषु) इन नेता पुरुषों में (श्रवः) यश, बल, अन्न आदि (धुः) धारण करावें। और वे लोग (शर्धनाः) उत्साह करते हुए (राये) धन प्राप्त करने के लिये (अर्यः = अरीन्) शत्रुओं को लक्ष्य कर, उन पर (प्र यन्तु) चढ़ाई करें।

तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥ १९ ॥

भा०—(एषाम्) इन उत्तम नायकों के (अमैः) सहायक सैन्य बलों से युक्त होकर (महा-सेनासः) बड़ी सेनाओं के स्वामी लोग (भूमा स्वः न) भुवनों को सूर्य के समान प्रचण्ड होकर (शत्रुं तपन्ति) शत्रु को तपावें। अथवा इनके बलों से राजा लोग शत्रुओं को तपावें, हम भी बड़ी सेना के स्वामी हों।

आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् २०।२६॥

भा०—(यत्) जब (पत्नीः) स्त्रियें (नः) हमें (अच्छ आ गमन्ति) भली प्रकार प्राप्त हों तब (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (सु-पाणिः) उत्तम व्यवहारज्ञ होकर (वीरान्) वीर पुरुषों तथा हमारे पुत्रों की भी (दधातु) रक्षा करे। उनको राष्ट्र-रक्षा पर नियुक्त करे। इति षड्विंशो वर्गः॥

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥ २१ ॥

भा०—(अरमतिः) अति बुद्धिमान् (वसूयुः) प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी, (त्वष्टा) तेजस्वी राजा (नः) हमारे (स्तोमं) स्तुति वचन, और स्तुत्य कार्य के (प्रति) प्रति (जुषेत) प्रेम करे और वह (अस्मे स्यात्) हमारे हितार्थ प्रीतिमान् हो।

ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः २२

भा०—(राति षाचः) दानयोग्य वृत्ति या भृति को लक्ष्य कर, वा उसके द्वारा सहस्रों जनों को अपने साथ बांधने वाले धनाढ्य राजा लोग (नः) हमें (ता) वे नाना प्रकार के (वसूनि) ऐश्वर्य (रासन्)

प्रदान करें। (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली न्यायसभा तथा पुलिस, और (वरुणानी) स्वयं वृत श्रेष्ठ राजा की पालक शासन सभा भी (नः आ श्रृणोतु) हमारी सब बातें सुने। (त्वष्टा) तेजस्वी पुरुष (वरूत्रीभिः) उत्तम, दुःखवारक सेनाओं और नीतियों से (नः) हमारा (सु-शरणः) उत्तम शरण (अस्तु) हो। वह (सु-दत्रः) उत्तम दानशील पुरुष (रायः वि दधातु) नाना ऐश्वर्य प्रदान करे।

तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३॥

भा०—(तत् रायः) वे नाना ऐश्वर्य (नः) हमारी रक्षा करें (पर्वताः) पर्वत, मेघ और पालनकारी साधनों से सम्पन्न जन हमारी रक्षा करें। (ततः आपः) वे जल, प्राणगण और आप्तजन और (तत् रातिषाचः) वे भृति या दान ग्रहण करने वाले और (ओषधीः उत द्यौः) ओषधियां और सूर्य, (वनस्पतिभिः सजोषाः पृथिवी) वनस्पतियों से युक्त पृथिवी, और (उभे रोदसी) दोनों आकाश और भूमि ये सब (नः परि पासतः) हमारी रक्षा करें।

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै॥२४॥

भा०—(तत् उर्वी रोदसी) वे दोनों विशाल दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति, सेनानायक और सूर्य और भूमि के समान स्त्री पुरुष भी (अनु जिहातम्) एक दूसरे के अनुकूल होकर प्राप्त हों। (द्यु-क्षाः) प्रकाशों का धारक सूर्यवत् तेजस्वी, और (इन्द्र-सखा) ऐश्वर्यवान् का मित्र (वरुणः) दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ राजा (अनु) अनुकूल रहे। (ये सहासः मरुतः) जो शत्रुविजयी, तपस्वी, वीर विद्वान् पुरुष हैं वे (विश्वे) सब भी (अनु) अनुकूल हों। हम लोग (रायः धियध्यै) ऐश्वर्य को धारण करने के लिये (धरुणं) सुरक्षित पात्रवत् (स्याम) हों।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३५।२७

भा०—(वनिनः) किरणों और भोग्य ऐश्वर्यों के स्वामी तेजस्वी, सम्पन्न (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (वरुणः) प्रजा का वृत राजा, (मित्रः) स्नेही, (अग्निः) विद्वान् और अग्नि, (आपः) जल और आप्तजन, (ओषधीः) वन की ओषधियें ये सब (नः) हमें (तत्) वह अलौकिक सुख (जुषन्त) प्राप्त करावें, जिससे हम लोग (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् के समीप (शर्मन् स्याम) सुख में रहें । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा कल्याणकारी उपायों से रक्षा करो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[३५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ३, ४, ५, ११, १२ त्रिष्टुप् । ६, ८, १०, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ९ विराट्त्रिष्टुप् । १३, १४ भुरिक्पंक्तिः ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥१॥

भा०—(वाजसातौ) ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) अन्नों और रक्षा साधनों द्वारा (नः शं भवताम्) हमें शान्तिदायक हों । इन्द्र राजा, और ऐश्वर्यवान् अग्निवत् तेजस्वी दोनों वर्ग तृप्तिदायक अन्न, रक्षासाधन, सैन्य, और ज्ञानों से हमें सुख शान्तिदायक हों । (रात-हव्या) ग्रहण करने और देने योग्य जल अन्नादि पदार्थों को प्राप्त करने वाले (इन्द्रा वरुणा) विद्युत् और बल, तथा सेनापति और राजा दोनों (नः शं) हमें शान्तिदायक हों । (इन्द्रासोमा शम्) इन्द्र आचार्य, सोम शिष्य गण, और विद्युत् ओषधिगण, (शम्)

हमें शान्तिदायक हों। वे दोनों ही (सुविताय) सुखमय जीवन और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये भी शान्तिदायक और दुःख दूर करने वाले हों। (इन्द्रा-पूषणा) विद्युत् और वायु दोनों भी (नः शं) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंन्धिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु २

भा०—(भगः नः शम्) ऐश्वर्य हमें सुखकारी हो। (शंसः नः शम् उ) उपदेश, अनुशासन, स्तुति, और उपदेष्टा जन हमें अवश्य शान्ति सुख दें। (पुरन्धिः) बहुत से पदार्थों का धारक आकाश, देहधारक बुद्धि, पुरधारक, राजा, आदि (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (रायः शम् उ सन्तु) ऐश्वर्य, नाना धन हमें शान्ति दें। (सु-यमस्य) उत्तम नियन्ता, शासक, और (सत्यस्य शंसः) सत्य का उपदेष्टा (नः शम्) हमें सुखकर हो। (पुरु-जातः) बहुतों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः शं अस्तु) हमें शान्ति सुख का देने वाला हो।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं नं उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु॥३॥

भा०—(धाता नः शम्) पोषक वर्ग हमें शान्ति दे। (धर्त्ता नः शम् उ) धारण करने वाला, हमें सुख शान्ति दे। (उरूची) बहुत से पदार्थ प्राप्त कराने वाली भूमि, (नः) हमें (स्वधाभिः) अन्नों और जलों से (शंभवतु) शान्तिदायक हो। (बृहती रोदसी शं) बड़े, वृद्धिशील, सूर्य और अन्तरिक्ष दोनों (शं) शान्तिदायक हों। (अद्रिः नः शम्) मेघ और पर्वत हमें शान्ति दें। (देवानां) देव, विद्वानों के (सु-हवानि) सम्बोधन करके किये गये उत्तम २ उपदेश वा उत्तम वचन भी (नः शंसन्तु) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शं।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं नं इषिरो अभिवातु वातः॥४॥

भा०—(ज्योतिः अनीकः) तेज को सैन्य के समान धारण करने वाला (अग्निः) आग और उसके समान तेजस्वी सैन्य वा मुख वाला राजा और विद्वान् पुरुष (नः शम्) हमें सुखकारी हो। (मित्रा वरुणौ नः शं) प्राण और उदान तथा एक दूसरे के स्नेही और एक दूसरे का वरण करनेवाले (अश्विना) रथी सारथी के समान उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों के स्वामी, जितेन्द्रिय, स्त्री पुरुष (नः शं) हमें शान्ति-दायक हों (सुकृतां) पुण्यात्माओं के (सुकृतानि) पुण्य कर्म (नः शं) हमें शान्ति दें। (इषिरः वातः) सदा गमनशील वायु और सर्वप्रेरक वायुवत् बलवान् पुरुष (नः शं अभि वातु) हमें शान्तिदायक होकर सब ओर बहे।

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ५।२८

भा०—(पूर्वहूतौ) पूर्व के विद्वानों के उत्तम स्तुति या प्रशंसा के योग्य कार्य में संलग्न (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि वा विद्युत् और भूमिवत् स्त्री पुरुष दोनों (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (नः) हमें (दृशये) उत्तम रीति से देखने के लिये (शम् अस्तु) शान्ति-दायक हो, (वनिनः ओषधीः) वनकी ओषधियें (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (रजसः पतिः) समस्त लोकों का पालक (जिष्णुः) विजयशील पुरुष भी (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥ ६ ॥

भा०—(वसुभिः) प्राणियों को बसने के स्थान रूप पृथिवी आदि उपग्रह, ग्रहों सहित (देवः) तेजस्वी सर्वप्रकाशक (इन्द्रः) अन्धकार-नाशक मेघोत्पादक जलदायक सूर्य और प्रजाजनों सहित राजा, ब्रह्मचारियों सहित आचार्य (नः शं) हमें शान्ति सुख दे। (आदित्येभिः) वर्ष के

मासों सहित (वरुणः) जल संघ, समुद्रादि और आदित्यसम तेजस्वी पुरुषों सहित (वरुणः) श्रेष्ठ राजा (सु-शंसः) उत्तम शासक, आज्ञापक और स्तुत्य होकर (शम्) सबको सुखकारी हो। (रुद्रेभिः) प्राणों सहित (रुद्रः) जीव, दुष्टों के रुलाने वाले सैन्यों सहित सेनापति (जलाषः) सन्ताप का नाशक जलवत् सुखों का दाता होकर (नः शम्) हमें शान्ति दे। (ग्नाभिः त्वष्टा) वाणियों सहित विद्वान् और उत्तम गृहपतियों सहित गृहस्थी जन भी (नः) हमारे (शं) शान्तिदायक (शृणोतु) वचन श्रवण करें।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

भा०—(सोमः) चन्द्र, पुत्र, शिष्य, प्रजाजन और ओषधि वर्ग (नः शं भवतु) हमें शान्तिदायक हो। (ब्रह्म) वेद, धन, ज्ञान, बल, अन्न, (नः शं) हमें शान्तिजनक हो। (ग्रावाणः) मेघगण, उदार विद्वान्, उपदेष्टा जन (नः शं) हमें शान्तिदायक हों। (यज्ञाः शम् उ सन्तु) यज्ञ, देवपूजन, विद्वत्सत्कार, सत्संग हमें शान्तिदायक हों। (स्वरूणां मितयः) अर्थप्रकाशक शब्दों के ज्ञान वा छन्द (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (प्र-स्वः) उत्पन्न होने वाली ओषधियां, उत्तम सन्तानजनक स्त्रियां (नः शं) हमें शान्तिदायक हों (वेदिः शम् उ अस्तु) वेदि, यज्ञकुण्डादि, भूमि, स्त्री, आदि हमें शान्तिदायक हों।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

भा०—(उरुचक्षाः) बहुत से सम्यग् ज्ञान दर्शनों का कर्त्ता तेजस्वी (सूर्यः) सूर्यवत् सर्वप्रकाशक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शं उदेतु) शान्तिदायक होकर उदय को प्राप्त हो। (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाएं (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (ध्रुवयः पर्वताः)

ध्रुव स्थिर पर्वत (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (सिन्धवः नः शम्) नदियों के जलप्रवाह हमें सुखकारी हों। और (आपः शम् उ सन्तु) जल हमें सुखकारी हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ९

भा०—(अदितिः) अखण्ड व्रत पालन करने वाले ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी और माता पिता, पुत्रादि (व्रतेभिः) सत्कर्मों से (नः शम्) हमें सुख शान्तिदायक हों। (स्वर्काः मरुतः) उत्तम विचारवान् विद्वान् पुरुष प्राणवत् प्रिय होकर (नः) हमें (शं भवन्तु) शान्तिदायक हों। (विष्णुः नः शम्) व्यापक परमेश्वर हमें शान्ति दे। (पूषा नः शम् उ अस्तु) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार, सर्वपोषक प्रभु वा राजा भी हमें सुखकारी हो। (भवित्रं नः शम्) भवितव्य जो आगे होने को है वह भी हमें सुख दे। (वायुः शम् उ अस्तु) वायु हमें शान्तिदायक हो।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः १०।२९

भा०—(त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (सविता) सबका प्रेरक, सबका उत्पादक, सर्वैश्वर्यवान् (देवः) सब सुखों का देने वाला प्रभु (नः शं) हमें शान्ति दे। (विभातीः) विशेष कान्ति से चमकती हुई (उषसः) प्रभात वेलाएं (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (पर्जन्यः) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ राजा और प्रजाओं को तृप्त करने वाला, एवं जलों का दाता मेघ (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शं भवतु) शान्ति सुख का दाता हो। (क्षेत्रस्य पतिः) निवास करने योग्य क्षेत्र, देश और देह का पालन करने वाला राजा वा प्रभु परमेश्वर (शंभुः) सदा शान्ति सुख का देने वाला (नः शम्) हमें शान्ति देवे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु ।
शम॑भि॒षाचः॒ शमु॑ राति॒षाचः॒ शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वाः॒ शं नो॒ अप्याः॑ ११

भा०—(विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (देवाः) ज्ञान, ऐश्वर्य के देने वाले होकर (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों । (सरस्वती) विद्या, सुशिक्षायुक्त वाणी, उत्तम २ (धीभिः) प्रज्ञाओं (सह) सहित (शं अस्तु) हमें शान्तिदायक हो । (अभिषाचः शम्) आभ्यन्तर से सम्बन्ध रखने वाले हमें शान्ति दें । (रातिषाचः शम् उ) बाह्य पदार्थों के लेने से सम्बन्ध रखने वाले जन भी हमें शान्ति दें । (दिव्यः) दिव्य (पार्थिवाः) और पृथिवीस्थ पदार्थ (नः शम्) हमें सुख दें । और (अप्याः) जल में उत्पन्न, मुक्ता और नौका आदि पदार्थ (नः शं) हमें सुख दें ।

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्तः॒ शमु॑ सन्तु॒ गावः॑ ।
शं नः॑ ऋ॒भवः॑ सु॒कृतः॑ सु॒हस्ताः॒ शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥१२॥

भा०—(सत्यस्य पतयः नः शम् भवन्तु) सत्य व्यवहार, सत्य धर्म के पालक हमें शान्ति दें । (अर्वन्तः) अश्व (नः शं) हमें सुख दें । (गावः शम् उ सन्तु) गौएं हमें शान्तिदायक हों । (सुकृतः) उत्तम कार्य करने वाले धर्मात्मा (सु-हस्ताः) कार्य, शिल्पादि साधने में सिद्धहस्त, प्रशस्त (ऋभवः) शिल्पी और तेजस्वी, सत्यज्ञानी पुरुष (नः शं) हमें सुख दें। (हवेषु) यज्ञों और संग्रामों के अवसरों में (पितरः) माता पिता, पालक आचार्य, राजादि जन (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों ।

शं नो॑ अ॒ज एक॑पाद्दे॒वो अ॑स्तु॒ शं नोऽहि॑र्बु॒ध्न्य१ः॒ शं स॑मु॒द्रः ।
शं नो॑ अ॒पां नपा॑त्पे॒रुर॑स्तु॒ शं नः॒ पृश्नि॑र्भवतु दे॒वगो॑पाः ॥ १३ ॥

भा०—(एक-पाद्) सब जगत् को एक पाद या चरण में धारण करने वाला, (अजः) कभी उत्पन्न न होने वाला, नित्य (देवः) सर्व सुखदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु (नः शम् अस्तु) हमें शान्ति सुख दे ।

(अहिः बुध्न्यः नः शम्) अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ हमें शान्ति दे। (समुद्रः शम्) सागर और आकाश हमें शान्ति दे। (अपां) जलों के बीच में (नपात्) चरण रहित नौका (पेरुः) पार उतारने वाला होकर (नः शं) हमें शान्तिदायक हो। (देव-गोपाः) इन्द्रियों, शुभ गुणों और मनुष्यों का रक्षक (पृश्निः) आकाशवत् महान् सबको सुखों का वर्षक ज्ञानी (नः) हमें शान्ति दे।

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो जुषन्ते॒दं ब्रह्म॑ क्रि॒यमा॑णं॒ नवी॑यः।
शृ॒ण्वन्तु॑ नो दि॒व्याः पार्थि॑वासो॒ गोजा॑ता उ॒त ये य॒ज्ञिया॑सः ॥१४॥

भा०—(आदित्याः) ४८ वर्ष तक के ब्रह्मचारी (रुद्राः) ४४ वर्ष तक के ब्रह्मचर्यवान् और (वसवः) २४ वर्ष तक के ब्रह्मचारी (इदं) इस (नवीयः) उत्तम (क्रियमाणं ब्रह्म) उपदेश किये जाते, धन अन्न और ज्ञान को (जुषन्त) प्रेम से स्वीकार करें। (दिव्याः) उत्तम कमनीय गुणादि में प्रसिद्ध (पार्थिवासः) पृथिवी में प्रसिद्ध (गो-जाताः) वाणी से सुशिक्षित, विद्वान् तेजस्वी जन (उत) और (ये) जो (यज्ञियासः) यज्ञकर्त्ता, सेवा सत्संगादि योग्य पुरुष हैं वे सब (नः शृण्वन्तु) हमारे वचन श्रवण किया करें। हमारे प्रश्न सुन समाधान करें।

ये दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः। ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ।१५।३०।३॥

भा०—(ये) जो (यज्ञियानां देवानां) यज्ञ करने हारे, उत्तम विद्वानों में भी (यज्ञियाः) दान, मान सत्कार करने योग्य हैं। (मनोः) जो मननशील विद्वान् का (यजत्राः) सत्संग करने वाले (अमृताः) दीर्घायु, जीवन युक्त (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने वाले हैं (ते) वे (नः अद्य) आज (उरु-गायम्) बहुत से उपदिष्ट, और कीर्त्तित ज्ञान का (रासन्ताम्) उपदेश करें। हे विद्वान् जनो! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा-

पात) तुम लोग हमें सदा कल्याणकारी उपायों से सुरक्षित करो । इति त्रिंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

[३६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ निचृत्-त्रिष्टुप् । ८, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ५ पंक्तिः । १, ७ भुरिक् पंक्तिः ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य सदनात्) सत्य ज्ञान प्राप्त करने के स्थान, गुरु गृह से हमें (ब्रह्म प्र एतु) उत्तम वेदज्ञान प्राप्त हो । (सूर्यः) सूर्य अपनी (रश्मिभिः) रश्मियों से (गाः) भूमियों को (वि ससृजे) विशेष गुण से युक्त बनावे । (पृथिवी) पृथ्वी, (ऊर्वी) विशाल होकर भी (सानुना) उन्नत प्रदेश से (वि सस्रे) विशेष जानी जाती है । (अग्निः) अग्नि भी (पृथु) बहुत अधिक विस्तृत (प्रतीकं) प्रतीति कराने वाला प्रकाश (अधि एधे) चमकाता है उसी प्रकार सूर्यवत् विद्वान् वाणियां प्रकट करें, माता अपने उत्पन्न पुत्र से विशेष ख्याति लाभ करे, अग्निवत् विद्वान् सबको प्रतीति कराने वाला ज्ञान प्रकाशित करे ।

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥ २ ॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) मित्र वरुण, स्नेह युक्त और दुःखवारक शरीर में प्राण उदान और गृह में माता पितावत् सभा सेनाध्यक्ष जनो ! हे (असुरा) बलवान् जनो ! मैं (वां) आप दोनों की (नवीयः) अति नवीन, स्तुत्य (सुवृक्तिम्) दुःख अज्ञान के निवारक (इषम्) इच्छा

वा अन्न को करूं। (वाम्) आप दोनों में से (अन्यः) एक तो (इनः) स्वामी (पदवीः) पद को प्राप्त (अदब्धः) अविनाशी है। (मित्रः) सर्वस्नेही (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (जनं च यतति) प्रत्येक जन को उद्यम कराता है। इसी प्रकार मित्र परमेश्वर है और वरुण जीव है। परमेश्वर जगत् का स्वामी, परम पद रूप से ज्ञानी, अविनाशी, सर्वोपदेष्टा है। दूसरा जीव भी प्राणों का स्वामी होने से 'इन', ज्ञान प्राप्त करने से पदवी, प्रत्येक जन्तु को सञ्चालित करता है।

आ वात॑स्य॒ ध्रज॑तो रन्त इ॒त्या अपी॑पयन्त धे॒नवो॒ न सू॒दाः ।
म॒हो दि॒वः सद॑ने॒ जाय॑मा॒नोऽचि॑क्रदद्वृष॒भः सस्मि॒न्नूध॑न् ॥ ३ ॥

भा०—(वृषभः) श्रेष्ठ बलवान् पुरुष (सस्मिन्) अन्तरिक्ष में मेघ के समान (ऊधन्) उषाकाल में सूर्य के समान तेजस्वी होकर (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (महः दिवः) बड़े भारी प्रकाश, ज्ञान या लोक व्यवहार के (सदने) स्थान, राजसभा, लोकसभा और गुरु-गृह में (अचिक्रदत्) प्राप्त हो, अन्यों को उपदेश करे। (वातस्य ध्रजतः इत्याः सूदाः न रन्ते) वेग से जाते हुए वायु की गतियों में जिस प्रकार वर्षाशील मेघ विहरते हैं उसी प्रकार (वातस्य) वायु के समान बलवान् (ध्रजतः) वेग से जाते हुए उस सेनापति के (इत्याः) गमनों को प्राप्त (सूदाः) उत्तम करप्रद प्रजाएं (धेनवः) गौओं के समान (रन्ते) सुखी होती हैं और (अपीपयन्त) आप बढ़तीं और राजा को भी समृद्ध करती हैं।

गि॒रा य ए॒ता यु॒नज॒द्धरी॑ त॒ इन्द्र॑ प्रि॒या सु॒रथा॑ शूर धा॒यू ।
प्र यो म॒न्युं रिरि॑क्षतो मि॒नात्या सु॒क्रतु॑मर्य॒मणं॑ ववृत्याम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! हे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरे (एता) इन दोनों (धायू) धारक पोषक (सु-रथा) उत्तम रथ वाले (प्रिया) प्रिय (हरी) अश्वों के समान बलवान् मुख्य नायक

वा स्त्री पुरुषों को (गिरा) वेद वाणी से (युनजत्) सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और (यः) जो (रिशतः) हिंसक जनों को (प्र मिनाति) दण्डित करता है उस (मन्युम्) मननशील (सु-क्रतुम्) उत्तम ज्ञानवान् कर्मवान् (अर्यमणं) न्यायकारी, शत्रुनियामक पुरुष को मैं (आ ववृत्याम्) प्राप्त करूं। अध्यात्म में—हे इन्द्र ! आत्मन् ! प्रभो ! जो योगी तेरे प्रति देह में स्थित, प्राण अपान रूप घोड़ों को योगद्वारा युक्त करता है जो मारने वाले के प्रति भी अपने मन्यु, क्रोध को मारता है अक्रोधी, क्षमावान् रहता है उस उत्तमकर्मा काम क्रोधादि, अन्तः-शत्रु के विजयी को मैं प्राप्त करूं।

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभि स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(ऋतस्य धामन्) सत्य या न्याय के भवन में (स्वे) उसके अपने जन (नमस्विनः) नमस्कार युक्त, अति विनीत होकर (अस्य) इस रुद्र के (सख्यं) मित्रभाव और (वयः च) जीवन वृत्ति को भी (यजन्ते) प्राप्त करते हैं वह (नृभिः स्तवानः) मनुष्यों से स्तुति किया जाता हुआ (पृक्षः) अन्नादि की (वि बाबधे) विविध प्रकार से व्यवस्था करता है। (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले उस महापुरुष को (इदं) उस प्रकार (प्रेष्ठं) अतिप्रिय, अतिश्रेष्ठ (नमः) अधिकार वा शक्ति प्राप्त हो। इति प्रथमो वर्गः ॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः॥६॥

भा०—जिस प्रकार (स्वेन पयसा पीप्यानाः) अपने जल से परिपूर्ण होकर (सु-धाराः) उत्तम जलधाराएं (सु-स्वयन्त) खूब वेग से गमन करती हैं और उनमें (सरस्वती) अति वेग से चलने वाली (सप्तथी) आगे बढ़ने वाली (सिन्धु-माता) प्रवाह से बहते जलों को अपने भीतर

लेने वाली सबकी माता के समान होती है। वे सब (साकं वावशानाः) एक साथ मिलकर गर्जती हुई जाती हैं उसी प्रकार (सरस्वती) वाणी, (सप्तथी) छः मन सहित ज्ञानेन्द्रियों के बीच सातवीं (सिन्धुमाता) प्राणमय स्रोतों की माता के समान है। और शेष सब भी मिलकर (सु-दुघाः) उत्तम ज्ञान से आत्मा को पूर्ण करने वाली (सु-धाराः) उत्तम धारणा वा उत्तम वाणी से युक्त होकर (स्वेन पयसा) अपने ज्ञान से आत्मा को (पीप्यानाः) पुष्ट करती हुई (सुस्वयन्त) सुखपूर्वक कार्य करती हैं। वे (यशसः) बलयुक्त आत्मा के अधीन (साकं) एक साथ ही (वावशानाः) विषयों की कामना करती हुईं (आ) प्राप्त होती हैं उसी प्रकार (सु-धाराः) उत्तम वाणी से युक्त विदुषी स्त्रियें भी (स्वेन पयसा) अपने बल से बढ़ती हुईं सन्मार्ग से जावें। (यशसः) बलवीर्य को चाहती हुईं एक साथ मिलकर उद्योग करें। उनमें प्रशस्त ज्ञान वाली माता के समान वर्त्तें।

उत त्ये नो॑ म॒रुतो॑ मन्दसा॒ना धियं॑ तो॒कं च॑ वा॒जिनो॑ऽवन्तु।
मा न॒ः परि॑ ख्यद॒क्षरा॒ चर॒न्त्यवी॑वृध॒न्युज्यं॒ ते र॒यिः नः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (त्ये मरुतः) वे विद्वान् (वाजिनः) ज्ञान और बल ऐश्वर्य से सम्पन्न मनुष्य (मन्दसानाः) अति प्रसन्न रहते हुए (नः) हमारे (धियं तोकं च) बुद्धियों, कर्मों और सन्तानों की भी (अवन्तु) रक्षा करें। (ते) वे (नः) हमारे (अक्षरा) न नाश होने वाली वाणी (चरन्ती) प्राप्त होती हुई (मा नः) हमें न (परि ख्यत्) त्याग दे।

प्र वो॑ म॒हीम॒रम॑तिं कृणुध्वं॒ प्र पू॒षणं॑ विद॒थ्यं१॒ न वी॒रम्।
भगं॑ धि॒योऽवि॒तारं॑ नो अ॒स्याः सा॒तौ वाजं॑ राति॒षाचं॒ पुरं॑न्धिम् ८

भा०—हे मनुष्यो! आप लोग (वः) अपनी (महीम्) पूज्य वाणी को (अरमतिं) अति अधिक बुद्धि को (प्र कृणुध्वम्) खूब बढ़ाओ। और (विदथ्यं) संग्राम में कुशल (वीरं न) वीर पुरुष के समान

(पूषणं) पोषक पुरुष को (प्र कृणुध्वम्) मान सत्कार से बढ़ाओ। (भगं) ऐश्वर्यवान् पुरुष की और (धियः) ज्ञान और कर्म के (अवितारं) रक्षा करने वाले की (प्र कृणध्वम्) प्रतिष्ठा करो। (अस्याः सातौ) इस वाणी कों प्राप्त करने के लिये वा इसके प्राप्त होजाने पर (वाजम्) ज्ञान, (राति-षाचं) परस्पर दान-प्रतिदान से सम्बद्ध (पुरन्धिम्) नाना ज्ञानों के धारक विद्वान् का भी (प्र कृणुध्वम्) आदर करो।

अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥२॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! (अयं) यह (नः) आप लोगों की (श्लोकः) उत्तम शिक्षा और वाणी (अवोभिः) रक्षा साधनों, सैन्यादि से (निसिक्त-पाम्) अभिषिक्त माण्डलिकों तथा निषिक्त गर्भों के पालन करने वाले दयालु (विष्णुम्) सर्वव्यापक शक्तिमान् को लक्ष्य करके (अच्छ एतु) उसे प्राप्त हो। और यह स्तुति उनको भी (अच्छ-एतु) प्राप्त हो जो (प्रजायै गृणते) प्रजाको उपदेश दें और (वयः धुः) जो लोग बल और दीर्घ जीवन धारण करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा किया करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[३७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप्। २, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ८ विराट्त्रिष्टुप्। ४ निचृत्पंक्तिः। ६ स्वराट्पंक्तिः ॥

अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥१॥

भा०—हे (वाजाः) विज्ञान-ऐश्वर्य और बलशाली जनो ! हे (ऋभुक्षणः) महान् तेज, प्रकाश से चमकने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषो ! (वः)

तुम लोगों को (रथः) अति रमणीय, रसस्वरूप (अमृक्तः) अविनाशी (वाहिष्ठः) रथ के समान सबको उद्देश्य तक उठाकर पहुंचा देने में सर्वश्रेष्ठ ही (आ वहतु) सब प्रकार से आप लोगों को धारण करे वही (स्तवध्यै) स्तुति योग्य है । हे (सु-शिप्राः) सौम्य मुखों वाले जनो ! (सवनेषु) उत्तम यज्ञादि कर्मों के अवसरों में आप लोग (महभिः) बड़े महत्व युक्त (त्रिपृष्ठैः सोमैः) तीन २ रूपों वाले ऐश्वर्यों, अन्नों और ज्ञानों से (मदे) आनन्द में (अभि पृणध्वम्) सबको पूर्ण करो ।

यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् २

भा०—हे (स्वर्दृशः) सुख, आनन्द का साक्षात् करने वाले (ऋभु-क्षणः) सत्य प्रकाश से चमकने वाले विद्वानो ! (यूयं) आप लोग (मघ-वत्सु) उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुषों में (अमृक्तं) कभी नाश न होने योग्य (रत्नम्) अति सुन्दर विद्यामय धन (ह) अवश्य (धत्थ) धारण कराया करो । आप लोग (स्वधावन्तः) उत्तम अन्न के स्वामी होकर (यज्ञेषु) यज्ञों में (सं पिबध्वम्) सब मिलकर उत्तम रसका पान करो । और (मतिभिः) उत्तम ज्ञानों से (नः) हमारे (राधांसि) नाना धनों को (वि दयध्वम्) विशेष रूप से रक्षित करें और दें ।

उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (महः) बड़े, बहुत, और (अर्भस्य) थोड़े से भी (वसुनः) धन के (विभागे) विभाग करने में तू (देष्णं) देने योग्य वा उपदेश करने योग्य ज्ञान का (उवोचिथ हि) अवश्य उपदेश कर । (वसुना पूर्णा ते गभस्ती) धन से भरे पूरे तेरे बाहुओं को (वसव्या) धन को उचित विभाग करने का उपदेश करने वाली (सूनृता) उत्तम न्याययुक्त वाणी (न नियमते) दान करने से

नहीं रोकती। वह वाणी तो स्वल्प और अधिक धन देने और विभक्त करने के लिये उत्तम पात्रापात्र के विवेक का उपदेश करती है।

त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! (त्वम्) तू (ऋभुक्षाः) सत्य ज्ञान से दीप्तियुक्त पुरुषों को राष्ट्र में बसाने हारा, स्वयं न्यायपूर्वक धन का उपभोग करने वाला (वाजः न) ज्ञानवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष के समान (साधुः) सत्कर्मनिष्ठ, साधक, (ऋक्वा) वेद मन्त्रों का ज्ञाता, उत्तम जनों का सत्कार करने हारा होकर (अस्तम् एषि) गृह को प्राप्त होता है। हे (हरिवः) जितेन्द्रिय, हे मनुष्यों के स्वामिन् ! (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र ही (ब्रह्म दाश्वांसः) ज्ञान, अन्न, धन के देने वाले जन (ते) तेरे लिये (कृण्वन्तः) सत्कर्मों का अनुष्ठान करते हुए (वसिष्ठाः) उत्तम ब्रह्मचारी (स्याम) हों।

सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ५।३॥

भा०—हे (हर्यश्व) वेगवान्, हरणशील अश्वों वाले! एवं हे उत्तम मनुष्यों के स्वामिन् ! (येभिः) जिन (धीभिः) ज्ञानयुक्त बुद्धियों, कर्मों से (विवेषः) सर्वत्र व्याप्त रहता है तू उनसे ही (दाशुषे) दानशील पुरुष को (प्रवतः) उत्तम गुण युक्त (रायः) ऐश्वर्य (सनितासि) प्रदान करने हारा है। (ते) तेरी (युज्याभिः) नियुक्त, आज्ञाकारी (ऊती) सेनाओं तथा (उती) रक्षण नीति से प्रभावित होकर (ते नु ववन्म) तेरी याचना करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (रायः) वे नाना ऐश्वर्य (कदा दशस्येः) कब दान करेगा ? । इति तृतीयो वर्गः ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हम (वेधसः) विद्वान् पुरुषों को (वासयसि इव) अपने राष्ट्र में बसाता सा रहा है। तू (नः) हमारे (वचसः) वचनों को (कदा) कब (बुबोधः) समझेगा ? (वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व के समान समर्थ बलवान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष (तात्या धिया) व्यापक परमेश्वर में निष्ठ बुद्धि और त्याग युक्त कर्म से प्रेरित होकर (नः अस्तं) हमारे घर में कब (सुवीरं-रयिं) उत्तम पुत्रों और वीरों से युक्त धन और (पृक्षः) शान्तिदायक, अन्न को (नि उहीत) प्राप्त करावे।

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ७ ॥

भा०—(देवी) उत्तम स्त्री (चित्) जिस प्रकार (निर्ऋतिः) नित्य रमण करने वाली, सदा सुप्रसन्न रहकर अपने स्वामी को प्राप्त होकर (ईशे) स्वामिनी होजाती है उसी प्रकार (देवी) दिव्य गुणों से युक्त (निर्ऋतिः) भूमि (यम् अभि) जिसको प्राप्त कर (ईशे) ऐश्वर्यवती होजाती है (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् को (शरदः सुपृक्षः) उत्तम अन्नादि युक्त जीवन के वर्ष (नक्षन्तः) प्राप्त होते हैं और. (मर्त्ताः) मनुष्य (यं) जिसको (अस्ववेशं) अपने गृहादि से रहित, परिव्राजक (कृण्वन्त) करते हैं वह (त्रिबन्धुः) तीनों आश्रमों का बन्धु, परम मित्र होकर (जरद्-अष्टिम्) वृद्धावस्था को (उपेति) प्राप्त हो। इसी प्रकार राजा को भी सब प्रजाजन 'अस्व-वेश' करते हैं। राजा का न अपना कोई जन, न अपना कोई गृह हो। राष्ट्र ही उसका गृह और प्रत्येक व्यक्ति उसका 'स्व' है।

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक ईश्वर ! (नः) हमें (स्तवध्यै) स्तुति करने और स्तुति प्राप्त करने के लिये (राधांसि आ यन्तु) नाना धन प्राप्त हों और (पर्वतस्य) मेघ के समान दानशील पुरुष के (रायः) नाना ऐश्वर्य (रातौ) दान करने के निमित्त (नः आयन्तु) हमें प्राप्त हों। (दिव्यः) शुद्ध, (पायुः) रक्षक (नः) हमें सदा (सिषक्तु) सुखों से युक्त करे। हे विद्वान् जनो ! (यूयम्) आप लोग (नः) हमारी (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[३८]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ १—६ सविता । ६ सविता भगो वा । ७, ८ वाजिनो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २, ४, ६ स्वराट् पंक्तिः । ७ भुरिक् पंक्तिः ॥ इत्यष्टर्चं सूक्तम् ॥

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरू वसुर्दधाति ॥ १ ॥

भा०—(स्यः देवः सवितः) वह सब सुखों और ऐश्वर्यों का देने वाला, सब जगत् को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (याम्) जिस (हिरण्ययीम्) हितकारी और रमणीय सुखप्रद, तेजोमय (अमतिम्) उत्तम रूप युक्त लक्ष्मी को (अशिश्रेत्) धारण करता है उसको हम (उत् ययाम) उद्यम करके प्राप्त करें। (यः) जो (भगः वसुः) २४ वर्ष का ब्रह्मचारी होकर (पुरु रत्ना दधाति) बहुत से उत्तम गुणों, बलों और ज्ञानों को धारण करता है (नूनं) निश्चय से वही (हव्यः) स्तुति योग्य और (भगः) सेवनीय, ऐश्वर्यवान् है।

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥२॥

भा०—हे (सवितः) सब जगत् के उत्पन्न करने हारे ! सब ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (उत् तिष्ठ) सब से ऊपर के पद पर विराजमान हो । तू (अस्य) इस जीव, प्रजाजन के दुःखों को (श्रुधि) श्रवण कर । हे (हिरण्यपाणे) हित, रमणीय व्यवहार वाले ! और समस्त तेज और ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (ऋतस्य) सत्य ज्ञान, सत् कारण और अन्न, धन, जीवनादि को (प्र-भृतौ) उत्तम रीति से धारण करने के निमित्त (उर्वीम्) विशाल, (अमतिम्) उत्तम रूप वाली सुन्दर (पृथ्वीम्) भूमि को (वि सृजानः) विविध प्रकार का रचता हुआ और (मर्त्त-भोजनं) मरणशील प्राणियों के लिये भोजन और रक्षा साधन को (आसुवानः) सर्वत्र सब ओर पैदा करता हुआ तू सबसे ऊपर विराजमान हो ।

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ३

भा०—(यम्) जिसको (विश्वे वसवः) सब बसने योग्य पृथ्वी आदि लोक और प्राणी (आ गृणन्ति) सब ओर आदर से स्तुति करते हैं वह (देवः) सब सुखों का दाता और (सविता) सबका उत्पादक (अपि-स्तुतः अस्तु) खूब स्तुति करने योग्य है । (सः) वह (नमस्यः) सबसे नमस्कार करने योग्य (नः) हमें (स्तोमान्) स्तुति योग्य वेद मन्त्रों का और (चनः) अन्न का भी (आधात्) उपदेश करता और प्रदान करता है । वह (विश्वेभिः पायुभिः) समस्त पालन साधनों से (सूरीन्) पुरुषों की (नि पातु) अच्छी प्रकार रक्षा करे ।

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः॥४॥

भा०—(देवस्य) सर्व प्रकाशक, सर्व सुखदाता (सवितुः) सर्व

जगदुत्पादक प्रभु के (सवं) शासन, ऐश्वर्य को (जुषाणा) सेवन करती हुई (देवी) अन्नादि को देने वाली (अदितिः) यह पृथिवी, और प्रकृति उत्तम देवी पत्नी के समान (यम् अभि गृणाति) जिसका गुणानुवाद करती है। और (यम् अभि सम्राजः वरुणः) जिसकी स्तुति श्रेष्ठ पुरुष सम्राट् चक्रवर्ती राजे और (मित्रासः) मित्रगण तथा (सजोषाः अर्यमा) न्यायकारी न्यायाधीश ये सब भी समान प्रीतियुक्त होकर करते हैं हे पुरुषो ! (सः नः चनः धात्) वह हमें सब अन्न दे और (पायुभिः नि पातु) वह नाना साधनों से हमारी रक्षा करे।

अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥ ५ ॥

भा०—(ये) जो हम लोग (मिथः) परस्पर मिलकर (वनुषः) ज्ञानैश्वर्य के दाता (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी, प्रकाशस्वरूप (पृथिव्याः) भूमि के समान विशाल (राति-षाचः) दानदाता प्रभु की (रातिम्) दान सम्पदा को (सपन्ते) मिलकर प्राप्त करते हैं वे (उत) और (बुध्न्यः अहिः) आकाश में उत्पन्न या स्थित मेघ के समान उदार प्रभु (नः शृणोतु) हमारी विनय सुने। और वह (वरूत्री) श्रेष्ठ माता के समान (एक-धेनुभिः) एक वाणी से बद्ध सहायकों द्वारा (नः नि पातु) हमारी रक्षा करे।

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥ ६ ॥

भा०—(देवस्य) सर्वैश्वर्य के दाता (सवितुः) सर्व शासक, सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर के (रत्नम्) रमणीय, उत्तम (भगम्) ऐश्वर्य को (इयानः) प्राप्त करता हुआ (उग्रः) बलवान् (जास्पतिः) प्रजा का पालक (तत्) उसे (नः अनु मंसीष्ट) हमें शक्ति प्रदान करे। (अध) इस प्रकार (अनुग्रः) निर्बल पुरुष भी (अवसे) अपनी

रक्षा के लिये जिस (रत्नं) उत्तम (भगं) ऐश्वर्य की (जोहवीति) याचना करता है वह भी उसे (याति) प्राप्त कर लेता है।

शं नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः ।
ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृकं॒ रक्षां॑सि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः ॥ ७ ॥

भा०—(देवताता) विद्वानों द्वारा करने योग्य यज्ञादि कार्यों और विजयेच्छुक वीरों से करने योग्य (हवेषु) यज्ञों और युद्धों में (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् (मितद्रवः) परिमित गति से आगे बढ़नेवाले (स्वर्काः) उत्तम अन्न, प्रार्थना और तेज से युक्त पुरुष (नः शं भवन्तु) हमें शान्ति सुख के देने वाले हों। वे (अहिं) सर्प के समान कुटिल (वृकं) चोर स्वभाव के पुरुष को और (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों को भी (जम्भयन्तः) मारते और दबाते हुए (सनेमि) सदा (अस्मत्) हम से (अमीवाः) रोगों को और दुःखदायी शत्रुओं को भी (युयवन्) छुड़ावें।

वाजे॑वाजेऽवत वाजिनो नो॒ धने॑षु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अ॒स्य मध्वः॑ पिबत मा॒दय॑ध्वं तृ॒प्ता या॑त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥८॥५॥

भा०—हे (वाजिनः) बल, वीर्य, ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (विप्राः) विविध विद्याओं में पूर्ण, बुद्धिमान् जनो ! (अमृताः) दीर्घायु, ब्रह्मज्ञ, और हे (ऋत-ज्ञाः) सत्य, वेद और ऐश्वर्य तत्व के ज्ञाता जनो ! आप लोग (वाजे-वाजे) प्रत्येक संग्राम में (नः अवत) हमारी रक्षा करो। (नः धनेषु) हमारे धनों के आश्रय पर (अस्य मध्वः पिबत) इस मधुर सुख और अन्न का उपभोग और पालन करो। (मादयध्वं) स्वयं तृप्त होकर भी सदा प्रसन्न रहो। और (तृप्ताः) तृप्त होकर (देव-यानैः) विद्वानों और उत्तम जनों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाया करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[३६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ स्वराट्त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥ १ ॥

भा०—(ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व अर्थात् उदात्त मार्ग से जाने वाला (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (वस्वः) अधीन बसाने वाले आचार्य वा प्रभु की (सुमतिम्) शुभमति, ज्ञान का (अश्रेत्) सेवन करे । (प्रतीची) प्रत्यक्ष में प्राप्त (जूर्णिः) वृद्धावस्था (देवतातिम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी कार्य में (एति) लगे । (अद्री) अनिन्दित, स्त्री पुरुष (रथ्या इव) रथ में जुड़े अश्वों के समान (ऋतम्) सत्यमय सन्मार्ग का (भेजाते) सेवन करें । (इषितः) इच्छावान् पुरुष (होता न) दाता वा गृहीत के समान (यजाति) दान तथा सत्संग करे, धन दे और ज्ञान ले ।

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२॥

भा०—(एषाम्) इन प्रजाजनों के बीच (सु-प्रयाः) उत्तम अन्नादि सम्पन्न, उत्तम रीति से प्रसन्न तृप्त करने वाला (बर्हिः) उनको बढ़ाने और स्वयं बढ़ने वाला पुरुष ही उनको (प्र वावृजे) उत्तम मार्ग से गमन करावे । (एषाम्) इनके बीच स्त्री पुरुष दोनों (वीरिटे) अन्तरिक्ष में सूर्य चन्द्र के समान (विश्पती इव) प्रजापालक राजा रानी के तुल्य (इयात्ते) व्यवहार करें । (अक्तोः उषसः पूर्वहूतौ) रात्रि और दिन दोनों के पूर्वागमन-काल में (वायुः) वायु के समान प्राण प्रिय और (पूषा) पृथ्वी के समान पोषक स्त्री और पुरुष (नियुत्वान्) नियुक्त भृत्यादि के स्वामी होकर (विशाम् स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याण के लिये कार्य करें ।

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य॥३॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में बसे जनो ! (अत्र) इस राष्ट्र में आप लोग (ज्मयाः) भूमि के बीच में (रमन्त) आनन्द प्रसन्न रहो। हे (शुभ्राः) सुशोभित (देवाः) स्त्री पुरुषो ! आप (उरौ) विशाल (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में नक्षत्रों या वायुओं के तुल्य (मर्जयन्त) सब व्यवहारों को स्वच्छ शुद्ध करो। हे (उरु-ज्रयः) बड़े २ मार्गों के ऊपर चलने हारे आप लोग (अर्वाक्) हमारी ओर (पथः) अपने गन्तव्य (मार्ग कृणुध्वं) मार्ग बनावें। (जग्मुषः) जाने वाले आप लोगों के प्रति (नः) हमारे (अस्यदूतस्य) इस दूत के वचनों को (श्रोत) श्रवण करो।

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् ॥ ४ ॥

भा०—(ते) वे (ऊमाः) रक्षक (देवाः) विद्वान् पुरुष (विश्वे) समस्त (यज्ञियासः) यज्ञ के करने वाले (यज्ञेषु) हमारे यज्ञों में (हि) अवश्य (सधस्थं अभि सन्ति) एक साथ विराजने योग्य सभा स्थान में प्राप्त हों। हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (तान् उशतः) उन चाहने वाले पुरुषों और (भगं) ऐश्वर्यवान्, (नासत्या) कभी असत्य भाषण न करने वाले, सत्याचारी पुरुषों और (पुरन्धिम्) बहुत सुखों के धारक, वा पुर के रक्षक आदि जनों को (श्रुष्टी) शीघ्र ही (यक्षि) आदर सत्कार किया कर।

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम्।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (दिवः) विद्युत् सूर्य आदि के और (पृथिव्याः) पृथिवी के सम्बन्ध की (गिरः) ज्ञान वाणियों को (आ वह) धारण कर। तू (मित्रं) मित्र, प्राण वायु (वरुणं) उदान वायु (इन्द्रं)

आत्मा और (अग्निम्) जाठर अग्नि और (अर्यमणम्) स्वामिवत् नियन्ता मन और (अदितिं) अविनाशी (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर को (आ वह) धारण कर । (एषां सरस्वती) इन सबके सम्बन्ध की वेदवाणी से हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मादयन्ताम्) स्वयं प्रसन्न होवो अन्यों को भी प्रसन्न करो ।

ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥ ६ ॥

भा०—मैं (यज्ञियान्) यज्ञ के योग्य, पूजा सत्कारोचित जनों के (हव्यं) योग्य अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को (मतिभिः) सद् बुद्धियों और ज्ञानवान् पुरुषों से प्रेरित होकर (ररे) दिया करूं । (यज्ञियानां मर्त्यानाम्) आदर योग्य मनुष्यों की भी (कामं) अभिलाषा को (नक्षत) प्राप्त होओ । जो विद्वान् लोग (असिन्वन्) हमें प्रेमादि से बांधते हैं उन (युज्येभिः) सदा सहयोगी (देवैः) विद्वानों, के साथ (सक्षीमहि) मिल जुल कर रहें । और हे विद्वान् जनो ! आप लोग (सदासां) सदा सेवन करने योग्य (अविदस्यं) अविनाशी (रयिम्) ऐश्वर्य को (धात) धारण करो ।

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।६

भा०—(वसिष्ठैः) उत्तम विद्वान् पुरुषों द्वारा (रोदसी) सूर्य भूमि के तुल्य व्यवहार युक्त स्त्री पुरुषों की (अभि-स्तुते) अच्छी प्रकार प्रशंसा होती है और (ऋतावानः) सत्य धारण, न्याय, ऐश्वर्य के स्वामी (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) स्नेहवान् और (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष, सभी (चन्द्राः) आह्लादकारी होकर (नः) हमें (उपमं) ज्ञान और (अर्कं) उत्तम सत्कार (यच्छतु) प्रदान करें । हे विद्वान् जनो !

(यूयं) आप सब लोग (नः) हमारी (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम कल्याणकारी उपायों से सदा रक्षा करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[४०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ३ भुरिक्पंक्तिः । ६ विराट्पंक्तिः । २, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥ १ ॥

भा०—(ओ) हे विद्वानो ! (विदथ्या) यज्ञादि कार्यों और संग्रामों में होने योग्य (श्रुष्टिः) शीघ्रकारिता (तुराणां) शत्रुहिंसक वीर पुरुषों के (स्तोमं) समूह को (प्रति समेतु) प्रति पुरुष प्राप्त हो, ऐसे (स्तोमं) जन समूह या सैन्य को हम (दधीमहि) धारण करें । (यद् देवः) जो दानशील, तेजस्वी (सविता) सूर्यवत् सर्वाज्ञापक पुरुष (अद्य सुवाति) आज शासन करता और ऐश्वर्य प्रदान करता है (अस्य) उसके (विभागे) विशेष इस व्यवहार में हम भी (रत्निनः स्याम) उत्तम धनादि सम्पन्न हों ।

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही, मित्र (वरुणः) जलवत् श्रेष्ठ पुरुष, (रोदसी च) आकाश और पृथिवी के तुल्य स्त्री और पुरुष और (इन्द्रः अर्यमा) सूर्य और मेघ के तुल्य राजा और न्यायाधीश (नः) हमें (तत्) वह नाना प्रकार का (द्यु-भक्तम्) बहुत दिनों तक सेवन करने योग्य ऐश्वर्य (ददातु) प्रदान करे । (अदितिः देवी) अन्नदात्री भूमि के तुल्य विदुषी, अखण्ड व्रतचारिणी स्त्री, (भगः च वायुः च) ऐश्वर्यवान् और बलवान् सूर्य और वायु के तुल्य तेजस्वी बलवान् पुरुष (यत्

रेक्णः) जो धन और बल वीर्य (नि-युवैते) अच्छी प्रकार परस्पर मिल कर उत्पन्न करते हैं उसका हमें भी (दिदेष्टु) विद्वान् पुरुष उपदेश करे ।

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु तुल्य बलवान्, शत्रुओं को मारने हारे वीर मनुष्यो ! हे (पृषदश्वाः) सिञ्चन किये जलाग्नि से वेग पूर्वक जाने हारे वा (पृषदश्वाः) हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले सैन्य जनो ! आप लोग (यं मर्त्यं अवाथ) जिस मनुष्य की रक्षा करते हो (सः इत् उग्रः अस्तु) वह ही बलवान्, शत्रुओं को भयभीत करने में समर्थ हो । (उत) और (ईम्) सब ओर से (तस्य सरस्वती) उसकी उत्तम वाणी और वेग-वती सेना (अग्निः) अग्नि के समान अर्थ की प्रकाशक, शत्रु को दग्ध करने वाली हो जिसको (जुनन्ति) विद्वान् लोग सन्मार्ग पर चलाते हैं (तस्य रायः) उसके ऐश्वर्यों को कोई (पर्येता न अस्ति) छीन कर लेने वाला नहीं होता ।

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह (हि) ही निश्चय से (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ पुरुष (नेता) सबका नायक होता है । (मित्रः) सर्व स्नेही (अर्यमा) शत्रुनियन्ता और (राजा नः) अन्य राजागण उसके अधीन (अपः धुः) नाना काम अपने कन्धों ले लेते हैं । (सुहवा) उत्तम ज्ञान से युक्त (देवी) उत्तम अन्नादि देने वाली एवं विदुषी (अदितिः) अखण्ड चरित्र वाली, भूमिवत् माता और (अनर्वा) अश्वादि से रहित यन्त्रमय रथपर जाने वाला अथवा (अनर्वा) अहिंसक पुरुष (ते) वे सब (अंहः) पाप और कष्ट से (अरिष्टान्) विना पीड़ित हुए (नः) हमें (अति पर्षन्) पार करें ।

अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥५॥

भा०—(अस्य) इस (देवस्य) तेजोमय, सुखप्रदाता (मीढुषः) वीर्यसेक्ता, बलवान् पिता के तुल्य, (विष्णोः) व्यापक बल शाली, (एषस्य) सबके चाहने योग्य, सर्वप्रिय (हविर्भिः प्रभृथे) ग्राह्य अन्नों या आज्ञा-वचनों द्वारा उत्तम रीति से परिपोषित इस जगत् वा राष्ट्र में अन्य सब (वयाः) शाखा के समान हैं। (रुद्रः) दुष्टों का रुलाने वाला वह ही (रुद्रियं महित्वं विदे) रुद्र होने योग्य महान् सामर्थ्य को प्राप्त करता है। हे (अश्विनौ) स्त्रीपुरुषो ! सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी जनो ! (इरावत् वर्त्तिः) अन्नादि से समृद्ध गृह को तुम लोग (यासिष्टं) प्राप्त करो ।

मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥६॥

भा०—हे (आघृणे) सब ओर दीप्ति वाले तेजस्विन् ! (पूषन्) सर्वपोषक ! तू (अत्र) इस राष्ट्र में (मा इरस्य) विनाश मत कर। (यत्) जो (वरूत्री) वरण करने योग्य विदुषी स्त्री और जो (रातिषाचः च) दानशील पुरुष भी (रासन्) प्रदान करते हैं वे (मयः-भुवः) शान्ति सुख के दाता (नः अर्वन्तः) हमें प्राप्त होकर (नः निपान्तु) हमारी रक्षा करें। और (परि-ज्मा) पृथ्वी पर शासक (वातः) वायु के समान बलवान् होकर मेघवत् (वृष्टिं ददातु) प्रजा को समस्त सुखों की वृष्टि प्रदान करे ।

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ३९ । ७ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[४१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ लिङ्गोक्ताः । २—६ भगः । ७ उषा देवता ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २, ३, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ४ पंक्तिः ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रातर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्रं॑ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑ ।
प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रं हु॑वेम ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (प्रातः) प्रभात समय में ही (अग्निम्) अग्नि के समान तेजःस्वरूप प्रभु की (हवामहे) स्तुति करें । हम (प्रातः इन्द्रम् हवामहे) प्रातःकाल ही विद्युत् वा सूर्य के समान सर्व प्रकाशक परमेश्वर वा आत्मा की उपासना किया करें । (मित्रा वरुणा) प्राण और उदान दोनों को (प्रातः) प्रातःकाल में ही हम प्राणायाम द्वारा अपने वश करें । (अश्विना प्रातः) वैद्य, अध्यापक और देह में सूर्य और चन्द्र स्वरों को प्रातः ही सेवन करें । (भगं) ऐश्वर्यमय, भजने योग्य (पूषणं) सर्वपोषक वायु का (प्रातः) प्रभात में सेवन करें । (ब्रह्मणः पतिम्) वेद, ब्रह्माण्ड और समस्त ऐश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर और वेदोपदेष्टा विद्वान् को शिष्य और (सोमम्) ओषधि की रोगी और आचार्य की शिष्य और (रुद्रं) पापियों को रुलाने वाले प्रभु की भक्तजन, उपासक (प्रातः हुवेम) प्रातःकाल ही सेवा और शुश्रूषा करें ।

प्रा॒त॒र्जितं॒ भग॑मु॒ग्रं हु॑वेम व॒यं पु॒त्रमदि॑ते॒र्यो वि॑ध॒र्ता ।
आ॒ध्रश्चि॒द्यं मन्य॑मानस्तु॒रश्चि॒द्राजा॑ चि॒द्यं भगं॑ भ॒क्षीत्याह॑ ॥२॥

भा०—(प्रातः-जितम्) प्रभात वेला में ही सबसे अधिक उत्कर्ष प्राप्त करने योग्य (भगं) सेवने योग्य (उग्रं) दुष्टों को भयकारी, (पुत्रं) बहुतों के रक्षक प्रभु की (वयं) हम (हुवेम) स्तुति करें, (यः) जो (अदितेः) अखण्ड, प्रकृति सूर्य को और (विधर्त्ता) विविध लोकों को धारण करता है (यं मन्यमानः) जिसका मनन करता हुआ

(आध्रः चित्) अन्यों से धारण पोषण योग्य दरिद्र भी और (यं) जिस (भगं) ऐश्वर्यवान् सेव्य प्रभु को (तुरः चित्) शीघ्रकारी (राजा चित्) राजा भी (भक्षि) मैं भजन करता हूं (इति आह) ऐसा ही कहता है। जिसकी उपासना करने से कोई निषेध नहीं करता है।

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः ।
भग॒ प्र णो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥ ३ ॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! हे (प्रणेतः) उत्तम मार्ग में लेजाने हारे ! हे (भग) सेवन योग्य, हे (सत्य-राधः) सत् पदार्थों में विद्यमान कारणरूप प्रकृति और सत्यज्ञान वेद के धनी, उसको वश करने हारे, हे (भग) ऐश्वर्य-सुखदातः ! आप (नः) हमारी (इमां) इस (धियम्) बुद्धि को (उत् अव) ऊपर की ओर ले चलो, उन्नत करो। (नः ददत्) हमें दान करते हुए हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें (गोभिः अश्वैः) गौओं, वाणियों इन्द्रियगणों और अश्वों से (प्र जनय) उत्तम बनाइये ! जिससे हे (भग) ऐश्वर्य के स्वामिन् ! हम (नृभिः) उत्तम पुरुषों के साथ मिलकर (नृवन्तः) उत्तम मनुष्यों के सहयोगी होकर (प्र स्याम) उत्तम बनें।

उ॒तेदानीं॒ भग॑वन्तः स्यामो॒त प्र॑पि॒त्व उ॒त मध्ये॒ अह्ना॑म् ।
उ॒तोदि॑ता मघव॒न्त्सूर्य॑स्य व॒यं दे॒वानां॑ सुम॒तौ स्या॑म ॥ ४ ॥

भा०—(उत इदानीं) और इस समय, (उत प्र-पित्वे) औरऐश्वर्य प्राप्त होने पर, सूर्य के आगमन काल में और (अह्नाम् मध्ये) दिनों के बीच में (उत) और (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के उदय-काल में या (उत्-इता) अस्तकाल में भी हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् हम (भगवन्तः) ऐश्वर्यों के स्वामी (स्याम) होकर रहें। और सदा हम (देवानां) विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुषों की (सु-मतौ) शुभ मति के अधीन (स्याम) रहें।

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥ ५ ॥

भा०—(भगः एवं) सबको भजन करने योग्य सर्व कल्याणकारक प्रभु ही (भगवान् अस्तु) सब ऐश्वर्यों का स्वामी हो । हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (तेन) उस परम स्वामी से ही (वयं) हम सब (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् हों । हे (भग) सेवा करने योग्य ! (सर्व इत्) सबही (त्वां तं) उस तुझको (जोहवीती) पुकारता है, (सः भगः) वह ऐश्वर्यवान् तू ही (इह) इस लोक में यहां (पुरः-एता भव) हमारा अग्रगामी हो ।

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥

भा०—(उषसः) सब प्रातःकाल के अवसरों में आप लोग (अध्वराय) हिंसा रहित और कभी नाश या निष्फल न होने वाले यज्ञ, उपासनादि कर्म के लिये और (शुचये) शुद्ध, पवित्र, (पदाय) प्राप्तव्य परम प्रभु को प्राप्त करने के लिये (दधिक्रावा इव) अपने ऊपर बोझ लेकर चलने वाले अश्व के समान ही दृढ़ कमर कसकर, उद्देश्य को धारण करके आगे पैर बढ़ाते हुए (सं नमन्त) अच्छी प्रकार झुको । (अश्वाः रथं न) अश्व जिस प्रकार रथ को लेजाते हैं उसी प्रकार (वाजिनः) ज्ञानवान्, बलवान् लोग (अर्वाचीनं) साक्षात् करणीय (वसु-विदं) नाना ऐश्वर्यों, लोकों, जीवों को प्राप्त और उनसे प्राप्त करने योग्य (भगं) ऐश्वर्यमय, प्रभु तक (नः आवहन्तु) हमें पहुंचावें ।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।७।८

भा०—(उषासः अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः) जिस प्रकार प्रभात वेलाएं सूर्य से युक्त, किरणों से युक्त, उत्तम वायु से युक्त होकर

भद्र अर्थात् कल्याण और सुख देती हैं उसी प्रकार (उषासः) कान्ति-युक्त, कामनायुक्त, प्रिय स्त्रियें भी (अश्वावतीः) उत्तम भोक्ता पुरुष से सनाथ, (गोमतीः) उत्तम वाणियों को धारण करने वाली, (वीर-वतीः) उत्तम पुत्र युक्त होकर (नः सदम्) हमारे घर को (उच्छन्तु) प्रभात वेलाओं के समान नित्य प्रति प्रकाशित करें। वे (घृतं दुहानाः) गृह में दीप्तिवत् जल और ज्ञानप्रकाश को पूर्ण करती हुईं (विश्वतः प्रवीताः) सब प्रकार हृष्ट पुष्ट, तृप्त होकर रहें। हे विदुषी स्त्रियो ! (यूयं) आप सब (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा कल्याण उपायों से रक्षा करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[४२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ६ निचृत्पंक्तिः ॥ षड्टचं सूक्तम् ॥

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनवं उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥ १ ॥

भा०—(अङ्गिरसः) देह में प्राणवत्, तेजस्वी (ब्रह्माणः) वेद के जानने हारे पुरुष (प्र नक्षन्त) आया करें। (क्रन्दनुः नभन्यस्य) जिस प्रकार मेघ वायु के वेग को प्राप्त करता है या विद्युत् अन्तरिक्षस्थ मेघ को व्यापती है उसी प्रकार (क्रन्दनुः) उपदेष्टा पुरुष (नभन्यस्य) स्तुति करने योग्य प्रभु के ज्ञान का (वेतु) प्रकाश करे। विद्युत्वत् रोदनशील कोमल प्रकृति या विदुषी स्त्री (नभन्यस्य) सम्बन्ध योग्य पुरुष का आश्रय प्राप्त करे। (उदप्रुतः) जल से भरी नदियों के समान (धेनवः) वाणियां और गौएं (प्र नवन्त) प्रभु की स्तुति करें। और इस प्रकार (अद्री) मेघ वा पर्वतवत् स्थिर स्त्री पुरुष (अध्वरस्य पेशः) अहिंसामय यज्ञ के स्वरूप को (प्र युज्याताम्) सम्पन्न करें।

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते) तेरा (सनवित्तः) सनातन से वेद द्वारा जाना गया (अध्वा) मार्ग (सुगः) सुख से गमन करने योग्य है । तू भी (सुते) उत्पन्न इस जगत् में वा ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये रथ में (हरितः रोहितः च) लाल, अश्वों को (युक्ष्व) नियुक्त कर । (ये वा अरुषाः वीरवाहः) जो अरुण वर्ण वीरों को पीठ पर लेने वाले हों (देवानां जनिमानि) उन विद्वानों और वीरों के जन्मों की मैं (सत्तः) स्थिर होकर प्रशंसा करूं । (२) गृहस्थ पक्ष में—(सुते) पुत्र के निमित्त (रोहितः च हरितः) तेजस्विनी, लतावत् वृद्धिशील, काम्य स्त्रियों को विवाह धर्म में नियुक्त कर । जो स्त्री पुरुष (अरुषाः) रोष रहित (वीरवाहः) पुत्रों के लालन पालन का भार उठा सकें उन कामवान् पुरुषों के उत्पन्न सन्तानों को मैं (सत्तः) स्थिर गृहपति सदा (हुवे) प्रशंसा करूं । या मैं आसनस्थ होकर उनको उपदेश करूं ।

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सुपुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! (वः) आप लोगों में (मन्द्रः) अति स्तुत्य (होता) विद्वान् उपदेष्टा (नमोभिः) हव्यों और नमस्कार योग्य मन्त्रों से (यज्ञं) उपास्य, यज्ञमय परमेश्वर की (महयन्) पूजा करता हुआ (उपाके) हमारे समीप रहकर (प्र रिरिचे) पापों से पृथक् रहता है । हे (पुर्वणीक) बहुत से सैन्यों, बलों के स्वामिन् ! तू (देवान् सुयजस्व) विद्वान् पुरुषों का आदर सहित सत्संग कर । उनको दान दे और (यज्ञियाम्) यज्ञ, करने, प्रभु की ध्यानोपासना करने की और सत्संगोचित

(अरमतिं) उत्तम बुद्धि को (आ ववृत्याः) सब प्रकार स्वीकार और उसका व्यवहार में प्रयोग कर ।

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै॥४॥

भा०—अतिथि यज्ञ । (यदा) जब (वीरस्य) वीर, क्षत्रिय और (रेवतः) धनाढ्य वैश्य के (दुरोणे) गृह में (अतिथिः) पूज्य अतिथि, भ्रमणशील विद्वान्, परिव्राजक, ब्राह्मण (स्योनशीः) सुख से रहे और प्राप्त हो, वह (दमे) गृह में (सु-धितः) सुखपूर्वक धारित (अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष (सुप्रीतः) सुप्रसन्न होकर (इयत्यै) सुख चाहने वाली (विशे) प्रजा के लिये (वार्यं आ-दाति) उत्तम ज्ञान प्रदान करता और उसके हित के लिये ही स्वयं भी (वार्यम् आ दाति) वरणीय हविष्यवत् धनादि ग्रहण करता है ।

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! (नः इमं अध्वरं) तू हमारे इस यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर । (मरुत्सु) मनुष्यों और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में भी (नः) हमारे (अध्वरं यशसं कृधि) यज्ञ को कीर्त्तियुक्त कर । (नक्ता उषासः) रात और दिन, सदा, (उशन्ता) परस्पर चाहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही परस्पर को वरण करने वाले गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (इह भज) इस स्थान पर धर्मोपदेश दे, सत्संग कर । तू (बर्हिः सदताम्) उत्तमासन पर विराज ।

एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥९॥

भा०—(वसिष्ठः) उत्तम विद्वान् (रायः कामः) ऐश्वर्यों की इच्छा वाला होकर (विश्वप्स्न्यस्य) समस्त रूपों में वर्तमान, सर्वत्र

विद्यमान अग्नि आदि तत्व के (सहस्यं) बलोत्पादक (अग्निं) अग्नि या विद्युत् तत्व के गुणों का (स्तौत्) उपदेश करे । और (अस्मे) हमारे (इषं रयिम् वाजम् पप्रथद्) अन्न, धन, बल आदि का विस्तार करे । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमें कल्याणकारक उपायों से सदा सुरक्षित रखिये । इसी प्रकार मनुष्य भी ऐश्वर्य का इच्छुक विश्वरूप भगवान् के तेजोमय रूप की स्तुति उपासना करे । इच्छा, बल, वीर्य, ज्ञान की वृद्धि करे । इति नवमो वर्गः ॥

[४३]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ५ भुरिक्पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्र वो॑ य॒ज्ञेषु॑ देव॒यन्तो॑ अर्च॒न्द्यावा॒ नमो॑भिः पृथि॒वी इ॒षध्यै॑ ।
येषां॒ ब्रह्मा॒ण्यस॑मानि॒ विप्रा॒ विष्व॑ग्वि॒यन्ति॑ व॒निनो॒ न शाखाः॑॥१॥

भा०—(यज्ञेपु) सत्संगों, देवपूजा, दान आदि कार्यों में (वः) आप लोगों के बीच (द्यावा पृथिवी) आकाश या सूर्य और भूमि दोनों को (इषध्यै) चाहने और जानने के लिये (देवयन्तः) विद्वानों और परमेश्वर की (नमोभिः) विनयों और अन्नादि से (प्र अर्चन्) अच्छी प्रकार अर्चना करते हैं (येषां) जिनके (ब्रह्माणि) ज्ञान, वेद-वचन और धनैश्वर्य (असमानि) सबसे अधिक हैं वे (विप्राः) विद्वान् पुरुष (वनिनः शाखाः न) सूर्य की आकाश में फैली किरणों वा वृक्ष की शाखाओं के समान (विश्वग् वियन्ति) सब ओर जाते हैं ।

प्र य॒ज्ञ ए॑तु॒ हेत्वो॒ न सप्ति॒रुद्य॑च्छध्वं॒ सम॑नसो घृ॒ताचीः॑ ।
स्तृ॒णी॒त ब॒र्हिर॑ध्व॒राय॑ सा॒धूर्ध्वा शो॒चींषि॑ देव॒यून्य॑स्थुः ॥ २ ॥

भा०—(हेत्वः सप्तिः न) वेगवान् अश्व के समान (यज्ञः प्र एतु) यज्ञ प्राप्त हो, वह उत्तम रीति से चले । हे विद्वान् लोगो ! आप लोग

(समनसः) एकचित्त होकर (घृताचीः उद्यच्छध्वम्) घृत से युक्त स्रुवे उठाओ। अथवा आप लोग एक चित्त होकर (उद्यच्छध्वम्) उद्यम करो। और आप लोग (घृताचीः) जलों से युक्त मेघमालाओं को (बर्हिः) आकाश में (स्तृणीत) आच्छादित करो। (साधु) अच्छी प्रकार (अध्वराय) यज्ञ की (देवयूनि) दीप्तियुक्त (शोचींषि) ज्वालाएं (ऊर्ध्वा अस्थुः) ऊंचे उठें। (२) (यज्ञः) पूज्य राजा अश्व के समान बलवान् होकर प्राप्त हो, आप लोग एकचित्त (घृताचीः) तेजस्विनी सेनाओं को उठाओ। (बर्हिः स्तृणीत) राष्ट्र, प्रजाजन का विस्तार करो (देवयूनि शोचींषि) विजयेच्छु पुरुषों की ज्वालाएं (अध्वराय) राष्ट्र के पालनरूप यज्ञ के लिये वा शत्रु से न हिंसित होने के लिये खूब उठ खड़ी हों।

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥३॥

भा०—(विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) भरण-पोषणयोग्य पुत्र जिस प्रकार माता को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार (विभृत्राः) विशेष रूप से भृति द्वारा रक्षित राजपुरुष (पुत्रासः न) राजा के पुत्रों के समान प्रिय होकर (मातरं) उत्पादक मातृभूमि को प्राप्त होकर (देवासः) विजयेच्छु जन (बर्हिषः) वृद्धिशील राष्ट्र तथा प्रजाजन के (सानौ) समुन्नत पदों पर (सदन्तु) विराजें। (विश्वाची) समस्त जनों की बनी सभा (विदथ्याम्) संग्राम सम्बन्धिनी नीति को (आ अनक्तु) सर्वत्र प्रकट करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! (देवताता) यज्ञ और युद्ध में (नः मृधः) हमारे हिंसकों को (मा कः) मत उत्पन्न कर।

ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥४॥

भा०—(ते) वे (यजत्राः) एकत्र संगत, वा राजा के भृति, दान

के पात्र जन (ऋतस्य) सत्य वचन, और धन की (सुदुघाः धाराः दुहानाः) उत्तम रीति से सुख से पूर्ण करने वाली वाणियों का प्रयोग करते हुए (जोषम्) प्रीतिपूर्वक (आ सीषपन्त) परस्पर शपथ करें। और (वः वसूनां) बसने वाले आप लोगों में से (महे) पूज्य (ज्येष्ठं) सब से बड़े को (अद्य) आज आप (समनसः) समान चित्त होकर (आ गन्तन) प्राप्त होओ और (यति स्थ) सदा यत्न में लगे रहो।

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५।१०

भा०—हे (सहसावन्) बलवन्! हे (अग्ने) ज्ञानवन्! नायक! तेजस्विन्! तू (एव) अवश्य (विक्षु) प्रजाओं में (आ दशस्य) सब ओर दान कर। सबके प्रति उदार हो। (त्वया युजा वयं) तुझ सहयोगी से मिलकर हम (आस्क्राः) सब प्रकार से मानो खरीदे भृत्यवत् हों और (अरिष्टाः सध-मादः) अहिंसित, अपीड़ित और (राया) एक साथ (सध-मादः) प्रसन्न होकर रहें। हे विद्वान् वीर पुरुषो! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) धन से आप लोग हमें सदा उत्तम साधनों से रक्षित करो। इति दशमो वर्गः॥

[४४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ लिङ्गोक्ता देवताः॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २, ३ निचृत्रिष्टुप्। ४, ५ पंक्तिः॥

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! मैं (वः) आप लोगों में से (दधिक्राम्) शिष्यों को धारण कर उनको उपदेश देने वाले (प्रथमम्) सबसे प्रथम, (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् प्रकाश कर (उषसम्) प्रभात वेला के समान

कान्तियुक्त (समिद्धं अग्निम्) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी, (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (ऊतये) रक्षा, ज्ञान और सुख प्राप्त करने के लिये (हुवे) आदरपूर्वक स्वीकार करूं। मैं (इन्द्रम्) विद्युत्, (विष्णुं) व्यापक शक्ति वाले, (पूषणं) पोषक ओषधिवर्ग, (ब्रह्मणः पतिम्) अन्न धनादि के पालक और (आदित्यान्) १२ मासों (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी और (अपः) जलों और (स्वः) सूर्य प्रकाश और सुख को भी (हुवे) प्राप्त करूं।

दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (दधिक्राम्) राज्य के कार्य भार को अपने ऊपर लेने वालों को सन्मार्ग पर चलाने वाले सारथिवत् राजा को (नमसा बोधयन्तः) विनय से निवेदन करते हुए (उद्-ईराणाः) उत्तम ज्ञान वा उत्तम २ उपदेश देते हुए, (यज्ञम् उप प्रयन्तः) सत्संगति और यज्ञ वा, पूज्य पुरुष के समीप जाते हुए, (बर्हिषि) वृद्धिकारी व्यवहार वा राष्ट्र में बसे प्रजाजन में (देवीं) उत्तम गुण युक्त (इळां) वाणी की (सादयन्तः) व्यवस्था करते हुए हम लोग (सु-हवा) उत्तम वचन बोलने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् (अश्विना) रथी सारथिवत् सहयोगी स्त्री पुरुषों को हम (हुवेम) प्राप्त करें और उनकी प्रशंसा करें।

दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु ॥३॥

भा०—(बुबुधानः) निरन्तर ज्ञानवान् रहकर मैं (दधि-क्रावाणं) धारण करने वाले, रथादि को ले चलने में समर्थ, अश्व के समान अग्रगन्ता, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (उषसं) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त (गाम्) पृथिवी के समान गतिमान् (मंश्चतः वरुणस्य)

अभिमान करने वाले के नाशकारी वा विद्वानों से ज्ञानादि के याचक श्रेष्ठ राजा के (बभ्रुं) भरण पोषण करने वाले (ब्रध्नं) महान्, आकाश वा सूर्य के समान अन्यों को अपने में बांधने वाले ऐसे २ पुरुषों से मैं (उप ब्रुवे) प्रार्थना करता हूं कि (ते) वे (अस्मत्) हम से (विश्वा दुरिता यावयन्तु) सब प्रकार की बुराइयां दूर करें।

द॒धि॒क्रावा॑ प्रथ॒मो वा॒ज्यर्वाग्रे॒ रथा॑नां भवति प्रजा॒नन्।
सं॒वि॒दा॒न उ॒षसा॒ सूर्ये॑णादि॒त्येभि॒र्वसु॑भि॒रङ्गि॑रोभिः ॥ ४ ॥

भा०—दधिक्रावा का स्वरूप। (रथानाम् अग्रे वाजी) रथों के आगे जिस प्रकार वेगवान् अश्व मुख्य होता है वह भी (दधिक्रावा) रथी सारथी, तथा अन्यों को धारण करने वाले रथों को धारण करने से 'दधिक्रावा' है उसी प्रकार (प्र-जानन्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष भी (रथानां) समस्त रमणीय, व्यवहारों के (अग्रे) अग्र या मुख्य पदपर (प्रथमः) सर्व, प्रथम, सर्वश्रेष्ठ (भवति) होता है वह भी (दधिक्रावा) कार्य भार को अपने ऊपर उठाने वाले ज़िम्मेवार पुरुषों को उपदेश देकर ठीक राह पर ले चलने से 'दधिक्रावा' कहाता है। वह (उषसा) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त, दुष्टों के दाहक शक्तिमान् (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी राजा (आदित्येभिः) १२ मासों के समान नाना प्रकृति के विद्वान् अमात्य सदस्यों से, (वसुभिः) वा प्रजा में बसे, ब्रह्मचारी आठ विद्वानों से और (अंगिरोभिः) अंगारों के समान तेजस्वी, वा अंग अर्थात् देह में रमने वाले, बलस्वरूप प्राणोंवत् देश के प्रिय पुरुषों से (संविदानः) भली प्रकार ज्ञान की वृद्धि करता रहे।

आ नो॑ द॒धि॒क्राः प॒थ्या॑मनक्त्वृ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑त॒वा उ॑।
शृ॒णोतु॑ नो॒ दैव्यं॒ शर्धो॑ अ॒ग्निः शृ॒ण्वन्तु॒ विश्वे॑ महि॒षा अमू॑राः ५।११

भा०—जिस प्रकार (दधिक्राः) रथ वा मनुष्यों को पीठ पर धर कर चलने में समर्थ अश्व मार्ग चलते हुए अच्छी चाल प्रकट करता है उसी

प्रकार (नः) हममें से (दधि-क्राः) सब सहयोगी जनों को अपने ज़िम्मे लेकर आगे बढ़ने वाला पुरुष (ऋतस्य पन्थाम्) सत्य, न्याय के मार्ग को स्वयं चलने और औरों को चलाने के लिये ये (नः) हमारे लिये (पथ्याम्) धर्मयुक्त, हितकारिणी नीति को (अनक्तु) प्रकट करे। वह सन्मार्ग प्रकट करने से ही (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशक होकर (नः) हमारे (दैव्यं) मनुष्यों के हितकारी (शर्धः) बल को (शृणोतु) श्रवण करे, जाने और इसी प्रकार (विश्वे) समस्त (अमूराः) मोह रहित ज्ञानी (महिषाः) बड़े लोग भी (शृण्वन्तु) हमारे कार्यों को सुनें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[४५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ सविता देवता ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥ १ ॥

भा०—(सविता देवः) प्रकाशक सूर्य के समान (सविता) सब का प्रेरक तेजस्वी पुरुष (अन्तरिक्ष प्राः) आकाश को व्यापने वाला, (सु-रत्नः) उत्तम रत्नों के समान रमणीय गुणों को धारण करने वाला, (अश्वैः वहमानः) अश्वों के समान विद्वानों की सहायता से कार्य-भार को उठाता हुआ (आ यातु) आवे। वह (हस्ते) अपने हाथ में (पुरूणि) बहुत से (नर्या) मनुष्यों के हितार्थ नाना पदार्थों को (दधानाः) धारण करता हुआ और (नि-वेशयन् च) सबको बसाता और (प्र-सुवन् च) उत्तम रीति से शासन करता हुआ हमें प्राप्त हो। वैसा ही हम भी (भूम) हों। अथवा वह (भूम प्रसुवन् च) बहुत से ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता हुआ हमें प्राप्त हो।

उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२॥

भा०—(अस्य) इसकी (शिथिरा) शिथिल, दृढ़ (बृहन्ता) बड़ी २ (हिरण्यया) सुवर्ण से मण्डित (बाहू) बाहुएं (दिवः अन्तान्) समस्त कामना और विजय योग्य व्यवहारों के पार तक (उत् अनष्टाम्) उत्तम रीति से पहुंचती हैं। (नूनं) निश्चय से (अस्य) इसका (सः महिमा) वह महान् सामर्थ्य (पनिष्ट) स्तुति योग्य होता है कि (सूरः चित्) विद्वान् पुरुष भी (अस्मै) इसकी (अपस्याम्) कर्माभिलाषा में (अनु दात्) सहयोग देता है। (२) परमेश्वर—सर्वोत्पादक सविता की बाहुओं के समान निग्रहानुग्रह की शक्तियां समस्त आकाश के दूर २ तक फैली हैं। उसकी महिमा गाई जाती है, सूर्य भी उसी की कर्मशक्ति के पीछे २ चलता है।

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥ ३ ॥

भा०—(सः देवः सविता) यह सर्वसुखदाता शासक, ऐश्वर्यवान् राजा (सहावा) बलवान् (वसु-पतिः) धनों का स्वामी होकर (वसूनि) नाना धनों को (साविषत्) उत्पन्न करे। (उरूचीं) बहुत पदार्थों को प्राप्त करने वाली (अमतिम्) उत्तम रूप की नीति को (वि-श्रयमाणः) विशेष रूप से आश्रय लेता हुआ (नः) हमें (मर्त्त-भोजनं) मनुष्यों से भोगने योग्य ऐश्वर्य और मनुष्यों का पालन, शासन, न्याय (रासते) प्रदान करे।

इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४।१२

भा०—(इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियां (सु-जिह्वं) उत्तम वाणी बोलने वाले (पूर्ण-गभस्तिम्) पूर्ण रश्मियों से युक्त सूर्य के समान

पूरे परिमाण की बाहुओं वाले, तेजस्वी, (सुपाणिम्) उत्तम हाथों वाले वा उत्तम व्यवहारवान्, (सवितारं) शासक, आज्ञापक, ऐश्वर्यवान् पुरुष की (ईडते) प्रशंसा करती हैं अर्थात् उत्तम वाणियें ही उत्तम विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुष की प्रशंसा का कारण होती हैं। वह विद्वान् पुरुष (अस्मे) हमें (चित्रं) अद्भुत (वयः) ज्ञान और बल (दधातु) प्रदान करे। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमें (सदा) सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याणकारी साधनों से पालन करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

(४६)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ रुद्रो देवता ॥ छन्दः—२ निचृत्त्रिष्टुप्। १ विराड्जगती। ३ निचृज्जगती। ४ स्वराट्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः १

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (इमाः) ये (गिरः) उत्तम वाणियें, (स्थिर धन्वने) स्थिर धनुष वाले, दृढ़ लक्ष्यभेदी (क्षिप्रेषवे) तीव्रवेग से वाण चलाने में चतुर (देवाय) विजय की कामना वाले (स्वधाव्ने) अपने राष्ट्र, अपने जन और अपने तन आदि की रक्षा करने में कुशल, (अषाढ़ाय) शत्रुओं से अपराजित (सहमानाय) शत्रुओं को पराजित करने वाले (वेधसे) कार्यों के विधान करने वाले, (तिग्मा युधाय) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों के स्वामी (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति, राजा के प्रति (भरत) कहो। और वह (नः) हमारे निवेदन (शृणोतु) सुना करे।

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह राजा या सेनापति (क्षम्यस्य) क्षमा योग्य

या इस भूमि में रहने योग्य (जन्मनः) प्राणी या जनों के (क्षयेण) निवास और ऐश्वर्य और (दिव्यस्य) आकाश से होने वाले (क्षयेण) वृष्टि आदि ऐश्वर्य तथा (साम्राज्येन) बड़े भारी साम्राज्य से (हि) निश्चय से (चेतति) जाना जाय। वा ऐश्वर्य और साम्राज्य के नाते ही सबको जाने। हे राजन्! तू (अवन्तीः अवन्) रक्षा करने वाली सेनाओं और प्रजाओं की रक्षा करता हुआ (नः) हमारे (दुरः) बनाये द्वारों के (उपचर) समीप आ। हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने और रोगों को दूर करने हारे विद्वन्! (नः) हमारे (जासु) अपत्यादि प्रजाओं के बीच तू (अनमीवः) रोगरहित और अन्यों के रोगों से मुक्त करने वाला (भव) हो। अथवा वैद्य (क्षम्यस्य जन्मनः) भूमि पर उत्पन्न पदार्थों को (क्षयेण चेतति) व्यवहार या उनके रोग-नाशक सामर्थ्य से जाने और (दिव्यस्य जन्मनः) आकाश में उत्पन्न मेघ, जल, नक्षत्र, वायु आदि का ज्ञान (साम्राज्येन) सूर्यादि के आकाशविज्ञान से करे। (अवन्तीः) रोगों से बचाने वाली ओषधियों को (उप चर) प्राप्त कर (नः दुरः) हमें दुख देने वाले रोगों का उपचार कर। जिससे (नः) हमारा (जासु) पीड़ा देने वाला रोग (अनमीवः) पीड़ादायक न हो।

या ते॑ दि॒द्युद॑व॑सृष्टा दि॒वस्परि॑ क्ष्म॒या चर॑ति॒ परि॒ सा वृ॑णक्तु नः।
स॒हस्रं॑ ते स्वपिवात भेष॒जा मा न॑स्तो॒केषु॒ तन॑येषु रीरिषः ॥३॥

भा०—हे (सु-अपिवात) उत्तम रीति से शत्रुओं को वायु के प्रचण्ड वेग के सदृश वेगयुक्त आक्रमण से दूर करने हारे (या) जो (ते) तेरी (दिद्युत्) चमचमाती, तीक्ष्ण सेना (दिवः परि) विजय कामना से सब ओर (अवसृष्टा) छोड़ी हुई (क्ष्मया) भूमि के साथ (परि च-रति) सब ओर जाती है (सा नः) वह हमें (परि वृणक्तु) कष्ट न दे। हे विद्वन्! (ते) तेरी (सहस्रं भेषजा) सहस्रों ओषधियां हैं। तू (नः

तोकेषु) हमारे बच्चों और (तनयेषु) पुत्रों पर (मा रीरिषा) हिंसा का प्रयोग मत कर ।

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥४।१३

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने और प्रजा के दुःखों को दूर करने वाले ! तू (नः मा वधीः) हमें मत मार, मत दण्डित कर। (मा परा दाः) हमें त्याग मत कर, परे मत कर। हम (हीडितस्य) क्रुद्ध हुए (ते) तेरे (प्रसितौ) बन्धनागार में (मा भूम) न हों। तू (जीव-शंसे) जीवित जनों से प्रशंसनीय (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र में (नः) हमें (आ भज) प्राप्त हो । हे विद्वान् जनो ! (यूयं) आप सब (नः) हमें (स्वस्तिभिः सदा पात) उत्तम साधनों से सदा पालन करो। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[४७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । विराट्त्रिष्टुप् ।
४ स्वराट्पंक्तिः ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवयन्तः) सूर्यवत् रश्मियें (इडः) अन्न या भूमि के (ऊर्मिम्) ऊपर उठने वाले जलों के अंश को (इन्द्र-पानम् अकुर्वत) सूर्य द्वारा पान करने योग्य करते हैं उसी प्रकार हे (आपः) विद्वान् प्रजाओ ! (देवयन्तः) देव अर्थात् राजा के समान आचरण करते हुए राजपुरुष (वः) आप लोगों में से (यं) जिस (प्रथमं) अग्रगण्य (ऊर्मिम्) तरंग के समान उन्नत पुरुष को (इडः) भूमि और वाणी के ऊपर (इन्द्र-पानं) राजावत् पालक रूप से (अकु-

र्वत) नियत करते हैं (वयं) हम लोग (तं) उस (शुचिम्) शुद्ध, धार्मिक (अरि-प्रम्) निष्पाप (घृत-प्रुषं) जल से अभिषिक्त (मधुमन्तं) मधुर स्वभाव वाले पुरुष को (अद्य) आज हम (वनेम) सेवन करें, प्राप्त हों, उसी से प्रार्थना करें।

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥२॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, राजा, सेनापति, (वसुभिः) बसे प्रजाजनों के साथ (मादयते) सबको प्रसन्न करता है, हे (आपः) आप्त जनो ! (तं वः ऊर्मिम्) आप लोगों के उस उत्तम उन्नत (मधुमत्तमं) अति मधुर गुणों से युक्त, अति बलवान् अंश ऐश्वर्य वा पुरुष वर्ग को (आशु-हेमा) सेना, रथों वा अश्वों को अति शीघ्र प्रेरणा करने वाला (अपां नपात्) जलों के बीच नाव के समान तारक, प्रजाओं को नीचे न गिरने देने और प्रबन्ध में बांधने हारा पुरुष (अवतु) बचावे। हे विद्वानो ! (वः) आप लोगों के उस ज्ञानमय या ऐश्वर्यमय अंश को हम (देवयन्तः) कामना करते हुए (अश्याम) प्राप्त करें।

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ३

भा०—(शत-पवित्राः) सैकड़ों रश्मियों से पवित्र (देवीः) दिव्य गुणयुक्त जलांश (स्वधया) अन्नांश से (मदन्तीः) प्रजाओं को तृप्त करते हुए (देवानां) सूर्य-रश्मियों के (पाथः अपियन्ति) मार्ग को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार (शत-पवित्राः) सैकड़ों उत्तम संस्कारों से पवित्राचरण वाली (देवीः) विदुषी, उत्तम स्त्रियां (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तीः) आनन्द लाभ करती हुईं (देवानां) उत्तम विद्वान् पुरुषों के (पाथः)

पालन योग्य ऐश्वर्य को (अपियन्ति) प्राप्त करती हैं। (ताः) वे (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य युक्त अपने पति के (व्रतानि) कर्मों को (न मिनन्ति) नाश नहीं करतीं। (सिन्धुभ्यः) पुरुषों को सम्बन्धों से बांधने वाली उन स्त्रियों के भी (घृतवत्) घृत से युक्त (हव्यं) जलों का खाद्य अन्नों का उत्पादक अंश 'इन्द्रपान' अर्थात् जीवों के उपभोग योग्य इस अंश को रश्मियें उत्पन्न करती हैं। (२) विद्वान् लोग प्रजाओं और भूमि के श्रेष्ठ अंश को 'इन्द्र-पान' अर्थात् राजोपभोग्य करते हैं। इसी प्रकार शिष्यवत् विद्या की कामनायुक्त पुरुष आप्त जनों की (इडः ऊर्मिम्) वाणी के उत्तम अंश को (इन्द्र-पानम् अकृण्वत) उत्तम जीवों में से रसवत् पान करने योग्य वा इन्द्र आचार्य द्वारा पान करने योग्य ज्ञान का अभ्यास करें।

याः सूर्यो र॒श्मिभि॑रात॒तान॒ याभ्य॒ इन्द्रो॒ अर॑दद्गा॒तुमू॒र्मिम्।
ते सि॑न्धवो॒ वरि॑वो धातना नो यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ४।१४

भा०—(सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) अपनी किरणों से जिस प्रकार जलों को (आततान) फैला कर आकाश में व्यापक कर देता है और (याभ्यः) जिन जलों के लिये (इन्द्रः) विद्युत् (ऊर्मिम्) गमन योग्य (गातुम्) मार्ग को (अरदद्) बनाता है, उसी प्रकार (सूर्यः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (रश्मिभिः) रश्मियों के समान अपने अधीन शासकों से (याः आततान) जिन आप्त प्रजाओं को विस्तृत करता है। और (याभ्यः) जिन प्रजाओं के हित के लिये (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (ऊर्मिम्) उन्नत भूमि को (अरदत्) कृषि द्वारा सम्पन्न करता है। अथवा (याभ्यः अद्भयः) जिन जल-धाराओं के लिये राजा भूमि खुदवा कर नहरें बनवाता है (ते) वे (सिन्धवः) नदियां वा जल-धाराएं (वः) हमें (वरिवः धातन) उत्तम धन प्रदान करें। हे उत्तम प्रजाजनों (ते) वे (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमें सदा उत्तम कल्याणजनक उपायों से पालन करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[४८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ ऋभवः । ४ ऋभवो विश्वेदेवा वा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक्पंक्तिः । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ १ ॥

भा०—हे (ऋभुक्षणः) सत्य ज्ञान वा महान् ऐश्वर्य का सेवन और पालन करने वाले बड़े पुरुषो ! हे (वाजाः) ज्ञानी पुरुषो ! हे (मघवानः) प्रशस्त धनों के स्वामी जनो ! हे (नरः) उत्तम नायको ! आप लोग (सुतस्य) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य से (अस्मे) हमें (मादयध्वम्) खूब प्रसन्न, सुखी करो । (वः) आप लोगों में से (अर्वाचः) नये नये (क्रतवः न विभ्वः) बुद्धिमान एवं विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष (यातां यात्री जनों के लिये (नर्यं रथं) सब मनुष्यों को सुखदायी रथ (वर्त्तयन्तु) चलाया करें ।

ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२॥

भा०—(वः) आप लोगों में से (ऋभुः) सत्य व्यवहार, यज्ञ, धन और बल से चमकने वाला वा महान् सामर्थ्यवान् पुरुष (ऋभुभिः) उसी प्रकार सत्य धनादि से समृद्ध, अधिक सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ मिलकर और (वाजः) बलवान् पुरुष भी (वाज-सातौ) युद्ध काल में (अस्मान् अवतु) हमारी रक्षा करे । हम लोग (विभ्वः) विशेष बलशाली होकर (विभुभिः) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुषों के साथ मिलकर (शवसा) अपने बल से (शवांसि) शत्रु के सैन्यों को (अभि स्याम) पराजित करें । और (युजा) सहयोगी (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राजा के साथ मिलकर (वृत्रं तरुषेम) बढ़ते हुए शत्रु को नाश करें ।

ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्विनृम्णम् ३

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, (ऋभु-क्षाः) अति तेजस्वी पुरुषों को अपने अधीन बसाने हारा (वाजः) संग्राम-कुशल (अर्यः) स्वामी, (शत्रोः मिथत्या) शत्रु के मारने के लिये (विभ्वान्) बड़े २ सामर्थ्यवान् पुरुषों को प्राप्त करे । और वे सब मिलकर (नृम्णम्) धनैश्वर्य को (वि कृण्वन्) विविध प्रकारों से उत्पन्न करें । (उपर-ताति) मेघादि के समान शरवर्षी अस्त्रों से करने योग्य युद्ध काल में (ते चित् हि) वे ही (विश्वान् अर्यः) सब बढ़ते शत्रुओं को मारे और (शासा) शासन और शस्त्र-बल से (पूर्वीः) अपने से पूर्व विद्यमान सेनाओं को भी (अभि सन्ति) मात करें ।

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४।१५॥

भा०—(देवासः) विद्वान्, दानशील पुरुष (नः) हमारे (वरिवः) उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि (कर्त्तन) करें । (विश्वे देवासः) सब वीर पुरुष (स-जोषाः) समान प्रीतियुक्त होकर (नः अवसे भूत) हमारी रक्षा के लिये तैयार रहें । (वसवः) समस्त वसु, बसे प्रजाजन, बसाने वाले शासक और पृथिवी, वायु सूर्यादि (अस्मे) हमें (इषं ददीरन्) अन्न और इच्छानुकूल ऐश्वर्य प्रदान करें । हे विद्वानो ! (यूयं) आप सब लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारा सदा कल्याणकारी उपायों द्वारा पालन करें । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

(४६)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आपो देवताः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् ।
४ विराट् त्रिष्टुप् ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥

भा०—(समुद्र-ज्येष्ठाः) एक साथ ऊपर उठने वाले, उत्तम मेघों में स्थित, (देवीः आपः) उत्तम जल (अनिविशमानाः) कहीं भी स्थिर न रहते हुए, (सलिलस्य मध्यात् पुनानाः) अन्तरिक्ष के बीच में से पवित्र करते हुए (यन्ति) आते हैं। (याः) जिनको (वज्री इन्द्रः) तीव्र बल से युक्त विद्युत् वा सूर्य (वृषभः) और वर्षणशील मेघ या वायु (रराद) छिन्न भिन्न करता है। (ताः आपः) वे जल (इह) इस पृथिवी पर (माम्) मुझ वसे प्रजाजनों को (अवन्तु) रक्षा करते हैं। इसी प्रकार (देवीः आपः) उत्तम आप्त प्रजाएं और सेनाएं (समुद्र-ज्येष्ठाः) समुद्र के समान अपार धन-बलशाली पुरुष को बड़ा मानने वाली (सलिलस्य मध्यात् पुनानाः) अभिषेक योग्य जल के बीच स्वयं पवित्र हुई या सेनापति को पवित्र करती हुई कहीं भी स्थिर स्थान को न प्राप्त होकर प्राप्त होती हैं उनको बलशाली राजा ही (रराद) वश करता है, वे राष्ट्र जन की रक्षा करें।

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

भा०—(याः) जो (आपः) जल (दिव्याः) आकाश में उत्पन्न, या सूर्य विद्युतादि से उत्पन्न (उत वा) और जो (स्रवन्ति) बहती हैं जो (खनित्रिमाः) खोदकर प्राप्त की जायें (उत वा) और (याः स्वयं-जाः) जो स्वयं आप से आप भूमि से उत्पन्न हुई हों, (याः) जो (समुद्रार्थाः) समुद्र आकाश से आने वाली या नदी रूप से समुद्र को जाने वाले, (शुचयः) शुद्ध (पावकाः) पवित्र करने वाली (आपः) जलधाराएं हैं वे (देवीः) उत्तम गुणों से युक्त होकर (इह माम् अवन्तु) इस राष्ट्र में मेरी रक्षा करें। इसी प्रकार आप्त प्रजाएं भी लोक-व्यवहारों, विद्याविज्ञान

में कुशल 'दिव्य' हैं। 'खनि' खान आदि की रक्षक 'खनित्रिम' या कृषि, कूप, खननादि से जीने वाली 'खनित्रिम' हैं। स्वयं अपने व्यवसाय या धन से बढ़ने वाले 'स्वयंजा' समुद्रवत् गम्भीर पुरुष के लिये अपने को सौंपने वाले भृत्यजन, ईमानदार और (पावकाः) अग्निवत् अन्यों को उपदेश ज्ञानादि से पवित्र करने वाले गुरु आदि सभी मुझ प्रजा वा राजा की यहां इस राष्ट्र वा राष्ट्रपति पद पर मेरी रक्षा करें।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

भा०—(यासां मध्ये) जिन जलों या प्रजाजनों के बीच में अभिषिक्त होकर (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा द्वारा स्वयंवृत राजा (जनानाम्) सब मनुष्यों के (सत्यानृते) सत्य और झूठ दोनों का (अवपश्यन्) विवेक करता हुआ (याति) प्राप्त होता है। वे (मधुश्चुतः) मधुर गुणों से युक्त, (शुचयः) शुद्ध और (याः) जो (पावकाः) पवित्र करने वाली हैं (ताः देवीः आपः) वे उत्तम गुणयुक्त जलधाराएं और विद्वान् प्रजाएं (माम् अवन्तु) मुझ राजा वा प्रजाजन का पालन करें।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥१६॥

भा०—(यासु) जिन जलों वा प्रजाओं के बीच (वरुणः) प्रजाओं द्वारा वरण किया गया पुरुष अभिषिक्त होकर (राजा) राजा बन जाता है। (यासु सोमः) जिनके बीच में नाना ओषधिवर्ग, तथा सौम्य स्वभाव के विद्वान् हैं (यासु) जिन के बल पर (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (ऊर्जम् मदन्ति) अन्न से तृप्ति लाभ करते, और बल प्राप्त करते हैं (यासु) जिनके बीच में (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के बीच हितकारी (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी नेता (प्रविष्टः) प्रविष्ट है (ताः आपः देवीः)

वे आप्त दिव्य गुण युक्त जल और प्रजाजन (माम् इह अवन्तु) मुझे इस लोक में रक्षा करें । इति षोडशो वर्गः ॥

(५०)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ मित्रावरुणौ । २ अग्निः । ३ विश्वेदेवाः ॥ ४ नद्यो देवताः ॥
छन्दः—१, ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । २ निचृज्जगती । ४ भुरिग्जगती ॥
चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) स्नेहवान् और कष्टों के निवारण करने वाले जनो ! (इह) इस लोक में आप दोनों माता पिता के समान (माम् रक्षतम्) मेरी रक्षा करें । (कुलाययत्) घर, या स्थान घेर कर संघ बना कर रहने वाला वा कुत्सित रूप प्राप्त कराने वाला, और (वि-श्वयत्) विविध रूपों में फैलने और विविध प्रकार से शोथ प्रगट करने वाला रोग, विषादि पदार्थ (नः मा आगन्) हमें प्राप्त न हो । (अजकावं) 'अजक' अर्थात् भेड़ बकरियों के समान छोटे जन्तुओं को खा जाने वाले (दुर्दशीकं) कठिनता से दीखने वाले अजगरादि-वत् नाशकारी जन्तु को मैं (तिरः दधे) दूर करूं । (त्सरुः) कुटिल-चारी सर्प आदि (पद्येन रपसा) पैर से होने वाले दोष द्वारा (मां मा विदत्) मुझे प्राप्त न हो । कुटिलचारी सर्पादि मेरे पैर में न काट खावें । इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा का प्रयोग विष दूर करने में पूर्वाचार्यों ने लिखा है । इस दृष्टि से इस मन्त्र में आये 'मित्र' शब्द से स्नेहयुक्त घृत और 'वरुण' शब्द से 'जीरे' का ग्रहण होता है । दोनों के गुण देखिये राजनिघण्टु में—गोघृतं—"वातपित्त विषापहम्" । 'जीरक शुक्ल'— 'कृमिघ्नी विषहन्त्री च' ॥ अथवा—जो पदार्थ विषादि का योग हो जाने पर

भी जीव को मरण से बचा सकें वे 'मित्र' तथा जो पदार्थ कष्टों का पहले ही वारण कर सकें, जिनकी उपस्थिति में रोगकारी जन्तु वा सर्प, वृश्चिक, दंश, मशकादि दूर भाग जायं वे पदार्थ 'वरुण' वर्ग में रखने योग्य हैं। इसी प्रकार विष भी दो प्रकार के हैं। एक 'कुलाययत्' जो देह में कुत्सित रूप लावे, दूसरा 'वि-श्वयत्' जो विविध शोथ उत्पन्न करे। इसी प्रकार रोगकारी जन्तु दो प्रकार के हैं एक बड़ी सर्प जाति अजगरादि, और 'अजकाव', दूसरे दुर्दशीक जो कठिनता से दृष्टिगोचर हों। प्रायः ये सब वर्ग कुटिल या छद्मगति से जाने से 'त्सरु' हैं। वे प्रायः (पद्येन रपसा) पैर के अपराध से मनुष्यों पर आघात करते हैं। सांप बिच्छू आदि पर पैर आजाने से वे काट खाते हैं।

यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत्।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः २

भा०—(यत्) जो (वन्दनं) देह को जकड़ने वाला विष (विजामन्) विविध पीड़ा के उत्पत्ति स्थान रूप पेट या (परुषि) पोरु या सन्धि स्थान पर (भुवत्) उत्पन्न होता है और जो (अष्ठीवन्तौ) स्थूल अस्थि से युक्त गोडों और (कुल्फौ) पैर के टखनों को (परि देहत्) सुजा दे, (तत्) उस विषमय रोग को (अग्निः) अग्नि तत्व (शोचत्) सन्तप्त करता हुआ (इतः बाधताम्) इस देह से दूर करे। (त्सरुः) छद्म गति से छुए देह में फैलने वाला रोग (पद्येन रपसा) पैर में विद्यमान दुखदायी रोग रूप से (मा मां विदत्) मुझे प्राप्त न हो। अर्थात् सन्धिवात, गठिया आदि मुझे न हो। 'अग्नि' शब्द से अग्नि तत्व, सूर्यताप, अग्नि बीज, रसटोक्स, ब्रायोनिया आदि आग्नेय पदार्थ लिये जाते हैं।

अग्निकः चित्रकः। अग्निको भल्लातकः। अग्निजः अग्निजारः। अग्निगर्भा तेजस्विनी। अग्निगर्भः सूर्यकान्तः। अग्निजिह्वा कलिकारी, अग्निज्वाला धातकी महाराष्ट्री च। अग्निदमनी। अग्नि धमनो निम्बः। अग्नि-

भासा ज्योतिष्मती । अग्निमन्थः । अग्निवल्लभः राजा सर्वकश्च । अग्नि वीर्यम् सुवर्णम् । अग्निसंभवः कसुम्भम् । अग्नि सहायः परावतः । अग्नि-सारो रसाञ्जनम् । अग्निकालः चित्रकः भल्लातकः सुवर्ण च । इत्येते सर्वे पदार्था वातदोषशमनाः भवन्ति । ऐतेषां गुणाः आयुर्वेद वैद्यकग्रन्थेषु द्रष्टव्याः ।

यच्छ॑ल्म॒लौ भव॑ति॒ यन्न॒दीषु॒ यदोष॑धीभ्यः॒ परि॒ जाय॑ते वि॒षम्।
विश्वे॑ दे॒वा निरि॒तस्तत्सु॑वन्तु मा मां पद्ये॑न॒ रप॑सा विद॒त्त्सरुः॑ ३

भा०—(यत् विषम्) जो जल या रस (शल्मलौ भवति) शाल्मलि वर्ग के वृक्षों में होता है (यत् विषम् नदीषु) जो जल, वा रस नदियों में होता है, (यत् विषम्) जो रस (ओषधिभ्यः परि जायते) ओषधियों से उत्पन्न होता है, (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् जन (तत्) उस नाना प्रकार के जलों या रसों को (इतः) इन २ स्थानों से (निः सुवन्तु) ले लिया करें और चिकित्सा का कार्य करें । जिससे (त्सरुः) छुपी चाल का रोग (मां) मुझे (पद्येन रपसा) आने वाले पापाचरण से वा चरणादि के अपराध से (मा विदत्) न प्राप्त हो । बड़, पीपल, गूलर आदि का दुग्ध रस आदि भी वातनाशक, सूजाक, सिफ़लिसादि रोगों के भयंकर विषों का नाश करते हैं इसी प्रकार नाना नदियों और ओषधियों के रसों से आने वाले सब प्रकार के कष्ट, ज्वर, कुष्ट, पामा आदि रोग नष्ट होते हैं ।

याः प्र॒वतो॑ नि॒वत॑ उ॒द्वत॑ उद॒न्वती॑रनुद॒काश्च॒ याः ।
ता अ॒स्मभ्यं॒ पय॑सा॒ पिन्व॑मानाः शि॒वा दे॒वीर॑शिप॒दा भ॑वन्तु॒ सर्वा॑ न॒द्यो॑ अशिमि॒दा भ॑वन्तु ॥ ४ ॥ १७ ॥

भा०—(याः) जो नदियां (प्रवतः) दूर २ देशों तक जाने वाली, (याः निवतः) जो नीचे की ओर बहने वाली, (याः उद्वतः) जो ऊंचे की ओर जाने वाली, (उदन्वतीः) जो प्रचुर जल वाली, (याः च अनु-

दकाः) और जो जलरहित या अल्प जल की नदियां हैं (ताः) वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये (पयसा) उत्तम जल से देश को सींचती हुई (शिवाः भवन्तु) कल्याणकारी हों (देवीः) सुखप्रद, अन्नादि देने वाली हों और (अशिपदाः) भोजनार्थ सब प्रकार के अन्नोत्पादक हों और (सर्वाः नद्यः) सब नदियें (अशिमिदाः भवन्तु) अहिंसाकारिणी हों । अध्यात्म में—(१) (कुलाययत्) कुलाय अर्थात् अहंकारादि कृति को उत्पन्न करने वाला और (विश्वयत्) विश्व को बनाने वाला प्रधान प्रकृतितत्त्व (नः मा आगन्) हमें प्राप्त न हो । 'मित्र' और 'वरुण' प्राण और उदान गुरुजन मेरी रक्षा करें । (अजकावं) 'अजक' आत्माओं के समूह का रक्षक परब्रह्म (दुर्दशीकं) बड़ी कठिनता से देखे जाने योग्य है । तो भी मैं उसे (तिरः) सदा विद्यमान के समान वा सब से तीर्ण, पृथक् रूप में (दधे) धारण करूं । जिससे (त्सरुः) ब्रह्मचारी, कुटिल काम क्रोधादि (पद्येना रपसा मा विदत्) आचार सम्बन्धी पाप से हमें प्राप्त न हो । (२) जो आप (विजामन्) विविध जन्म लेने में और पर्व पर बाधक होता है, जो (अष्ठीवन्ती परिकुल्फौ च) अस्थि वाले (कुल्फौ = कुलपौ) प्राणगणों के पालक स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के देहों में (परि रेहत्) व्यापता है 'अग्निः' ज्ञानी पुरुष प्रभु उस अज्ञान दोष को इसी जन्म में नाश करे । (३) जो (विषम्) विविध बन्धनों को काटने में समर्थ ज्ञान-शान्तिप्रद (नदीषु) उपदेष्टा गुरुओं में हो या प्रभु में हो और जो बल वा ज्ञान (ओषधीभ्यः) पापदाहक तेज को धारण करने वाली प्रजाओं में है सब विद्वान् उस ज्ञान को ओषधि रसवत् मेरे लिये प्राप्त करावें । (४) इसी प्रकार उत्तम, मध्यम, निकृष्ट ज्ञानवान् अज्ञानवान् सभी मनुष्य प्रजाएं सुख कल्याणकारिणी हों, ज्ञान अन्नादि दें, सब (अशि-पदाः) अन्न देने वाली और (अशिमिदाः) अहिंसक हों । इति सप्तदशो वर्गः ॥

(५१)

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
तृचं सूक्तम् ॥

आ॒दि॒त्याना॒मव॑सा॒ नूत॑नेन सक्षी॒महि॒ शर्म॑णा॒ शन्त॑मेन ।
अ॒ना॒गा॒स्त्वे अ॑दिति॒त्वे तु॒रास॑ इ॒मं य॒ज्ञं द॑धतु॒ श्रोष॑माणाः ॥१॥

भा०—(आदित्यानाम्) 'अदिति' अखण्ड और अदीन परमेश्वर के उपासक, प्रजाओं को अपनी शरण में लेने वाले उत्तम पुरुषों के (नूतनेन अवसा) अति उत्तम ज्ञान से और (शन्तमेन शर्मणा) अति शान्ति-दायक गृहवत् देह से हम (सक्षीमहि) अपने आपको सम्बद्ध करें । वे (तुरासः) अति शीघ्रकारी, (श्रोषमाणाः) हमारे दुःख-सुख, विनयादि को सुनते हुए हमारे (इमं यज्ञं) इस उत्तम सत्संग ज्ञान दान आदि सम्बन्ध को (अनागास्त्वे) हमें पाप रहित करने और (अदितित्वे) अखण्ड बनाये रखने के लिये (दधतु) सदा स्थिर रक्खे ।

आ॒दि॒त्यासो॒ अदि॑तिर्मादयन्तां मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णो॒ रजि॑ष्ठाः ।
अ॒स्माकं॑ सन्तु॒ भुव॑नस्य गो॒पाः पिब॑न्तु॒ सोम॒मव॑से नो अ॒द्य ॥२॥

भा०—(आदित्यासः) पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान्, 'आदिति' प्रभु परमेश्वर के उपासक स्वयं (अदितिः) यह भूमि या, माता पितादि, (मित्र) स्नेही जन, (अर्यमा) न्यायकारी दुष्टों का नियन्ता (वरुणः) श्रेष्ठ जन, (रजिष्ठः) अति धर्मात्मा, वे सब (अस्माकं) हमारे (भुवनस्य) समस्त लोग (गोपाः) रक्षक (सन्तु) हों । वे (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (अद्य) आज (सोमम् पिबन्तु) ओषधि रस के समान अपने को सदा स्वस्थ रखने के लिये अल्प मात्रा में ही सदा ऐश्वर्य का भोग करें ।

आ॒दि॒त्या विश्वे॑ म॒रुत॑श्च॒ विश्वे॑ दे॒वाश्च॒ विश्व॑ ऋ॒भव॑श्च॒ विश्वे॑।
इन्द्रो॑ अ॒ग्निर॒श्विना॑ तुष्टु॒वा॒ना यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ३।१८

भा०—(विश्वे आदित्याः) समस्त बारह मासों के समान नाना सुखप्रद विद्वान् (विश्वे मरुतः) समस्त वायुगण, समस्त मनुष्य, (विश्वे देवाः च) समस्त विद्वान् पुरुष, और पृथिवी आदि लोक, (विश्वे ऋभवः च) समस्त सत्य और तेज से प्रकाशित जन (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (अग्निः) तेजस्वी, (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष, ये सब (तुष्टुवानाः) स्तुति किये जायं। हे स्वजनो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब लोग हमें उत्तम कल्याणकारी साधनों से सदा पालन करें। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[५२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१, ३ स्वराट्पंक्तिः । २ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम्

आ॒दि॒त्यासो॒ अदि॑तयः स्याम॒ पूर्दे॑व॒त्रा व॑सवो मर्त्य॒त्रा।
सने॑म मित्रावरुणा॒ सन॑न्तो॒ भवे॑म द्यावापृथिवी॒ भव॑न्तः ॥ १ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी, ब्रह्मचारी निष्ठ पुरुषो ! हम लोग भी (अदितयः) अखण्ड बलशाली (स्याम) हों। हे (वसवः) गुरु के अधीन रहकर ब्रह्मचर्य पालन करने हारे विद्वान् पुरुषो आप लोग, (देवत्रा) विद्वानों और (मर्त्यत्रा) मनुष्यों के बीच (पूः) नगरी के समान सब के रक्षक होओ। हे (मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और श्रेष्ठ जनो ! हम लोग (सनन्तः) ऐश्वर्य को प्राप्ति वा भोग करते हुए भी (सनेम) दान किया करें। हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवीवत् माता पिता जनो ! हम (भवन्तः) उत्तम सामर्थ्यवान् होकर (भवेम) सदा रहें।

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही और (वरुणः) दुःखों और पापों के वारक श्रेष्ठजन और (गोपाः) रक्षक जन (नः) हमें (तत् शर्म मामहन्त) वह नाना सुख प्रदान करें । (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रों को भी सुख दें । (वः) आप लोगों में रहते हुए हम (अन्य-जातम् एनः) औरों से उत्पन्न अपराध, या पाप का (मा भुजेम) भोग न करें । हे (वसवः) बसे विद्वान् जनो ! (एत् चयध्वे) जिसको आप लोग नाश करो (तत मा कर्म) वह काम हम न करें ।

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ३।१९

भा०—(तुरण्यवः) शीघ्र कर्म करने में कुशल, अप्रमादी, (अंगिरसः) देह में प्राणवत् राष्ट्र में तेजस्वी पुरुष (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वसुखदाता प्रभु को (इयानाः) स्मरण करते हुए उसके (रत्नं) परमैश्वर्यमय राज्य-रूप रत्न को प्राप्त करें । (तत्) वह ही (नः) हमारा (यजत्रः) अति पूज्य, सर्व सुखदाता (महान्) बड़ा (पिता च) पालक पिता है । (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष (समनसः) एक समान चित्त होकर (जुषन्त) प्रेम से वर्त्ताव करें । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[५३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ द्यावापृथिव्यौ देवते ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥ १ ॥

भा०—(द्यावा पृथिवी) भूमि और सूर्य के समान (बृहती)

बड़ी, (यजत्रे) सत्संग करने योग्य, पूज्य (देव-पुत्रे) विद्वान् पुत्रों के माता पिताओं को मैं (यज्ञैः) दान, मान, सत्कारों से, और (नमोभिः) नमस्कारों से (सबाधः) जब २ बाधा या पीड़ा युक्त होऊं (ईडे) उनकी पूजा करूं। (त्ये चित् मही) उन दोनों पूज्यों को (पूर्वे) पूर्व के (गृणन्तः) उपदेश देने वाले (कवयः) विद्वान् पुरुष (पुरः दधिरे) सदा अपने सन्मुख, पूज्य पद पर स्थापित करते रहे हैं।

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (पूर्वजे पितरौ) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित होकर विद्वान् हुए (ऋतस्य सदने) सत्य व्यवहार के आश्रय रूप (पितरा) माता पिताओं को (नव्यसीभिः गीर्भिः) अतिस्तुत्य वाणियों से (प्र कृणुध्वम्) विशेष आदरयुक्त करो, उनके प्रति आदरयुक्त वचनों का प्रयोग किया करो। हे (द्यावा पृथिवी) सूर्य और भूमि के समान अन्न, जल, तेज और आश्रय से प्रजा का पालन करनेवाले माता पिताओ! आप लोग (नः) हमें (दैव्येन जनेन) विद्वान् पुरुषों से शिक्षित जनों के साथ (वाः महि वरूथं) अपने बड़े भारी घर को (आ यातं) प्राप्त होओ।

उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।२०

भा०—हे (द्यावा पृथिवी) भूमि सूर्य वा भूमि विद्युत् के तुल्य माता पिताओ! (सु-दासे) आप दोनों उत्तम भृत्यों और उत्तम दानशील गुणों से युक्त होओ। अथवा उत्तम दानशील पुरुष के लिये (वां) आप दोनों के (पुरूणि रत्न-धेयानि) बहुत से सुन्दर ऐश्वर्य (सन्ति) हैं। (यत्) जो भी (अस्कृधोयु) बहुत अधिक जीवनप्रद (असत्) हो वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो। (यूयं) आप सब लोग (स्वस्तिभिः)

उत्तम कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करें । 'अस्कृधोयु'—अस्कृधोयुरकृध्वायुः । कृध्विति ह्रस्व नाम । निकृत्तं भवति । इति विंशो वर्गः ॥

[५४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वास्तोष्पतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

वास्तो॑ष्पते॒ प्रति॑ जानीह्य॒स्मान्त्स्वा॑वे॒शो अ॑नमी॒वो भ॑वा नः ।
यत्त्वेम॑हे॒ प्रति॒ तन्नो॑ जुषस्व॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥१॥

भा०—हे (वास्तोः) वास करने योग्य गृह और राष्ट्र के (पते) पालक ! गृहपते ! राजन् ! तू (अस्मान् प्रति जानीहि) हम में प्रत्येक को जान वा प्रतिज्ञा पूर्वक हमारे प्रति व्यवहार किया कर । (नः) हमारे प्रति (सु आवेशः) उत्तम भावों और वर्त्तावों वाला तथा (स्व-आवेशः) अपने ही गृह के समान प्रेम से वर्त्तने वाला और (अनमीवः) रोगादि से पीड़ा न होने देने वाला (भव) हो । (यत् त्वा ईमहे) जो हम तेरे समीप आते और तुझ से याचना करते हैं (नः तत् प्रति जुषस्व) वह तू हमारे प्रति मान दर्शा और प्रदान कर । (नः द्विपदे शम्, नः चतुष्पदे शम्) हमारे दो पाये भृत्य पुत्रादि और चौ पाये गाय, भैंस अश्व आदि का भी कल्याणकारी हो ।

वास्तो॑ष्पते प्र॒तर॑णो न एधि गय॒स्फानो॒ गोभि॒रश्वे॑भिरिन्दो ।
अ॒जरा॑सस्ते स॒ख्ये स्या॑म पि॒तेव॑ पु॒त्रान्प्रति॑ नो जुषस्व ॥ २ ॥

भा०—हे (वस्तोः पते) निवास करने के योग्य देह, गृह, और राष्ट्र के पालक प्रभो ! गृहपते ! और राजन् ! तू (नः) हमारा (प्र-तरणः) नाव के समान संकट से पार उतारने वाला और (गय-स्फानः) गृह, प्राण और धन का बढ़ाने वाला (एधि) हो । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् !

चन्द्रवत् आह्लादक! तू (नः) हमें (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और अश्वों सहित प्राप्त हो। (ते सख्ये) तेरे मित्र-भाव में हम (अजरासः) जरा, वृद्धावस्था से रहित, सदा उत्साह और बल से युक्त होकर रहें। (नः) हम से तू (पिता इव पुत्रान्) पुत्रों को पिता के समान (जुषस्व) प्रेम कर।

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३।२१

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक! (ते) तेरी (रण्वा) अति रमणीय (शग्मया) सुखदायक (गातु-मत्या) उत्तम वाणी और उत्तम भूमि से युक्त (सं-सदा) सहवास और सभा से हम लोग (सक्षीमहि) सदा सम्बन्ध बनाये रक्खें। (क्षेमे) रक्षा-कार्य और (योगे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने में (नः) हमारी (वरं) अच्छी प्रकार (पाहि) रक्षा करो वा (नः वरं पाहि) हमारे धन की रक्षा करो। हे विद्वान् जनो! (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप लोग सदा हमारी उत्तम साधनों से रक्षा किया करें। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[५५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १ वास्तोष्पतिः। २—८ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री। २,३,४ बृहती। ५,७ अनुष्टुप्। ६,८ निचृदनुष्टुप्। अष्टर्चं सूक्तम्॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि नः॥ १॥

भा०—हे (वास्तोः पते) गृह, देह और राष्ट्र के पालक प्रभो! गृहपते! राजन्! तेरे अधीन (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के नाना रूप अर्थात् जीवगण बसते हैं। तू (अमीव-हा) सब प्रकार के रोगों, कष्टों का नाशक

और (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक (नः) हमारा (सखा एधि) मित्र होकर रह।

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥ २ ॥

भा०—हे (अर्जुन) धनादि के उत्तम रीति से उपार्जन करने वाले ! हे प्रतियत्नशील ! हे शुभ्र ! विद्वन् ! हे (सारमेय) सारवान्, बलवान् बलयुक्त एवं बहुमूल्य पदार्थों का मान-प्रतिमान करने और उनसे जाने जाने योग्य ! हे (पिशङ्ग) तेजस्विन् ! तू (दतः) अपने दांतों और अन्यों को खण्डित करने वाले शस्त्रों को (यच्छसे) नियम में रख। (बप्सतः) खाते हुए मनुष्यों के दांत जिस प्रकार (स्रक्वेषु उप) ओंठों के पास चमकते हैं उसी प्रकार (स्रक्वेषु) बने नगरों के पास (बप्सतः) राष्ट्र का भोग करते हुए तेरे (ऋष्टयः) शस्त्र-अस्त्रादि, (वि इव भ्राजन्त) विशेष रूप से चमकते हैं। (नि सु स्वप) हे बलवान् राजा के प्रजाजन ! तू अच्छी प्रकार सुख की निद्रा ले।

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनः सर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥

भा०—हे (सारमेय) उत्तम बल को धारण करने वाली सेना के उत्तम जन ! तू (स्तेनं) चोर और (तस्करं) उस निन्द्य कार्य को करने वाले डाकू के (राय) पास पहुंच और उसे पकड़। (पुनः सर) तू उस पर वार २ आक्रमण कर। तू (इन्द्रस्य स्तोतॄन्) राजा के प्रति उत्तम उपदेश करने वाले विद्वानों को (किं रायसि) क्यों पकड़ता है। (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमारे प्रति दुष्ट कुत्ते के समान क्यों कष्ट पीड़ा देता है, तू (नि सु स्वप) नियमपूर्वक सुख से निद्रा ले और अन्यों को भी सुख से सोने दे।

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतृनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (सू-करस्य) उत्तम कार्य करने वाले को (दर्दृहि) खूब बढ़ा । (सूकरस्य = सु-करस्य) उत्तम रीति से वश करने योग्य, सुसाध्य शत्रु को (दर्दृहि) विदीर्ण कर । उसमें अच्छी प्रकार भेद नीति का प्रयोग कर । और (सूकरः) उत्तम युद्धकर्त्ता शत्रुजन (तव दर्दृहि) तेरे राष्ट्र में भी भेदन करने में समर्थ है । तू (स्तोतॄन्) उत्तम विद्वानों के प्रति (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रायसि) दान दिया कर । (अस्मान् किम् दुच्छुनायसे) हमारे प्रति क्यों दुष्ट कुत्ते के समान दुर्व्यवहार करता है, (नि सु स्वप) तू सदा सावधान रहकर सुख की निद्रा सोया कर ।

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ५ ॥

भा०—राष्ट्र और गृह के उत्तमप्रबन्ध रहने पर (माता सस्तु) माता सुख की नींद सोवे । (पिता सस्तु) पिता भी सुख की नींद सोवे । (श्वा सस्तु) कुत्ता आदि रखवारे भी सुख से सोवें । (विश्पतिः सस्तु) प्रजाओं का स्वामी राजा भी सुख से सोवे । (सर्वे ज्ञातयः ससन्तु) सब सम्बन्धी जन भी सुख से सोवें । (अयम्) यह (अभितः जनः) चारों ओर बसा प्रजाजन भी (सस्तु) सुख से सोवे ।

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥

भा०—(यः आस्ते) जो बैठा हो (यः च चरति) जो चलता है, (यः जनः) जो मनुष्य (नः) हमें (पश्यति) देखता हो (तेषां) उन सबके (अक्षाणि) आंखों आदि इन्द्रियों को हम (संहन्मः) अच्छी प्रकार निमीलित करें जिससे बाहर के भीतर, भीतर के बाहर वालों को नहीं देख पावें ।

ऐसे (यथा) जैसे (इदं हर्म्यं) यह उत्तम भवन बना है (तथा) उसी प्रकार हम भी घर बनावें।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रात् सहस्र-शृङ्गः) समुद्र से सहस्रों किरणों वाले उगते सूर्य के समान (यः) जो तेजस्वी पुरुष (वृषभः) बलवान्, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला होकर (उत् आचरत्) उत्तम पद पर विराज कर न्यायानुकूल वर्त्तता है, (तेन सहस्येन) उस बलवान् पुरुष के सहयोग से (वयं) हम (जनान्) सब प्रजाजनों को (नि स्वापयामसि) सुख की निद्रा सोने दिया करें।

प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥२२॥ ३ ॥

भा०—(याः नारीः) जो स्त्रियां (प्रोष्ठे-शयाः) आंगन या उत्तम भवन पर सोती हैं (या वह्ये-शयाः) रथ आदि में सोती हैं (याः तल्प-शीवरीः) जो उत्तम सेजों में सोती हैं और (याः पुण्यगन्धाः स्त्रियः) जो पुण्य, उत्तम गन्ध वाली, शुभ-लक्षणा स्त्रियां हैं (ताः सर्वाः) उन सबको (स्वापयामसि) सुख की नींद सोने दें। ऐसा उत्तम राज्य और गृह का प्रबन्ध करें। अनुक्रमणिका में इस सूक्त को 'उपनिषत्' लिखा है। अतः अध्यात्म योजना देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य कां० ४सू०५। मं०१,३,६॥
इति द्वाविंशो वर्गः ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१ आर्ची गायत्री। २, ६, ७, ६ भुरिगार्ची गायत्री। ३, ४, ५ प्राजापत्या बृहती। ८, १० आर्च्युष्णिक्। ११

निचृदार्च्युष्णिक् १२, १३, १५, १८, १६, २१ निचृत्त्रिष्टुप् । १७, २० त्रिष्टुप् । २२, २३, २५ विराट् त्रिष्टुप् । २४ पंक्तिः । १४, १६ स्वराट्पंक्तिः ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥ १ ॥

भा०—(ईम्) सब प्रकार से (वि-अक्ताः) विशेष रूप से तेजस्वी, कान्तियुक्त, कमनीय गुणों से सम्पन्न, (सनीडाः) एक ही समान स्थान में रहने वाले, (रुद्रस्य) दुःखों, कष्टों को दूर करने वाले, दुष्टों के रुलाने वाले, प्रभु, परमेश्वर, विद्योपदेष्टा आचार्य के (के मर्याः) कौन विशेष मनुष्य (नरः) उत्तम नायक और (सु-अश्वाः) उत्तम अश्वों वाले वा जितेन्द्रिय हैं। (२) रुद्र, सेनापति के नायक विशेष कान्तियुक्त, (स-नीडाः) नीले तुर्रे वाले, (मर्याः) शत्रु को मारने में समर्थ, उत्तम घुड़सवार सब ओर रहें। (३) रुद्र परमेश्वर के (नरः) जीव (स-नीडाः) देह सहित, मरणधर्मा, उत्तम इन्द्रियों से सम्पन्न हैं।

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन जीवों के (जनूंषि) जन्मों को (नकिः वेद हि) निश्चय से कोई भी नहीं जानता। (अङ्ग) हे विद्वन्! (ते) वे सब (मिथः) स्त्री पुरुष, नर मादा परस्पर मिलकर (जनित्रम्) जन्म (विद्रे) प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार सेनापति सैन्य भटों की जन्म जाति कौन जाने? वे परस्पर मिलकर अपना सैन्य रूप प्रकट करते हैं।

अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥३॥

भा०—वे जीवगण (मिथः) परस्पर (स्वपूभिः) अपने साथ सोने वाली अथवा (स्वपूभिः = स्व-भूभिः) अपने उत्पन्न होने योग्य भूमियों से (मिथः) परस्पर मिलकर (अभि वपन्त) परस्पर सन्मुख होकर बीज वपन करते हैं। वे (वात-स्वनसः) वायु के समान प्राण के बल पर ध्वनि करने वाले (श्येनाः) बाजपक्षी के समान एक देह से

दूसरे देह में जाने वाले होकर भी (अस्पृध्रन्) परस्पर स्पर्द्धा करते हैं, भोग्य पदार्थों में ममता करते हैं । (२) वीर सैनिक (मिथः) परस्पर मिलकर (स्वपूभिः) अपने शस्त्रों से (अभि वपन्त) सन्मुख शत्रुओं का छेदन करते और (वात-स्वनसः) वायुवत् गर्जन करते हुए (श्येनाः) बाज के समान आक्रमण करते हुए (अस्पृध्रन्) शत्रु के साथ स्पर्द्धा करते, उससे बल में बढ़ने और जीतने का यत्न करते हैं ।

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥ ४ ॥

भा०—(पृश्निः) सेचन करने वाला सूर्य और (मही) भूमि (यत्) जिस प्रकार से (ऊधः) जलधारक मेघ को (जभार) धारण करता है इसी प्रकार (पृश्निः) वीर्यसेक्ता पुरुष और (मही) पूज्य माता (यत्) जो मिलकर बालक और उसके पान के लिये (ऊधः) स्तनादि धरती है (एतानि निण्या) इन सत्य सिद्धान्तों को (धीरः) बुद्धिमान् पुरुष (चिकेत) अवश्य जाने ।

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५॥

भा०—(सा) वह (विट्) प्रजावर्ग (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् विद्वान् पुरुषों से ही (सु-वीरा) उत्तम वीरों वाली (अस्तु) हो । वह (सनात्) सदा (सहन्ती) शत्रु को पराजित करती हुई और (नृम्णं पुष्यन्ती) धनैश्वर्य को पुष्ट, समृद्ध करती हुई रहे । इसी प्रकार स्त्री में पुत्र रूप से पति प्रवेश करता है इससे वह 'विट्' है । वह भी गृहस्थ का भार सहती हुई, धन की वृद्धि करती हुई उत्तम पुत्रों से सुपुत्रा हो ।

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया सम्मिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६॥

भा०—इसी प्रकार राजा की प्रजाएं और गृहस्थ में स्त्रियें और सेनापति की सेनाएं भी (येष्ठाः) अपने लक्ष्य की ओर जाने में उत्तम, (शुभाः) कान्तियुक्त, कल्याणकारिणी (शोभिष्ठाः) उत्तम रीति से सुशोभित

(श्रिया) उत्तम लक्ष्मी से (सं-मिश्लाः) संयुक्त वा (श्रिया) आश्रय करने योग्य सहचर, सहचरी से युक्त (ओजाभिः) बल पराक्रमों से (उग्राः) सदा बलवान् हों। वे (यामं येष्ठाः) उत्तम नियम, प्रबन्ध, विवाहादि बन्धनों को प्राप्त हों।

उ॒ग्रं व॒ ओजः॑ स्थि॒रा शवां॒स्यधा॑ म॒रुद्भि॑र्ग॒णस्तुवि॑ष्मान् ॥७॥

भा०—हे विद्वानो, वीरो, प्रजाजनो वा जीवो! (वः) आप लोगों का (ओजः) बल पराक्रम (उग्रं) उन्नत कोटि का, शत्रुओं को भयप्रद, गम्भीर और (वः शवांसि स्थिरा) आप लोगों का बल स्थिर और (मरुद्भिः सहगणः) बलवान् वीरों, प्राणों तथा विद्वानों सहित गण (तुविष्मान्) बलवान् हो।

शु॒भ्रो वः॒ शुष्मः॒ क्रुध्मी॒ मनां॑सि॒ धुनि॒र्मुनि॑रिव॒ शर्ध॑स्य धृ॒ष्णोः ८

भा०—हे वीर प्रजाजनो! विद्वानो एवं जीवो! (वः) आप लोगों का (शुष्मः) बल, बलवान् देह (शुभ्रः) शोभायुक्त, प्रशंसनीय हो। आप लोगों के (मनांसि) मन (क्रुध्मी) दुष्टों के प्रति क्रोधयुक्त हों। और (शर्धस्य) आप लोगों के बलवान् और (धृष्णोः) शत्रुपराजयकारी सैन्य का (धुनिः) सञ्चालक शत्रुओं और अधीनस्थों को कंपाने हारा, प्रभाववान् नायक (मुनिः इव) मननशील विद्वान् के समान गम्भीर विचारशील हो। सेना का नायक ओछा और अति कटुभाषी, क्षुद्रमति न हो।

सने॑म्य॒स्मद्यु॒योत॑ दि॒द्युं मा वो॑ दुर्म॒तिरि॒ह प्रण॑ङ् नः ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् वीर जनो! (अस्मत्) हम से अपना (सनेमि) चक्रधारा से युक्त (दिद्युम्) चमचमाते तेजस्वी शस्त्र बल को (युयोत) सदा पृथक् रक्खो। और (वः) आप लोगों की (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि (नः) हमें और (नः मतिः वः) हमारी दुष्टमति आपको (मा प्रणक्) कभी प्राप्त न हो, एक दूसरे का विनाश भी न करे।

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१०॥२३॥

भा०—(यत् नाम) जो उत्तम, नाम, कीर्त्ति वा अन्न (वः मरुतः) प्राणवत् प्रिय आप लोगों को (तृपत्) तृप्त करे, सुखी, प्रसन्न करे हे (वावशानाः) उत्तम अन्न, यशादि की कामना करने वाले सज्जनो ! मैं कुशल (तुराणां) अति शीघ्रकारी, अप्रमादी, शत्रुहिंसक (वः) आप लोगों के लिये वही (प्रिया नाम) प्रिय नाम वा अन्नादि पदार्थ (आ हुवे) आदर पूर्वक कहूँ और प्रदान करूं । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ११

भा०—हे वीर ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (स्वायुधासः) उत्तम शस्त्रास्त्र सम्पन्न, (इष्मिणः) उत्तम अन्न के स्वामी, (सु-निष्काः) उत्तम सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करने और उनको पदकादि रूप में शोभार्थ धारण करने वाले (उत) और (स्वयं) स्वयं (तन्वः शुम्भमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करने वाले होओ । अध्यात्म में—हे उत्तम जीवो ! आप लोग (स्वायुधासः = स्व-आयुधासः) उत्तम हथियारों वाले वा स्वयं अपने काम क्रोध आदि दुष्ट भीतरी शत्रुओं से लड़ने हारे (इष्मिणः) उत्तम इच्छा शक्ति से युक्त (सु-निष्काः) सुखपूर्वक देह से निष्क्रमण करने में समर्थ, और केवल देहमात्र से अलंकृत हो ।

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः १२

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (हव्या) खाने और लेने देने के सब पदार्थ (शुची) शुद्ध पवित्र हों । मैं (शुचि-भ्यः) शुद्ध पवित्र पदार्थों और स्वच्छ हृदय के पुरुषों से उनकी वृद्धि के लिये (शुचिं अध्वरं) शुद्ध पवित्र अहिंसक यज्ञ की (हिनोमि) वृद्धि करता हूं । (ऋत-सापः) सत्य के आधार पर प्रतिज्ञाबद्ध होने वाले (शुचि-जन्मानः) शुद्ध पवित्र जन्म धारण करने वाले (शुचयः) कर्म, वाणी

में शुद्ध, (पावकाः) पवित्र, अग्निवत् तेजस्वी, पुरुष (ऋतेन) सत्य ज्ञान से ही (सत्यम् आयन्) सत्य ज्ञान और सत्य व्यवहार को प्राप्त होते हैं।

अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः १३

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हे विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों के (अंसेषु) कन्धों पर (खादयः) उत्तम शस्त्र और (वक्षःसु) छातियों पर (रुक्माः) कान्तियुक्त आभूषण (उप शिश्रियाणाः) शोभा दे रहे हों। आप लोग (वृष्टिभिः विद्युतः न) वर्षाओं से विजुलियों के समान (आयुधैः) उत्तम हथियारों से (रुचानाः) चमकते हुए (स्वधाम्) जलवत् अन्न और अपने राष्ट्र भूमि के (अनु यच्छमानाः) अनुसार उसको वश करते हुए सुख से विजय करो।

वक्षः। सुरुक्माः इति सायणाभिमतः पदपाठः ॥

प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम्।
सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥ १४ ॥

भा०—(बुध्न्याः) आकाश में उत्पन्न मेघ जिस प्रकार (महांसि नामानि प्र ईरते) तेज और बहुत अधिक जलों को नीचे प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (बुध्न्याः) उच्च पद के योग्य, सर्वाश्रय योग्य (प्रयज्यवः) उत्तम यज्ञ दानशील पुरुषो ! आप लोग भी (महांसि) देने योग्य (नामानि) अन्नों को (प्र तिरध्वम्) उत्तम रीति से बढ़ाओ और दान किया करो। हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (एतम्) इस (गृहमेधीयं) गृहस्थों से प्राप्त वा गृह के निर्वाह योग्य (सहस्रियं भागम्) सहस्रों ग्रामों वा गृहों से प्राप्त करादि अंश को (जुषध्वम्) प्रेम पूर्वक स्वीकार करो।

यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा ॥१५।२४॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान दृढ़ बलवान्, प्राणों के समान प्रिय वीरो और विद्याप्रेमी, आलस्य रहित शिष्य जनो ! आप लोग (यदि) यदि (वाजिनः) ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् और (विप्रस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (हवीमन्) देने योग्य उत्तम ज्ञान और धन के लेने देने के व्यवहार में (इत्था) सत्य २ (स्तुतस्य) उपदिष्ट शास्त्र का (अधीथ) स्मरण रक्खो । (यम्) जिस धनादि को (अन्यः) दूसरा (अरावा) शत्रु वा वचनादि से रहित मूकजन (नू चित् आदभत्) अवश्य विनाश कर देवे ऐसे (रायः) प्रदेय धन ज्ञानादि को आप लोग (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्यवान् सुदृढ़, ब्रह्मचारी के हाथ (दात) प्रदान किया करो । विद्वानों को चाहिये कि गुरूपदिष्ट शास्त्र को अच्छी प्रकार याद रक्खें और विद्वान् उत्तम ब्रह्मचारी, विविध विद्योपदेश के योग्य पात्र में ही ज्ञान प्रदान करें। क्योंकि ज्ञान का (अरावा) अन्यों को प्रवचन द्वारा न देने वाला अवश्य नाश कर देता है । इसी प्रकार मनुष्यों को चाहिये धन के लेन देन में अपना २ इकरार स्मरण रक्खें। अपना धन भी बलवान् की रक्षा में रक्खें जिससे दूसरा शत्रु नष्ट न कर दे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः १६

भा०—(ये) जो (मरुतः) मनुष्य, वायु के तुल्य बलवान् और प्राणों के समान प्रिय (अत्यासः न) निरन्तर गति करने वाले अश्वों के समान (सु-अञ्चः) उत्तम आचरण करने और उत्तम आदर योग्य होवे (मर्याः) मनुष्य (यक्षदृशः न) पूज्य जनों को दर्शन करने वालों के समान (शुभयन्त) सदा उत्तम वस्त्रालंकार धारण कर सजें और सदा शुभ, उत्तम आचरण किया करें । और (ते) वे (हर्म्येष्ठाः) बड़े २

महलों में रहकर भी (शिशवः न शुभ्राः) बालकों के समान स्वच्छ निष्पाप आचार वाले और (वत्सासः न) गाय के बछड़ों के समान सदा (प्र-क्रीडिनः) खूब खेलने, विनोद करने के स्वभाव वाले और (पयः-धाः) दूध, अन्नादि के पीने खाने वाले हों ।

दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् १७

भा०—(मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुष (दशस्यन्तः) दान देते हुए और (सुमेके) उत्तम पूज्य (रोदसी) माता पिताओं की (वरिवस्यन्तः) सेवा शुश्रूषा करते हुए (नः मृडयन्तु) हमें सुख प्रदान करें । (गोहा) गौ आदि पशु समूह का मारने वाला गोहत्यारा और (नृहा) मनुष्यों को मारने वाला (वः) आप लोगों से (आरे) दूर हो और (वधः अस्तु) वध वा दण्ड करने योग्य हो ।

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः १८

भा०—हे (मरुतः) वीरो ! विद्वान् पुरुषो ! (होता) उत्तम दाता, (गृणानः) उपदेश करने हारा (सत्तः) उत्तमासन पर विराज कर (सत्राचीं) सत्य से युक्त वा एक साथ मिलकर प्राप्त करने योग्य (रातिं) दान, ज्ञान वा ऐश्वर्य को (जोहवीति) प्रदान करता है और जो (ईवतः) जल से युक्त (वृषणः गोपाः) मेघ के रक्षक वायु के समान (ईवतः) धनशाली, (वृषणः) बलवान् पुरुष का (गोपाः) रक्षक है (सः) वह (अद्वयावी) भीतर बाहर दो भाव न करता हुआ, निष्कपट होकर (उक्थैः) उत्तम वचनों से (वः) आप लोगों के प्रति (हवते) ज्ञान प्रदान करे और आप लोगों को आदर से बुलावे ।

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९॥

भा०—(इमे) ये (मरुतः) वायुवत् बलवान् वीर और प्राणवत् प्रिय विद्वान् लोग (तुरं) शीघ्र ही वा शीघ्रकार्य करने में कुशल, शत्रुओं को मारने वाले राजा को (रमयन्ति) सदा प्रसन्न रखते हैं और (इमे) ये (सहः) अपने बल से (सहसः) बलवान् शत्रुओं को भी (आ नमन्ति) झुका लेते हैं। वा (सहसः सहः आ नमन्ति) बलवान् राजा के बल के आगे झुकते हैं। वा (सहसः बलं आ नमन्ति) बलवान् शत्रु पराजयकारी बल, सैन्य वा धनुष को अपने अधीन रखते और नमाते हैं। (इमे) ये (वनुष्यतः) हिंसक वा क्रोधी से (शंसं नि पान्ति) प्रशंसनीय जन को बचा लेते हैं। (अररुषे) अदानी और अतिक्रोधी जन के विशेष दमन के लिये वे (गुरु द्वेषः) बड़ा भारी द्वेष अप्रीतिकर व्यवहार (दधन्ति) करते हैं।

इमे र॒ध्रं चि॒न्म॒रुतो॑ जुनन्ति॒ भृमिं॑ चि॒द्यथा॒ वस॑वो जु॒षन्त॑ ।
अप॑ बाधध्वं वृषण॒स्तमां॑सि ध॒त्त विश्वं॒ तन॑यं तो॒कम॒स्मे २०।२५।

भा०—हे (वरुण) वर्षणशील, मेघों को लाने वाले वायुओं के तुल्य बलवान् पुरुषो ! (इमे) ये (मरुतः) वायुगण जिस प्रकार (रध्रं चित् जुनन्ति) दृढ़ वृक्ष को भी हला देते हैं। उसी प्रकार आप लोग भी (रध्रं) वश करने योग्य प्रबल, समृद्धिमान् पुरुष को भी सन्मार्ग पर चलाओ। और (वसवः) पृथिवी आदि लोक जिस प्रकार (भृमिं) धारक सूर्य के प्रकाश का सेवन करते हैं उसी प्रकार आप लोग (भृमिं) अपने भरण पोषण करने वाले स्वामी तथा (भृमिं) भ्रमणशील, विद्वान् परिव्राजक का भी (जुषन्त) प्रेम से सेवन करें। आप लोग (तमांसि) सूर्य की किरणों के समान अन्धकारों को (अप बाधध्वं) शत्रुओं और खेदजनक मोह आदि को भी दूर करो। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

मा वो॑ दा॒त्रान्म॑रुतो॒ निर॑राम॒ मा प॒श्चाद्द॑घ्म रथ्यो विभा॒गे ।
आ नः॑ स्पा॒र्हे भ॑जतना वस॒व्ये॒३॒॑ यदीं॑ सुजा॒तं वृ॑षणो वो॒ अस्ति॑ २१

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् एवं वीर पुरुषो ! हम लोग (वः) आप लोगों को (दात्रात्) दान करने से (मा निर् अराम) कभी न रोकें, और (वः दात्रात् मा निर् अराम) आप लोगों के प्रति देने से हम कभी स्वयं न रुकें। हे (रथ्यः) उत्तम अश्वारोही जनो ! (विभागे) धन के विभाग से (नः पश्चात् मा दध्म) आप लोगों को पीछे न रक्खें। हे (वृषणः) बलवान्, सुखवर्षक उदार जनो ! (वः यत् ईम् सुजातम् अस्ति) आप लोगों का जो भी उत्तम द्रव्य है उसे (वसव्ये) धन सम्बन्धी (स्पार्हे) अभिलाषा योग्य पदार्थ के निमित्त (नः आ भजतन) हमें प्राप्त करो।

सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२॥

भा०—(यत्) जो (जनासः) मनुष्य (विक्षु) प्रजाओं के बीच में (शूराः) शूरवीर होकर (यह्वीषु ओषधीषु) बड़ी और बहुत सी ओषधियों में से (मन्युभिः) नाना ज्ञानों द्वारा (संहनन्त) नाना ओषधियों को मिलाते हैं हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! वे आप लोग (रुद्रियासः) रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन (पृतनासु अर्यः) सेनाओं में स्वामी के समान (नः त्रातारः भूत) हमारे रक्षक होओ। वीरों के पक्ष में—प्रजाओं में जो (संयत्) युद्ध क्षेत्र में (शूराः) शूरवीर (जनासः) जन (मन्युभिः हनन्त) क्रोधों से प्रेरित होकर आघात करते हैं वे (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुष के जन, और (अर्यः) स्वामी स्वयं भी (पृतनासु नः त्रातारः भूत स्म) संग्रामों में हमारे रक्षक होवें।

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, बलवान् पुरुषो ! (या) जिन कर्मों

का (वः) आप लोगों के हितार्थ (पुरा चित्) पहले ही (शस्यन्ते) उपदेश किया गया है उन (पित्र्याणि) माता पिता की सेवा और पालक जनोचित (उक्थानि) प्रशंसनीय कर्मों को आप (भूरि) खूब (चक्र) किया करो। (उग्रः) बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) वायुवत् बलवान् पुरुषों से ही (साढा) शत्रु को पराजय करने वाला और (अर्वा मरुद्भिः यथा वाजं सनिता) जैसे अश्व प्राण के बल से वेग को प्राप्त करता है उसी प्रकार (अर्वा) शत्रुहिंसक पुरुष ही (मरुद्भिः) विद्वान् पुरुषों की सहायता से ही (वाजं सनिता) संग्राम करने में समर्थ होता है।

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥ २४ ॥

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! हे प्राणवत् प्रियजनो ! (वीरः) शूरवीर और विविध विद्याओं का प्रवक्ता पुरुष और हमारा पुत्र (अस्मे) हमारे उपकारार्थ (शुष्मी अस्तु) बलवान् हो। (यः) जो (असुरः) उत्तम प्राणों के बल पर रमण करता हुआ (असुरः) शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ बलवान् होकर (जनानां) मनुष्यों का (विधर्त्ता) विशेष रूप से धारण पालन करने में समर्थ हो। (येन) और जिसके द्वारा हम (सु-क्षितये) उत्तम भूमि को प्राप्त करने के लिये (अपः) जलों के समान शत्रु और कर्मबन्धनों को और (अपः) आप्त, धर्मदाराओं को भी (तरेम) तरें, उनको प्राप्त कर गृहस्थ को सफल करें। (अध) और (स्वम् ओकः) अपने गृह को प्राप्त कर (वः अभि स्याम) आप लोगों के कृतज्ञ होकर रहें। समुद्रों में उत्तम भूमि प्राप्त करने के लिये विशेष दिशा में जहाज़ को लेजाने वाला विशेष वेगवान् प्रबल वायु भी 'वीर' है जिसके बलपर हम (अपः तरेम) समुद्री जलों को पार करने में समर्थ होते हैं और (स्वम् ओकः अभि स्याम) पुनः विदेशादि भ्रमण के बाद अपने गृह को कुशल से प्राप्त करते हैं।

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २५।२६

भा०—(तत्) वह (इन्द्रः) सूर्य, विद्युत् आदि (वरुणः) जल का स्वामी, (मित्रः) मित्र, (अग्निः) अग्नि, (आपः) जल, और (ओषधीः वनिनः) औषधियें और वन के वृक्ष सब (नः जुषन्त) हमें सुख प्रदान करें । हम लोग (मरुताम् उपस्थे) विद्वान् पुरुषों के समीप (शर्मन् स्याम) सुख से रहें । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम लोग हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—२, ४ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (उग्राः) प्रबल वायुगण (उर्वी रोदसी रेजयन्ति) विशाल भूमि और अन्तरिक्ष दोनों को कंपाते हैं और (यत् अयासुः) जब चलते हैं तब (उत्सं पिन्वन्ति) मेघ को बरसाते हैं उसी प्रकार (उग्राः) बलवान् पुरुष (यत् अयासुः) जब चलते वा प्राप्त होते हैं (उर्वी) बड़ी (रोदसी) सेनापतियों के अधीन स्थित उभयपक्ष की सेनाओं को (रेजयन्ति) कंपाते, भयभीत करते हैं, और (उत्सं) ऊपर उठने वाले विजेता को (पिन्वन्ति) जलों से अभिषिक्त करते हैं । हे (यजत्राः) दानशील. पूज्य सत्संगति युक्त जनो ! हे (मध्वः) मनन शील, हर्षकारी जनो ! (वः) आप लोगों का (मारुतं नाम) मनुष्यों का सा नाम, सामर्थ्य है आप लोग (यज्ञेषु) यज्ञों और युद्धों में (शवसा) बल और ज्ञान से (प्र मदन्ति) हर्षित होते और उत्तम उपदेश करते हो।

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् जनो ! आप लोग (निचेतारः हि) उत्तम धनों और ज्ञानों के संग्रहशील और (यजमानस्य) दान शील के (मन्म) अभिमत वस्तु (गृणन्त) उपदेश देने वाले को (पिप्रियाणाः) प्रसन्न करते हुए आप लोग (प्रणेतारः) उत्तम कर्म कुशल होकर (अस्माकं विदथेषु) हमारे यज्ञों में (वीतये) रक्षा और ज्ञानप्रकाश के लिये (बर्हिः) उत्तमासन पर (आसदत) विराजो । इसी प्रकार उत्तम नायक और उत्तम संग्रही जन संग्रामों, धनादि लाभों के लिये (बर्हिः) प्रजाजन पर अध्यक्ष होकर विराजें ।

नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥३॥

भा०—(यथा इमे) जिस प्रकार ये (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वीर मनुष्य (रुक्मैः) कान्तियुक्त (आयुधैः) हथियारों और (तनूभिः) शरीरों से (भ्राजन्ते) चमकते हैं (एतावत्) उतने (अन्ये मरुतः न) भ्राजन्ते) और दूसरे मनुष्य नहीं चमकते । ये (विश्व-पिशाः) सर्वाङ्ग सुन्दर जन (रोदसी पिशानाः) आकाश और भूमि दोनों को सुशोभित करते हुए सूर्य किरणों के समान (समानम् अञ्जि) एक समान दीप्ति-युक्त चिह्न को (शुभे कम्) शोभा के लिये (अञ्जते) प्रकट करते हैं ।

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ४

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों की (सा दिद्युत्) चमकती हुई उज्ज्वल नीति (ऋधक् अस्तु) सदा सच्ची हो (यत्) यदि चाहे हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता) पुरुष होने से (आगः कराम) अपराध भी करें । हे (यजत्राः) पूज्य जनो !

(तस्याम्) उस नीति में रहकर (वः मा अपि भूम) आप लोगों के प्रति अपराधी न हों । (वः चनिष्ठा) आप लोगों की अन्न ऐश्वर्यादि युक्त (सुमतिः अस्मे अस्तु) उत्तम मति हमारे लिये हो ।

कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥५॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! (कृते चित् अत्र) इस संसार में अपने किये कर्म और करने योग्य कर्त्तव्य में ही (रणन्त) सुख लाभ करो । आप लोग (अनवद्यासः) अनिन्दित उत्तम धर्म करने वाले, उत्तम कीर्त्तियुक्त (शुचयः) शुद्ध पवित्र आचारवान्, ईमानदार (पावकाः) अन्यों को भी पवित्र करने वाले होओ । हे (यजत्राः) उत्तम संगति योग्य, ज्ञान मान देने वाले सज्जनो ! आप लोग (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों और ज्ञानों से (नः अवत) हमारी रक्षा करो । आप लोग (वाजेभिः) अन्नों से (पुष्यसे) हमें पुष्ट करने के लिये (प्र तिरत) बढ़ाओ ।

उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥६॥

भा०—हे (मरुतः नरः) उत्तम नायक जनो ! आप लोग (विश्वेभिः नामभिः) सब प्रकार के उत्तम नामों से (स्तुतासः) प्रशंसित और शिक्षित होकर (हवींषि) उत्तम ज्ञान और नाना ऐश्वर्य (उप व्यन्तु) प्राप्त करें । (नः) हमारी प्रजाओं को (अमृतस्य ददात) अमृत, अन्न, दीर्घ जीवन प्रदान करो । (उत) और (रायः) उत्तम ऐश्वर्य (सूनृता) शुभ वचन और (मघानि) उत्तम धन (जिगृत) प्रदान करो ।

आ स्तुतासो मरुतो विश्वं ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२७

भा०—हे (मरुतः) विद्वानो ! आप (विश्वे) सब (सर्वताता) सबके सुखकारक कार्य में (स्तुतासः) प्रशंसित होकर (ऊती) उत्तम रक्षा सहित (सूरीन्) विद्वानों की (आ जिगात) आदरपूर्वक प्रशंसा करो। (ये) जो (शतिनः) सैकड़ों, असंख्य बलों या ग्रामों के स्वामी होकर (त्मना) स्वयं (नः) हमें (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं वे (यूयं) आप लोग (नः) हमें (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी साधनों से (नः पात) हमारी रक्षा करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

(५८)

वासिष्ठ ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६ भुरिक्पंक्तिः ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

प्र सा॒क॒मुक्षे॑ अर्चता ग॒णाय॒ यो दैव्य॑स्य॒ धाम्न॒स्तुवि॑ष्मान् ।
उ॒त क्षो॑दन्ति॒ रोद॑सी महि॒त्वा नक्ष॑न्ते॒ नाकं॒ निर्ऋ॑तेरवं॒शात् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् प्रजाजनो! (यः) जो (दैव्यस्य) देवों, विद्वान् तेजस्वी, दानशील, विजिगीषु पद के योग्य (धाम्नः) नाम, स्थान और जन्म के कारण (तुविष्मान्) सबसे अधिक बलशाली हैं, उन एक साथ अभिषिक्त होने वाले वा राजा का स्वयं एक साथ मिलकर अभिषेक करने वाले (गणाय) वीर प्रमुख जन का (प्र अर्चत) अच्छी प्रकार आदर करो। जिस प्रकार वायुगण (महित्वा) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों में (क्षोदन्ति) जल ही जल करके शान्ति सुख बरसाते हैं उसी प्रकार (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से (रोदसी) राजा और प्रजा वर्ग में (क्षोदन्ति) जल के समान आचरण करते, सबको शान्ति सुख से तृप्त करते हैं वा (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से जो प्रजा-जन (रोदसी क्षोदन्ति) दुष्टों के रुलाने वाले, रुद्र सेनापति की सेनाओं का अवयव बनते हैं, स्वयं सेनाओं के अंग प्रत्यंग के घटक हैं वा जो (रोदसी

क्षोदन्ति) भूमि को अन्नोत्पत्ति के लिये तोड़ते हैं और (निः-ऋतेः) सर्व दुःखमय संसार कष्ट और (अवंशात्) सन्तानरहित होने आदि दुःखों से दूर होकर खूब सुखी, सुसन्तान होकर (नाकं नक्षन्ते) दुःखरहित सुखमय लोक को प्राप्त होते हैं। उनका भी आप लोग आदर सत्कार करो।

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥२॥

भा०—जिस प्रकार वायु गण की उत्पत्ति (त्वेष्येण) प्रखर तेज से है और वे ताप पाकर बड़े वेग से प्रकट होते हैं कि सब कोई कांप जाते हैं, उसी प्रकार हे (मरुतः) विद्वान् वीर जनो! (ये) जो आप लोग (त्वेष्येण) अति तीक्ष्ण तेज से और (महोभिः) बड़े २ गुणों और (ओजसा) बड़े बल पराक्रम से युक्त होकर (भीमासः) अति भयंकर और (तुवि-मन्यवः) अति क्रोध युक्त और बहुज्ञान युक्त (अयासः) आगे बढ़ने वाले हो (वः जनूः चित्) आप लोगों की उत्पादक माताएं, वा प्रकृतियें भी (प्र सन्ति) उत्तम कोटि की हैं। (यामन्) अपने २ मार्ग में चलते हुए भी (विश्वः) सभी (स्वर्दृक्) सुख से देखने वाले कुशल के इच्छुक, लोग (वः भयते) आप लोगों से अधर्म करने से भय करते हैं।

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३॥

भा०—जो (मरुतः) वीर और विद्वान् जन (मघवद्भ्यः) ऐश्वर्यवान् लोगों के हितार्थ (बृहत् वयः) बहुत बड़ा जीवन, अन्न और बल (दधात) धारण करते हैं और जो (नः) हमारी (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति को (जुजोषन् इत्) अति प्रेम से सेवन करते हैं और जो (गतः) प्राप्त होकर (अध्वा) मार्ग के समान (जन्तुं न वितिराति) प्राणि को नाश नहीं करता प्रत्युत विशेष रूप से बढ़ाता है, वह (स्पार्हाभिः ऊतिभिः)

स्पृहणीय, उत्तम उपायों से (नः प्र तिरेत) हमें भी बढ़ावे। हम सब उनका आदर सत्कार किया करें।

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४॥

भा०—हे (धूतयः) भोग-वासनाओं और कर्मबंधनों को कँपा कर शिथिल कर देने वाले विद्वान् जनो ! और शत्रुओं को कँपा देने वाले वीर पुरुषो ! (युष्मा-ऊतः विप्रः) तुम लोगों से सुरक्षित विद्वान् पुरुष जिससे (शतस्वी) सैकड़ों धनों का स्वामी और सैकड़ों को अपना बन्धु बना लेने हारा हो। और जिससे (युष्मा-ऊतः अर्वा) आप लोगों से सुरक्षित अश्वारोही वीर पुरुष (स-हुरिः) शत्रु-पराजयकारी, सहनशील, और (सहस्री) सहस्रों ऐश्वर्यों और सहस्रों पुरुषों का स्वामी, सहस्र-पति होता है। और जिससे (युष्मा-ऊतः सम्राड्) आप लोगों से सुर-क्षित महाराजा होकर (वृत्रम् उत हन्ति) बढ़ते शत्रु को भी नाश करता और (वृत्रं हन्ति) धन को प्राप्त करता है हे विद्वानो और वीरो ! (वः) आप लोगों का (तत्) ऐसा ही (देष्णम्) दान हो।

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥ ५ ॥

भा०—मैं (मीढुषः) वर्षणशील, नाना सुखों के दाता, (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुष के अधीन रहने वाले (तान्) उन नाना वीर जनों को (आ विवासे) बड़े आदर से राष्ट्र में बसाऊं। उनकी सेवा सत्कार करूं वे (मरुतः) शत्रुओं के हन्ता लोग (नः) हमें (पुनः) वार २ (नंसन्ते) विनयपूर्वक प्राप्त हों। (यत्) जिस (सस्वर्ता) उपतापजनक शब्द से, या अप्रकट रूप से (यद् आविः) वा जिससे प्रकट, रूप से वे (जिहीडिरे) क्रोधित हों वा हमारा अनादर करें

(तुराणाम्) अति शीघ्रकारी वा अपराधियों के दण्डकर्त्ता जनों के (तद् एनं) उस अपराध को हम (अव ईमहे) दूर करें।

प्र सा वा॑चि सुष्टु॒तिर्म॒घोना॑मि॒दं सू॒क्तं म॒रुतो॑ जुषन्त।
आ॒राच्चि॒द्द्वेषो॒ वृषणो युयोत यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ६।२८

भा०—(मघोनां) उत्तम आदर योग्य धन, ऐश्वर्य के स्वामी जनों की (सा सु-स्तुतिः) वह उत्तम स्तुति (प्र-वाचि) अच्छी प्रकार कही जाती है। हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इदं) इस प्रकार के (सूक्तम्) उत्तम वचन (जुषन्त) सेवन किया करें। हे (वृषभः) बलवान् पुरुषो ! आप लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं और द्वेष भावों को भी (आरात् चित् युयोत) दूर ही पृथक् करो। और (स्वस्तिभिः) उत्तम सुखकारी साधनों से (सदा नः यूयं पात) सदा हमें आप लोग बचाइये।

[५६]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—११ मरुतः। १२ रुद्रो देवता, मृत्युविमोचनी॥ छन्दः१ निचृद् बृहती। ३ बृहती। ६ स्वराड् बृहती। २ पंक्तिः। ४ निचृत्पंक्तिः। ५, १२ अनुष्टुप्। ७ निचृत्त्रिष्टुप्। ८ त्रिष्टुप्। ६, १० गायत्री। ११ निचृद्गायत्री॥

यं त्राय॑ध्व इ॒दमि॑दं॒ देवा॑सो॒ यं च॒ नय॑थ।
तस्मा॑ अग्ने॒ वरु॑ण॒ मित्रार्य॑म॒न्मरु॑त॒ः शर्म॑ यच्छत॥ १॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् जनो ! आप लोग (यं त्रायध्वे) जिस २ की भी रक्षा करते हो और (यं च) जिसको (इदम् इदम्) यह सन्मार्ग है, यह सत् कृत्य है इस प्रकार स्पष्ट बतला २ कर (नयथ च) सन्मार्ग में और सत्कर्म में प्रवृत्त कराते हो, हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! हे (मित्र) स्नेहवन् ! हे (अर्यमन्) शत्रुओं और दुष्टों के नियन्तः ! हे (मरुतः) विद्वान् प्रजाजनो ! आप

उसको अवश्य (शर्म यच्छत) शान्ति प्रदान करो। अर्थात् उसको कभी धोखा दे, कुमार्ग पर डाल कर संकट में मत डालो।

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (प्रिये अहनि) प्रिय, मनोहर किसी दिन (ईजानः) यज्ञ वा आप लोगों का सत्संग करता हुआ पुरुष (वः) आप लोगों को (वराय) स्वीकार करने के लिये (महीः इषः दाशति) अपनी उत्तम २ इच्छाएं प्रकट करता और बड़े पूज्य अन्नादि समृद्धियों वा सैन्य का प्रदान करता है वह (युष्माकं अवसा) आप लोगों के ही ज्ञान और बल से (द्विषः) अप्रीतिकर भावों और शत्रुओं को (तरति) पार कर जाता है। (सः) और वह (क्षयं) अपने ऐश्वर्य को (प्र तिरते) खूब बढ़ा लेता है।

नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (कामिनः) उत्तम संकल्प और शुभ इच्छा से युक्त होकर (विश्वे) सब (सचा) एक साथ मिलकर (अस्माकं सुते) हमारे ऐश्वर्य के बल पर (अस्माकम् पिबत) हमारा ऐश्वर्य का उपभोग और पालन करो। (वः चरमं चन) आप लोगों में से अन्तिम को भी (वसिष्ठः) श्रेष्ठ वसु राजा (न परिमंसते) त्याज्य नहीं समझता। प्रत्युत सबको आदर और प्रेम से देखता है। सभी लोग उत्साह पूर्वक राजा के राज्य-प्रजाजन की रक्षा में सदा तत्पर रहो।

नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरः) मनुष्यो ! आप लोग (यस्मै अराध्वम्) जिसको सुखादि प्रदान करते हों (वः ऊतिः) आप लोगों की रक्षाकारिणी सेनादि (पृतनासु) मनुष्यों और संग्रामों के बीच में भी (नहि मर्धति) उसको नाश नहीं करती । (वः सुमतिः नवीयसी) आप लोगों की उत्तम से उत्तम शुभमति (अभि आवत्) प्राप्त हो । आप लोग (पिपीषवः) प्रजा के पालन करने की इच्छा से युक्त होकर (तूयं) शीघ्र ही (यात) प्रयाण करो और (आयात) आओ जाओ ।

ओ षु घृ॑ष्विराधसो यातनान्धां॑सि पीतये॑ ।
इमा वो॑ ह॒व्या म॑रुतो र॒रे हि कं॒ मो ष्व१॑न्यत्र॑ गन्तन ॥ ५ ॥

भा०—(ओ) हे (मरुतः) वीरो और विद्वान् पुरुषो ! हे (घृष्विराधसः) एक दूसरे से बढ़ने वाले, सम्बद्ध धनैश्वर्य से सम्पन्न, आप लोग (पीतये) उपभोग के लिये (अन्धांसि) नाना प्रकार के अन्नों को (सु यातन) सुखपूर्वक प्राप्त करो । मैं (इमा) ये नाना प्रकार के (हव्या) खाने और लेने देने योग्य द्रव्यादि (ररे) प्रदान करता हूं । (हि कं) आप लोग (अन्यत्र) और अन्य स्थान में (मो सु गन्तन) मत जाइये । मेरे राष्ट्र में सुख से रहिये ।

आ च॑ नो ब॒र्हिः सद॑ताबि॒ता च॑ नः स्पा॒र्हाणि॒ दात॑वे॒ वसु॑ ।
अस्रे॑धन्तो मरुतः सो॒म्ये मधौ॒ स्वाहे॒ह मा॑दयाध्वै ॥ ६ ॥ २९ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान्, वीर, प्रजाजनो ! (नः बर्हिः आसदत च) आप लोग हमारे वृद्धियुक्त गृह, आसन और यज्ञ आदि को प्राप्त होओ और उत्तमासन पर विराजो (नः) हमें (स्पार्हाणि) चाहने योग्य, उत्तम, (वसु) धनों को (दातवे) देने के लिये (नः) हमें (अविता च) प्राप्त हों हमारी रक्षा करें । आप लोग (अस्रेधन्तः) प्रजा का नाश न करते हुए, अहिंसक रहकर (सौम्ये मधौ) सोम, आदि औषधिरस से युक्त मधु के समान विद्वानों के योग्य आनन्ददायक इस राष्ट्र में और उत्तम

बलदायक अन्नादि के ऊपर (इह) इस गृहादि में (स्वाहा) उत्तम सत्कार, सुवचन और सुखपूर्वक अभ्यवहार एवं अपने न्यायोचित उपार्जित धन द्वारा (मादयाध्वै) आनन्द लाभ करिये ।

सस्वश्चिद्धि तन्वः॑ शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ७

भा०—(सस्वः) गुप्त भाव से विद्यमान, इन्द्रिय और अन्तःकरण को सुरक्षित और आकारचेष्टादि सुगुप्त रखने वाले वा (सस्वः) एक समान तेज, एक समान शब्द और एक समान ऐश्वर्यादि रखने वाले, (तन्वः शुम्भमानाः) अपने देहों आत्माओं को उत्तम गुणों और आभरणों से अलंकृत करने वाले (नीलपृष्ठाः) श्यामवर्ण की पीठ वाले (हंसासः चित्) हंसों के समान, (नीलपृष्ठाः) नील, श्याम या काले वर्ण की पोशाकों वाले, वा कृष्ण मृगछाला पहने (हंसासः) हंसवत् विवेकी, अन्तःशत्रु और बाहरी शत्रुओं को मारने वाले वा ध्येय तक पहुंचाने हारे, (आपप्तन्) आवें । वे (रण्वाः नरः न) रणकुशल नायकों के समान (सवने) ऐश्वर्यमय राष्ट्र या सेनापति के उत्तम शासन में (मदन्तः) आनन्दपूर्वक रहते हुए (अभितः) सब ओर (विश्वशर्धः) समस्त बल को (मा अभितः) मेरे चारों ओर (नि षेद) बनाये रक्खो ॥ 'नीलपृष्ठाः'— काली या नीली पोशाकें जैसे ग्रेजुएटों, वकीलों के गौन हों ।

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वानों और वीर जनो ! (यः) जो (नः) हमारे बीच में (दुर्हृणायुः) दुःखदायी, क्रोध करने वाला, दुष्ट हृदय का पुरुष, हमारे (चित्तानि) अन्तःकरणों को (तिरः) तिरस्कारपूर्वक (अभि जिघांसति) आघात करता या हृदयों को चोट पहुंचाना चाहता है (सः) वह (द्रुहः पाशान्) द्रोही के योग्य फांसों या बन्धनों को

(प्रति मुचीष्ट) धारण करे। और (तम्) उसको (तपिष्ठेन हन्मना) अति तापदायक हथियार से (हन्तन) दण्डित करो।

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन। युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

भा०—हे (मरुतः) उत्तम मनुष्यो! हे (सान्तपनाः) उत्तम तप करने वाले जनो! आप लोग (इदं हविः) यह उत्तम अन्न (जजुष्टन) प्रेम से सेवन करो। हे (रिशादसः = रिशात्–असः, रिश — अदसः) हिंसकों को नाश करने वाले जनो! (युष्माक-ऊती) तुम लोगों की उत्तम रक्षा से ही हम लोग भी उत्तम अन्नादि का लाभ करें।

एष ह वै सान्तपनोऽग्निर्यद् ब्राह्मणः। यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूड़ाकरणोपनयनप्लावनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स-सान्तपनः ॥ गो० पू० २। २३ ॥ जिस विद्वान् ब्राह्मण के गर्भाधान से लेकर उपनयन समावर्त्तनादि तक संस्कार हो चुके हों और अग्निहोत्र व्रतचर्यादि ठीक पालन किये हों वह 'सान्तपन' कहाता है।

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन। युष्माकोती सुदानवः १०

भा०—हे (गृहमेधासः) गृह में उत्तम बुद्धि रखने वाले, वा गृह में यज्ञ करने हारे उत्तम गृहस्थ जनो! हे (मरुतः) मनुष्यो! आप लोग (आ गत) आइये। (मा अपभूतन) हमसे दूर मत होइये। हे (सु-दानवः) उत्तम दानयुक्त, एवं दानशील पुरुषो! (युष्माक-ऊती) आप लोगों की रक्षा, ज्ञान और सत्कार से ही हम भी प्रसन्न हों।

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः। यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

भा०—हे (स्वतवसः) स्वयं अपने शरीर आत्मा और धनैश्वर्य से बलशाली पुरुषो! हे (कवयः) क्रान्तदर्शी जनो! हे (सूर्य-त्वचः) सूर्य के समान देह की कान्ति वाले तेजस्वी, उज्ज्वल पुरुषो! हे (मरुतः) विद्वान्, वीर जनो! मैं (नः) आप लोगों को (इह इह) इस २ कार्य और पद

के निमित्त (आवृणे) वरण करता हूं । आप लोग (यज्ञं) यज्ञ को (आ गत) आकर प्राप्त हों और (मा अप भूतन) हमसे दूर न होवें ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥ ३० ॥ ४ ॥

भा०—(त्र्यम्बकं) तीनों शब्दमय वेदों का उपदेश करने वाले, वा तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीनों वर्णों के उपदेष्टा रक्षक द्विपात् चतुष्पात् और सरीसृप तीनों के माता के समान पालक, (सु-गन्धिं) उत्तम गन्ध से युक्त, उत्तम कुलोत्पन्न, शत्रुओं के उत्तम रीति से नाशक वा शुभ पुण्यमय गन्ध वाले, सत्कर्मा, (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि, समृद्धि को बढ़ाने वाले पूज्य पुरुष वा प्रभु की हम (यजामहे) सदा उपासना और पूजा करते हैं । मैं (मृत्योः) मृत्यु के (बन्धनात्) बन्धन से (उर्वारुकम् इव) खरबूज़े के फल के समान (मुक्षीय) मुक्त होऊं और मैं (अमृतात्) अमृतमय मोक्ष सुख वा दीर्घ जीवन से (मा मुक्षीय) पृथक् न होऊं ।

(त्र्यम्बकं)—अबि शब्दार्थः । अम्बति शब्दायते इत्यम्बः, अम्बकः । त्रयाणां अम्बकः त्र्यम्बकः । 'सुगन्धिः'—गन्ध हिंसने । शोभनः शरीरगंधः पुण्यगन्धो वा यस्यासौ सुगन्धिः । यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद् गंधो वाति एवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद् गन्धो वातीति श्रुतेः । सायणः ।

[६०]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ १ सूर्यः । २—१२ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । ९ विराट् पंक्तिः । १० स्वराट् पंक्तिः । २, ३, ४, ६, ७, १२ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ८, ११ त्रिष्टुप् ॥

यद॒द्य सूर्य॒ ब्रवो॑ऽना॒गा उ॒द्यन्मि॒त्राय॒ वरु॑णाय स॒त्यम् ।
व॒यं दे॑व॒त्रादि॑ते स्याम॒ तव॑ प्रि॒यासो॑ अर्यमन्गृ॒णन्तः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्विन्! हे (अदिते) अविनाशिन्! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन्! तू (अनागाः) अपराधों और छल कपटादि पापों से रहित होकर (मित्राय) स्नेहवान् और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के प्रति (उत् अद्य) जो आज के समान सदा ही (उत् यन्) उत्तम पद को प्राप्त होता हुआ (सत्यं ब्रवः) सत्य का ही उपदेश करता है, (देवत्रा) विद्वान् मनुष्यों के बीच (वयं) हम लोग (तव) तेरे ही दिये (सत्यं) सत्य ज्ञान का (गृणन्तः) उपदेश करते हुए एवं तेरे शासन में सत्य भाषण करते हुए (तव प्रियासः स्याम्) तेरे प्रिय होकर रहें।

एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥२॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) परस्पर के स्नेही और एक दूसरे को वरण करने वाले स्त्री पुरुषो! (ज्मन् सूर्यः) भूमि पर, या अन्तरिक्ष में सूर्य के समान (एषः स्यः) वह यह प्रसिद्ध तेजस्वी (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा (विश्वस्य) समस्त (स्थातुः जगतः च) स्थावर और जंगम का (गोपाः) रक्षक (मर्तेषु) मनुष्यों में (ऋजु) सरल धार्मिक कार्यों और (वृजिना) पापों को भी (पश्यन्) न्यायपूर्वक देखता हुआ (उभे अभि) स्त्री और पुरुष, वादी और प्रतिवादी दोनों के प्रति (उद् एति) उदय को प्राप्त होता है, प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥३॥

भा०—(सधस्थात्) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार सूर्य (सप्त हरितः) सातों जलाहरण करने वाली किरणों को (अयुक्त) नियुक्त करता है। और जिस प्रकार (घृताचीः हरितः) तेज से युक्त वा जल से युक्त किरणें वा रात्रियां वा दिशाएं (ईं वहन्ति) उस सूर्य को धारण करती

हैं उसी प्रकार वह राजा (सप्त हरितः) राष्ट्र के सात प्रकार के राज काज चलाने वाले उन अमात्य प्रकृतियों का (सधस्थात्) मिलकर बैठने के सभास्थान से शासन करता हुआ (अयुक्त) उचित २ कार्यों में नियुक्त करे (याः) जो (घृताचीः) तेज और स्नेह से युक्त होकर (सूर्यं वहन्ति) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को धारण करते हैं। (यः) जो राजा (युवाकुः) तुम दोनों की शुभ कामना करता हुआ, हे (मित्रा-वरुणौ) प्राण उदान के समान राष्ट्र के आधार रूप स्त्री पुरुषो ! (यूथा इव) गौओं के यूथों को ग्वाले के समान समस्त (धामानि) स्थानों और पदों को तथा (जनिमानि) सब प्राणियों, जनों और कार्यों को भी (सं चष्टे) अच्छी प्रकार देखता है।

उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ४

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप लोगों के लाभार्थ ही (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) जल से युक्त मेघ ऊपर आकाश में उठते हैं, उसी प्रकार (मधुमन्तः पृक्षासः उत् अस्थुः) मधुर गुणयुक्त अन्न भूमि पर उत्पन्न होते हैं। सूर्य जिस प्रकार (शुक्रम् अर्णः अरुहत्) शुद्ध जल को ऊपर उठाता है उसी प्रकार सूर्यवत् तेजस्वी राजा शुद्ध निष्पाप धन वा प्राप्तव्य पद को (आ अरुहत्) प्राप्त करे। (यस्मै) जिसके हितार्थ (आदित्याः) १२ मासों के सदृश नाना रूप से सर्वोपकारक विद्वान् तेजस्वी १२ सचिव (अध्वनः) राज-कार्यों के नाना मार्ग (रदन्ति) बनाते हैं वही (स-जोषाः) समान रूप से सबको प्रिय, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सबके वरने योग्य हो।

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५ ॥

भा०—(इमे) ये उक्त विद्वान् जन और (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ राजा ये सब (भूरेः) बहुत बड़े (अनृतस्य) असत्य को भी (चेतारः) विवेक द्वारा छान बीन करने वाले (हि सन्ति) अवश्य हों। (दुरोणे) गृह में पुत्र जिस प्रकार धन की वृद्धि करते हैं उसी प्रकार (दुरोणे) अन्यों से दुष्प्राप्य पद पर स्थित हो कर, वा (इह) इस राष्ट्र में भी (अदितेः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा के अधीन उसके (पुत्राः) पुत्रों के समान आज्ञाकारी (शग्मासः) सुखकारक और (अदब्धाः) प्रजाओं की हिंसा न करने और शत्रुओं से स्वयं भी पीड़ित न होने वाले होकर (ऋतस्य वावृधुः) सत्य न्याय और धन की सदा वृद्धि करें।

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥६॥१॥

भा०—(इमे) ये (मित्रः) सर्वस्नेह, (वरुणः) राजा और (दूड-भासः) दूर २ तक चमकने वाले प्रसिद्ध, कीर्त्तिमान् और प्रतापी पुरुष (दक्षैः) अपने कर्मों और ज्ञानों से (अचेतसं चित्) ज्ञान रहित को भी (चितयन्ति) ज्ञानवान् करते हैं। (अपि) और (स-चेतसं) उत्तम चित्त वा ज्ञान वाली (क्रतुं) बुद्धि वा कर्म का (वतन्तः) सेवन करते हुए (सु-पथा) उत्तम मार्ग से (अंहः तिरः चित्) पाप को दूर करते और अन्यों को सन्मार्ग से (नयन्ति) लेजाते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥७॥

भा०—(इमे) ये (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों को (चिकित्वांसः) जानने वाले, विद्वान् लोग (अनिमिषाः) कभी आंखे न झपकते हुए, सदा सब कार्यों में सचेत, आलस्य रहित होकर

(अचेतसम्) अज्ञानी पुरुष को भी (प्र-व्राजे चित्) उत्तम गन्तव्य मार्ग में (नयन्ति) लेजाते हैं। (प्र-व्राजे) मार्ग में जाते हुए भी जैसे (नद्यः गाधम्) नदी का गहरा जल (अस्ति) हुआ करता है वे विद्वान् लोग (अस्य) इस (विष्पितस्य) दूर २ तक फैले हुए विघ्न रूप अथाह जल से भी (नः पारं पर्षन्) हमें पार करें।

यद्गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (अदितिः) विदुषी माता और विद्वान् पिता के तुल्य अखण्ड शासक राजा, (मित्रः) मित्र, स्नेही, (वरुणः) सर्वोपरि उत्तम पुरुष ये सब (सुदासे) उत्तम करादि के दाता प्रजाजन के हितार्थ वा वृत्ति आदि देने वाले मुख्य राजा के लिये (भद्रं) कल्याणकारी सुख (यच्छन्ति) प्रदान करते हैं। (तस्मिन्) उसके अधीन हम अपने (तोकं तनयं आ दधानाः) पुत्र पौत्रादि का पालन पोषण करते हुए (तुरासः) अति शीघ्रकारी होकर (देव-हेडनं) विद्वानों के अनादर और क्रोधजनक कोई काम (मा कर्म) कभी न करें।

अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥ ९ ॥

भा०—जो व्यक्ति (होत्राभिः) उत्तम वाणियों से (वेदिम्) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली यज्ञ वेदी, विदुषी स्त्री और भूमि को (अवयजेत) प्राप्त नहीं करता, उसका उत्तम रीति से आदर सत्कार नहीं करता (सः) वह (वरुण-ध्रुतः) श्रेष्ठ जनों से विनाशित, दण्डित होकर (काः चित् रिपः अव यजेत) कई प्रकार के कष्ट प्राप्त करता है। अर्थात् जो (होत्राभिः) दान आदान क्रिया और सत्कार युक्त वाणियों से (वेदिं) सुखप्रद स्त्री, यज्ञ वेदी, भूमि आदि का सत्संग करता है वह (वरुण-ध्रुतः) श्रेष्ठ पुरुषों

से धारित होकर (काः चित् रिपः अव) कई प्रकार के नाना दुःखों और पीड़ाओं से युक्त रहता है। (अर्यमा) न्यायकारी दुष्टों का नियन्ता, हे (वृषणाः) बलवान् स्त्री पुरुषो! (द्वेषोभिः परि वृणक्तु) द्वेषकारी दुष्ट जनों से हमें दूर रक्खे। और (सु-दासे) सुखप्रद, उत्तम दानशील पुरुष को (उरुं लोकं) विशाल स्थान प्रदान करे।

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०॥

भा०—(एषां) इन उक्त बलवान् राष्ट्रसञ्चालक प्रधान पुरुषों की (सम्-ऋतिः) एक साथ मिलकर हुई संगति, सम्मति आदि सदा (सस्वः चित्) गुप्त और (त्वेषी) अति तीक्ष्ण, तेजस्विनी हो। वे लोग (अपीच्येन) अति सुन्दर, सुगुप्त, सुदृढ़ (सहसा) बल से (सहन्ते) शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ होते हैं। हे (वृषणः) बलवान् पुरुषो! (युष्मद्भिया) आप लोगों से भयपूर्वक (रेजमानाः) कांपते हुए शत्रुजन हों। और आप लोगों के (दक्षस्य महिना चित्) बल के महान् सामर्थ्य से ही आप लोग (नः मृडत) हमें सुखी करें।

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो मनुष्य (ब्रह्मणे) विद्वान् ब्रह्मवेत्ता पुरुष के हितार्थ वा ज्ञान और धन के प्राप्त्यर्थ (सुमतिम्) शुभ कल्याणकारी ज्ञान और बुद्धि (आ यजाते) प्राप्त करता है, और जो (वाजस्य) बल, ज्ञान और (परमस्य रायः सातौ) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य के लाभ के लिये (सुमतिम् आ यजाते) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष का सत्संग और उपासना करता है (मघवानः अर्यः) उत्तम पूज्य ज्ञान धनादि सम्पन्न पुरुष उसको (मन्युं सीक्षन्त) ज्ञान प्रदान करते और (क्षयाय) रहने और

उसकी ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (उरु) बहुत (सु-धातु) उत्तम भरण पोषण, उत्तम गृह और उत्तम सोना चान्दी का आभूषण, वेतन, वृत्ति आदि (चक्रिरे) प्रदान करते हैं ।

इ॒यं दे॑व पु॒रोहि॑तिर्यु॒वभ्यां॑ य॒ज्ञेषु॑ मित्रावरुणावकारि ।
विश्वा॑नि दु॒र्गा पि॑पृतं ति॒रो नो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः।१२।२

भा०—हे (मित्रा वरुणौ) स्नेहयुक्त श्रेष्ठ उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे माता पिता के तुल्य सभा सेनापति जनो ! हे (देवा) विद्वानो ! (यज्ञेषु) सत्सगों, और यज्ञों में, (इयं) यह (युवभ्यां) आप दोनों के लिये (पुरः-हितः अकारि) आदर पूर्वक उत्तम वस्तुओं की भेंट की जाती है । आप लोग (विश्वानि) समस्त (दुर्गा) दुर्गम, विषम कष्टों को भी (तिरः) दूर करके हमें (पिपृतं) पालन करो । और (यूयं) आप सब लोग (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमारा उत्तम २ साधनों से सदा पालन किया करो । इति द्वितीयो वर्गः ॥